

परमपारिणामिकभाव

(अलग से उपलब्ध प्रवचन)

भाग - १



श्री सीमंधरस्वामी



श्री कुंदकुंद आचार्य देव



श्री पद्मप्रभमलधारिदेव



श्री कानजीस्वामी

:प्रकाशक:

श्री दिगम्बर जैन स्वध्यायमन्दिर ट्रस्ट,
सोनगढ

:सह-प्रकाशक:

श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
मुम्बई

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

परमपारिणामिकभाव

(भाग-1)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित
श्री नियमसार परमागम की विभिन्न गाथाओं के ऊपर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
अलग से उपलब्ध शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

(ii)

विक्रम संवत्
2081

वीर संवत्
2551

ई. सन
2024

—: प्रकाशन :—

शाश्वत् अष्टाह्निका पर्व (कार्तिक)
दिनांक, 8 से 15 नवम्बर 2024
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी ।

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं ॥

शासननायक महावीर भगवान और गौतम गणधर के पश्चात् जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरतक्षेत्र के महासमर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेहक्षेत्र जाकर श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्यों ने उनके द्वारा रचित शास्त्रों के आधार अपने ग्रन्थों में दिये हैं। उससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

आचार्यदेव निर्मल परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के पश्चात् पौन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की है, जिसमें श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री नियमसार, श्री पंचास्तिकायसंग्रह और श्री अष्टपाहुड—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इनके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

‘श्री समयसार’ इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नौ तत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। ‘श्री प्रवचनसार’ में नाम के अनुसार जिनप्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। ‘श्री नियमसार’ में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित्त, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। ‘श्री पंचास्तिकायसंग्रह’ में कालसहित पाँच अस्तिकायों का अर्थात् छह द्रव्यों का और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है, तथा ‘श्री अष्टपाहुड’ एक विशिष्ट ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, जिसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

यह नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है। ‘नियम’ अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो वह, अर्थात् निश्चयरत्नत्रय। ‘सार’ शब्द निश्चयरत्नत्रय से विपरीत ऐसे व्यवहाररत्नत्रय के परिहार के लिये जोड़ा गया है। इस प्रकार, ‘नियमसार’ अर्थात् शुद्धरत्नत्रय। इस शुद्धरत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—अशुभ, शुभ और शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-

निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्धद्रव्यसामान्य वह परमात्मतत्त्व है, वही शुद्ध अन्तःतत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। उस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि, अनादि काल से अनन्त-अनन्त दुःखों को अनुभव करते हुए जीव ने, एक क्षणमात्र भी की नहीं और इसलिए सुख के लिये उसके सर्व मिथ्या प्रयास—व्यवहाररत्नत्रय तक सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं के ऊपर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखनेवाले मुनिश्वर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे आचार्यश्री वीरनन्दि-सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं कि जो विक्रम की 13वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गहन आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तर्वेदन के साथ मिलानकर इस टीका में स्पष्ट रीति से खुल्ले किये हैं। इस टीका में आये हुए कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्यरूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानों कि परमपारिणामिकभाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्षु हृदयों को मुदित करता है।

यहाँ इस प्रवचनशास्त्र में बहुभाग के प्रवचन राजकोट में हुए हैं तथा कितने ही प्रवचन सोनगढ़ में हुए हैं। पूरे नियमसार में से मूल-मूल गाथाओं और कलशों के ऊपर प्रवचन किये हैं, जिसमें मुख्यरूप से 'शुद्धभाव अधिकार' की गाथाओं के ऊपर प्रवचन हैं। तदुपरान्त नियमसार में जो कार्य-कारण की प्ररूपणा की गयी है, उसमें जीव अधिकार की गाथा-10 से गाथा-15 तक में जो सहजज्ञान—स्वाभाविकज्ञानपरिणति—कारणशुद्धपर्याय का वर्णन किया है, वह कोई अलौकिक और अपूर्व है। बड़े-बड़े विद्वान भी इस कारणशुद्धपर्याय को नहीं समझ सके और जिसे मात्र त्रिकाली द्रव्य-गुण की 'उपमा' सूचक शब्द ही समझते हैं, उन्हें इन प्रवचनों के माध्यम से समझ में आ सकेगा कि जैसे प्रमाण के द्रव्य में एक त्रिकाली द्रव्यांश है, एक गुणांश है और एक वर्तमान प्रगट उत्पाद-व्ययसहित का पर्यायांश है, उसी प्रकार एक वर्तमान एक समय में उत्पाद-व्ययरहित का पर्यायांश भी है कि जो वर्तमान कार्य का कारण है, कि जिसे मुनिभगवन्त ने 'पंचम भाव की पूजित परिणति' कहा है, जो कि मात्र उपमा नहीं परन्तु वस्तु का एक अंश है।

कोई ऐसा कहे कि मूल गाथा में आचार्य भगवान ने ऐसी 'कारणशुद्धपर्याय' का उल्लेख किया नहीं, परन्तु मुनिराज ने अपनी बात उपमा के स्वरूप में लिखी है; तो ऐसा बिल्कुल नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने इसी कारणशुद्धपर्याय का उल्लेख श्री समयसार की गाथा-90, 181-183, 320 और कलश-138 तथा श्री नियमसार की गाथा-10 से 15 और 159 के प्रवचनों में किया है। तदुपरान्त श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत में भी इस कारणशुद्धपर्याय का उल्लेख है, ऐसा अपने को पूज्य गुरुदेवश्री फरमाते हैं। इस प्रकार यह विषय यहाँ स्पष्ट होगा।

शब्दशः प्रवचन-शास्त्रों को प्रकाशित करने का हमारा एक ही प्रयोजन है कि सभी जीव सर्वांग अभ्यास करके अपनी साधना में आगे बढ़ें।

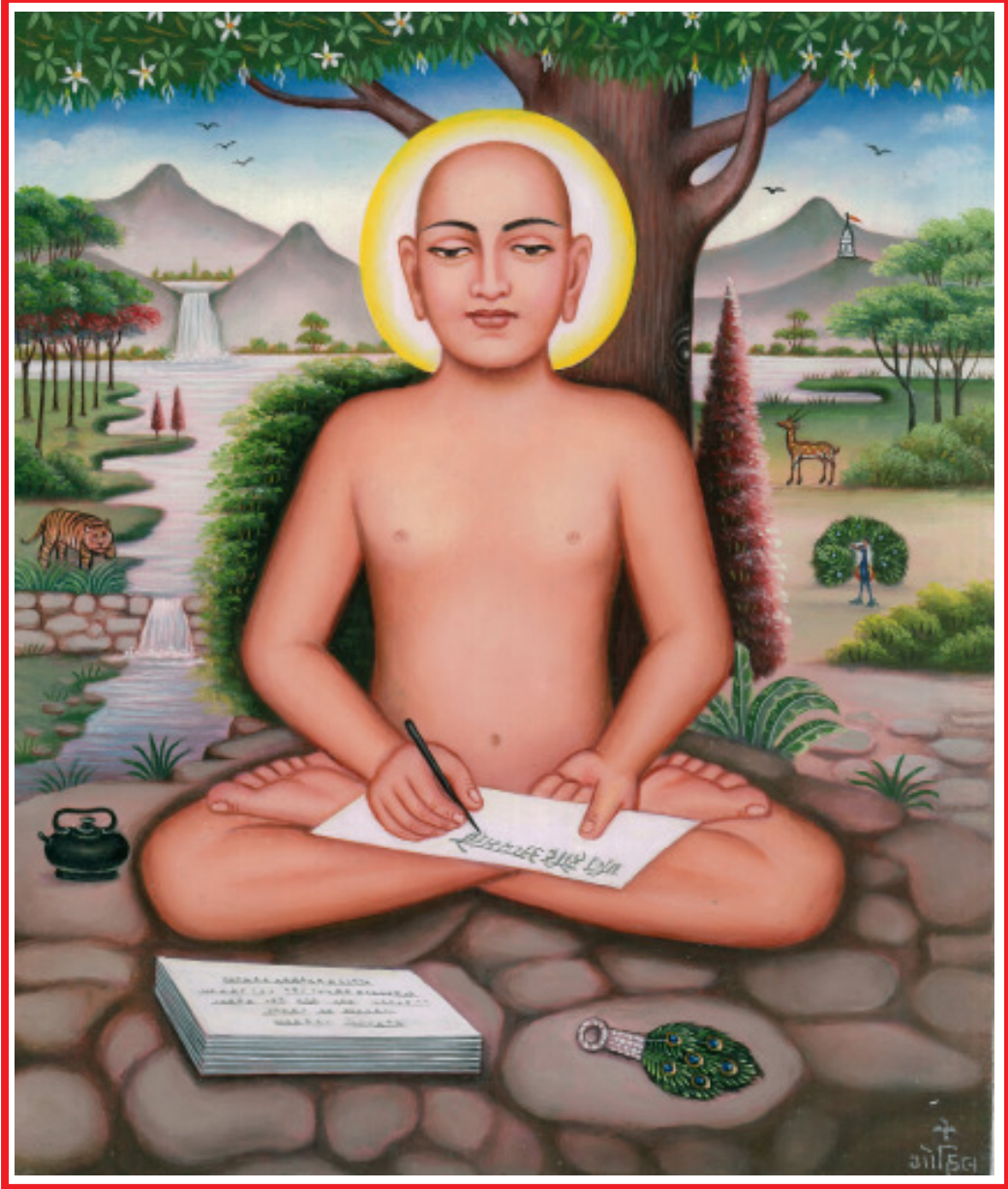
यह 72 प्रवचन, जिसमें प्रस्तुत परमपारिणामिक भाग-1 में 36 प्रवचन समायोजित किये गये हैं, उन्हें सुनकर गुजराती में शास्त्राकार रूप से प्रस्तुत करने में श्रीमती आशाबेन मेहता, मुम्बई तथा श्री नीलेशभाई जैन, भावनगर के अत्यन्त आभारी हैं। सभी प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किये गये हैं।

प्रस्तुत गुजराती प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण व सीडी के साथ मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राजस्थान) द्वारा किया गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर और उत्तरदायित्व पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या आजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। सर्व मुमुक्षुगणों से निवेदन है कि यदि कहीं कोई अशुद्धि दृष्टिगोचर हो तो हमें अवगत करायें, जिससे आगामी आवृत्ति में संशोधन किया जा सके।

यह प्रवचन www.vitragvani.com तथा [vitragvani \(app\)](http://vitragvani(app)) और www.atmadharam.com पर उपलब्ध हैं।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई



कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव



अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी (संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्रायः प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव ।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था ।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली । दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा ।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया । सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं । जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है ।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है ।'** इसका अध्ययन और चिन्तन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है । इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ । भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा । तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको निःशंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है । इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी । अतः अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया ।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल 'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरू हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वी सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरू किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता ।
 2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है ।
 3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं ।
 4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है ।
 5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं ।
 6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती ।
 7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है ।
 8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है ।
 9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है ।
 10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं ।
- इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा

जयवन्त वर्तों !

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ
श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तों !!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तों !!!



अनुक्रमणिका

क्रमांक	प्रवचन क्रमांक	गाथा क्रमांक	श्लोक क्रमांक	दिनांक	पृ.सं.
०१	३८२	३८	—	०२-०३-१९६३	००१
०२	३८३	३९	५४	०३-०३-१९६३	०१८
०३	३८४	४०, ४१	५६, ५७	—	०३७
०४	३८५	४१	—	११-०३-१९६३	०५१
०५	३८६	४१	—	१२-०३-१९६३	०७०
०६	३८७	३९	५५	१३-०३-१९६३	०८९
०७	३८८	३८	५४	—	११०
०८	३८९	३८	—	—	१२२
०९	३९०	४०	—	—	१३८
१०	३९१	४२	६०, ६१	—	१५५
११	३९२	४२	३५, ३६	—	१७०
१२	३९३	५० से ५५	७४	—	१८६
१३	३९४	५०	—	—	२०४
१४	३९५	५०	—	—	२१७
१५	३९६	५१ से ५५	—	०४-११-१९५१	२३३
१६	३९७	५० से ५५	७४	०५-११-१९५१	२५०
१७	३९८	४७	—	१४-०२-१९६४	२६७
१८	३९९	४८, ४८	७१	१५-०२-१९६४	२८४
१९	४००	—	७१	१६-०२-१९६४	३०२
२०	४०१	४९	७२	१७-०२-१९६४	३२१
२१	४०२	४९	—	१८-०२-१९६४	३३९

२२	४०३	४९, ५०	७३	१९-०२-१९६४	३५६
२३	४०४	५०	—	—	३७५
२४	४०५	५० से ५५	७४	२१-०२-१९६४	३९१
२५	४०६	५१ से ५५	—	२२-०२-१९६४	४१०
२६	४०७	७७ से ८१	—	०५-०३-१९७२	४२८
२७	४०८	७७ से ८१	१०९	०६-०३-१९७२	४४३
२८	४०९	१०९, ११०	१५६ से १५९	१२-०४-१९५५	४५९
२९	४१०	१०	१७	०३-०१-१९५५	४७८
३०	४११	११, १२	—	०४-०१-१९५५	४९५
३१	४१२	११, १२	—	०५-०१-१९५५	५१४
३२	४१३	१३	—	०७-०१-१९५५	५३३
३३	४१४	१५	२६	१०-०१-१९५५	५४८
३४	४१५	४७	—	—	५६७
३५	४१६	४९, ५०	७३	१०-०२-१९५५	५८१
३६	४१७	५० से ५५	७४	—	५९९



परमात्मने नमः ।

परमपारिणामिकभाव

(भाग— 1)

परम पूज्य भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार
परमागम पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अलग से
उपलब्ध शब्दशः प्रवचन



गुरुवार, दिनांक - ०२-०३-१९६३

गाथा ३८, प्रवचन नं. ३८२

.....यह भी कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ है । नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग सवेरे बन्ध अधिकार चलता है । यह मोक्ष का मार्ग क्या ? मोक्ष अर्थात् क्या ? कि आत्मा की परमशुद्धता और परम आनन्ददशा जो शक्ति के अन्तर सत्त्व में पड़ी हुई है, ऐसी दशा पर्याय में—दशा में प्रगट हो, अशुद्धता रहे नहीं और शुद्धता की पूर्ण दशा की प्राप्ति और परमानन्द के अनुभव की पूर्णता, ऐसी दशा को मोक्षदशा कहते हैं । यह मोक्षदशा का मार्ग—उपाय—कारण क्या है ? वह इस अधिकार में वर्णन किया गया है । तीसरा अधिकार है यह । पहला जीव अधिकार, दूसरा अजीव अधिकार हो गया और तीसरा अधिकार शुद्धभाव अधिकार । यह शुद्धभाव अर्थात् ? आत्मा के अन्दर एक हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग की वासना, वह अशुभभावरूप अशुद्धता और एक सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि के विकल्प, तपादि के, वह राग, वह अशुद्धरूप शुभभाव—शुभभावरूप अशुद्धता और उससे रहित आत्मा की पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति का कारण, ऐसा जो शुद्धपर्यायरूप भाव, वह यह नहीं । समझ में आया ?

आत्मा की दशा में तीन प्रकार के भाव होते हैं । एक अशुद्ध अशुभरूप, एक

अशुद्ध शुभरूप और उसके अभावरूप आत्मा की शुद्ध परमपवित्र दशारूप शुद्धभाव कि जो शुद्धभाव परम पूर्ण शुद्धता का कारण है। वह यह अधिकार नहीं यहाँ। यहाँ तो त्रिकाली शुद्ध द्रव्यस्वभाव किसे कहना? कि जिसके आश्रय से आत्मा को सम्यग्दर्शन होकर आनन्द हो और मोक्ष का मार्ग जो शुद्धपर्याय किसके आश्रय से प्रगट हो?—ऐसा ध्रुव चैतन्यमूर्ति प्रभु के ध्रुवस्वभाव को यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। समझ में आया? यह शुद्धभाव नाम है न ऊपर! वह शुद्धभाव त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति प्रभु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में चैतन्य-चमत्कार परमानन्द की मूर्ति अनादि-अनन्त एक स्वभाव। उसकी वर्तमान दशा विकार-अविकार, वह तो वर्तमान उसकी हालत और दशा है। उस दशा के पीछे एकरूप चैतन्य प्रभु परमस्वभाव का सागर / समुद्र है, उसे यहाँ शुद्धभाव, ध्रुवभाव, ज्ञायकभाव, एकरूप स्वभाव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

अब, 'अथेदानीं शुद्धभावाधिकार उच्यते।' शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है। ३५ (गाथा)।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्यणो अप्या।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ॥३८ ॥
हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है ॥३८ ॥

धर्म करनेवाले धर्मी जीव को कहाँ दृष्टि देना? और धर्म की दशा किसके अवलम्बन से प्रगट होती है? ऐसा जो त्रिकाली शुद्ध प्रभु आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप परम आनन्दकन्द, वह शुद्धभाव एक है। वह एक ही अन्तर में अंगीकार अर्थात् आदरणीय करनेयोग्य है। क्या यह कहते हैं? देखो, इसका अर्थ। यह हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। टीका में हेय का अर्थ दूसरा आयेगा। वह उपादेय नहीं, ऐसा कहते हैं हेय के अर्थ में। यह भगवान आत्मा देहदेवल में विराजमान पूर्ण स्वरूप शुद्ध स्वभाव एकरूप स्वभाव, वही धर्मी जीव को धर्म करने के लिये अन्तर्मुख और उसमें ध्येय करके उसका आश्रय करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया इसमें कुछ? मोहनभाई! यह क्या कहते हैं?

और जीवादि सात तत्त्वों का समूह... क्या कहते हैं, देखो, जरा सूक्ष्म बात है। 'मैं एक जीव हूँ', ऐसा विकल्प राग, उसमें वासना की बू-गन्ध है। 'मैं एक आत्मा हूँ', यह भी एक भेद-विकल्प है। 'यह अजीव जड़ादि अजीव मुझमें नहीं' यह भी एक विकल्प-राग है। सात तत्त्वों की बात है। और दया, दान का विकल्प जो उठे, वह पुण्यरूपी आस्रवतत्त्व है। आस्रव अर्थात् स्वभाव में नहीं और नयी दशा हुई, जिसके कारण से नये बन्धन का कारण हो। ऐसा जो पुण्य का विकल्प और पाप का विकल्प अर्थात् वृत्ति दोनों की एक जोड़कर आस्रव कहा जाता है। बन्ध, वह आत्मा राग की वृत्ति में अटककर रुके, ऐसी दशा को भावबन्ध और बन्धतत्त्व कहा जाता है। और आत्मा त्रिकाली चैतन्य प्रभु अन्तर स्वभाव का पिण्ड, उसका आश्रय करके जो आत्मा में शुद्धि की दशा प्रगट हो, उसे संवर कहते हैं। अशुद्धता अटकी, इतना उसका नाम संवर कहते हैं और संवर के साथ शुद्धि की वृद्धि की उत्पत्ति होना, उसे निर्जरा; अशुद्धता का नाश अथवा शुद्धि की उत्पत्ति, ऐसी एक समय की दशा में उसे निर्जरा कहा जाता है। और आत्मा की दशा में पूर्ण शुद्धता की दशा का प्रगट होना, उसे मोक्ष कहते हैं—यह सात जो तत्त्व कहे, वह त्रिकाल तत्त्व नहीं; इसलिए उन्हें परद्रव्य कहा। गजब सूक्ष्म!

क्या कहा? जीवादि सात तत्त्वों का समूह... सूक्ष्म बातें, बापू! यह तो अन्तर के अध्यात्म की शैली के पंथ में आना (कठिन है)। उसने अनन्त बार शास्त्र का जानपना किया, क्रियाकाण्ड की, पंच महाव्रत पालन किये, थोथा कर-करके मर गया परन्तु आत्मा हाथ आया नहीं। क्योंकि प्रभु आत्मा निरालम्बी वस्तुस्वभाव का साधन करे, उसे धर्म कहते हैं। तो वस्तु कौन है? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो आत्मा एक समय में शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... त्रिकाल शुद्ध ध्रुव शुद्ध—ऐसा जो स्वद्रव्य अर्थात् स्ववस्तु, उसकी अपेक्षा से जो सात पर्याय जो यह भाग कहे, जीव और अजीव, पुण्य और पाप, आस्रव और संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष, यह सातों दशायें उनको—त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य का समूह कहा गया है। कहो, भाई! यह माँगा था, इन लालचन्दभाई ने कि यह शुद्धभाव (अधिकार लेना)। आहाहा! अरे! प्रभु! तेरा पेट बड़ा परन्तु उसकी खबर नहीं होती उसे।

कहते हैं चैतन्यघन ज्ञायकप्रभु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूरा चैतन्य स्फटिक रत्न की उपमा दी। चैतन्य स्फटिक रत्न। ऐसा भगवान स्वभाव त्रिकाली आत्मा का, उसे स्ववस्तु कहते हैं, स्वद्रव्य कहते हैं, स्वधाम कहते हैं, स्वतत्त्व कहते हैं। यह जीव को उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति की उत्पत्ति हो, वह उत्पत्ति की पर्याय, उसे भी यहाँ परद्रव्य कहा है। क्यों? कि जैसे आत्मा के अतिरिक्त परवस्तु का आश्रय लेने से अपनी निर्मल शान्ति अरागी सुखदशा सम्यग्दर्शन आदि चारित्रदशा; जैसे परद्रव्य का आश्रय लेने से उससे होती नहीं, वह नयी पर्याय प्रगट होती नहीं, ऐसी शुद्धपर्याय प्रगट हुई, उसके आश्रय से भी नयी शुद्धता और नयी शान्ति प्रगट नहीं होती। समझ में आया? इस अपेक्षा से भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण ध्रुव एकरूप चैतन्य पिण्ड आनन्द का कन्द, उसे स्ववस्तु कहते हैं कि जिसमें एकाकार होने से आत्मा को शान्ति मिले और जो शान्ति मिली और अशान्ति टली और पूर्ण शान्ति हो, वे सब दशायें—हालत है, वह पर्याय है, वह अवस्था है। अवस्था में से नयी अवस्था नहीं आती; इसलिए उस अवस्था को स्वद्रव्य की अपेक्षा से सात तत्त्व का समूह परद्रव्य कहा गया है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? रतिभाई! बहुत नहीं आया जोर का। प्रभुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : दो-चार बार कहा जाता है। यहाँ कहीं अपने छोड़ नहीं देते, ऐसा एकदम। यह कहीं वार्ता नहीं कि एक वार्ता छोड़कर रख दी जाये। यह तो प्रभु के घर का—पंथ का रास्ता है। समझ में आया?

परमात्मस्वभाव। परम आत्म, परम उत्कृष्ट आत्मस्वरूप। स्वरूप अर्थात् स्वभाव। त्रिकाल है... है... है... है... है... है... एकरूप ध्रुव। जैसे पीपर का दाना है, उसमें अन्तर में चौंसठ पहरी चरपराई एकरूप पड़ी है। यह चौंसठ पहरी कहते हैं न पहले। अब तो यह सौ पैसे का (रुपया हो गया)। पहले तो चौंसठ पहरी कहते ने। चौंसठ-चौंसठ पैसे का रुपया। यह पीपर के दाने-दाने में चौंसठ पहरी चरपराई और हरा रंग अन्दर में भरपूर दाने-दाने में पड़ा है। है तो प्रगट होता है। तो इस अपेक्षा से उसकी जो काली अवस्था और कुछ दो, पाँच, दस, पच्चीस, पचास पहर निकली, वह चरपरी और हरी अवस्था

और पूर्ण चरपरी प्रगट हुई, वह पूर्ण अवस्था। उसके आश्रय से नयी अवस्था त्रिकाल में पड़ी, उसमें से उसके आश्रय से नयी प्रगट नहीं होती। और क्या कहा ?

पीपर का दाना है न ? उसमें चौंसठ पहरी चरपराई, प्राप्ति जब चौंसठ पहरी पर्याय में, दशा में चौंसठ पहरी प्राप्त होती है, (वह) आयी कहाँ से ? प्राप्त की प्राप्ति, अन्दर में है, उसमें से आती है। तो कहते हैं कि उसकी काली दशा में से आती नहीं और जब आयी अन्दर में से चरपराई, उस चरपराई के आश्रय से नयी चरपराई बढ़ती नहीं। उस चरपराई की वृद्धि अन्दर त्रिकाल शुद्ध पड़ा है, उसमें से चरपराई, एक छोटी पीपर में अन्दर चरपराई पूर्ण पड़ी है, उसके प्रवाह में से आती है। समझ में आया ? इस अपेक्षा से उसकी पीपर की कालिमा भी त्रिकाल चौंसठ पहरी चरपराई की अपेक्षा से स्वस्वरूप उसका कहलाता है और काली तथा कुछ हरी और चरपरी प्रगट हुई, उसे पूर्ण की अपेक्षा से, उसमें से नयी प्रगटे नहीं, इसलिए उसे परद्रव्य और पर छोटीपीपर पर कही जाती है। गजब बात, भाई !

इसी प्रकार यह चैतन्य प्रभु, उसे सात तत्त्व का भेद, भेद सात का समूह, उसे यहाँ परद्रव्य कहा। गजब बात, भाई ! वह परवस्तु। वह धर्म की दशा प्रगट हुई, वह भी परवस्तु। किस अपेक्षा से ? है तो उसकी दशा में, परन्तु उस दशा के आश्रय से नयी दशा शुद्धि की बढ़ती नहीं, शुद्धि का टिकना होता नहीं, शुद्धि की उत्पत्ति, टिकना और वृद्धि, वह प्रगट हुई के आश्रय से होता नहीं। इसलिए जैसे पर के आश्रय से शुद्धि और शान्ति और धर्म होता नहीं, इसी प्रकार अपनी शुद्धि प्रगटी त्रिकाल के आश्रय से, उसके आश्रय से नयी शुद्धता प्रगट नहीं होती, इसलिए उसे परद्रव्य के आश्रय से जैसे होती नहीं, वैसे इस पर्याय के आश्रय से नयी शुद्धता होती नहीं, इसलिए उसे परद्रव्य कहा गया है। ओहोहो ! भारी सूक्ष्म, भाई ! मोहनभाई ! यह सब समझना, यह सब बहुत कठिन सूक्ष्म है। आहाहा !

अरे, प्रभु ! तेरा पंथ तूने कभी सुना नहीं। मर गया क्रिया और काम और जानपना-पठन कर-करके। परन्तु यह चैतन्य कौन यह पिण्ड प्रभु परमस्वरूप ? उस परमस्वरूप का रूप एकरूप जो ध्रुव, ध्रुव की खान निधि, उसे स्वद्रव्य कहते हैं, स्वस्वरूप कहते हैं, स्वधाम कहते हैं, वही आत्मा को उपादेय है, अंगीकार करनेयोग्य

है, सत्कार करनेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य है, उसकी शरण से नयी धर्मदशा प्रगट होती है। मोहनलालभाई! बातें बहुत कठिन, भाई! इसलिए यह जीवादि सात तत्त्व के विकल्प के भेद अथवा निर्मल दशा, उन सबका समूह, वह परद्रव्य होने के कारण... यह तो परद्रव्य की व्याख्या की, क्यों परद्रव्य कहा? कहो, चन्दुभाई!

एक समय का पूर्ण प्रभु आत्मा सत्त्व अकेला, अकेला सत्त्व ही जिसके कन्द में आनन्द और शान्ति का रस पूर्ण पड़ा है, उसे स्वतत्त्व कहते हैं। क्योंकि उस पूर्ण स्वरूप के धाम में से निर्मलदशा प्रगट होती है, उसमें एकाग्र होने से। शरीर और वाणी में एकाग्र होने से जैसे शान्ति नहीं, वैसे पुण्य-पाप में एकाग्र होने से शान्ति नहीं, उसी प्रकार संवर, निर्जरा की पर्याय प्रगट हुई हो शुद्धता, उसमें एकाग्र करने से शुद्धि बढ़ती नहीं। ओहोहो! क्या है यह? भाषा मस्तिष्क में—दिमाग में आना कठिन। वह कहे कि ध्यान करो, यह करो, ऐसा करो, आँख बन्द करो तो ऐसा हो। अब धूल भी नहीं, सुन न! वस्तु को समझे बिना ध्यान किसका और वस्तु को समझे बिना ज्ञान किसका? समझ में आया?

कहते हैं, जीवादि... जीव समझ में आया? मूल विकल्प उठा, उसे यहाँ जीव कहा मात्र। यह जीव हूँ और यह अजीव। यह पुण्य और पाप के भाव, वह आस्रव, वह बन्ध, वह संवर, निर्जरा का (विकल्प), मोक्ष, यद्यपि स्वयं को नहीं है, परन्तु मोक्ष की पर्याय जिसे प्रगट हुई और अपने को प्रगट होनेवाली है, ऐसा लक्ष्य करने जाये तो उसे शुद्धि बढ़ती नहीं, इसलिए अपने संवर, निर्जरा और मोक्ष को भी (परद्रव्य कहा है)। निजानन्द की सहजानन्द की प्रभु खान है, उसे स्वतत्त्व कहा गया है, स्वद्रव्य कहा गया है, स्ववस्तु कही गयी है कि जिसमें सब शान्ति और आनन्द का बसना रहा हुआ है। उसकी एक समय की दशा में विकारी और अविकारी में वह पूर्ण शान्ति और आनन्द आश्रय करनेयोग्य चीज़, वह उसमें आ जाती नहीं।

इसलिए, जीवादि सात तत्त्वों का समूह... बहुत सूक्ष्म परन्तु, हों! प्रभुभाई! क्या होगा इसमें? जीवराजभाई! ऐसा सुना है कहीं? मोक्ष, वह परद्रव्य है। पागल है या क्या यह? मोहनभाई! मोक्ष, वह परद्रव्य; धर्म, वह परद्रव्य। सुन तो सही, भाई! कहा था न एक बार कहा था। हमारे पालेज में यहाँ तो भगत तो पहले से छोटी उम्र में कहलाते थे।

इसलिए फिर हमारे सगे-सम्बन्धी बहुत वैष्णव थे। तो वहाँ भजन हो तो जायें। हम सर्वत्र जाते थे। यहाँ तो सब सुनते थे। कबीर के बाबा, साधु पहले से दुकान छोड़कर चले जायें। जरा कुछ ऐसा आवे कि कौन है? क्या कहता है? वह सब... एक बार वे गाते थे। 'जगतडा कहे छे रे भगतडा काला छे, पण अे काला न जाणशो रे, प्रभुने अे व्हाला छे। अे... जगतडा कहे छे रे आ भगतडा घेला छे।' पागल जैसे लगते हैं, ऐसी बातें करते हैं। 'पण घेला न जाणशो रे प्रभुना पदमां अे पहेला छे।' यह तो बहुत छोटी उम्र में सुनते थे, भाई! हमारे सगे-सम्बन्धी हों न, वैष्णव थे एक टाईल्स के बड़े व्यापारी थे लगभग। फिर वहाँ दशाश्रीमाली इकट्ठे हों। कुछ कहते हैं अवश्य। समझ में आया?

इसी प्रकार यह भक्ति उछली है चैतन्यप्रभु की, वह कहते हैं कि हमारी उछली हुई भक्ति को भी हम तो परद्रव्य कहते हैं। भक्ति अर्थात् वह राग नहीं। राग तो परवस्तु है, परन्तु अन्तर से उछली हुई चैतन्य प्रभु उछलकर पर्याय में ज्वार में आया, शुद्ध चिदानन्द प्रभु आत्मा की दृष्टि की और चैतन्य का अनुभव हुआ कि यह शुद्ध आनन्द पूर्ण है, उस अनुभव की दशा हुई, परन्तु कहते हैं कि उस दशा में से नयी दशा की वृद्धि नहीं है; इसलिए हम उसे स्वद्रव्य न कहकर, उसे हम परद्रव्य कहते हैं। मोहनभाई! पढ़ा है कभी नियमसार? रामजीभाई इनकार करते हैं तुम्हारी ओर से। कहो, समझ में आया इसमें? अरे प्रभु! तेरे मूल धाम की बातें चलती हैं यह। आहाहा!

कहते हैं कि जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है। भाई! हेय न कहकर, 'उपादेय नहीं' — ऐसा कहा। व्याख्या ऐसी की। उपादेय है और यह उपादेय नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया? उपादेय अर्थात् यह नौ के प्रकार, वे आदरणीय नहीं, आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! भाईसाहेब! परन्तु पुण्य का, पाप का भाव अभी तो पाप का भाव आदरणीय नहीं और पुण्य का भाव आदरणीय नहीं, वहाँ अटके हैं। मूलजीभाई! अरे, प्रभु! सुन रे सुन! तेरे चैतन्य चमत्कार की धातु की बातें! यह चैतन्य चमत्कार की धातु की बातें। समझ में आया? कहते हैं, प्रभु! तेरी खान में तो पूर्ण आनन्द पड़ा है, हों! वह पूर्ण आनन्द का रस है, एकरूप चैतन्यद्रव्य है पदार्थ, उसे हम स्वतत्त्व और स्ववस्तु कहते हैं और उसके भाग किये दशा में, मलिन के और निर्मल की अंश दशायें आयी और हुई उसे हम परद्रव्य कहते हैं और वह

अंगीकार करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि जब राग और पुण्य और यह संवर, निर्जरा जो दशा प्रगट हुई, उसे आदरने जाये तो राग की उत्पत्ति होगी। अंश के ऊपर लक्ष्य जायेगा, वहाँ राग की उत्पत्ति होगी। इस अपेक्षा से कहते हैं कि उसकी मलिन पर्याय—दशा है, वह जैसे आदेय नहीं, उपादेय नहीं, वैसे उसकी निर्मलदशा प्रगटी, वह भी उपादेय नहीं। भारी सूक्ष्म, भाई! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें कुछ? रतिभाई! क्या समझ में आता है या नहीं यह? भगवान जाने। वहाँ धमाल करे सट्टा में ऐसे से ऐसे। यह... यह टोन है और यह फलाना है। वहाँ कितना करते होंगे? यह तो आता है, वहाँ तो आता है। परन्तु यह जरा सूक्ष्म बात आज शुरु हुई है।

आत्मा में निश्चयदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए त्रिकाल की दृष्टि देकर। सूर्य का कन्द प्रभु चैतन्यप्रकाश, उसका आश्रय करके जो प्रगट हुई, क्षायिक सम्यक्दशा, चारित्रदशा, स्वरूप की शान्ति की दशा, कहते हैं कि वह उपादेय नहीं। उसका आदरभाव करने जायेगा तो राग होगा। आदर तो त्रिकाल चैतन्य धातु ज्ञायकमूर्ति का आदर कर। दामोदरभाई! आहाहा! यह जीवादि सात तत्त्वों का समूह, एक तो उसे परद्रव्य सिद्ध किया। पश्चात् वास्तव में उपादेय नहीं, ऐसा सिद्ध किया। अरे! इसका पंथडा, इसका मार्ग कोई अलग! जगत के पंथ से यह पंथ ही कोई आत्मा का अलग। परन्तु इस पंथ की रीति और इसके प्रकार क्या-क्या, उसे कभी रुचा नहीं, सुहाया नहीं, सुहाया नहीं। ऐसी बातें बहुत और यह तो सब ऐसा होता है। अब सुन न! ऐसा होता है वह क्या है तुझे? तू क्या कर सकता है पर का? और पर से तुझमें क्या होता है? तीन काल में कोई पर के कारण तुझमें नहीं और तेरे कारण पर में नहीं। यहाँ तो तेरे कारण हुई निर्मलदशा, उससे भी तेरी निर्मलदशा होती नहीं, उसके कारण टिकती नहीं और उसके कारण बढ़ती नहीं। ओहोहो! सुना न हो कितनो ने! और यह भाई ने (कहा), यह हमारे सुनना है। तब कुछ लिया था सही नहीं थोड़ा? दो-तीन दिन लिया था एक बार। तीन दिन। खबर है। कहो, समझ में आया इसमें?

वास्तव में उपादेय नहीं है। उपादेय अर्थात्? उप अर्थात् समीप जाकर यह आदरणीय है, यह सत्कार करनेयोग्य है कि ओहो..! यह शरणभूत है, यह मुझे आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया? परन्तु उसे चैतन्य चमत्कार की सृष्टि अन्दर

में क्या है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? श्रीमद् एक बार कहते हैं, अरे! जगत को चैतन्य के गुप्त चमत्कार में क्या पड़ा है, उसकी सृष्टि की खबर नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा के अन्तर के ध्रुव चैतन्य मुख में, यह तो बाह्य की दशा और बाह्य का विकल्प और बाह्य का यह... यह... यह... सिरपच्ची करके अन्तर चैतन्य चमत्कार पूर्णानन्द प्रभु स्वयं पूरा पड़ा है, ऐसे गुप्त चमत्कार की सृष्टि को खबर नहीं। ऐसा एक टुकड़ा एक बार कह गये। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं, बापू! तू गुप्त चमत्कार का धाम अन्दर में पूर्ण, वह उपादेय है। उसका आश्रय करनेयोग्य है। तेरी दृष्टि और तेरी वर्तमान ज्ञान की दशा उसे ज्ञेय बनाकर टिक, स्थिर, वह स्थिर होने योग्य है। गजब बात, भाई!

वास्तव में उपादेय नहीं है। और कोई उसमें कहे कि वास्तव में नहीं तो व्यवहार से उपादेय (है या नहीं)? वापस दो शब्द पड़े हैं न। उसका अर्थ हो गया, बापू! व्यवहार से उपादेय अर्थात् जाननेयोग्य है, जाननेयोग्य है। पुण्य और पाप के भाव हों, अरे! धर्म की दशा निर्मल शान्ति अन्तर के धाम की एकाग्रता करने से होती है, वह जाननेयोग्य है। व्यवहार से उपादेय कहने में (आवे)। (परन्तु) संवर, निर्जरा और मोक्षदशा वास्तव में (उपादेय नहीं)। यहाँ तो नियमसार मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग की दशा मोक्षमार्ग के आश्रय से नहीं होती और मोक्ष भी मोक्षमार्ग के आश्रय से नहीं होता। मोहनलालभाई! आहाहा! क्योंकि कहा न पहले कि पीपर में से जो साठ पहरी प्रगट हुई, उसमें से चौंसठ पहरी आती नहीं। साठ—कम में से अधिक कहाँ से आवे? साठ का व्यय हो गया और चौंसठ की उत्पत्ति चरपराई की (हुई)। वह चौंसठ की उत्पत्ति कम में से अधिक कैसे (हो)? और गई में से अधिक कैसे (हो)? है, उसमें से आती है, अन्दर पूर्ण चरपराई है, उसमें से आती है, परन्तु यह बात इसे अभी ख्याल में दृष्टान्त बैठता है, परन्तु दृष्टान्त का सिद्धान्त? समझ में आया?

इसके ख्याल में एक बात आनी चाहिए कि यह वस्तु ही पूर्ण एक शुद्ध हूँ, एकरूप ध्रुव चैतन्य धातु-धातु चैतन्य को धार रखी हुई, आनन्द को धार रखी हुई धातु हूँ। जैसे सोना धातु, वैसे यह धातु। ऐसा एकरूप स्वभाव भगवान, वह एक ही दृष्टि देकर लीनता करनेयोग्य है, उसका उपादेय आश्रय करनेयोग्य है और यह सात प्रकार

के भाव, वे आदरणीय और उपादेय नहीं। नवरंगभाई! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : वास्तव में उपादेय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तव में उपादेय है ही नहीं। उपादेय उसे कहते हैं कि जिसमें से नया लाभ मिले। बनिया लाभ लेने को करते हैं या नहीं? लाभ सवाया नहीं लिखते? ... जैसा लाभ नहीं, ऐसा कुछ लिखते हैं सही बनिया दरवाजे के ऊपर, नहीं? लक्ष लाभ। यह लक्ष लाभ। लक्ष्य चैतन्यमूर्ति ध्रुव करनेयोग्य लक्ष्य कहो या उपादेय कहो अर्थात् दूसरी भाषा में कहें तो अन्तर्मुख का झुकाव जो है, उसका ध्येय चैतन्य भगवान, वही अन्तर्मुख में आदरणीय है, उसका विकारभाव और निर्मल प्रगट हुई दशा भी उपादेय और आदरणीय है नहीं। प्रकाशचन्दजी! अभी तो वह बाहर से विवाद करते हैं कि 'नहीं, राग की मन्दता हो, कषाय मन्द हो, धीरे-धीरे आगे बढ़े। सीधे एल.एल.बी. होते होंगे?' सुन न, तेरा कषाय मन्द तो कहीं तौल में गया अज्ञान में। वह तो अज्ञानभाव है। अज्ञान अर्थात् उसमें जागृतभाव नहीं। परन्तु संवर, निर्जरा की शुद्धता प्रगट हुई उसमें ज्ञान के अंश शान्ति के साथ निर्मलदशा आयी है, वह जागृतभाव है, उसके आश्रय से नयी शुद्धता और परिपूर्णता होती नहीं। इसके लिये भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर जिन्हें पूर्ण परमात्मदशा का पूर्ण आनन्द आत्मा में से लाकर प्रगट हुआ, वे भगवान फरमाते हैं, यह कहते हैं कि वह सात प्रकार की पर्यायें, विकल्प और निर्मल, वह निर्विकल्प सुधारस आत्मा की शान्ति प्रगट हुई, वह एक समय की दशा है, उस समय की दशा है। दूसरे समय में उसका व्यय होकर नयी होती है। तो जिसका व्यय होकर नयी हो, उसके आश्रय से नयी शुद्धता कैसे होगी? इसलिए उत्पाद-व्ययरूपी जो पर्यायें सात प्रकार की (होती है), उसे वास्तव में उपादेय माननेयोग्य नहीं और उसे स्वद्रव्य माननेयोग्य नहीं।

सहज... अब कहते हैं, यहाँ मुनि स्वयं है न, इसलिए मुनिपने से बात कर रहे हैं। धर्मी जीवों को अथवा सन्तों, मुनियों को क्या उपादेय है? तो सन्त-मुनि की जरा व्याख्या (करते हैं)। स्वयं मुनि है न, पद्मप्रभमलधारी मुनि हैं, इसकी टीका करनेवाले, इसलिए मुनिपने से बात कर रहे हैं। तब अब उपादेय क्या? यह सात आदरणीय नहीं, तब अब अंगीकार करने—आश्रय करनेयोग्य शरणभूत चीज़ क्या? कि सहज वैराग्यरूपी

महल के शिखर का जो शिखामणि है,.... धर्मात्मा कैसा होता है ? सहज वैराग्य महल के शिखर का शिखामणि। पर से उदास... उदास... उदास... शरीर, वाणी, मन, कर्म, राग, पुण्य, (उनसे) सहज वैराग्यरूपी, राग के अभावरूपी जो धर्म की दशा, उसका महल, उसरूपी महल। महल अर्थात् बँगला। महल अर्थात् मैल नहीं, महल। उसके शिखर का, उसकी टोंच। यह उसका शिखामणि। टोंच ऊपर का रत्न। चूड़ामणि कलगी का रत्न। ऐसा जो मुनि अथवा ऐसा जो आत्मा, जो पर से हटा हुआ है, वैराग्य हुआ है, उसे कहाँ उपादेय करने का है ? यह पहली उसकी दशा वर्णन करते हैं।

यह परद्रव्य से जो पराङ्मुख है,.... ऐसा धर्मात्मा, वह परवस्तु से पराङ्मुख है, पराङ्मुख है, उपेक्षा है, आश्रय और आदर नहीं। परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है,.... मुनि की प्रधानता से बात ली है न! अकेला देह है मुनि को। बाह्य। पाँच इन्द्रियों का विस्ताररूप यह देह, ऐसा। पाँच इन्द्रियों के फैलाव ऐसा देह, परन्तु फैलावरहित देह है, ऐसा। इन्द्रिय के विषयों का फैलाव मुनियों को है नहीं। अतीन्द्रिय आनन्दकन्द में झूलते सन्त, उन्हें इन्द्रिय के विषय के विस्तार का झुकाव ही नहीं। अतीन्द्रिय आनन्दकन्द में जिनका झुकाव झूलता है।

जो परम जिनयोगीश्वर हैं,.... जिन्होंने राग का अभाव करके स्वरूप में योग अर्थात् जुड़ान किया है। स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—यह परमस्वभाव त्रिकाल एकरूप जिसमें जिसकी तीक्ष्ण सूक्ष्म तीखी बुद्धि की है। आहाहा! ऐसे आत्मा को.... ऐसे आत्मा को। यहाँ तो मुनि से बात ली है, हों! परन्तु सम्यग्दृष्टि ऐसे आत्मा को। 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। उन सात को परद्रव्य कहा। इस एक को आत्मा एकरूप चैतन्य है, वह एक ही वस्तु, वह धर्मात्मा को, धर्मी जीव को, सम्यग्दृष्टि को, पंचम गुणस्थानवन्त को, छठवें (गुणस्थान) वन्त मुनि को वह अकेला त्रिकाल द्रव्य, उसमें ही बारम्बार लक्ष्य देकर एक ही आदरणीय है। ओहोहो! ऐसे आत्मा को। पहली पर्याय। वीतरागी पर्याय वैराग्य पर से उदास कहा न? यहाँ जाना है न? इसलिए पर से उदास वर्णन किया। ऐसे हटा है ऐसे। शरीर, वाणी, मन, विकल्प से हट गया है और जिसने तीक्ष्ण बुद्धि स्वद्रव्य में, स्ववस्तु एक चैतन्य सामान्य, सामान्य एकरूप ऐसा परमधाम भगवान अन्दर, उसमें जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है, ऐसे आत्मा को 'आत्मा'

वास्तव में उपादेय है। तब कोई कहे, स्थूल बुद्धि हो उसे तो नहीं न यह ? स्थूल बुद्धि हो उसे आत्मा उपादेय है कहाँ और उसे धर्म का भान भी है नहीं। कठिन बात, भाई! यह धर्म की कोई, छोटुभाई!

कहते हैं, सवेरे नहीं कहा था ? 'जहाँ चेतन वहाँ सर्व गुण केवली बोले अेम।' अकेला चैतन्य प्रभु अनन्त-अनन्त शान्तरस बेहद। जिसका स्वभाव कायमी, उसे हद और अपूर्णता क्या ? ऐसा चैतन्यतत्त्व जो विराजमान परमरत्न एकरूप स्वभाव, वह धर्मात्मा को उसे आदरणीय और उपादेय करनेयोग्य है।

मुमुक्षु : एक ही न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही हो न। एक में एकता होती है। एकता में एक आवे और एक में एकता हो। और क्या कहा ? एक में से एकता हो और एकता के लिये एक का आश्रय लेना चाहिए। अरे भगवान ! गजब बात, भाई ! समझ में आया ? लो, यह सात पर्याय जिसे परद्रव्य कहा, वह उपादेय नहीं। यह एक त्रिकाल द्रव्य वस्तु उपादेय, ऐसा करके अनेकान्त अस्ति-नास्ति सिद्ध किया। वह उपादेय नहीं और यह एक उपादेय है, इसका नाम अनेकान्त है। वह भी उपादेय और यह भी उपादेय, वह भी हेय और यह भी हेय, इसे अनेकान्त नहीं कहा जाता। अनेकान्त अर्थात् अस्ति-नास्ति का विरुद्धपने का शक्ति का तत्त्व जो प्रसिद्ध हो, उसे अनेकान्त कहा जाता है।

सात तत्त्व और परद्रव्य से उदास होकर, हटकर, वे आत्मा में—त्रिकाल में नहीं और त्रिकाल वस्तु, वह आदरणीय है; सात प्रकार की दशा, वह आदरणीय है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! यह तो सोये हुए सर्प को जगाने के अमृत के प्रवाह है। यह नदी का प्रवाह जब सामने किनारे जाये तब गाँववालों को महँगा पड़ता है। वह प्रवाह जब पानी का... बड़ी नदियाँ हों उसे, हों ! छोटी हो उसे क्या दो हो ? हमारे कालुभार जैसी नदी है न उमराला, तो बड़ी नदी तो पानी उस ओर जाये तो बेचारे रेत खोद-खोदकर... और वह प्रवाह... अपने आप कहीं प्रवाह करने से होता था ? वह पानी का प्रवाह जब गाँव के समीप चले, तब फिर कहे, ओहो अब पानी यहाँ से भरकर... रेत खोदकर उसमें से निकलना। इसी प्रकार चैतन्य के वीर्य के प्रवाह वह पुण्य और पाप के निमित्त के लक्ष्य से अनादि के उल्टे और विपरीत बहे हैं। उस वीर्य का प्रवाह चैतन्य

के ध्रुवस्वभाव में मोड़ने के लिये जो वस्तु उपादेय है, यह उसकी बात चलती है। समझ में आया ?

कहते हैं, अरे ! आत्मा को... तब कोई उसमें से निकाले कि यह तो ऐसे आत्मा को। हमारे क्या ? आहाहा ! चन्दुभाई ! वे तो मुनि हैं तो मुनिपने से बात की है। समझ में आया ? समयसार में भी मुनि जिस मर्यादा में बैठे हैं न, उस मर्यादा से बात कर रहे हैं। 'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो' अपनी दशा में छठवीं और सातवीं भूमिका वर्तती है न, वहाँ से बात कर रहे हैं कि यह मैं नहीं। मैं अकेला ज्ञायक त्रिकालभाव एकस्वरूपी प्रभु, वह मेरा चैतन्यतत्त्व उपादेय है। प्रमत्त और अप्रमत्तभाव बिल्कुल आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसा वहाँ नहीं कहा कि मैं संयत-असंयत नहीं। क्योंकि स्वयं संयत तो है, इसलिए संयतदशा प्रमत्त की है और अप्रमत्तदशा सातवें से चौदह भूमिका में। नकार वर्तमान से नकार करते हैं कि यह दो नहीं, एकरूप चैतन्य है।

मुमुक्षु : सात तत्त्व को वहाँ हेय कहा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हेय ही कहा है वहाँ भी। अप्रमत्त और प्रमत्त सब आदरणीय नहीं। समझ में आया ?

अब, **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** प्रत्येक की व्याख्या करे तब समझ में आये, ऐसी है। भगवान आत्मा उदयभाव अर्थात् पुण्य-पाप, दया, दान, विकल्प उठे, वह उदयभाव कहलाता है। विकृतभाव को उदयभाव कहा जाता है। उसमें नहीं और नया प्रगट हुआ, इसलिए उसे उदयभाव कहा जाता है। दूसरा, चार बोल है न चार ? देखो, अन्दर नीचे है। **भावान्तरों=अन्य भावो (औदयिक,...)** कोष्ठक में औदयिक। यह पुण्य और पाप के विकल्प उठें, उन्हें विकृत उदयभाव कहा जाता है। **औपशमिक,...** यह आत्मा की दृष्टि होकर राग को उपशम करे और सम्यग्दर्शन का उपशमपना प्रगट हो, उपशम सम्यक्त्व अनुभव प्रगट हो, उसे उपशम कहते हैं। अथवा चारित्र की उपशमता हो, इसलिए अन्तर शान्ति जरा प्रगट हो, उसे उपशमदशा का भाव (कहते हैं), परन्तु वह पर्यायभाव है, अवस्था भाव है।

क्षायोपशमिक... किंचित् क्षय और किंचित् उपशम, ऐसी जो आत्मा की दशा

होती है, उसे क्षयोपशम वर्तमान दशा कहा जाता है। और क्षायिक— जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि क्षायिकभाव से प्रगट हो और क्षायिकपना जितने अंश में, पूर्ण हो केवली को, वह क्षायिक भी एक आत्मा की एक हालत और वेश है। ये चार भाव परम-पारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण,... कहा न यहाँ? भावान्तरों को अगोचर होने से... उन्हें भावान्तर कहा। अर्थात् क्या कहा? भावान्तर क्यों कहा चार को? कि एकरूप त्रिकाली शुद्ध आनन्दस्वरूप प्रभु भाव, उसे परमभाव कहें तो उस परमभाव की अपेक्षा से विकार और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की निर्मल दशायें, एक समय की अवस्थायें, उस भाव की अपेक्षा से इन्हें अन्य भाव कहते हैं। समझ में आया?

वह परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है — ऐसा कारणपरमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है। अर्थात् क्या? कि औदयिक आदि चार भावान्तर, वह अगोचर। चार को अगोचर कहा है आत्मा। अर्थात्? कि चार के आश्रय से आत्मा प्रगट नहीं हो सकता। लिखा है न नीचे, देखो न, वह कारणपरमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है। अगोचर का अर्थ इतना, हों! है तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव को गम्य है। शुद्ध परिणति निर्मलदशा को गम्य है यह आत्मा, परन्तु उन चार भावों के आश्रय से प्रगट गम्य नहीं होता, उनके आश्रय से गम्य नहीं होता, इसलिए चार भावों के आश्रय से आत्मा ज्ञात नहीं होता, इसलिए चार भाव से अगम्य आत्मा है, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : सूक्ष्म पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म पड़े तो भी अब कहाँ तक? राजकोट जैसे में भी सूक्ष्म पड़े? यहाँ तो सुधरा हुआ गाँव कहलाता है, बुद्धिवाले नाम धराते हैं। नाम धराते हैं। तो उसे समझने के लिये कुछ नकार करना पड़े? ऐसा कहीं गाँव में चलता होगा? कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा एकस्वरूप प्रभु, उसका एक भाव गिना। उसकी अपेक्षा से विकार और अविकार की दशायें, थोड़ी शुद्धि, अधिक शुद्धि या पूर्ण शुद्धि और अशुद्धि, इन सब दशाओं को एक त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से अन्य भाव कहा है। वे अन्य कहकर ऐसा कहा है कि भावान्तरों को अगम्य है। यह कारणप्रभु त्रिकाली

चिदानन्द प्रभु उन चार भावों के आश्रय से अगम्य है; इसलिए चार के भाव से अगम्य है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया इसमें? भाई! यह तो ऊँची में ऊँची अमृत की बातें हैं!! चार भाव को अगम्य होने से वह भगवान आत्मा इन चार दशाओं के आश्रय से प्रगट नहीं होता, दशा के आश्रय से वह लक्ष्य में नहीं आता, इसलिए वह परमस्वभाव भगवान चार भावान्तरों को अगम्य होने से, वह वस्तु प्रभु त्रिकाल एकरूप द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित... यह द्रव्यकर्म अर्थात् मिट्टी आठ जड़, भावकर्म अर्थात् पुण्य-पाप का विकल्प और नोकर्म अर्थात् शरीर और वाणी की उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों... विकारी—विशेषगुणदशा रहित आत्मा है। ऐसे विकारी और विशेषभाव रहित त्रिकाल आत्मा है। समझ में आया? गजब बात! यह वार्ता भगवान की है। यह भगवान के घर में भगवान की बात है। लोग ऐसा कि भाई! यहाँ कहाँ कमी है? भगवान की

मुमुक्षु : भागवत शास्त्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भागवत शास्त्र कहा है न इसे पीछे। भागवत शास्त्र। भगवान चिदानन्द की महिमा बतानेवाला। उसका मोक्षमार्ग है, उसका अधिकार है; इसलिए मोक्षमार्ग किसके आश्रय से प्रगट हो? टिके किसके आश्रय से? बड़े किसके आश्रय से? इसलिए एक ही बात परमस्वभाव के आश्रय से प्रगट हो, इसलिए एक ही बात ली है। समझ में आया?

आत्मा का निश्चय सम्यक् हुआ, निर्विकल्प दृष्टि हुई। 'शुद्ध आत्मा हूँ, पवित्र हूँ, ध्रुव हूँ, ज्ञाता-दृष्टा (हूँ)'—ऐसी पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय को गम्य है, परन्तु पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं। समझ में आया? कभी सुना न हो। रतिभाई! यह किसी-किसी समय आवे, यह कहीं हर समय चलता हो? आहाहा! यह अमृत का कुण्ड प्रभु, ऐसा अतीन्द्रिय अमृत, हों! यह धूल अमृत नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, वह तो उसका आश्रय करे तो ही समझ में आये, ऐसा है। प्रगट हुई पर्याय के आश्रय से वह समझ में आये, ऐसा नहीं। इसलिए भावान्तरों को अगम्य होने से जो कारणप्रभु। कारण क्यों डाला? कि नयी कार्य दशा, वह कारण द्रव्य त्रिकाल है, उसके आश्रय से प्रगट होती है। वह प्रगट हुई निर्मलदशा के आश्रये से भी मोक्षदशा होती नहीं। इसलिए पर्याय

को कारण (पना) न देते हुए त्रिकाली द्रव्य को कारणपरमात्मा कहा जाता है। समझ में आया? अरे! यह तो हीरा कसौटी पर चढ़ाया जाता है। नारणभाई एक बार कहते थे, हीरा ले जाये, उसकी तो बात क्या करना? परन्तु कसौटी पर चढ़ने से उसका चूरा गिरे, उसके सैकड़ों रुपये उपजते हैं। उसकी कसौटी अलग प्रकार की होती है। वह कहीं यह कसौटी काम नहीं आती तुम्हारे लोहा घिसे ऐसी। वह हीरा बेल्लिजयम। क्या कहा जाता है वह बेल्लिजयम न? वहाँ हीरा की खान है न वहाँ। हाँ, रिपेयर करते हैं साफ करते हैं। पासा चढ़ावे पासा। परन्तु उसका बारीक चूरा गिरे, उसकी तो सैकड़ों रुपये की कीमत है। हीरा की तो क्या बात करना! उसी प्रकार यह चैतन्य की वार्ता सुने, उसका अलौकिक दूसरी जाति का पुण्य बँधता है, ऐसी यह बात है। समझ में आया? हाँ पाड़कर, हों! वरना तो अनन्त बार सुनी है। यह पुण्य उसका ऐसा बँधता है कि जिसे भविष्य में वापस ऐसा का ऐसा सुनने का योग बने, ऐसी स्थिति खड़ी होती है। और अन्दर हाँ पाड़कर रुचि में जाये तो भगवान हो जाये, बन्ध से रहित हो जाये। समझ में आया?

कहते हैं, वह **विभावगुणपर्यायों रहित है...** है कैसा प्रभु त्रिकाल? अनादि-अनन्त। आदि-अन्तरहित चीज़। वह मोक्ष और धर्मदशा तो शुरुआत हुई। यह वस्तु जो त्रिकाल है, उसकी शुरुआत भी नहीं और उसका अन्त भी नहीं। है... है... है... है... ज्ञायकमूर्ति प्रभु अनादि-अनन्त। अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। वह तो इन्द्रियरहित स्वभाव है। इन्द्रिय का अवलम्बन नहीं, ऐसा अतीन्द्रिय प्रभु यह भगवान है। **शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—शुद्ध, पवित्र और स्वाभाविक परमस्वभावभाव पारिणामिकस्वभावभाव।** पारिणामिक अर्थात्? कोई नया हुआ नहीं, किसी से हुआ नहीं, अपूर्ण नहीं, एकरूप त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव वह जिसका स्वभाव, ऐसा कारणपरमात्मा, ऐसा स्वयं आत्मा। स्वभाव और यह कारण अर्थात् स्वभाववान। ऐसा जो शुद्ध सहज परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव, ऐसा कारणप्रभु। आहाहा! वह वास्तव में 'आत्मा' है। उसे वास्तव में आत्मा कहा जाता है। आहाहा!

अति-आसन्न भव्यजीवों को... क्या कहते हैं? **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** अल्प काल में जिसे मुक्ति और शान्ति चाहिए है। आसन्न अर्थात् निकट। अल्प काल में

जिसे पूर्णानन्द की प्राप्ति और संसार का अन्त जिसे होना है, ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त... ऐसे जीवों को वह निज परमात्मा अपना परमस्वरूप भगवान, इसके अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है। समझ में आया इसमें ? पहले आया था न ? प्रवचनसार में नहीं आया था ? कि कोई आसन्न भव्य। कुन्दकुन्दाचार्य जिनकी मुक्ति अल्प काल में है। उन्होंने यह प्रवचनसार कहा है। ऐसा यह आत्मा, जिसे अल्प काल में मुक्तदशा, परमानन्ददशा और संसार, वहाँ आया न संसार का किनारा जिनके निकट है। यह परिभ्रमण के राग का जहाँ अल्प काल में अन्त आनेवाला है और पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्तदशा जहाँ प्रगट होनेवाली है, ऐसे अति आसन्नभव्य वापस। आसन्न परन्तु अति आसन्नभव्य। भव्य, उसमें नजदीकवाले और उसमें अति। ऐसे भव्य जीवों को, ऐसे योग्य आत्माओं को, ऐसे निजपरमात्मा... एक शुद्ध पूर्णानन्द प्रभु, उस आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ आदरणीय नहीं। आहाहा! ऐसा इसे अन्तर में निर्णय करके, अन्तर के स्वभाव सन्मुख में ढलना, तो वह स्वभाव पूर्ण है, उसे उपादेय माना और दूसरे को हेय जाना, ऐसा उसे कहा जाता है। समझ में आया इसमें ?

तब कहे, दूसरे जीव को ? और यह अति-आसन्नभव्य को। दूसरा जीव चाहे जो माने। वह तो भटकने का है, कहते हैं। तुझे परिभ्रमण से रुकना हो और भटकना न हो... अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निज... ऐसा कौन कहा ? यह ऊपर वर्णन किया ऐसा। अतीन्द्रिय निज स्वभाव त्रिकाल शुद्ध खान पड़ी है, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपादेय है नहीं। आदर करनेयोग्य हो अर्थात् ? कि अन्दर में दृष्टि करके स्थिर होनेयोग्य तो यह कारणपरमात्मा भगवान अपना, वही करनेयोग्य है। उसमें चिल्लाहट मचाये। परन्तु दूसरे परमात्मा इसमें नहीं आये। दूसरे परमात्मा की भक्ति आदि होती है, वह शुभराग है। दया, व्रत का भाव, वह शुभराग है तो परमात्मा की भक्ति भी वह शुभराग है। हो उसके काल में। अन्तर में शान्ति की प्रगट दशा में वह आदरणीय और उपादेय नहीं है। वह तो बाह्यतत्त्व है। अरे! संवर-निर्जरा को जहाँ अन्तर के त्रिकाल तत्त्व की अपेक्षा से मोक्षतत्त्व को बाह्यतत्त्व कहा, मोक्ष को बाह्यद्रव्य कहा। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं कि भव्य प्राणी जो योग्य है, उसे तो इस परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय नहीं। उसका अब कलश कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



दिनांक - ०३-०३-१९६३

गाथा-३९, कलश - ५४, प्रवचन नं. ३८३

यह नियमसार शास्त्र है। नियमसार अर्थात्? मोक्ष—आत्मा की शुद्धदशा, उसे प्रगट करने का उपाय। यह आत्मा है न आत्मा, वह आदि-अन्त रहित शुद्ध सच्चिदानन्द ज्ञान और आनन्द का पूर आत्मा है। उसका स्वभाव। आत्मा जैसे आदि-अन्तरहित अनादि-अनन्त तत्त्व है, उसी प्रकार उसके साथ अनादि-अनन्त यह जानना और आनन्द आदि अनन्त गुण उसके आत्मा में तन्मय अनादि है। ऐसा आत्मा शक्ति के स्वभाव में परम शुद्ध और आनन्द है, वह उसकी वर्तमान दशा में नहीं। यदि वर्तमान दशा में आनन्द और शान्ति हो तो उसे दुःख और यह आकुलता होनी नहीं चाहिए। वर्तमान दशा संसार में यह आकुलता और पुण्य-पाप के विकल्पों की वृत्ति, वह संसार है। सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु वस्तुस्वभाव की वर्तमान दशा में, हालत में, पर्याय में, यह वर्तमान चलते चालू काल की अवस्था में पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और काम, क्रोध, शुभाशुभ वृत्ति, वह भाव, वह विकार, वह संसार, वह दुःख है। शरीर, वाणी की बात नहीं। यह शरीर, वाणी जड़ परपदार्थ है। उसकी वर्तमान हालत में दुःख है। दुःख न हो तो 'आनन्द को प्राप्त करूँ'—ऐसी जिज्ञासा जो ज्ञात होती है, वह जिज्ञासा ऐसा कहती है कि उसकी वर्तमान दशा में शान्ति नहीं और दुःख तथा आकुलता है। वह दुःख और आकुलता उसकी क्षणिक वर्तमान दशा में है। उसके त्रिकाल स्वरूप में आनन्द अतीन्द्रिय शान्त, रस और ज्ञान से भरपूर आत्मस्वभाव त्रिकाल भरा हुआ है। ऐसे आनन्द को प्रगट करने के लिये 'यह पुण्य-पाप की वृत्ति—वृत्तियाँ, उनसे रहित मेरी चीज पूर्ण है'—ऐसे अन्तर्मुख की दृष्टि करके स्वरूप की रमणता की दशा प्रगट करना और पूर्ण परमात्म अर्थात् पूर्णानन्द की दशा के कारणरूप होना, उसे यहाँ मोक्षमार्ग और धर्मदशा कहते हैं। भारी सूक्ष्म। समझ में आया? उसका नाम नियमसार।

कैसा है आत्मा? कि जिसकी दशाओं में संसार आदि वर्तता है। संसार, वह आत्मा की विकृत एक अवस्था है। संसार, वह कहीं शरीर, कर्म, स्त्री, पुत्र, परिवार में संसार नहीं रहता। संसार एक दोषदशा है। तो दोषदशा, वह आत्मा की अवस्था, हालत

छोड़कर दूर दूसरे पदार्थ में दोषदशा नहीं रहती। वह दोषदशा उसकी अवस्था अर्थात् हालत में है। उस हालत का संसार दोषदशा का नाश और निर्दोष पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का अन्तर में दोष की रुचि छोड़कर त्रिकाल आनन्दस्वरूप की अनुभव दृष्टि करके, उसमें लीनता करने का प्रयास, वह पूर्ण निर्दोषता प्राप्तिरूपी मुक्ति का वह उपाय है। गजब व्याख्या, भाई! देबरभाई! बहुत सूक्ष्म, भाई! दुनिया ने मान रखा है, उससे पूरा प्रकार अलग है।

पीपर का दृष्टान्त दिया था न, नहीं कल? उस पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट और हरा रंग अन्दर पड़ा है, पूरा। तो प्रगट होता है। पूरा है तो प्रगट पर्याय में, हालत में चौंसठ पहरी दशा प्रगट (होती है)। वह चौंसठ पहरी पूर्ण जो चरपराहट और चरपराई और हरा (रंग), चरपरा अर्थात् हिन्दी की भाषा है, तीखाश की दशा उसकी हालत में, अवस्था में प्रगट होना, उसका नाम उसकी पूर्ण अवस्था की प्राप्ति और उस प्राप्ति का कारण अन्दर में चौंसठ पहरी चरपराई पड़ी है, उसमें से आता है। और उस चरपराई की प्रगटता प्रथम श्रेणी में दो, चार, पाँच, पच्चीस, पचास पहर प्रगट हो और पूर्ण प्रगट होने का बीच का काल हो, उसे यहाँ उसकी साधकदशा अर्थात् पूर्ण को साधने का कारण कहा जाता है और काली आदि का नाश करना, वह संसार के अभावरूप उपमा दी जाती है।

उसी प्रकार भगवान आत्मा के अन्तर सत्त्व में, शक्ति में पूर्ण आनन्द और शान्तरस वीतरागी विज्ञान अकषायी, अविकारी आनन्द और ज्ञान, उसके मूल सत्त्व में चौंसठ पहरी अर्थात् पूरा-पूर्ण भरा है। जैसे पीपर में चौंसठ पहरी (चरपराई) भरी है, उसी प्रकार भरा है। परन्तु उसकी वर्तमान दशा में जैसे पीपर की कालिमा और अल्प चरपराई दिखती है, उसका अभाव करके विशेष चरपराई उसे प्रगटता दशा में होना, उसे यहाँ आत्मा में पूर्ण आनन्द की ओर ढलकर किञ्चित् शान्ति और आनन्द के अंश पूर्ण आनन्द और पूर्ण शान्ति की प्राप्ति के कारणरूप प्रगट करना, उसे मोक्ष का मार्ग और धर्मदशा कहते हैं। गजब व्याख्या भाई, धर्मदशा की! समझ में आया? यह बात कल आ गयी है, वह जरा कलश में डालते हैं आचार्य। देखो, इसका कलश मालिनी। ५४ कलश है ऊपर। उसका नीचे अर्थ आयेगा।

(मालिनी)

जयति समयसारः सर्वतत्त्वैकसारः,
 सकलविलयदूरः प्रास्तदुर्वारमारः ।
 दुरिततरुकुठारः शुद्धबोधावतारः,
 सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः ॥५४ ॥

जंगल में सन्तों को, यह विकल्प जरा आया और जगत के प्राणी को सुख की राह और पंथ क्या है, यह जरा बताने के लिये इसमें यह कलश कहे हैं। उसका सार नीचे अर्थ है।

श्लोकार्थः—सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,... जरा व्याख्या लम्बी है, ध्यान रखना। क्या कहते हैं? कि यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में; जैसे पीपर चौंसठ पहरी पूर्ण अन्दर है, वह पीपर का पूर्ण तत्त्व, वह सर्वस्व सारतत्त्व कहलाता है और काली और फिर काली का अभाव होकर और कुछ हरी और थोड़ी चरपराई और फिर पूरी चरपराई और पूरी हरी, ऐसी तीन दशायें उसमें होती हैं; उसी प्रकार आत्मा में वर्तमान विकार पुण्य-पाप, देह, वाणी, मन—यह मिट्टी है, उसका कार्य और उसका सम्बन्ध आत्मा को कुछ है ही नहीं। समझ में आया? देह द्वारा और वाणी द्वारा कहीं आत्मा काम कर सके, यह तीन काल—तीन लोक के अन्दर नहीं। क्योंकि वे तत्त्व ही भिन्न हैं। ऐसे भिन्न तत्त्व की अस्तित्वाले भाव, उसकी वर्तमान दशारूप उनका होना, वह परतत्त्व का कार्य है। यह आत्मा उसके कोई कार्य देहादि के कर सके, यह तीन काल—तीन लोक में आत्मा की अस्ति में नहीं। अब यह कर सकता है, वह अज्ञान और राग और द्वेष। चिदानन्द प्रभु आत्मस्वभाव भूलकर उसका अज्ञान और राग और द्वेष, पुण्य और पाप—ऐसा एक तत्त्व दशा का, अवस्था का तत्त्व। अज्ञान और राग-द्वेषरूप एक अवस्था का तत्त्व। और उस तत्त्व का आश्रय छोड़कर पूर्ण चिदानन्द ध्रुव ज्ञायकभाव जो चौंसठ पहरी जैसी पीपर है, उसी प्रकार चौंसठ अर्थात् रुपया-रुपया (पूर्ण) आनन्द और ज्ञान का भरपूर आत्मद्रव्य स्वभाव है, उसका आश्रय करके, उसमें डुबकी लगाकर कुछ शुद्धि और शान्ति और धर्म की दशा प्रगट हो, उसे शास्त्रभाषा में संवर और निर्जरातत्त्व कहते हैं। शुद्धता का प्रगट होना, अशुद्धता का रुकना, शुद्धता का

बढ़ना, शान्ति का प्रगट होना, अशान्ति का टलना और शान्ति की शुद्धि की वृद्धि होना, उस तत्त्व को संवर और निर्जरातत्त्व दशा के, पर्याय के, हालत के कहे जाते हैं। आहाहा! और जब आत्मा पूर्ण शुद्धता की दशा में प्राप्त हो, पूर्णानन्द की पर्याय दशा प्राप्त हो, उसे मोक्षतत्त्व कहते हैं। वह मोक्षतत्त्व एक समय की दशा है। संसार विकृतदशा, परन्तु एक समय की दशा है। वह साधक स्वभाव का अन्तर साधन करके शुद्धता आनन्द की शान्ति और अतीन्द्रिय आनन्द का कण अन्दर में जगाना, अन्तर में से प्रगट करके, ऐसी आनन्द की दशा को साधक, मोक्ष का मार्ग, निर्मलपर्याय दशा को कहा जाता है। उस तत्त्व को संवर, निर्जरातत्त्व कहते हैं। पूर्ण दशा को मोक्षतत्त्व कहते हैं। वह मोक्षदशा एक समय की दशा, संवर, निर्जरा की साधक की दशा और संसारदशा तीनों तत्त्वों से पार अकेला ज्ञायकतत्त्व है, वह सर्व तत्त्व में सार है, ऐसा यहाँ कहा जाता है। गजब बात, भाई! क्या कहा, समझ में आया इसमें ?

यह चौंसठ पहरी छोटी पीपर सार है। किस प्रकार ? कि काली का तत्त्व है, वह है न, है न अस्तिरूप से अस्ति ? फिर कहीं चरपराई की दशा थोड़ी प्रगट हुई, वह भी है न ? और फिर पूर्ण प्रगट हुई, परन्तु वह तो प्रगट हुई, नहीं थी, प्रगट हुई, रही, वह तो उसकी समय-समय की दशा का स्वरूप है। उन सब तत्त्वों से पार अकेला ज्ञायक चैतन्य ध्रुव आनन्दकन्द जो है, जिसमें से शान्ति और आनन्द का प्रवाह आवे—ऐसा जो तत्त्व है, वह सब दशाओं के तत्त्व से पार तत्त्व है। समझ में आया ? वह **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** यह उसकी व्याख्या है। यह वाचक शब्द है, उसका वाच्य यह है। क्या यह वह धर्म भी किस जाति की बात ?

देखो, यह अजीव आदि, शरीर आदि तत्त्व है, या नहीं ? है न यह मिट्टी आदि ? है, वह दृश्य होता है या खरगोश के सींग दृश्य होते हैं ? गधे के सींग दृश्य होते हैं ? है नहीं और दृश्य क्या हो ? तो है वह दृश्य होता है। यह जड़ आदि तत्त्व हैं। अन्दर प्रारब्ध के तत्त्व जड़ रजकण हैं, अब वह एक ओर रखो। वह तत्त्व आत्मा में नहीं। अब आत्मा की दशा का तत्त्व जो है, उसमें पुण्य और पाप की वृत्ति प्रगट होना, दया, दान, व्रत, तप, करुणा, कोमलता, सेवा की वासना, वह वासना विकारीतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग की वासना उत्पन्न होना, वह पापरूपी विकारीतत्त्व है और वह विकारीतत्त्व

दशा हालत में—हालत में है, त्रिकाल चैतन्य में नहीं; उसकी मूल चीज़ में नहीं। जैसे कालीदशा पीपर की मूल चीज़ में नहीं, वर्तमान दशा में है। इसी प्रकार एक राग और द्वेष और अज्ञान, उसकी दशा टलकर त्रिकाली ध्रुव चैतन्यमूर्ति प्रभु के अवलम्बन से किञ्चित् निर्मलता प्रगट हुई और फिर पूर्ण निर्मलता (हुई), वह सब समय-समय के अंशरूप तत्त्व है, ऐसे सर्व तत्त्वों में एक साररूप जो है, वह त्रिकाली सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुवतत्त्व है। उस ध्रुवतत्त्व का आश्रय ले, तब उसे शान्ति मिले ऐसी है। समझ में आया? मोहनलालभाई! समझ में आया इसमें कुछ? यह वकील है न या नहीं परन्तु यह क्या है? वकालत करके उसमें क्या किया? यह नहीं किया कभी, कहते हैं।

भगवान! तू कहाँ और कितना, तूने जाना नहीं। तुझे कोई जगत के दूसरे तत्त्वों की अस्ति मेरे कारण से और उनकी अस्ति के कारण मैं, ऐसा तूने मान्यता में भ्रम उत्पन्न किया है। इतना तो नहीं, परन्तु तेरी दशा के अंशों के तत्त्व मलिन दशा और निर्मल अपूर्ण दशा और पूर्ण निर्मल दशा, वह सब एक-एक समय जितनी दशा है। उस दशा के पार अन्दर में रहा हुआ सर्व तत्त्व का एक सार ज्ञायक चैतन्य ध्रुव आनन्द, उसे सर्व तत्त्वों में सार कहा जाता है। ऐसे तत्त्व के अन्दर में दृष्टि करना और उसमें एकाकार होना, तब उसे धर्म और शान्ति की प्राप्ति हो, ऐसा है। तब स्वतन्त्र होकर सुख होने की राह उसके हाथ में आवे। बाकी सब परतन्त्र और दुःखी होने के रास्ते हैं।

सर्व तत्त्वों में जो... जो। मूल श्लोक है न। सर्व तत्त्व एक सार, भाई! अन्तिम शब्द। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** ऐसा चैतन्य प्रभु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ध्रुव सच्चिदानन्द निर्मल ज्ञायक एकरूप तत्त्व, वह सभी दशाओं के—हालतों के तत्त्व से एकरूप भिन्न ध्रुवतत्त्व है, उसे आत्मतत्त्व कहा जाता है। ऐसे तत्त्व का अन्दर में ज्ञान करना, ऐसे तत्त्व की प्रतीति करना और उस तत्त्व में प्रतीति करके रमना, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का मोक्षमार्ग कहा जाता है। गजब व्याख्या, भाई! समझ में आया? पूरे जगत के दृश्य और तत्त्वों से हाँ, हो और हरिफाई से यह दूसरी बात है। क्या कहा यह? भाई! तू कौन है? कितना है? कहाँ है, खबर नहीं।

एक सिद्धान्त—न्याय लें। एक मनुष्य निर्दोषता प्रगट करना चाहता है। निर्दोषता प्रगट करना चाहता है। जो प्रगट करना चाहता है तो उसमें ऐसा एक सिद्धान्त हुआ कि

उसकी वर्तमान हालत में निर्दोषता नहीं। यदि वर्तमान दशा में निर्दोषता हो; निर्दोषता कहो, विकाररहित कहो, पवित्रता कहो, धर्मदशा कहो, वह सब एक अर्थ में है। तो निर्दोषता प्रगट करना चाहे, ऐसा ध्वनि में उठने पर इतने तत्त्व तो सिद्ध होते हैं कि उसकी वर्तमान दशा में सदोषपना है। यदि सदोषपना न हो तो 'मुझे निर्दोषपने प्रगट होना है, निर्दोषता की प्राप्ति करनी है' यह बात रहती नहीं।

अब सदोष तत्त्व अर्थात् कि उसकी दशा में शुभ और अशुभराग, पुण्य और पाप के भाव, शुभ और अशुभ की वृत्तियाँ, वे सब सदोषतत्त्व हैं। उस सदोषतत्त्व का अभाव करके निर्दोषपने की प्राप्ति करनी है तो वह निर्दोष उसकी दशा में नहीं है, वर्तमान सदोष है और वह निर्दोष की दशा सदोषतत्त्व में से नहीं आती। जो चलता तत्त्व जो राग और पुण्य और शुभाशुभभाव का है, उसमें से निर्दोषता नहीं आती। उसका व्यय होकर, अभाव होकर, निर्दोषता अन्तर स्वभाव में पड़ी है, वहाँ से प्रगट होगी। प्राप्त की प्राप्ति होती है। जिसके स्वभाव में निर्दोषता कहो, विज्ञान आनन्दकन्द कहो, ऐसा तत्त्व, उसे यहाँ निर्दोष आत्मतत्त्व कहा जाता है। वह निर्दोष होने का कामी, ऐसी ध्वनि करता है कि सदोष को टालना है।

दूसरी भाषा। निर्दोष होना है, इसका अर्थ कि उसे सदोषतत्त्व नाश कर सके, ऐसी उसे प्रतीति होती है। तब सदोषता उसमें शाश्वत् नहीं, सदोषता शाश्वत् नहीं, क्षणिक है। क्षणिक है, इसलिए नाश करने की भावना होती है और क्षणिक के सदोषतत्त्व के स्थान में एक निर्दोषता लाना चाहता है। वह निर्दोषता कहीं क्षणिकतत्त्व के राग में से नहीं आती, बाहर से नहीं आती। वह निर्दोषतत्त्व की पवित्रता उसके अन्तरतत्त्व में पवित्रता न भरी हो तो बाहर से प्राप्त की प्राप्ति बाहर से नहीं होती, अन्दर में है, उसमें से आ सकती है। ऐसा जो एक समय का निर्दोष तत्त्व भगवान आत्मा कि जो यह सदोष तत्त्व और निर्दोषदशा की तत्त्व दशा से पार एकरूप तत्त्व है। समझ में आया इसमें? यह वह तो अलकमलक की बातें आत्मा की हैं, भाई! दुनिया ने अनादि काल से खिचड़ा करके चौरासी के अवतार में हैरान होकर मर गया है। इसने वास्तविक आनन्द की खान और वास्तविक स्वतन्त्रता की शान्ति का कारण कौन है, उसे इसकी दृष्टि में, शोध में कभी लिया नहीं।

तो कहते हैं, भगवान् आचार्य जंगल में बसते, आनन्दकन्द में झूलते थे। उसमें जरा विकल्प उठा, अरे जीवों! तू कौन है? कैसा है? कि सर्व तत्त्व में जो एक सार है। आहाहा! अजीवतत्त्व में तो तू नहीं। पुण्य-पाप की पर्याय जितनी दशा हो, जाये, दशा हो, उतना भी तू नहीं, परन्तु पवित्रता प्रगटे क्षणिक, उतना भी नहीं। क्योंकि क्षणिक पवित्रता वापस पलट जाती है। जाये—आये... जाये—आये... नयी-नयी होवे—जाये। पुरानी जाये नयी हो, पुरानी जाये नयी हो। ऐसी दशा का तत्त्व, उसे एक समय जितना तत्त्व, पवित्रता का तत्त्व और पूर्ण पवित्रता की दशा भी मोक्षदशा, परन्तु एक समय पूर्ण है। वह दशा भले ऐसी की ऐसी नयी-नयी हुआ करे और रहे परन्तु वह एक समय अर्थात् सेकेण्ड के असंख्य भाग जितनी दशा है। इसलिए सब तत्त्वों से पार एक भगवान् ज्ञानानन्दमूर्ति ध्रुव, वह सब तत्त्वों में एक सार है। ऐसे तत्त्व की अन्दर दृष्टि करना, उसे ध्येय बनाना, उसे ज्ञान का ज्ञेय बनाना, इसका नाम धर्म कहा जाता है। गजब धर्म की व्याख्या, भाई! जगत से यह अलग। परन्तु अलग ही हो न अनन्त काल से भटकनेवाले की अपेक्षा। अनन्त काल से चौरासी के अवतार में भटका, उसके वे कारण यदि मुक्ति का मार्ग हो तो भटकना टलकर मुक्ति होना चाहिए अनन्त काल में। एक कारण की छेद दशा, वह कुछ दूसरी दशा है।

जो यहाँ कहते हैं कि भाई! प्रभु! तू कितना? कि तेरे धर्म की दशा प्रगट हो, इतना भी वह तत्त्व नहीं, क्योंकि वह तो उसमें से आती है। वह तो बड़ी खान-निधि पड़ी है चैतन्यद्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव कि जो सब तत्त्व में एक सार है। वह **समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** पलटती पर्यायें, दशाओं से वह दूर है। जरा सूक्ष्म तत्त्व है, भाई! यह तो मोक्षमार्ग नियम। नियम अर्थात् मोक्ष का उपाय। उसने कभी सुना नहीं, समझा नहीं। एक क्षण भी लक्ष्य किया नहीं। बाहर की सिरपच्ची में पूरी जिन्दगी अनन्त, एक नहीं, ऐसी अनन्त व्यतीत की है। त्यागी हुआ, बाबा हुआ, साधु हुआ, 'बुद्धि बिना के बाबा हुए, भवसागर में डूब मरे।' समझ में आया? जो तत्त्व जो है एक समय का पूरा पूर्ण शुद्ध, जिसमें शुद्ध का अकेला सरोवर समुद्र भरा है, उसे अन्तर में दृष्टि देकर अन्तर में कि जो वस्तु सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान का जो पूरा ध्येय तत्त्व है, वह तत्त्व कैसा है? कि वर्तमान दशायें विकार या अविकार, वह सब पलटती-पलटती-

पलटती दशाएँ हैं। उन पलटती दशा के भाव से वह एकरूप तत्त्व है, वह दूर है। गजब भाषा, भाई यह! ऐसा धर्म का भाव। वह तो सीधा सट्ट कि दया पालना, सेवा करना, करुणा करना, करते-करते धर्म (अर्थात्) आत्मा का कल्याण हो जायेगा, लो! वजुभाई! किसका कर सकता है? कौन है तू कहाँ? कौन है तू कहाँ? पर में तू प्रविष्ट हो जाता है कि पर के कार्य तू कर सकता है? तीन काल-तीन लोक में नहीं। जगत के अस्तिवाले तत्त्व अस्ति रखकर पलटे, उसमें तेरा अधिकार है नहीं। तेरे तत्त्व की दशा के तत्त्व जो पलटती पर्याय दशारूप है, उतना भी तेरा पूर्ण तत्त्व नहीं। ऐसे पूर्ण तत्त्व की अन्दर में दृष्टि देकर ध्येय करना, तब अन्तर में से सम्यक् शान्ति का अंश प्रगट हो, उसे धर्म कहा जाता है। बराबर होगी यह बात? ऐई, मोहनलालभाई!

समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से... भाई! पर्यायें। बहुत संक्षिप्त परन्तु वाच्य को... प्रभु! तू एक बार सुन तो सही! पूरा चैतन्य ध्रुव परमात्मस्वरूप स्वयं है। जैसे एक पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट ऐसी की ऐसी पड़ी है। चौंसठ प्रगट हुई और प्रगट हुई तो भी ऐसी की ऐसी अन्दर है। वह नयी... नयी... नयी... नयी... नयी... हुआ करती है। तुझे लगे सदृश्य ऐसी की ऐसी है। परन्तु नयी... नयी... नयी... होती है। जो अवस्था हुई, वह जाये, नयी हो, जाये और हो। वह सब शक्ति का तत्त्व वह चौंसठ पहरा है। ऐसे एक समय का भगवान अन्दर शुद्ध चिदानन्द मूर्ति पलटने पर, शुद्ध और अशुद्धदशा, वह पलटती है, उस पलटती से पार जो चैतन्यप्रभु ध्रुव है, उसे यहाँ सारतत्त्व, मुख्य तत्त्व, परमात्मतत्त्व कहो या आत्मतत्त्व कहने में आता है। ऐसे आत्मा का ज्ञान और श्रद्धा न करे, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्हियों नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी। शुं कर्यु तीर्थ ने तप करवा थकी, शुं कर्यु जाप ने सेवा करवाथी' रण में शोर मचाने जैसा है तेरा सब ही। भारी कठिन इसमें, हों! सेवाभावी मनुष्य को भारी कठिन पड़े ऐसा अन्दर से। किसी की सेवा कर सकते हैं। अरे, भगवान! कौन करे, भाई! यह तो सब बालू-रेत की बड़ी दीवार चिनी है। बालू-रेत की बिना चिकनाईवाली। किसी के ऐसे किये। अरे, प्रभु! परन्तु तू तेरी दशा को कर, इसके अतिरिक्त पर का करे कौन? क्योंकि पर की अस्ति में तेरी अस्ति नहीं, तेरी अस्ति में पर की अस्ति नहीं। यहाँ तो तेरी अस्ति में जो दशाएँ विकार और अविकार हो, उतनी अस्ति भी तेरे पूर्ण में नहीं। आहाहा! भारी बात, भाई!

अनन्त-अनन्त काल गया चौरासी के अवतार। यह कहीं पहला मनुष्यभव नहीं है। आदि-अन्त रहित तत्त्व, वह कहाँ रहा? कहीं नाश हुआ है? शुरुआत हुई है कि यह आत्मा नहीं था और हुआ? और हुआ, फिर इस काल में नाश होगा? है, उसकी उत्पत्ति होती नहीं और है, उसका कभी नाश होता नहीं। ऐसा जो चैतन्य ध्रुव ज्ञायकमूर्ति तत्त्व, उसकी दशायें जब बाह्य तत्त्व से तो भिन्न हैं.... आहाहा! कर्म और शरीर जो यह मिट्टी, उससे तो भिन्न वह तत्त्व है, परन्तु उसकी हालतों में होती दशा, उतना भी वह तत्त्व नहीं, इसलिए पलटनेयोग्य तत्त्व से दूर वह तत्त्व है। एकरूप चैतन्य ध्रुव ज्ञायकमूर्ति प्रभु है, यह उसे दृष्टि का विषय बनाना, यह उसे ज्ञान का विषय बनाना, उसमें लक्ष्य करके उसमें स्थिर होना, इसका नाम धर्म और इसका नाम मोक्ष का मार्ग तीन काल-तीन लोक में सर्वज्ञों से सिद्ध हुआ, यह मार्ग है।

जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,... तीसरा बोल। नष्ट किया है अर्थात् जिसमें काम है ही नहीं। क्या कहा? जिसमें काम की वासना त्रिकाल तत्त्व में है ही नहीं, उसे नष्ट किया है, ऐसी शैली से बात की है। प्रभु ध्रुव आत्मा सत्... सत्... सत्... सत् ज्ञान और आनन्द ऐसा शाश्वत् तत्त्व, ऐसे तत्त्व से काम अर्थात् वासना का नाश किया। अर्थात् कि जिसमें वासना स्वरूप में है ही नहीं। स्वरूप के अन्दर वासना त्रिकाल चैतन्य ध्रुव में है नहीं, उसका आश्रय करने से वासना टले और निर्वासना ऐसी आत्मशान्ति की मुक्तदशा और उसके कारणरूप मार्ग की दशा प्रगट हो। शब्द-शब्द में ध्यान रखे तो पकड़ में आये, हों! वरना एक शब्द आड़ा-टेढ़ा हो जाये तो विवाद उठे, ऐसा है। जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,... दुर्वार अर्थात्? राग और द्वेष, इच्छा, भोग की वासना महामुश्किल से टाली जा सकती है। अनन्त काल की वासना उसमें है दशा में... दशा में। कहते हैं कि उसके मूल स्वरूप में वह है नहीं। उसके मूल स्वरूप में वह है नहीं। दुर्वार काम को नष्ट किया है,...

जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,... क्या कहते हैं? बड़ा कुल्हाड़ा होता है न अच्छी तीक्ष्ण धार का, वह मूल में डाले तो एकदम मूल छिद जाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ध्रुव चैतन्य है, वह पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। यह शुभ और अशुभ दोनों पाप हैं, आत्मा के अमृत से

आत्मा का अमृत अतीन्द्रिय स्वरूप, उससे उल्टी दशा, विपरीत दशा हो, उसे शुभ और अशुभभाव कहा जाता है। इसलिए शुभ और अशुभभाव परमार्थ दृष्टि की अपेक्षा से दोनों को पाप कहा जाता है। समझ में आया ? जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,... अर्थात् ? उसमें—स्वभाव में पाप है ही नहीं। भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, आनन्दकन्द, जिसके लक्ष्य से संसार टलकर मुक्ति हो, ऐसा भगवान चिदानन्द प्रभु आत्मा में, कहते हैं, पाप वृक्ष को छेदनेवाला कुल्हाड़ा है अर्थात् कि पुण्य और पाप उसकी मूल चीज़ में नहीं है, इसलिए उत्पन्न होना या नाश होना, वह आत्मा के मूल स्वभाव में नहीं है।

जो शुद्धज्ञान का अवतार है,... यह नास्ति से बात की इतनी तो। अब अस्ति से करते हैं। इतनी तो नास्ति से की। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण तत्त्व प्रभु, जो शुद्धज्ञान का अवतार है,... अर्थात् ? वह ज्ञानस्वरूपी ही आत्मा है। भगवान आत्मा ज्ञानसूर्य। आत्मा अर्थात् क्या ? ज्ञानसूर्य, प्रकाशसूर्य। किसका प्रकाश ? जड़ का नहीं। ज्ञानसूर्य। ज्ञान चेतनसूर्य... चेतनसूर्य। चेतन आत्मा का चैतन्य सूर्य। जानना-देखना, ऐसा सूर्य ऐसा चैतन्यप्रकाश, उसका अवतार है। अवतार अर्थात् उसरूप है। कठिन भाषा, भाई! जो शुद्धज्ञान का अवतार है,... यह लोग नहीं कहते ? यह अवतरित हुआ। अर्थात् कि हुआ। उसी प्रकार यह आत्मा शुद्ध ज्ञान से हुआ अर्थात् शुद्ध ज्ञानरूप है। भारी व्याख्या! क्या कहते हैं, यह समझ में आता है कुछ ?

शुद्ध ज्ञान का अवतार भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानसूर्य चैतन्यसूर्य है, प्रकाश का पुंज है। पुण्य और पाप के भाव, वे अन्धकाररूप हैं। शरीर, वाणी, जड़ तो अन्धकार है, मिट्टी, धूल है यह। परन्तु उसमें शुभ और अशुभभाव होते हैं, उसमें जागृत ज्ञान के अभाव का भाव है। इसलिए शुभ-अशुभभाव को अन्धकार (कहा जाता है)। और भगवान आत्मा अकेला ज्ञानरूप स्वरूप है। चैतन्यसूर्य... चैतन्यसूर्य पर नजर पड़ने से जो न्याल की दशा वर्तमान में प्रगट होती है, यह उसे शान्ति और स्वतन्त्र और धर्म कहा जाता है। समझ में आया ?

जो सुखसागर की बाढ़ है... अरे ऐसा ? वह भगवानजीभाई वकील कहते थे न भाई! कि ऐसा आत्मा धोये हुए मूला जैसा गया कहाँ ? और ऐसा कहे। परन्तु... कभी सुना नहीं, समझा नहीं। भगवानजीभाई थे न, सुनने बहुत आते थे। अरे! भगवान! तूने

कभी निर्णय किया नहीं। वह कौन है ? पवित्रता प्रगट करना चाहता है, वह पवित्रता बाहर से तीन काल में आती नहीं। वह पवित्रता का पिण्ड प्रभु आत्मा है। तू आत्मा परिपूर्ण परमात्म अर्थात् पवित्रता का पिण्ड प्रभु जत्था है। उसे यहाँ सुखसागर का पूर कहते हैं। आनन्द का पूर-पूर।

आत्मा में आनन्द कैसा आनन्द ? अतीन्द्रिय आनन्द। इन इन्द्रियों में जड़ या बाह्य में कल्पना कि ठीक है, ऐसी कल्पना तो जहर है, वह तो दुःख है, विकृत है। उस विकृत के पीछे पड़ा हुआ सुख, वह अविकृत आनन्द है अन्दर में। अविकृत आनन्द की गुलौंट दशा, उसे विकार की अवस्था को दुःखदशा कहा जाता है। ऐसा आत्मा गया कहाँ ? कहा न, एक बार कहा था न, कल नहीं कहा था ? महासमुद्र भरा हो ऐसे छलाछल, परन्तु एक चार हाथ का कपड़ा ऐसे हो ऊँचा। मनुष्य वहाँ खड़ा हो तो सब समुद्र न दिखाई दे। समुद्र तो समुद्र पानी से छलाछल भरपूर है। चार हाथ के कपड़े की पर्यच (आड़) डाली हो, नजर पड़े उसके ऊपर तो वह दिखाई दे नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा सुखसागर और ज्ञान का पूर ध्रुव है, परन्तु यह पुण्य-पाप और शरीर की रुचि की आड़ में यह चैतन्यपूर उसकी नजर में आता नहीं। समझ में आया ?

कहा था न ? दृष्टान्त दिया नहीं था ? 'तिनके की आड़ में पर्वत रे पर्वत कोई देखे नहीं। यह तिनके की आड़ में पर्वत रे पर्वत कोई देखे नहीं।' इसी प्रकार पुण्य-पाप के राग की रुचि की आड़ में चिदानन्द प्रभु सुख का सागर जिसमें एकाग्रता की वीणा बजने से जिसमें से आनन्द के अतीन्द्रिय आनन्द के झरने झरें, ऐसे आनन्द को राग और पुण्य की रुचि की आड़ में उसे देखता और देखता नहीं। आहाहा ! 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया। अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' दूसरी बात है नहीं।

भगवान आनन्दपूर प्रभु है, परन्तु विकल्प की वृत्ति शुभाशुभ का अस्तित्व, इतने को स्वीकार करनेवाला उसके स्वीकार की आड़ में राग के पीछे, राग विकृत है उसके पीछे अविकृत त्रिकाली आनन्द का पूर है, वह राग की रुचि में आनन्द के पूर को मान्यता और विश्वास में ला नहीं सकता। समझ में आया ? गजब भाई यह अध्यात्म का धर्म, अध्यात्म की शैली का धर्म और दूसरा धर्म दो जाति के होंगे ? धर्म दो प्रकार के होंगे ? 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ, ते प्रेरे परमार्थ को वह व्यवहार समन्त।'

विकल्प आया अन्दर कि त्रिकाल आनन्द शुद्ध हूँ, पूर्णानन्द हूँ। ऐसा गुलाँट खाकर एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द के ऊपर नजर डालने से जो पूर्णानन्द सुख का पूर श्रद्धा और ज्ञान में आना, तब उसे आस्तिक और धर्म की दृष्टि हुई, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ?

यह कैसा है भगवान आत्मा ? कि यह देहदेवल में विराजे सब आत्मा की बात चलती है, हों! एक-एक छोटी पीपर में चौंसठ पहरी भरी है, लाखों थैलियाँ भरी हुई हों, एक-एक पीपर में पूरी चौंसठ पहरी है। उसी प्रकार यह थैलियाँ—बारदान यह हड्डियाँ, उसमें भगवान विराजता है अकेला चैतन्यदल का कन्द, परन्तु उसे अपना माहात्म्य नहीं आता। यह गजब चीज़। शरीर गजब, कोमल गजब, रूपवान गजब। धूल है, सुन न। पैसा अच्छा, इज्जत अच्छी, माँस उसे खाने की जो चीज़ माने वह। समझ में आया ? मावा का क्या कहलाता है वह ? जामुन। मावा के होते हैं न जामुन, क्या कहलाता है ? गुलाबजामुन। गुलाबजामुन अच्छे, जलेबी अच्छी, मिश्री अच्छी, फलाना अच्छा, धूल अच्छा, परन्तु वह तेरा जाननेवाला तू अच्छा ? कि मैं नहीं। यह सब अच्छा... परन्तु उसे अच्छा जाननेवाला तू। उसे अच्छे का भान भी नहीं होता। अच्छा जाननेवाला तू। अब जाननेवाले में अच्छापन या वहाँ अच्छापन, इसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया ?

यह भगवान आत्मा, यह शुद्ध ज्ञान का अवतार अर्थात् स्वरूप है और सुखसागर का, आनन्द के सागर का समुद्र है। आहाहा! अरे! इसमें कहाँ एक शान्ति का अंश (भी दिखता नहीं)। परन्तु तू कहाँ खोजने गया है, वह मिले तुझे ? खोजा हो, तब मिले न ? उसे अभी विश्वास में लिया नहीं कि मेरी क्रिया धार्मिक अन्तर्मुख चैतन्यदल पड़ा है और उसमें एकाग्र होना, वह मेरी धार्मिकक्रिया है। बाकी धार्मिकक्रिया यथार्थरूप से हो नहीं सकती। ऐसा उसे विश्वास में, दृष्टि में, रुचि में आया नहीं। समझ में आया ? कहते हैं कि वह सुख सागर का पूर है।

भगवान द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव और जो क्लेशोदधि का किनारा है,... लो, क्या कहते हैं ? यह पुण्य और पाप की लागणियाँ / वृत्तियाँ उठती हैं न, वह क्लेश है। क्लेश तेरी दशा में है। क्लेश पर में नहीं, क्लेश अन्तर में नहीं। खड़ी की हुई कृत्रिम

दशा शुभ और अशुभ राग की, (वह) क्लेश है। वह क्लेश—उदधि ऐसा डाला भाई सामने। वह सुखसागर, तो यह क्लेश उदधि। भगवान आत्मा आनन्द का सागर है, उसकी अन्तर दृष्टि कर, उसका आश्रय ले। इसके अतिरिक्त धर्म-बर्म तीन काल में दूसरे रास्ते से हो नहीं सकता।

कैसा है भगवान आत्मा ? कि **क्लेशोदधि...** क्लेश का जो समुद्र आकुलता-आकुलता। सिर फिर गया अन्दर फिर जाये अन्दर। विकल्प-विकल्प-विकल्प की जाल, मकड़ी उसकी जाल में फँस जाती है, उसी प्रकार शुभ और अशुभ की वृत्तियों की जाल, वह सब क्लेश है। उसका जो समुद्र अपार विकल्प की, उस पुणी में पुणी जो एक पुणी निकले वहाँ दूसरी साँधे। साँधा ही करे। इसी प्रकार राग की वृत्ति, राग और द्वेष, पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ। ऐसी वृत्तियोंरूपी क्लेश, ऐसा जो समुद्र अपार, उसका वह किनारा आत्मा है। वह उसकी हृदय लानेवाला वह आत्मद्रव्य है। अन्तर दृष्टि करने से अन्दर स्थिर होने से उसका किनारा आ जाये, बाकी दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया ?

वह समयसार.... लो, यह समयसार की व्याख्या। **वह समयसार....** समय अर्थात् आत्मा का सार प्रभु ध्रुव **जयवन्त वर्तता है**। मांगलिक किया न! जयवन्त वर्तता है अर्थात् ? ऐसा शुद्ध ध्रुव जो कहा, सर्व तत्त्व में सार, क्लेश का किनारा लानेवाला, ज्ञान का अवतार, सुख का समुद्र, पाप के वृक्ष को छेदनेवाला और दुर्वार काम को नष्ट करने की सामर्थ्य जिसके स्वभाव में पड़ी है, ऐसा भगवान आत्मा सदा ही जयवन्त वर्तता है। कभी उसमें दोष / कमी आयी नहीं। गजब ! परन्तु कहाँ करना ! समझ में आया ? बात की महिमा चैतन्य क्या, उसकी महिमा न आवे, तब तक उसकी नजर बदले नहीं। जिसमें जिसकी महिमा, उसमें उसकी नजरें। जिसमें जिसकी आवश्यकता ज्ञात हो, उसमें उसका पुरुषार्थ काम किये बिना रहता नहीं। जिसे अनादिकाल से शुभ और अशुभराग की आवश्यकता ज्ञात हुई, इसलिए उसके वीर्य की स्फुरणा विकार की वृत्तियों की रुचि में जो रुक गयी है। भले पर की आवश्यकता माने परन्तु वह कहीं पर को प्राप्त कर सकता है या टाल सकता है, उसमें ताकत नहीं। प्राप्त करना और टालना, ऐसा जो विकल्प—विकार उठा है, शुभाशुभ वृत्तियाँ, उन शुभाशुभ वृत्ति का क्लेशभाव

जो है, दुःखभाव है... समझ में आया ? उससे रहित त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति है, वह जयवन्त वर्तता है। उसकी महिमा आवे, तब तक इसकी महिमा आवे नहीं। समझ में आया ?

एक मक्खी जैसा जानवर मिश्री की डली पर बैठे और फिटकड़ी की डली पर बैठे। फिटकड़ी के ऊपर बैठने पर स्वाद न आवे, इसलिए चिपकी नहीं रहे और मिश्री की डली पर बैठे। लड़का खाने बैठे चीनी की पाँच-सात डलियाँ हों। उसका हाथ लगे वहाँ तक उखड़े नहीं। उसका वह पंख दबे चीनी के साथ, परन्तु मिठास लगती है न मिठास, उस मिठास से मक्खी जैसे प्राणी को भी उठना सुहाता नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा यह पुण्य और पाप की मिठास की रुचि में पड़ा है, उसे अन्तर में आना सुहाता नहीं और अन्तर्दृष्टि करके उसे पुण्य-पाप में आना, वह मिठास लगती नहीं। समझ में आया ? क्या है यह सब क्रीड़ा ? कहते हैं, जिसकी जिसे अन्तर में आवश्यकता ज्ञात हो, वहाँ वीर्य की गति काम किये बिना नहीं रहती।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि 'मैं एक चैतन्य जयवन्त तत्त्व हूँ', ऐसा यदि महिमा में आया तो वहाँ दृष्टि हुए बिना रहती नहीं। परन्तु अनादि से शुभ और अशुभ की महिमा, हमने पुण्य किये और हमने पाप किये, यह किया, अच्छा कर दिया, किसी का भला किया और किसी का बुरा किया, किसी का यह किया। हराम किया हो तो किसी का भला-बुरा। तेरे विकल्प के जाल में कल्पना में रुक गया है। अरे ! परन्तु यह तो सब क्या होता है यह ? साफ हो जाता होगा यह सब तब वह। तो फिर कोई किसी का करेगा नहीं। कौन करता है ? किसने तुझे कहा (कि) करता है कोई किसी का ? अँगुली हिलना तेरे अधिकार की बात नहीं। पक्षघात हो (तब).. होवे ऐं... ऐं... बड़े बेरिस्टर जैसे होशियार हों और जहाँ जीभ तुतलाती है। अधिकार है या नहीं ? ख्याल में नहीं बात ? कि ऐसा बोलना चाहिए अत्रुटक धारा से। ऐं... ऐं... टें... टें... कैसे हो जाता है ? जड़ की क्रिया जड़ के कारण से होती है, तुझसे होती नहीं। समझ में आया ? परन्तु उस अस्तित्व का तत्त्व जगत में है, ऐसा मानता नहीं। वह तो मेरे कारण से सब अस्तित्वों के काम कर रहे हैं। अब उसे अन्तर के तत्त्व में मेरी दशा में विकार और मेरी दशा में विकाररहित हुआ जाये, वह सब दशा का पारवाला एक तत्त्व चैतन्य पूरा ध्रुव, उसकी महिमा और उसका विश्वास आये बिना उसे कभी सम्यग्दर्शन और आत्म-साक्षात्कार

होगा नहीं और आत्मा साक्षात्कार सम्यग्दर्शन हुए बिना धर्म-बर्म की सब बातें बिना एक के शून्य हैं, वे कोरे कागज पर। रण में शोर मचाये, उसकी कोई सुने नहीं। रण में शोर मचाये तो सुने? वहाँ कौन मनुष्य था तो सुने? इसी प्रकार तेरी दुर्दशा करनेवाला भी तू और तेरी सुदशा करनेवाला भी त्रिकाल तत्त्व का आश्रय ले तो तू। ऐसी चैतन्यतत्त्व की महिमा अन्दर में आये बिना, कहते हैं कि जयवन्त वर्तता तत्त्व कायम है। तेरी नजर के आलस से वह देखना रह गया है। समझ में आया?

यह तो मूल की बातें हैं, भाई! सब पत्तों की बातें बहुत हों, परन्तु यह पत्ते-बत्ते तोड़ने से नये पत्ते दो महीने में वापस पल्लवित हो जायेंगे। जिसका मूल छेदा नहीं, जिसका मूल छेदा नहीं, वे पत्ते दो महीने में फिर से हो जायेंगे और जिसका मूल छेदा गया, उसके पत्ते लाखों-करोड़ों हो, वे पन्द्रह दिन में सूखे होकर चूरा (हो जायेगा)। उसी प्रकार भगवान आत्मा धर्म की दशा का मूल तत्त्व जो है, उसके ऊपर दृष्टि दिये बिना तेरे राग की मन्दता और दया, दान और व्रत के परिणाम, वे पत्ते तोड़ परन्तु मूल कटेगा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **समयसार....** गजब व्याख्या, भाई! अपने आप वाँचों तो कुछ इसमें समझ में आये, ऐसा नहीं, हों! चन्दुभाई! एक बार कहा था न वहाँ, गोंडल में थे न वे एक कौन दीवान कौन? जे.पी.—जे.पी.। व्याख्यान चलता था। ऐसे व्याख्या में आवे प्रतिदिन। (संवत्) १९८८ के वर्ष की बात है ८८ की। फिर वह कामदार थे भाई वहाँ गोंडल में नहीं वे? केशवलाल कामदार प्रोफेसर। बडोदरा है न प्रोफेसर। उस प्रोफेसर को कहा, प्रोफेसर! यह महाराज वाँचते हैं, वह पुस्तक यह वाँचकर लाना घर में। मैंने कहा, अब माँगता है तो देना तो सही। समझेगा नहीं धूल में भी। जे.पी. थे न। प्राणशंकर जे.पी.। ८८ की बात है ८८। लोग हजारों आते थे। सब सुने। ओहोहो! इस पुस्तक में से यह! लाओ महाराज! प्रोफेसर ने पुस्तक मँगायी है। ले गये। एक दिन पढ़ा। यह तुम कहते हो ऐसा तो इसमें कुछ लिखा नहीं। परन्तु तुमको देखना नहीं आता। प्राणशंकरभाई! तुमको देखना नहीं आता। एक पुत्री विधवा थी न। वह बेचारी वाँचती। शौक था उसे वाँचने का। एक विधवा बाई है। परन्तु बापू! यह तो तत्त्व है, यह तो माल भरा हुआ है इसमें। जो कोई.... समझ में आया?

एक-दो आढ़तिया हो बड़े और एक आढ़तिया ने लिखा चलता भाव रुई का हो ४३५। और ४७० लाख गाँठें लेना, एक कार्ड में लिखा। वह पढ़े परन्तु उसे कुछ खबर पड़े? समझे, वह पढ़े तो कहे, ओहो! खुले कार्ड में लिखा है। जहाँ देने गया, वह पोस्टमैन। वहाँ वह बैठा था दो तकिया और इतने कमरे में। अब उसके ऊपर ४७०। चलता है भाव ४३५ का। ४७० में लाख गाँठें चैत्र शुक्ल दूज को लेना। उसके पास हिम्मत कितनी? लिखनेवाली की हिम्मत कितनी? लिखनेवाले का इसके ऊपर विश्वास कितना? यह बैठा इतने में, परन्तु पूँजीवाला लगता है। यह इतने अक्षर में दोनों की महत्ता, दोनों का माहात्म्य, दोनों की हिम्मत, दोनों का धन्धा करने का साहस वह सब उसमें—उस लेखन में दिखता है। लिखा नहीं, हों! लिखा तो इतना। इसी प्रकार यह शास्त्र के पृष्ठ, वे धर्मात्मा ज्ञानी ने लिखे, वह ज्ञानी को समझने के लिये लिखे। वह आढ़तिया को समझ में आये और समझा हुआ यह कहना चाहता है।

यहाँ भगवान आचार्य ऐसा कहते हैं कि अरे! आत्मा, वह शुद्ध परमात्मस्वरूप तेरा है, उसकी नजर किये बिना, उसका विश्वास किये बिना, उसमें लीन हुए बिना, धर्म की दशा तीन काल-तीन लोक में किसी को हुई नहीं, होगी नहीं, होने की नहीं। इसलिए आत्मसार जयवन्त वर्तता है। तेरी नजर की कचाश है। 'तेरी नजर के आलस से रे मैंने निरख्ये न नयन से हरि।' हरि अर्थात् आत्मा। कहा न यहाँ पाप छेदनेवाला। हरि पाप का हरति वह हरि। विकार के पुण्य-पाप के ओघ के समूह को नष्ट कर डाले, उसमें रहने न दे, ऐसा जो चैतन्यतत्त्व, उसे हरि कहा जाता है। समझ में आया? कहते हैं कि ऐसा वह समयसार (शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है। लो, यह एक गाथा हुई। श्लोक हुआ, इसकी गाथा एक हुई न! गाथा का यह कलश था। समझ में आया इसमें कुछ?

अब बातें तो बहुत आयी, परन्तु याद कितनी रखना इसमें? और वापस नहीं धारी हुई बात अब धारणा में रखना कहाँ? जो व्यापार-धन्धा हो न, उस जाति का माल आवे तो उसके खाने होते हैं। यह माल डाल इस खाने में। यदि वह जीरा थोड़ा रह गया, उसमें डाल जीरा, कोकम है डाल इसमें। यह खाना भी कहाँ अब अन्दर? इसने खाना कभी बराबर प्रगट किया नहीं। धर्म और शान्ति जन्म और मरण के नाश का उपाय, उस

उपाय का उपाय, उस उपाय का उपाय ऐसा परमतत्त्व भगवान आत्मा है कि जिसके अन्तर भरोसे में चलते हुए, अन्तर्मुख होते ही पूर्ण ध्येय दृष्टि में आवे, तब उसे सम्यग्दर्शन और धर्म के अंकुर दशा में फूटते हैं, इसलिए जयवन्त वर्ते आत्मा को, ऐसा कहा है। कहो, चन्दुभाई! समझ में आया इसमें? अब ३९। ३९ गाथा।

णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।

णो हरिसभावठाणा णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा॥३९॥

नीचे हरिगीत है—

मानापमान, स्वभाव के नहीं स्थान होते जीव के।

होते न हर्षस्थान भी, नहीं स्थान और अहर्ष के॥३९॥

टीका:— यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है। इसका यह। अखण्डानन्द प्रभु ध्रुव कौन है, उसके स्वरूप का विशेष वर्णन करते हैं। निर्विकल्प तत्त्व है आत्मा। वस्तु वस्तु में राग और पुण्य-पाप के विकल्प की गन्ध नहीं अन्दर में। उसकी दशा में में खड़ी की है, वह कृत्रिम एक समय का संसार है। त्रिकाल उसकी वस्तु के अन्दर में वह संसार या यह मोक्ष की दशा से पार एकरूप तत्त्व है, उसका यह वर्णन किया जाता है। त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,... कैसा है आत्मद्रव्य? वह त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को... ऐसा शुद्ध आत्मा प्रभु स्वयं, जीव-अस्ति असंख्य प्रदेश का समूह है, अर्थात् काय लिया। वास्तव में विभावस्वभावस्थान के नहीं... ऐसे वस्तु के त्रिकाल द्रव्य के अन्दर—वस्तु में यह पुण्य-पाप के असंख्य प्रकार के विकारी स्थान अन्तर में नहीं। विभाव है न, भाई! मूल पाठ में तो 'सहावठाणा' लिया है, परन्तु यह 'सहाव' अर्थात् कि विकार—विभावस्वभाव। आगे दूसरी बात अभी क्षायिक की आगे लेंगे।

कहते हैं कि त्रिकाल निरुपाधि तेरा तत्त्व प्रभु, उसका तुझे माहात्म्य आया नहीं। वह कैसा तत्त्व है? समझ में आया? कि जिसमें विभावस्वभाव के स्थान नहीं। अर्थात् क्या? कि जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प के जाल जो दिखते हैं दशा में, वह त्रिकाल मूल तत्त्व में नहीं है। ऐसे तत्त्व का आश्रय करने से धर्म होता है, बाकी धर्म होता नहीं। क्या करते हैं? यह सब क्रिया और साधन कहते हैं न लोग? पहले साधन-फाधन हो

न! वस्तु का स्वभाव साधे, उसे धर्म कहते हैं। बाकी के क्रियाकाण्ड को धर्म नहीं कहा जाता। समझ में आया? वास्तव में विभावस्वभावस्थान के नहीं... अब थोड़ी दूसरी बात लेते हैं।

(शुद्ध जीवास्तिकाय को)... जीव अस्ति अर्थात् त्रिकाली अस्ति तत्त्व भगवान् ध्रुव कि जिसकी नजर करने से निहाल हो, ऐसा आत्मा, उसे प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से.. यह उसे भले और बुरा ऐसा मोह-राग-द्वेष है नहीं। इसलिए मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं;... आत्मा में मान-अपमान के प्रकार हैं नहीं। वह तो निर्मानी ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा है। यह मुझे मान मिला, यह मुझे अपमान हुआ, यह सब दशा में कल्पनायें हैं; वस्तु में नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? अभिनन्दन देते हैं न बड़े मान के। घर में टाँगे, फिर देखो, यह चाँदी का मिला, उसका मिला। चाँदी की रखते हैं न वह? क्या कहा जाता है उसे कुछ, कहते हैं तुम्हारे? फिर उसमें डाले, उसके ऊपर यह डाले, फिर टाँगे। कहते हैं कि हमको मान मिला। बतलाते थे देखो, हमको मान मिला। भाई! प्रभु! यह मान नहीं, यह और कहाँ लाया? आत्मा के त्रिकाल स्वभाव के अन्दर मान-अपमान को स्थान नहीं। प्रकार ही नहीं मान-अपमान का। वह तो विकल्प के जाल में मान-अपमान माना है। मान तो तेरा स्वरूप त्रिकाल शुद्ध आत्मा है, वह तेरा मान है और उसका अनादर करना और राग का आदर करना, वह तेरा अपमान है। आहाहा! मोहनलालभाई! परन्तु व्याख्या बहुत कठिन! भाई! तुम्हारे वे भाई थे न क्या थे न तुम्हारे? मगनभाई दीवान-बीवान थे। कुछ सुना था, कोई कहता था। बड़े हैं और यह है। धूल बड़े किसे कहना, कहा? बड़ा तो प्रभु आत्मा है। यह उसे जाने बिना मोटाई कभी आवे, ऐसा नहीं। वह यह कहते हैं मान-मान। मान से प्रसन्न हो जाते हैं या नहीं? मान बहुत आवे।

एक बार दृष्टान्त दिया था कि भाई! बहुत मान चाहिए हो तो हम दिहाड़ी मजदूर रखें डेढ़ रुपये की। दाढ़ी मिलती है या नहीं? उसे अपने बड़े-बड़े पद के पढ़े हुए हों, वह रखना। दो रुपये लेगा, ढाई रुपये, तीन रुपये लेगा। फिर तू बड़ा, तू गजब, तू जोरदार, तेरी माँ ने गजब जन्म दिया और तूने ऐसा किया, ऐसा किया, ऐसा पृष्ठ लिखे २५-५० लाईनें। १००-५०-२०० लाईनें। अब सुनते-सुनते नौ बजे जब हो, भाई! अब

सोने दे। परन्तु यह मान की बातें करते हैं न? जहाँ घूमता हो, उसकी तो बातें करूँ वहाँ क्या हुआ? अब नहीं। अब नहीं। नींद आती है, अब नहीं। यह तेरी मुफ्त की कल्पना थी। अब तुझे निद्रा के स्थान में जाना है, इसलिए मान सुनना सुहाता नहीं। परन्तु यह मान और अपमान की विकल्पों की दशा भगवान! तेरे मूल तत्त्व में नहीं। ऐसे तत्त्व की दृष्टि कर और आश्रय कर तो शान्ति और धर्म होगा, बाकी धर्म हो, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह मान और अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान, वे तुझमें हैं नहीं। यहाँ तो विशेष दूसरी बात करते हैं जरा, भाई!

शुभपरिणति का अभाव होने से... अरे! तेरी दशा में विकार वर्ते, वह तेरे त्रिकाल तत्त्व में नहीं। शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप का विकल्प उठे, वह शुभ परिणति। शुभ परिणति अर्थात्? शुभदशा, हालत, उस शुभदशा का अभाव होने से, उसका बन्धन जो कर्म, वह भी तुझमें नहीं और **शुभकर्म का अभाव होने से...** उस शुभ कर्म से प्राप्त संयोग, वह तुझमें नहीं, इसलिए संसार सुख का अभाव होने से **हर्षस्थान नहीं हैं;**... यह तुझमें हर्ष ही नहीं। लम्बी बात की है जरा। कहते हैं कि प्रभु! तू चैतन्य ऐसा है न कि शुभदशा ही तुझमें नहीं त्रिकाल में। शुभ दया, दान के परिणाम, वे तुझमें नहीं हैं। उन परिणाम से बँधता पुण्य, वह तुझमें नहीं और पुण्य से प्राप्त यह धूल—यह बाहर की अनुकूलता, वह तुझमें नहीं और अनुकूलता के स्थान में तुझे हर्ष हो, कुछ होंश मिला, ऐसा हर्ष स्थान, वह तेरे स्वरूप में नहीं। समझ में आया? ऐसे तत्त्व को शोध और खोज और ऐसे तत्त्व की दृष्टि कर तो शान्ति मिले, बाकी शान्ति मिले—ऐसा नहीं है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

.... अवस्था में शुभ और अशुभ, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना की वृत्ति, वह अशुभ है। दया, दान, व्रत, तप, जप के विकल्प की वृत्ति, वह शुभ है। वह त्रिकाल स्वरूप में नहीं, उसी प्रकार उसकी दशा में वह अशुद्धरूप शुभ और अशुभ का नाश होकर, उसकी दशा में पवित्रता की प्रगट हो, उस दशा में... त्रिकाल में नहीं। आहाहा! जिसका आश्रय लेना है, जिसे दृष्टि में, लक्ष्य में लेना है, ऐसा जो शुद्ध तत्त्व चिदानन्द ध्रुव-ध्रुव नित्य प्रभु, वह नित्य प्रभु अनुभव त्रिकाल स्वभाव, उसमें यह शुद्ध और अशुद्ध एक भी भाव नहीं। ऐसा अन्तर में आत्मा का आश्रय और अवलम्बन करने से जीव को—आत्मा को धर्म अर्थात् शान्ति और सुख की प्राप्ति होती है। कहो, समझ में आया इसमें? यह ४०वीं गाथा कही गयी।

अब, यहाँ जरा आधार दिया है समयसार की कलश टीका का। यहाँ श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,
जगदपगत-मोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११ ॥

जगत.... जगत अर्थात्? देश को कुछ नहीं कहते। जगत में रहे हुए प्राणियों को कहा जाता है। काठियावाड़ी, यह हिन्दुस्तानी, ऐसा कहे न? ऐसा कहा जाता है, तथापि उसमें जीव को कहना है। जगत के रहे हुए आत्माओं, अस्ति अर्थात् सत्ता स्वभाव से अस्तिरूप से त्रिकाल, उसे कहते हैं, हे आत्माओं! जगत अर्थात् जगत में रहे हुए आत्माओं। मोहरहित होकर... अर्थात्? यह परसन्मुख के झुकाव में सावधानीरूप से अनादि का मोह है, वह शुभ-अशुभभाव और संयोग, उनकी ओर का तेरा वीर्य का

झुकाव जो है, वह मिथ्या झुकाव है। आहाहा! इसलिए, मोहरहित होकर... परसन्मुख की सावधानी को छोड़कर सर्व ओर से प्रकाशमान... भगवान ज्ञान चैतन्य प्रभु सर्व उपाधि से वस्तु पवित्र, गुण पवित्र, दशायें भी प्रकाशमान। ऐसे चारों ओर से चैतन्यप्रकाश, ज्ञान की ज्योतिस्वरूप प्रभु, ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का... त्रिकाली पवित्र आनन्दमूर्ति प्रभु ऐसे स्वभाव का ही अनुभवन करना चाहिए... ऐसे स्वभाव को ही अनुभव करो। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प उठें, उनका आश्रय छोड़ो, उनका अनुभव न करो। बहुत सूक्ष्म! समझ में आया? इन्हें सुनाई देता है? इन्हें सुनाई देता है कान से? थोड़ा-थोड़ा सुनाई देता होगा। कान क्या करे?

कहते हैं कि हे आत्माओं! तुम्हें धर्म करना हो। धर्म अर्थात्? अतीन्द्रिय शान्ति को प्राप्त होना हो, अर्थात् कि सुखी होना हो तो यह रास्ता है कि परसन्मुख की सावधानी शुभभाव हो या अशुभ हो, संयोग अनुकूल हो या प्रतिकूल हो। सर्वज्ञ भगवान का समवसरण हो या नरक के नारकी का प्रतिकूल योग हो। उन सबकी ओर का झुकाव—लक्ष्य और ध्येय छोड़कर सर्व ओर से चैतन्य आनन्दमूर्ति प्रभु के एक स्वभाव का ही अनुभव कर। यह अनुभव और उसके अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, तीनों आ जाते हैं। बहुत सूक्ष्म परन्तु। अरे! इसने अपनी दया खायी नहीं, हों दया। अरे! यह चौरासी के अवतार में चारों ओर लगातार दुःखी हो रहा है। यह धर्म के नाम से भी राग के भाव उत्पन्न करके दुःखी हो रहा है। एकबार, हे आत्मा! यह भगवान प्रकाशमूर्ति ध्रुव है, उसकी दृष्टि करके अवलम्बन करो। उसका अनुभव कर। पुण्य और पाप के विकल्प और संयोग का लक्ष्य और ध्येयपना छोड़ दे कि जिसमें जो चैतन्य ध्रुव चैतन्य प्रभु ज्ञान चैतन्य जल, आनन्दस्वरूप में प्रभु उसके सामर्थ्यवाला तत्त्व, उसके बद्धस्पृष्ट आदि भाव। अर्थात्? यह कर्म का सम्बन्ध करे, ऐसा बन्ध। राग का सम्बन्ध करे, ऐसा बन्ध। ऐसा तेरे मूलस्वरूप में है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अनन्त संसार की दशा का राग और अनन्त काल से राग को सेवन करता आया है दुःखरूप से। और अनन्त काल का आनन्द कि जो आनन्द प्रगट हुआ, वह प्रगट हुआ अतीन्द्रिय। भविष्य में किसी भी समय में उस आनन्द का विरह और वियोग नहीं होगा, ऐसी परम आनन्ददशारूपी मोक्ष को प्राप्त करने के लिये कहते हैं कि प्रभु! तेरी अन्तर

प्रभुता के ऊपर नजर डाल। कहो, नवरंगभाई! यह शरीर, वाणी यह तो जड़, मिट्टी है। कर्म, धूल है। यह हिंसा, झूठा, चोरी के परिणाम पाप हैं। यह व्रत और अव्रत, दया, दान के परिणाम भी पुण्य का विकार है। उनका लक्ष्य छोड़ दे, उनका ध्येय बनाना छोड़ दे, और तेरी परमानन्द की शक्तिरूप आत्मा को ध्येय करके अनुभव (कर) कि जिसमें... लो, यह धर्म।

बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव... स्पष्टरूप से। जैसे पानी में तेल ऊपर तैरता है, वैसे चैतन्य भगवान आनन्दमूर्ति में यह पुण्य और पाप के राग ऊपर तैरते हैं, अन्दर प्रवेश नहीं पाते। गजब बातें परन्तु यह! यह **स्पष्टरूप से...** प्रत्यक्षरूप से, ऐसा। **ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में...** अन्तर में प्रतिष्ठा नहीं पाते। यह चैतन्य ज्ञानानन्द ध्रुव नित्य प्रभु आत्मा, उसमें यह विकारी भाव अन्दर प्रवेश नहीं होते। ऐसा नित्यानन्द प्रभु का अनुभव कर, वह धर्म है, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? बहुत परन्तु यह तो...! यह बाहर का करके कुछ हो, ऐसा कोई उपाय होगा? मगनभाई! तो यहाँ तो कहते हैं कि बाह्य में क्या प्रभु! यह जड़ आदि की पर्यायें, अवस्थायें, हालत, उसके कारण से होते हैं, उसमें तुझे क्या? तुझमें अपराधरूप पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, वह मलिन और अशुद्ध है। वह अशुद्ध तो स्वयं विकार और उपाधि है, वह कहीं धर्म नहीं। त्रिकाल चैतन्य के आनन्द का अवलम्बन लेकर जो निर्मलदशा का अंश प्रगट हुआ, उसे धर्म और उसे शान्ति और उसका मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया?

इस गाथा की टीका पूर्ण करते हुए स्वयं मुनिराज दो श्लोक कहते हैं। मूल श्लोक (गाथायें) कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त जंगलवासी आत्मध्यानी आनन्द में झूलते थे। उनकी यह टीकारूप पद्मप्रभमलधारि सन्त हो गये। भावलिंगी सन्त। आत्मा के आनन्द को, राग की एकता के कपाट तोड़ दिये और चैतन्य के आनन्द को अन्दर से खोला है। ऐसे आनन्द की अनुभव दशा में रमते पद्मप्रभमलधारिदेव जरा इस गाथा के दो श्लोक करते हैं।

(अनुष्टुप्)

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम्।

विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम् ॥५६ ॥

यह श्लोक है। जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है... आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? नित्य, शुद्ध, अत्यन्त पवित्र, चिदानन्द और ज्ञानानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान। ज्ञानानन्दरूपी सम्पदा। गजब, भाई! यह सम्पदा! यह धूल की सम्पदा तो कहते हैं, मगनभाई! यह सब तुम्हारे पैसेवाले को कहते हैं न। पैसा मिला और धूल मिली और ऐसी बातें करते हैं। धूल मिली, ऐसा न कहे, पैसे मिले, ऐसा कहे। कहते हैं कि बापू! यह सम्पदा तो जड़ की है। तेरी सम्पदा तेरे त्रिकाल तत्त्व में चिदानन्दरूपी सम्पदा। ज्ञान और आनन्द का अतीन्द्रिय रसरूपी आत्मस्वभाव, उसकी उत्कृष्ट यह आत्मा खान है। इस खान में एकाग्र हो तो निकलेगा (प्रगट होगा)।

खान किसलिए कहा है यह? सोने की खान और लोहे की एक साथ दो खान हो। जिसे सोना चाहिए हो, वह सोने की खान खोदे। खोदे कहते हैं? क्या कहते हैं? निकाले। लोहा चाहिए हो, वह लोहा निकाले। इसी प्रकार तुझे यदि आत्मा की शान्ति और धर्म चाहिए हो तो यह नित्य चिदानन्द सम्पदा की उत्कृष्ट खान, वह आत्मा। उसे खोद और उसमें एकाग्र हो। और पुण्य और पाप की खान लोहे की खान है। बन्धन की खान है। समझ में आया? एक स्थान में दो प्रकार रहे हैं। अब तेरी जहाँ नजर पड़े, वहाँ निकलेगा। पुण्य और पाप के भाव के ऊपर... भाई! परन्तु इतना बड़ा तू न हो तो तेरी दशा में जब पूर्ण आनन्द प्रगट होगा तब ... कहाँ से आयेगा यह सब? वह कहीं बाहर से आवे, ऐसा है? वह नित्य सम्पदा चिदानन्द प्रभु, वह अकेला सम्पदा का स्थान और विपदा का अस्थान। अपद अर्थात् अस्थान। वह तो अपद रखा है न। जिसमें पुण्य और पाप के विकल्प आपदा जिसमें बिल्कुल नहीं। दुनिया आपदा तो प्रतिकूलता पड़े उसे कहती है। और धूल, लक्ष्मी, बँगला पाँच-पाँच, दस-दस लाख के हुए हों, पंखा फिरता हो सिर पर। समझ में आया? उसे सम्पदा कहती है। और पंखे के ऊपर नजर गयी तुम्हारी। क्या करे यह?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! तेरी चैतन्य सम्पदा में इतनी अनन्त बेहद आनन्द की खान पड़ी है कि जिसमें आपदा की गन्ध नहीं। पुण्य और पाप के भाव, वे आपदा हैं, शरीरादि नहीं, वे तो पर संयोग चीज़ है। शुभ और अशुभभाव, वह आपदा है, विपत्ति है, भगवान आत्मा उससे रहित चिदानन्द की सम्पदा सम्पन्न है। अरे! यह। (अर्थात्,

जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है)... आनन्द-आनन्द जहाँ पड़ा है, विपदा की गन्ध वहाँ नहीं। ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ। मुनि स्वयं अपनी बात करते हैं। ऐसा मेरा आनन्द प्रभु आत्मा, उसे ही इसी पद का... जिसमें आनन्दपद है और जिसमें पुण्य-पाप का पद अर्थात् अपद कहलाता है, वह उसमें नहीं। उसे—इस पद को मैं। लो, यह खबर पड़ती होगी? लोग कहे, कौन जाने ऐसी धर्म की खबर पड़े या नहीं? धर्म समझ में आता है या नहीं? समकित सूक्ष्म है और फलाना है। ऐसी रखते हैं न!

कहते हैं, प्रभु! तेरी दशा बदले और तुझे खबर न पड़े, ऐसा नहीं हो सकता। मैं इसी पद को अनुभव करता हूँ। मेरा पद निजानन्द सहजानन्द मूर्ति आत्मा, जिसमें स्वाभाविक अतीन्द्रिय रस के कण पूरी पूर्ण वस्तु। एक कण की दशा को अनुभव करने से पूरी चीज आनन्द और ज्ञान से भरपूर, ऐसी उसकी प्रतीति और अनुभव में आती है। गजब! यह किस प्रकार की धर्मक्रिया परन्तु? बाहर से तो भाई! यह करो... यह करो... यह करो... नहीं आता? देवचन्दजी ने कहा नहीं? यह कहा था। भगवान की स्तुति करते हुए नहीं कहा? 'द्रव्य क्रियारुचि जीवड़ा भाव धर्म रुचि हीन; ऐ उपदेशक भी ऐसे ही रे, क्या करे जीव नवीन? जिन जो सुनिए अरदास।' हे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा! आपने कहा हुआ धर्म का मार्ग जगत के जीव पुण्य और पाप की क्रिया में धर्म मानकर जिसमें अकेला शुभभाव उत्पन्न हो, ऐसी द्रव्यक्रिया की रुचि में पड़े हैं। 'द्रव्य क्रियारुचि जीवड़ा और भाव धर्म रुचि हीन।' भावधर्म की रुचि से हीन। अरे! आत्मा राग के दया, दान, व्रत, तप के विकल्प के पार एक चैतन्य है। जिसके अनुभव के एक अंश में आनन्द में इन्द्र के इन्द्रासन तुच्छ लगे। ऐसा जो धर्म प्रभु जगत के प्राणी को रुचता नहीं। भावधर्म रुचि हीन। समझ में आया? क्यों? 'उपदेशक भी ऐसे' झुकनेवाले को झुकानेवाले उस जाति के मिले। दोनों की गाँठ मिल गयी बराबर।

अपने दृष्टान्त नहीं देते? अपने तो बहुत बार देते हैं। जरा अच्छा न लगे ऐसा है थोड़ा किसी को... 'जीवो जहलो जोगी अने माली मकवाणी' ऐसी बातें आती हैं या नहीं? एक जहलो जोगी था, उसे स्त्री मिलती नहीं थी और एक नाटकी बाई थी, उसे कोई रखता नहीं था। दोनों हो गये इकट्ठे पति और पत्नी। इसी प्रकार भगवान कहते हैं, हे आत्मा! एक तो तुझे शुभराग की रुचि की सुहाती थी और उसमें कहनेवाले यह मिले

कि यह क्रिया कर तो तुझे धर्म होगा। रोती थी और पीहरवाले मिले। समझ में आया ? एक तो रोती थी, उसमें उसका बाप या भाई देखे वह तो आवाज ठीक सी। इसी प्रकार एक तो इसे रुचि अनादि काल की है। भगवान आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी रुचि है नहीं और उसकी रुचि में से धर्म हो, ऐसा इसने सुना नहीं। इसने सुना नहीं, इसे सुहाया नहीं और इसे लगानेवाले मिले हैं। लगानेवाले मिले।

आता है न भाई समयसार की ११वीं गाथा में ? एक तो जीव को अनादिकाल से भेद का, राग का अभ्यास और प्रेम है। एक बात। दूसरा, परस्पर यह आचार्यपना भी उस बात का कर रहे हैं। तीसरी बात, जैनशास्त्र में सर्वज्ञ के कथन में उसे निमित्त जानकर बहुत कथन व्यवहार के आये हैं, परन्तु उन तीनों का फल संसार है। आया है ? समयसार ११वीं गाथा (भावार्थ)।

मुमुक्षु : पहले आपने बहुत बार कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यहाँ और कितने ही अनजाने हो न। समझ में आया ? रतिभाई! कभी वहाँ आधे घण्टे आवे, वहाँ बीच में से मिले इसलिए। राजकोट से भावनगर और भावनगर से राजकोट। कहते हैं। समझ में आया ? देखो, ११वीं गाथा में है। यह स्वयं पण्डित जयचन्द्रजी ने स्वयं लिखा है। देखो, प्राणियों को—जगत के जीवों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष—यह राग का, पुण्य का, क्रिया का, दया, दान, व्रत, तप की क्रिया का पक्ष तो अनादि काल से है। उससे धर्म होगा—ऐसी मान्यता जीवों की अनादि की है और उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं। परस्पर करते हैं। वह करे तो कहे हाँ, वह कहे कि हाँ। यह बात बराबर है। ऐसा कुछ व्यवहार बिना कहीं सीधे ऊपर जाया जाता होगा ? निसरणी में सोपान होते हैं। अरे! सुन न अब! यह राग की सीढ़ी और आत्मा के धर्म के सोपान दोनों अलग जाति के हैं।

यहाँ कहते हैं। और, वीतरागवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब (सहायक) जानकर बहुत किया है। परन्तु उसका फल संसार ही है।

मुमुक्षु : एक शब्द में आ गया संसार।

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार... संसार... परिभ्रमण है। भगवान आत्मा पर से अत्यन्त

निराला, ऐसे शुद्धस्वभाव की रुचि करता नहीं, प्रभु! उपदेशक इसी जाति की युक्ति लगावे, उस बात को प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! अरे! प्रभु! तेरे घर की प्रवेश करने की विधि की पद्धति यह नहीं। यह शुभाशुभपरिणाम हो, वे सब आपदा है। उनसे पुण्य-पाप बँधता है। एक शुभभाव हुआ, पुण्य बन्धन हुआ रजकण का। मरने के समय तेरा वह भाव तो है नहीं, शुभ भी नहीं अभी और बन्धन हुए रजकण का, वह क्या तुझे मदद करेगा? अब नया भाव शुभ तू कर, तो भी उसका पुण्य बँधेगा। और वह पुण्यबन्धन तो जड़ की दशा हुई। वह तो भविष्य में संयोग की प्राप्ति में निमित्त होगा। तुझे शान्ति का कारण कौन? समझ में आया?

विकल्प उठा कोई शुभ का, दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति का राग। वह तो राग है। बेकार है आत्मा के धर्म के लिये। ऐसे राग से तू धर्म करना चाहे तो उसका फल तो बन्धनरूपी परमाणु पड़े। अब वे परमाणु कहीं तुझे शुभभाव अब कराये, ऐसा नहीं। अब ऐसा नहीं। अब और नया शुभभाव कर तो नये बन्धन पड़ेंगे। वह भी शुभभाव नया करावे, ऐसा नहीं। तब अब करना क्या है तुझे? समझ में आया? वे रजकण पड़ेंगे, वे तो भविष्य में संयोग देंगे। तेरे धर्मात्मा के लिये क्या? बात तो जरा अलौकिक बात हो यह तो जरा कठिन ही लगे न लोगों को। गले उतरना कठिन पड़े। है तो इसके घर की सरल और सीधी। सत् सरल है, सीधा है, समीप है, परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर तत्त्व है, परन्तु उसकी महिमा किये बिना उसे बाहर के किसी भी आश्रय से धर्म हो, ऐसी मान्यता अनादि की और मान्यता करानेवाले मिले। क्या करे जीव नवीन? वह अनन्त काल के प्रवाह में जो किया, उससे दूसरा वह कहाँ से करे? क्योंकि उसे मिला यह, उस मिले हुए में राचकर पड़ा है। यहाँ भगवान मुनि कहते हैं कि इस आत्मा को मैं यह पुण्य-पाप की वृत्तियाँ जो परसन्मुख का झुकाव, उसे छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर मैं आत्मा के, शुद्ध आत्मा के आनन्द को अनुभव करता हूँ, वह मेरा चारित्र है। वह चारित्र है। चारित्र कोई राग की क्रिया, पंच महाव्रत का विकल्प मुनि को उठे, वह भी चारित्र नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

अब दूसरा श्लोक। इसी और इसी इस गाथा का ५७वाँ।

(वसंततिलका)

यः सर्वकर्मविषभूरुहसंभवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि ।
भुङ्क्तेऽधुना सहजचिन्मयमात्मतत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शयः कः ॥५७॥

अरे ! (अशुभ तथा शुभ)... जो भाव, ऐसे जो कर्म, वे विषवृक्ष। वह तो जहर का वृक्ष है। अरेरे! गजब बात! यह शुभ-अशुभभाव, वह भी जहर का फल है और उसका बन्धन पड़े परमाणु जड़, वह जहर का फल है। अमृत की बेलड़ी प्रभु, वह अमृत की पूरी नारियली आत्मा। जैसे पूर्णानन्द शक्कर का, जैसे श्रीखंड बनावे। यह श्रीखण्ड नहीं बनाते? चीनी का बनाया हो किसी ने। यह चीनी की पुतली नहीं बनाते? यह हलवाई लोग साँचा डालते हैं न ऐसे लकड़ी के और फिर अन्दर चीनी डाले। साँचा निकाल डाले तो अकेली चीनी की मूर्ति है। उसी प्रकार भगवान आत्मा यह शरीर, वाणी का साँचा, लकड़ी-हड्डियों की दृष्टि छोड़ दो और अन्दर पुण्य-पाप के मैल की दृष्टि छोड़ दो, अकेला अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति देह में विराजमान प्रभु आत्मा है। आहाहा! परन्तु वह बिबु निकाल डाले तो पृथक् पड़े। इसी प्रकार इस बीबा की दृष्टि छोड़ देना चाहिए। शरीर, वाणी, मन में मैं नहीं और पुण्य-पाप का मैल। यह अच्छा करे न? शक्कर का बूरा बनाते हैं, तब दूध में डालकर धो नहीं डालते? फिर उसे बूरा कहते हैं। है तो अच्छा परन्तु लोग उसे... इसी प्रकार आत्मा में यह पुण्य और पाप का मैल, उससे मैं रहित, वह मैल तो जहर का वृक्ष है। मेरा आत्मा अमृत है। उस अमृत की उल्टी अवस्था का नाम विकार और जहर है। भारी कठिन! वह पुण्य को जरा विष्टा कहा, वहाँ कठोर पड़ जाता है लोगों को। यहाँ तो जहर कहा है।

भगवान! तेरी सम्पदा की बात है, प्रभु! यह तेरा ताला खोलने की बात है। ताला ऐसा लगया है न, वह चाबी बिना खुलता नहीं और खुले बिना नजर में पड़े नहीं। यह शुभ और अशुभभाव की वृत्ति और एक ओर अमृत प्रभु चैतन्यमूर्ति, दो के बीच की एकताबुद्धि का ऐसा ताला लगाया, अमृत खुलता नहीं। उस ताला को तोड़ एक बार। शुभ और अशुभभाव जहर है, उसका फल कर्म जहर है। एक बार उछाला तो मार, एक

बार कौतुहल तो कर। ऐसा आता है न भाई समयसार में? कौतुहल तो कर। ऐसे-ऐसे गीत गाये जायें, वह कौन होगा? वह यह आत्मा क्या है? ऐसी श्रद्धा की धार पर चढ़ाकर उस भगवान आत्मा में नजर तो डाल। भगवान आत्मा, वह शुभ-अशुभ कर्मरूपी विषवृक्ष। वह जहर का वृक्ष। चिल्लाहट मचा जाये या नहीं?

ऐसे पुण्य की मिठास उसे है न ऐसी। पुण्य के फल की मिठास है, उसे पुण्य की मिठास है और पुण्य की मिठास है, उसके फल की मिठास उसे होती ही है! जिसे शुभभावरूपी पुण्य की जिसे रुचि, उसके फलरूप से बन्धन, उसके फलरूप से यह धूल की सामग्री की योग्यता। पाँच-पच्चीस लाख मिले, बड़े बँगले और हवा फिरे, चार गति के चरखा फिरे सिर पर। यह तो यह दूसरे हैं। वह नहीं क्या कहलाये? पंखा तीनवाला पंखा होता है न तीन पंखुड़ीवाला। कुर्सी के ऊपर बैठा हो ऐसे मानो। क्या है? कहाँ भूलता है, खबर है तुझे? यह जहर की बेल को तोड़ता हुआ खड़ा है तू। अमृतस्वरूप भगवान अन्दर, उसका मजा और उसका स्वाद क्या है, उसकी तुझे श्रद्धा भी नहीं।

कहते हैं कि विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण... देखो! अपना स्वरूप चिदानन्द अमृत है, ऐसा निजरूप से विलक्षण। पुण्य और पाप के लक्षण आत्मा के लक्षण से भिन्न लक्षण। वह बन्ध का भाव, यह अबन्धस्वरूपी भगवान। ऐसे फलों को छोड़कर... अरे! निजरूप से विलक्षण ऐसे जड़ के फल को छोड़कर जो जीव... देखो, अभी... वायदा नहीं। 'अधुना' शब्द है न, भाई! 'भुंक्तेऽधुना' तीसरी लाईन में है। 'अधुना' यह वायदा वाफळ हो, वह करे। वाफळ हो, वह वायदा करे, ऐसा यहाँ कहते हैं। अरे! एक बार तो ऐसा उछाल। भाई! पीछे भी कहते हैं न प्रवचनसार में। दो-तीन श्लोक में नहीं? आज ही अनुभव करो। अन्तिम, ऐसा कहते हैं। आज ही अनुभव करो। ऐसे अमृतचन्द्राचार्य। अरे! एक बार तो तू आज ही हाँ कर। यह प्रवचनसार में आता है। मूल श्लोक है न अन्तिम? प्रवचनसार। देखे, जगत... ज्ञानात्मक परमात्मा को प्राप्त करो। पश्चात्, 'स्वतत्त्व को प्राप्त करके आज ही जन अव्याकुलरूप से नाचो।' आज ही-आज ही। कल नहीं, कहते हैं। अरे! कब होगा? अरे! परन्तु कब, तू पूरा पड़ा है न! अमृतचन्द्राचार्य महाराज जगत को पुकार करके यह

रणसिंगा बजाकर उठाते हैं उसे... रण में चढ़ा अब रजपूत वापिस पीठ नहीं देता, इसी प्रकार भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु की दृष्टि में चढ़ा, वह वापस फिरता नहीं। समझ में आया ?

‘आज ही जन अव्याकुलरूप से नाचो।’ अभी एक शब्द यह है। अन्तिम दूसरा। ‘चैतन्य ही एक।’ ‘क्योंकि इस लोक में दूसरा कोई नहीं। चैतन्य ही एक उत्तम यह है, इसलिए आत्मा आज ही अत्यन्त अनुभव करो।’ आज ही अत्यन्त अनुभव करो। दो श्लोक हैं प्रवचनसार के अन्तिम। यह सब ... रखी है न ऐसे और ऐसे। पद्मप्रभमलधारिदेव ने। एक व्यक्ति कहे कि भाई! ऐसा हमको यह रुचता है, परन्तु अभी कर सकेंगे नहीं। तो अभी रुचा है या भविष्य में रुचेगा ? यदि रुचा है तो फिर अभी ही करने का रहा उसे। यह अभी तो ... बहुत सुना।में रहे हुए, सुना बहुत दिन। १८ दिन सुना। परन्तु वेश में रहे हुए साधु, अब करना क्या ? १८ दिन सुनकर फिर अन्त में कहे कि बात तो सच्ची लगती है, परन्तु इस भव के लिये नहीं, परभव के लिये लगती है यह। क्योंकि इस भव में तो अब जहाँ फँसे हैं, वहाँ से निकला जाये ऐसा नहीं है। ‘सांगो कहे सलवाणा कांईक चड्या कंईक पाळा।’ जेल में ऊँट खड़ा हो और एक व्यक्ति डाला हो जेल में। एक ऊँट के ऊपर बैठा हो और एक नीचे। सब ताले लगाये हों जेल के। इसी प्रकार ‘सत् साधन समझो नहीं, सब साधन बन्धन हुए रहा न कोई उपाय, सत् साधन समझा नहीं, वहाँ बन्धन क्या जाये?’ श्रीमद् ने पुकार तो बहुत प्रकार से की है। समझ में आया ? ‘सब साधन बन्धन हुए...’ बेचारे त्यागी हुए। यह त्याग... यह... अब फँसे। सच्चा सुनना हो तो कहे नहीं। हाय! हाय! अब ? मार डाले। रोटियाँ नहीं देंगे यह।

एक व्यक्ति कहे, परन्तु बहुत भाव होता है, परन्तु महाराज यहाँ कुछ रोटियाँ-बोटियों का ? कहा, यह बात यहाँ नहीं। यहाँ गौशाला रामजीभाई के पास पैसा नहीं, वे दे दे सबको। वरना तो यहाँ बहुत इकट्ठे हों ऐसे। उनके पास पैसा नहीं, वहाँ कहा। बात तो सच्ची लगती है, परन्तु अब अमल में कैसे लाना ? अर्थात् कि यह समझे कि तुम कुछ जवाबदारी लो। वह छोड़े तुम्हारे सब यहाँ... यहाँ कुछ नहीं लेना-देना। जिसे जैसे सुहावे और जिसे जैसे रुचे वैसा करो। यहाँ किसी की जवाबदारी-बवाबदारी है नहीं। लो, यहाँ बहुत गुप्तरूप से आकर कहे। हमारे यह छोड़ना है, हों! हमारे यह वेश

छोड़ना है और यह मुझे भी, मैं क्या करूँ? कि क्या हम कहते हैं तुझे? हम तो सत् वस्तु प्रभु आत्मा है। उसकी शरण में जा, दुनिया की परवाह छोड़ दे। लौकिक लाज एक बार छोड़नी पड़ेगी। समझ में आया?

यह नरसिंह मेहता में कहा था, भाई! एक बार नहीं? वहाँ था। सब आये हुए। परिवर्तन करना, वे लोग आये सब मकनभाई के काका और बाका। कहा, देखो भाई! 'अनेक युग बीते रे अेळे पंथे अे चालता रे जी। अे नाव्यो नाव्यो पंथडा केरो रे पार, लोकरीयानी लाजे रे मान्युं अमे अे ताण्या घुंघटा।' 'अे लोकरीयानी लोज रे बायुं रे अमे ताण्या घुंघटा। पण नाव्यो नाव्यो पंथडा केरो अे पार। अनेक जुग वीत्या रे अेळे पंथे रे अे चालता जी।' यह शुभ और अशुभ की क्रिया में धर्म, ऐसा माननेवाले और माननेवाले में अनन्त काल के पंथ में बीते, परन्तु आत्मा का कहीं पार आया नहीं। यह लोक की लाज तो एक बार छोड़नी पड़ेगी। अमृतचन्द्राचार्य, भाई कैसे बनारसीदास ने भाई कहा है कि जगत का यश, वह तो नाक की छिनक है। नाक की छिनक ऐसे निकाल फू ऐसे निकाले और बाहर निकल जाये, सामने न देखे। जगत-जगत समझे, वह उसके घर में रहा। यह अच्छा कहे या बुरा कहे, उसे तुझे गिरवी रखना, ऐसा नहीं। दुनिया अच्छा कहे, इससे गिरवी रखा जाये, ऐसा है? और बुरा कहे तो कुछ दुर्गति हो, ऐसा है? समझ में आया?

कहते हैं, अरे! आत्मा! यह अभी ही यह कर, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। ओहोहो! एक बार तो जगत की लज्जा छोड़ और दुनिया की परवाह छोड़ दे। क्या करें? 'जे.. कुळे जैन वसे...' जिस कुल में जन्मे और जिसके संग में रहे। 'ममाई लुप...' यह मेरे और मैं उनका ऐसी वाड में हम निकल सकते नहीं। बात तो अच्छी लगती है, कुछ नयी लगती है और इसके अतिरिक्त अन्त नहीं, परन्तु इसे लोक की लाज। तुम पहले ऐसा कहते थे न? भाई! अब खोटे थे सुन न उस समय। ऐई! मोहनलालभाई! पहले ऐसा कहते थे न? परन्तु तुम सब हमको यह तुमने कहा था न? परन्तु यह बातें खोटी थीं, सुन न! समझ में आया? यह सत्य बात प्रभु आत्मा ज्ञानानन्द से भरपूर तत्त्व। कहते हैं कि पुण्य-पाप की क्रिया और देहादि की क्रिया और रुचि छोड़। यह रुचि छोड़ने से दुनिया की शरण छोड़ना पड़े तो छोड़, नाक की छिनक की भाँति छोड़। समझ में

आया ? ऐसे छिनकते नहीं नाक को ? (छिनककर) ऐसा करके डाले । सामने देखते होंगे फिर ? इसी प्रकार दुनिया की लाज कहीं तुझे सुगति दे, ऐसी नहीं । कहते हैं अभी ही यह छोड़ । आहाहा ! समझ में आया ?

सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है, ... देखो, आत्मा कैसा कहा ? सहजचैतन्यमय । वह तो स्वाभाविक ज्ञान और आनन्दमय प्रभु है । उसकी दृष्टि कर और अनुभव आज ही कर । वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—ऐसा जीव अल्प काल में परमानन्ददशा में संसार के रचनेवाले को त्यागकर पूर्णानन्द की दशा को अनुभव करता है । इसमें क्या संशय है ? उसमें संशय को क्या स्थान है ? अन्तर की शान्ति और आनन्द की खान उछलती हो जहाँ दृष्टि में, ऐसी दृष्टि कर और अनुभव कर, मुक्ति होगी या कैसे ? संशय को स्थान नहीं । आहाहा ! समझ में आया ?

श्रीमद् ने कहा न, 'लघुवय से अद्भुत हुआ अरु तत्त्वज्ञान का बोध, वही सूचित ऐसा कि गति-आगति क्या शोध ?' समझ में आया ? अल्प काल में जिसके संस्कार पड़े और आत्मा आनन्द की खान, ऐसा भान हुआ । अब कहाँ से आया ? किसे पूछना है ? और कहाँ जायेगा ? किसे पूछना है अब ? अच्छे संग में से आये हैं और वह संग छूटकर मोक्ष में जाऊँगा, इसमें संशय है नहीं, ऐसा कहते हैं । समझ में आया ? ऐसे एक बार उल्लसित होकर वीर्य का उठाव कर । लाख बात की बात एक उर में निश्चय हो । आता है या नहीं ? परन्तु यह बहुत ऐसा कहते हैं न ? यह ज्यादा कहे । कीड़ी के नगर में कीड़ियाँ बहुत होती हैं, वह कहीं मनुष्य नहीं हो जाती । आटा डालने जाये चींटी को और अधिक चींटियाँ हों तो मनुष्य हो जाती होंगी ? इसी प्रकार अधिक कहनेवाले ऐसे हैं न परन्तु, उसमें कुछ होगा या नहीं तर्कशुद्धता ? अब यह तुझे विचारना रहा । समझ में आया ?

भगवान आत्मा पुण्य-पाप के जहर को जानता हुआ, अमृत का खजाना खोलता हुआ एक बार अनुभव और दृष्टि तो कर, अरे ! श्रद्धा तो ला और ज्ञान के ज्ञेय में यही तत्त्व है, यही करनेयोग्य है—ऐसे निर्णय की भूमिका को दृढ़ कर । समझ में आया ? इसमें क्या संशय है ? उसे मुक्ति होगी या नहीं भगवान के ज्ञान में देखा होगा या नहीं ? देखा है भगवान ने कि अल्पकाल में तेरी मुक्ति होगी । तुझमें होगा, वैसा देखा और

देखा, वैसा वहाँ कहा। उसमें धर्मात्मा को संशय नहीं होता। लो, ऐसा जान गये? एक तो अनुभव करता हूँ, ऐसा कहा वर्तमान का और अल्पकाल में मुक्ति पावे, उसमें संशय क्या, ऐसी दो बातें कह दी, भाई! शाश्वत्पना प्रगट हुआ अनुभव की सम्यग्दर्शन दशा। वह स्वयं अनुभव में आता है और उसकी पूर्णदशा अल्पकाल में होगा, उसमें संशय को स्थान नहीं। कहो, समझ में आया?

अब आयी ४१वीं गाथा। जरा सूक्ष्म है थोड़ी-थोड़ी। बड़े-बड़े वेशधारियों को भी यह गाथा कठिन पड़ी। यह 'णो खड़यभावठाणा' आये थे। बड़े पण्डित और बड़े त्यागी नाम धरानेवाले। आहाहा! अररर! यह पहला पद आता है वह। ४१ गाथा।

णो खड़यभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।

ओदड़यभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा ॥४१ ॥

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।

नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं ॥४१ ॥

इस जीव में, यह चैतन्यघन ध्रुव। एकरूप नित्यप्रभु जो दृष्टि का विषय, जो ज्ञान का ज्ञेय करने का स्वरूप, ऐसा परमस्वभावभाव त्रिकाल आत्मा ध्रुव। उसमें यह चार प्रकार की पर्यायों का अभाव है। आहाहा! हो गया। प्रकार चार होते हैं पर्याय में। पर्याय अर्थात् अवस्था। एक विकारी अवस्था और एक निर्विकारी की तीन प्रकार की दशायें। वे दशायें हैं, हालत है। समझ में आया? उस हालत की स्थिति पर्याय की (स्थिति) एक समय की है। भले ऐसी की ऐसी स्थिति रहा करे, तो भी उसका काल—अवधि तो क्षायिकभाव सिद्ध को हो या नीचे क्षायिक समकित हो। 'शुद्ध अखण्डानन्द हूँ' ऐसी अनुभव में निर्विकल्प प्रतीति कि जो केवलज्ञान को प्राप्त करे। ऐसी दशा अन्दर में क्षायिक समकित हो, वह भी एक समय जितनी उसकी स्थिति है। क्योंकि वह दशा है। अरे! केवलज्ञान भी एक समय की स्थितिवाला हो सकता है। सादि-अनन्त रहे केवलज्ञान होकर, प्रगट हुआ वह अन्दर। वह तो सदृश्यपने की ऐसी की ऐसी रहने की अपेक्षा से है, परन्तु प्रगट हुई दशा एक समय रहे। दूसरे समय तो उसका व्यय—अभाव होकर दूसरी दशा प्रगटे, तो ऐसा आत्मतत्त्व जो त्रिकाली, उसके अन्दर यह चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है। विभाव। विशेषभाव।

समझ में आया ? यह जरा सूक्ष्म बात है, हों ! यह तो बाह्य चीज़ तो उसमें नहीं, परन्तु उसकी दशा में अवस्था हो, हालत—पर्याय हो, उस पर्याय का—अवस्था का एक समय का काल है, वस्तु तो त्रिकाल ऐसी की ऐसी रहती है। ऐसी त्रिकाल वस्तु के अन्दर इन दशाओं का अभाव है। ऐसी त्रिकाली वस्तु की अस्ति जो सामान्य त्रिकाल ध्रुव है, यह उसकी दृष्टि किये बिना उसे सम्यग्दर्शन तीन काल में होता नहीं। समझ में आया ?

यह विशिष्टता क्या है ? कि पर्याय है, ऐसा सिद्ध करते जाते हैं। कि जो उसकी दशा में ऐसा होता है। ऐसा नहीं होता, ऐसा न माने उसे तो वर्तमानदशा में अस्ति की मौजूदगी की भूल है। परन्तु एक समय की जो अस्ति—हालत, उसे जैसे सर्वज्ञ ने कहा, वैसा माने, तथापि वह दृष्टि....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



दिनांक - ११-०३-१९६३

गाथा - ४१, प्रवचन नं. ३८५

यह नियमसार शास्त्र है। नियमसार अर्थात् ? मोक्ष का मार्ग बतलानेवाला शास्त्र। अधिकार जरा अभी ४१ गाथा का सूक्ष्म है। यह आत्मा है न आत्मा, यहाँ तो आत्मा की बात है मूल तो, भाई! और यह न हो तो जगत में क्या? यह आत्मपदार्थ देहदेवल में विराजमान वस्तु, उसके दो भाग हैं। एक भाग त्रिकाली शुद्ध आनन्द ध्रुव सृदश्य शक्ति का पिण्ड, उसे निश्चय आत्मा कहते हैं, वास्तविक आत्मा कहते हैं, यथार्थभूत आत्मा उसे कहते हैं; और उसकी दशायें जितनी होती हैं, उन्हें व्यवहारनय का आत्मा, व्यवहार का विषय कहते हैं। चन्दुभाई! और व्यवहार का आत्मा तथा निश्चय का (ऐसे) दो आत्मा होंगे? उसके दो पहलू हैं। जैसे सोना है सोना, वह शाश्वत् सोनेपना का स्वरूप सदृश्य ध्रुवपना रखकर और उसमें क्षण-क्षण में नयी-नयी कुण्डल, कड़ा आदि अवस्थायें होती हैं। वह अवस्था एक समय का सोना का एक अंश है। वह सोना का एक अंश स्वरूप, वैसा सोना का पूरा स्वरूप नहीं है। पूरा स्वरूप तो उसमें त्रिकाल एकरूप सोनापना रहे, वह शाश्वत् असली सोना उसे कहा जाता है।

इसी प्रकार आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में उसकी भिन्न-भिन्न दशायें, अवस्थायें, हालत होती है, परन्तु उस एक समय की हालत जितना वह आत्मा त्रिकाल नहीं है। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, आत्मा का अनुभव और आत्मा की चीज़ का—आनन्द का अनुभव करना है, अर्थात् कि जिसे दशा में धर्म प्रगट करना है, ऐसे धर्मी जीव की दृष्टि त्रिकाल चैतन्य आनन्द ध्रुवस्वरूप है, उसका आश्रय ले तो उसे धर्म होता है। धर्म कहो, सम्यग्दर्शन कहो, सम्यग्ज्ञान कहो। उसकी वर्तमान दशायें चलती हैं, उनका आश्रय ले तो उस दशा में से कहीं नयी दशा होती नहीं। बहुत सूक्ष्म!

यह तो दृष्टान्त देते हैं न, यह चौंसठ पहर की हर समय। छोटी पीपर में चौंसठ पहर की सामर्थ्य चरपराई की पूरी भरी है। वह छोटी पीपर का वास्तविक पूरा मूल स्वरूप है। परन्तु उसकी दशा में कालिमा है, अल्प चरपराई है, वह सब हालत है। उसमें से क्रम-क्रम से एक पहर, दो पहर, चार पहर, पच्चीस पहर, पचास पहर, चौंसठ पहर—

ऐसी दशा जो प्रगट हो, वह भी हालत अर्थात् पर्याय अर्थात् अंश है। उस अंश जितना पूरा उसका स्वरूप नहीं। वह अंश, वह एक समय की दशा और त्रिकाली जो चरपराई का एक स्वरूप, वह मूल चरपराई है, मूल पीपर है। उसी प्रकार आत्मा... इसने कभी उसकी दशा और दशावान, इसने उसका कभी सम्यग्ज्ञान किया नहीं और वह ज्ञान बिना उसमें अन्तर्मुख दृष्टि होती नहीं, अन्तर्मुख की दृष्टि बिना उसे सम्यग्दर्शन जो मोक्ष का साक्षात् कारण और जो सम्यग्दर्शन त्रिकाल द्रव्य निश्चय वस्तु जो आत्मा, उसका अन्तर अवलम्बन करे तो प्रगट होता है।

बहुत से पूछते हैं कि तब यह सब तुम कहते हो परन्तु हमारे सम्यग्दर्शन कैसे (हो) ? परन्तु भाई! यहाँ तो सवेरे-शाम यही लगायी है। यही लगायी है कि सम्यग्दर्शन, सम्यक् प्रतीति, सम्यग्दर्शन, सम्यक् देखना उसे कहा जाता है कि एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्णानन्द प्रभु, एक समय में शुद्ध की खान, सत्ता में पूर्ण निरुपाधिस्वभाव, उसका लक्ष्य और दृष्टि करे तो उसे सम्यग्दर्शन होता है। और पश्चात् भी वह सम्यग्दर्शन तो उसकी एक समय की दशा है। उस दशा के आश्रय से नयी दशा होती नहीं। क्योंकि दशा उत्पन्न हो, दूसरे समय में व्यय अर्थात् अभाव हो। जैसे सोना में कुण्डल की अवस्था (हो), अँगूठी की टलकर कुण्डल हो तो कहीं अँगूठी में से कुण्डल की दशा नहीं आती। जो अवस्था जाये, उसमें से नयी नहीं आती। परन्तु वह तो गयी। यह नयी अवस्था की खान ते त्रिकाली वह कायम रहनेवाला सोना है।

उसी प्रकार आत्मा की एक समय की दशा में एक भाव आ गया है, उपशमभाव, उसकी दशा में उपशमभाव, सम्यक्त्व पहला हो, परन्तु वह दशा है, वह एक समय की अवस्था है, वह त्रिकाली चीज़ नहीं। त्रिकाल चीज़ आनन्दसागर में अन्तर डुबकी लगाने से अन्तर ध्रुव चैतन्य को पकड़ने से जो दशा में उपशम भाव हो, उस उपशम भाव का भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। ओहोहो! बहुत सूक्ष्म। कभी इसने आत्मा के पंथ की मुक्तदशा कैसे हो, यह बातें सुनी नहीं। सब जो सुनी, वह बाहर की (सुनी है)। समझ में आया ? कहते हैं कि भाई! उस उपशमभाव का भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। अब क्षायिकभाव की बात अभी चलती है।

क्षायिकभाव के नौ भेद इस प्रकार हैं—८४ पृष्ठ, पहली लाईन। अर्थात् ?

क्षायिकभाव अर्थात् ? कि आत्मा में से राग और विकार का सर्वथा क्षय होकर, नाश होकर ऐसी दशा प्रगट हो कि जो वापस फिरे नहीं। उसके नौ भेद हैं। व्यवहारनय का विषय सिद्ध करते हैं। व्यवहार का विषय है और है, वह ऐसा है। दूसरा कोई कहे कि व्यवहार का विषय दूसरे प्रकार से है, तो उसके लिये निषेध करते जाते हैं। व्यवहार का विषय एक समय की पर्याय, उसके ऐसे प्रकार ये हैं। इसी प्रकार से व्यवहार का विषय है, तथापि वह त्रिकाल ज्ञानमूर्ति प्रभु ध्रुव, उसमें यह दशा का अंश अन्दर जाता नहीं, प्रवेश करता नहीं। और एक समय का अंश जो है, वह त्रिकाल सामान्य में प्रवेश करे तो वस्तु अंशरूप हो जाये और त्रिकाल ध्रुव चैतन्य अनन्तगुण की खानरूप आनन्द जो शुद्ध ध्रुव, वह एक समय की अवस्था में आ जाये तो क्षणरूप हो जाये। भारी सूक्ष्म भाई यह। समझ में आया ?

उस दशा के प्रकार वर्णन करते हैं। सर्वज्ञ ने कहे हुए, देखे हुए हैं, वैसे (वर्णन करते हैं)। यह दशा का वर्णन करके कहते हैं, इन दशा में त्रिकाली तत्त्व नहीं। उस दशा में अंश है, परन्तु वह अंश, वह धर्म का, उसका आश्रय करके शुद्धि की वृद्धि हो, ऐसा है नहीं। **क्षायिकसम्यक्त्व....** पहला बोल है। क्षायिक समकित अर्थात् ? आत्मा की प्रतीति अनुभव में ऐसी हो कि आत्मा अखण्ड शुद्ध ध्रुव चैतन्य की एकताबुद्धि में उसके विरोध की प्रकृति का अंश न रहे और जो दशा निर्मल प्रगट हुई, वह ऐसी की ऐसी केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी रहे, ऐसी प्रतीति को क्षायिक समकित कहते हैं। समझ में आया ? वह भी त्रिकाल द्रव्य के अन्दर नहीं। निश्चय आत्मा, वह व्यवहार आत्मा। गजब बात परन्तु भाई ! वे तो और व्यवहार आत्मा, वह छह काय के जीव, पृथ्वी और पानी और अग्नि, यह आगे आयेगा। वह तो नहीं, परन्तु यहाँ तो उसकी दशा का अंश जो प्रगट हो, वह पूर्ण चैतन्य ज्ञायक अनादि-अनन्त, एकरूप निश्चय सत्य प्रभु आत्मा, उसके अन्दर एक अंश का अभाव है। समझ में आया ? उस क्षायिक समकित के आश्रय से भी धर्म नहीं होता, धर्म नहीं टिकता और धर्म की वृद्धि क्षायिक समकित के कारण से होती नहीं। समझ में आया ?

कितने ही कहते हैं न कि भाई ! क्षायिक समकित हुआ, इसलिए अब तो उसे केवलज्ञान (होनेवाला ही है)। वह क्षायिक समकित के कारण से होनेवाला है। समझ

में आया इसमें ? नहीं, नहीं; तू वस्तु को समझता नहीं। अभी तुझे क्षायिक किसे कहना, इसकी खबर नहीं। श्रेणिक राजा, भगवान महावीर के समय में एक श्रेणिक राजा हुए। हजारों देश का राजा था। रानी चेलना, वह धर्म प्राप्त धर्मात्मा महिला थी और यह श्रेणिक एक बौद्ध को माननेवाला। फिर उसमें उसे तत्त्व का भान सन्त के योग से हुआ और फिर सर्वज्ञ परमात्मा की धर्मसभा में उसे क्षायिक समकित हुआ। अर्थात् कि जो श्रद्धा अनुभव में आत्मा की हुई, वह अब जानेवाली नहीं। और वहाँ समवसरण में शुभभाव से तीर्थकरगोत्र उपार्जित किया, तथापि वह केवलज्ञान और परमात्मदशा जब प्रगट करेगा, वह क्षायिक समकित और तीर्थकरगोत्र बँधा, उसके आश्रय से नहीं। समझ में आया ? प्रभुभाई ! एक क्षायिक समकित एक दशा है। वह क्षायिक समकितवाला अवश्य मोक्ष होगा, परन्तु वह क्षायिक समकित के आश्रय से मोक्ष नहीं होगा। कहो, मोहनभाई ! समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : उसे सुख का अनुभव तो होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव तो सदा ही होता है, तथापि उस अनुभव के आश्रय से आगे अनुभव नहीं बढ़ता। वह त्रिकाल वस्तु ज्ञायकमूर्ति आनन्द की खान ध्रुव आत्मा है, उसके ऊपर आश्रय करे, तब आनन्द की शुद्धि की वृद्धि होती है। आहाहा ! समझ में आया ? ... कहो, समझ में आया इसमें ? कहीं कभी सुना न हो।

यथाख्यातचारित्र... दूसरा बोल। वह समकित की बात की। दूसरा यथाख्यात। आत्मा का जैसा अन्तर अविकारी स्वरूप है, ऐसी दशा में प्रगट हो दशा, उसे यथाख्यात—यथा-प्रसिद्ध चारित्रदशा हुई। अन्तर के अनुभव के आश्रय से, अन्तर के द्रव्य के अन्तर में नजर करने से दशा में यथाख्यातचारित्र हुआ, वह भी एक समय का आत्मा पर्यायरूप है। उस यथाख्यातचारित्र का आश्रय करने जाये तो विकल्प उठते हैं। नीचे तो होता नहीं परन्तु उस यथाख्यातचारित्र का अंश, वह त्रिकाली द्रव्य में नहीं। यहाँ तो ऐसा कहना है न ! जीव वस्तु जिसे द्रव्य कहते हैं निश्चय सत्धाम, सत्धाम सत्ता अनादि-अनन्त एकरूप वस्तु, उसमें निर्मल अंश प्रगट हुए, वे त्रिकाल में नहीं। यह पर्यायबुद्धि अर्थात् अवस्थाबुद्धि अर्थात् व्यवहारनय का विषय है। निश्चय त्रिकाल जो आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, जिसका आश्रय करने से आत्मा की मुक्ति होती है, वह यथाख्यातचारित्र का आश्रय करने से नहीं

होती अथवा उतना अंश वह पूर्ण आत्मा नहीं। गजब बात, भाई! दोनों अंश इसे निर्णय करना पड़ेंगे और उस एक अंश का आश्रय छोड़े और दूसरे का आश्रय करे, तब उसे आत्मज्ञान और आत्मधर्म होता है।

केवलज्ञान और केवलदर्शन... भारी कठिन बात! वीरजीभाई! वीरजीभाई कहते थे एक बार। केवलज्ञान, वह व्यवहार का विषय। यह सुनकर भड़के। आहाहा! भगवान आत्मा... यह चौंसठ पहरी दशा हुई न पीपर की, उतनी पीपर नहीं, वह तो एक समय की दशा हुई। वह नयी दशा उत्पन्न हो, व्यय हो, उत्पन्न हो, नाश हो और चौंसठ पहरा चरपरा अन्तर तत्त्व, परम तत्त्व, वह तो ऐसा का ऐसा रहता है। वह चौंसठ पहरी का अंश जितना पूर्ण तत्त्व नहीं, अन्दर प्रवेश करता नहीं, है उसका तत्त्व। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्ध आनन्दकन्द केवलज्ञान घन का आश्रय करके केवलान हुआ, वह केवलज्ञान पर्याय का विषय, व्यवहारनय का विषय है। मोहनलालभाई! गजब यह। क्योंकि केवलज्ञान उत्पाद-व्ययरूप है। नयी अवस्था हो, पुरानी जाये, नयी हो, पुरानी जाये। केवलज्ञान में ऐसा होता है। एक समय की दशा है। एक समय की दशा त्रिकाल द्रव्य के अन्दर नहीं है। ऐसा चैतन्यघन ज्ञानमूर्ति है, उसमें वह अंश नहीं। समझ में आया? नये (लोगों को) तो ऐसा लगे कि क्या यह उस धर्म की बात होगी ऐसी? अरे! भगवान! तेरे घर की और तुझे समझ में आये, ऐसी है। यह आत्मायें अनन्त, यह समझकर मुक्ति को पाये। अनन्तानन्त समझकर पाये हैं। वह पा सकता नहीं और पाने के योग्य नहीं, ऐसा भगवान ने नहीं कहा। समझ में आया?

कहते हैं कि केवलज्ञान... आहाहा! केवलज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान, पूर्ण ज्ञान अर्थात् भावमोक्ष। जिसके लिये जगत के प्राणी की सम्यक्त्व पाने के पश्चात् भी धगश (रहे)। तथापि वह केवलदशा एक समय जितनी है। एक समय जितनी। वह केवलज्ञान दूसरे समय में दूसरे काल में वह रहता नहीं। दूसरे काल में नया, तीसरे काल में नया, चौथे में नया और पुराना व्यय होता है। इसलिए केवलज्ञान, वह त्रिकाल द्रव्यस्वभाव चैतन्यधाम में वह नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह इस जगत को कठिन। अभी तो कषाय को मन्द करें, दया, दान, व्रत पालन करें तो समकित होगा और धर्म होगा। वह

तो कहीं रह गया। भगवान! तेरा चैतन्यधाम पड़ा है अन्दर। अनन्त गुण का धाम एकरूप वस्तु, उसकी वर्तमानदशा (उसके अन्दर नहीं)।

गाय का रस (गौरस) है, उसमें वह गाय का रस तो कायम रहता है, परन्तु उस रस की दशा बिना रस नहीं होता। उसकी दशा दूध, घी, दही, मक्खन, वह सब दशायें हैं, परन्तु उन दशाओं का अंश, वह घी जो शाश्वत तत्त्व है, गौरस—गाय का रस है, उसमें एक अंश उसमें नहीं। वह तो दशा है, उसकी हालत है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा का केवलज्ञान एक समय की दशा तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष जाने। प्रत्यक्ष आनन्द का अनुभव, परन्तु वह एक समय की दशा है, वह त्रिकाली चैतन्यधाम निश्चय वस्तु जो है, सत् साहेब प्रभु आत्मा, उसके अन्दर एक ऐसी दशा नहीं।

मुमुक्षु : आनन्द....

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द भले (हो)। यह कहाँ प्रश्न है? यहाँ तो त्रिकाल में वह नहीं। एक समय का आनन्द है, वह त्रिकाल में नहीं। यहाँ तो शक्ति जो त्रिकाल है, उसका आश्रय करनेयोग्य वह निश्चय आत्मा है, ऐसा सिद्ध करने के लिये इन पर्यायों की दशाओं का अस्तित्व सिद्ध करते हैं, अस्ति सिद्ध करते हैं, परन्तु वह अस्ति त्रिकाल चैतन्य की अस्ति में नहीं, इसलिए उसका लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

यह सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, उसकी बात चलती है। कोई क्रिया करने से होता होगा? यह क्रिया है। ऐसा बस धीरे-धीरे बोलते जाओ न। यह वकील हैं सब। आत्मा के जितने गुण हैं, वह कोई भी कार्य बिना रहते नहीं। क्या कहा? जो आत्मद्रव्य में जितने अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि गुण—शक्तियाँ हैं, वे कार्य बिना रहते नहीं। उस गुण का कार्य जो यहाँ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र (होता है), तो कहते हैं कि कार्य जितना कारणप्रभु नहीं है। कारणपरमात्मा स्वयं आत्मा, वह त्रिकाल रहनेवाली चीज़, उसमें कार्यदशा (नहीं है)। वह कार्यपरमात्मा हुआ न यह केवलज्ञान अर्थात्? समझ में आया? यह और क्या? कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा। नवरंगभाई!

जगत के प्राणी को यह चैतन्यचमत्कार वस्तु पूरी पड़ी है, वह क्या है, इसकी खबर नहीं। बाहर में गोता मारते हैं। यहाँ से लूँगा... यहाँ से लूँगा... यहाँ से लूँगा। प्रभु!

परन्तु तेरे अन्तर धाम में इतनी परिपूर्णता एकरूप पड़ी है कि केवलज्ञान का एक अंश उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह अस्ति-नास्ति अनेकान्त। केवलज्ञान की दशा एक समय की अस्ति—मौजूदगी होने पर भी त्रिकाल चैतन्यधाम वस्तु एकरूप रहनेवाली, उसमें वह नहीं। ऐसे आत्मद्रव्य का—स्वभाव का अन्तर आश्रय करना, वह सम्यग्दर्शन और अनुभव का कारण है। केवलज्ञान तो छद्मस्थ को नहीं, परन्तु जिसका हो, उसका लक्ष्य करने जाये पर का, तो राग उत्पन्न होता है। तब उस दशा की पूर्णता नहीं, वस्तु की पूर्णता नहीं, वस्तु की पूर्णता नहीं। वस्तु जो त्रिकाल चैतन्यधाम भगवान्, उसके अन्दर यह केवलज्ञान का सद्भूतव्यवहारनय का विषय उसमें नहीं। है, ऐसा सिद्ध करते जाते हैं और त्रिकाल में नहीं, ऐसा सिद्ध करते जाते हैं। यह त्रिकाल द्रव्य का आश्रय अन्तर्मुख ले, उसे सम्यग्दर्शन होता है। नवरंगभाई!

यह मोक्षमार्ग है न? नियमसार है न? यह नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग। तो कहते हैं कि मोक्षमार्ग प्रगटे कैसे? कि ऐसी पर्याय के आश्रय से प्रगटे नहीं। वह त्रिकाल चैतन्यधाम भगवान्, उसमें अन्तर्मुख दृष्टि करने से वह दशा प्रगट होती है। वह मोक्षमार्ग को मोक्ष का कारण, वह दशा व्यवहार से कही जाती है। वास्तव में मोक्ष का कारण तो त्रिकाल द्रव्य है, उसे कहा जाता है। ओहोहो! निश्चयमोक्षमार्ग मोक्ष का कारण, वह व्यवहार। राग और व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प, वह तो कहीं रह गये बन्ध का कारण, यह सवेरे चलता है, परन्तु यह निश्चयमोक्षमार्ग जो द्रव्य के आश्रय से प्रगट हो, अन्तर वस्तु के आश्रय से, वह मोक्षमार्ग भी मोक्ष का कारण कहना व्यवहार है। क्योंकि वह पर्याय है। पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय नहीं होती और उस पर्याय में ऐसी सामर्थ्य नहीं कि नयी पर्याय को प्रगट करावे। आहाहा! भारी सूक्ष्म इसमें। वह पर्याय—अवस्था प्रगट होने के लिये त्रिकाल चैतन्यप्रभु के अन्तर में एकाग्र होने से यह हल होता है। इसलिए त्रिकाली द्रव्य के अन्दर यह पर्याय नहीं। ऐसे केवलदर्शन। कहो, प्रकाशचन्द्रजी! क्या करना? झगड़ा बहुत चलता है। उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार और क्रमबद्ध पाँच की बात चलती है न अभी। आज एक लेख आया है। यह बात तो हिन्दुस्तान में अब घर-घर (होने लगी है)। पूछते तो हैं वे। वीरवाणी में आया है। यह सब अब तो कहे, निमित्त से उपादान में हो या

उपादान से हो ? निश्चयधर्म या वह व्यवहारधर्म ? और क्रमबद्ध होता है या नहीं ? इन पाँचों ने तो पूरे हिन्दुस्तान में हलचल कर दी है। दो व्यक्ति आये, उनको मैंने समाधान दिया, परन्तु दूसरे वापस तीन आये। यही बात लेकर आये। भाई! मुझे समय नहीं अब। ऐसा करके जवाब दिया। ठीक!

भाई! यहाँ तो कहते हैं कि तेरी अशुद्धदशा में विकार हो, वह भी तेरे स्वतन्त्र पर्याय का कार्य है, निमित्त हो कर्म, यह किसने (इनकार) कहा ? और क्षायिकदशा हो, वह भी त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से कारण में से कार्य आता है। त्रिकाल कारणपरमात्मा स्वयं है अन्तर स्वरूप में कारणशक्ति त्रिकाल, जिसे कारणजीव कहते हैं, जिसे कारणपरमात्मा कहते हैं, जिसे कारणभगवान कहते हैं, उसका अन्तर में आश्रय करने से कार्यपरमात्मा—केवलदर्शन होता है, उस केवलदर्शन का अंश वह त्रिकाली कारणप्रभु में नहीं है। कारणप्रभु कौन ? दूसरा नहीं, हों! तू का तू कारण और तू का तू कार्य। आहाहा! पहले तो मस्तिष्क में समझना (कठिन पड़े)। इसने कभी स्वतन्त्रता और यह क्या है, उसकी शोध-खोज के लिये (समय लिया नहीं)। जगत के सब विज्ञान और यह खोल-खोलकर शोधने लगे, परन्तु यह विज्ञान का कन्द कैसा है ? उसकी दशा कैसी है ? (उसकी शोध की नहीं)। दशा की स्वीकारता के साथ वह दशा त्रिकाल दशावान के अन्दर नहीं है, इसलिए उसे परमार्थ से जीव नहीं कहा जाता। वह केवलज्ञान प्राप्त को परमार्थ जीव नहीं कहा जाता। आहाहा! भारी कठिन! बापू! क्या अपेक्षा है ? एक समय का अंश है न, और त्रिकाल चैतन्य प्रभु जिसमें से प्रवाह शुद्धता का, ऐसे केवलज्ञान के काशीफल पका ही करते हैं। जिस बेलड़ी में से (पका करते हैं), ऐसा ध्रुव चैतन्य सत्... सत् प्रभु, उसमें यह अंश है नहीं; इसलिए अंश का आश्रय करनेयोग्य नहीं।

अभी तो क्या कहे ? भाई! अपने को नहीं केवल (ज्ञान) परन्तु भगवान को केवलज्ञान और केवलदर्शन है न! उनकी भक्ति करें, तब तो मोक्ष होगा या नहीं ? आहाहा! (न होता हो) तो फिर यह भक्ति नहीं करे लोग। अरे सुन न अब! अनन्त बार की परन्तु अभी ऐसा सुनेगा (तो करेगा नहीं)। परन्तु उसे भाव आये बिना रहता नहीं। जब तक पूर्ण दशा न हो, वहाँ आये बिना रहे नहीं।

अब एक दूसरी बात है जरा, कि कोई पूजा, भक्ति का भाव हो और सुनकर, ऐसा हुआ कि मुझे तो अधिक तत्त्वचिन्तन में रहना है। तो उस शुभभाव को उससे हीन गिनकर यह ऐसा करता नहीं, यह ऐसा करता नहीं, इसलिए यह सुनने के फल से वह शुभभाव तत्त्व के विचार में रहता है और वह शुभभाव होता है, उसकी तो उसे गिनती नहीं। क्या कहा, समझ में आया इसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक में, भाई! लिया है न कि भाई! भक्ति में तो तू राग करे तब होता है, उसकी अपेक्षा करणानुयोग के विचार में रहे तो राग बहुत मन्द होता है। भक्ति होती है, परन्तु तू बहुत वजन वहाँ दे देवे और किसी का शुभभाव भक्ति का पहले हो और पश्चात् वह भाव न हो और दूसरा शुभभाव विशेष होता हो तो उसने यह छोड़ दिया ऐसा सुनकर। यह तुझे समझ में आता नहीं। नवरंगभाई! अरे! भगवान! तेरी यह सुलटाई का भी पार नहीं और उसकी उलटाई का भी पार नहीं। भाई! परन्तु उसे उसके शुभभाव के लिये उसे ऐसा लगा कि मुझे अभी इसकी अपेक्षा भगवान के दर्शन किये। फिर एक घण्टे, दो घण्टे शास्त्र वाँचन में, उसमें व्यतीत करना है। तो वह घण्टे भर साथ में खड़ा न देखे (तो ऐसा कहे), ऐ... इसने भक्ति छोड़ दी। अरे भगवान! तुझे कुछ आँख देखने की व्यवहार की आँख है नहीं। समझ में आया? प्रकाशचन्दजी! यह सुनकर ऐसा हुआ। यह सुनकर हुआ नहीं, सुन न अब! तुझे क्या खबर पड़े? सत् सुनकर कोई भ्रष्ट होता होगा तो उसने सुना ही नहीं। और वह भाव पलटने पर दूसरे प्रकार का देखा, इसलिए भ्रष्ट हुआ, ऐसी तेरी नजर से देख (तो वह) तेरी उल्टी दृष्टि है। प्रभुभाई! समझ में आया?

कहते हैं कि यह केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त परमात्मा की ओर के जुड़ान का राग भी शुभ है और केवलज्ञान और केवलदर्शन का लक्ष्य करने जाये तो शुभराग है। और उसकी अपेक्षा कोई तत्त्व का विचार करने में अधिक रुके तो उसमें शुभभाव बहुत प्रकार का ऊँचा होता है। उस शुभभाव की तारतम्यता को न जानकर, वह शुभ जहाँ छूटा (वहाँ ऐसा कहे), इसने शुभ छोड़ दिया और यह तो ऐसा हो गया। भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! परिणाम की विचित्रता आत्मा की उसमें क्या परिणाम किस जाति के हैं, उसकी तुझे परीक्षा नहीं। उसमें परिणाम से रहित आत्मा, शुभाशुभभाव से त्रिकाल रहित आत्मा की दृष्टि का अवकाश तुझमें रहता नहीं। समझ में आया?

कहते हैं न दीपचन्दजी अनुभवप्रकाश में, अरे आत्मा! तेरी अशुद्धता की भी बलिहारी है। बड़ी-बड़ी महिमा कि तू जिस मान्यता में गया, तीन लोक के नाथ तीर्थकर की ध्वनि आवे तो भी तू छोड़े, ऐसा नहीं है। इतनी तेरी अशुद्धता भी बड़ी, तेरी शुद्धता भी बड़ी। शुद्धता की तो क्या बात करना? यह शुद्धभाव की बात चलती है न!

भगवान आत्मा, ओहोहो! जिसमें नजर डालने से निहाल हो। समझ में आया? जिसमें क्षणमात्र भी दृष्टि देने से अपूर्व आनन्द की स्फुरणा हो, ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा तेरा अन्दर है, उसके अन्दर प्रगट हुई अवस्था उसे स्पर्शती नहीं। आहाहा! वह एक समय की अवस्था त्रिकाली को स्पर्श तो दोनों एक हो जाते हैं। यह प्रवचनसार में अपने आ गया है। अलिंगग्रहण की व्याख्या चली तब (आ गया है)। अरे! तेरे तत्त्वज्ञान के विषय और उनका भान और उनकी अद्भुतता इसने कभी लक्ष्य में ली नहीं। सिरपच्ची, अब हड्डियाँ, यह तो पर की हैं। उसके कारण से बदले और उसके कारण से (जाये)। भिन्न-भिन्न काम तेरे कारण से उसमें नहीं और उसके कारण से तुझमें नहीं। यह तो हड्डियाँ जड़ की चीज़। वह जड़पना स्वयं काम करे जड़ की दशा में। तेरा काम नहीं जड़ को रखना। डॉक्टरों को कठिन पड़े परन्तु यह। छबीलभाई नहीं आये? नहीं आये होंगे। उन सबको कठोर पड़े, ऐसा है। भाई नहीं अभी। डॉक्टरपना चलता होगा वहाँ। समझ में आया? यह मिट्टी, उसका तू हो स्वामी (तो) जड़ है, कहते हैं। निर्जरा अधिकार में कहते हैं कि यह मिट्टी का तू स्वामी होने जाये तो एक जड़ का स्वामी जड़ और दूसरा तू। दो स्वामी हुए उसके। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि तुझमें दशा में प्रगट हुई अवस्था, भले साधक जीव को केवलज्ञान नहीं, परन्तु केवलज्ञान हो, वह भी एक समय की दशा है, वह त्रिकाली वस्तु नहीं; इसलिए त्रिकाली वस्तु में केवलज्ञान और केवलदर्शन नहीं।

अब अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान,... एक दान की लब्धि प्रगट हो आत्मा की दशा में। स्वरूपदान देने की पर्याय। स्वरूपदान। आत्मा अपने चैतन्यधाम को अन्तर में सम्हालता हुआ, उसकी दशा में निर्मलता, शुद्धता, आनन्दता आवे, वह आनन्द स्वयं दे और स्वयं ले, ऐसी दान की वर्तमानदशा भी त्रिकाल में नहीं। समझ में आया? ऐसे लाभ... एक समय की दशा में शान्ति और आनन्द का लाभ अन्तराय कर्म के क्षय से

और पुरुषार्थ की जागृति से (हो), वह लाभ, बाहर के लाभ की यहाँ धूल में भी बात नहीं। समझ में आया? यह पाँच पैसा मिला, पाँच की तो अभी कहाँ गिनती? पाँच लाख, दस लाख, बीस लाख और पचास लाख।

मुमुक्षु : वह तो गरीब कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गरीब कहलाये। अभी तो १०-२० हजारवाला तो गरीब कहलाये। बदल गया है न! पहले तो दस हजार की पूँजीवाला गाँव का बड़ा सेठ (कहलाता था)। हाँ, हाँ, यह तो पूरी लाईन बदल गयी। उसकी मूल सम्पदा की खबर नहीं होती, इसलिए बाहर की सम्पदा के ऊपर आँख टाँकने लगे सेठाई की। बाहर की सम्पदा के ऊपर आँख टाँकने लगे कि यह बड़ा सेठिया और यह बड़ा और यह बड़ा। कहते हैं कि वह लाभ तो अन्तराय कर्म से कोई विघ्न था और कदाचित् आवे, वह तो आत्मा में नहीं, परन्तु आत्मा का लाभ जो अन्तर शुद्ध चैतन्य के धाम में एकाकार होने से दशा प्रगट हो, वह लाभ की दशा, वह त्रिकाल द्रव्य में नहीं। समझ में आया? परन्तु यह क्या है? यह किस प्रकार की धर्मकथा? बापू! तेरा अलौकिक वीतराग धाम, उसमें कैसे जाया जाये, उसकी यह बातें हैं। आहाहा!

भोग... आत्मा अपनी शान्ति को भोगे। आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है, बल नाम का गुण है कि जो वीर्य स्वरूप की रचना का कार्य करे, उसे वीर्य कहते हैं। शरीर की वीर्य रेत जो जड़, अजीव, मिट्टी, धूल, उसे वीर्य नहीं कहते। एक समय की वीर्य की पुरुषार्थ दशा, वह भी वास्तविक वीर्य नहीं। त्रिकाल आत्मा के अन्दर एक आत्मबल नाम की शक्ति पड़ी है कि जो बल अपनी शान्ति और पूर्णानन्द और ऐसी स्वभाव की शुद्धि की रचना का कार्य करे, उसे बल कहते हैं। कहते हैं कि ऐसे वीर्य से प्रगट हुआ आत्मा के आनन्द का भोग। ओहो! शरीर का भोग नहीं, वह तो जड़ है। वह तो अज्ञानी भी उस शरीर को तो भोग सकता नहीं। बराबर होगा? यह होते हैं न मावा के जामुन। ऐसे गलगलिया हो जाये एक बार कोई कहता था। गत वर्ष बनाये थे न वहाँ। आहाहा! और गरीब व्यक्ति देखे तो कहे आहाहा! ऐ... वह विष्टा छह घण्टे बाद की। यह विष्टा के पूर्व की अवस्था, उसकी तू महिमा करे। सुन! आहाहा! वह भोग नहीं। वह अज्ञानी भी उसका भोग नहीं कर सकता। उसके ऊपर लक्ष्य करके राग करे, न राग उस राग को

भोगे। जड़ को तो तीन काल में ज्ञानी और अज्ञानी कोई भोग नहीं सकता। बराबर होगा मोहनभाई? यह मोहनथाल को क्या कहा जाता है यह सब? ठीक कहते हैं यह। बोला जाये ऐसा नहीं। न्याय के आगे कुछ बोला जाये ऐसा है? वह जड़ को भोगे शरीर को, यह दाल, भात को, रोटी को, स्त्री को, मकान को (भोगे), हराम आत्मा में होवे तो। अज्ञान में भी वह राग और द्वेष को अनुभव करता है और मानता है कि मैं उसे भोगता हूँ। मूढ़ है, दृष्टि में विपर्यास है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि राग और द्वेष का भोग, वह तो स्वरूप में नहीं, परन्तु वर्तमान आनन्द के अंश के अनुभव का भोग, वह त्रिकाल द्रव्य में नहीं। एक अंश त्रिकालरूप नहीं हो जाता। त्रिकाल चैतन्यधाम, वह अंश में आ नहीं जाता। क्या कहा?

मुमुक्षु : छूटता क्यों नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु करता नहीं इसलिए। क्या छूटता नहीं? कर्ता होकर करे और कहे कि छूटता क्यों नहीं? अब करना क्या? बबूल को बांध में भरे। 'अरे! इस बबूल से छुड़ाओ रे छुड़ाओ। क्यों नहीं छूटता?' तू हाथ चौड़ा करता नहीं इसलिए। उस तोता का दृष्टान्त दिया है। तोता-तोता। वह डोरी होती है न डोरी। उस डोरी में नलिनी होती है पीतल की इतनी छह-छह, आठ-आठ की। नलिनी-नलिनी। उसमें तोता आया हो ऐसे बैठने। ऐसे पैर रखे और नलिनी हो गयी ऐसी एकदम (उल्टी)। हाय... हाय... पकड़ा गया। इस नलिनी ने मुझे पकड़ लिया। क्योंकि ऐसा बैठा हुआ। नलिनी तो फरफर हो जाये न ऐसे। ऐसे फिर जाये। पैर पकड़े तो ऐसे हो गया। हाय.. हाय.. नलिनी ने मुझे पकड़ा। नलिनी ने पकड़ा है? कहो, समझ में आया? तब कैसे पकड़ में आया? परन्तु पकड़ में आया है अब कैसे पकड़ में आया क्या? कर्ता होकर कार्य करे और कैसे कार्य किया? ऐसे अज्ञानी राग और द्वेष के भोग में अपने आत्मा को भोग माने, स्वतन्त्र है अज्ञान में। विपरीतता में भी वह स्वतन्त्र है।

यहाँ तो आचार्य दूसरी बात कहते हैं। यह जो भोग एक बार पर्याय को भोगा जाये, वह दशा त्रिकाल में नहीं। बारम्बार भोगा जाये, वह भी दशा त्रिकाल में नहीं। ऐसे जीव को निश्चय आत्मा कहा जाता है, उसे सच्चा आत्मा परमात्मा स्वयं कारणप्रभु कहा जाता है। यह उसके ऊपर दृष्टि देने से समकित होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, सम्यक्चारित्र

होता है, शुक्लध्यान होता है और केवलज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त तीन काल-तीन लोक में दूसरा कोई उपाय नहीं। बहुत बात, भाई!

मुमुक्षु : अनन्त-अनन्त काल जाता रहा। अब कितना जायेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा पकड़ेगा इतना जायेगा। विपरीतता भी वह तोता नहीं छोड़े तब तक जायेगा। परन्तु यह समझे कि यह मैंने भराया है ऐसा ... एकदम निकाल डाले, हो गया। इसी प्रकार पकड़ कर रखी है शुभ और अशुभ और जड़ की, वह पकड़ स्वयं छोड़े तो जायेगी, वरना कहीं अपने आप जाये, ऐसा नहीं है।

वह बन्दर का दृष्टान्त नहीं दिया ? बोर थे बोर उसमें—घड़े में बहुत। परन्तु मुख सकड़ा। हाथ तो घुसा ऐसे। परन्तु मुठ्ठी पकड़ी। हाथ घुसा परन्तु वह मुठ्ठी पकड़ी, वह कहीं निकले अब ? यहाँ बड़ा बोर था। २५-५० पकड़े अन्दर हाथ डालकर। यह मुझे पकड़ा बोर ने। अरे! पकड़ा नहीं, तू पकड़ाया है। इसी प्रकार बन्दर की भाँति... ऐसा होगा ? नवरंगभाई! यह बन्दर जैसा होगा ? यह तो श्रीमद् ने कहा है, नहीं ? मनुष्यपने का जहाँ लेख लिखा वहाँ (कहा है)। १६ वर्ष में मोक्षमाला में। तुझे मनुष्य कैसे कहना ? कि यह हमको दो आँखें हैं, दो कान हैं, यह दो पंजे हैं, यह है, यह है। तो कहे बन्दर को भी यह तो है। परन्तु उस बन्दर को तो एक लम्बी पूँछ अधिक है, इसलिए उसे बड़ा मनुष्य कहना। महामनुष्य उसे कहना। यदि यह दो आँख और इनके कारण से मनुष्य कहना हो तो इनसे एक पूँछ साढ़े तीन हाथ का, तीन हाथ का लम्बा, उसके पास है। तेरी अपेक्षा तो उसे महामनुष्य कहा जाये ? ऐसा है नहीं। मन्यते इति मनुष्यः ज्ञायते इति ज्ञान मनुष्यः। आत्मा राग और पर से भिन्न है, ऐसा अन्तर विवेकी ज्ञान करे, उसे मनुष्य कहा जाता है। बाकी मनुष्या स्वरूपेण मृगा चरन्ति। वे मनुष्य के रूप में हिरण चर रहे हैं। आहाहा! ऐई! मूलजीभाई! यह सब सेठिया भी ऐसे होंगे ? कहते हैं। मनुष्या स्वरूपेण मृगा चरन्ति। हिरण... यह तो दृष्टान्त की बात कही। यदि ऐसी आँख उसे हो तो उसे बड़ा मनुष्य कहना। बापू! ऐसा नहीं है। मन्यते अन्दर मनुष्य ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु जिसकी दशा में एक अंश भी निर्मल (प्रगट हो), वह त्रिकाली चीज़ में नहीं। ऐसी चीज़ का भान होना, उसे मनुष्य और विवेकी कहा जाता है। वह आँख फूटी हो तो भी उसे अवरोधक नहीं।

नीचे कहेंगे बाद में। नरक में नारकी है न। बहुत माँस और मदिरा खाया-पिया हो, बहुत लम्पटी हो और ऐसे सब पाप के परिणाम से एक गति नरक की है नीचे, वहाँ जीव अनन्त बार जा आया है। ऐसे भाव करके अनन्त बार गया है। समझ में आया? वहाँ आगे इतनी पीड़ा। शरीर के रजकण ऐसे पारा की भाँति बिखर जाते हैं। इतनी पीड़ा। अरे! उसे खबर नहीं। उसकी वर्तमान नजरों के आड़े त्रिकाल में मुझमें क्या पड़ा है, उसकी उसे खबर नहीं, विचारणा की नहीं। यह कर्जा होता है न कर्जा? पाँच-पच्चीस लाख का कर्जा हो, पाँच-पचास हजार का। तो साहूकारवाली बहियाँ देखे। कि भाई! यह कितना कर्जा और अपने पहुँचेगा या नहीं? परन्तु जिसे ला लेनी हो और दिवाला निकाला हो वह? कि नहीं पहुँचें तब बहियाँ रखूँगा कोर्ट में। भाई! हम पहुँचते नहीं। परन्तु यह दिवालिया वहाँ बहियाँ ले जाये। जिसे ऐसे साहूकार की गरज है, वह बहियाँ देखे। मेरा लेना कितना? पैसे कितने? आयेंगे कितने? जायेंगे कितने? क्या है यह? मैं पहुँच सकूँगा या नहीं? दिवाला निकालना हो, वह बहियाँ नहीं देखता। इसी प्रकार जिसे चौरासी के अवतार का दिवाला निकालना है, वह आत्मा को नहीं देखता। शास्त्रकार क्या कहते हैं आत्मा की जाति? (उसे नहीं देखता)। होना हो वह होगा।

मुमुक्षु : खटमल मारने की दवा खाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, खाता है। सब सुनी है न। वहाँ मौसीबा बैठी है? बहुत प्रतिकूलता हो न तो खटमल की दवा खाये। अभी आया था न अखबार में, आया था। सब बातें बहुत आती है यहाँ तो। मौसीबा बैठी है कि आओ भानेज! पोढ जाओ। वहाँ है मौसीबा कहीं? प्रतिकूलता के ऐसे योग को भी सहन करने की सामर्थ्य नहीं और वह कर्जदारपना, वहाँ दुकान बदले तो कर्जा छूट जाता होगा? यह दुकान दूसरी हो तो कर्जा छूट जाये? यहाँ से छूटे, परन्तु छूटे कहाँ? राग और पुण्य के विकल्प से जो आत्मा एक माना, उससे छूट (तो) तेरा छुटकारा (होगा)। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **भोग, उपभोग, और वीर्य**। यह आत्मा में अनन्त वीर्य प्रगटे, वह आत्मा के मूल त्रिकाल स्वरूप में उतना अंश (नहीं)। ओहोहो! अनन्त चतुष्टय प्रगट हो, वह भी एक समय की त्रिकाल की दशा है न! त्रिकाल में तो ऐसा अनन्त-अनन्त सामर्थ्य पड़ा है। परन्तु ऐसे सामर्थ्य का स्वामी, सहज चैतन्यस्वामी है, उसकी इसने

प्रतीति की नहीं। वह वीर्य। यह नौ बोल हुए। यह नौ बोल मूल चैतन्य के वस्तु शाश्वत् चैतन्य द्रव्यस्वभाव निश्चय आत्मा, उसमें व्यवहार आत्मा के नौ बोल का अभाव है। बराबर होगा, दामोदरभाई? केवलज्ञान का अभाव?

सामान्य और विशेष दो दशायें। उसमें सामान्य और विशेष यदि भिन्न न रहे तो सामान्य और विशेष सिद्ध नहीं होते। क्या कहा? त्रिकाल वस्तु जो एकरूप है और उसकी दशा वर्तमान एक समय जितनी है। दोनों स्वयंसिद्ध किसी की अपेक्षा बिना न हो तो दो वस्तु की सिद्धि नहीं होती। और दो वस्तु साबित होने पर भी वह एक समय की दशा विशेष, वह त्रिकाल सामान्य में नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! यह समझना नहीं, यह अन्तर में सम्यक्त्व प्रगट होने की कला की गति करता नहीं। छोड़ यह। स्त्री छोड़, पुत्र छोड़, यह छोड़। अब, छूटे ही पड़े हैं, कब घुस गये थे वहाँ? वे तो बेचारे उनके कारण से काम कर रहे हैं। उनके कारण से? आये भानुभाई आये थे, चले गये उनके कारण से। दशा कौन रखे और कौन रखे और कौन पाले? यह संसार भी...

कहते हैं, अरे! तुझमें एक यह नौ बोल जो कहे, वह सब दशायें हैं। दशावान जो त्रिकाली, जिसमें नजर करनी है, जिसे सच्चा आत्मा कहा जाता है। और आत्मा सच्चा और खोटा? यह नौ प्रकार की दशा, वह व्यवहार का विषय है। व्यवहार, वह अभूतार्थ है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। क्योंकि एक समय का अंश है। त्रिकाल सत्यार्थ चैतन्यधाम, वह त्रिकाल सत्य है, उसे निश्चय आत्मा कहा जाता है। उसकी शरण ले, सम्यग्दर्शन से केवलज्ञान (तक), वहाँ से प्राप्त हो ऐसा है।

अब क्षयोपशम। किंचित् मलिन और किंचित् निर्मल, ऐसी दशा होती है। यह क्षायिक के नौ बोल कहे, वह तो अत्यन्त निर्मल की बात की, परन्तु किंचित् मलिन और किंचित् निर्मल—ऐसी दशा आत्मा में होती है। उसमें एक मतिज्ञान,... सम्यक् मतिज्ञान। उस मतिज्ञान द्वारा आत्मा पकड़ में आये, ऐसा जो मतिज्ञान। वह मतिज्ञान भी आत्मा के त्रिकाल द्रव्य में नहीं। अरे रे! यह गजब बात, भाई! वह श्रुतज्ञान... वह शास्त्र का भावश्रुतज्ञान। यह पृष्ठ नहीं। अन्दर आत्मा अपने आत्मा के शुद्धता का वेदन करे श्रुतज्ञान से। भावश्रुत, भावउपयोग। श्रुत—जिसके द्वारा शान्ति प्राप्त हो, ऐसा श्रुतज्ञान, वह श्रुतज्ञान भी वर्तमानदशा है। वह त्रिकाल में, वह व्यवहारनय का आत्मा सही, विषय

वर्तमान का त्रिकाल द्रव्य के अन्दर वह है नहीं। यहाँ शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाल तत्त्व जो शुद्ध है अपना, उसमें यह नहीं, ऐसा कहकर निश्चय आत्मा का आश्रय कराना चाहते हैं। समझ में आया ? और शुद्धभाव की सत्ता का स्वीकार कराते हैं। तूने कभी सत्ता का, शुद्ध का स्वीकार किया नहीं।

अवधिज्ञान.... एक अवधिज्ञान होता है। उघाड़ हो तो सामनेवाले के मन की बात जान सके। स्वर्ग-नरक यहाँ बैठे जान सके अन्दर। ऐसी एक अवधि अर्थात् मर्यादित ज्ञान का विकास पर्याय में अर्थात् अवस्था में, वह भी त्रिकाल में नहीं। **मनःपर्ययज्ञान...** मान को जाने। सामनेवाले के मन के भाव जाने, ऐसी एक ज्ञान के विकास की एक दशा है, परन्तु वह दशा भी त्रिकाल में नहीं। यह चार ज्ञान सम्यक् कहे।

अब, **कुमतिज्ञान...** जो पुण्य और दया, दान के विकल्प को धर्म माने-जाने, ऐसा कुमतिज्ञान। **कुश्रुतज्ञान...** जिसमें अशान्ति रहे और अशान्ति को स्वयं सत्य माने, ऐसा कुश्रुतज्ञान और एक **विभंगज्ञान...** सम्यग्दर्शन बिना मिथ्याश्रद्धा में भी सात द्वीप और सात समुद्र ज्ञात हो, ऐसा ज्ञान का एक विकास भाग है। वह मिथ्यादृष्टि को भी होता है। उसे धर्म नहीं होता। दृष्टि खोटी हो, सत्य को समझा न हो, तथापि राग की मन्दता से एक अज्ञान की दशा विभंग—विपरीत ज्ञान, सात द्वीप, समुद्र अन्दर देखे कि यह द्वीप यहाँ है, लवण है... यह है... यह है... यह है... परन्तु वह दशा अज्ञान की वर्तमान जितनी है। त्रिकाल में वह नहीं।

ऐसे भेदों के कारण अज्ञान तीन; चक्षुदर्शन,... यह आँख से। यह आँख-आँख। वह तो निमित्त है, हों! अन्दर चक्षुदर्शन अर्थात् देखने का व्यापार। क्षयोपशमभाव का देखने का भाव, वह त्रिकाल में नहीं। **अचक्षुदर्शन...** आँख के अतिरिक्त चार इन्द्रियों की ओर का जो दर्शन—सामान्य व्यापार, वह आत्मा में नहीं। **अवधिदर्शन...** सामान्य देखना, अवधिज्ञान उपयोग होने से पहले एक शक्ति होती है। यह सब व्यवहार से है, पर्याय में है, ऐसा साबित होकर व्यवहार साबित करते हैं। **ऐसे भेदों के कारण दर्शन तीन;...** वह त्रिकाल द्रव्य के अन्दर नहीं। **काललब्धि...** यह विवाद। कितने ही पण्डित जगत को विवाद उठावे। एक क्षयोपशमिकभाव है यह काललब्धि। उसमें क्षयोपशम कहा है दूसरे शास्त्र में। उसे यहाँ काललब्धि (कहा है)। अर्थात् उस प्रकार की वर्तमान

दशा में ज्ञान का और दर्शन का और वीर्य का विकास जो आत्मा के मनन करने के लिये काम आवे। जो ज्ञान, आत्मा क्या है उसका मनन करने में, निर्णय करने में व्यवहार से काम आवे, ऐसा क्षायोपशमिक ज्ञान दशा में है, वह त्रिकाल में है नहीं।

करणलब्धि... यह जरा सम्यग्दर्शन होने से पहले तीन प्रकार के परिणाम की जाति होती है। आत्मसाक्षात्कार अनुभव होने से पहले एक आत्मा के परिणाम की राग की मन्दता की जाति के एक तीन प्रकार के करण अर्थात् परिणाम—दशा होते हैं। उस लब्धि की प्राप्ति, वह त्रिकाल द्रव्य के अन्दर नहीं है। ओहो! वे कहे करणलब्धि से होता है। भाई! ऐसा कहते हैं। उसके लिये तो यह लिया है। वे कहे कि काललब्धि से होता है? नहीं। क्षयोपशम से होता है? नहीं। आहाहा! करणलब्धि परिणाम हो एक, उस परिणाम की एक जाति है, उसके नाम न समझ में आये। अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, अनिवृत्तिकरण के परिणाम के अन्तर्भेद में अन्तःकरण एक परिणाम की—दशा की जाति है। उस दशा के परिणाम, वे त्रिकाल द्रव्य में नहीं। अरे भगवान! उसकी दशा कैसी वर्तती है, उसकी खबर नहीं होती। घर में गद्दे कितने और मंजिल की सीढ़ियों के सोपान कितने, इसकी खबर होती है। खिड़की में इतने इंच के सरिया डाले हैं आठ, इसकी खबर होती है। अन्दर में पतले हों और बाहर में जाड़ा हो। लो, अन्दर घुस न जाये कोई। यह सब जड़ की इसे खबर, परन्तु तेरी दशा में क्या क्या... जालियाँ पड़ी है, उघाड़ उस जाति का, कहते हैं, वह भी स्वरूप में—त्रिकाल में नहीं।

उपदेशलब्धि.... देशना। सन्तों और ज्ञानियों से सुनने को मिले और उसे सुनकर बात ख्याल में ले, वह देशनालब्धि कहलाती है। देशनालब्धि बिना सम्यक्त्व पावे नहीं, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। तथापि यह देशनालब्धि, उस त्रिकाल द्रव्य में नहीं। ऐसे द्रव्य का आश्रय करे, तब सम्यक्त्व प्राप्त होता है। ओहोहो! **उपशमलब्धि...** विशुद्धि—विशुद्धि। समझ में आया? आत्मा में वह विशुद्धि राग की मन्दता, राग की मन्दता (हो), जिससे अन्दर समकित पाने में अनुभव में जा सके, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु वह वास्तव में उसका आश्रय छोड़े और त्रिकाल का आश्रय करे, तब सम्यक्त्व होता है, वरना अनुभव होता नहीं, अर्थात् धर्म होता नहीं। इन पाँच के आश्रय से धर्म नहीं होता। और **प्रायोग्यतालब्धि...** अर्थात् कर्म की बहुत स्थिति मन्द हो जाना।

अपने भाव ऐसे हों जरा शुभ कि जिसमें कर्म बँधा हुआ, उसमें उसका रस और मर्यादा—स्थिति घट जाना, ऐसे भेद के कारण लब्धियाँ पाँच हैं, वे त्रिकाल द्रव्य के अन्दर नहीं। वे चिल्लाहट मचाये कि गोम्मटसार में ऐसा कहा है। अरे! सुन न अब! तत्त्वार्थसूत्र में सब एक ही कहा है।

वेदकसम्यक्त्व... यह क्षयोपशमसमकित है। जरा—थोड़ी मलिनता हो और थोड़ा निर्मल हो। और **वेदकचारित्र...** क्षयोपशमचारित्र, ऐसा। जरा राग का उदय भी हो और जरा निर्मलता भी हो। और **संयमासंयमपरिणति**। चारित्र श्रावक का। किंचित् संयम आत्मा का भान होकर स्थिरता हो, किंचित् अस्थिरता हो, वह सब दशायें हैं। दशाओं की स्वीकृति करके, त्रिकाल द्रव्य के अन्दर वे नहीं, (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! कितनों को तो यह कान में पहला पड़ता होगा। हैं, चन्दुभाई! क्या कहते हैं यह? भाई! तेरी दशा की ऋद्धि का वर्णन (करते हैं) और वह ऋद्धि अन्तर में नहीं। ऐसा चैतन्य कारणप्रभु जिसका आश्रय करने से कपाट फाटे, उसके अन्दर यह पर्याय—एक समय का अंश उसमें नहीं। समझ में आया? यह बोल कितने कहे? १८। १८ कहे १८।

अब औदयिकभाव के २१ भेद। यह **नारकगति....** यह एक नरक की गति है, हों! बहुत बार अपने सिद्ध किया है नरकगति। बहुत पाप करे तो उस पाप के परिणामरूप से इतना दुःख का स्थान होता है, वहाँ जाता है। मरने को, मार डालने का भाव, जहाँ अनेक प्राणियों को मारने के भाव जहाँ संख्या बाँधता नहीं और काल बाँधता नहीं कि इतनों को मारना और इतने काल में मारना। इसलिए उसके परिणाम में क्लिष्टता, क्रूरता अपरिमित हुई। अनन्त-अनन्त जीव हों तो भी मेरी सुविधा के विघ्न में आवे, मेरी सुविधा में असुविधा हो, उसे उड़ा दूँ। कर सकता है या नहीं, यह प्रश्न नहीं, परन्तु उसके भाव में इतनी क्लिष्टता अन्तर्मुहूर्त के अन्दर होती है कि इन सब जीवों को लम्बा काल हो तो मार डालूँ, परन्तु असुविधा रहने दूँ नहीं। ऐसी एक क्षण में जो क्लिष्टता, वह सबको दुःख देने का इतना अनन्त का भाव, ऐसे दुःख के जहाँ स्थान हों, वहाँ उपजे, उसे नारकी की गति कहते हैं। समझ में आया? यह नरकगति त्रिकाल द्रव्य के अन्दर नहीं है। एक समय की अवस्था है। वस्तु स्वयं उस गति के भाव रहित एक चीज़ है। एकाकार भगवान

इसी प्रकार **तिर्यचगति....** ढोर गति। यह चूहा, नेवला, कोळ और तिर्यच के शरीर आड़े होते हैं न आड़े? उन्हें तिर्यच कहते हैं। आड़े शरीर। मनुष्य का खड़ा (शरीर होता है) और नेवला, कोळ, गाय, घोड़ा, हाथी ऐसे आड़े (होते हैं)। आड़े समझते हो? तिरछे। क्योंकि पूर्व में कपट, कुटिलता, दम्भ बहुत किया है। इतनी वक्रता और क्रूरता की है, माया, कपट की कि उसकी दशा में तो विपरीतता थी, उसके फलरूप से शरीर आड़ा मिला। नेवला, कोळ, हाथी, घोड़ा। ऐसी एक गति है, वह तो नजर से दिखती है। यह गति चैतन्यद्रव्य के अन्दर नहीं। उसमें हो तो उसका अभाव हो सकता नहीं।

इसी प्रकार **मनुष्यगति...** तो दिखती है। यह शरीर नहीं, हों! अन्दर मनुष्य के योग्य गति का भाव। उस उदयभाव की यहाँ बात है। अन्दर की जड़ की बात यहाँ नहीं। और **देवगति, ऐसे भेद के कारण चार गति....** यह चार गति द्रव्यस्वभाव में नहीं। वह त्रिकाल शुद्धभाव जिसे ध्रुव कहते हैं, उसमें यह गति नहीं। इसलिए गति का आश्रय लेने से (धर्म नहीं होता)। लोग कहते हैं न, मनुष्यगति धर्म का कारण। यह मनुष्यगति? नहीं, नहीं; यह गति त्रिकाल द्रव्य में नहीं, इसलिए त्रिकाल द्रव्य धर्म का कारण है। आहाहा! विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - १२-०३-१९६३

गाथा - ४१, प्रवचन नं. ३८६

यह नियमसार के अधिकार में शुद्धभाव अधिकार है। ४१वीं गाथा चलती है। क्या यह कहते हैं? यह आत्मपदार्थ वस्तु है, यह उसका शाश्वत् स्वभाव परमपारिणामिक ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुव है और उसकी वर्तमान दशा में अथवा वहाँ-वहाँ होती अवस्थाओं में, हालत-हालत। सोना में भिन्न-भिन्न दशायें होती हैं, तथापि सोना सोनारूप सदृश्य कायम एकरूप रहता है, इसी प्रकार आत्मा वस्तुस्वरूप से शुद्धभाव अर्थात् ध्रुव चिद्घन, आनन्दघन है। उसे यहाँ वस्तुस्वभाव का सत्तापना, जिसे धर्म करना है, उसे वह आश्रय करनेयोग्य है। उसकी दशा में चार दशायें होती हैं, वे आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसी जरा सूक्ष्म बात है। ऐसे अपने बोल तो बहुत आ गये हैं। उसमें २१। यह औदयिक के चलते हैं। इन सबमें क्या कहना चाहते हैं? जरा सूक्ष्म (बात है)। यह बोल कहते हैं, उसमें यह।

क्षायिकभाव के.... आत्मा की दशा में एक सम्यग्दर्शन उपशम होता है। वह भी एक अस्तिरूप से होता है, होता है और वह स्वयं से होता है, ऐसे दो सिद्ध करके फिर तीसरी बात करते हैं। क्या कहा? स्वयंसिद्ध है। आत्मा शुद्ध आनन्दघन का ध्रुव का भान होने पर एक सम्यग्दर्शन थोड़ा काल रहे और जैसे पानी में मैल नीचे बैठ जाये और नितर जाये, उसी प्रकार आत्मा में अल्पकाल—थोड़ा उपशम सम्यक्त्व कि जो लम्बे काल रह सकता नहीं, परन्तु होता है, ऐसी एक दशा है। और उस दशा का अस्तित्व अपने में, अपने कारण से, अपने से है। ऐसे चरित्र उपशम के बोल सब गये हैं।

ऐसे क्षायिक.... आत्मा में सम्यग्दर्शन ऐसा प्रगट हो आत्मा के अवलम्बन से कि जो कभी नाश नहीं होता। और केवलज्ञान परमानन्ददशा को प्राप्त उस क्षायिकसमकित को और केवलज्ञान की ध्रुव दशा हो जाये, एकाकार होने की उसमें कला है। ऐसा क्षायिकसमकित प्रगट हो, वह भी आत्मा की दशा में अस्तित्वरूप से अस्तिरूप से है। और वह अस्ति स्वयं से की हुई है। ऐसे नौ बोल आये क्षायिकसमकित आदि। क्षयोपशम में भी अठारह मति-श्रुत आदि। वह सब दशायें, पर्याय में—हालत में है।

वह व्यवहारनय का विषय भी वर्तमान में अपने में है। और वह है स्वयं से। परन्तु उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा चार दशाओं में—उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम आदि। और यह उदय अन्तिम चलता है। नारक की गति, मनुष्य की गति, ऐसी आत्मा की पर्याय में ऐसी योग्यता जीव में है और उस गति की योग्यता स्वयं के ही कारण से है, उसमें कर्म का निमित्तमात्र है। वे सब दशायें वर्तमान व्यवहारनय का विषय है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय तो त्रिकाल चैतन्य प्रभु आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द, निर्मलानन्द ध्रुव, वह अन्तर परमात्मस्वरूप अपना है, उसका आश्रय करने से जीव को शान्ति, सुख और साक्षात्कार होता है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस बोल का अस्तित्व भी वर्णन करते हैं, स्वतः वर्णन करते हैं और त्रिकाल तत्त्व में वह नहीं, ऐसा भी वर्णन करते हैं।

देखो, यहाँ तक आया है। चार गति है। चार गति जीव की दशा में है। वह स्वयं से है, परन्तु उदय है। उदय अर्थात् त्रिकाल ज्ञायक आनन्द में नहीं। उसकी एक समय की दशा में वह गति की योग्यता है और वह योग्यता स्वयं से हुई है। कर्म का तो उसमें निमित्तमात्र संयोग है। ऐसा क्रोध, मान, माया और लोभ। यह क्रोध, मान, माया, लोभ है, जीव की दशा में। वे क्रोध, मान कहीं जड़ के हैं और जड़ ने किये हैं, ऐसा नहीं है। आत्मा की वर्तमानदशा में कलुषित लगे, मान आवे, माया—कुटिलता—वक्रता, लोभ, वह उसकी दशा में अस्तित्व है और वह अस्तित्व स्वयं योग्यता से किया है, परन्तु वह त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति के अन्दर में यह समय के विकार का प्रवेश नहीं। समझ में आया ?

यह थोड़ा लेते हैं, देखो। यह चार कषाय। स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग,... यह स्त्रीलिंग अर्थात् यहाँ विकारभाव की बात है। स्त्रीपने का विकार—वासना, वह उसकी दशा में उस स्त्रीपने का विकार के योग्य हो तब उसकी दशा में वासना होती है, परन्तु वह त्रिकाली तत्त्व का जहाँ आश्रय करने जाये, वह आश्रय उसका आश्रय करना रहता नहीं। समझ में आया ? ऐसे पुरुषलिंग पुलिंग... उसका वेद में अन्दर वासना, पुरुषलिंग की अन्तर वृत्ति वासना होती है। वह अस्तित्व है, मौजूदगी है, वह नयी की हुई उदय की विकृतदशा, उसकी अवस्था में है। परन्तु उसके त्रिकाल की वस्तु के अन्दर शरण करने से वह वस्तु अन्दर में प्रवेश नहीं करती। बहुत सूक्ष्म है, हों!

सौभागचन्दजी! अभी तो आयेगा यह संक्षिप्त लेते हैं फिर देखो, तीन लिंग। ऐसे एक नपुंसकलिंग। वेद की विकारता स्त्री और पुरुष दोनों के साथ वासना का एक विकल्प होता है, नपुंसक जीवों को, उसे उसकी दशा में अस्ति है, है। जैसे यह हिजड़ा को कहा जाता है न। शरीर में भी अन्दर में उस जाति के वेद की वासना अन्दर रहा करती है। ऐसी उसकी दशा में है, परन्तु त्रिकाल आनन्दकन्द ध्रुव चैतन्य के अन्दर में वह नहीं। इसलिए उसे एक समय की विकृत अवस्था को उदयभावरूप से गिना है।

इस प्रकार संक्षिप्त में सामान्यसंग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक,... है। यह आत्मा रागवाला, पुण्यवाला और त्रिकाल आनन्द नहीं। पुण्य से धर्म होता है, पाप में सुख है—ऐसी एक मान्यता जीव की दशा में है। समझ में आया? ऐसी मिथ्यादर्शनदशा है। वह एक ही है परन्तु.... वे सब भेद थे। अज्ञान एक और एक असंयता। वस्तु के स्वरूप का बेभानपना अथवा अल्पज्ञानपना दोनों अज्ञान में जाते हैं। समझ में आया? यह अज्ञानता उसकी दशा में है। न हो तो उसे टालने का हो सकता नहीं। और असंयमदशा। उसकी पर्याय में यह उदयभाव का अज्ञान गिना, भाई! असंयम। राग के अभाव का भाव करता नहीं, ऐसा एक रागभाव, विकारभाव, अत्रतभाव, अत्यागभाव, अचारित्रभाव, वह जीव की दशा में अस्तित्व है, परन्तु उस त्रिकाल तत्त्व की दृष्टि करने से उनका आश्रय लेने योग्य नहीं। किनका? यह असंयम का। त्रिकाल द्रव्य शुद्ध चैतन्य प्रभु के आश्रय से आत्मा को धर्म होता है।

ऐसे असिद्धत्व.... एक असिद्धपना जब तक परमात्मदशा आत्मा न पावे, तब तक असिद्ध, परमात्मा से अभाव-स्वभावरूप विकार, उसे असिद्धत्वपना दशा कहते हैं। वह जीव की आत्मा की वर्तमानदशा में है। शुक्ललेश्या.... यह शुक्ललेश्या होती है। जीव के शुभभाव। समझ में आया? एक वृक्ष का दृष्टान्त दिया जाता है न? कि भाई! आम का वृक्ष था आंबा। आम आम्र वृक्ष कहते हैं। छह व्यक्ति आम खाने आये। एक ने ऐसा विचार किया कि हम छह व्यक्ति हैं और आम खाना है। काटो मूल में कुल्हाड़ा। नीचे गिरेंगे तो हम खायेंगे। ऐसे भाव को... यह एक दृष्टान्त है। ऐसे किसी भी काम के अन्दर जीव की वर्तमानदशा में छह प्रकार की स्लेश नये कर्म का बन्धन हो, ऐसा स्लेशभाव—मलिनभाव, उसे लेश्या कहते हैं। वह लेश्या आत्मा की अवस्था में

है, उससे है, अस्ति धराती है, परन्तु वस्तुस्वरूप में वह त्रिकाल में है नहीं, यह बात अधिक लम्बायेगी।

यह शुक्ललेश्या,... इसलिए पहली कृष्णलेश्या कही, वह वृक्ष काट डाले। ऐसे बुरे परिणाम। उसे आम तो खाना है दूसरे को कि भाई! पूरा वृक्ष काटकर क्या काम है? पचास मण आम छह व्यक्ति खा नहीं सकेंगे। अच्छी एक डाली काटो न छोटी कि उसमें मण आम निकल जायेंगे। मण मुश्किल से खा सकेंगे, यह उसके परिणाम और इतने। तो उसकी अपेक्षा मन्द पापवाले। मन्द पापवाले। तीसरे ने ऐसा कहा कि भाई! ऐसी बड़ी डाली काटकर क्या काम है? छोटी-छोटी डाली के झुमके तोड़ लो न। कि अपने छह व्यक्ति के लिये बस है। उससे कुछ मन्द परिणामवाला पाप के। वह पहले कहा, यह अन्त में बोल है, वह कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या। अब उनसे पीतलेश्या,... चौथे के ऐसे (भाव) हुए कि भाई! ऐसा क्या करना? जिस डाल में आम हो न, उसके आम के झुमके तोड़ लो। अपने को एक मण इतनी बहुत होगी। यह पीतलेश्या। उसके शुभभाव सही। पद्मलेश्या। यह शुभ नहीं, हों, तोड़ने काल की। यह तो दृष्टान्त है। पद्मलेश्या। एक दूसरे ने कहा कि परन्तु ऐसा किसलिए करते हो। यह आम-आम डंठल से तोड़ लो न। जहाँ डंठल है न, आम पका, वहाँ से तोड़ लो। उसकी अपेक्षा कुछ परिणाम मन्द। शुक्ललेश्यावाला अन्तिम बोला, उज्ज्वल परिणाम शुभ है। भाई! तुम आम को किसलिए तोड़ते हो। लो, यह हवा चली। यह अभी (आम) पककर खिरेंगे मण, दो मण। अपने तोड़ने की आवश्यकता नहीं। इन छहों को आम खाना है, परन्तु इनके परिणाम की जाति में हीनाधिकता छह प्रकार से आती है। समझ में आया?

इसी प्रकार एक का एक धन्धा, एक का एक काम करने में छह प्रकार के परिणाम की जाति में अन्तर पड़ता है। रतिभाई! बराबर होगा? उसमें पकानेवाला हो, खानेवाला हो, उसमें सबमें परिणाम छह प्रकार का अन्तर पड़ता है। किसी की तीव्रता, किसी की मन्दता, किसी की मन्दतम किसी की कुछ-कुछ ऐसे प्रकार के भाव होते हैं। उन भाव को यहाँ लेश्या कहा जाता है। कि जो श्लेषलेश्या नये कर्मबन्धन का कारण है, परन्तु वह अवस्था आत्मा की दशा में आत्मा से हुई है। समझ में आया? पहली

शुक्ल, दूसरी पद्म, तीसरी पीत, यह शुभ है, पुण्यबन्धन का कारण है, परन्तु आत्मा की दशा में है। यह अनादि की बात जीव की पर्याय में है यह।

कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या,... यह तीन बुरी लेश्या अशुभभाव। ऐसे भेदों के कारण लेश्या छह। है। यह आत्मा की पर्याय में काम करनेवाले जीव के काल में ऐसे प्रकार के तारतम्यभाव, परन्तु वह त्रिकाली वस्तु चिदानन्द ध्रुव भगवान का आश्रय करने के लिये इस शुभलेश्या का आश्रय छोड़ना पड़ता है। यह शुक्ललेश्या भी आत्मा को आश्रय करनेयोग्य नहीं है। ओहो! समझ में आया? शुक्ल-शुभभाव है, होता है। पूजा, भक्ति, दान, दया, ऐसे व्रत के कोई शुभभाव हों, है, परन्तु उनका आश्रय करके जीव को धर्म होता है, ऐसा तीन काल, तीन लोक के अन्दर वस्तु की स्थिति में नहीं है।

अब पारिणामिकभाव के तीन भेद इस प्रकार हैं—जरा सूक्ष्म बात है। जीव का स्वभावभाव है, त्रिकाल भाव जीव का, उसके—पारिणामिक के तीन (भेद)। **जीवत्वपारिणामिक...** आत्मा का जीवपना जो अनादि-अनन्त। वह सदा ही उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा आती नहीं। ऐसा वह जीवत्वपारिणामिक, एक **भव्यत्वपारिणामिक...** भव्यरूपी योग्यता जीव में पारिणामिकभाव से है। जो मोक्ष के योग्य होने की उसमें योग्यता है। ऐसी एक आत्मा में भव्यत्व नाम का सहज परिणाम कर्म की अपेक्षा बिना, उसमें एक धर्म ऐसा रहा हुआ है और एक **अभव्यत्वपारिणामिक**। यह कभी मुक्ति को पावे नहीं। अपने आ गया है न उसमें? नहीं आया था, किसमें? यह दृष्टान्त वही चलता है न अपने यह समयसार में सवेरे, कि अभव्य ऐसे व्यवहारनय का आश्रय अनन्त बार किया, तथापि उसका एक जन्म-मरण और भव घटा नहीं, क्योंकि वह बन्ध का कारण है। वह अभव्यजीव, परन्तु उसका स्वभाव ही ऐसा है, पारिणामिकस्वभाव ही ऐसा है। किसी ने किया है कि बहुत पाप करे तो अभव्य होता है और बहुत पुण्य करे करे तो भव्य होता है, चन्दुभाई! ऐसा होगा या नहीं? ऐसे प्रश्न पहले बहुत आते थे।

एक बार धारशीभाई का प्रश्न आया था न, एक बार? धारशीभाई नहीं थे गोंडल में डॉक्टर? थे वे? हाँ वे। बहुत वर्ष पहले प्रश्न आया था। सम्प्रदाय में आया था। यह बहुत पाप करे तो ऐसा कि यह जीव अभव्य होता होगा? वह तो एक स्वभावभाव

ही ऐसा ही कोई जीव की दो जाति है कि वह धर्म को पाने के योग्य और एक धर्म को पाने के योग्य नहीं, घोरडुं मूँग-मठ जैसा जीव है। परन्तु वे जीव बहुत थोड़े हैं, परन्तु उस जीव का एक जाति में ऐसा एक प्रकार है, ऐसा सिद्ध करना है।

यह जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;... देखो, भव्यजीव जो मोक्ष के योग्य है, उसमें जीवत्वपना और भव्यपना दोनों होते हैं। भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;... क्या कहा? जीवत्वपारिणामिकभाव भव्य और अभव्य दोनों को होता है। जीवत्वभाव, वह तो भव्यजीव और अभव्य, दोनों में होता है और भव्यत्वभाव, वह भव्य को ही होता है। और अभव्यत्वपारिणामिकभाव, अभव्यों को ही होता है। इन बोलों को अस्तित्व सिद्ध किया। इसके ज्ञान में आने के लिये। अस्तिरूप से यह बोल है, ऐसा इसे ज्ञान में पहले लाना चाहिए। फिर कहते हैं, इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया। अब वह पाँच भावों में...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : कौनसा? वह यह पारिणामिकभाव त्रिकाल एक। यह कहते हैं, देखो! आता है न?

पाँच भावों में... पाँच कहे। याद भी नहीं रहे यह कभी परन्तु अभ्यास नहीं होता। पहली उपशमदशा, कुछ नितरा हुआ पानी मैल नीचे हो परन्तु अन्दर दबा हो ऐसी एक दशा जीव की होती है। एक क्षायिक जो पानी को नितारकर निकाले और मैलरहित हो गया हो। एक क्षयोपशम कुछ मैल और कुछ निर्मलता, ऐसी एक दशा। एक उदय, वह अत्यन्त मैलवाली दशा योग्यतावाली। ऐसे चार प्रकार की दशा और एक त्रिकाली पारिणामिकस्वभावभाव। ओहोहो! घर की चीज़ में क्या है और यह दशा क्या, उसकी कभी सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ से सिद्ध हुई बात इसने कभी विचार में ली नहीं और अन्तर में प्रयोग में रखी नहीं। इन पाँच भावों में... अब जरा क्षायिक की महिमा करते हैं, हों!

मुमुक्षु : आश्रय के लिये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय के लिये नहीं। आत्मा में त्रिकाल अखण्डानन्द प्रभु का

आश्रय करके एक दशा, ऐसी प्रगट हो कि जो पर्याय है, हालत है, दशा है। और वह दशा कभी नाश नहीं होती। उसे यहाँ **क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप** है। कार्यसमयसारस्वरूप है। भाषा भी कहीं सुनी न हो, ऐसी है। क्या कहते हैं ? आत्मा में जब सर्वज्ञपद प्रगट होता है। चैतन्य भगवान ज्ञानानन्द मूर्ति में एकाकार होकर, उसकी वर्तमानदशा में जो कारण प्रभु त्रिकाल अखण्डानन्द स्वयं है, उसका आश्रय करके जो कार्यदशा—कार्यदशा केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, ऐसी दशा जो प्रगट हो, उसे कार्यसमयसारस्वरूप कहा जाता है। त्रिकाली वस्तु को कारणसमयसारस्वरूप और प्रगट हुई पूर्ण निर्मलदशा को कार्यसमयसारस्वरूप। समझ में आया ? सौभाग्यचन्द्रजी ! पढ़ा भी नहीं होगा यह नियमसार, इसलिए कहाँ खबर है ? दिगम्बर में जन्म।

क्या कहा ? कि यह आत्मवस्तु है, वह त्रिकाली आनन्दकन्द सच्चिदानन्द ध्रुव चैतन्य, उसे भगवान कारणसमयसार कहते हैं कि जिसकी खान में से कार्यपूर्णानन्द की दशा प्रगट होती है। वह पूर्ण आनन्द की दशा, केवलज्ञान की दशा जो प्रगटरूप से, कार्यरूप से हो, उसे कार्यसमयसार कहते हैं, कार्यपरमात्मा कहते हैं, कार्यजीव कहते हैं, पूर्ण पवित्र सिद्धदशा उसे कहते हैं। वह सिद्ध कहो, केवलज्ञान, मोक्षदशा कहो, परन्तु यहाँ तो अभी नीचे लेना है न यहाँ। वह (**क्षायिकभाव**) **त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत...** उदयभाववाला यहाँ भाई ने लिया क्षायिक। यहाँ उसकी उपदेशता है न ?

जब आत्मा अपने स्वभाव की सम्हाल प्रगट करके उसकी दशा में सर्वज्ञपद प्रगट होता है कि जो पद प्रगट होने के पश्चात् पूर्ण दशा अनादि से सादि प्रगट हुई, वह अनन्त काल उसका अनुभव रहा करता है। ऐसी कार्यदशा जो त्रिलोक में, **त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत...** नीचे है। **प्रक्षोभ=खलबली। तीर्थकर के जन्मकल्याणकादि प्रसंगों....** वह परमात्मदशा जिसे जिस भव में पूर्ण तीर्थकरपद की दशा में प्राप्त होनेवाली है। उनके जन्म के समय, दीक्षा के समय, गर्भ के समय और केवल (ज्ञान) के समय और मोक्ष के समय **तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।** वह दशा जब जन्म में यहाँ पूर्ण होने की जिस देह में हो, वह जहाँ जन्मे तीन लोक में आनन्द हो जाता है थोड़ी खलबलाहट। ओहोहो ! जरा नारकी के नरक में नारकी को भी क्षण (भर) जरा साता

हो, ऐसी कोई योग्यता उसमें होती है, तब यह प्रसंग खड़ा होता है। स्वर्ग के देवों को भी एक बार चमत्कार हो जाये। कौन पुरुष जन्मा ? जिसे इस भव में तीर्थकर होकर केवलज्ञान पाकर परमात्मादशा पूर्ण होनेवाली है, उसके जन्मकाल से तीर्थकरपने की प्रकृति के कारण से प्राप्त होते सकलविमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को। ऐसे जो तीर्थकर भगवान सकल-विमल केवलज्ञान जिन्हें प्रगट हुआ है।

(तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को)... दोनों लेना। अथवा सिद्धभगवान को... तीनों लिये। पहले यहाँ की ली उपदेश... उसे औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं; मुक्त जीवों को नहीं। क्या कहा ? वह आत्मा का कार्यपना जहाँ आनन्द का प्रगट हुआ और कार्यजीव आत्मा हुआ, वह कार्यजीव हुआ, लो। वह कार्यजीव। कारणजीव और कार्यजीव, यह भी सुना नहीं हो कभी।

मुमुक्षु : संयम-तप करो यह

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या संयम-तप धूल में ? संयम कहाँ से आया परन्तु ? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान पूर्णानन्द, उसे कारणसमयसार कहते हैं, उसे कारणपरमात्मा कहते हैं, उसे कारणजीव कहते हैं, उसे परमपारिणामिकभाव कहते हैं। उसके अवलम्बन से जो आत्मा की दशा पूर्ण शान्त और ज्ञान और आनन्द पूर्ण प्रगट दशा, उसे कार्यसमयसार कहते हैं, उसे कार्यपरमात्मा कहते हैं, उसे कार्यजीव कहते हैं। समझ में आया ? ऐसा कहने का कारण है। यह कार्यदशा, वह कारण त्रिकाल परमात्मदशा आत्मा का स्वभाव, उसमें से आती है, कोई राग में से नहीं। क्षायिकसमकित पहले हुआ हो, उससे वह कार्यदशा होती नहीं। ओहोहो ! समझ में आया ?

अब कहते हैं जरा यह बात जरा सूक्ष्म आयी देखो, कि अर्थ करना लोगों को समझना कठिन पड़े। पूर्वोक्त चार भाव.... कौन से चार भाव ? यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और उदय। एक विकारीभाव, एक विकारी की विकार का उपशमभाव अर्थात् शान्त हुई दशा, एक क्षायिक अर्थात् अत्यन्त निर्मलदशा और एक कुछ मलिन और निर्मलदशा, ऐसी दशाओं के जो चार प्रकार आत्मा की अवस्था में हैं, वे आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।

मुमुक्षु : क्षायिकभाव और उपशमभाव.....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्षायिक को आवरणसंयुक्त कहा है, उसका कारण कि उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा आती है और उस क्षायिकदशा का आश्रय करने जाये तो भी वह राग और विकल्प उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु : सिद्ध में क्षायिक न हो न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध में हो न क्षायिक। क्षायिक और पारिणामिक दोनों होते हैं उन्हें। पारिणामिकभाव उनका द्रव्य और निर्मलदशा हुई क्षायिक। लो, अब अपने मोहनलालभाई, भाई! सिद्ध में क्षायिकभाव होता है। यह किसका केवलज्ञान, केवलदर्शन कहा ?

मुमुक्षु : कार्यसमयसार आया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्यसमयसार सिद्ध अर्थात् आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा, पूर्ण आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसे कार्यदशा कहते हैं, उसे क्षायिकदशा कहते हैं, उसे कार्यसमयसार कहते हैं, कार्यपरमात्मा को कार्यजीव कहते हैं। समझ में आया ? भारी सूक्ष्म, भाई! बापू! यह दशायें हैं। यह मोक्ष भी एक हालत है, यह हालत नयी प्रगट हुई है, और वस्तु जो ध्रुव है, वह अनादि-अनन्त एकरूप है। समझ में आया ? पण्डितजी! बहुत सूक्ष्म बात! देखो! विभाव क्या कहते हैं ? विशेष दशा है, वह त्रिकाली नहीं।

देखो, चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं। यहाँ तो सिद्ध यह करना है कि भगवान आत्मा अकेला दल जैसे मध्य समुद्र में पानी की छोलमछोल पड़ी है अन्दर में। वह मध्य में से उछले तब दशा में ज्वार आता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्तर्मुख के मध्यबिन्दु में उसके अन्दर में ध्रुवपने में बेहद ज्ञान और आनन्द-शान्ति पड़ी है, यह उसका लक्ष्य और आश्रय करे तो धर्म प्रगट होता है। ऐसी चार दशा आश्रय करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया ? इसलिए इन चारों को आवरणसंयुक्त कहा है और इसलिए यह चार मुक्ति का कारण नहीं है। मुक्ति की दशा मुक्ति का कारण नहीं। मुक्ति की दशा, वह त्रिकाल द्रव्य के कारण से प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया

इसमें ? भाई ! यह विषय तो जरा हमारे दोनों ने माँगा है न, लालचन्दभाई, चन्दुभाई सब हैं न हमारे देवशीभाई । ये तो गूँगे सन्तोषी हैं । कहो, समझ में आया ? क्या कहा ? अरे, भाई ! इसके घर के जो कितने गोदड़ा और गद्दे इतनी खबर हो इसको । सरिया किस जाति के किस खिड़की में डाले हैं, इसकी खबर होती है । डॉक्टर को खबर होती है कि इतनी बोटलें अभी मुम्बई में से उतरेंगी । ऐई ! चन्दुभाई ! क्या कहा जाता है उसे ? स्टोर कहा जाता है या क्या कहा जाता है तुम माल लाओ (उसको) ।

मुमुक्षु : स्टोर में रखे ।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्टोर में रखे, हाँ ! ऐई ! प्रवीणभाई ! इतना माल यहाँ से आया हो और यह मशीन लाये हैं और यह लोहा । हमारे भाई हैं न नवरंगभाई । हथियार (औजार) रखते हैं न सब किसी प्रकार वे लोहे के । उज्वल । एक बार गये थे तो देखा था अलमारी में । सब खबर होती है या नहीं ? कितने के लाये ? कितने गये और कितने टूटे और कितने की धार कम हुई, वह सब खबर होती है, लो ! जिसका धन्धा करना हो, उसकी खबर होती है या नहीं उसे ? होती है या नहीं धन्धा उससे उसकी बात नहीं यहाँ । इसी प्रकार भगवान आत्मा में क्या-क्या चीज़ है ? उसकी शक्तियाँ क्या है ? उस शक्तिवान का एकरूप द्रव्य क्या है ? उसकी दशाओं के प्रकार क्या हैं और उस दशा की कैसी स्थिति की मर्यादा है ? खबर बिना यह कहाँ जायेगा और किसकी शरण में जायेगा ?

कहते हैं, भगवान आत्मा एक स्वरूप प्रभु त्रिकाल परमस्वभावभाव का घन, ध्रुव समुद्र है, उसकी यह चार दशायें, वे आश्रय करनेयोग्य नहीं । धर्मी को नीचे क्षायिकसमकित होता है, शुद्ध क्षायिकसमकित आश्रय करनेयोग्य नहीं, उसके आश्रय से धर्म की वृद्धि नहीं होती, उसके आश्रय से धर्म बढ़ता नहीं और शुद्धि की वृद्धि होती नहीं । आहाहा ! समझ में आया ? तथा मुनि को चारित्रदशा प्रगटी हो, सच्चे भावलिंगी सन्त । अन्तर आनन्द में झूलते हैं । क्षण में विकल्प और क्षण में निर्विकल्प । ऐसे आनन्द में झूलते सन्त, ऐसी चारित्रदशा जिन्हें प्रगट हुई, परन्तु वह चारित्रदशा आश्रय करनेयोग्य नहीं । क्योंकि एक समय की पर्याय, उसका आश्रय करने जाये, उसे राग उत्पन्न होता है । आहाहा ! सौभाग्यचन्दजी ! यह तो बात अलौकिक अगम-निगम की है ।

पूर्वोक्त । पूर्व-उक्त अर्थात् पूर्व में कहे, वे चार भाव अर्थात् चार दशायें आवरण-

संयुक्त। अर्थात् उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा आवे, परन्तु निरपेक्ष चिदानन्द मूर्ति इन चार दशा में होता नहीं, इसलिए इन्हें आवरणसंयुक्त कहा है और त्रिकाली परमस्वभावभाव एक ध्रुव, उसे आवरणरहित निरपेक्ष पदार्थ कहा है। समझ में आया? वह **मुक्ति का कारण नहीं**। आहाहा! भगवान मूल कारण है। एक कारणजीव जो त्रिकाल चिदानन्द की मूर्ति, कारण प्रभु कहो, कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो—ऐसा त्रिकाल स्वभावभाव एक ही आत्मा को मुक्ति का / मोक्ष का, शान्ति का कारण है। यह चार दशा मुक्ति का कारण नहीं। अभी तो यहाँ चिल्लाहट मचाते हैं, प्रकाशचन्दजी! हमारे मन्द कषाय मुक्ति का कारण होता है। अरे! यहाँ तो कहते हैं, तेरी मन्द कषाय तो कहीं रह गयी। वह तो उदयभाव है, विकार है, विकृतभाव है, परन्तु उसकी दशा में धर्मी को प्रगट हुई दशा, उस दशा, दशा के आश्रय से नयी दशा नहीं होती। आहाहा! समझ में आया इसमें?

एक दृष्टान्त अपने दिया नहीं था पीपर का? उसमें से देखो दृष्टान्त लो। हजार कोड़ी यह होती है न अभ्रक। हजार पुटी। यह अभ्रक-अभ्रक। उस बाजू में बहुत होती है, वहाँ है न गीरड़ी-गीरड़ी। गिरड़ी। वहाँ तो अभ्रक के बड़े कारखाने हैं। ऐसे रास्ते में तो बहुत अभ्रक दिखती है। वहाँ बड़े कारखाने होते हैं। उस अभ्रक के परमाणु के स्कन्ध में ऐसी ताकत है। स्कन्ध में की बात है न? उसे अग्नि का निमित्त और उसमें स्वयं की लालिमा होने की ताकत। एक भट्टी, दो भट्टी, तीन भट्टी करते-करते हजार। हजार पुटी देते पहले, हों! अभी तो सब फिर थोड़ा-बहुत करके पूरा करते होंगे। पहले तो हजार पुटी देते तब व्यवस्थित थी। भाई अपने वह कहते न ... भाई थे। वे कहते हजार पुट मैंने दिये। पहले तो तीन आना के हजार कण्डे मिलते थे, कहे। गाँव की बात है न और ४० वर्ष पहले की बात है। तीन आना के हजार। यह कण्डा बनाते हैं न, उस गोबर के नहीं? पूला डालकर, घास डालकर यह महिलायें बनाती हैं या नहीं ऐसा करके? वे पहले तीन आना के हजार मिलते थे। उस समय हमने हजार पुटी अभ्रक की है, ऐसा कहते थे।

एक मुसलमान है। गनीभाई, वहाँ रहते हकीम। हमारे यहाँ रहते। उसे बेचारे को एक ही पुत्र मर गया पश्चात् गारियाधार गये। बहुत नरम। व्याख्यान में हमेशा आवे।

व्याख्यान में हमेशा आवे। अनुभवप्रकाश चलता था तब उन्हें ऐसा रस पड़े। समझ में आया? जीवाजीभाई आये हैं या नहीं, कहाँ हैं? नहीं आये। समझ में आया इसमें? वे स्वयं व्याख्यान में आये, तत्त्व की बात। बहुत रुचे और बहुत सुहावे उन्हें। वे कहते हैं थे कि हमने हजार पुट दिये हुए हैं। कण्डे ऐसे सस्ते मिलते थे। एक बार, दो बार, तीन बार। फिर ३० रुपये और ३२ रुपये लेते एक तोला का। एक तोला। इसलिए वहाँ था। डेढ़ सौ... वह था। वह हजार पुटी की ताकत उसमें थी या नहीं? या अग्नि ने दी? अग्नि दे तो कोयला को करे तो कोयला से होकर जल जायेगा एकदम राख। वह हजार पुटी की ताकत उसके सत्त्व में अन्दर पड़ी है। तो एक पुटी, दो पुटी, तीन पुटी, चार पुटी, पाँच करते... करते... करते... ९९९। और हजार बाहर प्रगट हुई, वह सब दशायें हैं। वह हजार पुटी की ताकत अन्दर पड़ी है, उसकी यह सब दशायें हैं।

उसी प्रकार भगवान आत्मा में पूर्णानन्द का ज्ञान का सत्त्व जो पड़ा है, वह अनन्त केवलज्ञानादि प्रगट हों, ऐसा अनन्त-अनन्त काल केवलज्ञान हुआ करे, उसकी ताकत अन्दर में ध्रुव में पड़ी है। उस ध्रुव की ताकत में से प्रगट हुई कोई विकार वर्तमान, उसमें से विकार नहीं, परन्तु उसके आश्रय से वर्तमान पर्याय में प्रगट विकार, कोई उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। ये चारों ही दशायें होने पर भी चार दशारूप मुक्ति का कारण वह पूर्णदशा हुई, वह हजार पुटी का कारण हजार पुटी नहीं, ऐसे हजार पुटी हुई, उसका कारण ९९९ नहीं। क्योंकि पूर्व में ९९९ हुई, वह तो व्यय हो जाती है। हजार पुटी का कारण ९९९ नहीं, इसी प्रकार हजार पुटी का कारण हजार पुटी नहीं। भाई! यह बात दृष्टान्त है यह तो, हों! इसी प्रकार भगवान आत्मा, उसके एक समय में जो जैसे वह हजार पुटी की ताकत पड़ी है अन्दर और प्रगट दशाओं में हो तो वह दशा पाँच पुटी, पचास पुटी, सो पुटी का कारण वह दशा नहीं। ऐसे पूर्ण पुटी हजार का वह दशा कारण नहीं। कारण तो वह त्रिकाल अन्दर शक्ति पड़ी है, वह कारण है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में केवलज्ञान और मुक्ति हो, उस मुक्ति का कारण वह मुक्ति नहीं। वह मुक्ति का कारण नहीं।

त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—अब कहते हैं, कौन उसका कारण? सूक्ष्म बात है। इसने कभी झेली नहीं। शास्त्र के पढ़नेवाले भी पढ़कर यह समझते नहीं

अन्दर कि यह क्या कहते हैं ? सौभाग्यचन्दजी ! पुस्तक है या नहीं ? प्रभुभाई ने दिया आज । **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है**—देखो, उसमें आवरण कहा न, तब इसे निरुपाधि कहा । भगवान आत्मा, उसकी एक दशायें यह चार प्रकार की हालत । उस हालत में तो पर की अपेक्षा आती है अथवा नयी प्रगट होती है । इसलिए उन्हें आवरण संयुक्त कहकर, वह दशा मुक्तदशा, वह मुक्ति का कारण नहीं । केवलज्ञान दशा, वह केवलज्ञान का कारण नहीं । मोहनलालभाई ! त्रिकाल... समझ में आया ? **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** ओहो ! भगवान आत्मा अन्दर त्रिकाल निरुपाधि । उपाधि नहीं, अल्पता नहीं, विकारता नहीं, विशेषता नहीं, सामान्य एकरूप । एकरूप जिसका स्वरूप, **ऐसे निरंजन निज परमपंचमभाव...** लो, यह आश्रय करनेयोग्य की बात है आयी यह । **ऐसा निरंजन....** राग और मैलरहित त्रिकाल वह भगवानदशा । दशा अर्थात् ? द्रव्य की अवस्था । वह द्रव्यस्वरूप । निरंजन—अंजन नहीं । **निज परमपंचमभाव....** वापस भाषा यह है । अपना परमपंचमभाव । भगवान का भाव कहीं यहाँ काम करता नहीं ।

निज परमपंचमभाव.... वापस । परम क्यों कहा ? किसी अपेक्षा से पर्याय को पारिणामिक भी कहा जाता है । अब और यह क्या वापस ? क्या कहा ? किसी अपेक्षा से तो राग होता है न, उसे पारिणामिकभाव कहा जाता है । पर्याय । क्योंकि वह परिणमती है न, वह स्वयं विकारपने, इस अपेक्षा से । निमित्त की अपेक्षा से उसे उदयभाव कहा जाता है । इसी प्रकार चार दशाओं को पारिणामिक अर्थात् त्रिकाली की दशारूप से गिनकर पारिणामिक अवस्था भी कहा जाता है । तो यह जो त्रिकाली वस्तु है, वह तो परमपंचमभाव है । समझ में आया ? अब यह भाषा ! परन्तु बापू ! यह भी समझना पड़ेगा या नहीं इसे ? इसके घर में क्या पूँजी है ? कौनसी पूँजी कहाँ से प्राप्त होती है ? यह सब इसे खबर और इसकी खबर नहीं । इसलिए यह सब झगड़े धर्म के नाम से चले हैं । वह कहे कि यहाँ से धर्म होगा, वह कहे कि यहाँ से होगा, वह कहे यहाँ से.... अब सुन न ! तत्त्व की शक्ति का पूर्ण सामर्थ्य जहाँ पड़ा है, वह कैसे है ? और उसके आश्रय से धर्म होता है, उसकी खबर बिना अन्यत्र नजर करे, वह तीन काल में उसे धर्म होता नहीं ।

निरंजन निज परमपंचमभाव... वह आवरणवाला था । यह निरंजन निज परम भाव **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** उपाधिरहित, (यह) नास्ति कही, परन्तु

निरंजन निज परमपंचमभाव... अंजनरहित पंचमस्वभाव ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव.... वह अवस्थारहित त्रिकाल ध्रुव। उस भावना से, उसकी भावना से। उस भावना में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव आया, परन्तु भावना है त्रिकाली की। त्रिकाल परमपारिणामिक में एकाग्रता, उसका जो आश्रय, उससे पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं,... यह भगवान परमानन्द त्रिकाल अन्तर व्यापक चैतन्य प्रभु पूर्ण स्वभाव की भावना अर्थात् उसमें आश्रय करके एकाग्रता, उसमें एकाग्रता से पंचम गति में केवलज्ञान परमात्मदशा को मुमुक्षु वर्तमान काल में जाते हैं। क्या कहते हैं? तीन काल को सिद्ध करेंगे यहाँ। आहाहा! कोई दूसरा मार्ग नहीं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।'

जब-जब वर्तमान में, भूत में और भविष्य में आत्मा मुक्ति को, मोक्ष को, शान्ति को, आनन्द को, समाप्त—अन्त को पावे, (अर्थात्) संसार के अन्त को पावे और मोक्ष की शान्ति को पावे, वह पंचमभाव की भावना से, वह राग की भावना और उपशम और क्षायिक की भावना से नहीं। समझ में आया या नहीं इसमें? छोटूभाई! भारी सूक्ष्म परन्तु ऐसा मेरा। सम्प्रदाय में तो बातें चले तो वह निन्दा करे, हों! अरे! ऐसा नहीं, यह ऐसा नहीं। वे कहे, एकान्त है रे एकान्त। अरे! सुन न अब तेरा एकान्त... तुझे एकान्त—अनेकान्त की क्या खबर पड़े? यहाँ तो कहते हैं कि एकान्त भाई ऐसा कहते हैं यह तो। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मल ध्रुव अन्दर में शक्ति का भण्डार हजार पुटी जैसे ताकत पड़ी है, पीपर में चौंसठ पहरी जैसे ताकत पड़ी है, उसी प्रकार अन्तर जिसका स्वरूप, उसमें पूर्ण ताकत कारण शक्ति में पड़ी है। उसका आश्रय करे, उसकी भावना करे वर्तमान में मुमुक्षु केवलज्ञान को पाते हैं। भविष्यकाल में भी इसी भावना से केवलज्ञान को परमात्मदशा को पायेंगे और भूतकाल में भी ऐसे जाते थे। तीन काल बात सिद्ध कर दी है। समझ में आया?

कोई ऐसा कहता है न, भाई! कि व्यवहार से जीवयोग। आहाहा! अब सुन न, उसमें गप्प-गप्प मारी है। 'यह बहुत तो व्यवहार करते-करते मोक्ष गये। यह व्यवहार बहुत अच्छा हो, उसके अन्दर में जो मोक्ष का कारण हो। यह राजमार्ग तो एक व्यवहार है।' बड़ी भूल में, शल्य में पड़े हुए प्राणी हैं। क्या कहा? कितने ही, भाई! निश्चय है,

वह तो बराबर है। वह कोई निश्चय के आश्रय से थोड़े जायें, परन्तु बहुत जीव तो व्यवहार करते-करते बहुत करे और फिर निश्चय पावे, व्यवहार से बहुत जीव मोक्ष में जाये, यह बात तीन काल-तीन लोक में एक भी अंश सत्य नहीं है। समझ में आया इसमें ?

इसलिए यहाँ मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव ने यह टीका करते हुए पाठ का आशय लेकर कहते हैं। जो कोई अनन्त काल में, अनादि काल से मुक्ति करते आये हैं, अनादि काल से भटकते आये हैं। जो कोई मुक्ति को पाये अनन्त काल में, शान्त-आनन्द की दशा को (प्राप्त हुए), वह आत्मा त्रिकाल ध्रुव का आश्रय लेकर केवलज्ञान पाये हैं। कोई उदयभावरूपी व्यवहार का आश्रय लेकर तो हो सकता नहीं, परन्तु उसका धर्म—प्रगट हुई दशा का आश्रय लेकर मुक्ति पाये, ऐसा तीन काल में होता नहीं। ओहोहो! अब तो अभी यहाँ ऐसा कहना है कि उसे वह व्यवहार हो बहुत तो व्यवहार करते-करते, बहुत व्यवहार करे तो उसे उजला पुण्य हो अर्थात् उसके कारण निश्चय पावे। राजमार्ग है। भटकने का है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि वह व्यवहार अर्थात् कि उदयभाव राग, उससे तो तीन काल, तीन लोक में कोई धर्म नहीं पावे और न आगे बढ़े। निश्चय पावे नहीं, परन्तु धर्म निश्चय से त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से चारित्र और सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ यह, उसके आश्रय से भी धर्म जीव मुक्ति को नहीं पाता। मुक्ति को पावे वह त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से पाता है, परन्तु करे कौन ? होता है। यह तो कहा न यह ? यहाँ कहते हैं न। यह तो खबर है। परन्तु वह व्यवहार होता है, वह तो सिद्ध किया पहले। धर्म नहीं। उसके आश्रय से धर्म होता नहीं, स्वयं धर्म नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि वह तो धर्म नहीं। वह तो बात बहुत आयी। सवरे चलता है अभी।

यहाँ तो शुद्धदशा प्रगट हुई अब वह स्वयं धर्म है, उसके आश्रय से धर्म विशेष बढ़ता नहीं। समझ में आया इसमें ? भाई! यह तो अधिकार ऐसा है न! अवलदोम गुलाँट खा जाये ऐसी चीज़ है। आहाहा! अभी विवाद तो व्यवहार यह है और व्यवहार किया, इसलिए लाभ हुआ, व्यवहारमार्ग था, इसलिए यह प्रसिद्धि की कि देखो, व्यवहार से यह लाभ हुआ। बड़ी मिथ्यादर्शन शल्य में पड़े हुए हैं। समझ में आया ? यहाँ तो कहते

हैं, मुमुक्षुओ... मुमुक्षु अर्थात्? तीन काल के मुमुक्षु अर्थात् आत्मार्थी, जिन्हें धर्म के लाभ की, मोक्ष की इच्छा है ऐसे। वह त्रिकाल ज्ञायक भगवान आत्मा, उसमें आश्रय लेकर मुक्ति को पाये, वर्तमान में पाते हैं, भविष्य में पायेंगे। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' कहो, समझ में आया या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : यह तो अनेकान्त नहीं हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उससे पायेगा और पर्याय से और राग से नहीं पायेगा, इसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया ? यह व्यवहार से नहीं, परन्तु उसे क्षायिक प्रगट हुआ, वह तो निश्चय से माननेवाले हैं कि निश्चय के आश्रय से, त्रिकाल के आश्रय से मुझे समकित हुआ और ज्ञान हुआ। सम्यग्ज्ञान और चारित्र। वह ऐसा मानता है कि मेरी दशा के आश्रय से भी अभी आगे मुक्ति होगी नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ त्रिकाल के आश्रय से, उस निश्चयमोक्षमार्ग के आश्रय से मोक्ष होता नहीं। क्या कहा और यह ? व्यवहारमोक्षमार्ग तो विकल्प—राग है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंचमहाव्रत के परिणाम राग, शास्त्र का पठन राग, वह तो बन्ध का कारण है, वह तो मोक्ष का कारण नहीं, परन्तु उससे रहित चिदानन्द ज्ञायकमूर्ति भगवान का आश्रय करके जो निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्मल ज्ञान और निर्मल रमणता हुई, उसके आश्रय से मुक्ति नहीं। तो व्यवहार के आश्रय से तो कहीं बात में गन्ध भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सद्भूतव्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : सद्भूतव्यवहार है यह तो। वह राग तो असद्भूत—झूठा है। भारी सूक्ष्म बातें परन्तु भाई, हों! परन्तु लोग कहते हैं बात सूक्ष्म लोहा काटे छैनी बारीक हो, वह लोहे को एकदम काटे। ऐसे लकड़ी मारे तो कटता होगा ?

मुमुक्षु : लकड़ी कटती होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु लकड़ी वहाँ क्या करे ? लोहे के टुकड़े करना हो तो ऐसे... ऐसे मारे तो टुकड़े होते होंगे ? छैनी होती है न छैनी धारवाली। टुकड़े कर दे। ऐसे सूक्ष्म तत्त्व के भान की छैनी बिना प्रज्ञाछैनी। आता है न मोक्षतत्त्व में (मोक्ष अधिकार में)।

भगवान आत्मा जितने मुक्ति को पाये, जितने वर्तमान में पाते हैं, अब अभी मुक्ति पाते हैं महाविदेहक्षेत्र में। भविष्य में भी अनन्त पायेंगे, ऐसी पंचम गति को मुमुक्षु जाते हैं, जायेंगे और जाते थे। वे इसी भाव से जाते थे और जायेंगे। दूसरा कोई प्रकार तीन काल-तीन लोक में है नहीं। गजब बात! यहाँ तो अभी कितने ही विवाद। अभी तो यह संयम पालन करे और व्रत पालन करे और भक्ति करे और यह करे और वह व्यवहार करे तो धर्म होगा। अरे! चल रे चल! समझ में आया? हाँ, ऐसे भानवाले जीव को त्रिकाल की भावना करनेवाले जीव को अपूर्णदशा में राग आये बिना रहता नहीं। राग के काल में राग होता है, भक्ति होती है, पूजा होती है। यह बन्ध अधिकार में अन्त में रखेंगे सब। हो, उसके काल में उस योग्यता के काल में ऐसा भाव हो, परन्तु वह धर्म नहीं, उसके आश्रय से धर्म होता नहीं, वह धर्म का कारण नहीं। समझ में आया? इसने सत्य को कभी अपना किया नहीं। सत् क्या है? सत्... सत्... सत्... सत्, वह परमेश्वर है। यह सत् परमेश्वर के आश्रय में जाना, तब उसे परमेश्वरता प्रगट होती है। समझ में आया इसमें?

कहते हैं, **मुमुक्षुओ....** इस पंचम भाव की भावना से। पंचमगति। यह श्लोक है न। इसे ५८, यह मूल श्लोक का नहीं। यह तो टीका का है। अब आयेगा। यह तो टीका की बात है। देखो न! 'पूर्वोक्तभावचतुष्टयमावरणसंयुक्तत्वात् न मुक्तिकारणम् त्रिकालनिरुपाधि-स्वरूपनिरंजननिजपरमपंचमभावभावनया पंचमगतिं मुमुक्षुवो यान्ति यास्यन्ति गताश्चेति' मैं तो वह देखने जाता था। कहो, समझ में आया? टीका में है, पण्डितजी! पद्मप्रभमलधारि सन्त मुनि जंगलवासी थे, जंगल में वनवासी आत्मध्यानी सन्त भावलिंगी। उन्होंने यह टीका बनायी है। इस टीका में कहते हैं, वर्तमान में भी, पहले वर्तमान याद किया है। स्वयं मुनि हैं, ऐसा कहते हैं हमारी मुनि की दशा से हमारे मुक्ति नहीं होगी, क्योंकि एक दशा है, मुक्ति पूर्ण दशा एक त्रिकाल के आश्रय से होती है।

द्रव्य और पर्याय के दो भाग। वस्तु त्रिकाल, वह द्रव्य कहलाता है और एक समय की अवस्था को पर्याय कहा जाता है। पर्याय अर्थात् भाग-अंश। यह चारों ही अंश है—उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। तो चारों ही अंश के आश्रय से नयी अंश पूर्णदशा प्रगटे, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया इसमें? मूल शास्त्रों का

स्वाध्याय करे नहीं, मनन करे नहीं, विचारे नहीं, अन्तर में उसका क्या है, वह स्वरूप समझने का प्रयत्न करे नहीं, फिर शास्त्र के अर्थ आड़े-टेढ़े करके, उलझन करके, मारकर-तोड़कर... कहा था न एक बार दृष्टान्त देते यहाँ दृष्टान्त। यहाँ वह गुड़ का रवा होता है न गुड़ का रवा? वह गुड़ का रवा नहीं आता कोल्हापुर में बड़ा इतना बड़ा-बड़ा डेढ़-डेढ़ दो-दो मण के सफेद। और उसमें गर्मी-धूप हो, अभी तो कहाँ गर्मी बराबर? चैत्र-वैशाख की तेज धूप हो, फिर वह पिघले। क्योंकि पूरे में वह टूट गया हो न कुछ वह क्या कहलाता है ऊपर? सन (Jute) का कपड़ा टूट गया हो तो पिघले, फिर ऐसे रस निकले। उसमें कोई गद्दे रखे हों साथ में। यह रात्रि में सोने के गद्दे। वे सब गुड़वाले हों। उसमें जो डाघा (कुत्ता) आवे दो-पाँच चूँथ डाले, सोने के गद्दे तोड़ डाले गुड़ के स्वाद के कारण। इसी प्रकार भगवान चैतन्यमूर्ति की सहज सहजानन्द की क्या है और कैसे प्रगट हो, उसे समझे बिना यह अपने विकल्प और दया, दान, व्रत और उसकी मिठास के कारण वे डाघा चिपटे, कोई कहे कि राग से होता है, कोई कहे कि व्यवहार से होता है, कोई कहे कि मारकर चूँथ डाला गद्दा। सोने का था, उसे तोड़ डाला। मोहनलालभाई! गद्दा तो अच्छा था। वह गुड़ का रस अन्दर गया न? इसी प्रकार उसे मान का राग और पुण्य से यह होता है, ऐसी मिथ्या श्रद्धा अन्दर घुस गयी। क्या कहा? यह गद्दे तुम्हारे सोने के नहीं यह? देते हैं या नहीं सोने को यह मूलजीभाई तुमको नहीं देते वहाँ? गद्दा-गद्दा। पोचा था न पोचा? तो गुड़ जब गर्म होकर... बहुत गर्मी हो न तो पिघल जाये और पत्थर आदि में हो, और धूल में हो न रवा तब तो थोड़ा... धूल चूस ले, परन्तु अकेले पत्थर के ऊपर रखा हो तो वह तो सीधे गद्दा हो वहाँ ही गिर जाये सब रस। फैल जाये वहाँ ऐसा। उस गुड़ को जहाँ वास्तव में तो उसे धो डालकर... परन्तु मेरा गद्दा देखा, वह एक कुत्ता ऐसा लगा और एक ऐसे लगा कुत्ता। चूँथ डाला सोने का।

इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द मूर्ति। उसकी वर्तमान दशा से रहित त्रिकाल। उसके आश्रय से काम लेना, वह सोने का काम आनन्द की शैय्या है वह। उसे सुखशैय्या कहते हैं। सुखशैय्या शास्त्र शब्द है न ठाणांग में श्वेताम्बर में। सुखशैय्या। परन्तु उसमें मान और अभिमान और पर्यायबुद्धि और राग से यह होता है, पुण्य से यह

होता है, निमित्त से यह होता है। मारकर चैतन्य की शान्ति को श्रद्धा में चूँथ डाला है और उस द्वारा जगत को भी यह परोसा है। जैसा वह करता हो, वैसा जगत को दिया। इसलिए उसको बेचारे को ऐसा लगा कि ऐसे सब पढ़े हुए ऐसे होशियार पण्डित कुछ कहते होंगे, वह ठीक होगा या नहीं ?

मुमुक्षु : संस्कृत में कुछ ऐसा लिखा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा होगा संस्कृत में। उस बेचारे को खबर नहीं होती। कहीं होगा संस्कृत में। परन्तु संस्कृत में उठा पढ़ा हो या सच्चा हो ? उसे समझे बिना चैतन्य की शान्ति कैसे प्राप्त हो, उसकी इसे खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं, जितने मुमुक्षु परमात्मपने को प्राप्त हुए, पायेंगे और पाते हैं, वे सब अन्तर स्वभाव एक ही तीन काल में निरपेक्षरूप से पर की अपेक्षा बिना सम्यक् एकान्त अन्तर में उतरने पर (पाते हैं)। यह आगे में आता है न भाई, पहले नहीं कुछ ? गहरे उतरते हैं, प्रविष्ट हो जाते हैं, ऐसा आता है आगे पहला। पहले आ गया है कहीं कलशों में। धर्मात्मा जीव उस आत्मा की ऐसी जाति त्रिकाल है और वर्तमान में अवस्था का ज्ञान करके गहरे उतरते हैं। इसलिए चैतन्य की अन्तर शक्ति में प्रविष्ट होते हैं। दो शब्द पड़े हैं कुछ आगे पड़े हैं पहले कुछ। गहरे प्रविष्ट होते हैं, गहरे उतर जाते हैं। ऐसा लिखा है। ऐसे सब कलश कहीं याद होते हैं ? कहो, समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं, यह एक ही मार्ग है, यह शुद्धभाव जो कहा, ऊपर लिखते हैं, ऐसा त्रिकाली परमपारिणामिक को शुद्ध कहते हैं, ध्रुवभाव को शुद्ध कहते हैं, अकेला ज्ञायकभाव जो छठवीं गाथा में समयसार में वर्णन किया। 'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं' 'एवं भणंति सुद्धं' ऐसा त्रिकाली ज्ञायकमूर्ति प्रभु, यह उसमें प्रविष्ट होकर अन्तर में, अन्तर में जाकर, अन्तर में गुम होकर एकाकार—उसके भाव में हो, उसे मुक्ति होती है, दूसरे को नहीं होती। इसका कलश कहेंगे विशेष.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



दिनांक - १३-०३-१९६३

गाथा - ३९, कलश-५५, प्रवचन नं. ३८७

यह नियमसार, एक मोक्षमार्ग अधिकार है। उसमें चलता अधिकार शुद्धभाव अधिकार है। अर्थात् क्या? कि यह आत्मपदार्थ एक सेकेण्ड के यह वस्तु आत्मा। अनादि-अनन्त ध्रुव सत् शाश्वत् जिसमें ज्ञान और आनन्द आदि जिसके स्वभाव त्रिकाल आत्मा के साथ है, ऐसे परम त्रिकाली तत्त्व को यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। वह शुद्धभाव एक आत्मा को आदरणीय अर्थात् अंगीकार करनेयोग्य अथवा उसकी शरण में जाकर त्रिकाल ध्रुव के लक्ष्य को ध्येय करके आत्मा की शरण, वह स्वयं अपना त्रिकाल शुद्ध आनन्दस्वरूप है। उसके आश्रय से अन्तर में होने से उसकी दशा में शुद्धता की शक्ति में से व्यक्तता प्रगट हो, उसे सुख और धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? रतिभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अब ऐसी सादी भाषा से तो इसमें कुछ इसमें... कि आत्मा एक पदार्थ है या नहीं? वस्तु है न वस्तु! तो वस्तु में बसे हुए गुण बिना वह वस्तु हो सकती नहीं। वस्तु है तो उसमें शाश्वत त्रिकाल शुद्ध और आनन्द आदि अनन्त-अनन्त शान्तरस का पिण्ड आत्मा है। उसकी वर्तमान दशा—हालत अनादि काल से परसन्मुख होकर, परपना मेरा या शरीरादि में या उनके काम कर सकता हूँ या वर्तमान दशा का राग, वह मैं अथवा वर्तमान दशा को—राग को जाननेवाला प्रगट ... एक अंश पर्याय भाग उतना मैं। ऐसा मानकर वह परिभ्रमण कर रहा है। समझ में आया इसमें? कितने बोल कहे वापस इसमें और? यह तो पहला शब्द आया न, भाई! 'बहितच्चं' यह कहकर तो क्षायिकभाव हेय है, ऐसा कह दिया पहला। बात तो सूक्ष्म है।

एक समय का प्रभु पूर्णानन्द से भरपूर पदार्थ है और जो हो, वह शुद्ध और परिपूर्ण, उसकी असली चीज़ है, परन्तु उसकी अनादि से स्वभाव के लक्ष्य और ध्येय को अनादि से चूका हुआ है। इसलिए उसकी दशा में पुण्य और पापादि राग की वृत्तियाँ

और उनका निमित्तरूपी पूर्व का कर्म जड़ और उन वृत्तियों को जाननेयोग्य वर्तमान ज्ञान की अवस्था का एक अंश जो रागादि को जाने, ऐसा ज्ञान का अंश झुका हुआ इतना तत्त्व मानकर, त्रिकाली आत्मा शुद्ध आनन्दघन और पूर्ण ज्ञ-स्वभावी आत्मा, यह उसकी दृष्टि में लिया नहीं, इसलिए वह दुःखी होकर परिभ्रमण करता है। बात तो कुछ दूसरे प्रकार है। समझ में आया ?

अब तो अपने यहाँ तो ३९वीं गाथा चलती है। पहला तो एकदम धड़ाका पहले पद में ही कह दिया है। परन्तु अब उसका विस्तार करते हैं कि भाई! तू कौन है? त्रिकाली तेरी चीज में क्या है? त्रिकाली तेरा स्वभाव क्या है? और त्रिकाली स्वभाववान आत्मा, वह स्वभाववान कैसा है? कि वह निर्विकल्प तत्त्व है। निर्विकल्प अर्थात् जिसमें संयोग नहीं, पुण्य-पाप नहीं, एक समय की अवस्था प्रगट उतना, वह नहीं। पूर्ण निर्विकल्प अभेद स्वरूप चिदानन्द प्रभु आत्मा है। कहो, मोहनभाई! समझ में आया यह? हाँ तो कहते हैं।

मुमुक्षु : ना किस प्रकार कहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ना कहे तो कुछ पूछे। ना करे तो पूछो कि कैसे, ऐसा कैसे है? कुछ तर्क हो सकता है या नहीं?

देखो, अस्ति है, उसके सिद्धान्त कहते हैं, देखो, कि एक अस्ति अर्थात् विद्यमानरूप कायमी आनन्द और शुद्धरूप द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव एक, उसका वर्तमान प्रगटरूप अल्पज्ञ और अल्पदर्शीरूप अवस्था वह है। वह पुण्य-पाप का विकल्प उठे, वह है और उसके निमित्तरूप संयोगी चीजें भी हैं। इतने अस्ति तत्त्व हैं। समझ में आया? हैं सही वे सब, परन्तु उन सब तत्त्वों में संयोगी चीजें शरीर, वाणी, कर्म, वह तो पर है, उनमें कहीं आत्मा की शान्ति और सुख उनमें नहीं भरा। शान्ति और सुख कहो या धर्म कहो, एक ही चीज है, हों! धर्म हो उसे आनन्द नहीं होता और अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो और धर्म न हो, ऐसा नहीं होता। धर्म अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द की दशा का अनुभव, उसे धर्म कहते हैं।

मुमुक्षु : उसका फल आगामी भव में मिले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आगामी धूल में मिले ? यहाँ यहीं का यहीं रोकड़ा है। शुभ-अशुभ का फल, शुभ और अशुभभाव करते हैं न! भाव। उनका फल वहीं का वहीं है। वह भाव विकारी है, उसकी आकुलता है, उसका वेदन है, वह उसका फल है। समझ में आया ? परलक्ष्यी पाप का भाव करे, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना विकल्प वृत्तियाँ या परलक्ष्यी दया, दान, व्रत, तप, भक्ति का, जप का, स्मरण का, अनुकम्पा का, वह विकल्प उठावे—दोनों वर्तमान भाव, वे वर्तमान दुःखरूप हैं। परन्तु उनका फल फिर फलेगा, वह तो फिर संयोग की बात हुई। उसका बँधा बन्ध, उसके फलरूप से संयोग मिले, वह तो दूसरी चीज़ है। यहाँ तो जिस क्षण में वह विकारी पर्याय शुभ और अशुभ उत्पन्न करता है, वहाँ ही उसका फल दुःख और आकुलता है। ऐसा जिस क्षण में त्रिकाल परतत्त्व हैं, उनमें मैं नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प वृत्ति राग उठे, उतना उसमें मैं नहीं और एक समय की वर्तमान दशा प्रगटरूप जो रागादि को जानने की ओर का कार्य करे, उतना मैं नहीं। मैं त्रिकाली आनन्द और ध्रुव स्वभाव हूँ—ऐसा अन्तर्मुख दृष्टि देने से, उसी क्षण में परम आनन्द अतीन्द्रिय की अंशदशा अनुभव में आती है। यह उसे धर्म कहते हैं और उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। यहाँ करे और फिर फले, यह बात नहीं। समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : रोकड़िया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोकड़िया ही है सर्वत्र।

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा, परन्तु इस बात की महिमा अन्दर बैठती नहीं उसे कि यह मैं इतना बड़ा! ऐसा! तब ऐसा तू न हो तो तेरी दशा में जब परम शुद्धता और परम आनन्दरूप दशा प्रगट होगी, तब वह दशा आयेगी कहाँ से ? तू निर्दोष होकर तेरी निर्दोषदशा की पूर्णता करना है, है, हो सकता है, होगा, होगा, वह कहाँ से होगा ? संयोग में से होगा ? पुण्य-पाप के विकल्प-राग उठे, उसमें से होगा ? अल्पज्ञ वर्तमान दशा में से पूर्ण निर्दोषदशा कहाँ से होगी ? वह पूर्ण निर्दोष और निर्विकारी, अविकारी आनन्दरूपदशा अर्थात् मोक्ष। उस दशा का कारण अन्दर शक्ति में पड़ा है। उसमें प्राप्त की प्राप्ति है। उसमें से प्रगट होकर दशा में पूर्णानन्द और शान्ति आती है। इसलिए ऐसा

जो तत्त्व ध्रुव, सत्त्व का अकेला भरपूर, परन्तु वह कैसे इसे माहात्म्य ? बाहर से ऐसे आये हैं न। इसलिए उसका स्वाद जरा आये बिना पूरा आनन्दमूर्ति आत्मा है, (वह) इसे विश्वास में आता नहीं। समझ में आया ?

एक ज्ञान का अंश जागृत दिखता है। जागृत है न वर्तमान ? राग को जाने आदि सबको जाने। उस जानने की मुख्यता में, ऊर्ध्वता में जिसका अंश वर्तमान पहला ज्ञात होता है ज्ञान का अंश प्रगट वर्तमान। वह अंश जिसका—त्रिकाल का है। त्रिकाल ज्ञान सूर्य किरण प्रभु आत्मा। ज्ञान सूर्य आत्मा है। आत्मा अर्थात् ज्ञ-स्वभावी आत्मा। ज्ञ-स्वभावी, ज्ञानस्वभावी, चैतन्यस्वभावी सूर्य। चैतन्य स्फटिक स्वभाव आत्मा। आत्मा अर्थात् क्या ? चैतन्यप्रकाश सूर्य का भण्डार, वह आत्मा। तो जहाँ चैतन्यस्वभाव हुआ जिसका, वह परिपूर्ण ही हो सकता है। अपूर्ण होता नहीं, विकार होता नहीं, दुःख होता नहीं और वह चैतन्य परिपूर्ण स्वभाव स्वरूप आत्मा अकेला अविनाशी अतीन्द्रिय आनन्द के साथ रहा हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्द इकट्ठा ज्ञान में है। परन्तु उसकी क्रिया अन्तर्मुख होकर, उसका माहात्म्य लाकर, उड़ा माहात्म्य जड़ का, पर का। उससे मेरा काम नहीं। यह पुण्य-पाप के भाव हों, उनसे मेरा काम नहीं। और वर्तमान अंश जो परसन्मुख झुका हुआ है, उतना भी मैं नहीं। जो प्रगट ज्ञान का अंश है, उसे अन्तर में पूर्णानन्द और ज्ञायकभाव में, अन्तर में झुकाने से, शक्ति में जो आनन्द और शान्ति और पूर्णता ज्ञान की पड़ी है। उसकी दशा में, अवस्था में, हालत में शान्ति और आनन्द और अनाकुल रमणता को अंश प्रगट हो, वह त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है। उसे धर्म कहते हैं, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं, उसे शान्ति का वेदन कहते हैं, उसे धर्म का कार्य कहते हैं। समझ में आया इसमें ? गजब बात भाई यह !

कहाँ धर्म होता होगा ? ... परन्तु धर्म, वह धर्मी ऐसे आत्मा में होगा या धर्म, वह कहीं बाहर होता होगा ? निर्विकल्पतत्त्व देखो यहाँ कहते हैं। निर्विकल्प प्रभु आत्मा है। राग का विकल्प भी उसमें नहीं, वह बन्ध का कारण है। शुभाशुभभाव उसमें नहीं, क्योंकि वह विकारजन्य उपाधि है। वह त्रिकाली तत्त्व तो निर्विकल्प शुद्धात्मा है। ऐसे अन्तरात्मा को, अन्तर आत्मा होने के लिये अन्तर में ध्येय करके जो परमात्मदशा को पाने को, पूर्णानन्द का कारण जो मोक्ष की कारण दशा, ऐसी प्रगट करना, वह द्रव्य के

आश्रय से होती है। अरे! उसकी बातें यहाँ निर्विकल्प तत्त्व है। वह मन से प्राप्त हो, ऐसा नहीं; वचन से प्राप्त हो, ऐसा नहीं। यह दया, दान के भाव से वह धर्म हो सकता नहीं।

मुमुक्षु : गुरु से नहीं प्राप्त होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु से प्राप्त हो—ऐसा नहीं। ‘दिशा दिखाकर अलग रहे।’ शास्त्र और गुरु दिशा बतावे। मार्ग में चलने का इसे है। दिशा पड़ी रहे दिखाने की। ‘शास्त्र और गुरु दिशा दिखाकर अलग रहे।’ उसे दिशा बतावे, आनन्दघनजी कहते हैं। भाई! या शास्त्र? शास्त्र तो परवस्तु है। गुरु? कि गुरु तो पर है। वह कहाँ अन्दर घुस गये हैं तुझमें? उन्होंने कहा हुआ भाव, उनके लक्षगत में वह स्वयं करे और उस लक्षगत को मोड़े चैतन्य ध्रुवतत्त्व में, तब उसे समझ में आये, तब उसका आत्मा उसका गुरु हुआ, तब बाहर का गुरु उसे व्यवहार से गुरु कहा जाता है। वरना अनन्त काल में कोई गुरु मिले नहीं? और सर्वज्ञदशा प्राप्त परमात्मा भी मिले नहीं कोई? आत्मा की शक्ति का विकास जिन्हें पूर्ण हो गया, ऐसे अल्प काल में पूर्णता प्राप्त हो। उसे भटकने में जैसे अनन्त काल गया, वैसे स्वरूप के भान की सत्त्व की दृष्टि को पकड़कर एकाकार होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति होने में अनन्त काल नहीं चाहिए। असंख्यकाल में वह प्राप्ति हो सकती है। तो अनन्त काल गया, उसमें आत्मा जो है, उसने स्वरूप का साधन करके अल्पकाल में परमात्मशक्ति की व्यक्ति की। ऐसा एक नहीं परन्तु अनन्त-अनन्त परमात्मदशा को प्राप्त शक्ति की व्यक्ति को प्रगट करके, पूर्णानन्द को प्राप्त हुए ऐसे अनन्त हो गये हैं। मोहनभाई! साथ में न्याय इकट्ठा आता है, उस शक्ति की व्यक्ति प्रगट करके। ऐसे परमात्मा मनुष्यदेह में जब थे, तब उनके संग में भी उनकी सभा में भी गया हुआ है।

मुमुक्षु : (तथापि आज तक आत्मा प्राप्त नहीं हुआ?)

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? वे दिशा बतावे परन्तु इसे जँचे नहीं। यह बात। ऐसा तू? और मेरी नजर अन्दर में जाये, तब उस नजर में निधान दिखे। उसके बिना आत्मा की शान्ति और धर्म तीन काल में किसी प्रकार से होता नहीं। यह बात बैठी नहीं, जँची नहीं। सुहायी नहीं, रुचि नहीं और इससे दूसरे प्रकार से कहनेवाले मिले, यह वह

बात इसे रुचि-सुहायी। यह बात ठीक लगती है। अपने से हो सकता है। वह तो हो सकता है, वह तो अनादि से करता है, वह हो सकता है राग, दया और पुण्य, उसमें क्या हो सकता है? यह कहते हैं, वह बराबर। यह मार्ग तो क्या कुछ कहते हैं? अगम-निगम की बातें! बापू! तेरी बात तो तेरे कल्पना से हाथ आवे, ऐसी तेरी चीज़ है। वह तेरी वर्तमान दशा का आश्रय करने जा, तो हाथ नहीं आवे। वह त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति पूर्णानन्द से भरपूर पदार्थ निर्विकल्पतत्त्व है। ऐसे ध्रुवतत्त्व की दृष्टि कर, तुझे करनी है, कोई कर दे—ऐसा नहीं है। कैसे होगा? चन्दुभाई! किसी के आशीर्वाद से मिलता होगा या नहीं? कोई और कोई श्राप देकर ले लेवे अर्थात् इसके हाथ में तो कुछ रहे नहीं और कोई आशीर्वाद से दे तो कोई श्राप देकर ले लेवे। ऐसा तत्त्व हो नहीं सकता।

एक चैतन्य तत्त्व भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द तेरा तत्त्व है। ऐसे तत्त्व की अन्दर में दृष्टि देना, उसका माहात्म्य करके अल्पज्ञदशा राग और पुण्य और निमित्त का माहात्म्य उड़ा देना, रुचि छोड़ देना। त्रिकाल ज्ञायक में रुचि करना, वह आत्मा स्वयं कर सकता है, बाकी उसमें किसी का काम है नहीं। गुरु भी यह काम करे नहीं और भगवान सर्वज्ञ विराजते हों, वे भी इसे मदद करे नहीं। वे (सिर पर) हाथ रखे तो कुछ हो, ऐसा नहीं है। सब बातें हैं मुफ्त की। यह सब भ्रमणायें घुसा डाली लोगों ने। थोड़ा हाथ रखे तो ऐसा हो, धूल रखे तो ऐसा हो। अनन्त काल में ऐसा हाथ रखनेवाला कोई गुरु मिला नहीं? अनन्त काल बीता, अनन्त काल बीता, अनन्त काल चला गया है। अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... जिसकी आदि है (नहीं)। ऐसा भूतकाल गया यह भव... इसका भव... इसका भव... इसके बाद... इसके बाद... इसके बाद... कहीं भव का अन्त है? ऐसे अनादि भव में रहा हुआ चैतन्यतत्त्व, उसे मनुष्यपने में अनन्त बार हुआ, त्यागी अनन्त बार हुआ, भोगी अनन्त बार हुआ, राजा अनन्त बार हुआ, रंक अनन्त बार हुआ, बड़ा अमलदार अधिकारी और भिखारी अनन्त बार हुआ। किसी को हाथ रखना नहीं आया होगा? धूल में हाथ से हो, ऐसा नहीं वहाँ।

इसका अर्थ यह कि जो गुरु और ज्ञानी कहते हैं, उसे इसके लक्ष्य में लेना और उसे—ध्येय को पकड़कर जाना, उसका नाम गुरु से हाथ रखवाया कहा जाता है।

चन्दुभाई! बाकी सब बातें, हों! ... मुफ्त का कोई चमत्कार और ढींकणा और फींकणा। तुझे ऐसा कर दूँ, समाधि करा दूँ। धूल भी हो ऐसा नहीं, सुन न! भ्रमणा में घुसा डालेंगे सब। कुछ न कुछ करा दूँ, तुझे ऐसा करा दूँ, इंगळा और पींगळा होती है न सब नाड़ी, ऐसा करे वहाँ चढ़ी हो जाये—आत्मा के दर्शन हो जाये। धूल भी नहीं होते सुन न,... ! अभी बहुत चले हैं ऐसे। और पीला-सफेद दिखाई दे। अब वह तो जड़ है। वह पीला-सफेद दिखाई दे वह। वह पीले-सफेद की दशा जिसकी सत्ता में ज्ञात होती है, ऐसी ज्ञानसत्ता, वह तत्त्व अरूपी ज्ञानानन्द अखण्डानन्द प्रभु द्रव्य अपना स्वभाव है। यह उसकी दृष्टि करना अलौकिक, अपूर्व अनन्त पुरुषार्थ है। वह पुरुषार्थ इसे करना रहा है, कोई कर दे, ऐसा है नहीं। चन्दुभाई!

अब यह बात करते हैं, देखो! थोड़ी बात तो कल ली थी थोड़ी-थोड़ी झट। भाई! कहते हैं कि झट ली थी, ऐसा कहा था। देखो, 'त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है।' कैसा भगवान आत्मा है? 'त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है।' ध्रुव चैतन्यमूर्ति प्रभु। 'ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को...' ऐसा शुद्ध जीव है। अस्ति है न अस्ति? जीव अस्ति। काय अर्थात् कि उसमें... काय शब्द क्यों प्रयोग किया है? कि आत्मा शरीर प्रमाण है, उसका एक ही प्रदेश नहीं। वह असंख्य प्रदेशी है। सूक्ष्म बात है। वह असंख्य प्रदेश हैं। एक परमाणु है न पॉइन्ट? वह अन्तिम टुकड़ा। यह (स्कन्ध) कहीं मूल चीज़ नहीं। क्योंकि इसके टुकड़े होते... होते... होते... होते... होते... होते... अन्तिम पॉइन्ट रहे कि जिसे शास्त्र की अणी भी छू सकती नहीं। अरे! ज्ञानी का ज्ञान जिसके दो भाग कल्प सके नहीं। ऐसा अन्तिम अस्तित्व, अस्ति तत्त्व परमाणु, रजकण, पॉइन्ट। उस परमाणु के गज से आत्मा को मापे तो एक, दो, तीन, चार, पाँच ऐसे असंख्य परमाणु के रजकण जितना वह चौड़ा एक शरीर में आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : माप ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका माप। गज से कपड़ा मापते हैं न? यह पच्चीस हाथ का है, यह पचास हाथ का है। यह चौड़ा कितना है? चौड़ाई कितनी? उसका यह माप करने का गज है। उसी प्रकार यह आत्मा शरीरप्रमाण है। चींटी में जाये तो भी शरीरप्रमाण।

बड़े हाथी में जाये तो भी शरीरप्रमाण। परन्तु है वह असंख्य प्रदेशी। अर्थात्? कि एक पॉइन्ट (परमाणु) रखे, उतने क्षेत्र को एक प्रदेश, अंश (कहते हैं)। पूरी चीज़ का एक अंश कहलाता है। पृथक् नहीं पड़ता। ऐसे असंख्य अंश का वह पूरा तत्त्व है। यदि ऐसा न हो तो चींटी में ऐसे संकोच पाता है, हाथी में विकास पाता है। जैसे रबड़ है रबड़। चौड़ा होता है, संकुचित होता है। है उतना का उतना। चौड़ा हो, संकोच हो। इसी प्रकार असंख्य प्रदेशी प्रभु आत्मा, वह हाथी में हो, उतना चौड़ा व्यापे, चींटी में हो (तो) उतना चौड़ा। वह उसमें संकोच-विकास असंख्य प्रदेश में संकोच-विकास होने की योग्यता है। ऐसा जो आत्मा अर्थात् जीव। शुद्ध; शुद्ध अर्थात् पवित्र। जीव अर्थात् द्रव्य। अस्ति—विद्यमानता, काय—यह असंख्य प्रदेश का समूह। यह उसका वाच्यार्थ है। समझ में आया? रतिभाई! उसमें कुछ आता नहीं हो। सट्टा में आता होगा ऐसा?

अरे भगवान! तूने तेरी.... वह स्वयं कुछ चीज़—वस्तु है या नहीं? तो उसकी कोई आकृति होगी या नहीं? आकृति अर्थात् कि इतने कद में वह है। उसका आकार जड़ का उसमें नहीं, परन्तु वह इतने कद में, इतने में है, ऐसा कुछ कद होगा या नहीं? वस्तु, उसका कद, उसकी वर्तमान दशा और उसकी त्रिकाली शक्तियों का समूह भाव। इसके बिना कोई वस्तु हो नहीं सकती। पदार्थ, पदार्थ का कद चौड़ा, उसकी वर्तमानदशा और उसका त्रिकाली भाव, इन चार का समुदाय, उसे पदार्थ कहा जाता है। ओहोहो! इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तु जीव के ज्ञान, दर्शन आदि त्रिकाली भाव, उसकी वर्तमानदशा का अंश जो प्रगट ज्ञान का, प्रतीति का अंश का दिखाव, वह और उसका कद शरीरप्रमाण है। शरीर के कारण से नहीं परन्तु शरीरप्रमाण स्वयं का आकार है। यह छोटा बालक था तो वह का वह है। बड़ा हुआ वह असंख्य प्रदेश जो थे रबड़ की भाँति ऐसे जरा चौड़े हो। वह अंश चौड़ा होता नहीं, परन्तु अंश जो ऐसे जमे हुए थे, वे ऐसे पृथक् होते हैं। जैसे-जैसे स्थूल शरीर और चौड़ा होता है वैसे पृथक् होते हैं। और क्षय हो जाये, हड्डियाँ मिल जायें तो वे प्रदेश ऐसे संकुचित हो जाते हैं। संकोच अर्थात्? कि ऐसे छोटे क्षेत्र में आ जाते हैं। ऐसा उसका असंख्य प्रदेशी काय अर्थात् समूह का उसका स्वभाव है। गजब बातें परन्तु इसकी।

वह मकान बेचे तो चार दिशा बाँधते हैं। बाँधते हैं न? भाई! वह यह मकान

मफतलाल का नहीं। अध्धर से लखीतंग मफतलाल की सही (हस्ताक्षर)। ऐसा होगा ? वहाँ कोर्ट में नहीं चलता। यह मकान इस जगह है, पूर्व में इसका मकान है, पश्चिम में इसका है, उत्तर में इसका और दक्षिण में इसका है। इसी प्रकार तू कहाँ है ? कितना है ? क्या गुणवाला है ? और कौनसी दशावाला है ? समझ में आया ? वह यह जरा बताने को। यह तो पूरा तत्त्व बतलाना है न, भाई ! इसलिए काय शब्द रखा है। दूसरे में यह काय का स्वरूप है नहीं। इसलिए बताया है इसमें। भाई ! तू आत्मा शुद्ध पवित्र। जीव अर्थात् आत्मा कहो या जीव कहो। अस्ति अर्थात् है। काय अर्थात् उसका कद है असंख्य प्रदेश जितना। ऐसे जीव को वास्तव में विभावस्वभाव स्थान नहीं हैं। ऐसा आत्मतत्त्व, उसे विकार के पुण्य-पाप के विकारीभाव, वह त्रिकालतत्त्व में नहीं है। कहो, प्रकाशचन्दजी ! यह क्या कद-बद की बात आयी ? क्या कहते हैं तुम्हारे ? चौड़ाई कहते हैं चौड़ाई ? हिन्दी में क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : लम्बाई-चौड़ाई....

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बाई-चौड़ाई।

अरे भगवान ! देखो, कि यह जब कुछ भी एकाग्र होना चाहता है। ध्यान रखो न्याय। तब उसे ऐसा-ऐसा देखे तो एकाग्र नहीं हो सकता। वह जितने में है, वहाँ एकाग्र होवे तो उसे एकाग्रता का फल आता है। न्याय समझ में आता है कुछ ? ऐसे सर्वत्र व्यापक यदि स्वयं एक ही हो, तो ऐसा करने से उसे एकाग्रता का विकास हो। इतने में स्वयं है। शरीरप्रमाण तत्त्व भिन्न। चैतन्य ज्ञायकतत्त्व शरीरप्रमाण भिन्न। उसमें एकाग्र हो। जितने में स्वयं है, उतने में एकाग्र हो, तब उसे शान्ति या सुख की प्राप्ति, इतने क्षेत्र में रहे हुए उसके अनन्त गुण, उसका एकरूप तत्त्व, उसमें एकाकार होने से, उसे शान्ति और वीतरागता या सम्यग्दर्शन आदि इतने क्षेत्र में से उसे प्रगट होते हैं, इसलिए उतने क्षेत्र में ही पूरा तत्त्व है। समझ में आया ?

कहाँ है परन्तु दूसरा तब ? दूसरा दूसरे में, तू तुझमें। यह यहाँ कहते हैं। ऐसा जो भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी में अनन्त गुणों का धाम, उसका रूप एक ऐसा परमात्मा अपना स्वभाव, जीवभाव, जीवतत्त्व। उसमें पुण्य और पाप के विकारी स्थान, विकार

के, शुभ के असंख्य प्रकार। ऐसा क्यों लिया? विभावस्थान लिये हैं न? विकार के स्थान; स्थान अर्थात् प्रकार। वह आत्म त्रिकाल ज्ञायक के अन्दर उस विकार के अनेक सथान के प्रकार शुभ के असंख्य, अशुभ के असंख्य। दया-दान, मन्द-तीव्र, हिंसा-झूठ मन्द-तीव्र—ऐसे-ऐसे असंख्य प्रकार शुभ, असंख्य प्रकार अशुभ। ये सब विकारस्थान त्रिकाली चैतन्यमूर्ति के अन्दर नहीं है। जिसमें दृष्टि देने से आत्मा को दौलत प्रगट हो, ऐसे तत्त्व के अन्दर विकारी परिणाम की अन्तर गन्ध भी है नहीं। समझ में आया? गजब!

ऐसे नजर अन्दर करने जाये तो अन्धेरा दिखता है। बाहर नजर करने जाये तो यह दिखता है। ऐई! मूलजीभाई! परन्तु प्रभु! एक बार सुन तो सही। ऐसे अन्धेरा जो दिखता है, वह अन्धेरे से दिखता है या प्रकाश से दिखता है? अन्धेरा अन्धेरे में अन्धेरे से दिखता है? या यह अन्धेरा ज्ञान के प्रकाश में ज्ञान के प्रकाश से मैं प्रकाश और अन्धेरा, ऐसे दो दिखते हैं? भगवान जाने क्या होगा कहीं कभी मनन और मंथन किया नहीं। यह पुण्य और पाप के विकल्प, वे अन्धकारस्वरूप हैं, विकार है। उसे जाननेवाला चैतन्यप्रकाश प्रभु त्रिकाली तत्त्व में उस विकार के स्थान का अभाव है। इसलिए, विकार के आश्रय से तू धर्म करने जाये, यह तीन काल में हो सकेगा नहीं। कहो, बराबर है मोहनलालभाई? यह तुम्हारे कानून से तो बात चलती है यह। बिना कानून के नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ले, यह तो कहते हैं कि विकार तुझमें नहीं अन्दर। विभाव होने पर भी उसकी दशा में होने पर भी उसके शाश्वत् स्वभाव में नहीं। इसलिए शाश्वत् स्वभाव की दृष्टि से उसे छोड़ा जा सकता है। इसीलिए तो यह सिद्ध करना है। पानी में काई है, काई। अब जिसे पानी पीना है पथ्य और हल्का और स्वच्छ, उसे काई उसमें नहीं, इसलिए जरा ऐसे दूर करके अन्दर में पानी पीने लगे तो पानी से उसकी तृषा मिटे। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और शान्तरस के जल से भरपूर पदार्थ, उसकी वर्तमानदशा में अनादि से उसकी विकृत अवस्था उसमें क्रम-क्रम से करे और जाये, करे और जाये—ऐसा हुआ करता है। वह विकृत अवस्था काई समान है। जिसे धर्म और शान्ति की प्राप्ति करनी हो, उसे 'विकार, वह मेरे त्रिकाल में नहीं, उसमें तो अकेला शुद्ध और

आनन्दरस पड़ा है।' ऐसी अन्तर दृष्टि देने से काई का पृथक्पना होने से अन्दर शान्ति के अंश की प्रगटदशा हो, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। कहो, समझ में आया कुछ इसमें ?

मुमुक्षु : विकार चाहिए हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकार चाहिए है तो नहीं चले। अर्थात् इसे विकार भी चाहिए है अभी। पैसा भी चाहिए है, अमलदारीपना चाहिए है, वकालत चाहिए है और यह चाहिए है। एक म्यान में दो नहीं चले। एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। इस विकार की जिसे रुचि, उसे निर्विकारी चैतन्य की रुचि नहीं हो सकती और जिसे त्रिकाली निर्विकारी की रुचि हो, उसे विकार की रुचि नहीं रह सकती, विकार रहेगा, विकार रहेगा, रुचि नहीं रह सकती। यह भी ठीक है और यह भी ठीक है। दो ठीक नहीं रह सकते। तो क्या है इसमें ? विकार भी चाहिए है भाई इसे अभी। यह ८३ (वर्ष) हुए, अब क्या करना है तुम्हारे ? शरीर को ८३ हुए, हों ! आत्मा तो अनादि है। सबका एक समान। कोई एक समय अधिक बढ़ गया है अभी तक ? अनादि का आत्मा है। अभी तक आये। कोई एक समय दीर्घ आयुष्यवाला है ? दीर्घ अर्थात् ? अनादि से वर्तमान। अनादि से वर्तमान। वर्तमान से अनन्त। उसमें अनादि से वर्तमान से कोई एक समय आगे रहे हैं कोई ? हो सकता नहीं तीन काल में कोई। समझ में आया ?

अनादि से वर्तमान तक का काल सबको समान है। उसके विकार के भाव में अन्तर है। कोई विकार को मन्द करता है, कोई तीव्र करता है, कोई विकार की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि करता है और कोई विकार के स्वभाव की अस्थिरता छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है। ऐसी वर्तमान दशा में अन्तर पड़ता है, उसके काल में अन्तर नहीं पड़ता। समझ में आया इसमें ? लो, यह तो भाई कल आ गया था थोड़ा। अब थोड़ा अधिक लिया। दूसरी बात।

ऐसा शुद्ध प्रभु आत्मा, उसे भला और बुरा—प्रशस्त अर्थात् भला। शुभराग भला कहती है न दुनिया ? अनुकम्पा, दया, भक्ति शुभराग भला... भला... भला... ऐसा जगत कहता है। कहते हैं कि भला-बला राग, वह आत्मा में नहीं। अप्रशस्त। बुरा पुण्य-पाप

का भाव, वह समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से। भगवान ध्रुव चैतन्यमूर्ति प्रभु में वह मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत... मान-अपमान की जो दशा होती है, उसका निमित्त ऐसा जो कर्म का उदय। उसका निमित्त। उसके प्रकार भाव। वे सब कर्म के निमित्त के प्रकार मान-अपमान के भाव हैं, वे आत्मा में हैं नहीं। मूल पाठ में, भाई 'माणवमाणभावठाणा' है। क्या कहा यह ? उसका हेतु कर्म है, ऐसा कहते हैं। उसके उदय के सब प्रकार मान-अपमान के हैं, वे आत्मा के हैं नहीं। ओहोहो !

क्या कहा समझ में आया इसमें ? भगवान चैतन्यमूर्ति में यदि मान-अपमान के प्रकार हों तो कभी निर्मान, अमान दशा को प्रगट नहीं कर सकता। उसमें है ही नहीं तीन काल में, नहीं तो नास्ति से शान्ति प्रगट होती है। मान-अपमान के विकल्प, वे कर्म के निमित्त के स्थान कहलाते हैं। उसके प्रकार हैं। तेरी चीज़ के वे प्रकार हैं नहीं। वे त्रिकाली द्रव्य के अन्दर, वस्तु के अन्दर, मान-अपमान के भाव—स्थान है नहीं।

अब तीसरा बोल भी चला था कल। और (शुद्ध जीवास्तिकाय को) शुभपरिणति का अभाव होने से... इसे विशेष स्पष्ट करते हैं। शुभपरिणति अर्थात् ? यह दया, दान, व्रत, तप, जप, भक्ति, नामस्मरण, जाप—ऐसा जो विकल्प उठता है, वह शुभराग की दशा है, शुभराग की दशा है। वह शुभपरिणति। परिणति अर्थात् अवस्था, परिणति अर्थात् अवस्था-दशा। राग की, शुभ की दशा। उसका भगवान त्रिकाल द्रव्य के अन्दर अभाव होने से। वस्तु के त्रिकाल स्वभाव में वह है नहीं। होने से शुभकर्म नहीं है... क्योंकि शुभभाव ही जहाँ त्रिकाल में नहीं, उसे शुभभाव का बन्धन जो होता है, कर्म जड़, वह आत्मा में नहीं। शुभकर्म का अभाव होने से... और उस जड़कर्म का आत्मा में अभाव होने से संसारसुख नहीं है,... वह संसारसुख नहीं। क्या कहा ? यह संसार का संयोग सुखरूप होता है न यह बाहर के धूल के संयोग मिलें वे, वह आत्मा को नहीं। और संसारसुख का अभाव होने से अब हर्षस्थान नहीं, ऐसा कहते हैं। चार बोल से गुलाँट मारी है।

पहला तो ऐसा कहा कि भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्य धातु अरागी, वीतरागी अनादि-अनन्त वस्तु। उसमें शुभ विकार की दशा का अभाव, इससे विकार

का निमित्त पाकर कर्मबन्धन हो, उसका अभाव और कर्मबन्धन होकर अनुकूल संयोग मिले सुख के, उनका अभाव और वह सुख मिले और उसमें हर्ष हो, वह ऐसे भाव का उसमें (त्रिकाली में) अभाव है। समझ में आया या नहीं इसमें? देवराजभाई! समझ में आता है यह? यह समझना पड़ेगा। वह सब सटोरिया में कुछ धूल भी नहीं। पैसा मिले पाँच-पचास हजार और लाख। हैरान-हैरान और अभी देखो न! उसके लिये कितने... कल निकले थे सब। नहीं निकला था, दिखता था। जुलुस निकला था एक। चिल्लाहट मचाये जगत। सुख तुझमें है। बाहर में धूल में भी नहीं। सोना का भाव घटा। सोना का भाव घटा और बढ़ा तो क्या कहना? इसका अर्थ क्या करते हैं लोग? सोना का भाव घटा अर्थात् सोना उजला होता होगा? और सोना सवा सौ हो तो सोना ऐसा बहुत उजला होता होगा? किसके भाव घटे? अरे तेरी कल्पना के घटे-बढ़े, वहाँ तो है वह है। चन्दुभाई! कैसे होगा? छह लाख का सोना संग्रह किया था सरकार को बताने के लिये। न बतावे तो खोटा जाये। अब उसमें करना क्या? वह तेरी कल्पना के घोड़े हैं, बापू! वह तो जहाँ है, वहाँ है। ऐसी कल्पना कि हमको दस लाख का सोना था। वह पुण्य के बन्ध का फल। पुण्यबन्ध शुभभाव का फल और वह सुख संयोग मिला, उसमें हर्ष होता था कि यह चारों चीज़ तुझमें नहीं, ले। दामोदरभाई!

यहाँ मेरी मोटरें और मजा करते हैं, लोग ऐसा कहते हैं, लो! मोटरों का हॉर्न बुलावे और ऐसे बलून में चले, ऐसे ऊँचे से चले। कितना मजा! धूल में भी मजा नहीं, सुन न! कहते हैं, भगवान आत्मा, अरे प्रभु! यह पुण्य के परिणाम जो हैं, वह तेरी चीज़ में नहीं, इसलिए निकल जाते हैं, अन्तर का आश्रय करे तो। यह पुण्य के परिणाम ही नहीं तो इनका बन्धन हो, वह भी तुझमें नहीं। क्योंकि शुभभाव हो तो उसका बन्ध तो हो न शुभकर्म? वह भी नहीं। शुभकर्म का बन्धन हो तो संयोग मिले। सुख के (संयोग) लोग कहते हैं उसके। कि संयोग जिसे सुख कहते हैं, वह भी तुझमें नहीं। तो संयोग के निमित्त से हर्ष हो कि हमें कुछ मिला, ऐसा हर्ष का भाव भी तेरी चीज़ के अन्दर नहीं। समझ में आया? यह तो अलकमलक की बातें हैं दूसरी।

जिसे भगवान होना हो, अरे! सुखी होना हो, पहली बात फिर और। भगवान की बाद में रखो। जिसे सुखी होना हो। एक सिद्धान्त है न, लो! कि जो मनुष्य सुखी होना

तो चाहते हैं न? सुखी होना तो चाहते हैं न? सुख के लिए यत्न है न जगत के? कहते हैं सुख का अस्तित्व तो स्वीकारते हैं या नहीं? सुख का अस्तित्व न स्वीकारे (तो) सुख की इच्छा कैसे करे वे? सुख की अस्ति स्वीकारते हैं। कहना कहाँ वह बाद में प्रश्न। अभी तो यहाँ सुख के लिये छटपटाहट। अन्त में मरकर भी... क्या कहा? एकबार हुआ था न, भाई! कि अपमान ऐसा आवे बाहर में। राज छोड़ूँ, परिवार छोड़ूँ, ऐसा अपमान। उस अपमान की असह्य वेदना के माप में उसे देह छोड़ना, वह दुःख हल्का लगता है। ध्यान रखना। उसमें से सिद्धान्त निकलेंगे वापस। कि अपमान आ पड़ने की आकुलता के माप की हृद के समक्ष मरकर शरीर को नष्ट करना। इस देह को छोड़कर। अग्नि में जलकर, अफीम खाकर, छुरा खाकर। हुआ क्या उसमें? कि इस अपमान और इस आकुलता के समक्ष शरीर का अभाव हो तो भी वह दुःख मुझे हल्का लगता है और यह कठोर लगता है। कुछ दूसरी बात।

कि जो शरीर संयोगरूप है, दूसरी चीजें तो कहीं रह गयी। शरीर का अभाव करके भी दुःख से रहित अकेला होकर सुखी होना चाहता है, तो उसमें सिद्धान्त सिद्ध होता है कि इसके स्वरूप में कुछ सुख है। इसे भान नहीं। समझ में आया? इसलिए ऐसे मृत्यु करके, गले में फाँसी खाकर क्या करना है? इस दुःख का अभाव कर। इस दुःख का अभाव अर्थात्? सुखी होना है। सुखी होना है अर्थात्? कि संयोगों को शरीर जितना भी अभाव करके, शरीर का संयोग अभाव करके भी सुखी होना। तो इसका अर्थ यह कि अकेला रहकर सुखी होना। इसका अर्थ यह कि आत्मा में अकेला रहकर सुखी होने की उसमें सामर्थ्य है। परन्तु अज्ञान के कारण उसे भान नहीं। समझ में आया इसमें? तो सुख की सत्ता अज्ञानरूप से भी अकेले में है, ऐसा स्वीकार करता है, परन्तु वह सुख की सत्ता कैसे प्राप्त हो और वह सुख मुझमें कैसे है, इसकी इसे खबर नहीं। एक बात। इसलिए सुख तो अस्तिरूप से है आत्मा में। आनन्द आत्मा में अस्तिरूप से है।

दूसरी बात। यह शोधना चाहता है तो उपाय करता है तो उपाय भी स्वीकारता तो है। उपाय स्वीकारता तो है, परन्तु उसका उपाय सच्चा कौनसा, उसकी इसे खबर नहीं। सत्ता का स्वीकार और उपाय का स्वीकार, दोनों स्वीकारता है, परन्तु सुख कहाँ है और

किस उपाय से मिले, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया? यह तो न्याय से बैठे ऐसा है या नहीं? यह दूसरे प्रकार से कहें अपने कि यह आ पड़ी हुई आपदा से हल्का दुःख लगा शरीर के अभाव में। अब शरीर जाता है जब यह मृत्युकाल। छर्ना खाकर। अब यह अभाव नहीं हुआ वास्तव में। क्यों? कि उसे जाने पर दुःख होता है। दुःख हुए बिना रहता नहीं। क्योंकि उसे वह अपना माना था। दुःख होता है, अर्थात् उसके प्रति राग था राग। यह मेरा है... यह मेरा है... परन्तु उसे उस आपदा की अपेक्षा यह कुछ कम आपदा लगती है, इसलिए छर्ना खाया, परन्तु जाते हुए उसे दुःख होता है। ऐसे... फिर अन्त में... अब इसे अभाव करना नहीं आया। अभाव करना आवे कब? कि इस शरीर के प्रति प्रीति है, वह छूटे तो छूटने के काल में उसका उसे द्वेष न हो। और वह राग-द्वेष कब न हो?—कि राग-द्वेषरहित मेरी चीज़ है। यह ऐसी दृष्टि पड़े बिना शरीर छूटने के काल में द्वेष हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया इसमें? न्याय से, लॉजिक से तो यहाँ समझेगा या नहीं (कि) यह क्या है? अब कोई जगत की बात भी तर्क से हो तो बैठती है, वरना बैठती नहीं। और यह ऐसा का ऐसा अन्ध श्रद्धा से बैठाये जाये, हाँके जाये, परन्तु इसके ख्याल में कुछ बात यह है, ऐसा है—ऐसी नहीं बैठती, तब तक सम्यक्ता और सत्यता ज्ञान में आती नहीं। तो शरीर का अभाव किया कब कहलाये और अकेला रहा कब कहलाये? कि शरीर की प्रतिकूलता के समय ऐसी अन्दर जो एकता थी प्रीति की, वह प्रीति तोड़, वरना तो द्वेष होगा अन्दर में अन्दर तड़पड़ाहट होकर फिर टूटे। अरे! इसकी अपेक्षा तो नहीं खाया होता तो अच्छा न! उस समय हो फिर उसे। फिर क्या हो? परन्तु तब शरीर छोड़ने के काल में शरीर छूटा और छोड़ा कब कहलाये कि मैं शरीररहित चीज़ हूँ। शरीररहित चीज़ हूँ और शरीररहित अर्थात् शरीर का राग मेरे स्वरूप में हो नहीं सकता। और शरीररहित मैं चीज़ हूँ, इसलिए शरीर जाये तो उसकी प्रीति नहीं, शरीर के काल में तो उसके अभाव के काल में उसका द्वेष नहीं हो सकता। क्या कहा और यह?

देखो, एक सिद्धान्त ऐसा है कि शरीर में प्रतिकूलता के समय दुःख कितना होगा? दुःख, वह उसके कारण से नहीं। कि जितना उसमें राग था, उतना उसमें द्वेष हो। एक तौल है उसका। क्या कहा? शरीर के पीड़ा काल में दुःख कितना होता है?

कि शरीर की अस्ति काल में उसमें जितना प्रेम तोला था राग का, इतना जाने के काल में उतना द्वेष होगा। समझ में आया इसमें? सबको समान नहीं होता। क्योंकि जिसे जितनी राग की तीव्रता, उतना उसे दुःख होता है। दुःख संयोग के कारण से नहीं, दुःख स्वरूप में नहीं। उसकी दशा में खड़ी की हुई प्रीति-अप्रीति, ... स्थान में प्रीति-अप्रीति लेंगे कलश में। वापस कहना यह है। कलश है, वह प्रीति-अप्रीति के स्थान तेरे स्वरूप में नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बातें तो हैं, भाई!

एक बार कहा था न, नारणभाई को मैंने पूछा था। वह (केश) लोंच करते थे न लोंच? हमारे नारणभाई आये न। कि कितना दुःख लगता है? कि रोटी में जितना राग रहता है, उतना दुःख लगता है। लाठी का (संवत्) १९८५ के चातुर्मास की बात है। ८५। मैंने कहा, यह बाल खींचे न? कि कितना (दुःख) लगता है? कि यह रोटी खाने के समय और दाल खाने के समय जितना प्रेम वर्तता था, वह उतना खींचने के काल में द्वेष होता है। समझ में आया इसमें कुछ? जितना अनुकूलता के प्रति राग का झुकाव, उतना प्रतिकूलता के प्रति द्वेष का झुकाव माप प्रमाण होता है। जितना राग मन्द, उतना प्रतिकूलता के समय द्वेष कम। जितना अनुकूलता के प्रति बिल्कुल राग का अभाव, वह तो आत्मद्रव्य है। उस आत्मद्रव्य पर जब दृष्टि की तो बिल्कुल राग का अभाव उसके अन्दर है। ऐसे राग के अभाववाले द्रव्य की दृष्टि वस्तु की होने से, देह छूटने पर, देह के काल में राग नहीं था, देह छोड़ने के काल में उसे द्वेष नहीं होगा, उसे आनन्द होगा। बात समझ में आती है कुछ इसमें?

क्या है यह तत्त्व? भाई! बापू! न्याय से सिद्ध हो ऐसा यह तत्त्व है। ऐसा का ऐसा न बैठे, उसे समझ में आये नहीं, ऐसा तत्त्व नहीं है। समझ में आये ऐसा तत्त्व है। उसके ख्याल में ज्ञानकला में आ सकता है। तो यहाँ कहते हैं। संसार के सुख की सामग्री, वह पूर्व के पुण्य के कारण मिली तो वह सामग्री भी नहीं, पुण्य भी नहीं और पुण्य के कारणरूप आत्मा में जो शुभराग था, वह वस्तु में नहीं। ऐसे आत्मा की दृष्टि करने से आत्मा को पुण्य-पापरहित होने का प्रसंग सम्यग्दर्शन में होता है। समझ में आया?

यह हर्षस्थान नहीं, ऐसा कहा, भाई! हर्ष-हर्ष। यह हर्ष अर्थात् राग के प्रकार

जीव में है नहीं। यह हर्ष के प्रकार नहीं, वे तो खड़े किये नयी दशा में, दशा में, वस्तु में है नहीं। तो वस्तु में नहीं, उसकी दृष्टि और अनुभव कर, तुझे शान्ति और सुख मिलेगा। इसके अतिरिक्त शान्ति और सुख और धर्म होगा नहीं। समझ में आया? यह तो इतने तक तो आया था कल। थोड़ा अधिक कहते हैं।

अब भगवान आत्मा शुद्ध जीववस्तु, उसे अशुभ परिणति का अभाव। यह विकार की वृत्ति पाप की है, वह त्रिकाल वस्तु में नहीं, वस्तु में नहीं। वस्तु में होवे तो विकार टल सकता नहीं। वह अशुभ विकार—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, यह ऊपरछल्लुं, ऊपर तैरता तेल पानी में ऊपर तेल। उस पानी के दल में तेल का प्रवेश नहीं। है? लोग नहीं कहते ऊपर तेल, तिरेगा। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति, उसकी वर्तमान दशा में ऊपर तैरता राग और पाप है। मूल चीज में नहीं। ऐसी मूल चीज की दृष्टि किये बिना सम्यग्दर्शन अर्थात् सत्य का स्वीकार नहीं हो सकता और वह सत्य परमेश्वर का स्वीकार हो, तब उसे समकित्ता कहा जाता है, तब उसे धर्मी कहा जाता है।

ऐसे अशुभपरिणति का अभाव होने से... अशुभकर्म नहीं। भाव ही विकार (ही) जिसकी मूल चीज में नहीं। वह तो निमित्तरूप से कर्म बँधा, वह भी उसमें नहीं। तो अशुभकर्म का अभाव होने से दुःख नहीं। दुःख अर्थात् प्रतिकूल संयोग नहीं। वह आत्मा में प्रतिकूल संयोग नहीं और संयोग नहीं तो दुःख का अभाव होने से अहर्षस्थान नहीं अर्थात् शोक नहीं। ऐसे अस्ति-नास्ति से बात की है। वह हर्ष था न, अहर्ष अर्थात् शोक उसमें नहीं। प्रतिकूलता आने पर ऐसा है, परन्तु वह तेरे स्वरूप में ही नहीं। तूने नयी दशा में खड़ा किया हुआ कर्तव्य है, वस्तु में है नहीं। बस, समझ में आया? ओहोहो! यह तो भागवत पारायण है। शास्त्र ने इसे भागवत कहा है। आगे भागवत शास्त्र कहा है। आगे कहा महिमावन्त... अन्तिम शब्द हैं, देखो। अन्तिम लाईन है अन्त में, देखो। यह पृष्ठ ३७२।

भागवत=भगवान का; दैवी; पवित्र। शास्त्र। है न? नीचे नोट-नोट। एकड़ा। और टीका में लो तो नीचे से तीसरी लाईन। यह नीचे से तीसरी लाइन। यह (नियमसार शास्त्र)... नीचे से तीसरी लाईन। ३७२ पृष्ठ। नीचे से लाइन का अन्तिम शब्द यह

(नियमसार शास्त्र) भागवत शास्त्र है। है ? जो (शास्त्र) निर्वाणसुन्दरी से उत्पन्न होनेवाले, परमवीतरागात्मक निराबाध, निरन्तर और अनंग परमानन्द का देनेवाला है,.... यह भागवत का नीचे अर्थ किया है। भगवान का शास्त्र यह, दैवीशास्त्र यह, पवित्र शास्त्र यह। है या नहीं ? कोर्ट में कानून बताते होंगे न रामजीभाई वहाँ भी। लो, यह कानून यह यहाँ से, यह कानून यह सब कानून लिखे हुए हैं इसमें, देखो ! समझ में आया ?

कहते हैं, प्रभु ! वह यह तेरा भागवत वाँचा जाता है। महिमावन्त दैवीशास्त्र। यह तो समयसार भी 'भागवत शास्त्र' है। सब शास्त्र भागवत होते हैं न। कहते हैं, वह एक सप्ताह में करते हैं। यह तीन सप्ताह का भागवत है यह। अपने २१ दिन हैं न २२ दिन ? कहते हैं, अरे भगवान ! वह तू भी कितना ? क्या ? कि तू जहाँ है, वहाँ पुण्य-पाप के भाव नहीं। तू जहाँ है, वहाँ पुण्य-पाप के भाव का बन्धन नहीं। तू जहाँ है, वहाँ बन्धन के फल अनुकूल-प्रतिकूल नहीं। यह तू जहाँ है, वहाँ अनुकूल-प्रतिकूल में हर्ष-अहर्ष हो, वह वस्तु में नहीं। समझ में आया ? यह तो समझ में आये ऐसी बात है, हों ! रतिभाई ! या न समझ में आये, ऐसी है ? समझ में आये ऐसी है।

अब, इसका कलश करते हैं जरा। इसका कलश। यह मूल गाथा की टीका करके। अब जैसे मन्दिर के ऊपर कलश होता है न, वैसे यह टीका के ऊपर कलश करते हैं। कलश। ऊपर है। शार्दूल।

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख-
निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्विम्बाकृतावात्मनि ।
चैतन्यामृत-पूर-पूर्ण-वपुषे प्रेक्षावतां गोचरे,
बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं सन्सृतेर्दुःकृतेः ॥५५ ॥

इसका अर्थ नीचे। हे भगवान ! हे आत्मा ! प्रीति-अप्रीति रहित (तेरा) शाश्वतपद है;... देखो, वह हर्ष-शोक किया था न, भाई ! उसमें से इतना निकाला बस हो गया। प्रीति-अप्रीति के भाव तुझमें है नहीं। यह उठाईगीर ने विकल्प की दशा में उठाये हैं,

स्वरूप में नहीं। ऐसे स्वरूप की शरण ले, ऐसे स्वरूप के आश्रय में ला, तुझे धर्म होगा, बाकी धर्म होगा नहीं। जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;... शाश्वत् चिदानन्द प्रभु आत्मा। जो सर्वथा अन्तर्मुख। क्या कहते हैं? वह सर्वथा अन्तर्मुख है। सर्वथा क्यों कहा है? कि निमित्त भी उसमें नहीं, राग भी नहीं और एक समय की दशा, वह त्रिकाल में नहीं। सर्वथा अन्तर्मुख तत्त्व अखण्डानन्द प्रभु परमात्मस्वरूप स्थित है। और सर्वथा कहाँ आया इसमें? कथंचित् लेना चाहिए या नहीं?

कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न। यह वस्तु जो है वस्तु, आत्मपदार्थ जिसे वस्तुस्वभाव शाश्वत्। वह तो अन्तर्मुख अखण्ड वस्तु है। उसके अन्दर संयोग भी नहीं, विकल्प राग पुण्य-पाप का नहीं, एक समय की दशा उसके मूल त्रिकाल स्वरूप में नहीं। इसलिए उसे सर्वथा अन्तर्मुख, आत्मपदार्थ को सर्वथा अन्तर्मुख। अन्तर्मुख हो तो अन्तर्मुख पदार्थ ज्ञात हो, ऐसा है। प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ,... कैसा है भगवान आत्मा? वह प्रगट प्रकाशमान, वह ध्रुव प्रगट प्रकाशमान, चैतन्य सत्ता का प्रगट प्रकाशमान और सुख का बना हुआ। प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ। देखो! जिसका सुख प्रगट प्रकाशमान बना हुआ ऐसा सुख का बना हुआ, सुख है उसका। बना हुआ अर्थात्? सुखस्वरूप है, ऐसा। आत्मा प्रगट प्रकाशमान आनन्द से बना हुआ है। अर्थात् कि अकेला आनन्द की मूर्ति है। नित्यानन्दरूप प्रभु की दशा में हर्ष-शोक आदि वर्तते हैं, वे त्रिकाल में नहीं और त्रिकाल का अवलम्बन लिये बिना, उसे सम्यग्दर्शन और धर्म होता नहीं। प्रकाशचन्दजी! यह सब चिल्लाहट मचाते हैं। वे कहे शुभ से होता है। यहाँ तो कहते हैं कि अब क्षायिकभाव बहिरतत्त्व, अब सुन न! एक समय की निर्मल पर्याय प्रगट—व्यक्त होती है, वह बहिरतत्त्व है, हेय है। हेय है। यह एक भगवान त्रिकाल द्रव्य है, वह सर्वथा अन्तर्मुख है, वही आश्रय और शरणभूत करनेयोग्य है।

सुख का बना हुआ, नभमण्डल समान अकृत है;... आकाश है, वह किसी का बनाया हुआ है? आकाश व्यापक है न आकाश? आकाश, यह आकाश नहीं, हों! देखे वह आकाश नहीं। यह लोग कहे लाल। वह तो पुद्गल परमाणु है। अरूपी आकाश है,

जिसे रंग, गन्ध, रस, स्पर्श आकाश में नहीं। सर्वव्यापक। यहाँ सब जगह अग्नि में सर्वत्र व्यापक अरूपी एक आकाश है और चौदह ब्रह्माण्ड है, उसके पीछे चारों ओर। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... दशों दिशाओं में। खाली अरूपी आकाश का भाग—नभ वह अकृत है, किसी का किया हुआ नहीं। सर्वव्यापक आकाश पदार्थ, वह किया हुआ नहीं उसकी भाँति... नभमण्डल समान अकृत है। देखो, नीचे अर्थ किया है, किसी से नहीं किया हुआ। कौन? भगवान् आत्मपदार्थ किसी से नहीं किया हुआ सत्शाश्वत् वस्तु है। की हुई चीज़ कृत्रिम होती है। अकृत्रिम तत्त्व वह-वह अकृत्रिम त्रिकाल है।

जैसे आकाश को किसी ने बनाया नहीं, उसी प्रकार आत्मा को किसी ने बनाया नहीं। सर्वव्यापक आकाश को कौन बनावे? सर्वव्यापक। अरूपी व्यापक-व्यापक सर्व जगह। चौदह लोक होकर, चौदह ब्रह्माण्ड, पश्चात् भी कुछ खाली है या नहीं? क्षेत्र कितना, विचारा है कभी किसी ने? कहाँ? फिर वाड होगी? फिर बेलें होंगी? असंख्य योजन, अनन्त योजन, अनन्त योजन, अनन्त कोड़ाकोड़ी योजन ऐसे चारों ओर ऐसे कहीं... कहीं... कहीं... जाकर फिर क्या होगा वहाँ? वह क्षेत्र अमाप, जिसके पीछे कुछ खड्डा नहीं, वाड नहीं, बेल नहीं, कोई दीवार नहीं। ऐसा आकाश जैसे सर्वव्यापक अकृत्रिम, उसकी उपमा दी है। इसी प्रकार भगवान् आत्मा आनन्द का कन्द अकृत्रिम चीज़ अनादि-अनन्त है।

चैतन्यामृत के पूरे से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;... यह चैतन्य के अमृत से पूरे। यह चैतन्य अमृत का पूरे है अन्दर आत्मा। आहाहा! गीत भी वे कितने हैं! तेरे गीत वाणी से पार न पड़े, इतने हैं। जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है—यह समझदार हो, उसे वह गम्य हो, ऐसा है। विचारवन्त, ज्ञान में समझण में लेनेवाले को वह गम्य है। अज्ञानी को वह गम्य है नहीं। लो, यह ज्ञानगम्य है। विचारवन्त चतुर पुरुषों को आत्मा अनादि आनन्दकन्द है, वह गम्य हो सकता है, अज्ञानी को गम्य हो सके, ऐसा नहीं। ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता... लो, अन्तिम यह निकाला। उसका फल निकाला। बुद्धि है न! पाठ में तो बुद्धि है न! ऐसा आत्मा, ऐसा भगवान् आत्मा नित्यानन्द प्रभु, अरे आत्मा! तू उसमें क्यों रुचि नहीं करता? उसमें रुचि, तुझे श्रद्धा,

उसका भरोसा, उसका विश्वास क्यों नहीं लाता ? और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है ? लो, मोहनलालभाई ! यह विकार देखे, उसे इनकार करते हैं । उसे लाठी मारते हैं । लाठी । दुष्कृतरूप संसार, वह पुण्य और पाप दुष्कृत है, ऐसे संसार के सुख को, अरे, जीव ! तू क्यों इच्छता है ? तू क्यों इच्छता है ? प्रभु ! यह तुझे क्या हुआ है ? क्या कहा ?

मुमुक्षु : मूल चीज़....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये कहते हैं न । विचारवन्त नहीं । विचारवन्त हो तो यह तत्त्व अखण्डानन्द प्रभु की दृष्टि करे, विचारवन्त को गम्य हो, अज्ञानी को वह गम्य नहीं होता । ऐसे आत्मा की रुचि क्यों नहीं करता ? और इस संसार के सुख को, जो संसार दुष्कृत-दुष्कृत । शुभ और अशुभ पूरा संसार दुष्कृत । ऐसे संसार के सुख को क्यों चाहता है ? ऐसा करके जरा मुनि ने जगत को उलहाना दिया है । अर्थात् भगवान आत्मा पूर्णानन्द और चैतन्य अमृत है न, उसकी रुचि कर न, बापू ! उसकी रुचि कर न ! यह रुचि छोड़, इसके बिना तुझे धर्म और शान्ति होगी नहीं ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

यह शुद्धभाव अधिकार है। यह शुद्धभाव अर्थात् कि त्रिकाली ज्ञायकभाव जो ध्रुव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। पर्याय का शुद्धभाव और अशुद्धभाव; अशुद्ध के दो प्रकार—शुभ और अशुभ, उसकी बात यहाँ नहीं है। जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह पहले कहा न? जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है। आहाहा! जीव की एक समय की पर्याय, उसमें आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष—ऐसे सात तत्त्व की पर्याय जो है, वह जीव अन्तरतत्त्व से वह बाह्यतत्त्व है। समझ में आया? सूक्ष्म भाव है। अन्तर्तत्त्व, अन्तर्तत्त्व इस अपेक्षा से पुण्य और पाप का विकल्प आस्रव। राग और ... बन्ध और शुद्धि की उत्पत्ति होना, वह संवर, शुद्धि की वृद्धि होना निर्जरा, शुद्धि की पूर्णता होना, वह मोक्ष। इन सबको बहिर्तत्त्व कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बहिर्तत्त्व हेय है। क्यों? वह परद्रव्य होने के कारण। यह स्वद्रव्य ज्ञायक त्रिकाली नहीं, इस कारण से बहिर्तत्त्व को उपादेय नहीं कहा जाता। पाठ में हेय है, परन्तु उपादेय नहीं ऐसा। नास्ति से कहा। आहाहा!

अब किसे उपादेय है? क्या उपादेय है और किसे उपादेय है? समझ में आया? दो बातें हैं। क्या उपादेय है? और किसे उपादेय है? यह दो बातें एकसाथ कहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि जो वैराग्य के शिखर का शिखामणि पर से उदास, विकल्प से उदास। आहाहा! अन्तर में विकल्प से भी उदास जो है। आहाहा! और परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित... वहाँ अणीन्द्रिय... नहीं। और जो परम जिनयोगीश्वर हैं,... मुख्यरूप से मुनि लिये हैं। स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है... आहाहा! जिसकी स्वज्ञायकभाव परमस्वभाव के प्रति स्व-पर की (स्वद्रव्य के प्रति) तीक्ष्णबुद्धि है। आहाहा! ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! वह विकल्पमात्र से हटकर, परद्रव्य से पराङ्मुख होकर स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि से जिसका काम करता है। आहाहा!

ऐसे आत्मा को.... ऐसे आत्मा को। उसकी परिणति ली कि जिसने विकल्प से रहित, परद्रव्य से पराङ्मुख, स्वद्रव्य में तीक्ष्णबुद्धि से... आहाहा! कहते हैं न।

भाई! हमको तो ... ज्ञायकस्वभाव के प्रति तीक्ष्णबुद्धि, पर से भिन्न करके। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे आत्मा को...** ऐसी जिसके अन्तर में निर्विकल्प परिणति हुई है। आहाहा! ऐसे आत्मा को 'आत्मा' परमस्वभावी वस्तु त्रिकाली। **ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया है। **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** आहाहा! कहते हैं कि उदयभाव दया, दान, भक्ति, व्रतादि के विकल्प उठते हैं, वह उदयभाव है। उदयभाव से आत्मा अगम्य है। उससे गम्य हो सकता नहीं। आहाहा! यहाँ तो चारों ही भाव से अगम्य है, ऐसा कहा गया है। उदयभाव दया, दान, व्रत का विकल्प, उससे गम्य नहीं, परन्तु उपशमभाव है, उससे गम्य नहीं। गम्य नहीं का अर्थ? कि उपशमभाव के आश्रय से गम्य नहीं होता।

चैतन्य ज्ञायक त्रिकालीभाव क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक, उस पर्याय से गम्य है। यहाँ जरा सूक्ष्म बात है कि यहाँ उदय से तो गम्य नहीं, परन्तु उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिक से तो गम्य है। यहाँ तो इनकार करते हैं कि उनसे गम्य नहीं। इसका अर्थ कि पारिणामिकस्वभावभावरूपी आत्मा ज्ञायकभाव इन चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं। समझ में आया? उसके आश्रय से नहीं उस पर्याय से तो गम्य है। अनुभव में गम्य है तो पर्याय है न? वह तो क्षयोपशम, उपशम क्षायिकदशा तो पर्याय है, परन्तु उस पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं, ऐसा कहा जाता है। भावान्तरों से गम्य नहीं, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? भाषा तो सादी आती है, जरा भाव भले ऊँचे हों। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **औदयिक आदि चार भावान्तरों...** भावान्तरों का अर्थ नीचे लिखा है। **अन्य भाव।** किससे अन्यभाव? यहाँ जो शुद्धभाव कहा, ऐसा जो ज्ञायकभाव ध्रुव जो शुद्धभाव जो है। परमस्वभावभाव पारिणामिकभाव जो है, उससे यह चार भाव अन्य है। समझ में आया? आहाहा! **औदयिक आदि चार भावान्तरों...** भावान्तर—अन्यभाव। ध्रुव नित्यानन्द प्रभु सहजानन्दस्वभाव की मूर्ति आत्मा, वह परमपारिणामिकस्वभावरूप ऐसे भाव से चार भाव अन्य है। आहाहा! समझ में आया? तो उन **चार भावान्तरों को अगोचर...** चार भाव से भगवान् आत्मा गम्य नहीं, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ यह कि चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं। गम्य नहीं उपशम—क्षयोपशम से तो, किस भाव से

गम्य है ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान में गम्य है । तो सम्यग्दर्शन क्षायिक, उपशम हो या क्षयोपशम हो, उससे तो गम्य है ।

मुमुक्षु : आश्रय से गम्य नहीं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके आश्रय से गम्य नहीं ।

औदयिक आदि चार भावान्तरों... ओहोहो ! क्षायिकसमकित से भी गम्य नहीं, ऐसा कहा गया है । इसका अर्थ कि क्षायिकसमकित के आश्रय से गम्य नहीं । परमस्वभावभाव के आश्रय से गम्य है । आहाहा ! अरे ! ऐसी बात परमात्मा की । तीन लोक का नाथ स्वयं परमात्मा है । साक्षात् भगवान की मूर्ति आत्मा है । यह अनन्त-अनन्त आनन्द का सागर से भरपूर प्रभु आत्मा है । आहाहा ! ऐसा आत्मा पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं । पर्याय से गम्य है, पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं । समझ में आया ? चाहे तो क्षयोपशमभाव हो या क्षायिकभाव या उपशम हो, उसके आश्रय से गम्य नहीं । उससे गम्य है, परन्तु उसके आश्रय से गम्य नहीं । समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा मार्ग है, भाई !

अन्तर भगवान परमानन्द का नाथ पूर्णानन्दस्वरूप 'जिन सो ही है आत्मा' जिन, वह आत्मा और आत्मा, वह जिन । जिनेश्वर कहो या जिन कहो या आत्मा कहो, दोनों एक चीज़ है । ऐसे भगवान जिनेश्वर प्रभु, वीतरागमूर्ति परमस्वभावभाव, वह उसके भाव से अन्य चार भाव—पर्याय का भाव, उसके आश्रय से अनुभव नहीं होता, उसके आश्रय से गम्य नहीं होता । आहाहा ! ब्रह्मचारीजी ! आहाहा ! एक बात । दूसरी बात, ऐसे आत्मा को 'आत्मा' कहा न ? तो जो आत्मा अन्दर स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि लगाकर, विकल्प से हटकर परिणति में आया है, उस परिणतिवाले को आत्मा उपादेय है । तब तो उपादेय उस समय में उपादेय होता है । ऐसा धार रखे कि उपादेय है । वह तो विकल्प की धारणा है, वह चीज़ नहीं । आहाहा ! समझ में आया ?

जिस समय में परद्रव्य से पराङ्मुख होकर, पर से हटकर विकल्प से रहित निर्विकल्प वीतरागभाव में अन्तर में जाकर उस समय में ऐसे आत्मा को उस समय उपादेय है, उस समय उपादेय है । आहाहा ! (समयसार) १४४ गाथा में कहा न

कर्ताकर्म (अधिकार समयसार में) । परद्रव्य से हटकर स्व पूर्णानन्द के नाथ की सेवा की, उस समय वह शुद्ध है, ऐसा मालूम पड़ा। एक बात। १४४ में कहा, कर्ताकर्म। कि जिस समय, जिस काल में आत्मा श्रुतज्ञान विकल्प जो आकुलता है। श्रुतज्ञान के नय जो पक्षपात हैं, विकल्प जो उठता है, वह आकुलता है। यह तो शुभविकल्प है। मैं ऐसा हूँ.... ऐसा हूँ... शुद्ध हूँ, अनन्त हूँ, वेदनेयोग्य हूँ—ऐसा जो विकल्प उठता है, वह तो शुभभाव है। है आकुलता। वह आकुलता... आहाहा! तो आकुलता द्वारा निराकुलता ज्ञात नहीं होती। ऐसा मार्ग सूक्ष्म पड़े लोगों को। वह मार्ग यह है।

अनादि तीर्थकरों जिनेन्द्रदेव ने यह मार्ग... गणधरों के समक्ष में कहा है। आहाहा! कहते हैं कि वह जब अन्दर आत्मा विकल्प से हटकर, स्वरूप शुद्ध पूर्ण, वह प्रतीति-अनुभव करके करता है, उस समय आत्मा श्रद्धायोग्य हुआ। उस समय आत्मा जाननेयोग्य हुआ। डाह्याभाई! १४४ में आता है न, भाई! १४४ कर्ताकर्म (अधिकार) की अन्तिम गाथा। अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मारूप समयसार का जब आत्मा अनुभव करता है... उस समय... उस समय, उस काल में, उस दशा में उस समय ही आत्मा सम्यक् रूप से दिखाई देता है... आहाहा! और ज्ञात होता है। क्या कहा? यह तो अगम-निगम की बातें। अगम-निगम। आहाहा! लोग तो ऐसा कहे कि अलक-मलक की बात। यह तो अगम-निगम की बात। आहाहा!

कहते हैं, यह तो पहले आ गया। १४४ तो बहुत बार वाँचन हो गया न! सत्रह बार तो सभा में वाँचन हो गया है। आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुतज्ञान की बुद्धियों को भी मर्यादा में लाकर.... 'यह मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ, प्रत्यक्ष होनेयोग्य हूँ' ऐसा विकल्प जो है, वह आकुलता है। आहाहा! उस आकुलता को छोड़कर अन्तर स्वभाव के अनुभव के काल में वह आत्मा श्रद्धायोग्य हुआ। वह आत्मा उस काल में जाननेयोग्य हुआ। समझ में आया? उस काल में आत्मा उपादेय हुआ। इसलिए, समयसार ही समयदर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! यह तो परमात्मा साक्षात् प्रभु पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है। जैसे जिनेश्वर हैं व्यक्तरूप से, ऐसा आत्मा शक्तिरूप से ऐसा ही है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे जिनेश्वरदेव पर्याय में, अवस्था में व्यक्तरूप से पूर्णानन्द है, ऐसा यह

भगवान आत्मा शक्तिरूप से ऐसा ही है। उसके सामर्थ्य में ऐसा इतना ही है। ऐसे सामर्थ्यवान ईश्वर भगवान, वह विकल्प से रहित होकर... यहाँ वैराग्य शब्द लिया है। पर से वैराग्य करके स्वद्रव्य की तीक्ष्णबुद्धि में पकड़ा, उस काल में वह आत्मा, उस आत्मा को यह 'आत्मा' उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा उपादेय है, ऐसी धारणा करना विकल्प से, वह अलग चीज़ है। उसमें वह चीज़ नहीं आयी। यह तो विकल्प से निर्णय किया कि यह आत्मा त्रिकाली उपादेय है। तो उपादेय है, आदरणीय है, उस ओर की दृष्टि हुए बिना आदरणीय हुआ कहाँ से? समझ में आया? आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर से ऐसी कथनी आयी उसमें। आहाहा! वह तो विकल्प... समझ में आया? यह बात भाषा क्या आवे?

पूर्व में वह भगवान तीर्थकर अपने पूर्णानन्द स्वभाव के साधकरूप से परिणमते थे तो उन्हें ऐसा विकल्प आया 'मैं पूर्ण हो जाऊँ, मैं पूर्ण आश्रय करूँ। आत्मा का पूर्ण आश्रय करूँ और पूर्ण हो जाऊँ।' ऐसा विकल्प आया, उसमें ऐसा कर्मबन्ध हुआ कि उनकी वाणी में ऐसा ही कथन आता है। समझ में आया? यह इच्छा कहाँ उन्हें करनी है। तो पूर्व में ऐसा विकल्प आया कि 'मैं पूर्णानन्दस्वरूप हूँ, मैं पूर्णानन्द पर्याय में हो जाऊँ और पूर्णानन्द की प्राप्ति मैं करूँ।' आहाहा! ऐसा जो विकल्प, उस विकल्प में ऐसा पुण्य बँध गया कि पूर्णानन्द की प्राप्ति कैसे हो, वही वाणी उसमें से निकलती है। न्याय समझ में आता है? परन्तु दूसरा तो है नहीं। आहाहा! हमारे तो सम्प्रदाय में बहुत बात चलती थी। ... गृहस्थ। दस लाख रुपये। तब दस लाख। अभी तो यह करोड़ोंपति बहुत दिखते हैं... पच्चीस-तीस गुने भाव ... हो गये हैं। उस समय के एक लाख और यहाँ अभी तीस लाख। उस समय के एक लाख और यहाँ तीस लाख, इतने समान हैं। पैसे की कीमत घट गयी। भाव तो ... तो बढ़ गयी न? आहाहा! तो उस समय उनके साथ ऐसी चर्चा चली थी, वह कहे कि सर्वज्ञ परमेश्वर है तो सर्वज्ञ तो जानते हैं कि इसको इस समय कल्याण होगा। तो पुरुषार्थ करने का कैसे कहा?

तो उससे कहा, उस समय की बात है। (संवत्) १९८३ के बाद। परन्तु अपूर्ण था तो पूर्ण होने का विकल्प आया। आहाहा! वह तो सर्वज्ञ है। तो उसमें बोलूँ, ऐसी स्व-पर कथन शैली है उसमें। आत्मा स्व-पर को प्रकाशक है। वाणी स्व-पर कथनशैली

शक्तिवाली है। ऐसा माने कि... श्वेताम्बर शास्त्र भगवान का कहा हुआ नहीं। आहाहा! वह तो दृष्टि विपरीत हुई, पश्चात् शास्त्र रचे। तो वह अपेक्षित भाव हुआ। समझ में आया? कारणपरमात्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म... ऊपर है न। 'कम्मोपाधिसमुद्भवगुण-पज्जाएहिं' यह तो ज्ञानगम्भीर गाथा है। शुद्धभाव का अधिकार, गाथा बहुत सूक्ष्म! ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! साक्षात् पंचम काल में तीर्थकर जैसा काम किया है उन्होंने और टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा काम किया है। आहाहा! यह पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका है। पद्मप्रभमलधारीदेव हैं न? यह अमृतचन्द्राचार्य। यह कुन्दकुन्दाचार्य।

कहते हैं, आहाहा! कि उपादेय कहा, वह चीज़ कैसी? जो उपादेय के काल में निर्विकल्पदशा के काल में ही उपादेय है। तो वह है कैसा अब? त्रिकाली वस्तु है कैसी? और उपादेय दृष्टि में—ज्ञान के अनुभव में आया। निर्विकल्प परिणति के काल में वह आत्मा उपादेय है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! कहो, सुजानमलजी! गजब बात है, भाई! आहाहा! यह चार भावान्तर... परमपारिणामिक-स्वभावभाव ध्रुवभाव नित्यानन्द प्रभु, वह परमपारिणामिकस्वभावभाव तो पर्याय के चार भाव, उन भाव से अन्यभाव है। आहाहा! अन्दर द्रव्य का भाव है और यह पर्याय का भाव है। तो अन्य भाव से अगम्य है। इसका अर्थ कि अन्य भाव के आश्रय से ज्ञात नहीं होता। परमपारिणामिक प्रभु चार भाव के आश्रय से ज्ञात नहीं होता। उसका आश्रय करे तो ज्ञात होता है। डाह्याभाई! आहाहा! ऐसा धर्म का उपदेश होगा? लोग ... अभी तक तो जिज्ञासु होकर दस-दस हजार, बीस हजार ... हो, लो! यह सुनना कठिन! आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है। वस्तु की स्थिति प्राप्त करने की पद्धति तो यह है। बाकी सब बातें करे व्रत करो, तप करो, यह करो और भक्ति करो, देशसेवा करो। धूल भी नहीं उसमें कुछ। कौन करे किसकी करे? आहाहा! पर्याय की सेवा करने जाये तो राग होता है। अपनी, हों! पर की तो कर सकता है ही कहाँ? आहाहा!

ऐसे चार भावान्तरों को अगोचर होने से... चार भाव के आश्रय से ज्ञात नहीं होता, ऐसा कारणपरमात्मा। ऐसा त्रिकाली ज्ञायकभाव कारण प्रभु! द्रव्यकर्म.... जड़, भावकर्म.... विकल्प। दया, दान, व्रतादि का विकल्प, वह भावकर्म। और नोकर्मरूप....

शरीर। इन उपाधि से जनित.... आहाहा! विभावगुणपर्यायों रहित है,.... यह विभाव के गुणपर्यायों जो हैं.... वास्तव में इन चार भाव को विभावभाव कहा जाता है। एक स्वभावभाव त्रिकाल। यह द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित... मनजनित संकल्प-विकल्प को आधि कहते हैं, शरीर के रोग को व्याधि कहते हैं और संयोगी दशा को उपाधि कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा उपाधि, व्याधि और आधि—तीन से रहित समाधि से गम्य है। समझ में आया? पद्मचन्द्रजी! ऐसी सूक्ष्म वस्तु है यह। आहाहा!

यह तो नास्ति से पहले कहा कि ऐसे कर्म से—उपाधि से उत्पन्न हुई विभावपर्याय, उससे रहित है। तो है कैसा अस्ति? जो उपादेय कहा और उपादेय परिणति में आया निर्विकल्प परिणति में, वह उपादेय आया। वह कैसा है अन्दर? तो वह अनादि-अनन्त। आहाहा! अनादि-अनन्त वस्तु है। है, उसकी आदि क्या और है, उसका नाश क्या? है उसे पर की अपेक्षा क्या? ऐसा अनादि-अनन्त अमूर्त.... मूर्तपना कहाँ है उसमें? वह तो अमूर्त है। अतीन्द्रियस्वभाववाला.... आहाहा! अतीन्द्रियस्वभाववाला वह तो है। अलिंगग्रहण में आ गया है। इन्द्रिय से जानना आत्मा को होता नहीं। इन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। इन्द्रिय से आत्मा को जानना होता नहीं। पहले... में चला गया नहीं। दूसरा बोल यह आया। इन्द्रिय से आत्मा जाननेयोग्य नहीं। उसे इन्द्रिय से जानना होता नहीं और वह इन्द्रिय से ज्ञात होनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—परमपारिणामिकभाव सहजभाव ऐसा जिसका स्वभाव है। ऐसा कारणपरमात्मा.... ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में आत्मा है। कि ऐसे आत्मा को यह 'आत्मा' उपादेय। कैसा आत्मा उपादेय? उस आत्मा की व्याख्या की। पहले आत्मा की परिणति कैसी है, उस परिणति द्वारा उस आत्मा को यह आत्मा उपादेय है। वह आत्मा कैसा है? समझ में आया? जैसा परमपारिणामिकभाव। ऐसा क्यों कहा? कि किसी काल में उदयभाव को परमपारिणामिकभाव कहते हैं। जयधवल में राग (उदयभाव) को पारिणामिकभाव कहते हैं क्योंकि पारिणामिकभाव की पर्याय है न! तो चारों भावों को पारिणामिकभाव कहते हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम,

क्षायिक, परन्तु वह परमपारिणामिक नहीं। चार पर्याय को पारिणामिकभाव कहते हैं। मिथ्यात्वभाव को पारिणामिक कहा। (उल्टी) मान्यता, परन्तु उसकी अवस्था है न। परमपारिणामिकभाव की अवस्था है न! आहाहा!

यह कहते हैं कि परमपारिणामिकभाव, वह पर्याय के पारिणामिकभाव से भिन्न है। आहाहा! **ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** कैसे आत्मा को कैसा आत्मा उपादेय है? दो की व्याख्या हुई। समझ में आया? कैसे आत्मा को कैसा आत्मा आदरणीय है? आहाहा! वह परद्रव्य से पराङ्मुख होकर, स्वद्रव्य में उपशमबुद्धि लगाकर अन्तर में अनुभव की दशा होती है, ऐसे आत्मा को आत्मा आदरणीय है, ऐसा कहते हैं। उपादेय जो है, वह चीज़ कैसी है? आहाहा! समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की यह ध्वनि है। समझ में आया? यह कहीं ... बात नहीं साधारण। ... जिसके एक समय में तीन काल, तीन लोक जानने में आते हैं पर्याय। पर्याय की इतनी सामर्थ्यता कि उसे देखने से तीन काल, तीन लोक ज्ञात हो जाते हैं। समझ में आया? एक समय की पर्याय तीन काल, तीन लोक में केवली आदि हैं, उनको एक समय की पर्याय जानती है। अनन्त केवलियों की पर्याय (को जानती है)। आहाहा! गजब, पर्याय में कितना सामर्थ्य, बापू! वह पर्याय का सामर्थ्य। उसकी अनन्तता कितनी है! वह भगवान के मुख में से निकली हुई वाणी सन्त जगत के निकट आड़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं। आड़तिया कहते हैं न? आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है। परमस्वभावभाव कारणपरमात्मा ध्रुव आत्मा, वह वास्तव में आत्मा, पर्यायवाला वास्तव में आत्मा नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव भी वास्तव में आत्मा नहीं। आहाहा! वह तो औपचारिक आत्मा हुआ व्यवहारनय का। समझ में आया? क्षायिकभाव की केवलज्ञान की पर्याय, वह तो औपचारिक आत्मा हुआ, व्यवहार आत्मा हुआ। आहाहा! उपशम तो ... यह तो ... उसमें—आगरा-बागरा में ऐसा आवे नहीं कुछ। ऐसा लगावे तो वहाँ और कहे कि यह क्या कहते हैं? आहाहा! ... यह तो यह वस्तु यह आहाहा!

कहते हैं कि यह तो अकेली निश्चय-निश्चय की बातें करते हैं, व्यवहार

को तो उड़ा देते हैं। क्षायिकभाव ... भावकभाव, उसके आश्रय से आत्मा समझ में नहीं आता। यह बात कहाँ से? उपशमसमकित में आत्मा का अनुभव होता है। ... बापू! ... उसका अवलम्बन लेने से, चार पर्याय के भाव का अवलम्बन लेने से आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! कहते हैं कि वह वास्तव में। कारणपरमात्मा अनादि-अनन्त, आहाहा! अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्ध सहजपरमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव। जिसका स्वभाव। ऐसा कारण आत्मा है। वह स्वभाववान। आहाहा! जिसका स्वभाव ऐसा कहा न! शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है— जिसका अर्थात्? कारणपरमात्मा का। आहाहा!

ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है। वह वास्तविक आत्मा और अवास्तविक आत्मा। आत्मा के दो भेद कर दिये। आहाहा! वास्तविक आत्मा, यथार्थरूप से आत्मा, भूतार्थरूप से आत्मा, सत्यार्थरूप से आत्मा तो यह त्रिकाली जो कहा, वह है। समझ में आया? यह तो मार्ग बहुत बापू (गम्भीर है)। आहाहा! ... विरला को धार पर चढ़ाया है। आहाहा! सराण समझते हो, सराण नहीं होती? लोहे की। ज्ञान की तीक्ष्ण धारा की सराण (धार) पर आत्मा को चढ़ाया। समझ में आया? वह वास्तव में आत्मा है। आहाहा! तो और एक वास्तविक आत्मा और एक फिर अवास्तविक आत्मा। क्षायिकभाव की पर्याय, वह अवास्तविक आत्मा। आहाहा! एक समय की पर्याय है। यह तो महाप्रभु पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञानगुण, जिस गुण में अनन्त केवलज्ञान की पर्याय की शक्ति पड़ी है। आहाहा! ऐसा जो वास्तविक आत्मा, उसे हम सत्य आत्मा, सच्चा आत्मा, वास्तविक आत्मा उसे कहते हैं। आहाहा! डाह्याभाई! 'आत्म भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान।' रट जाये भक्ति में। परन्तु कौनसा आत्मा? कैसा आत्मा? कहाँ आत्मा? और किस परिणति से आत्मा उपादेय ज्ञात होता है? आहाहा! वह आत्मभावना अर्थात् कहा। पर से उदास होकर सूक्ष्म... सूक्ष्म (बुद्धि) लगा दी ऐसी जो परिणति, वह भावना। और उसका आत्मा यह। आहाहा! अरे! यह बात है कहाँ प्रभु तेरे घर की? तेरी महिमा की क्या बात करना? ऐसा आत्मा जो है परमपारिणामिकस्वभावभाव।

अति-आसन्न भव्य जीवों को.... जिसे संसार का अन्त निकट आ गया है।

आहाहा! जो मोक्ष की पर्याय में अल्प काल में मुक्ति की योग्यता हुई है। आहाहा! ऐसा अति निकटभव्य जीवों को—जिन्हें मोक्ष निकट है—जिनके संसार का अन्त शीघ्र आ गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश किस प्रकार का! ऐ बापू! भगवान की जाति का उपदेश है। आहाहा! भाई! तुझे तेरे स्वभाव की सामर्थ्य की दशावाला ... है, उसका तो माहात्म्य आया नहीं इसे। और माहात्म्य व्यवहार का, पर्याय का माहात्म्य है, वह तो बारदान है। बारदान समझते हो? बोरियाँ। खाली बोरी। माल तो यह त्रिकाली आत्मा, वह माल है।

तो कहते हैं कि **अति-आसन्न भव्य जीवों को....** आहाहा! अकेला भव्य नहीं लिया, आसन्न भव्य भी नहीं। **अति-आसन्न भव्य....** आहाहा! जिसे मोक्ष होने का भणकार बजा है अब अल्पकाल में। आहाहा! सिद्धपद की प्राप्ति का जिसे अन्दर से भणकार बजा है। आहाहा! ... नहीं? हमारे आहाहा! ... भगवान की वाणी विषय कहा तो भड़के, परन्तु वह तो इन्द्रिय का विषय है। भगवान हो या साक्षात् ज्ञानी हो, वह तो इन्द्रिय का विषय है, अनीन्द्रिय का विषय नहीं। आहाहा! एक बोल की (बात) आ गयी। ... की आयी। यह ... बात है। यह तो अगम-निगम की बातें, बापू! आहाहा!

अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त... ऐसे अति-आसन्न भव्य जीव को निजपरमात्मा जो ज्ञायकभाव आत्मा कहा, जो वास्तविक आत्मा कहा, उसके **अतिरिक्त (दूसरा) कुछ उपादेय नहीं है**। आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बातें हैं, बापू! अरेरे! स्त्री का देह, पुरुष का, नपुंसक का, वह तो जड़ के आकार, प्रभु! वह तू नहीं। शरीर के आकार सब यह सब तो मिट्टी के पुतले के आकार हैं। यह आत्मा है? अन्दर राग उठता है, वह पुण्य-पाप के विकल्प, दोनों अनात्मा हैं। आत्मा है? तो जिसे अनात्मा के प्रति प्रेम है, उसे आत्मा के प्रति प्रेम नहीं लगता। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। आहाहा! यह कहा न! अति-आसन्न भव्य जीव में यह कहा। कि जिसे पर से, राग से ... प्रेम उड़ गया है। प्रेम उड़ गया है, रुचि उड़ गयी है। आहाहा! चाहे तो चक्रवर्ती का राज हो। ऐसे **अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** यह ऐसा निश्चय आत्मा जो कहा, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी आदेय नहीं है, कुछ भी उपादेय नहीं है। आहाहा!

(अब, ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —)

जयति समयसारः सर्वतत्त्वैकसारः,
सकलविलयदूरः प्रास्तदुर्वारमारः ।
दुरिततरुकुठारः शुद्धबोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः ॥५४॥

एक-एक पद में रहस्य बहुत है। आहाहा! मोक्षपुरी का नाथ आत्मा। मोक्षपुर का नाथ, मोक्षनगरी, मोक्षपुर, अविनाशीपुर ऐसा मोक्ष, उसका वह स्वामी आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? अरे! उसे किस चीज़ में मिठास रह गयी? आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प की भी जिसे मिठास उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि यह आया न जरा?

सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,... ज्ञानपर्याय तत्त्व, आस्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व, संवर-निर्जरा, मोक्षतत्त्व, इन सब तत्त्व का एक सार। वह 'जयति समयसारः' 'सर्वतत्त्वैकसारः' यह दूसरे पद की व्याख्या आयी। फिर अन्त में कहेंगे यह जय हुआ। सर्व तत्त्व का एक सार। नौ तत्त्व, सात तत्त्व या नौ तत्त्व, उनमें एक सार भगवान पूर्णानन्द पूर्ण शुद्ध ध्रुव। आहाहा! जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,... आहाहा! क्षायिकभाव भी नष्ट होनेवाला है। केवलज्ञान भी एक समय रहता है, आहाहा! दूसरे समय में व्यय होता है। आहाहा! क्षायिकभाव की एक समय की पर्याय एक समय रहती है। दूसरे समय में क्षायिकभाव की पर्याय दूसरी होती है। पहले क्षायिकभाव का व्यय होता है और दूसरे समय में क्षायिकभाव की दूसरी पर्याय होती है। समझ में आया? आहाहा!

तो कहते हैं कि जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों... पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, वे सब नाश पानेयोग्य भाव हैं। आहाहा! पुण्य भी नाशवान, यह नाशवान,नाशवान। आहाहा! परमात्मप्रकाश में यहाँ तक लिया है कि जिन और जिन के मन्दिर और जिन की प्रतिमा होती है, वह सब नाशवान है, काल के ईंधन में यह सब राख हो जायेंगे। परमात्मप्रकाश में है। परपदार्थ है। प्रतिमा हो या मन्दिर हो, सब

काल की अग्नि में नाश हो जायेंगे। वह कहाँ अविनाशी वस्तु है? समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिकभाव की, नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,... नाश होने के योग्य भाव से वह तत्त्व दूर है। आहाहा! ... आत्मा ... द्रव्य से पर्याय दूर है। तब और कितने दूर है? कि ... ऐसा दूर है। अरे भाई! किस अपेक्षा से बात, बापू! ... दूर रहता है। यहाँ तो पर्याय का भाव है, उससे पारिणामिकभाव भिन्न है, दूर है। एक समय में वह आता नहीं। एक समय में आ जाये तो समय पलटकर उसका भी नाश हो जाये। यह विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



नियम अर्थात् 'णियमेण य जं कज्जं' जो भगवान आत्मा आनन्द और ध्रुवस्वरूप, उसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, उसके ध्रुव के आश्रय से नियम से प्रगट करनेयोग्य कर्तव्य वह है। उसे यहाँ नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग कहते हैं। सार का अर्थ ऐसा है कि विकल्प और व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग उसका नहीं, उसे यहाँ नियमसार कहते हैं। समझ में आया? नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। शुद्ध चैतन्यवस्तु नित्यानन्द का आश्रय लेकर प्रगट हुई दर्शन, ज्ञान और चारित्र की अविकारीदशा, उसे यहाँ नियम कहते हैं, वह मोक्ष का मार्ग है। सार में तो विकाररहित बताते हैं। अपने ३८ गाथा चलती है। यहाँ तक आया है, देखो!

स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। यहाँ तक आया है। यह तो परमसत्य की वस्तु है, इसलिए जरा सूक्ष्म पड़े, गम्भीर लगे, गूढ़ लगे, परन्तु है तो यह। कहते हैं कि जिसे स्वद्रव्य। परद्रव्य सर्वज्ञ परमेश्वर आदि भी जिसमें आश्रय करनेयोग्य नहीं। जहाँ एक समय की वर्तमान पर्याय प्रगट दशा भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। भगवान स्वद्रव्य अर्थात् नित्य। दोपहर में चलता है कि अनन्त शक्ति का सत्त्व पूरा तत्त्व, ऐसा जो स्व-अपना द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, उसमें जिसकी तीक्ष्णबुद्धि है। रात्रि में यह प्रश्न हुआ था। वह तो विकल्प है। विकल्प नहीं। यह भगवान! सूक्ष्म बात है, प्रभु!

जो ज्ञान की तीक्ष्ण दशा वर्तमान राग से भिन्न पड़कर प्रज्ञा / ज्ञान द्वारा अन्तर के ध्रुव को पकड़ती है, उसे यहाँ तीक्ष्ण बुद्धि कहा जाता है। समझ में आया? स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्णबुद्धि है। जो ज्ञान वर्तमान ज्ञान की चलती दशा, वह ज्ञान स्वद्रव्य में मुड़ता है, उसे यहाँ तीक्ष्ण बुद्धि ज्ञान की दशा को कहा जाता है। ऐसे आत्मा को, ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। जो ज्ञान की वर्तमानदशा प्रगट जो ज्ञान का अंश है, वह रागादि और निमित्तादि को वर्तमान अवस्था आदि का लक्ष्य, वह ज्ञान की वर्तमान दशा का है। उस ज्ञान की दशा को ध्रुव में उन्मुख करे, उस ज्ञान की दशा को तीक्ष्णबुद्धि कहते हैं। पण्डितजी! ऐसा भाव है, प्रभु!

स्वद्रव्य में जिसकी.... वर्तमान ज्ञान की तीक्ष्ण—सूक्ष्म प्रज्ञाछैनी राग से, विकल्प से, एक समय की पर्याय के आश्रय से, वह ज्ञान की वर्तमान तीक्ष्ण उग्रदशा स्वद्रव्य को जो पकड़ती है, ध्रुव चैतन्य अनादि-अनन्त प्रभु में जिसकी बुद्धि गयी है, ऐसे आत्मा को यह आत्मा उपादेय है। चन्दुभाई गये ? यह चन्दुभाई (कहे) हमारे क्या ? बात तो यहाँ जिसका ज्ञान वर्तमानदशा सर्वस्व चैतन्य भगवान पूर्णानन्द प्रभु स्व। उसमें जो बुद्धि गयी और पहुँच गयी और स्वचैतन्य अभेद वस्तु एक, उसमें ज्ञान की दशा पसरी, उस ज्ञान को तीक्ष्णबुद्धि कहते हैं और वह ज्ञान की दशा उसमें गयी, ऐसे जीव को यह आत्मा उपादेय है। अर्थात् क्या ? कि कोई विकल्प और राग आश्रित विचार करके ऐसा माने कि यह आत्मा द्रव्य है, वह ध्रुव है, उपादेय है। शुभ आश्रित उपादेय उसे नहीं हुआ।

यह तो परम अमृत की बातें हैं। अर्थात् उसे अनादि का परिचय सुनी नहीं, ऐसा भगवान तो कहते हैं कि यह बात सुनी नहीं, तुझे परिचय में, अभ्यास में आयी नहीं और अनुभव तो कहाँ से हो ? भाई ! ग्यारह-ग्यारह अंग पढ़ गया, नौ-नौ पूर्व पढ़ा और चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, ऐसी लेश्या की क्रियायें भी अनन्त बार की, परन्तु उसमें कुछ हुआ नहीं, वह कहीं साधन हुआ नहीं। अन्तर्मुख चैतन्य भगवान पहले ज्ञान में कितना और कैसा है ? ऐसी लक्ष्य में बात की, वहाँ तक यह आत्मा उसे उपादेय है, ऐसी श्रद्धा के विकल्प में माना है, वह वास्तव में उपादेय हुआ नहीं। आहाहा !

जो ज्ञान की दशा वर्तमान अंश तीक्ष्ण उग्र होकर ध्रुव को चिपटे, ध्रुव में पसरे, तब उस ऐसे ज्ञानी जीव को यह आत्मा ध्रुव उपादेयरूप से कहा जाता है। समझ में आया ? नवरंगभाई ! गजब ऐसा मार्ग, भाई ! इसने इस प्रकार की बात सुनी नहीं न, इसलिए इसे ऐसा लगता है कि क्या कहते हैं यह ? साधारण प्राणी को तो ग्रीक-लेटिन (अटपटा) जैसा लगे। भगवान ! अटपटा नहीं, बापू ! तेरे घर की बात है, भाई ! परन्तु उस प्रकार की पद्धति और कला और पद्धति क्या है, वह इसने सुनी नहीं। परिचय में आयी नहीं, इसलिए कैसे अनुभव करना, उसकी इसे खबर नहीं। कहते हैं, वस्तु तो यह तीन काल, तीन लोक में यह चीज़ है कि जो एक समय में वस्तु स्वद्रव्य ध्रुव, चैतन्य

ध्रुव, उसे जो ज्ञान पकड़े, उस पकड़े हुए ज्ञानवाले को वह उपादेय है, ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! आहाहा! सुनना। लक्ष्य में रख... प्रभु! यह क्या है यह? चलते प्रवाह में तो सब फेरफार है।

मुमुक्षु : मार्ग पकड़ लिया, वही उपादेय हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पकड़ा, वही उपादेय हुआ। पकड़ा, वही उपादेय हुआ। जो ज्ञान वहाँ गया, वह उपादेय हुआ। बस। समझ में आया? जो ज्ञान की दशा वर्तमान पर्याय को आदरणीय और राग को आदरणीय मानती थी, वह ज्ञान की दशा अन्तर ध्रुव-सन्मुख अन्दर झुकती है, इसलिए वही उसे उपादेय माना। जैसा था, वैसा दृष्टि में आया। बस, वह उपादेय। आहाहा! बात बहुत अलौकिक है, प्रभु! बहुत साधारण लोगों को यह बात ऐसी लगे। वह कितने ही कहे, निर्विकल्प हो जाओ, शून्य हो जाओ। परन्तु शून्य किस प्रकार होना? पूरा अस्तित्व तो पर है, वह दृष्टि में आये बिना विकल्प से शून्य हो कैसे? समझ में आया? सेठ! यह तुम्हारे पक्ष में है न वह? शून्य हो जाओ... शून्य हो जाओ... परन्तु शून्य क्या हो? शून्य होगा तो जड़ हो जायेगा।

इसलिए कहा स्वद्रव्य में। ऐसा कहा। वस्तु ऐसी भगवान अखण्डानन्द मूर्ति चैतन्य ध्रुव। अस्ति, सत्ता मौजूदगीवाला शाश्वत् पदार्थ... शाश्वत्। ऐसी अस्ति में ज्ञान को जोड़ा, इससे निर्विकल्प होता है। उसे विकल्प का आश्रय और विकल्प का भाग रहता नहीं। वह निर्विकल्प होता है, उसे यह आत्मा उपादेय है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! भाई! मार्ग तो यह है। वह कोई भी रीति—प्रकार जगत में वर्णन किये जाते हों, परन्तु इस पद्धति के अतिरिक्त यदि हो तो वह मार्ग नहीं है। समझ में आया?

स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है— यहाँ कोई पुनरावर्ती हो, ऐसा कुछ दोष लगता नहीं। क्योंकि यह तो भावना की बात है न! भावना अर्थात् अन्तर में एकाग्रता। तो अन्तर में चैतन्य भगवान को जिसने, जिसकी ज्ञान की तीक्ष्णबुद्धि, उसे ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में... आदरणीय कहा गया है। समझ में आया? अर्थात् सम्यग्दर्शन दशा में जो ध्रुव के ऊपर श्रद्धा थी, उसे यह उपादेय है, ऐसा अन्दर अनुभव में निर्णय हुआ। समझ में आया? शास्त्र से धारणा में ऐसा रखे कि यह द्रव्य है, वह उपादेय है,

वह वर्तमान पर्याय उपादेय अर्थात् आदरणीय अथवा उसमें ध्येय करके स्थिर होनेयोग्य। ऐसा विकल्प से करे, परन्तु वस्तु तो दृष्टि में और ज्ञान की वर्तमान पर्याय में वह ज्ञेय ऐसा है, यह तो आया नहीं। आये बिना इसने उपादेय किस प्रकार निश्चय किया? होवे ऐसा नहीं। वर्तमान दशा में खड़े रहकर यह ज्ञेय है, ऐसा किसी प्रकार पकड़ में नहीं आता। पण्डितजी! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! बापू! सन्तों का मार्ग तो ऐसा है। सम्यग्दृष्टि भी वह सन्त है। समझ में आया? आहाहा! जिसका भगवान पूर्णानन्द प्रभु पड़ा है अन्दर। उसमें जिसकी नजर गयी और नजर गयी, तब यह एकाकार पूरे द्रव्य में हुआ, ऐसे जीव को वह द्रव्य आदरणीय और आचरण करनेयोग्य वह है, ऐसा निश्चित हुआ। रतिभाई! यह तो सब भगवान की भक्ति करते-करते हो जाये। धुन लगाओ। भक्ति ऐसी लगावे, भक्ति ऐसी लगाओ कि बस शून्य होओ। परन्तु राग होगा वहाँ तो।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या जाये? कि राग है, भाई! विकार है। उसमें कहीं निर्विकल्पदशा है, उसकी उसे खबर नहीं। ... चाहे जितनी भक्ति की धुन लगाओ, वह तो परद्रव्य सन्मुख के राग की स्थूलता और मुख्यता है। वहाँ आत्मा दृष्टि में नहीं आया और इस प्रकार आत्मा दृष्टि में तीन काल में नहीं आता। ऐसी लाख और अनन्त भक्ति करे, परन्तु अनन्त भक्ति और परमात्मा उसे कहते हैं कि जो त्रिकाली ध्रुव का अन्दर भजन करके एकाग्र हो, उसे भक्ति कहते हैं। समझ में आया? जिसने ध्रुवतत्त्व (का) भजन किया, उस ज्ञान की पर्याय ने। भजन भजा अर्थात् सेवन किया। ध्रुवतत्त्व को जो ज्ञान की तीव्र दशा से जिसने पकड़कर सेवन किया और भगवान अन्तरतत्त्व की भक्ति और वह मोक्ष का मार्ग, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! बाकी सब बातें चाहे जितनी कहे। समझ में आया? वह मार्ग नहीं, बापू!

प्रभु! ऐसे मनुष्यदेह में ऐसे काल में ऐसी बात भी सुनना कोई पुण्य का महा योग हो तो मिलती है। परमसत्य बात, वरना तो ऐसा करूँ और यह करूँ और ऐसा करूँगा, ऐसा करूँगा तो होगा। सब कर्ताबुद्धि मिथ्यात्व का पोषक और मानता है कि उसमें से आत्मा को कुछ कल्याण होगा। समझ में आया? अब यहाँ तक तो अपने कल आया था। यह तो अधिक स्पष्ट करने (के लिये बात है)। अब यह जीव, यह वस्तु औदयिक

आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से... बहुत ऊँची बात और बहुत परमसत्य है। शाश्वत् मार्ग का रूप क्या है, वह यह है। शाश्वत् तो वस्तु स्वयं है, परन्तु उसका मार्ग जो मोक्ष का शाश्वत् सत्य है, वह यह है। कहते हैं कि औदयिक आदि चार भावान्तरों को... नीचे है। भावान्तरों... शब्द है न? भावान्तर शब्द है न? अर्थात्? कि जो परमस्वभावभाव ध्रुव सहजभाव त्रिकाल ज्ञायकभाव एकरूप द्रव्यभाव, उसे यहाँ भाव स्व कहा। उससे अन्य को भावान्तर कहा। इस भाव के अतिरिक्त चार को भावान्तर—अन्यभाव कहा।

फिर से। औदयिक आदि चार भावान्तरों... यह चार भावान्तरों कहे। नीचे है देखो, भावान्तर अर्थात् भाव से अन्यभाव। अब? (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक — ये चार भाव परमपारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण, उन्हें भावान्तर कहा है। धीरे से समझ में आये ऐसा है। यह समझने के लिये तो यह कहा है और समझनेवाले को समझ में आये, इसके लिए तो कहा है। समझ में आया? कहते हैं कि चार अन्य भाव कहे। भावान्तर कहा न? भावान्तर। भाव से अन्य। तो किस भाव से अन्य? कि जो त्रिकाली ध्रुवभाव, परमस्वभावभाव सहज नित्यभाव जिसे पारिणामिकभाव, स्वाभाविकभाव, एकरूप त्रिकाल अभेद भाव—ऐसे भाव की अपेक्षा से, ये चार पर्यायें हैं। चार पर्याय अर्थात् अवस्था है। वह ध्रुव है। उस ध्रुवभाव से अन्य चार पर्यायों से अन्यभाव है। धीरे-धीरे सुनना। यह तो सब।

कहते हैं, यह चार भाव अर्थात्? औदयिकभाव। उसकी व्याख्या करनी पड़ेगी न? आत्मा में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प उठता है, वह उदयभाव है। उस उदयभाव की विकारी अवस्था की अस्ति है, विकारी अवस्था की अस्ति है, परन्तु वह अवस्था है। उपशमभाव। एक स्वभाव ध्रुव का आश्रय लेकर, जैसे पानी में मैल हो और वह मैल नीचे बैठे और पानी नितरे ऊपर से, इसी प्रकार जिस भाव में रागादि विकल्प दब जायें और निर्मलदशा उत्पन्न हो, उसे यहाँ उपशमभाव कहा जाता है। समझ में आया? श्रीमद् में आता न? भाई आता है। ऐसा कि पाँच भाव का स्वरूप तुमने कहा था। यह आता है पत्र में। अहमदाबाद। आता है न, उनके पत्र में आता है। पाँच भाव का स्वरूप, वे पाँच भाव सूक्ष्म हैं। ... पास श्रीमद् ने कहा हुआ।

पाँच भावों में एक भाव त्रिकाली ध्रुव, उसे पारिणामिकभाव कहा न, एक भाव वस्तु ध्रुव। उससे अन्य चार दशायें—अवस्थायें—हालत, उसे अन्यभाव ध्रुव से कहकर, वह उदय है, वह भी ध्रुवभाव से अन्य भाव है।

उपशमभाव है, वह राग की मन्दता, राग का दब जाना, कषाय का दब जाना और अकषाय परिणाम का उत्पन्न होना, उसे यहाँ उपशमभाव की अवस्था, ध्रुवभाव से अन्य अवस्था कहा जाता है। रतिभाई! सब ऊपर का ऊपर... सब सब रखा अभी तक। यह अन्तर वस्तुदशा और दशावान, उसकी बात चलती है। दशावान जो त्रिकाली ध्रुव है, वह निमित्तभाव, शाश्वत् भाव, असली भाव, पारिणामिकभाव, स्वभावभाव, सहजभाव अविनाशी शाश्वत् भाव, उसकी अपेक्षा से उसमें पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के विकल्प उठते हैं, वह उदयभाव, अन्यभाव, ध्रुवभाव से अन्यभाव है। है पर्याय, परन्तु उसे अन्य इस भाव से अन्यदशा को अन्यभाव कहा जाता है। यहाँ उदय, उपशम कहा। क्षयोपशम—कुछ राग की विकल्पता भी रहे और कुछ निर्मलता हो, ऐसा जो क्षयोपशमभाव ज्ञान में और सम्यग्दर्शन में, दो में, अन्तराय की बात लेंगे।

ज्ञान में भी कुछ ज्ञान उघाड़ कम और कुछ उघाड़, ऐसी दशा, इसी प्रकार समकित में किंचित् निर्मलता और किंचित् क्षयोपशमसमकित अपेक्षा से। तब समकित मोह का उदय जरा मैल का अंश का। ऐसी अन्तर जो समकित की और ज्ञान की दशा, उसे क्षयोपशमभाव, क्षयोपशमदशा उस ध्रुवभाव से अन्यभाव, उसे कहा जाता है। आहाहा! यह किस प्रकार की बात! यह तो दया पालो, व्रत पालो,करो। एक व्यक्ति ने कहा तपस्या तो निर्जरा तो बराबर। दूसरी बात तो अपने को.... एक व्यक्ति ऐसा कहता है। ... पूछने गये। अब तो सब चलता है न चारों ओर। ... यह व्याख्यान चले, व्याख्यान लोगों में करे ... ऐसा माने लोग। समझे न? एक व्यक्ति गया यहाँ का अभ्यासी। यह बात तो ठीक परन्तु अपवास करे तो तपस्या और तपस्या से तो निर्जरा, यह बात हमको बैठी है। तो वह कहे कि यह बात हम मानते नहीं। अपवास-बपवास से तुम्हारे निर्जरा हो, तपस्या है इसलिए निर्जरा, वह तपस्या ही नहीं। समझ में आया? यह तो वह कदाचित् राग की मन्दता की हो तो, कदाचित् की हो, वरना मान के लिये

की हो तो पाप है वहाँ। समझ में आया ? तो यह पुण्य है, वह ध्रुवभाव से अन्यभाव है। वह भाव आदरणीय नहीं।

उपशमभाव, वह अन्य भाव है, वह आदरणीय नहीं। गजब बात है न! क्षयोपशमभाव सम्यग्दर्शन और ज्ञान की दशा। उसका विकास और विकास का अभाव। ऐसी दशा को क्षयोपशमदशा भाव-पर्याय, वह त्रिकाली ध्रुवभाव की अपेक्षा से अन्य भाव है। अरे! क्षायिकभाव। केवलज्ञान, क्षायिकसमकित। आत्मा का अनुभव होकर क्षायिकसमकित, वह जो केवलज्ञान हो, वहाँ तक और सदा सादि-अनन्त रहे, ऐसी दशा, परन्तु वह दशा एक समय की अवस्था है। वह की वह दशा दूसरी बार नहीं होती, वैसी, परन्तु वह नहीं। इसलिए वह क्षायिकभाव, वह भी ध्रुवभाव से अन्यभाव है, इसलिए वे चार भाव आदरणीय नहीं। आहाहा! कहो, प्रकाशदासजी! परन्तु कितना सुनना अभी तक! आहाहा!

कहते हैं, यह औदयिक आदि चार भावान्तरों... कहा न? यह चार भाव अर्थात् पर्याय, यह चार। अवस्था है, हालत। परमपारिणामिकभाव, वह ध्रुवभाव है। उससे अन्य होने के कारण.... यह तो भावान्तर की व्याख्या की। भावान्तर अर्थात् एक भाव से अन्य चार भाव, ऐसा। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है — ऐसा कारणपरमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है। यह अब पाठ की व्याख्या है। क्या कहते हैं? औदयिक आदि चार भावान्तरों... ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा से नित्यानन्द भगवान अविनाशी तत्त्व जो वस्तु है, उसकी अपेक्षा से जो अवस्थाएँ हुईं, उन्हें अन्यभाव कहा गया है। उससे अगोचर अर्थात् कि यह चार प्रकार की पर्याय पारिणामिकभाव से दूर वर्तती है। वह पर्याय अन्दर जाती नहीं, इसलिए अगोचर है। नीचे डाला है। कलश है न कलश (५४)।

जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,... यह उसका पाठ है। भाई! कलश नीचे आता है न? उसमें उन्होंने स्पष्टीकरण स्वयं कर दिया है टीकाकार ने। यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! भगवान! तेरे घर में इतना निधान है कि अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्यायों का अन्दर भण्डार भरे हैं। ऐसा परमस्वभाव ध्रुव अविनाशी शाश्वत् तत्त्व। उसकी वर्तमानदशा कार्य होता है। दशा में होता है न? अवस्था न हो तो कार्य किसमें

होगा ? यह अवस्था जो दशा पर्याय हालत कहते हैं, उन दशाओं के चार प्रकार हैं। तो वह दशा चार प्रकार को अगम्य हैं अर्थात् ? कि चार पर्याय (ध्रुव) में जाती नहीं, ध्रुव में मिलती नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यह चार पर्याय पर्याय में रहती है, ध्रुव ध्रुव में रहता है।

मुमुक्षु : पर्याय... है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जो यहाँ पर्याय कार्य करे, वह दूसरी बात है, पर्याय अन्दर प्रविष्ट नहीं होती, ऐसा बतलाना है।

परमस्वभावभाव त्रिकाली, उसके साथ चार भाव तन्मय नहीं होते। बाकी तो ज्ञायक ध्रुवभाव, वह अनुभव में तो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव से ही आता है। कहीं ध्रुवभाव, ध्रुवभाव से अनुभव में नहीं आता। परन्तु यहाँ दूसरी अपेक्षा ली है। यह तो अलौकिक बातें, बापू! भगवान होने की बातें हैं। साक्षात् परमात्मा होकर जन्म-मरण का अन्त लावे, इसके बिना की बातें सब थोथे-थोथा है। समझ में आया ? आहाहा! कहते हैं, भगवान! तेरा त्रिकाली तत्त्व जो शाश्वत् तत्त्व है आत्मा, वह परमस्वभावभाव। उसकी अपेक्षा से यह दशा के, अवस्था के, हालतों के चार भाव, यह उनसे दूर, परमस्वभाव से अन्यभाव। अन्य, इसलिए अन्यरूप से रहते हैं और ध्रुवरूप नहीं होते। आहाहा! समझ में आया ? पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा!

प्रभु! तू बड़ा जोरदार है, हों! परन्तु तेरी कीमत करना, तुझे आया नहीं। दुनिया की कीमत करने गया सब, परन्तु उसकी कीमत स्वयं कौन है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! कहते हैं, भगवान! यह तेरी चीज अन्दर ध्रुव है। जो स्वभाव, सदृश्यभाव, एकरूपभाव से तत्त्व परिणमा है। ऐसे तत्त्व की अपेक्षा से यह चार प्रकार की दशायें, अवस्थायें, भले आनन्द की दशा, केवलज्ञान और अनन्त आनन्द की दशा, परन्तु वह दशा है, वह दशावान ध्रुव नहीं। इसलिए ध्रुव में वह दशा प्रवेश नहीं करती, इसलिए उसके अगोचर है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा!

बाद के श्लोक में है, देखो! पृष्ठ बदलो। जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है.... है कलश ? ८० पृष्ठ। ५५वाँ कलश है न। है ? तीसरी लाईन। कैसा है तत्त्व अन्दर ?

वस्तु ध्रुव भगवान नित्यानन्द शाश्वत्। जो प्रीति-अप्रीतिरहित शाश्वत् पद है,... है ? उसका विकल्प ऊपर ... वह तो शाश्वत् चिदानन्द नित्यानन्द प्रभु अन्दर है। सर्वथा अन्तर्मुख और प्रगट प्रकाश... बना हुआ। आहाहा! कहते हैं कि सर्वथा अन्तर्मुख। बिल्कुल अन्तर्मुख है अन्दर ध्रुव। जो पर्याय का भी जहाँ प्रवेश नहीं। ऐसा वह अन्तर्मुख तत्त्व है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान में। तीनों काल में। आहाहा! सर्वथा अन्तर्मुख। सर्वथा अन्तर्मुख। एकदम अन्तर्मुख पूरा तत्त्व भिन्न, पर्याय से भिन्न है।

निर्भेदरूप से प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ है,.... परन्तु सुख का बना हुआ अर्थात् सुखस्वरूप है। आनन्दानन्द नित्यानन्द प्रभु है। वह नित्यानन्द प्रभु है। जो नभमण्डल समान अकृत है.... आकाश जैसे किया हुआ नहीं, लोक और अलोक का आकाश जैसे किया हुआ नहीं, उसी प्रकार भगवान आत्मा किया हुआ नहीं, शाश्वत् है। समझ में आया ? आहाहा! गजब सूक्ष्म बातें! ... वहाँ माँगता है। सूक्ष्म-सूक्ष्म बातें लगती हैं उसे। ऐई! ...चन्दभाई! आहाहा! भगवान! यह सुन तो, ऐसा मनुष्यपना मिला, भाई! और उसके ऐसे पुण्य के योग से ऐसी बातें, उसे जरा सुनकर विचार कर। कहा, हों! अरे! ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। आहाहा!

कहते हैं, अपने तो वहाँ ले जाना है। अभी तो यहाँ तो नभमण्डल समान आकृतिवाला है,.... है न ? किसी से नहीं किया हुआ। नीचे है। आकाश को किसी ने बनाया नहीं, उसी प्रकार आत्मा को किसी ने बनाया नहीं। शाश्वत् और बने कहाँ ? तब तो नाशवान हो जायेगा। चैतन्यामृत के पूर से भरपूर जिसका स्वरूप है,.... चैतन्य के अमृत का पूर भरपूर स्वरूप उसका है। जैसे नर्मदा आदि बड़ी निकलती है न ? पानी में से, देखा है ? जबलपुर। जबलपुर से निकलती है, वह नर्मदा है न। भरूच के क्षेत्र में तो वहाँ जहाज में ही बैठा जाये। इतना प्रवाह चलता है वहाँ। जबलपुर जहाँ से बहती है नदी, वहाँ दो संगमरमर के पर्वत हैं। संगमरमर के पर्वत, उनके बीच में से, वहाँ से निकलती है और इतना गहरा अन्दर है। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यामृत के पूर

से भरपूर। पूर से भरा हुआ। आहाहा! अनन्त आनन्द निकालो तो भी उसमें से निकला ही करे।

वे ... जरा बोलते अपने। रामजीभाई आये थे या नहीं? जबलपुर गये थे न, वहाँ। बड़े संगमरमर के दो पर्वत हैं और बीच में नदी। कहाँ है और कैसा है यह कहाँ इसका पता नहीं। बहुत पानी। उसी प्रकार भगवान आत्मा... ऐसा आता है। गहरा-गहरा उतर जा प्रवेश करके। आता है न, भाई! आता है कहीं। उसमें कहीं आता है। गहरा-गहरा उतर अर्थात् कि वह पर्याय में भी नहीं, अन्दर ध्रुव में जा। ऐसा जो तत्त्व भगवान आत्मा जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है—यहाँ इनकार किया अगम्य है। चार भाव को अगम्य है, ऐसा कहा, यहाँ विचारवन्त को गम्य है, ऐसा कहा। तो यहाँ तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में गम्य है, ऐसा कहा। पण्डितजी! वहाँ तीक्ष्ण बुद्धिवाले को कहा। मति-श्रुतज्ञान है। सम्यक् मति-श्रुतज्ञान। आत्मा के अन्तर ध्रुव के लक्ष्य से हुआ। जो शास्त्र का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं। शास्त्र का ज्ञान तो परलक्षी बन्धन का कारण है। समझ में आया?

लो, गहरा उतर गया। अर्थात् क्या? है गहरा उतरे... है गहरा, उतर जाये, देखो! शुद्ध चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है—गहरा उतर जाता है। १७वाँ कलश, पृष्ठ २७। नियमसार तो कितनी चीज़ समयसार से भी अद्भुत कितनी ही रचना है। गया है आत्मा उस समय कहने के समय। आहाहा! ... कितने ही समयसार से भी कितना ही चमत्कारी तत्त्व नियमसार में विशेष है, ऐसा लिखा है। वह तो ... हाथ आया है। वहाँ तक बाहर नहीं था। किसी को हाथ नहीं आया यह नियमसार। पंचाध्यायी के हिसाब से हाथ नहीं आया। नियमसार, वह तो वहाँ रखा था। क्या कहलाता है? भण्डार में। जयपुर के भण्डार में। उसमें ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद थे न। अपने आये थे यहाँ। ... वह वहाँ चातुर्मास था। उसमें यह खोजते हुए हाथ आ गया। अब आकर फिर उन्होंने टीका प्रमाण अर्थ करके प्रकाशित किया है। अपने यहाँ रखा....

कहते हैं, विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है... चतुर पुरुषों और विचारवन्त, उन्हें कहते हैं कि जो ध्रुव को अन्दर पकड़े, उसे चतुर और विचारवन्त कहते हैं।

आहाहा! ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता.... आहाहा! अरे! ...प्रभु! ऐसा भगवान अन्तर में है, वह तुझे क्यों रुचता नहीं? क्यों सुहाता नहीं? क्यों रुचि करता नहीं? और दुष्कृतरूप संसार के सुख को क्यों चाहता है? संसार के दुःख ऐसे संसार के सुख, उसे क्यों चाहता है? धूल में भी सुख नहीं कहीं। स्वर्ग में भी नहीं और सेठाई में भी नहीं। सब दुःखी के सरदार होकर भटकते हैं बेचारे। सेठ! यह सब करोड़ोंपति और अरबोंपति दुःख की आकुलता की घानी में पिलते हैं। यह उसकी वांछा तू किसलिए करता है? क्या है? आहाहा! ऐसा भगवान अन्तर (में) है, उसकी रुचि तुझे क्यों नहीं सुहाती? तुझे क्यों नहीं पोसाता ऐसा मार्ग? कैसी करुणा! आहाहा! यह तो इतना गहरे में अपने यहाँ ३८ (गाथा)।

क्या कहते हैं? देखो अब, यह भगवान आत्मा पहला वास्तव में उपादेय कहा ऐसा ध्रुव। जिसका ज्ञान अन्तर में चिपटे, ऐसे जीव को। फिर कहते हैं कि यह जो उदय (आदि) की चार पर्यायें हैं, उनसे तो अगम्य है अर्थात् कि यह चार पर्यायें ध्रुव में प्रविष्ट नहीं करती। अर्थात् कि अन्दर प्रविष्ट नहीं होती, इसलिए अगोचर है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु सम्यक् मति-श्रुतज्ञान द्वारा भिन्न रहकर भी वह जानता है। पर्यायरूप परिणमे न? कहीं ध्रुवरूप होता है? समझ में आया? आहाहा! अन्तर का सम्यग्दर्शन के साथ का। सम्यग्दर्शन का विषय तो वह ध्रुव है। भूतार्थ है, सत्यार्थ आत्मा शाश्वत् वस्तु। वह सम्यक् श्रद्धा का विषय, उसमें ज्ञान होने से वह ज्ञान त्रिकाल को पकड़ता है। केवलज्ञान पर्याय को जाने, वह बात यहाँ लेनी नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जो ज्ञान वर्तमान अन्तर ध्रुव को पहुँचता है, उस ज्ञानगम्य है। वह ध्रुव ज्ञानगम्य है। पहले अगोचर कहा था, एकमेक नहीं होता इसलिए। परन्तु ऐसे ज्ञान को गम्य है। समझ में आया? अगोचर होने से जो (कारणपरमात्मा)... अर्थात् ध्रुवस्वरूप भगवान शाश्वत् चैतन्य अरूपी आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा। नित्यानन्द सहजानन्द का जिसका त्रिकाली ध्रुव स्वभाव ही स्वयं का-निज का है। ऐसा कारणपरमात्मा। पहले वह स्वद्रव्य कहा था, उसे यहाँ कारणपरमात्मा कहा, उसे कारण आत्मा भी कहा जाता है, उसे कारण जीव भी कहा जाता है। ऐसा जो भगवान (कारणपरमात्मा) द्रव्यकर्म,.... जड़ आठ कर्म, उनसे रहित है। यह अभी। आहाहा!

आठ कर्म हैं न ज्ञानावरणीय आदि दर्शनावरणीय वस्तु हैं। जड़ है। वह घातिकर्म चार हैं और अघाति चार। घाति में लक्ष्य जाने से उसे विकार होता है, अघाति का फल संयोग आता है। ऐसे दो प्रकार के कर्म हैं। एक संयोगीभाव हो और एक संयोगी चीज़ हो, ऐसे दो कर्म। घाति और अघाति। और घाति में संयोगीभाव हो उपाधिभाव, उसके लक्ष्य से। अघाति में संयोग मिले। ऐसा आठ कर्म से भगवान रहित है। समझ में आया ? आहाहा !

भावकर्म... पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, भगवान का स्मरण आदि वह सब भावकर्म विकल्प और राग है। उस राग से भी भगवान उस उपाधि से भिन्न है। वह राग की भी उपाधि है। **और नोकर्मरूप....** नोकर्म अर्थात् वाणी और शरीर। उसे नोकर्म कहते हैं। द्रव्यकर्म जड़, भावकर्म राग और द्वेष। यह वाणी और शरीर नोकर्म। तीनों से चैतन्यतत्त्व भगवान, उस उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों रहित है... आहाहा! यह सब विभावगुणपर्यायें। यह चार कहे न सब ? यह सब विभावगुणपर्यायें हैं। विशेष गुण की दशायें हैं न। उन रहित भगवान है।

मुमुक्षु : गुण और पर्याय.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण की पर्याय, गुण नहीं। गुणपर्याय शब्द प्रयोग किया है। गुणपर्याय अर्थात् यह गुण की दशायें चार, उनसे रहित है। समझ में आया ? ऐसी धर्मकथा कैसी ! वह तो कहे दया पालना, संगठन करना, मण्डल इकट्ठा करके अपनी रक्षा करो, वरना रक्षा होगी नहीं। ऐसा इसे रुचे। अनादि का अज्ञान किया है और यह... यह सब बातें हैं। आहाहा! यहाँ तो पर्याय के साथ गाँठ तोड़ डालने की बात है। मार्ग ऐसा है, प्रभु तेरा, हों !

कहते हैं, उन विभावगुणपर्यायों रहित है... यह तो नास्ति से बात की। अब अस्ति। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म की उपाधि से उत्पन्न होती सब विभाविक दशायें, ऐसा। जीव की दशायें, वह तो मतिज्ञान को भी विभावगुण कहा जाता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान को विभावगुण कहा जाता है। वह सब गुण और पर्यायरहित अखण्ड ध्रुवतत्त्व है। आहाहा! उसके दरबार में शाश्वतता भरी है। वह भगवान उनसे रहित है। अब अस्ति। उनसे रहित है, तब है कैसा ? अनादि-अनन्त.... अनादि-अनन्त है। नित्यानन्द

प्रभु अनादि का है। नित्यानन्द में अनन्त काल ऐसा का ऐसा रहे, वह की वह चीज़ है। शाश्वत् है। अनादि-अनन्त अमूर्त.... है। उसमें कोई रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। वह तो अरूपी प्रभु है। अरूपी जिसका रूप है। अरूपी जिसका स्वरूप है। आहाहा!

अतीन्द्रियस्वभाववाला.... कैसा है भगवान? अतीन्द्रियस्वभाववाला। इन्द्रिय से गम्य हो, ऐसा वह है ही नहीं। अतीन्द्रिय स्वभाव है। इन्द्रिय से पार, विकल्प से पार। अतीन्द्रिय स्वभाव मूर्ति भगवान शाश्वत् ध्रुव है। अरे! वह स्वयं तत्त्व है, तथापि उसकी उसे खबर नहीं होती। बाहर की खबरों में छिलके इकट्ठे किये अज्ञान के। कुछ हुआ नहीं। पठन के भंगभेद ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा। भाई! नौ पूर्व पढ़ा, वह बन्ध का कारण है। यदि बन्ध का कारण न हो तो नौ पूर्व पढ़ा, उसमें कुछ निर्जरा होनी चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : सिद्धान्त....

पूज्य गुरुदेवश्री :है न। यह तो राग की मन्दता... चले। जहाँ नजर डालनी चाहिए, वहाँ डाली नहीं और पर के ऊपर लक्ष्य रखकर सब किया, वह तो बन्ध का कारण न हो तो कुछ आंशिक निर्जरा हो, परन्तु ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा, उसमें कुछ अंश निर्जरा भी हुई नहीं। निर्जरा हुई नहीं, इसलिए वह बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? परालम्बी ज्ञान को धर्मात्मा मोक्षमार्ग नहीं कहते। भाई! आता है न? परमार्थवचनिका में आता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पीछे डाला है।

परमात्मा जितना परालम्बी—परसत्तावलम्बी ज्ञान, उसे मोक्षमार्ग नहीं कहते। आहाहा! गजब! स्वसत्तावलम्बी जो ज्ञान महाप्रभु चैतन्य ध्रुव का लक्ष्य करके जो ज्ञान हो, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! कितने ही कहे कि एक आत्मा-आत्मा लगाया है। और ऐसा कितने ही कहे, हों! अरे भगवान! एक दिन कहा था न! चातुर्मास में उस (संवत्) २०१० के वर्ष में। अपने यहाँ है न कौनसा वर्ष? ५५ का चातुर्मास दस महीने और दस दिन चला था न तब? फिर एक व्यक्ति ने ऐसा लिखा था उस छेलशंकर—वकील ने। कि यह दस महीने और दस दिन का.... लेखन करे उसे दस रुपये दूँगा। तब एक व्यक्ति कहे कि यह दस महीने में आत्मा ही घोंटा है इन्होंने। कहे क्या? अरे भगवान! तेरी बातें तुझे न सुहावे! आहाहा!

कहते हैं, वह तो अतीन्द्रियस्वभाववाला है.... इन्द्रिय के ज्ञान से वह ज्ञात हो, ऐसा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह शास्त्र का ज्ञान इन्द्रियज्ञान है। समझ में आया ? आहाहा! अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध.... यह तो शुद्ध-शुद्ध पवित्रता का पिण्ड है, यह तो। अकेली पवित्रता की खान है यह तो। सहज.... स्वाभाविकभाव है यह तो। किसी का भाव हो और हुआ हो या किसी का अभाव होकर हुआ हो, ऐसा यह भाव नहीं। यह तो सहज त्रिकाली भाव है। शाश्वत ज्ञान चिदानन्द प्रभु। परमपारिणामिकभाव.... परमपारिणामिकभाव। एक समय की पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा जाता है। इससे उस त्रिकाली को परमपारिणामिकभाव कहकर उठाते हैं।

परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है.... भाषा देखो! ऐसा कारणपरमात्मा... वह स्वभाव वर्णन किया, यह स्वभाववान। आहाहा! जिसका परमपारिणामिकभाव। जिसका अर्थात् कारणपरमात्मा द्रव्यस्वभाव, जिसका स्वभाव यह है—ऐसा कारणपरमात्मा नित्यानन्द प्रभु, वह वास्तव में आत्मा है। उसे वास्तव में आत्मा कहा जाता है। यह चार पर्याय भी वास्तव में आत्मा नहीं, जा! यह व्यवहार आत्मा! आहाहा! उस आत्मा में भी वापस प्रकार। एक क्षायिकभाव की दशा केवलज्ञान की, वह वास्तव में आत्मा नहीं, व्यवहार आत्मा है। आहाहा! आत्मा में भी दो भाग—एक वास्तव में निश्चय और एक व्यवहार। अच्छी बातें जगत को मिलती नहीं; इसलिए बेचारे कहीं के कहीं भटकाभटक करके मान बैठते हैं कि यहाँ से धर्म होगा, यहाँ से धर्म होगा। उल्टी पटरी पर चढ़ावे और माने कि हम सुलटे रास्ते धीरे-धीरे जायेंगे, धीरे-धीरे जायेंगे। उल्टे रास्ते जाता है और धीरे-धीरे जाऊँगा, ऐसा कहे। अरे प्रभु! तेरा मार्ग अलग है, नाथ! आहाहा!

कहते हैं, ऐसा कारणपरमात्मा.... नित्यानन्द प्रभु वह वास्तव में आत्मा है। भाषा देखो, उसे वास्तव में निश्चय आत्मा, सत्य आत्मा, ध्रुव आत्मा, एकरूप अभेद आत्मा, उसे सत्यार्थ, भूतार्थ 'भूदत्थमस्सिदो खलु' कहा न? ११वीं गाथा। भूतार्थ आत्मा। ध्रुव नित्यानन्द एक समय की पर्यायरहित, उसे सत्यार्थ आत्मा कहा जाता है। आहाहा! उसकी अपेक्षा से एक समय की पर्याय क्षायिक की भी असत्यार्थ और अभूतार्थ... उसकी अपेक्षा से भले हो। त्रिकाल सत्यार्थ ध्रुव की अपेक्षा से एक समय की केवलज्ञान की पर्याय भी असत्यार्थ और अभूतार्थ कही जाती है। आहाहा! ऐसे कथन! कायर का

(कलेजा) काँप उठे ऐसा है। 'वचनामृत वीतराग के...' आता है न श्रीमद् में? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्त रसमूल, औषध जो भव रोग के अरु कायर को प्रतिकूल।' जिसका वीर्य हिंजड़ा जैसा—पावैया जैसा हो, उसे ऐसी बातें सुनते हुए कंपकंपी लगे। अरे! यह क्या है? सब लोप हो जाता है व्यवहार का। समझ में आया? यह व्यवहार की पर्याय तुझमें नहीं। लोप करना है, सुन न। ऐसी चीज़ का भान हो, तब पर्याय को व्यवहार कहा जाता है, वरना पर्याय का व्यवहार भी कहाँ था तुझे! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा वास्तव में आत्मा। भाषा और... यह वास्तव में आत्मा। वह त्रिकाली ध्रुव, वह वास्तव में आत्मा। और एक समय की उसकी अवस्था, चार प्रकार के भाव की, वह वास्तव में आत्मा नहीं, वह औपचारिक आत्मा। गजब बात है न! व्यवहार से आत्मा, एक समय की दशा, वह व्यवहारनय का विषय। केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय, अर्थात् निश्चय का विषय नहीं। आहाहा! ऐसी अगम्य बातें, उसे गम्य करना और गम्य करे, उसका संसार का छुटकारा है। बाकी कुछ उद्धार है नहीं। आहाहा! कहते हैं, ऐसा जो भगवान अतीन्द्रियस्वभाववाला अनादि-अनन्त अरूपी शुद्ध सहज पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव—ऐसी ध्रुव चीज़ कारणप्रभु, वह वास्तव में आत्मा है।

अब पहले जो कहा था। हेय अर्थात् उपादेय नहीं, ऐसा कहा था। सात तत्त्व का समूह उपादेय नहीं, ऐसा कहा था। पाठ में हेय था। अब यहाँ पाठ में उपादेय है, यह पहले बात ले गये। परन्तु इसके अतिरिक्त उपादेय दूसरा नहीं, ऐसा कहकर यहाँ अर्थ करते हैं। अति-आसन्न भव्य जीवों को.... अति आसन्न—जिसकी निकटता मोक्ष को पाने की तैयारी हो गयी है। आहाहा! जिसे मोक्ष निकट वर्तता है अल्प काल में। अति आसन्न। अति अर्थात् बहुत निकट है। आसन्न अर्थात् निकट। ऐसा भव्य जीव। ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त.... यहाँ तो अब निज परमात्मा वापस, और कोई पर परमात्मा अरिहन्त और भगवान वे पूज्य नहीं। ऐसे भव्य जीव को अति निकट जिसकी मोक्ष की पर्याय प्रगट होनी है, संसार का किनारा आ गया है अब। आहाहा! उसे ऐसे भव्य जीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त.... ऐसा निजपरमात्मा जो कारणध्रुवस्वरूप,

कारणपरमात्मा नित्यानन्द उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय नहीं। आहाहा! एक क्षायिकपर्याय—क्षायिकसमकित भी आदरणीय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसके अतिरिक्त... उसमें था उपादेय... आ गयी थी, परन्तु फिर यह कहा न... उसका अर्थ किया कि कर्म के निमित्त के अभाव में जो दशा हो, उस दशा से पृथक्-भिन्न है। उस आत्मा के अतिरिक्त (दूसरा) कुछ उपादेय नहीं। कोई आदरणीय है नहीं। आहाहा! त्रिलोक के नाथ सर्वज्ञ समवसरण में साक्षात् विराजें, वे भी अतिनिकट भव्यजीव को वे भी आदरणीय और उपादेय नहीं। आहाहा! तेरा भगवान निजस्वरूप से विराजमान अन्तर। उसके अतिरिक्त कुछ उपादेय नहीं। कुछ शब्द है न 'किंचित् न' शब्द है संस्कृत में। 'न किंचिदुपादेयमस्तीति' कोई भी आदरणीय नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय, क्षायिक पर्याय। चारित्र वीतरागी पर्याय भी किंचित् उपादेय नहीं। समझ में आया? यह गाथा का अर्थ हुआ। समझ में आया? इसका कलश है।

अब, ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव... सन्त हैं। भावलिंगी नग्नमुनि दिगम्बर वनवास में बसनेवाले हैं। जो सच्चे सन्त हों, उन्हें शरीर के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं होता। यह तो श्रीमद् में आया है तब अपने... है न? आया था न? देहमात्र जिन्हें परिग्रह। उन्हें वस्त्र-पात्र परिग्रह हो और साधु माने, मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। यह वस्तुस्थिति है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि जिसे शरीर में तो परिग्रह है, ऐसे मुनिराज। स्वयं अपने को कहा न? ऐसे मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव.... पद्मप्रभमलधारि मुनि यह श्लोक कहेंगे। इस गाथा का सार।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



नियमसार शास्त्र है। इसकी ४०वीं गाथा। ३९वीं हुई। अधिकार मोक्षमार्ग का है। तब मोक्षमार्ग अर्थात्? आत्मतत्त्व शुद्ध परमानन्द और ज्ञान से, स्वभाव से परिपूर्ण भरपूर तत्त्व है। उसकी विकार की वृत्तियाँ और उसकी उसका सम्बन्ध अनादि से है। उसका अभाव होकर आत्मा के पूर्णानन्द की शान्ति की प्राप्ति पूर्ण हो, उसे मुक्तदशा अथवा मोक्ष कहते हैं। उसके उपाय का कारण यहाँ मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

तो कहते हैं कि मोक्षमार्ग आत्मा में किस प्रकार हो? कि यह आत्मपदार्थ अत्यन्त शुद्ध पवित्र धाम है। ऐसी अन्तर में दृष्टि स्वतन्त्र स्वाधीन होकर आत्मा के अन्दर परमानन्द मूर्ति ऐसा आत्मा का स्वभाव, उसका अन्तर दृष्टि स्वीकार करे। ... किसी की पर की अपेक्षा, काल की अपेक्षा या वर्तमान कोई राग की-मन्दता की अपेक्षा रखकर वह दृष्टि हो, ऐसा वस्तु का स्वरूप है नहीं। ऐसी दृष्टि अन्तर के अनुभव की होना और दृष्टि का विषय कौन है कि जिसकी दृष्टि के ध्येय में लेने से आत्मा को अन्तर की धर्मदशा, शान्तदशा, स्वतन्त्र अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन का अंश आवे, यह उसकी बात चलती है। ८० गाथा। केवल शुद्धतत्त्व है यह। यह देह में रहा हुआ आत्मा शुद्ध पदार्थ, उसकी एक समय की वर्तमान विकृत अवस्था छोड़कर। वह शाश्वत् असली तत्त्व कैसा है, उसका वर्णन करते हैं। क्यों? कि उस अन्तर तत्त्व के आश्रय से ही आत्मा को मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है। ४०। जरा प्रकृति की यहाँ बात है।

णो ठिदिबंधट्टाणा पयडिट्टाणा पदेसठाणा वा।

णो अणुभागट्टाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा ॥४० ॥

नीचे इसका हरिगीत है।

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थाननहिं।

नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं ॥४० ॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में)... भगवान आत्मा के स्वरूप के, सामर्थ्य के अन्दर

* इस प्रवचन में आवाज बहुत खराब है और वाक्य भी बारम्बार कटकर आ रहे हैं, इसलिए सभा नहीं चलाना।

प्रकृतिबंध... ... कर्म है कर्म ... यह आत्मा अपने को भूलकर, उस भूल का आश्रय अन्तर तत्त्व हो सके? अपने में आनन्द और शान्त अविकारी विज्ञानघन, उस भूल के आधार से आश्रय से रह सके? उसके आश्रय से भूल नहीं होती। भूल करे स्वयं ही, परन्तु वह भूल बहिर्लक्षी कोई दूसरा पदार्थ हो। किसके लक्ष्य से भूल करता है, वह बहिर्लक्षी कौन है? वह कर्म है। जो जीव शुभाशुभभाव, पुण्य और पाप के भाव करे, उसे निमित्त पाकर रजकण प्राप्त जो आत्मा की जाति से विलक्षण जातिवाले वे परमाणु सूक्ष्म रजकण हैं, उसमें वह कर्म अवस्था होती है। जैसे यह अवस्था मिट्टी की, यह शरीर की अवस्था, मिट्टी की अवस्था है यह। पहली अवस्था दाल, भात, रोटी की थी। यह रजकण थे। परन्तु पहली अवस्था उसकी दाल, भात, रोटी, सब्जी की थी वह ... की यह अवस्था हुई। यह अवस्था कहो, हालत कहो, पर्याय कहो, दशा कहो। किसकी? उसके रजकणों की। जो शान्त रजकण जो हैं सूक्ष्म। यह ... है न? उसकी वर्तमान कार्य दशा जो होती है। तो कार्य का कारण जो शाश्वत् तत्त्व जो था, उसे परमाणु कहा जाता है। उस परमाणु की जैसे यह अवस्था होती है, उसे शरीर कहा जाता है। यह कहीं आत्मा की अवस्था नहीं। अवस्था अर्थात् पर्याय, पर्याय अर्थात् हालत, हालत अर्थात् दशा। ऐसे एक अन्तर में जैसे प्राणी शुभ और अशुभभाव करे, उसके प्रमाण में कर्म के निमित्त रजकण जो हैं, वे कर्मरूपी अवस्था को स्वयं की शक्ति से धारण करते हैं, स्वयं की शक्ति हो, उसे कर्मदशा कहा जाता है।

मुमुक्षु : कठिन पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े परन्तु अब धीरे-धीरे गले उतारना पड़ेगा इसे। लोग नहीं कहते? ... है, कर्म है, ... कहते हैं या नहीं? सूर्य भी है। है क्या वह चीज़? कुछ अस्ति है या नहीं? है... है... है... उसकी अस्ति है या नहीं? तो अस्ति किस प्रकार से है? और वह अस्ति आत्मतत्त्व की अन्दर... सिद्ध करना। परन्तु वह है, वह उसमें नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। तो वह है क्या वह? बहुत ... बहुत उद्यम करे परन्तु प्रारब्ध हो तत्प्रमाण होता है। तो प्रारब्ध अस्ति है या नहीं? कोई चीज़ है या नहीं? सर्वज्ञ परमात्मा जिनके ज्ञान के विकास में सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक, उस प्रकाश के पुंज में ज्ञात होता है। उसमें वह कर्म की चीज़ भी ज्ञात

हुई कि आत्मा वस्तरूप से तो शुद्ध आनन्दकन्द है। परन्तु उसकी दशा में भूल करे वैसे.... चीज़ और निमित्तरूप से उसकी चीज़ है। कहो, प्रकाशचन्दजी! ... या नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त ... वस्तु है। परन्तु क्या वह वस्तु आत्मा से भिन्न करायी है? ऐसा नहीं। उसे आत्मा भिन्न करे, इससे यह कर्म की अवस्था और कर्मरूप होना पड़े, ऐसा भी नहीं। वरना तो वह दूसरे के कार्य करता हो, वह वस्तु की स्थिति में हो नहीं सकता। जगत में स्वयंसिद्ध अर्थात्... प्रारब्ध एक सूक्ष्म में सूक्ष्म दया के भाव करे कोई प्राणी। उस दया के भाव के प्रकार भी असंख्य प्रकार के होते हैं, ऐसी दया का भाव... मन्दता, ऐसी मन्दतर, ऐसी मन्दतम, ऐसी उग्रता, उग्रतम और उग्रतर इसमें के बहुत प्रकार दया के परिणाम के, वह दया का विकल्प जो है, उसमें जितने प्रकार के... हैं, उतने ही प्रकार का सामने कर्म बँधता है। समझ में आया? इसी प्रकार जितने प्रमाण में हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, इनके असंख्य प्रकार हैं। तारतम्यता हीनाधिक की दशा में। ऐसे विकार के पाप के हीनाधिकस्वरूप... तो उसमें निमित्त होकर सामने कर्म के रजकण... परिणमे, उतने ही प्रकार की वहाँ दशारूप होता है। पण्डितजी! यह सूक्ष्म बात है यह तो जरा। कर्म सिद्ध करके... करते हैं न। है... है... है... ऐसी वस्तु भगवान आत्मा, उसके अन्दर नहीं। उसने कल्पित किया है भिन्न। उस भिन्न को ... लक्ष्य करने वह ... है। तो वह तत्त्व आत्मा को भिन्न कराता नहीं। करावे तो वह तत्त्व कार्य कर्ता हो जाये और ... हो जाये। वह आत्मा का अधिकार... ऐसा होने पर भी... हो सकता नहीं।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा चैतन्यज्योति पूर्णानन्द प्रभु अनादि-अनन्त ऐसी जो तत्त्व की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश के प्रकार से प्रकृति जड़ में है और उदय में उसके प्रगट होने के प्रकार तो उसकी सत्ता में है और वह होने का प्रकार है, वह जीव में नहीं। भगवान ज्ञानमूर्ति पर्याय की दृष्टि और आत्मा ... है और वह परम जीव है, उस आत्मा को जीव कराता नहीं। देखो, कहते हैं न। क्या करें हम? हमको कर्म रोकते हैं। कर्म का भाग आवे तत्प्रमाण जीव को विकार करना पड़े। मूढ़ हो? किसने कहा ऐसा तुझे? ... जिस प्रकार का जीवत्व उतने प्रकार के ... निमित्त कहे जाते

हैं। यह वस्तु तुझे विकार करावे, ऐसा तीन काल, तीन लोक में बनता नहीं। कर्म की क्रिया यह जीव की भी स्वतन्त्र का जिसे स्वीकार न हो, इसे जीव... चिदानन्द मूर्ति है। ... व्यक्त के प्रगट विकार ... उसे पुण्य करे तो करे और ... न करे तो न करे, ऐसी जहाँ दृष्टि है, उसे प्रगट विकार की स्वतन्त्रता ... स्वीकार नहीं, उसे अप्रगट ... मूर्ति की प्रतीति किसी प्रकार से हो नहीं सकती। समझ में आया ? इसके लिये यह गाथा ली है। यह है वास्तविक चीज़।

क्या कहते हैं देखो, सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है... पहली लाईन। कैसा है प्रभु आत्मा ? सदा निरुपराग, उपराग अर्थात् निरुपराग जिसका स्वरूप है। उसमें जो आत्मस्वरूप, उसका परमात्मस्वरूप ... वर्तमान विकृतदशा हुए बिना उसे यहाँ सदा निरुपरागतत्त्व कहा जाता है। उसका नीचे अर्थ है जरा। निरुपराग... है न ? निसर्ग है। निः उपराग शब्द है। उपरागरहित। उपराग किसी पदार्थ में ... उपाधिरहित ... तथापि उपा... अनुरूप सामने चीज़ है, उसके अनुरूप विकारीभाव, उपाधिभाव, विकार की मलिनता, उसे उपराग कहा जाता है। क्या कहा यह ?

जैसे स्फटिक। स्फटिक। वह तो सफेद श्वेत ... है। परन्तु उसकी वर्तमान दशा में चाहे उसे ... निमित्त, उसके अनुरूप। वह अन्दर में उसके अनुरूप, काली हो तो काले रंग की झाँई होने की स्वयं की योग्यता और काले में उस रंग का निमित्त फूल। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा ... उसमें ... दृष्टान्त आता है, भाई ! 'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे, श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया। श्री जिनवीर ने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे... श्री जिनवर ने धर्म प्रकाशिया, प्रबल कषाय अभाव रे।' क्या कहा ? निर्मल स्फटिकरत्न जैसा है, ऐसा भगवान निरुपराग है। उपराग की मलिनतारहित। वह जैसे स्फटिक में काले, लाल फूल का निमित्त और अपनी योग्यता की काली, लाल झाँई उसे मलिनरूप से, मलिनपने, अपनी जितनी... पने निमित्त के सम्बन्ध में यह पने उसे उपराग अर्थात् मैल कहा जाता है। ... कहा न ? वीतराग, वही पदार्थ का अर्थात् निमित्त से... जो काला और लाल का निमित्त विद्यमान उपाधि का... काले, लाल की उपाधि के विकारीभाव, उसे उपराग कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान

आत्मा ज्ञानप्रकाश ... उसमें वह कर्मरजकण जो ... जहर है मिट्टी (अजीव) तत्त्व है, उसे वह अनुरूप अर्थात् कि जो ज्ञानावरणीय प्रकृति हो तो ... ज्ञान की हीनता जो ... ऐसी निमित्त में अनुरूप है।

ज्ञानावरणीय के... राग की निमित्त हो, वह ऐसा उसे नहीं। क्या कहते हैं? समझ में आया इसमें कुछ? एक ... निमित्त है उपाधि, उसके अनुरूप अर्थात् उसमें निमित्त की योग्यता प्रमाण ... होता है। आत्मा का अपना अपराध ज्ञान की हीन दशा, दर्शन की हीन दशा, विपरीत दशा ... समझ में आया? उसमें आत्मा के आनन्द की ... दशा, उसे निमित्तरूप से... उसे ... अनेकरूप से (अनुकूल कहा जाता है)। तो कहते हैं कि निरुपराग जिसका स्वरूप है... उपराग अर्थात् मलिनपने का स्वीकार स्वरूप में नहीं। ऐसे निरंजन (निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को... ऐसे निरंजन, निर्दोष निजपरमात्मा। ... दूसरा करना है, तीसरा हुआ... यह उसमें हुए, वे तुझे मदद करें, ऐसा है नहीं। समझ में आया? निजपरमात्मतत्त्व स्वरूप आत्मतत्त्व... उस आत्मा की बहिरात्मदशा, अन्तरात्मदशा और परमात्मा तीन दशायें हैं। जिस दशा से पार ऐसा परम आत्मतत्त्व जो त्रिकाली रहे, से परमात्मतत्त्व कहा जाता है। कहो, मोहनभाई! समझ में आया यह?

मुमुक्षु : आप समझाने का निमित्त तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझ में आता है तो पीछे से कहा जाता है यह कि भगवान आत्मा। आहाहा! उसकी भूल कैसे होती है, इसकी खबर नहीं होती। अब वह भूल कब टल सकती है? यहाँ टालना है तुझे। अरे! कर्म ने हैरान किया... कर्म ने हैरान किया... मार डाला। और कर्म जैसा कर्म का उदय आवे, ऐसा ही कर्म में विकार जीव को करना पड़े। डिग्री-टू-डिग्री। भगवान! तुझे किसने कहा ऐसा? यह तेरी मान्यता की विपरीतता की दृढ़ता ... है। कर्म से विकार होता है, ऐसा है नहीं। एक सत्त्व का अस्तित्व कहा और विकार का अस्तित्व तेरी दशा में उससे भिन्न। समझ में आया? नवनीतभाई! यह कर्म की प्रकृति के बन्ध हैं जगत के। ऐसी चिल्लाहट करते हैं। हम क्या करें? कितनी स्थिति में कर्म बँधता है। परन्तु किसमें? वह तो जड़ में ... कहेंगे। जड़ में मर्यादा परिस्थिति की ... एक लड्डू है लड्डू। ... लड्डू बनाया तो ... लड्डू उसकी प्रकृति ... अनुकूल होना, वह जो प्रकृति के लड्डू की ... मिठास प्रकृति

कहलाती है। उसकी जितने काल रहे, वह लड्डू की स्थिति कहलाती है। उसके परमाणु का दल कितना? दल कितना, उसे प्रदेश कहा जाता है और उस परमाणु के अनुभाग फल देने की शक्तिरूप उसे ... कहा जाता है।

इसी प्रकार ...में यह कर्म बँधे भाव तो उसे अपना था। 'आपने को आप भूलके हैरान हो गया।' भगवान अपनी चिदानन्द शक्ति कितना आनन्द में... एक भूल का निमित्त और कर्म के रजकणों में कर्म होने की योग्यता। उसकी योग्यता में चार प्रकार, लड्डू के चार प्रकार, उसी प्रकार उसमें चार प्रकार हैं। यह अस्ति... अपने अधिक नहीं लेते। वरना प्रत्येक गाथा में यह अस्ति सिद्ध करते हैं और यह अस्ति उसमें नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार सिद्ध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार सिद्ध करते हैं और फिर उड़ाते हैं आत्मा में से। निमित्त सिद्ध करते हैं कि यह है ... आत्मा के अन्दर नहीं। होवे तो यह नहीं ऐसा हो सकता है। न हो उसका नहीं क्या करना? यह पहली चीज़ है। है, ऐसा सिद्ध कराया। ... चैतन्य ज्योति ... जितने में उठे उतने में कर्म के रजकणों की अवस्था प्राप्त पुद्गल उतने में हैं, वहाँ हैं, ऐसी तेरी तत्त्व की जाति से भिन्न हैं। उस भिन्न को वह भिन्न कुछ नुकसान करे, यह तीन काल में बनता नहीं। क्या करे? एक व्यक्ति कहता था। कर्म के भाई! पैसे हुए, पैसे चले गये लाख रुपये। दो ... विवाह किया.... महाराज कहते हैं तो धर्म... सुन न वह यह पैसे लेने कहाँ गया... धर्म समझे.... ऐसा... मिट जाये। ... तकरार विचारने में। ५०-६० लाख, परन्तु यह... वरना चले जाओगे चौरासी के उसमें। परन्तु पैसे हुए... विवाद उठा पैसे आये। इसी प्रकार यह धर्म में आत्मा को रतिभाई!

यह प्रारब्ध पूर्व का पुण्य होता है, उसे प्राप्त हो तो वह कर्म निमित्त है ... आदि। प्रकृति से बँधा हुआ। ... शुभभाव हो, शुभ हो वह दया, दान में शुभ। उसके निमित्तरूप से पुण्य वहाँ बँधे रजकण। उन रजकणों के पाक का काल हो वह ... और प्राप्त हो जाये। दो निमित्त और वह ... डाले। ऐसी उस ... स्थिति की अवधि है। इसी प्रकार जीव का—आत्मा के जैसे परिणाम हों, शुभाशुभ परिणाम हों, ऐसे कर्म की स्थिति की

अवधि का कर्म करे, वैसा कर्म... अपना स्वभाव है और अमुक काल में ही पकता है। उसे अमुक काल में ... बने? ओहो! देखो, भाई! हम यह ... परमाणु का निमित्त था और दूसरी चीज़ आनेवाली थी तब उसे निमित्त... वह ... नहीं। ...भाई! ... पैसा?

मुमुक्षु : निमित्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त से कहा अर्थात्... नहीं, नहीं; वह पूर्व के साता का उदय, वह तो निमित्तमात्र है। परन्तु उन रजकणों का दल जो उपादान... कर्म के ... होते होते प्रवाह की ... हो। यह वह कहीं। जिसे पहला निमित्त है, वह निमित्त भी ... खींच लावे, ऐसा तीन काल, तीन लोक में होता नहीं। ऐसी वस्तु की स्थिति, उसमें कर्म का निमित्त है। वह निमित्त आत्मा का ... करे, तब उसे सामने निमित्त वस्तु है। वह ... करे तो। वरना ... नहीं। ... परन्तु एक वस्तु है। प्राप्त है। ... इस प्रकार है। जैसे और उसके होना, परन्तु ... अनन्त। 'कर्म अनन्त प्रकार के उसमें मुख्य आठ' श्रीमद् कहते हैं न आत्मसिद्धि में? 'कर्म अनन्त प्रकार के उसमें मुख्य आठ,... तराय ते संसार।' २९ वर्ष में आत्मसिद्धि बनायी है, तथापि ऐसा कहा, भाई! परन्तु तुझमें अनन्त महिमा है एक तत्त्व का। और उसकी एक छोटी भूल होने में भी अनन्त रजकणों का निमित्त है अकेला निमित्त ... अभी तो। भाई!

एक जूनागढ़ का था कोई बड़ा था। आया था। १५-२० वर्ष पहले की बात है न? ... परन्तु अन्त में सरकार ने कहा कि इनकी मशकरी ... है न ... वरना खड़ा होगा तो मार डालेंगे इस हिंजड़ा को। ... आया। ... करते हैं वह ताकत बताते हैं, वह ... की ताकत बताते हैं। ऐसे एक रजकण दो है वस्तु, ऐसे अनन्त रजकण के द्रव्य वस्तु, जीव भूल करे, इसलिए उसके निमित्तरूप से आत्मा अनन्त... किये हैं, इतनी आत्मा की ... है। समझ में आया? नवरंगभाई! यह बात ... ऐसी ही है। बादशाह चिदानन्द प्रभु है। ... होता है, भूल करता है, यह दया, दान, पुण्य-पाप के विकल्प मेरे, यह देहादि मेरे, ऐसी भूल का भी छोटी ऐसी भूल में अनन्त द्रव्य की वर्तमान पर्याय, उसका विपाक, कर्म का पाक, उसे निमित्त हो, वह उसके सामर्थ्य की विशेषता बताते हैं। ...इसलिए ... कौन है? निरूपरागतत्त्व है। उसमें मलिनता नहीं। मलिनता सिद्ध करनी है, प्रकृति का निमित्तपना सिद्ध करना है और मलिन तथा प्रकृति त्रिकालतत्त्व में

है नहीं। कहीं... धर्म होगा। समझ में आया? बात तो सूक्ष्म है, भाई! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुई श्रुतज्ञान के तर्क से सिद्ध हो सके ऐसी और ज्ञान में ज्ञेय आ जाये, ऐसी यह बात है। ... इसके ख्याल में आ जाये। इस प्रकार का अभ्यास नहीं, प्रकृति क्या, आत्मा क्या? ऐसे का ऐसा प्रकृति... माया है। परन्तु क्या माया है? समझ में आया?

है क्या यह? इसके अस्तित्वतत्त्व का स्वरूप क्या? भगवान सर्वज्ञ जो कहते हैं, वह निरुपराग भगवान निज आत्मा परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य,... जघन्य शब्द आता है न! गुजराती में है न! कम से कम स्थिति। मध्यम.... अर्थात् बीच की स्थिति। उत्कृष्ट... अर्थात् बहुत स्थिति, ऐसे स्थितिबन्ध के स्थान.... प्रकृति में है, प्रकृति में अन्दर है, परन्तु वह आत्मा के अन्दर है नहीं। एक ऋषि कहता, ओहोहो! सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी की स्थिति आती है न अन्दर कर्म की? शास्त्र में आती है। ऐसी कर्म की अवधि। ओहोहो! ७० क्रोड़ाक्रोड़ी। यह सब अभी सिद्ध नहीं होता, वह तो जब ... ७० की अवधि है। परन्तु ७० क्रोड़ाक्रोड़ी... पुण्य कितने क्रोड़ाक्रोड़ी ... तो। अनन्तानन्त क्रोड़ाक्रोड़ी काल का आत्मा, अब कर्म की स्थिति ७० क्रोड़ाक्रोड़ी तुझे अन्दर कहाँ अवरोधक थी। हिम्मतभाई! यह सब सीखे न। पहला काम सीखे न, क्या कहलाये? परमब्रह्म। उसमें यह लिखा। ... यह तेरी चीज़ में नहीं, क्या करना है? तेरी चीज़ में नहीं, इसकी चीज़ में है तो विकार कर (अथवा) तो वीतराग ... यह निमित्त के अनुरूप तुझे तेरे कारण से होता है और उस निमित्त के सामने अनुकूल निमित्त ऐसा होता है। ऐसा सिद्ध करके ज्ञान कराकर आत्मा को द्रव्य से ... करते हैं। समझ में आया?

यह स्थितिबन्ध के.... स्थिति अर्थात् अवधि। उसकी अवधि, वे स्थान जीव के नहीं। भगवान यह ... चीज़ है। जैसे पानी... उसे... उसी प्रकार भगवान निरवीतरागतत्त्व, ऐसा निर्मलतत्त्व, उसकी वर्तमान मलिनदशा का निमित्त जो कर्म, वह कर्म उसे नहीं। कर्म ... भी है नहीं। ऐसे परमानन्द तत्त्व को अन्तर्दृष्टि करना और अन्तर के ध्येय में लक्ष्य में आत्मा को करना यह उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान धर्म है।

मुमुक्षु :अवधि कितनी....

पूज्य गुरुदेवश्री : अवधि अन्तर्मुहूर्त। समयसार (में) अमृतचन्द्राचार्य ने छह

महीने की अवधि की है। एक हजार में ... रहा करे तो छह महीने में हुए बिना तुझे रहे नहीं, जाओ। यह भी अधिक में अधिक काल अन्तर्मुहूर्त का है। अन्तर्मुहूर्त... होवे न... क्या कहा? पहले ... ४८ मिनट की दो घड़ी, दो घड़ी ... उसके अन्दर, उसके अन्दर भगवान् चिदानन्द की रमणता एक समय से ... दूसरे असंख्य समय तक वही घोलन, वही घोलन, वही रटन। एक ही रटन की... समझ में आया?

भँवरे का दृष्टान्त देते हैं न। ईयळ भँवरी हो जाये। वह तो दृष्टान्त है। यह ईयळ नहीं ईयळ? भँवरी जैसी लगती है जंगल में से। फिर दर में डाले। डंक मारे डंक। अमुक काल में... भँवरी हो जाये। वह भँवरी हो जाये। है तो भिन्न ही, हों! परन्तु यह तो दृष्टान्त में। आता है न, भाई! यह दृष्टान्त। इसी प्रकार भगवान् आत्मा... इतनी बात है। अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध उसकी—भँवरी की भाँति धुन लगावे ... मैं शरीर नहीं, कर्म नहीं, रंग नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प... नहीं असंख्य समय का ... परमात्मा की ... परमात्मा की.... यह परमात्मतत्त्व कहा न? परमात्मतत्त्व परम आत्मस्वरूप, परम आत्मस्वरूप। अपने ... बात है, हों! पर्याय की बात नहीं। ऐसे तत्त्व के अन्दर यह कर्म की स्थिति की अवधि उसमें रहती है। भगवान् आत्मा अनादि-अनन्त है। उसमें स्थिति-बिति है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? अब कब स्थिति कर्म की पूरी हो? परन्तु थी कब तुझमें? वह पूरी हो। शुरुआत की हो ... मुझमें शुरुआत की हो, पूरी हो। है ही नहीं तेरी चीज़ में। ज्ञानानन्द प्रभु, वह कर्म की अवधि चीज़ खाली अनादि-अनन्त अक्षय स्थितिवाला है। समझ में आया? कहो, डॉक्टर! समझ में आता है या नहीं इसमें? इसमें समझ में आता है या नहीं? क्या कहा?

ज्ञानावरणादि अष्टविध.... अब दूसरी प्रकृति की बात करते हैं। ... शैली से अलग बात करते हैं। यह आठ कर्म है न अन्दर? आत्मा की ज्ञानशक्ति है या नहीं? परन्तु ऐसी वर्तमान दशा में वह ज्ञानावरणीय निमित्त और उसके अनुरूप अपनी हीन दशा का अपने से होना, उसे ज्ञान की हीन दशा अशुद्ध उपादान की वर्तमान में अपने कारण से हीन हो रहा है। वह हीन होने के उस प्रकृति का जो निमित्त है, उसे ज्ञानावरणीय कहा जाता है। ऐसे आठों ही प्रकृति है आठों ही। दर्शनावरणीय... ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के.... आठ प्रकार के जड़ कर्म हैं। 'कर्म अनन्त

प्रकार के, उनमें मुख्य आठ।' एक ज्ञानावरणीय, एक दर्शनावरणीय, एक वेदनीय, एक आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय, (मोहनीय) आठ प्रकृति आठ प्रकार के रजकणों की जाति है। उसमें प्रकृति ... भिन्न-भिन्न उनके स्वभाव हैं। वह यहाँ कहते हैं।

उन आठ प्रकार के कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य.... ज्ञानावरणीय ज्ञान का स्वभाव। ज्ञान का ... होने के काल में निमित्त होने का स्वभाव, दर्शन उपयोग में हीन होने के काल में निमित्त होने का स्वभाव अर्थात् हीन हुआ और निमित्त, वह उसके अनुकूल। ऐसा जिसे निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है, वह त्रिकाल तत्त्व के अन्दर नहीं है। समझ में आया? इस प्रकार से है, ऐसा पहले ज्ञान कराते हैं। इसी प्रकार जैसा है, उसका ज्ञान न हो तो त्रिकाल द्रव्य में यह नहीं, यह नास्ति में... नहीं हो सकता। समझ में आया? भाई! इसे अभ्यास चाहिए, इसे मनुष्यपना मिला है शाश्वत, कहते हैं। उसे तत्त्व के निर्णय—क्षयोपशम शक्ति तो प्राप्त है। परन्तु वह उपयोग ... उपयोग को लगावे तो ... आहाहा! दूसरे को लगावे ... ऐसा कहते हैं यहाँ। परन्तु इसमें अन्दर, धीरुभाई! यह तो दृष्टान्त, हों! दूसरे सबको... है।

.... इसे विकार तो है, परन्तु ... कार्यगत किसमें करना? यह ... निर्णय न कर सके। ... अभिप्राय। इसका ऐसा हो ... इसका ऐसा हो... ... कितने ही ऐसा अर्थ लगाते हैं। हिम्मतभाई! ... समझ में आ? एक ही बात.. सिर मारे। चाहे जिस बात में। ऐसा हो। सबमें चतुराई करे ... उसमें भी यह आत्मा क्या है? बफम... बफम... बफम... 'परखे माणिक मोतीया परखे हेम कपूर परन्तु एक न परखा आत्मा वहाँ रहा दिग्मूढ़।' ... परखे। .. इसका ऐसा... इसका ऐसा... ... फलाना ऐसा करे, ठीकणा ऐसा करे। रसिया ऐसा हो, रोटी ऐसे हो, मालपुआ ऐसे हो, डेबरा ऐसे हो। मालपुआ... व्यवस्थित... एक-एक बात में... कितना सब। डॉक्टर ... समझ लेना। इसका ऐसा हो, इसका ऐसा हो। कितने... बड़े-बड़े डॉक्टर। धीरुभाई! यह ... है न ... भाई! मोटाभाई ... मर जाता है। ... अब ... वह अपनी ... है। चन्दुभाई! खबर है न? कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि नहीं। कहा न पहले। यह देख। ऐसे आत्मा की रुचि क्यों नहीं करता? ऐसे आत्मा की ... रुचि करता नहीं, प्रमाण बैठता नहीं। इसे प्रमाण बैठता है यह ... धर्म का।

मुमुक्षु : कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कारण अज्ञान... कारण मिले। करे कर्ता होकर, उसे कारण है। अज्ञानरूप से रुचि ... करे कर्ता होकर उसे कारण क्या? करके। यह ममता बँधी है इसकी। इस जीव के कारण में... जीव को ... भी। आहाहा!

कहते हैं कि कर्म जड़ है, उसके आठ प्रकार हैं। उसके अन्तर्भेद १४८ हैं। प्रत्येक पुद्गल द्रव्य का स्व आकार। देखो, यह इनकी स्वतन्त्र भाषा है। यह पुद्गल परमाणु में आकार अर्थात् उसका स्वभाव, आकार अर्थात् उसका स्वरूप, उन आठ प्रकृति का स्वरूप, ऐसे प्रकृति का स्वभाव, स्व-भाव, उसका स्व-रूप, उसे ... कह दिया है। समझ में आया इसमें? वह कहा था न वह लड्डुओं का नहीं कहा था? लड्डुओं में। इत्यादि... इत्यादि... ऐसे आठ कर्म की प्रकृतियाँ जड़ हैं, उसमें प्रत्येक आत्मा प्रकृति अर्थात् स्वभाव है। उसका स्वभाव। आत्मा उल्टी दशा करे स्वयं से। तब उसे वह निमित्त चीज़ है, उसमें उसकी प्रकृति में, उसके स्वभाव में, उसके आकार अर्थात् प्रकृति जिसे कहते हैं, वह ... है। ओहोहो!

उसके स्थान (निरंजन निजपरमात्मतत्त्व को) नहीं है। इतने सब प्रकार... जड़ में हो, वह चैतन्यरूप सच्चिदानन्द मूर्ति ऐसे... वह निमित्त का आधार है। अब उसे... हमारे प्रकृति... क्या करना, भाई! वह दुनिया नहीं कहती? प्रकृति का... ऐसा कहते हैं। अरे! प्रकृति का... है, सुन न...!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न ही है। वह प्रकृति का... ऐसा कहते हैं। एक क्षण में। कहा न! ... दृष्टान्त नहीं आता? ... का निमित्त पाकर ... उसका आकार अपना। उसे अनुरूप। निमित्त के अनुरूप। क्योंकि अग्नि को अनुरूप उष्णता है और उष्णता के अनुकूल अग्नि है। अर्थात् निमित्त... अपने-अपने कारण से, अपने-अपने अस्तित्व से,

वरना तो कर्ता-कर्म हो जाये। वह अभी नहीं। अर्थात् कि पानी की उष्णता है, उसका निमित्त... परन्तु उष्णता हुई अग्नि के निमित्त से। तथापि उस उष्णता के काल में भी उसमें शीतलता है। वह अधमण पानी खदबद... खदबद... उसे क्या कहा जाता है ? ... करना वह ? ... चावल डाले न। ... चावल चढ़ जाये। ... ऐसा उसी काल में उसे अग्नि के ऊपर डालो ... ऐसे निमित्त-नैमित्तिक का स्वभाव। गर्म पानी अग्नि में डाले तो ? ... भगवान आत्मा शीतल अविकारी शान्तरस आनन्द की मूर्ति है। वह ... पानी में उष्णता विकृत है, इसी प्रकार उसकी (आत्मा की) दशा में विकार की विकृति ... है। उसे निमित्त वह कर्म है। उस निमित्त के लक्ष्य से, स्वभाव का लक्ष्य छोड़कर ... करे, वही आत्मा एक क्षण में चैतन्य की सम्हाल अन्दर से करे, विकार का नाश, उसके साथ आठों कर्म का नाश अन्तर्मुहूर्त में हो जाये। ऐसी उसमें सामर्थ्य ... है। समझ में आया ? इसे भरोसा नहीं आता। ... एक बीड़ी बिना चले नहीं। तम्बाकू हो तो... तम्बाकू... ... वह डाले तब धूल में। परन्तु ... करे न पूरा। इसी प्रकार यह एक तम्बाकू पिलायी ... अब वह ... आहाहा! यह शरीर भी ... कितने के भाग में बिक गया...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होती, इसे दरकार नहीं। इसे भूल करने के लिये रस और प्रेम ... इसे प्रेम नहीं। भूल टालने का प्रेम करे और भूल रहे, ऐसा तीन काल में है नहीं। समझ में आया ? बंधाण था भाई बहुत बंधाणी। एक था ... दूसरा मर गया। क्या कहलाता है ? व्यसन। अफीम का बहुत। एक... पश्चात् राग तो है। इसलिए जब अधिक लोग न हो, तब... राग रहे अभी। ... स्त्री हो, पुत्र हो, फलाना हो, मकान हो, ... हो, राग का... यह एक ही रहे। इसलिए पूरा... उसमें उसकी लड़की सात वर्ष की अफीम की... बहुत वर्ष से। मर गये। मरकर जलाने गये। जलाकर जहाँ आये, तो भाई! यह सब आते हैं... अरे! यह जिसके ऊपर मेरा पूरा राग, वह एक ही चीज़... उसके बिना अब चलेगा या नहीं ? तो अब यह ... डिब्बी थी। आज से आजीवन तक अफीम लेना नहीं। परन्तु... इसके बिना चले तो अफीम बिना न चले, ऐसा कौन कहता है ? नवरंगभाई! ऐसे जीव को यह मेरी चीज़ में अरे! मैं वह कौन हूँ ? मेरी महिमा करते हुए वाणी में पूरा नहीं। ... क्या कहें ? वह क्या कहे ? यह सच्चिदानन्द प्रभु के स्वभाव का माहात्म्य, उसकी

प्रगट दशा की तो क्या बात ? परन्तु उस प्रगट में भान में पड़ा हुआ.... ऐसा परमात्मस्वभाव अपना स्फटिकरत्न ... है। सर्वज्ञ की वाणी में भी पूरा आ नहीं सका।

मुमुक्षु : अनुभव....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अनुभव तब... भेजेंगे कहाँ ? यह क्या कहा है, देखो न ! ... तुमने पूछा। ... बताओ। घी का स्वाद जन्मघूँटी में से दिया है। मैल निकालने को देते हैं न पहला ? गळथुथी नहीं कहते ? क्या कहते हैं ? यह तुम्हारे क्या कहते हैं ? वह तुम्हारे दूसरी भाषा होगी। वह जन्मघूँटी। यह जन्मघूँटी है तुम्हारे। हमारे यहाँ गळथुथी कहते हैं। गुजरात में—काठियावाड़ में, वह लड़का आवे न तो वह मैल हो न... वह जरा घी और गुड़ दे तो दस्त... अब यह घी का स्वाद जन्मघूँटी से अभी तक चाटा है ५०-६०-६० वर्ष। लाओ रे घी के स्वाद की मिठास जगत को किसी पदार्थ की हो... मिठास दूसरे कोभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो जाने वह माने। बाकी सब... समझ में आया ?

कहते हैं, यह तो बात अनुभवगम्य है, इसका ईशारा होता है। क्या कहे ? यह तो ... समझ में आया ? ... बहुत बार दृष्टान्त दूसरा दूँ साधारण कि यह चरपरा है न चरपरा है न काला-सफेद चरपरा। तीखा क्या कहते हैं, चन्दुभाई! काली मिर्च ऊँची, काली ऊँची, सफेद (मिर्च) ऊँची हमारे तो ऊँची मिर्च कहते हैं, हों! तुम्हारे उसे कहते हैं। मिर्च की भी अलग जाति की आती है। ...मिर्च और लौंग मिर्च बहुत प्रकार की आती है न। ... अब उस स्वाद का, मिर्ची के स्वाद में अन्तर होता है। स्वाद के जाननेवाले को ख्याल हो कि इस स्वाद में अन्तर है। ... कह न सके, (परन्तु) स्वाद में अन्तर है। अन्तर है... अन्तर है... अन्तर है... ..

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ...देखो तो स्वाद किस प्रकार दिखाये ? स्वाद का कौन माप करे ? वह तो चीज़ बतायी। चीज़ वस्तु। परन्तु उसमें स्वाद जो रस है, उस रस का माप क्यों नहीं आया ? उस रस का जो जाननेवाला ... चरपरा के मिर्ची के स्वाद में वह...

दूसरे प्रकार की, परन्तु चरपराई की तारतम्यता में... दूसरी जाति की... यह दूसरी जाति की चरपराहट। अरे, जड़ की चरपराहट का जहाँ जड़ के तारतम्यपने का अन्तर बता नहीं सकता। तो भगवान आत्मा ... पुण्य-पाप के रागरहित चिदानन्द भगवान के स्वाद की, अनुभव की बातें राग द्वारा, वाणी द्वारा पूरी पड़ नहीं सकती। समझ में आया ? यह... आने की गरज है उसके लिये यह बात चलती है। ऐसे का ऐसा हाँक रखे अनन्त काल से गाडा बिना विचार में और कर्म करो, कर्म के कारण... जड़कर्म, भावकर्म... जड़कर्म हो तो भावकर्म करावे, भावकर्म होवे तो। ... छूटने का अवसर आवे तब गया... ऐसा है, ऐसी यहाँ बात करते हैं। वस्तु है। परन्तु तेरी योग्यता के कारण तुझमें प्रकृति का स्वभाव ... है। प्रकृति के ... वह प्रकृति त्रिकाल अनन्त। उस आत्मा को ... शान्त आनन्द उससे अरूपी प्रकृति जहर, उसके निमित्त से होता एक... विकार, उस विकार की ... उपजे, वह प्रकृति तेरे स्वरूप में है नहीं। उसमें है, हों! अस्ति सिद्ध करते जाते हैं। ऐसा स्वरूप सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र हो नहीं सकता। ऐसे स्वरूप की बात कर्म के परमाणु... उनकी स्थिति, उनका स्वभाव, उनका विभाव... शक्ति एक-एक रजकण में हो, ऐसे अनन्त कर्म जो ... यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई जान नहीं सकता। अर्थात् कि सर्वज्ञ ने पूर्ण जाना उसके... श्रुतज्ञानी जान सकते हैं। समझ में आया ? गजब बात, भाई! यह तो विद्यमान... है, ऐसा कहे। कहते हैं....

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : विकाररहित है। विकार में रुचि हो, उसे अविकारी का अनुभव नहीं होता।

मुमुक्षु : ऐसी ऊँची बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ... सूझे ऐसा करे। ... यह ... लिए तो बात चलती है। परन्तु इसके ज्ञान में निर्णय तो करना पड़ेगा। निर्णय तो कर। पहले निर्णय तो करे निर्णय में कि विकार, वह सुख नहीं, निर्विकारी भगवान के आश्रय से धर्म है, ऐसा निर्णय करे उसे ... घोटै, तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, वरना सम्यग्दर्शन होता नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर यह कहा ... इसके ज्ञान में आना चाहिए। इसे ज्ञान ... और इस निर्णय को बारम्बार स्वसन्मुख लक्ष्य में रहना चाहिए, तब उसे निर्णय है, ऐसा कहा जाये। समझ में आया ? यह तो ऐसा कि तुरन्त कोई दे देवे और या ले जाये। ... कहाँ से दे ? इसका ... नाम नहीं। परन्तु करे तब न ! तू करे तब कि ... कोई ला दे इसे ?

मुमुक्षु :प्रयत्न तो करना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ प्रयत्न... इसे ख्याल में तो ले कि ओहो ! यह एक प्रकृति इस प्रकार की जड़ है, उसके लक्ष्य से स्वभाव में स्थित होकर मेरी दशा में विकृत होता है, ऐसा है। अब वह विकृतपना मेरे त्रिकाल निरूपरागतत्व के अन्दर है नहीं। ऐसा निर्णय... विचार में लेकर उसे घोंटे तो पहले स्वसम्यक् आये बिना रहे नहीं। समझ में आया ? यह दो कहे स्थिति और प्रकृति।

अशुद्ध अन्तःतत्त्व.... यह आत्मा की मलिनदशावाला भाग और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का.... प्रदेश अर्थात् परमाणु की संख्या दोनों। यह परस्पर, वह प्रदेशबन्ध है.... ... कहा न एक उसमें ? पानी... विचार ... पानी वहाँ दूध और दूध वहाँ पानी। क्षेत्र एक, परन्तु दोनों के स्वभाव भिन्न। अग्नि का निमित्त और स्वयं की योग्यता। उसकी भाप होकर... जाये और दूध को... निमित्त ... हो। पानी की भाप होकर छूट जाये। ... हो जाये। इसी प्रकार भगवान आत्मा उसका आठ कर्म का जो मैल, उस शुद्धतत्त्व से अपनी दशा... और कर्म के रजकण वे दोनों एक क्षेत्र, एक क्षेत्र में एक जगह... ऐसा जो... उसका प्रदेशबन्ध कहा जाता है। बहुत रजकणों का दल, वह भगवान स्वयं असंख्य प्रदेशी। एक क्षेत्र में दिखते हैं, उसे प्रदेशबन्ध कहा जाता है। यह ... नहीं। समझ में आया ?

अरे ! इसकी बातों को सुनते हुए इसे रस और प्रेम आना चाहिए। पाँच हजार कमाने का हो... तो कितना हो ? एक ... पाँच हजार में पाँच घण्टे में... अरे... पाँच हजार। नवरंगभाई ! यह और वह याद आया तीन हजार का (संवत्) १९९० के वर्ष उपाश्रय में। कहो, समझ में आया ? पीताम्बर थे पोरबन्दर के। वह भाई... होना था। ९० के वर्ष की बात है। ...जाओ। ९० की बात है। वहाँ जाकर ... हो गया। धूल में भी नहीं, सुन न। यह तो ९० के वर्ष की बात है। २९ वर्ष हुए। यह ऐसे... ऐसे उसे एक हजार... कुछ नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसे करते हैं तब होता है, तब उसे कहा जाता है। 'वह तो प्रभु ने ही दिया वर्तु चरणाधीन।' ऐसा चैतन्य प्रभु... और आपके निमित्त से जाना, जाना तब मिला, नहीं था वह मिला, ऐसा कहने में आता है। ज्ञान में उसे... नहीं था, श्रद्धा में... निमित्त। तत्प्रमाण समझाया तो प्रभु! आपने मुझे दिया है। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : इसमें खोटा क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह। खोटा अर्थात् यह। इसका अर्थ यह। कि जिस प्रकार से ज्ञान और श्रद्धा का चैतन्य प्रभु की महत्ता... चाहिए वह... आत्मा ... परन्तु ... निमित्त मेरी योग्यता से मुझे समझ में आया तब नहीं था वह मिला, मैं आत्मा में राग और पुण्य और निमित्त जिस प्रकार से मानता था... त्रिकाल ज्ञानमूर्ति शुद्ध हूँ, वह मुझे ज्ञात हुआ, प्रभु! आपने ही मुझे दिया, ऐसा उपचार से कहा जाता है। ... उपचार समझे न? आरोप से कहा जाता है।

इस बन्ध के स्थान भी (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं है। और शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय... वह है न जो, बँधे हुए। उसके खिरने के काल में, हटने के काल में... दूसरे की शक्ति, शुद्ध, बुद्ध आत्मा को... परन्तु उसमें पाप होकर उसके फल... अनुभाग जैसे सौँठ में चरपरा रस, वह उसकी सामर्थ्य। इसी प्रकार इसमें—कर्म के रजकण में अनुभाग खिरने की ताकत। ... भगवान, उस निरंजन निज परमात्मा को भी अवकाश नहीं। करे न। वह ... भगवान आत्मा को नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में किसके... कर्म के... आत्मा की बात है। जीओ और जीने दो। अरे कहाँ गया तू तो ? मर जायेगा... वे नहीं कहते ? समझ में आया ? दुकान पर बैठाये न लड़के को आधे घण्टे, घर में खाने जाये तब। ... पेढी सम्हालना। मैं खाने जाता हूँ। फिर एक... खा ले। खाकर पड़ा रहा। ... तुझे बैठाया था न ? कहाँ गया था तू ? ... मुझे खबर नहीं। ... यहाँ। इसी प्रकार कहते हैं, कर्म मुझे लूट गया... था या नहीं

तू उस काल में ? तेरी अस्ति थी या नहीं ? मुझे कर्म ने ऐसा कराया और मेरे कर्म कराया । भगवान कहते हैं कि तेरी अस्ति थी या नहीं, उस पर्याय में उस काल में ? तेरे काल में तेरे कारण से हुआ याकारण से हुआ ? ऐसी जो स्वतन्त्रता के आता नहीं । उसे किसी प्रकार से आत्मा की दृष्टि होने का अवकाश नहीं रहता । अवकाश नहीं अनुभाग का अवकाश नहीं, हों ! ...मिथ्यात्व का अनुभाग और प्रकृति का....

और द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के उदय के स्थानों का भी अवकाश नहीं है । विकार की दशा के प्रकार, उसके—आत्मतत्त्व के अन्दर नहीं । ऐसे अस्ति, परन्तु त्रिकाल में नहीं । ऐसे अन्तर के तत्त्व को निहारना, देखना, विचारना और मनन करना । यह उसका नाम सम्यग्दर्शन कारण है ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

नियमसार, ४२वीं गाथा है न? (उसमें) समयसार का कलश है। है?श्लोक आ गया है। है? ८९ पृष्ठ।

(अनुष्टुप्)

चित्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम् ।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥

आहाहा! चैतन्यशक्ति से व्याप्त... सूक्ष्म विषय है, भगवान! यह आत्मा जो है, वह चैतन्यशक्ति ज्ञान, आनन्दस्वरूप प्रभु है। चैतन्यशक्ति ली है। चैतन्यस्वभाव कहो, चैतन्यशक्ति कहो, चैतन्य गुण कहो, चेतन का चैतन्यपना कहो। आहाहा! भाव का भाववान। भगवान आत्मा भाव, उसका चैतन्यपना, वह भाववान गुण है। उस चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका... उतने में रहा हुआ। चैतन्यशक्ति से व्याप्त। आहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, प्रथम धर्म की शुरुआत (करनी हो) तो उसका विषय क्या? आहाहा! तो चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्वसार है.... आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो नहीं, पुण्य-पाप का भाव भी जिसमें नहीं, जिसमें एक समय की पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! ऐसे चैतन्यशक्ति से व्याप्त अर्थात् चैतन्यशक्ति से सम्पन्न... आहाहा! ऐसा सर्वस्व सार है। ऐसा यह जीव इतना मात्र ही है.... आहाहा! सम्यग्दर्शन पाने की चीज़, उस सम्यग्दर्शन का विषय, यह चैतन्यशक्तिमात्र इतना जीव, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! यशपालजी! ऐसा है। भगवान! ...आहाहा! ... उसका नाम है भरत चक्रवर्ती। यह कठिन बातें। आहाहा! ... मद्रास का आत्मधर्म है न। ... आहाहा!

कहते हैं कि जिसे भव का अन्त लाना हो, चौरासी लाख योनि के अवतार। एक-एक योनि में प्रभु अनन्त बार अवतार किये। आहाहा! कल कहा था न? वादिराज मुनि। शरीर में कोढ़ था। मुनि भावलिंगी सन्त अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में प्रचुर स्वसंवेदन, वह मुनिपना। आहाहा! उन मुनि को कोढ़ था। वे प्रभु के समक्ष प्रार्थना करते थे। प्रभु! यह मैं पूर्व के दुःख को याद करता हूँ... आहाहा! मैं... पूर्व भव के

अनन्त भव में नरक-निगोद के... मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं। कोढ़ (था)। श्रावक ने कहा था न कि मेरे महाराज को कोढ़ नहीं। कोढ़ था, परन्तु श्रावक से ऐसा कहा गया राजा को कि हमारे मुनि को कोढ़ नहीं है। श्रावक आया। प्रभु! मैंने दरबार में ऐसा कहा कि आपको कोढ़ नहीं। शान्ति रख, बापू! शान्ति रख। भगवान के मार्ग में अच्छा होगा। कोढ़ है। श्रावक ने, कोढ़ नहीं, ऐसा दरबार को कहा और यहाँ आकर ऐसा कहा, साहेब! आपको कोढ़ है, यह मुझे खबर थी, परन्तु मेरे मुनि को कोढ़, ऐसा मैं सुन नहीं सका। आहाहा! तो मैंने दरबार को ऐसा कहा। भाई! शान्ति रख, प्रभु! भगवान का प्रताप, आत्मा का प्रताप ऐसा है कोई।

प्रार्थना करते-करते (कहते हैं), प्रभु! मैं नरक और निगोद के दुःख याद करता हूँ तो आयुध लगता है, छुरा लगता है मानो। मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, परमेष्ठी पद में हैं। आहाहा! परन्तु विकल्प ऐसा आया। बात यह है कि यह कोढ़ है, वह कोढ़ मिट जायेगा। प्रभु को प्रार्थना (करते हैं), प्रभु! आप जहाँ अवतरित होते हो, वहाँ स्वर्ण के गढ़ और रतन के कंगूरे (होते हैं)। प्रभु! आप जहाँ गर्भ में आते हो तो वहाँ आगे इन्द्र आकर आँगन साफ करते हैं। प्रभु! मैं तो आपको प्रार्थना करता हूँ। मैंने अनन्त काल में दुःख भोगे, उन्हें याद करते हुए चोट लगती है, आयुध लगता है।... अनन्त काल में जो दुःख हुए, वे नहीं होनेवाले (अब)। समझ में आया? एकाध भव में केवलज्ञान लेकर मोक्ष हो जायेगा। आहाहा!

वे मुनिराज यहाँ कहते हैं, यह पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं। आहाहा! चैतन्यशक्ति से व्यास जिसका सर्वस्व-सार है.... ज्ञान, आनन्द, शान्ति, वीतरागता... आहाहा! उससे भरपूर प्रभु चैतन्य, वह जीव। शरीर, वाणी, पुण्य, वह तो नहीं, परन्तु पुण्य-पाप के परिणाम, वह जीव नहीं। वह तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय भी व्यवहार जीव है। आहाहा! निश्चय जीव यह है। ऐसी बात है। आहाहा! ऐसी चैतन्यशक्ति से व्यास पूर्णानन्द प्रभु, जिसका सर्वस्व, सर्वस्व अपना सार है। आहाहा! ऐसा यह जीव... ऐसा यह जीव। इतना ही मात्र है.... आहाहा! यहाँ तो स्त्री, पुत्र और पैसा और धूल-धमाका हमारे हैं... हमारे हैं। मार डाला है जीव को। समझ में आया? मार डाले का क्या अर्थ? कि स्वयं चैतन्यशक्ति सम्पन्न पूरा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें पर्याय द्रव्य

में नहीं। दया, दान, व्रतादि का विकल्प तो नहीं, तो यह संयोगी चीज़ मेरी है, इस मान्यता में चैतन्य का ज्ञाता-दृष्टा चैतन्य सर्वस्व, उसका इसने अनादर किया। आहाहा! कठिन बात, बापू! जैनधर्म का सम्यग्दर्शन और उस सम्यग्दर्शन का विषय अलौकिक चीज़ है, भाई! आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना बाहर का दिखाव जितना करे, उसमें मैं त्याग (करता) हूँ, मैंने भोग छोड़े हैं, यह सब मिथ्यात्व का पोषण है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

इतना ही मात्र है.... ऐसा कहा न? ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है.... पर्याय है, राग है, परन्तु वह जीव नहीं। आहाहा! वह तो पहले आ गया न ३८ गाथा में। शुरु वहाँ से किया कि निश्चय आत्मा पूर्णानन्द का नाथ ध्रुवस्वरूप चैतन्य अखण्डानन्द, वही वास्तव में आत्मा है। वास्तव में आत्मा। आहाहा! जिसमें पर्याय का अभाव है। पर्याय है सही, परन्तु जिसमें पर्याय का अभाव है—ऐसा ध्रुव चिदानन्द प्रभु... आहाहा! वह वास्तव में आत्मा है और उस आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। बाकी लाख क्रियाकाण्ड करे, मर जाये, सूख जाये, तो भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, मिथ्यात्व का पोषण होगा। आहाहा! ऐसा यह जीव.... ऐसा यह जीव अर्थात्? चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है ऐसा.... यह आत्मा। आहाहा! इतना ही मात्र है.... वापस 'ही' लिया। इतना ही मात्र है.... परमार्थ से आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ चैतन्यशक्ति के स्वभाव का पिण्ड, जिसमें केवलज्ञान की पर्याय प्रगटे, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड एक ज्ञानगुण है, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्य शक्तिसम्पन्न प्रभु है। आहाहा! अरेरे! जिसकी मूल चीज़ क्या है, (उसकी खबर नहीं) और मूल चीज़ के ऊपर लक्ष्य ही नहीं अनादि से। यह त्याग किया, यह किया, यह छोड़ा, वस्त्र बदले (छोड़े)। मार डाला (जीव को)। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, ऐसा यह जीव.... भाषा देखो, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। इतना ही... इतना ही मात्र... आहाहा! चित्शक्ति से शून्य.... चाहे तो भगवान की भक्ति, विनय, त्याग, राग आदि शुभ हो, वह सब चैतन्यशक्ति से शून्य है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण, भक्ति, मन्दिर बनाया, उसमें शुभभाव, (वे सब चित्शक्ति से शून्य हैं)। कहो, चिमनभाई! ऐई! जेठालालभाई! सब सेठिया हैं बड़े।

मन्दिर बनाया न वहाँ नैरोबी। पन्द्रह लाख, बीस लाख का। सेठिया आये हैं वहाँ से विनती करने। दोनों करोड़पति हैं। धूल-धूल। आहाहा! कुछ धूल भी नहीं वहाँ। हैरान होने का रास्ता है। प्रभु! आत्मा में लक्ष्मी तो नहीं, परन्तु लक्ष्मी का प्रेम—राग, वह भी नहीं, परन्तु तीन लोक के नाथ का राग भक्ति का, वह भी नहीं, परन्तु उस राग का ज्ञान करने की एक समय की पर्याय, वह भी उसमें नहीं। आहाहा! उसे दृष्टि में लेना, राग के विकल्प से हटकर जो वर्तमान पर्याय राग-सन्मुख है, स्वभाव से विमुख है, उस पर्याय को राग से विमुख करके स्वभाव-सन्मुख करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की पहली सीढ़ी अभी तो, हों! अभी पंचम गुणस्थान की दशा तो कोई अलौकिक बात है प्रतिमा और (वह सब)। यह लोग लेकर बैठे वह प्रतिमा-ब्रतिमा है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि चित्शक्ति से शून्य... आहाहा! अरे! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्रज्ञान करने का, पढ़ने का विकल्प। आहाहा! वह चैतन्यशक्ति से शून्य चीज है। वह विकल्प जो है, वह चैतन्यशक्ति से शून्य है। ऐसी बातें हैं, प्रभु! तब है क्या? शून्य जो यह भाव हैं... देखा! है, अस्ति है। चैतन्यशक्ति से शून्य... ऐसे दया, दान, रागादि भाव हैं, परन्तु वह चैतन्यशक्ति से शून्य है। आहाहा! इसलिए, हम उन्हें पुद्गल कहते हैं। आहाहा! है? वे समस्त पौद्गलिक हैं। अरेरे! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भाव पौद्गलिक है।

मुमुक्षु : पुद्गल है तो उसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श भले न हो, परन्तु चैतन्य से शून्य है, इसलिए पुद्गल कहते हैं। वह तो प्रश्न आता है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाले भी पुद्गल और एक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की पर्याय, वह भी पुद्गल। आहाहा! समझ में आया? अभी दूसरे कलश में कहेंगे कि विकल्प है, वह तो घोर संसार का मूल है। आहाहा! शुभराग हुआ। है, हो, परन्तु कहते हैं कि वह तो घोर संसार का मूल है। भगवान आत्मा तो मुक्ति का मूल है। आहाहा! 'है' ऐसा तो कहा। है? यह भाव 'है' ऐसा तो कहा, परन्तु 'है' वह क्या है? भगवान जब चैतन्यशक्ति सम्पन्न प्रभु, यह चैतन्यशक्ति से शून्य है। है तो हैं कैसे? चैतन्यशक्ति से शून्य हैं, इसलिए पुद्गल हैं।

आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का भाव पुद्गल है, ऐसा कहते हैं। अब यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि व्यवहार करते-करते धर्म होगा। आहाहा! मिथ्यात्व होगा। आहाहा! अनन्त संसार को करनेवाला मिथ्यात्व। मिथ्यात्व के गर्भ में अनन्त संसार पड़ा है। आहाहा!

यह चित्शक्ति से शून्य जो ये सब भाव हैं, वे समस्त ही पौद्गलिक हैं। भगवान् अमृतचन्द्राचार्य वस्तु का स्वरूप दृष्टि का विषय बताते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय भी नहीं। परन्तु विषय करती है कि 'यह है' ऐसा निर्णय है, वह पर्याय है, परन्तु वह पर्याय वस्तु में नहीं। आहाहा! तब ऐसा कहा कि जो पर्याय है, वह पुद्गल कहा। तो पुद्गल से निर्णय होता है? परन्तु वह पुद्गल कहा तो उस पर्याय की अन्दर सन्मुखता गई। उस पर्याय में आत्मा ज्ञात हुआ तो वह पर्याय चैतन्य हुई। चैतन्य की पर्याय वह हुई। समझ में आया? सम्यग्दर्शन पर्याय, वह चैतन्य की पर्याय है। रागादि पर्याय, वह संसार की, घोर संसार की पर्याय है। है अवश्य। आहाहा! ऐसा मार्ग है। ... रात्रि में कहा था। खचाखच भर गया। अभी तो बहिन का दिवस (जन्मदिन) आयेगा तब तो (बहुत आयेंगे)। गुरुवार है। बहुत लोग आयेंगे तब। परन्तु यहाँ जगह बहुत है। बहुत जमीन है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं सुन तो सही, प्रभु! तू कितना और कैसा है? तू है एक। परन्तु एक कैसा है? कि चैतन्यशक्ति, आनन्दशक्ति, चैतन्यशक्ति के साथ अनन्त शक्ति भाववान्, वह भाववान् जो जीव है, उतना वह जीव है। वह अनन्त चैतन्यशक्ति, अनन्त आनन्दशक्ति, अनन्त वीतरागशक्ति, अनन्त स्वच्छत्वशक्ति, अनन्त जीवत्वशक्ति—ऐसी अनन्त शक्ति जो चैतन्यमय है, वही जीव है, इतना ही जीव है, ऐसा वह जीव है, इतना वह जीव है। आहाहा! दूसरी है। तो कहा कि वह तो पौद्गलिक है। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं अन्दर?

और (४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं —) यह श्लोक तो अमृतचन्द्राचार्य का था समयसार का। अब यह श्लोक मुनिराज कहते हैं। ६० वाँ है न?

अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा,

व्रजति न च विकल्पं सन्सृतेर्घोररूपम्।

अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः,
परपरिणतिदूरं याति चिन्मात्रमेषः ॥६० ॥

श्लोकार्थः — सतत् रूप से अखण्ड ज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा... आहाहा! दो बात कहते हैं अब। अखण्ड सतत् रूप से अखण्ड प्रभु तो है। निरन्तर अखण्ड। वर्तमान अखण्ड परमात्मा स्वयं है। आहाहा! सतत् रूप से अखण्ड ज्ञान की... यहाँ तक सिद्ध किया। क्या कहा? यहाँ तक तो द्रव्य सिद्ध किया। आहाहा! अब उसकी सद्भावनावाला आत्मा... यह पर्याय कही। आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! धर्म कोई दिगम्बर धर्म अर्थात् पक्ष-पंथ नहीं। आहाहा! वह वस्तु का स्वरूप है। कहते हैं कि सतत् रूप से अखण्ड ज्ञान की... प्रभु तो अखण्ड सतत् रूप से निरन्तर अखण्ड एकरूप है। आहाहा! वर्तमान में भी अखण्ड एकरूप है। त्रिकाल कहना, वह बाद में। वर्तमान में अखण्ड एकरूप विद्यमान वस्तु है। आहाहा!

सतत् रूप से अखण्ड... ज्ञान अर्थात् आत्मा, ज्ञान शब्द से आत्मा। अनन्त गुणसम्पन्न ज्ञान आत्मा। उसकी सद्भावना, उस वस्तु की एकाग्रता। आहाहा! उस सद्भावनावाला... यह पर्याय है। पहले कही थी कि इसके अतिरिक्त सब शून्य पुद्गल है और यहाँ कहते हैं कि अखण्ड सतत् रूप से अखण्ड भगवान आत्मा के अन्दर एकाग्रतारूपी भावना। यह भावना उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकरूप है। समझ में आया? और वस्तु है, वह तो पारिणामिकस्वभाव है। आहाहा! वस्तु है सहज परमस्वभावभाव भगवान ज्ञायकभाव का पिण्ड प्रभु, उसकी भावना-सद्भावना, सत् जो है उसकी भावना। जैसा पूर्ण सत् है, उसकी एकाग्रतारूपी भावना। आहाहा! ऐसी बातें हैं। सद्भावनावाला आत्मा... सद्भावनावाला आत्मा। अब एक ओर आत्मा पर्याय बिना का कहा। समझ में आया? और यहाँ कहते हैं कि सद्भावनावाला आत्मा। आहाहा! जिसने त्रिकाली ज्ञायकभाव की एकाग्रता की स्वसन्मुख होकर, ऐसा सद्भावनावाला आत्मा।

मुमुक्षु : यहाँ सद्भावनावाला आत्मा कहकर क्षायिकज्ञान से भी रहित आत्मा कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह क्षायिकज्ञान है। सद्भावना क्षायिक, उपशम और

क्षयोपशम ज्ञान है। पर्यायवाला है। पर्यायवाला कहा। यह तो प्रभु का मार्ग, बापू! आहाहा! समझ में आया?

सतत् रूप से अखण्ड ज्ञान... अर्थात् आत्मा। उसकी सद्भावनावाला... उसकी सद्भावना अर्थात् अन्तर सन्मुख होकर। आहाहा! पर्याय से विमुख होकर, स्वभाव सन्मुख (होकर) जो भावना हुई। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग स्याद्वाद किस अपेक्षा से है (वह समझना चाहिए)। सद्भावनावाला आत्मा (अर्थात् - 'मैं अखण्डज्ञान हूँ'—ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है,... आहाहा! जैसे भगवान निरन्तर अखण्ड ज्ञानरूप आत्मा है, उस ओर की एकाग्रता की भावना जिसे—समकिति को निरन्तर वर्तती है। आहाहा! जैसे वस्तु निरन्तर ज्ञान चैतन्यस्वरूप भगवान, चैतन्यशक्ति सर्वस्व जिसका सार, वह अखण्ड एकरूप निरन्तर है, उसके सन्मुख होकर वह सद्भावना पर्याय प्रगट हुई, उस सद्भावनावाला आत्मा। आहाहा! है या नहीं अन्दर, प्रभु? यह तो प्रभु की वाणी है, बापू! दिग्म्बर सन्तों की वाणी अर्थात् सर्वज्ञ की वाणी है। केवली के अनुसार वाणी है। आहाहा!

गृहस्थ ने लिखा था, नहीं? परमार्थ वचनिका, भाई! लालचन्दभाई! परमार्थ वचनिका। बनारसीदास (ने लिखी है)। केवली अनुसार यथायोग्य केवली अनुसार... आहाहा! परन्तु गृहस्थ हो न तुम? परन्तु सम्यग्दर्शन तिर्यच का और सिद्ध का सम्यग्दर्शन तो समान है। समझ में आया? आहाहा! तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन में। आहाहा! वह सद्भावना हुई। आहाहा! वह पर्याय है। वह सद्भावना, वह मोक्ष का मार्ग है। वह मोक्ष का मार्ग अखण्ड ज्ञायकभाव की एकाग्रता से उत्पन्न होता है। समझ में आया?

तीर्थकरदेव त्रिलोकनाथ की वाणी आवे, बापू! वह कैसी होगी, भाई! आहाहा! छह खण्ड के चक्रवती और इन्द्र जिनके निकट सुनने कुत्ती के बच्चे—पिल्ले की भाँति बैठे। गलुडिया को क्या कहते हैं? पिल्ला-पिल्ला। आहाहा! और बाघ तथा सिंह जंगल में से चले आते हैं। सिंह, केशरी सिंह और बाघ और काले नाग, २५-२५ हाथ के लम्बे काले नाग जंगल में से प्रभु की वाणी सुनने के लिये चले आवें। आहाहा! बापू! वह वाणी कैसी होगी! जो वाणी सर्प बैठा हो और साथ में चूहा हो। परन्तु नजर भी नहीं, खबर भी नहीं कि यह चूहा है या नहीं। इतनी सुनने में एकाग्रता होती है

उसकी। बिल्ली और सिंह साथ में बैठे हों। बिल्ली को खबर नहीं कि यह सिंह है, सिंह को खबर नहीं कि यह बिल्ली मुझसे डरती है। ... है। ऐसी सभा करोड़ों मनुष्य, करोड़ों तिर्यच, करोड़ों देव। आहाहा! नारकी तो आ सकते नहीं। तिर्यच, मनुष्य और देव। आहाहा! वह वाणी यह है।

कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी महत्ता और माहात्म्य की तुझे खबर नहीं। तेरी महत्ता इतनी है कि सिद्ध की पर्याय भी उसके सामने किसी गिनती में नहीं। ऐसी अन्दर भगवान चित्शक्तिसम्पन्न भगवान महान महत्ता, महान महिमा, महान... आहाहा! ऐसी चीज़ में जिसने दृष्टि की, उसकी जिसने भावना प्रगट की, आहाहा! वह सद्भावनावाला आत्मा। देखो, वाला तो कहा यहाँ।

(अर्थात् - 'मैं अखण्डज्ञान हूँ'—ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है, वह आत्मा)... आहाहा! सम्यग्दृष्टि तो उसे कहते हैं चौथे गुणस्थान में... आहाहा! अभी चौथा, हों! पाँचवें की तो कहीं दूसरी बात। जिसे निरन्तर सच्ची भावना वर्तती है। आहाहा! उसे भेदज्ञान करना पड़ता नहीं। करने का यह है। त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध प्रभु का आश्रय लेना, वह एक ही बात है। बाकी पर्याय है, राग है, हो, है, परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। जिसका आश्रय करना है, वह तो त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु है। उसका आश्रय करने से जो भावना उत्पन्न हुई, उस सद्भावनावाला आत्मा घोर विकल्प को नहीं पाता,... आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, वह भी घोर संसार है। आहाहा! समकिति अन्दर भावना में अन्दर में निरन्तर हैं। भले विकल्प हो, परन्तु वह तो निरन्तर अखण्ड भावनावाला है। आहाहा! समझ में आया? सतत् रूप से अखण्डानन्द प्रभु है तो उसकी भावना तो निरन्तर चित्त में चलती है, आहाहा! उसे घोर संसार के कारण विकल्प नहीं होता, विकल्प को प्राप्त नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहा? विकल्प होते हैं, परन्तु विकल्प को प्राप्त नहीं होता। उसका ज्ञाता-दृष्टा रहकर अपनी भावना में... रहता है। आहाहा! अरे! साधारण लोगों ने तो सुना न हो और हम धर्मी हो गये। अरेरे! अनन्त काल से इसने अपना बिगाड़ा है। सुधारने का रास्ता इसके स्थान में मिले, तो दरकार नहीं। आहाहा!

संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता,... वह विकल्प आता है तो भी स्वभाव की एकाग्रता की भावना में विकल्प की एकता उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा! किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ,... वह सद्भावना है यह। अन्दर की वस्तु के ऊपर निर्विकल्प समाधि की भावना। आहाहा! निर्विकल्प समाधि शान्ति वीतरागता, निर्विकल्प वीतरागता को प्राप्त करता हुआ। आहाहा! पर-परिणति से दूर;... यह परिणति रही। अन्तर द्रव्यसन्मुख होकर सद्भावना हुई, वह निर्विकल्प समाधिरूपी पर्याय हुई। समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! आहाहा! उस परपरिणति से दूर।... आहाहा! घोर विकल्प को नहीं पाता,... आहाहा! नहीं पाता। किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ, पर-परिणति से दूर;... परपरिणति है सही, परन्तु दूर है। भगवान के समीप और परपरिणति से दूर है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें! आहाहा! अरे! सुनने को मिलती नहीं, उसे कब विचार में लेकर अन्दर में रखे? समझ में आया? आहाहा!

निर्विकल्प शान्ति को—वीतरागता को प्राप्त करता हुआ परपरिणति से दूर... आहाहा! विकल्प की परिणति जो घोर संसार का कारण है, उससे दूर परिणति अन्दर में है। आहाहा! स्वभाव के सन्मुख और उसकी समीपता की परिणति है और विकल्प की परिणति से दूर परिणति है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यहाँ तो लोगों को ऐसा (लगे) कि यह तो एकान्त निश्चय... निश्चय... निश्चय। व्यवहार से हो तो अनेकान्त हो, ऐसा (वे) कहते हैं। व्यवहार हो, परन्तु उससे होता है, ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। आहाहा! व्यवहार है। सम्यग्दर्शन में एकाग्र हुआ, निर्विकल्प दृष्टि परिणति हुई तो उसमें विकल्प है, परन्तु विकल्प की एकता को पाता नहीं, उससे दूर परिणति है। परपरिणति से दूर परिणति है। आहाहा! ऐसा मार्ग!

पाठ ऐसा है, संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता, किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ,... निर्विकल्प परिणति कहो या निर्विकल्प समाधि कहो। वह पर-परिणति से दूर;... आहाहा! ऐसा गजब मार्ग! अनुपम, अनघ चिन्मात्र को... अनुपम—जिसकी कोई उपमा नहीं, ऐसा नाथ प्रभु अन्दर। आहाहा! जैसे बर्फ की ५०-५० मण की शिला होती है मुम्बई में। बर्फ की शीतल.... शीतल.... शीतल.... शीतल.... शीतल.... ५०-५० मण की (शिला)। ऐसी बहुत शिला हम तो बहुत बार देखते हैं न!

इसी प्रकार यह भगवान शीतल शान्ति अविकारी शान्ति का पिण्ड है। आहाहा! समाधि कही न? वह समाधि आयी कहाँ से? अविकारी शान्ति उसमें है, उसमें से समाधि आयी है। आहाहा! समझ में आया? शान्ति... शान्ति... शान्ति... अविकारी परिणाम। आहाहा! उस शान्ति के कारण **समाधि को प्राप्त करता हुआ,...** ऐसा। समाधि को प्राप्त करता हुआ, विकल्प को प्राप्त करता हुआ नहीं। आहाहा! **पर-परिणति से दूर; अनुपम, अनघ चिन्मात्र को...** आहाहा! अनघ है न? **दोषरहित; निष्पाप; मलरहित।** वास्तव में तो अनघ अर्थात् पुण्य और पाप दोनों पाप है। आहाहा! उनसे रहित। अनघ—अघ अर्थात् पुण्य और पाप। शुभ-अशुभ। आहाहा!

यह तो कहा न योगीन्द्रदेव में, 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' योगीन्द्रदेव का दोहा है। दिगम्बर सन्त। 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन तो पुण्य को पाप कहे।' अनघ में पाप और पुण्य दोनों आये। आहाहा! अनघ अर्थात् पुण्य और पाप के अघ से रहित। अनघ है न? **अनुपम, अनघ चिन्मात्र को (चैतन्यमात्र आत्मा को) प्राप्त होता है।** अर्थात् मोक्ष को। पूर्ण दशा को। इस भावना से पूर्ण दशा को—सिद्धपद को पाता है। आहाहा! एक कलश में कितना रखा है! ऐसी बात कहाँ है, बापू? दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं। आहाहा! इससे दूसरे को दुःख लगे। आहाहा!

यह तो पद्मनन्दिपंचविंशति में कहा है। पद्मनन्दि मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, एकाध भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। यह ब्रह्मचर्य का रूप वर्णन किया। ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य। शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह ब्रह्मचर्य नहीं। ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें चरना, रमना, वह ब्रह्मचर्य। उसकी बहुत व्याख्या की। पद्मनन्दिपंचविंशति का २६वाँ अधिकार। नाम पद्मनन्दिपंचविंशति है। २६वाँ अधिकार ब्रह्मचर्य का है। बहुत अधिकार लेने के पश्चात् मुनिराज कहते हैं... आहाहा! हे युवकों! बाहर के विषय के रस के प्रेमी! यह बात तुमको न रुचे तो माफ करना। हमसे क्या आशा रखोगे? आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। ऐई! धन्नालालजी! तुझे बात कठोर लगे, प्रभु! तुझे स्त्री देखकर रस आवे और यह विषय में रस (आवे), उसमें मैं ऐसा कहता हूँ कि वह तो पाप है, अधर्म है और अन्तर के आनन्द में, ब्रह्म अर्थात् आनन्द में चरना

अर्थात् रमना, वह ब्रह्मचर्य है। यह शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह भी ब्रह्मचर्य नहीं, वह भी एक शुभभाव है। आहाहा! वह तो अनन्त बार ऐसा शरीर से ब्रह्मचर्य पालन किया, परन्तु ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में चरना, रमना, वह ब्रह्मचर्य है। प्रभु! तूने कभी किया नहीं। तो जिसे यह विषय का रस है, (ऐसे) युवकों! ऐसा कहा है। हे युवकों! यह मेरी बात तुमको न सुहाये, न रुचे तो मैं तो मुनि हूँ, माफ करना। हमारे पास क्या हो? आहाहा!

मुमुक्षु : माफी माँगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान छोड़ दिया। ऐसा कहते हैं कि मैं ऐसा कहता हूँ, वह तुमको न रुचे, इसलिए माफ करना, प्रभु! क्या कहें? बापू! हमारे पास तो यह है। आहाहा! समझ में आया? हलवाई की दुकान में क्या अफीम मिलेगी? कंदोई समझे? क्या कहते हैं? हलवाई। वह मावा है। वहाँ मावा मिलता है। तो अफीम का मावा वहाँ मिलेगा? दूध का मावा मिले। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ मुनिराज ऐसा कहते हैं, प्रभु! हमारे पास तो आनन्द के मावा की बात है। ब्रह्मचर्य की बात है, प्रभु! तुझे न रुचे, न सुहावे तो माफ करना। हमारे पास तू लेने आया तो हमारे पास दूसरा है नहीं। राग तो जहर है। अररर! पंच महाव्रत के परिणाम जहर है। आहाहा! पंच महाव्रत में चौथा व्रत आ गया या नहीं? चौथा व्रत आया या नहीं पाँच में? यह जहर। व्रत-व्रत, चौथा, वह राग, वह राग है।

मुमुक्षु : ब्रह्मचर्य का तो उपदेश देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इस ब्रह्मचर्य का उपदेश, वह (बाहर का) नहीं। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप, ज्ञान और आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसकी दृष्टि करके ध्येय बनाकर उसमें रमना, आनन्द का भोजन करना... आहाहा! उसका नाम ब्रह्मचर्य है। वह ब्रह्मचर्य मुक्ति का कारण है। बाकी शरीर से स्त्री सेवन नहीं किया, बाल ब्रह्मचारी है, इसलिए सच्चा ब्रह्मचर्य है, (ऐसा माने परन्तु) वह सच्चा ब्रह्मचर्य नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार से तो ब्रह्मचर्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से भी नहीं उसे। व्यवहाराभास कहा जाता है। निश्चय हो तो व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आनन्द में रमना हो तो पंच महाव्रत के परिणाम में चौथे व्रत को राग कहा जाता है, व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! अरेरे! गर्व उतर जाये ऐसा है। यह मैंने किया और यह मैंने किया। आहाहा! प्रभु! क्या किया तूने? जहर पिया। राग किया और यह किया, वह तो जहर पिया, प्रभु! अमृत के सागर में थोड़ा भी निर्विकल्प अमृत तूने पिया नहीं। आहाहा!

पर-परिणति से दूर; अनुपम, अनघ चिन्मात्र को (चैतन्यमात्र आत्मा को) प्राप्त होता है। अकेला आत्मा ज्ञानमात्र अखण्ड ज्ञानमात्र की सद्भावना से घोर विकल्प की पर्याय को नहीं पाता हुआ, चिन्मात्र पर्याय को पूर्ण आत्मा को पाता है। आहाहा! होता है पर्याय को प्राप्त, द्रव्य तो द्रव्य है। वह सद्भावना से पूर्ण पर्याय को प्राप्त होता है। आहाहा!

दूसरा श्लोक, मुनिराज का है।

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं,
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चिताङ्घ्रेः ।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वान्तविध्वन्सदक्षं,
एते सन्तो भवाब्धेरपरतटममी यान्ति सच्छीलपोताः ॥६१॥

आहाहा! क्या कहते हैं? तीन लोक के नाथ तीर्थकर भगवान सर्वज्ञ परमात्मा, जिनकी भक्ति से नमित देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला... इन्द्र जिन्हें नमते हैं तो रत्नमाला ऐसे नमते हैं तो रत्नमाला उनके चरण में नमती है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! इन्द्र एकावतारी, एकभवतारी, सौधर्म इन्द्र एक भवतारी, एक भव के पश्चात् मोक्ष जानेवाले हैं मनुष्य होकर। उनकी इन्द्राणी भी एक भव के पश्चात् मोक्ष जायेगी। आहाहा! वह जब प्रभु को वन्दन करते हैं तो कहते हैं, भक्ति से नमित... ऐसा है, हों! ऐसे नम गये, ऐसा नहीं। भक्ति से नमित देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला... ऊपर जो मुकुट है, उसमें रत्न की माला लटकती है। आहाहा! उस रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों

को प्रगटरूप से पूजते हैं— उस रत्नमाला से प्रभु को पूजते हैं अर्थात् नमते हैं। नमते हैं, वह पूजते हैं।

ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा... भगवान तीर्थाधिनाथ द्वारा... यह सन्त... आहाहा! मुनि की मुख्यता से बात की है। सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक... भगवान का यह उपदेश है। आहाहा! राग करना और राग को भोगना, वह भगवान का उपदेश है नहीं। आहाहा! समझ में आया? महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर,... आहाहा! वीतराग का यह उपदेश है। पुण्य करो और ऐसा होगा, यह उपदेश ही नहीं। आहाहा! दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर,... व्याख्या क्या की? उपदेश में क्या आता है? आहाहा! यह उपदेश। परमात्मा त्रिलोकनाथ को इन्द्र नमते हैं रत्नमाला (नमती है)। एक-एक रत्न की कीमत कितनी! आहाहा! यह भगवान का उपदेश क्या है? आहाहा! यह सन्त का उपदेश कैसा है?

दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर,... अर्थात् वीतराग पर्याय। आहाहा! वीतराग भगवान वीतरागी पर्याय प्रगट करने का कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि चारों ही अनुयोगों का सार... पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में चारों अनुयोग भगवान के श्रीमुख से निकले, परन्तु सार क्या? तात्पर्य क्या? वीतरागभाव। आहाहा! भगवान के उपदेश का तात्पर्य वीतरागता। आहाहा! यह आत्मावलोकन में गाथा है। मुनि मुहू... मुहू—बारम्बार वीतरागता का उपदेश देते हैं। ऐसा पाठ है। समझ में आया? तो भगवान का उपदेश यह है। आहाहा! ऐसा इस प्रकार का... इस प्रकार का क्या? दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का उपदेश... चतुर ऐसा उपदेश। आहाहा! राग करो और दया करते-करते धर्म होगा, व्यवहार करते-करते होगा, यह भगवान का उपदेश है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? बापू! यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा! तीर्थाधिनाथ महावीर परमात्मा का उपदेश क्या है?

जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक... जो जन्म का नाशक, अवतार लेना स्वर्गादि में,

उसका नाशक। आहाहा! जरा का नाशक। शरीर की (वृद्ध) अवस्था, मृत्यु का नाशक। देह छोड़कर दूसरा अवतार लेना, ऐसी मृत्यु का नाशक। आहाहा! जन्म और मृत्यु का नाशक, जरा (वृद्धावस्था) तो बीच में है। आहाहा! भव में जन्मना और भव का नाश होना, उससे रहित भगवान का उपदेश है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! **दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) पूर्व में कहा - ऐसा उपदेश....** परन्तु यह उपदेश ऐसा है, ऐसा समझकर। उस उपदेश में राग करना और राग से लाभ होगा, ऐसा उपदेश नहीं। तो ऐसा समझकर। आहाहा! वीतरागवाणी में से यह निकाला। वीतरागपना प्राप्त हो, यह निकालना। ऐसा समझण में यह लेना कि भगवान ने राग किया और राग से लाभ होगा, यह भगवान के उपदेश में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो ऐसा कहते हैं कि **दुष्ट पापसमूहरूपी...** यह पाप अर्थात् पुण्य-पाप दोनों। **अंधकार का ध्वंस करने में चतुर,...** भगवान का उपदेश। आहाहा! **ऐसा इस प्रकार का उपदेश...** जिसमें जन्म-जरा-मरण का और पाप का, पुण्य का नाश हो, ऐसा भगवान का उपदेश है। नाश हो और वीतरागता उत्पन्न हो, ऐसा भगवान का उपदेश है। ऐसी बात है। ऐसे भगवान के उपदेश को छोड़कर, ऐसा उपदेश देना कि व्रत करो, तपस्या करो, दान करो, दया करो। 'दान शील तप भावना धर्म के चार प्रकार।' श्वेताम्बर में बहुत चलता है यह। श्वेताम्बर में यह धर्म के चार प्रकार—दान, शील, तप, भावना। आता है न, यह तो सब खबर है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि भगवान का यह उपदेश ही नहीं। जिसमें पर को दान देना, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना। आहाहा! वह तो सब शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? वह शुभभाव... जन्म-मृत्यु का कारण तो उस अघ का नाश करने का भगवान का उपदेश है। आहाहा! तो पूरे सिद्धान्त में से वीतरागता उत्पन्न हो, यह निकालना। राग से लाभ होगा, यह छोड़ देना। समझ में आया? आहाहा! कहो, ज्ञानचन्दजी! यह तो मुनियों की भाषा है, अलौकिक है, बापू! आहाहा!

ऐसा इस प्रकार का उपदेश समझकर,... ऐसा लिया न वापस? ऐसा भगवान का उपदेश है, ऐसा समझकर। दूसरा उपदेश भगवान का नहीं। व्यवहार करने से तुझे निश्चय होगा, दया, दान, व्रत पालते-पालते तुझे समकित होगा, बहुत परीषह और

उपसर्ग सहन करते-करते तुझे (समकित होगा, यह भगवान का उपदेश नहीं)। एक आये थे। बुद्धिसागर साधु है वहाँ। यहाँ आये थे, लड़का पहला। एक-दो बार आया। फिर क्षुल्लक हो गया। वहाँ आया था। कैसा कहलाये गाँव झमकलाल का? कुरावड। हमारे ब्रह्मचारी हैं न झमकलालजी, उनका गाँव है कुरावड। वह आये थे। क्षुल्लक हो गये तो इतना अहंकार हो गया। बस! ऐसा करते-करते समकित हो जायेगा। ऐसा परीषह सहन करते-करते हो जायेगा। साधु है, परीषह सहन करते हैं तो समकित होगा। अरे! प्रभु! शान्त हो। फिर तो मस्तिष्क घूम गया था, ऐसा सुना था। मस्तिष्क घूम गया था, ऐसा सुना था। ऐसी अस्थिरता। जवान व्यक्ति है जवान। बहुत जवान है। आहाहा! इतने-इतने परीषह सहन करते हैं और तुम कहो कि समकित नहीं? साधु नहीं? अरे, प्रभु! सुन तो सही! आहाहा! वह सब पंच महाव्रत आदि का पालन, वह तो क्लेश है। राग है, वह तो क्लेश है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में है न, क्लेश। श्लोक है। आहाहा! प्रभु! कठिन मार्ग, भाई! आहाहा!

दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर, सत्शीलरूपी नौका द्वारा,... क्योंकि उपदेश में यह कहा है। सत्शीलरूपी नौका। अपनी शुद्धस्वरूप की परिणति निर्मल धारा, वह सत्शीलरूप नौका। सत्शीलरूपी नौका। सत् भगवान आत्मा की एकाग्रता, शुद्ध परिणति, वह सत्शीलरूपी नौका। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह सत्शीलरूपी नौका नहीं। आहाहा! सत्शीलरूपी नौका द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं। भवरूपी अब्धि-समुद्र। आहाहा! वह यह समाधि द्वारा और सत्शील की नौका द्वारा। नौका से समुद्र पार उतरते हैं... तो सत्शीलरूपी नौका द्वारा संसार समुद्र को पार करते हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नियमसार शास्त्र, मोक्ष का मार्ग बताया जाता है। मोक्ष अर्थात् आत्मा की अमृतमय पूर्णदशा, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की दशा। दशा अर्थात् अवस्था। उसे मोक्ष कहते हैं। ऐसे मोक्ष का मार्ग, ऐसी चीज़ को आश्रय कैसी ध्रुव चीज़, जो दृष्टि में लेनेयोग्य आत्मा कैसा है कि जिसे दृष्टि में लेने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और मोक्ष का मार्ग होगा? और उस मार्ग के पंथ में चलने से वह पूर्ण अमृत के आनन्दमूर्तिरूप दशा मोक्ष की हो, उसका इसमें वर्णन है। ४१ गाथा हुई। ४२।

चउगड़भवसंभमणं जाइजरामरणरोगसोगा य।

कुलजोणिजीवमगगणठाणा जीवस्स णो संति ॥४२ ॥

चतु-गति भ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग, शोक, जरा नहीं।

कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणा के स्थान नहिं ॥४२ ॥

भगवान आत्मा की दशा में यह सब भाव हैं। ऐसा भी साथ में कहते जाते हैं। उसकी दशाओं में उसकी यह योग्यतायें हैं। राग की, विकार की, चौरासी लाख योनि की। यह तो सुनते हैं न लोग? कि अनन्त काल से चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करता है। वह चौरासी लाख योनि अर्थात् उत्पत्ति के स्थान, उन सबका अनन्त बार परिभ्रमण किया, परन्तु वह चौरासी लाख के स्थान, इस चैतन्यद्रव्य ज्ञायकमूर्ति भगवान, जिसमें चौरासी लाख की योग्यता का निषेध करके अन्तर्मुख परम अमृत प्रभु आत्मा की दृष्टि से देखने पर उसमें यह चौरासी लाख के स्थान उसमें है नहीं। कहो, समझ में आया?

यह टीका - शुद्ध निश्चयनय से... भगवान आत्मा परमानन्द पवित्र, निर्मल, सम्यग्ज्ञान ऐसा जीव जो अन्तर में देखें तो समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं है... समस्त संसार की विकृत कार्य या विकार, उन सबका समुदाय नहीं, ऐसा इस गाथा में कहते हैं। द्रव्यकर्म का जड़कर्म, वह भगवान आत्मा अमृत का पिण्ड प्रभु, त्रिकाल अखण्डानन्द में वह जड़कर्म नहीं है। उसमें भावकर्म का स्वीकार न होने से,... ऐसी

* प्रवचन में बीच-बीच में शब्द बहुत कट रहे हैं, सभा में नहीं चलायें।

अखण्ड प्रभु चैतन्य मूर्ति का स्वीकार करने जाने पर जड़कर्म का स्वीकार वहाँ आत्मा में रहता नहीं। भगवान पूर्णानन्द प्रभु के अन्तर्मुख होकर स्वीकार करने जाने पर धर्मदृष्टि के स्थान में वह उसे भावकर्म अर्थात् पुण्य-पाप के विकार का स्वीकार नहीं रहता। समझ में आया ? समझ में आता है या नहीं इसमें ? कहो, रतिभाई ! यह दो लाईन ... है जरा। न समझ में आये, ऐसा कहाँ है ? ऐसा है। इस प्रकार... ऐसी बात है। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो गोकुलदासभाई ने कहा। ...के भाई ने कहा। समझ में आया इसमें ?

अरे ! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा जिनेन्द्र वीतरागदेव, जिनकी पूर्ण सम्पदा जिनकी दशा में प्रगट हुई। उन भगवान में वाणी द्वारा ऐसा आया, कहा—ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। कि हे आत्मा ! तेरी मूल चीज देखने पर निषेध निश्चय... रहे हुए स्वभावसन्मुख देखने पर, अखण्ड शुद्ध चैतन्य अमृत आनन्द का दल वह है। उसका स्वीकार करने जाने पर, उसमें निश्चय में... वह विकार का स्वीकार... उसके अन्दर है नहीं। चन्दुभाई ! ओहो ! और स्थिर नहीं होने से नारकी भी... गति चार है। नीचे नरकपना। वह भी उसमें स्वीकार में आता नहीं। क्योंकि द्रव्य जड़कर्म का विकार का स्वीकार त्रिकाल चैतन्य के आनन्द के अन्तर्मुख होकर स्वीकार करने से धर्मदृष्टि अर्थात् सम्यग्दृष्टि द्वारा सम्यक् सत्य दृष्टि द्वारा, सत्य दृष्टि द्वारा अन्तर में परम सत्य का स्वीकार करने जाने पर उसे नारकीपना और परिभ्रमण है नहीं। उसमें तिर्यच अर्थात् ढोर का परिभ्रमण भी उसमें नहीं, मनुष्य का परिभ्रमण उसमें नहीं और देव का परिभ्रमण, यह चार गति का परिभ्रमण नहीं।

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को... नित्य प्रभु शुद्ध पवित्र चिदानन्द ज्ञानानन्द जिसका रूप है अन्दर। एक क्षण में विकृत की अवस्था को छोड़कर त्रिकाल... खण्ड को आनन्द को देखे तो वह नित्य है, शुद्ध है, चिदानन्दरूप है। ऐसे कारणपरमात्मस्वरूप जीव को। यह कारणपरमात्मस्वरूप है कि जिसमें एकाकार होने से कार्यपरमात्मा के ... सकता है। भाषा ऐसी, वह इसमें कुछ ग्रीक-लेटिन (अटपटी) जैसी भाषा लगे लोगों को। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ? यह भगवान नित्य आत्मा में **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण के योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से...** विकार की दशा में त्रिकाल सम्यक्। सम्यक् सत्य दृष्टि में स्वीकार

जहाँ अन्तर पूर्णानन्द प्रभु के अन्दर में विकारी परिणति का अभाव होने से उसे जाति अर्थात् गम्य नहीं है। वह त्रिकाल स्वकाल की दृष्टि में गम्य नहीं है। वह जाति अर्थात् वहाँ जन्म लेना। जरा,... नहीं। यह शरीर की वृद्ध अवस्था, वह त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति में नहीं। उसका स्वीकार, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। उसे मरण,... नहीं। मरे कौन? भगवान् नित्य शुद्ध चिदानन्द मूर्ति सम्यग्दर्शन में स्वीकार में जहाँ आया, प्रतीति में आया, उसे तो मरण होता नहीं। त्रिकाल दृष्टि में मरण नहीं। उसे रोग,... नहीं, उसे शोक नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसी अन्तर चीज़ जो परम परमात्मस्वरूप निश्चय अपना आत्मा, यह उसका स्वीकार करना और उसका (ज्ञान) करना और उसमें रमणता करना, वह मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। यह नियमसार में वह चलता है।

और चतुर्गति (चार गति के) जीवों के... चार गति है। नारक, ढोर, मनुष्य और देव। उसमें कुल-कुल। कुल अर्थात्? यह कुल नहीं तुम्हारे अभी के। यह कुल अर्थात् जिस स्थान में उपजता है, उसे योनि कहते हैं और उसमें उपजे, उस शरीर की जाति में स्थिर हो, उसे कुल कहा जाता है। वह कुल योनि के भेद, जीव में नहीं हैं... भगवान् आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सत् परमानन्द मूर्ति का स्वीकार करने पर उसमें वह जैसे एक सूखा गोबर होता है न, गोबर। गोबर में कीड़े उपजे भिन्न-भिन्न जाति के। तो उनके शरीर में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की भिन्न-भिन्न जाति है, उसी प्रकार यह कुल की भिन्न जाति है, ऐसा कहा जाता है। वह कुल कहलाता है। यह कुल नहीं, हों... चन्दुभाई! जीव जिसकी... सूखे गोबर में ताजा गोबर हो, उसमें जीव मरकर कहीं से आकर उपजे, वह उपजी हुई वह... उत्पत्ति, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गोबर की जाति का उस कारण से वर्ते, उसे वह उत्पत्ति का स्थान, उस प्रकार का कहा जाता है। उसमें जीव उपजे और ... और एक क्षण पश्चात् उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श... और फिर दूसरा जीव उपजे वहाँ जीव की... कहलाती है। ऐसे-ऐसे योनि में उपजने के स्थान जीव के चौरासी लाख हैं। कहो, समझ में आया या नहीं? प्रवीणभाई! नहीं समझ में आया? यह बड़े को समझ में आये और तुमको न समझ में आये? न समझ में आये, ऐसा होगा? लोहे में समझ में आता होगा या नहीं वहाँ? वहाँ ऐसा कहते होंगे कि नहीं समझ में आता?

यह तो साधारण बात। लोग कहते हैं न चौरासी लाख में भटका। चौरासी

लाख... चौरासी... चौरासी लाख... समझ में आया ? बस हमारे ऐसा । कहो, समझ में आया ? ऐसा लोग नहीं कहते कि यह चौरासी लाख योनि में भटके ? यह चौरासी लाख क्या है, वह निर्णय किया है ? ...चौरासी लाख यह जीव है, वह तो त्रिकाल अनादि-अनन्त शुद्ध है । परन्तु उसके स्वरूप को भूलकर अज्ञान और मिथ्यात्व... श्रद्धा की और राग-द्वेष के विकल्प उत्पन्न करके वह जिस स्थान में उपजे, उस स्थान को योनि कहा जाता है । यह गोबर का कहा न ? इसी प्रकार बकरी का दूध हो । उस दूध में भी जीव उत्पन्न हो... में । उन दो की जाति की जो पहली वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की एकता हो, उसमें जीव... कहा जाता है । और ... जीव कहा जाता है । ऐसी-ऐसी वेदना जगत के अन्दर जीव को उपजने के चौरासी लाख स्थान हैं । चन्दुभाई ! पहला पहला आया । लो ! तब उसमें और चौरासी लाख... नहीं कहते तुम ? कि चौरासी लाख में भटके ? वह चौरासी लाख क्या है ?

मुमुक्षु : वह तो आपने कहा तो हमने कहा । हम समझे नहीं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया इसमें ? अनन्त-अनन्त काल से इसमें भटका चौरासी लाख अवतार । परन्तु यह क्या चीज़ है, यह ख्याल में तो लेना चाहिए इसे । यहाँ कहते हैं कि यह चौरासी लाख । एक मनुष्य की बात अपने करें । यदि मनुष्यों के बारह लाख करोड़ कुल और उसमें चौदह लाख योनियाँ हैं । समझ में आया ? अर्थात् क्या ? यह मनुष्य जीव है न । आत्मा तो आत्मा है । परन्तु ऐसा... परिणाम द्वारा मनुष्य की मनुष्य योनि में जब उपजता है, तब उस काल में उसकी माता के अन्दर गर्भाशय में उसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की जो जाति उस समय है, उसे एक काल... एक वीर्य की उत्पत्ति के स्थान उसे... कहा जाता है । वही माता दूसरे क्षण में और तीसरे क्षण में... एक के साथ एक होती है न । दो-दो, तीन-तीन, चार-चार । तो वही माता दूसरे क्षण में एक दूसरा हो । अभी अन्दर पेट में और उसके अन्दर वर्ण, गन्ध, रस बदले हैं, तब वह दूसरी योनि से दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा जाता है । समझ में आया ? यह सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कही हुई बात है ।

मुमुक्षु : तब तो बोला ही नहीं जाता कुछ ।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु बोला जाये नहीं... ऐसा कुछ कहा जाये । बात तो कुछ

समझनेयोग्य है। परन्तु यह बात तो सुनी नहीं तुमने कि चौरासी लाख में भटके ? तो वह चौरासी लाख क्या ?

मुमुक्षु : वह नहीं समझे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं कि जैसे इस माता के गर्भाशय के अन्दर वह चमड़ी है न अन्दर हड्डियाँ। वह ... है, उसमें माँस के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की आकृतियाँ हैं। वर्ण में अन्तर, गन्ध में अन्तर, रस में अन्तर, स्पर्श में अन्तर। वह अन्तर, दो अन्तर, तीन अन्तर, चार अन्तर। ऐसे-ऐसे अंश का गर्भाशय में चौरासी लाख योनि में उत्पन्न होता है। सूक्ष्म बातें हैं। इतनी मनुष्य में उत्पत्ति स्थान चौदह लाख भगवान ने देखे और कहे हैं। मोहनलालभाई! कहो, सुना है या नहीं यह चौरासी लाख का ? ...यह ऐसा नहीं। माता के नहीं। अन्दर गर्भाशय के अन्दर उसमें स्थान... परमाणु जो... हैं, उनके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श की योग्यता काल समान मध्यस्थ। उसकी एक योनि रहित बदले, वह करते-करते भिन्न-भिन्न मनुष्य ... स्थान। चौदह लाख उत्पत्ति होती है। पहले अनन्त बार जीव उपजा है। तो वह योनि स्थान की त्रिकाल वस्तु... उसमें उत्पत्ति स्थान का अभाव है। उसमें जब... उसकी दृष्टि करनेवाला भी चौरासी लाख की उत्पत्ति का अभाव हो जाता है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अपने चिदानन्द अमृत के आनन्दकन्द में झूलकर, यह पुण्य-पाप के भाव में रचा-पचा रहे और... मिले ऐसी मिथ्यात्व भ्रमणा के कारण इस मनुष्य योनि में चौदह लाख... है। उसमें एक बार नहीं, परन्तु अनन्त बार ऊपज चुका है। परन्तु अन्दर चिदानन्द मूर्ति का स्वीकार करने पर... आनन्द हो, ऐसा सम्यग्दर्शन में, सत्य दृष्टि में स्वीकार करने पर उस वस्तु में... और दृष्टि करनेवाले को चौरासी लाख में... रस नहीं। समझ में आया ? पहले ... किये हैं। ... अर्थात् ? वह की वह माता के गर्भ में आया हुआ पुत्र उसकी... होती है और दूसरा... वह है यह जाति दूसरी बात है। कुल अर्थात् ? योनि की कही। कुल अर्थात् उसमें आया हुआ मनुष्य, उसके शरीर के वर्ण, गन्ध, रस में अन्तर, वह के वह पुत्र का... दूसरा पुत्र आया एक मिनट, दो मिनट तो उसके वर्ण / रंग, गन्ध, स्पर्श का उसका अपना अन्तर शरीर में। उसके वही। ऐसे-ऐसे एक योनि में साढ़े सत्तावन लाख कुल शरीर में हैं।

मुमुक्षु : अपने ऐसी बात तो करते ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई आये, उसमें यह बात आयी दूसरे प्रकार से अभी। कहो, समझ में आया? रतिभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? ऐई! रतिभाई! यह लोहे के व्यापारी। तीन ... कहो, समझ में आया इसमें? क्या कहे? प्रभु! तुझे बन गया है, उसकी बात करते हैं और तेरे अन्तर स्वरूप में नहीं, यह बात है। कि जहाँ-जहाँ जिस स्थान में भिन्न-भिन्न स्थान, वह गोबर का... रोटियाँ बिगड़ जाये उसमें जीव देखे या नहीं? रोटी बिगड़ी हो, ...सब्जी बिगड़ी हो, भात बिगड़े हों, खिचड़ी... उसी में और उसी में। निरर्थक हो जाता है अन्दर। ... वह तुम्हारे लड्डू कैसे कहलाते हैं? बूँदी के-बूँदी के। मोतीचूर... हो जाये। वह उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श की जाति, उसे योनि कहते हैं। उसमें उपजे हुए जीव के शरीर के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की जाति, उसे कुल कहते हैं। ऐसे उत्पत्तिस्थान चौरासी लाख हैं और उत्पन्न हुए शरीर की जाति के एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ घर है। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा एक समय में कहा हुआ शुद्ध चिदानन्द मूर्ति है—ऐसी सम्यग्दृष्टि, धर्मदृष्टि, धर्म... उसकी धर्मदृष्टि प्रगट करने से, उस धर्म की त्रिकाल भगवान आत्मा ... उसे चौरासी लाख योनि नहीं और एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ कुल नहीं और ऐसा जो भान करे, उसे एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ शरीर के भेद से उसे भान करना पड़े नहीं। समझ में आया?

यह कहते हैं, देखो, (चार गति के) जीवों के कुल योनि के भेद, जीव में नहीं हैं — ऐसा कहा जाता है। बात है। यह लम्बी बात है सब। पृथ्वी के बाईस लाख करोड़, यह सब लम्बी बात है। है, एक सौ साढ़े सत्तानवे लाख करोड़ कुल हैं। ऐसे कुल में अनन्त बार, एक बार नहीं, एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ शरीर की जाति के भिन्न-भिन्न प्रकार। उसमें एक-एक में अनन्त बार उपज चुका है। अर्थात् एक में अर्थात् शरीर की जाति ऐसी अनन्त बार हो गयी है।

अब ऐसा कहे, योनि है। पृथ्वी एकेन्द्रिय जीव है उसकी उत्पत्ति... लम्बी बात है। अपने संक्षिप्त करके जरा अन्तिम लो। मनुष्यों के चौदह लाख योनि मुख हैं। अन्त में। यह सब होकर चौरासी लाख योनियाँ हैं। है इसमें? ... समझ में आया? मनुष्य में चौदह लाख प्रकार उत्पन्न होने के स्थान भिन्न-भिन्न, रंग, गन्ध, स्पर्श की जाति के। ऐसे

सब चौरासी लाख के भेद एकेन्द्रिय से लेकर नरक, मनुष्य, पशु और देव इनके सब... तो चौरासी लाख उपजने के स्थान होते हैं। वे सब जीव हैं या नहीं? भगवान चिदानन्द मूर्ति परमानन्द की पर्यायदृष्टि वर्तमान सम्यक् और त्रिकाली स्वभावमात्र... स्वीकार करे तो उसमें ये सब.... लेकर है। उसे तो परमाणु... त्याग आवे उसे धर्म कहा जाता है। समझ में आया? घर में... कितने महीने जीये थे और मरे... ..क्या कहलाता है वह? अगासी हो गयी। वह तो सरिया डाले वह सब नये सरिया... पुराने सरिया.... २००-५०० लाये हैं ऐसे तुम... समझ में आया? इतने नये लाये थे, यह पाँच हजार थे, पाँच सौ लाये। ...छूटे सब खबर हो, चन्दुभाई!

मुमुक्षु : पैसा दे तो खबर ही हो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा दे तो खबर हो। परन्तु यह पहले से आत्मा... और एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ शरीर की जाति को धारण करे ऐसे। धारण करे... वह की वह... पूरी की नहीं। ऐसे भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने जो समय-समय में जगत में उत्पत्ति स्थान, उसकी... कहते हैं कि वह तुझमें है नहीं। वह आत्मा के अन्दर जाकर नजर कर, प्रतीति कर। मोक्षमार्ग कहा जाता है न? यह चौरासी के योनि के स्थान से मोक्षमार्ग नहीं होता, ऐसा कहते हैं। एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ शरीर की जाति से मोक्षमार्ग नहीं होता। शरीर की जाति से नहीं होता। अन्दर चिदानन्द भगवान परमानन्द की मूर्ति, उसकी श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर, उसमें लीनता, वह दर्शन-ज्ञान और चारित्र, वह मोक्ष का मार्ग और उसमें से आत्मा की मुक्ति प्राप्त होगी। दूसरे से प्राप्त होगी नहीं। बाकी चौदह भेद जीव के हैं जरा। चेतन।

अन्तर स्वरूप देखने पर अब जरा चौदह मार्गणा एक बड़ा बोल थोड़ा है, ले लेते हैं। नरकगति अन्तिम है न? यह गति,... यह चार गति, वह त्रिकाल तत्त्व के ...वस्तुस्वरूप देखने पर... तो चार गति के आश्रय से मोक्ष का मार्ग प्रगट होता नहीं। यह ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! कि भाई अपने को मनुष्यगति मिली, इसलिए गति के आश्रय से धर्म होगा, मोक्षमार्ग होगा। नहीं, किसने कहा तुझे? गति तो वर्तमान विकृतदशा है। शरीर की, हों! अन्दर उदयभाव मनुष्य... गति अन्दर-अन्दर। वह तो जड़, मिट्टी है। अन्दर मनुष्य होने की योग्यतावाली जो गति की योग्यता, उस गति की योग्यता से आत्मा को

सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म नहीं होता। वह गति त्रिकाल चैतन्य भगवान में नहीं, इसलिए उसे त्रिकाल ज्ञानानन्द ध्रुव स्वभाव को पकड़ने पर उसे गति उसमें नहीं और उसका अनुभव करने पर अन्यगति प्राप्त नहीं होती। उसमें अनुभव करने पर मोक्षमार्ग की दशा प्राप्त होती है। ओहोहो!

इन्द्रिय... यह पाँच इन्द्रियाँ। यह जड़ नहीं। यह तो मिट्टी है। अन्दर खण्ड-खण्ड इन्द्रिय भाव। उस ज्ञान के खण्ड द्वारा, उस विषय द्वारा, वह भी पाँच इन्द्रिय खण्ड-खण्ड अन्दर। यह ... तो मिट्टी अन्दर जानने का... आत्म प्रदेश में शब्द द्वारा न जानते, रूप द्वारा न जानते, गन्ध द्वारा और रस द्वारा... उस योग्यता में ज्ञान के खण्ड-खण्ड... ऐसी जो इन्द्रिय, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन धर्म नहीं। क्योंकि वह इन्द्रियभाव त्रिकाल... है नहीं। गजब बातें, भाई! कहो, भानुभाई! यह सब सूक्ष्म समझना पड़ेगा वहाँ। पैसे आ गये तो वहाँ चैन न ले उसमें से। सच्ची बात है या नहीं? ऐई! इन्द्रिय। पाँच इन्द्रिय हों, इन इन्द्रिय से तो धर्म नहीं होता, भाव इन्द्रिय खण्ड-खण्ड एक ज्ञान का अंश वह रूप को जाने, गन्ध को जाने, उसमें ... के आश्रय से आत्मा का सम्यग्दर्शन का धर्म नहीं होता। इसलिए वह इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड में... वह त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान आत्मा के अन्दर उनका अभाव है।

काय... काय में प्रकाश... यह जरा। वह भी... काया का प्रकाश चिदानन्द स्वरूप में नहीं। उसे काया के आश्रय से धर्म नहीं होता। शरीर के आश्रय से अर्थात् अन्दर भाव... हों अन्दर। उसके आश्रय से धर्म नहीं होता। धर्म तो अन्दर में पूर्णानन्द के ऊपर नजर करने से, अन्तर में स्वभाव का माहात्म्य और महिमा आने पर दृष्टि वहाँ लगावे, उसकी दशा में, उसे धर्म होता है। ओहोहो! कहो, समझ में आया या नहीं? रतिभाई! सब समझना पड़ेगा, हों! यह सब ... है कुछ? क्या होगा? चन्दुभाई!

मुमुक्षु : कोई.... दे नहीं दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? पहले... ढेर ऐसा हो। ऐसा.... कभी लो, मनुभाई!

मुमुक्षु :मिले या न मिले उसे क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ को मिले उसमें इसे क्या हो?

भगवान आत्मा, आहाहा! जिसमें काया की योग्यता का भाव जिसकी दशा में

है। दशा में है, पर्याय में व्यवहारनय का विषय, उसमें है, वह त्रिकाल वस्तु में नहीं। ऐसी चैतन्य की अन्तर ध्रुव स्वभाव की दृष्टि करना, उसे काया उसमें है नहीं, वह काया उसे अवरोधक नहीं। समझ में आया? यह तो... किस प्रकार की क्रिया! परमसत्ता स्वभाव भगवान आत्मा अस्तित्व ज्ञायकमूर्ति की अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और लीनता, बस एक ही आत्मा की शान्ति का उपाय और मोक्ष का मार्ग है। यह काया के ... भाव होता नहीं। यह मोक्षमार्ग की बात चलती है। काया का... होता नहीं। ऐसे एक कम्पन्न होता है प्रदेश में। प्रदेश हैं, वे जरा कम्पते हैं। वह नये परमाणु आने का निमित्त। ऐसे... प्रकार हैं पन्द्रह लम्बे। वे आत्मा के त्रिकाल स्वभाव में नहीं और उनके आश्रय से धर्म होता नहीं। गजब बात!

योग.... है कम्पन्न। उसके आश्रय से धर्म नहीं होता और वह त्रिकाल द्रव्य का... नहीं। समझ में आया? यह तो मोक्षमार्ग है न, तो जरा सूक्ष्म बात। परन्तु निवृत्ति नहीं न लोगों को, यह समझना क्या? समझण करना? 'ज्ञान समान अन्य न जग में सुख को कारण' भाई! आता है न कुछ ऐसा। जगत में... ज्ञान अमृतस्वरूप का सच्चा ज्ञान-समान जगत में कोई सुख है नहीं। कोटि विचार करे... कि यह क्या? ...नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह कोटि उपाय करके भी यह भेदज्ञान कर... हाँ यह। कोटि उपाय करके भी भेदज्ञान... शब्द आता है। ...भेद करके अन्दर का भेदज्ञान कर, वह तुझे शान्ति का कारण है। परन्तु अभी चीज़ क्या है और किसमें नहीं? किस प्रकार वह वस्तु है? इसके ख्याल में, समझण में... नहीं, उसे यह समझने में आवे नहीं। इसलिए पहले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सन्तों ने खुल्ली करके बात रखी है। वेद नहीं। भगवान आत्मा में स्त्री, पुरुष, नपुंसक का जीव नहीं। उसकी दशा में है, हालत में है... आहाहा! और कोई ऐसा कहे कि पुरुषलिंग हो, वह मोक्ष को पावे। नहीं, नहीं। ...दशा से मोक्ष को पाता नहीं। पुरुषवेद यह शरीर का, हों! यह तो मिट्टी है, यह तो हड्डियाँ हैं आकार सब। पुरुषवेद के लिंग से यह तो जड़ के... वह कहीं... नहीं। उसकी दशा में विकार की वासना स्त्री के प्रति की जाति की... वासना हो, उसे पुरुषवेद कहा जाता है। वह स्त्री के अन्दर के परिणाम में पुरुष के प्रति विषयवासना... हो, उसे स्त्रीवेद कहा

जाता है और नपुंसक, वह स्त्री और पुरुष के प्रति दोनों जिसे विषयवासना की वृत्ति अन्दर हो, उसे नपुंसक... कहा जाता है। ये तीन (वेद) उसकी दशा में उसके हैं। इन तीन दशा के आश्रय से धर्म नहीं होता, परन्तु यह तीन यह दशा त्रिकाल द्रव्य के अन्दर नहीं। आहाहा! कितने प्रकार इसमें?

मुमुक्षु : बहुत विचार देकर समझना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : ...रुपये ... हों। दोनों भाई समेटकर चले आये। बाबूभाई! ... चले आये हैं। इन्हें लाखों के अपने नहीं कहा। अपने नहीं कहा। अपने तो ... अन्तर होगा। ७६ में वहाँ। कहो, समझ में आया? ... तो बहुत वर्ष की ... कहनी है। राजकोट के दीक्षित ... परिवर्तन ... हुए। उतरे थे वहाँ बेचरभाई के यहाँ। ... है न मकान? यह ... ६८ में, खबर है? (संवत्) १९६८ के वर्ष की बात है। यहाँ तो बहुत वर्ष से ... सब जानते हैं न।

कहते हैं, वह वेद का—विषय-वासना का भाव दशा में है। कोई निषेध कर दे ... नहीं ... विकार की दशा में वह है। वह विकार है, वह धर्म नहीं और विकार के आश्रय से, पुरुष के आश्रय से धर्म नहीं होता। यह ... भगवान त्रिकाल चिदानन्द मूर्ति के अन्दर ... है ... ऐसे आत्मा के आश्रय से पर्याय में मोक्षमार्ग प्रगट होता नहीं। कषाय... शुभ-अशुभभाव। पुण्य और पाप, दया और दान, काम और क्रोध, शुभाशुभभाव इसकी दशा में है, इसकी वर्तमान दशा में है। परन्तु त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति ध्रुव प्रभु जिसका—सम्यग्दर्शन का विषय और ध्येय, उस आत्मा में कषाय है नहीं। कषाय के आश्रय से धर्म नहीं हो सकता।

ज्ञान... ज्ञान आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञान वह त्रिकाल स्वभाव... है। उसकी हालतों में उसके ... पाँच प्रकार ज्ञान के हैं। ... समझ में आया? वह ज्ञान वस्तु आत्मा है वस्तु। उसका ज्ञानस्वभाव प्रकाश स्वभाव है। उस प्रकाश स्वभाव की वर्तमान दशा में पाँच प्रकार हैं। ... हों! एक मति अज्ञान, एक श्रुत अज्ञान, एक (विभंग अवधि) अज्ञान। एक मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, यह ज्ञान की दशाएँ हैं। यह दशाएँ तेरी दशा में है। परन्तु दशा के आश्रय से धर्मदशा प्रगट नहीं होती। दशावान जो त्रिकाल ज्ञानमूर्ति प्रभु को भूलकर उसके आश्रय से जीव को सम्यक् मोक्षमार्ग होता है। आहाहा! कहो,

... यह भेद है हों! मूल तो पाँच पर्यायों सम्यग्ज्ञान की और तीन है वह (अज्ञान) उसका प्रकार है उसकी दशा की हालतों में। विकास होते-होते कम-ज्यादा है न? यह सब दशाओं-हालतों में अन्तर है। वस्तु त्रिकाल एकरूप चैतन्य... देखने से सम्यक् श्रद्धा ... चैतन्य को देखने से उसमें यह भेद अभेद में है नहीं। भेद के आश्रय से धर्म नहीं होता। भेद है तो... त्रिकाल द्रव्य के अन्दर में है कि जो ध्रुव के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य होता है। बात ही दूसरी सब प्रकार की।

यह संयम.... संयम के प्रकार हैं। संयमासंयम, असंयम... सात प्रकार हैं। परन्तु वह संयम की दशा है, आत्मा ... सकी असंयम अर्थात् ... रागभाग का अत्रत का भाग और फिर ... शान्त स्थिर होकर, स्वभाव में अस्थिर, विषय में संयमभाव। संयम अर्थात् स्वरूप की स्थिरता कुछ विशेष हुई। इससे संयम के भी पाँच प्रकार हैं। समता, स्वरूप... सूक्ष्म साम्प्रदाय ऐसे बहुत भेद हैं। वह संयम अवस्था में है। उस संयम के आश्रय से धर्म नहीं होता। भारी सूक्ष्म, हों! पहले से यह अभ्यास करे तो यह सब समझ में आये, ऐसा है। पश्चात् भी समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये ऐसा नहीं। मनुष्य... कुछ? पक्के घड़े में कांठा न चढ़े। यह तो पक्के घड़े में कांठा चढ़ जाये। भानुभाई! ... पक्का घड़ा हो गया। भाई! घड़ा अब पक्का नहीं। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। उसमें ... पक्के घड़े में... नहीं न। उसमें पक्के घड़े में कांठा न चढ़े। ... है मिट्टी का। चिदानन्द भगवान आत्मा के भान बिना के बालक हैं। उसका भान करनेवाला वह ... धर्मस्थान में वर्तता है और उस मूल धर्मस्थान के भान द्वारा ... परमात्मदशा पावे, उसे वृद्ध कहा जाता है, वह धर्मदशा पावे, उसे युवक कहा जाता है। यह धर्म के समझे बिना के बालक कहे जाते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? कहते हैं कि संयम के भेद, वह अन्तरतत्त्व के अन्दर पर्याय पर्याय का भेद है अवस्थायी में। वस्तु में नहीं।

यह दर्शन.... चक्षु-अचक्षु, अवधि, केवलदर्शन के (भेद से) चार प्रकार हैं। (दर्शन) उपयोग के। उसकी दशा में है। उस दशा के आश्रय से धर्म नहीं होता, वह दशा त्रिकाल एकरूप में नहीं। गजब... परन्तु इसमें, भाई! वह तो एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रियाँ, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया... जाओ। ... जीविया वहोरविया... यहाँ कहते हैं कि आत्मा को जब तक तू वर्तमान दशा और राग जितना मान, वह जीविया वहोरविया

किया है। तेरे आत्मा के... जीवन को तूने लूट लिया है। अरे, भगवान! क्या कहा? यह दर्शन... है सही दशा, वह आत्मा के विकास में। वह है, वह है न, (उसके) आश्रय से धर्म नहीं और वह दशा है। वह शुद्ध चैतन्य धातु ज्ञानमूर्ति... आत्मा, जो सम्यग्दर्शन का विषय यह उसका ... नहीं। दर्शन के प्रकार—भेद नहीं।

इसी प्रकार लेश्या.... छह लेश्या की बात... वह? वृक्ष का ... आम का। बाबूभाई! कब दिया था? दो दिन पहले कुछ (दृष्टान्त) दिया था। वह आम के वृक्ष में आम... एक व्यक्ति वृक्ष तोड़ डालो, एक व्यक्ति डाली तोड़ डालो, एक व्यक्ति कहे फलाना... एक व्यक्ति कहे भाई अब हवा में... दो मण आम चार व्यक्ति होकर खायेंगे। ऐसे एक-एक काम करने में... आत्मा है प्रकार। क्या कहा? एक-एक काम कर सके ऐसा नहीं, परन्तु काम करने के काल में ... आत्मा छह प्रकार। भानुभाई! ... कहते हैं न, अपने नहीं कहते काठियावाड़ में? ... तीव्र ... एक को मौनव्रत। होगा... होगा... इस प्रकार इसके लेश्या के भाव में छह प्रकार हैं। कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल ऐसी दशा के परिणाम होते हैं शुभ-अशुभ। वे हैं सही दशा में। स्वयं से है, पर से नहीं, यह लेश्या के आश्रय से धर्म नहीं। लेश्या, वह धर्म नहीं। वह लेश्या त्रिकाल द्रव्य के अन्दर में है नहीं। कितना एक बोल में कितने बोल निकाले! अब इसमें समझना कितना? घर में ... चलते... तीन ... आधार से। चार ... कि यह कहते हैं ... नहीं। इसने दरकार कहाँ की अपने प्रयोजन के लिये? मेरा प्रयोजन सिद्ध किस प्रकार हो इसकी (दरकार कहाँ की है)। ... मिथ्यादृष्टि। है न भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में....

मुमुक्षु : समकित।

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित... मिथ्यादृष्टि। उसमें ऐसा आया कि अरेरे! मैं एक आत्मा। मैंने मेरे... की। यह ... मैंने काम नहीं किया। मैंने मेरा... इसलिए मुझे इसमें... सच्ची पहिचान करना, वह मेरा प्रयोजन है और उसमें से... उससे मेरा हित होगा। बाकी... हुल्लड़... विकार से... परन्तु मैंने मेरी सम्हाल की नहीं। उसकी सम्हाल किये बिना... दौड़े। ... जामनगर में। श्मशान में नहीं? अपने गये थे न देखने। दो वर्ष का हुआ। सब बताया। ... बैठता, ... ५०-६० वर्ष ... है। यह तो पहले में आते थे। ६०-७० वर्ष पहले के ... न! परन्तु यह दस दिशाओं में जामनगर में आया है

श्मशान के अन्दर। ... बोलो न! संसारचक्र है। फिर ... जन्म है, दो वर्ष का हो, बीस वर्ष का हुआ, विवाह किया, स्त्री, पुत्र, धन्धा। वह वृद्ध हुआ। ६० हुए, ७० गये, ८० हुए ... सोता है और फिर अन्त में ऐसे सोये। ... छोड़ ... चले। यहाँ जन्म से लेकर... जामनगर के श्मशान में। ... अपने है यहाँ। देखा हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके साथ में लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिया है न। दो-तीन-चार है। लाये हैं न। यह दशायें अनन्त बार मनुष्य की हुई, परन्तु इसने यह आत्मा का हित कैसे हो? और धर्म के बहाने... हो। धर्म होगा और व्यवहार से होगा। ... लुटेरे है। भगवान आत्मा अन्दर चिदानन्द का कन्द मूर्ति पड़ी है। घोर नित्यानन्द प्रभु में इसने एक समय भी आश्रय लिया नहीं। आश्रय लेने जैसी बात है। ऐसा इसने निर्णय भी किया नहीं। दूसरे सब आश्रय छोड़नेयोग्य है। ओहोहो! चिद्घन प्रभु आत्मा, नित्यानन्द प्रभु आत्मा का आश्रय लेकर शान्ति मिले, ऐसा है। शान्ति कहो या धर्म कहो। ऐसा इसने कभी किया नहीं। धर्म... भव्य-भव्य की जाति कही थी न गोरडू मूँग जैसी। उन सब पर्यायों के भेद से जानने में ... वस्तु के अन्दर त्रिकाल में दो भेद हैं नहीं। वह समकित के भेद अन्तर में नहीं। समकित के प्रकार हैं न उपशम और क्षयोपशम और क्षायिक, सब इसकी दशा में है। त्रिकाल में नहीं। वह दशा में (दशा के आश्रय से) धर्म होता नहीं। ऐसे संज्ञ-असंज्ञ मनवाले हों और... दो प्रकार के जीव दिखते हैं। कितने ही मनवाले, विचारशक्तिवाले, कितने ही मनरहित यह चींटी-मकोड़ा आदि या पंचेन्द्रिय मनवाले होते हैं। ...में। कितने ही पानी में सीधे उपजे। बरसात गिरे न एकदम इतने-इतने हो जाये। उसमें उसे धर्म न हुआ हो कितनों को। ऐसे संज्ञी-असंज्ञी जाति है जीव में। पर्याय में, अवस्था में, उपजे। वस्तु के अन्दर में नहीं। यह त्रिकाल चैतन्य ध्रुव की दृष्टि ... है... एक आहार लेना... ऐसे जीव की ... है। पर्याय में, अवस्था में।

यह सब, उन भगवान परमात्मा को... भगवान अपना आत्मा परम त्रिकाली स्वरूप शुद्ध नित्यानन्द में शुद्धनिश्चयनय के बल से... देखो, यह शब्द प्रयोग किया है टीकाकार ने। शुद्धनिश्चयनय के बल से... त्रिकाल अखण्ड आनन्द है, ऐसे आश्रय के बल से। (शुद्धनिश्चयनय से) नहीं हैं... यह त्रिकाल द्रव्य में है नहीं। वर्तमानदशा में है, वह जाननेयोग्य है, परन्तु आदरनेयोग्य नहीं। ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है। लो!

ऐसा भगवान श्रीमद् भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सन्त जंगल में बननेवाले महन्त, उनका यह मार्गणास्थान... ऐसा कहने का आशय है। इसी प्रकार श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६ वें श्लोकों द्वारा) कहा है कि— देखो।

(मालिनी)

‘सकलमपि विहायाह्वाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवग्राह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम् ।
इममुपरि चरंतं चारु विश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतम् ॥३५ ॥

इसका अर्थ। केवल भगवान आत्मा चित्शक्ति से रहित... वह जितना ज्ञान और आनन्द का शक्ति का पिण्ड है, उससे अन्य सकल भावों को... यह सब.... कहे सब। वह २९ बोल का कचरा है वहाँ। ५० से ५५ (गाथा, समयसार)। क्या कहा? चित्शक्ति से रहित... ज्ञानापुंज प्रभु। प्रकाश का पुंज प्रभु। उसके अन्दर में, उससे रहित और सकल भावों को मूल से छोड़कर... पहले से ... ऐसा कहते हैं। राग की, पुण्य की, संसार की दशा का भेद, वह त्रिकाल चैतन्यमूर्ति में नहीं है। और चित्शक्तिमात्र ऐसे... यह ... कहा। चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का... ज्ञानमात्र प्रभु आत्मा को अति स्फुटरूप से अवगाहन करके,... ऐसे चैतन्य में अवगाहन करके। अरे! समुद्र में अवगाहन करने से जिसे ... मोती हाथ आवे। इसी प्रकार भगवान आत्मा वह ज्ञानपुंज प्रभु अन्दर में... त्रिकाल उसके तल में जाकर जाने से, उसमें अनुभव करने से अस्ति प्रगटरूप से... ऐसा कहते हैं। राग का अवलम्बन छोड़कर, वर्तमान अवस्था का आश्रय छोड़कर, त्रिकाल ज्ञान को प्रत्यक्ष वेदन में लेकर।

यह चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का... वापस अपना। अति प्रगटरूप से अवगाहन करके अन्तर में, ज्ञानानन्द में प्रवेश करके, यह राग के, पुण्य में, विकल्प की रुचि छोड़कर परमानन्द प्रभु में अवगाहन करने। अवगाहन समझे न... आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान, ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो। आचार्य आदेश करते हैं, हे आत्मा! यह तुझे ऊपर की दशा, यह

सब राग और विकल्प ... छोड़ दे, यदि धर्म करना हो तो। ... छोड़नेयोग्य और अन्दर में प्रविष्ट होनेयोग्य... केवल एक। विश्व के ऊपर प्रवर्तते। देखो, ... ज्ञाता-दृष्टा। इसके बिना ... होनेवाला नहीं। ... जाये नहीं। ऐसा चैतन्यदल ज्ञाता-दृष्टा तेरा स्वरूप, ऐसा यह एक केवल अविनाशी। यह सब अर्थात् अस्ति लेना।

केवल (एक) अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो। आत्मा को आत्मा में। रागरहित होकर आत्मा निर्विकल्पदशा द्वारा आत्मा को अनुभव करो। यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। कठिन बात परन्तु। कहते हैं, इसकी श्रद्धा में, वे ... तो बदल। कि यह आत्मा पूर्णानन्द है, उसमें प्रवेश करके एकाकार हो, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। बाहर के जितने पुण्य-पाप निमित्तों के संग में, उतना बन्ध का कारण है। उसमें आत्मा की सिद्धि को मोक्ष का कारण है नहीं।

दूसरा श्लोक।

(अनुष्टुभ्)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्।

अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी ॥३६ ॥

चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है... जानन... जानन... जानन... जानन... जानन... चैतन्य ऐसे स्वभाव का सर्वस्व-सार ऐसा यह जीव... आत्मा। ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है;... गजब बात भाई! तो यह सब भेद-भेद कहते हैं, वह लक्ष्य में से छोड़ दे। है व्यवहार। अकेला ज्ञानपुंज प्रभु इतना ही मात्र है और इस चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव... देखा! यह पुण्य-पाप के भाव चित्शक्ति से शून्य है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अजागृत है। चित्शक्ति ज्ञान पुंज प्रभु। जानन... जानन... जानन... परन्तु उसके लिये समझने के पहले पहलू शुद्ध करके उसे चित्शक्ति से शून्य ऐसे आत्मा शरीर और जड़ का लक्ष्य छोड़कर ... यह पुण्य और पाप के विकल्प सब परद्रव्य और जहर है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे। कहते हैं कि वह पुद्गल है। वह तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये कि आहाहा! भाई! तेरा स्वरूप तो चैतन्य प्रकाश की ज्योति अकेला। उसमें से तो ... ज्ञान का ही झरे। वह क्या कहलाता है तुम्हारे ...

फुलखरणी। फुलखरणी कहते हैं न? क्या कहते हैं? ... खिरे लड़के। तो वहाँ से ऐसा कि उसमें से कोयला झरते होंगे? इसी प्रकार अज्ञान के फड़ाक... फड़ाक... फड़ाक...

मुमुक्षु : चिंगारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिंगारी। ऐसे भगवान आत्मा आनन्द की फुलखरणी (फुलझड़ी) है। अब इसे जँचे बिना। यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की फुलझड़ी है। उसके पुण्य-पाप के विकल्प में चित्शक्ति से शून्य, ज्ञान से शून्य जो भाव, उनकी रुचि छोड़कर, आनन्द की ... दृष्टि कर, क्षण-क्षण में वहाँ आनन्द के झरने के फूल झरते हैं। गजब बात परन्तु यह। अगम्य को गम्य किया और गम्य को जाना है, और अगम्य से अन्दर में उसे गम्य करे, उसे शान्ति और धर्म होता है। वह फुलझड़ी जो आत्मा आनन्द की। आहाहा! उसकी खान में विकार झरे, ऐसी खान ही नहीं। आहाहा! ऐसे चिदानन्द भगवान आत्मा को अन्तर में एकाकार होकर। यहाँ तो मोक्षमार्ग वर्णन करना है न? कि उसमें एकाकार.... शान्ति के झरने समय-समय में आनन्द हुआ... बहे, यह उसकी आनन्ददशा है। यह उसका अनुभव है और उसकी दृष्टि है। यह पैसा-बैसा में फुलझड़ी नहीं, ऐसा कहते हैं। नारणभाई! सच्चा होगा? पैसे में सुख नहीं?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में... कंकड़... वह कुछ नहीं। ... उससे ... रुपये गये मार डाले। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? वह तो जब आनेवाले हों तब आवे। जगत से उल्टी बात है भाई यह!

कहते हैं, वे समस्त.... राग, पुण्य, विकल्प वे समस्त ही... के पौद्गलिक हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... ज्ञान की मूर्ति है त्रिकाल स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान... कहो, हरिभाई! यह सब आयी। यह सेठिया क्या कहते हैं? परन्तु.... तेरे अन्दर... ऐसा कि... भाई! ... ऐसा नहीं चलता। ... गये होंगे। उसके ... राग, वह आत्मा ... करनेयोग्य है। ... चाहिए। शुभ और अशुभ और शरीर आदि का आश्रय करनेयोग्य नहीं। वह ... आवे और फिर ... न हो, ऐसा कभी बने नहीं।

अब ... टीका करते हुए स्वयं दो श्लोक कहेंगे। वह कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

.... गाथा पूरी हुई। टीका। मूल पाठ में ऐसा है। मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य की भावना में ऐसा है कि 'पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।' यह तो गाथा का अर्थ है। उसमें से टीका निकाली है। क्या कहा? कि पूर्व में जो चार भाव कहे थे वे 'परदव्वं परसहावमिदि हेयं' तो 'सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च' ऐसा लेना। 'सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च' त्रिकाली ज्ञायक स्वभावभाव... स्वभावभाव ध्रुव। अब, 'अप्पा'। यह आत्मा वापस अलग रखा। परमपारिणामिकभाव का आधार। आहाहा! गजब श्लोक है! यह तो अपने पूरा हो गया। कलश अमृतचन्द्राचार्य का कलश।

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाःपृथग्लक्षणा-
स्ते... हं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥

जिनके चित्त का चरित्र उदात्त है... आहाहा! जिसके अभिप्राय में उदारता है। (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं — ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... आहाहा! मैं आत्मा सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदा हूँ। आहाहा! ऐसे सिद्धान्त का—स्वभाव का सेवन करो। आहाहा!

और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं,... पर्यायादि अनेक प्रकार के रागादि भाव या क्षायिक आदि, वह मैं नहीं। आहाहा! अस्ति-नास्ति बहुत संक्षिप्त किया। मैं तो शुद्ध चैतन्यमय ज्योति अनादि-अनन्त, वह मैं हूँ। अन्यभाव, वह मेरा नहीं। क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं। देखो, अमृतचन्द्राचार्य में यह आया। चार भाव आदि, वे सब परद्रव्य हैं। आहाहा! यह थोड़ा लेते हैं। पाँच गाथा ले लेवें। फिर कल से बहिन का वचनामृत कल से लेना है। मंगल, बुध, गुरु तीन।

दूसरा श्लोक ।

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-
दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः ।
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी
सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम् ॥७४ ॥

शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव... है । आहाहा ! शुद्ध जीव अस्तिकाय लिया यहाँ तो । असंख्य प्रदेश लेना है । अन्यमत में यह बात है नहीं, सर्वज्ञ के अतिरिक्त । इसलिए अस्तिकाय असंख्य प्रदेशी शुद्ध चैतन्यघन ऐसे जो सब (भाव), उनसे अन्य सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं... आहाहा ! यह स्त्री, पुत्र हमारे नहीं, ऐसा कहते हैं । लक्ष्मीचन्दभाई ! यह वस्तु त्यागी... आत्मा ही त्यागी है । आत्मा राग और परभाव का त्यागी है । आहाहा ! यहाँ तो जरा पाँच गाथायें थोड़ी लेते हैं । उसमें एक बोल है विरुद्ध का, इसलिए लेते हैं । आहाहा ! ऐसा जो तत्त्ववेदी... यह लालचन्दभाई ने एक बार कहा था । लालचन्दभाई ! खबर है यह ? ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,...

मुमुक्षु : राजकोट में आपने कहा था ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खबर है न ! ख्याल तो होगा न !

ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,... इसका अर्थ ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से हम जानते हैं । समझ में आया ? कहता है, यह तो वचन-वाणी है, उसमें क्या है ? आहाहा ! शुद्ध जीवास्तिकाय, वह तत्त्ववेदी—तत्त्व का अनुभवी सम्यग्दृष्टि । आहाहा ! स्पष्टरूप से कहते हैं,... प्रगट अनुभव हुआ है, ऐसा जानते हैं । वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं । और वह यह प्राणी अति अपूर्व मुक्ति को पाता है । उस मुक्ति का यह मार्ग है । दूसरा नहीं । अब जरा पाँच गाथायें लेते हैं । पाँच गाथाओं का अर्थ नहीं लेते । टीका लेते हैं सीधे, सीधी टीका लेते हैं । पाँच की टीका । टीका है ?

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१ ॥

चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं ॥५२ ॥
 सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
 अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी ॥५३ ॥
 सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।
 ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४ ॥
 ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं ।
 णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥५५ ॥
 मिथ्याभ्रिपाय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१ ॥
 चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है ॥५२ ॥
 जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।
 वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो ॥५३ ॥
 सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है ।
 व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है ॥५४ ॥
 व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये ।
 चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये ॥५५ ॥

यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है । व्यवहाररत्नत्रय और निश्चयरत्नत्रय दोनों का स्वरूप है । आहाहा ! तो प्रथम, भेदोपचार— व्यवहार की बात करते हैं, परन्तु निश्चय हो, उसे व्यवहार होता है, हों ! आहाहा ! जिसे आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द अनुभव में आया, उसे ऐसा व्यवहार होता है, उसे व्यवहार समकित कहा जाता है । कहेंगे । भेदोपचार-रत्नत्रय... यह प्रकार है व्यवहार । विपरीत अभिनिवेशरहित... आहाहा ! वीतराग ने कहे हुए मार्ग से विपरीत ऐसे अभिनिवेश—अभिप्राय से रहित । पाँच गाथा की टीका । कहा न पहले से गाथा छोड़ दी है । टीका । विपरीत अभिनिवेशरहित

श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत... व्यवहारसमकित । सिद्धि का परम्परा हेतु । आहाहा ! भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति... क्या कहा ?

मुमुक्षु : परम्परा का अर्थ क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय है, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है और व्यवहार,... निश्चयवाले को हो व्यवहार । अकेले व्यवहार की बात यहाँ नहीं है । आहाहा ! कठिन बात, भगवान ! तेरा स्वरूप.... बहिन में आयेगा सब सूक्ष्म वचनामृत में । तेरा स्वरूप तो आनन्दकन्द प्रभु है न ! आहाहा ! उस अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे स्वाद आया, अपना निजघर जिसने खोल दिया, राग की एकता में निजघर को ताला लगाया था, वह अपनी राग की एकता तोड़कर अपने स्वभाव की निर्मल पर्याय द्वारा अन्तर में ढलने से ताला खुल गया । अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की वेदनदशा हुई । आहाहा ! उस दशावन्त को जो व्यवहारसमकित पंच परमेष्ठी की भक्ति, वह परम्परा... है ? हेतु-निमित्त । क्योंकि वह व्यवहार छोड़कर परमार्थ पूर्ण प्राप्त करेगा । इस कारण से परम्परा हेतु कहा है । है तो राग, है तो विकल्प, परन्तु निर्विकल्प दृष्टि और आत्मा का निर्विकल्प अनुभव है । शुद्ध परिणति की भूमिका में जब शुद्ध उपयोग की जमावट अन्दर में न हो, तब व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आता है । जरा सूक्ष्म बात है । समझ में आया ?

भगवान अन्तर आनन्द का नाथ, उसका वेदन हुआ और उपयोग—शुद्धोपयोग में ही उस दृष्टि का वेदन आया । उस शुद्धोपयोग में जब रहा नहीं, तब शुद्ध परिणति तो रही, साथ में यह भेद उपचार व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आता है । समझ में आया ? शुद्ध आनन्द की दशा तो कायम है । आहाहा ! उस दशा के साथ, अपूर्ण वीतरागीदशा है तो साथ में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग आता है । तो वह राग परम्परा हेतु अर्थात् प्रथम तो कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा छूटी और अशुभ की अस्थिरता छूटी और शुभ आया । तो अशुभ से छूटकर शुभ हुआ, वह शुभ को छोड़कर शुद्ध में जायेगा । इस अपेक्षा से परम्परा निमित्त को हेतु कहा गया है, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि को । आहाहा ! ऐसी बात है, प्रभु !

जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है... आहाहा ! परमात्मा अन्दर अनन्त

आनन्द का पर्वत है, अतीन्द्रिय आनन्द का महापर्वत है... आहाहा! उसमें से सम्यग्दर्शन के काल में एकाग्र होने से अतीन्द्रिय आनन्द झरता है। अतीन्द्रिय आनन्द का पहाड़ / पर्वत प्रभु है। अरे रे! आहाहा! उसके त्रिकाल में एकाग्र होने से पर्याय में, जैसे पर्वत में से पानी झरता है, परन्तु वह पानी और पर्वत तो भिन्न है, यह तो पर्वत का पानी जो अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु है... आहाहा! दृष्टान्त तो क्या करे? पानी झरता है तो पानी और पर्वत भिन्न है। यहाँ तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन सम्यग्दर्शन में हुआ, उस भूमिका में अतीन्द्रिय आनन्द झरता है, अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट परिणमन होता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

उसे पंच परमेष्ठी के प्रति उत्पन्न हुआ चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित... यह जरा दोष है तीन प्रकार का। निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है। व्यवहारसमकित। यह व्यवहारसमकित। शुभराग। आहाहा! परन्तु वह निश्चय स्वभाव का अनुभव है, उसे व्यवहारभक्ति का राग होता है। समझ में आया? आहाहा! जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन है, उसे व्यवहार जिनप्रतिमा का पूजन, जिनप्रतिमा का वन्दन, साक्षात् जिनभगवान को वन्दन, पूजा, वह सब शुभभाव है। वह शुभभाव निश्चयवन्त को परम्परा हेतु कहकर व्यवहारसमकित कहा गया है।

विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव... उसका अर्थ यह कि भगवान पंचपरमेष्ठी ने जो तत्त्व कहे, उनकी श्रद्धा है व्यवहार विकल्प, तो ब्रह्मा, विष्णु आदि ने कहा, उसकी श्रद्धा नहीं। समझ में आया? विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव... उसे व्यवहारसमकित कहा जाता है। आहाहा! परन्तु निश्चय हो उसे, हों! अकेला व्यवहारसमकित होता ही नहीं, व्यवहाराभास होता है। ऐसा अर्थ है।

संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! वह भी व्यवहार है। संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे (ऐसा शंकारूप), वह संशय है;... संशय की व्याख्या। यह संशय का सम्यग्दृष्टि को व्यवहार में भी संशयरहित होता है। आहाहा! वह तो सर्वज्ञ

परमात्मा ने जो देखे हुए तत्त्व हैं, ऐसा सम्यक् अनुभव हुआ है, उसे ही तत्त्व की श्रद्धा व्यवहार विकल्प ऐसा होता है। उस विकल्प में कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा छूट जाती है। है ?

वह संशय है; शाक्यादिकथित... बौद्ध-बौद्ध। बौद्ध आदि कथित वस्तु में निश्चय (अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है;... वह छूट जाता है व्यवहार में, हों! अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है तत्सम्बन्धी अज्ञानपना) ही विभ्रम है। वह छूट जाता है। व्यवहारसमकृति, निश्चयसमकृति को व्यवहारसमकृत में इस कथन में अज्ञानी की श्रद्धा छूट जाती है। समझ में आया ? पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम,... यह व्यवहारचारित्र है। परन्तु निश्चयसम्यग्दर्शन है, निश्चयचारित्र है, वहाँ ऐसे व्यवहारचारित्र के परिणाम हैं। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : बारम्बार निश्चय... निश्चय... निश्चय....

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय बिना व्यवहार होता ही नहीं। बिना एक के शून्य को दस नहीं कहा जाता। अकेला शून्य है, लाख, करोड़ शून्य हो, उसे एक कहते हैं ? लाख, करोड़ कोरे कागज में शून्य, उसे एक कहते हैं ? एक हो, फिर पीछे शून्य हो तो दस होते हैं, इसी प्रकार सम्यग्दर्शन निश्चय अनुभव वेदन हो, तब व्यवहारसमकृतिरूप शून्य आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहला व्यवहार, फिर निश्चय नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठ बात है। यह अन्तर में पहला व्यवहार कहेंगे यहाँ। परन्तु किसे ? जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन है, निश्चयज्ञान है, स्वरूप की लीनता भी थोड़ी है, उसे पहले पाप की प्रवृत्ति से निवृत्तिरूप व्यवहारचारित्र होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! इस गाथा में मूल तो एक बात दूसरी लेने की है। अभी बड़ा भ्रम (चलता) है।

पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। व्यवहारचारित्र, हों! जिसे निश्चय अपने स्वरूप का चारित्र, उसका व्यवहार परम्परा हेतु चारित्र व्यवहारक्रिया में राग है, ऐसा कहा जाता है। ऐसी भेदोपचार... देखो, ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति

है। व्यवहार। आहाहा! भेद-उपचार, वह उपचार है। आहाहा! उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। वह भी व्यवहार है। क्यों व्यवहार है? कि हेय-उपादेय दो आये। 'यह हेय है और यह उपादेय है' ऐसा ज्ञान, वह व्यवहारज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारज्ञान का विकल्प है। सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरी भावना के लिये मैंने तो बनाया है। भावना क्या? अन्दर स्वरूप की रमणता तो है, परन्तु अन्दर विशेष जाने के लिये मैंने बनाया। तो यह बनाने का विकल्प तो राग है। समझ में आया? राग से मैं अन्तर में जाऊँगा—ऐसा नहीं, परन्तु मेरी अन्दर कमजोरी है, राग है परन्तु मुझे आनन्द का अनुभव तो है, भले मैं शुभराग में आऊँ, परन्तु मेरी अन्तरदशा तो आनन्द और स्वरूप की रमणता की दशा तो है ही, उसे यह व्यवहार आता है। अरेरे! समझ में आया? जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। यह व्यवहारसमकित। अब यहाँ आया। यहाँ जरा विरोध है, इसलिए थोड़ा लेना है। वरना आज बहिनश्री के वचनामृत लेते। परन्तु यह जरा लेकर फिर कल से (लेंगे)। वचनामृत जिसके पास हो, वे कल दोपहर में लेकर आना। बाकी यहाँ से देंगे। यहाँ से होंगे न। दोपहर में ३ से ४।

इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... यह निश्चयसमकित, हों! वापस व्यवहार नहीं। आहाहा! इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... यहाँ निश्चयसमकित लेना। वरना भेद-उपचार कहते हैं... बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही (निमित्त) है। आहाहा! भगवान् ने कहे हुए जो नौ तत्त्व जैसे हैं, वैसे तत्त्व की श्रद्धा। समझ में आया? उस द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान... ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान। सर्वज्ञ ने कहे हुए का (ज्ञान वह) व्यवहार है। क्या कहा? जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, निश्चय आत्मा का वेदन, आनन्द का वेदन हुआ है उसे, उस समकित को बाह्य सहकारी कारण भी कहा जाता है।

वह बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ... आहाहा! वरना तो मुखकमल से वाणी नहीं निकलती। वाणी तो पूरे शरीर में से ॐ

ध्वनि निकलती है, परन्तु लोग ऐसा देखते हैं कि यह मुख से निकलती है, इसलिए ऐसी अपेक्षा ली है। आहाहा! भगवान को मुख में से वाणी नहीं निकलती। होंठ बन्द है, कण्ठ में कम्पन्न नहीं है और वाणी ॐ ध्वनि निकलती है। परन्तु लोगों की दृष्टि (ऐसी है कि) मानो बोलते हैं तो भाषा से बोलते हैं, इस अपेक्षा से भाषा ली है। पंचास्तिकाय में ऐसा लिया है। समझ में आया ? क्या कहते हैं ? **सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ...** देखो, यहाँ तो कहा **समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ...** आहाहा! पण्डितजी! ऐसा आता है कि वीतराग की वाणी में तो पूरा आता नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सिद्धान्त में कहा कि अनन्तवें भाग में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो यह कहा। भगवान ने तो सब पूरा कहा है। है ?

मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। सम्यग्दृष्टि को यह बाह्य निमित्त सहकारी वीतराग का कहा हुआ द्रव्यश्रुत, वह निमित्त बाह्य सहकारी होता है। आहाहा! समझ में आया ?

और जो मुमुक्षु हैं... अब यहाँ विवाद है। जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... आहाहा! जो समकिति हैं, उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... उसमें बाह्य सहकारी कारण कहा था। है तो वह भी बाह्य सहकारी कारण, परन्तु उनका अभिप्राय ज्ञानी का जो है, वह अन्तरंग में उपचार से निमित्त कहा जाता है। क्या कहा ? यह बोल समझने की वस्तु है, इसलिए आज लिया। यहाँ ऐसा कहते हैं कि जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से। यहाँ क्या कहते हैं ? समकिति है जो मुमुक्षु है, उसे निमित्त क्या है ? ऐसा कहते हैं। परन्तु यहाँ तो मुमुक्षु है सामने जीव। यह तत्त्वज्ञानी को बाह्य सहकारी कारण द्रव्यश्रुत और जो कहनेवाले समकिति हैं, वे भी हैं तो बाह्यकारण, परन्तु उनका अभिप्राय समझना है, इस कारण से उन्हें उपचार से अन्तरंग कारण कहा है। समझ में आया ?

फिर से। ठीक कहते हैं। आत्मा जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन होता है, वह तो अपने आत्मा के आश्रय से होता है, उसमें तो कोई निमित्त कारण नहीं। आहाहा! परन्तु उस

सम्यग्दर्शन में बाह्य सहकारी कारण के दो भेद। एक द्रव्यश्रुत तत्त्वज्ञान, वीतराग का द्रव्यश्रुत, वह बाह्य सहकारी कारण और एक... आहाहा! मुमुक्षु जो समकिति ज्ञानी है, उसे—समकिति को बाह्य सहकारी होने पर भी, उन्हें उपचार से अन्तरंग कारण कहा जाता है। शब्द शब्द में... फिर से। हमारे ज्ञानचन्द्रजी कहते हैं न, ठीक है। आहाहा! भगवान् आत्मा अखण्डानन्द नाथ प्रभु, वह तो अपने आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह निश्चयसम्यग्दर्शन। परन्तु उसमें निमित्तपना कौन है बाह्य में? बाहर में निमित्तपने के दो प्रकार—एक, द्रव्यश्रुत का निमित्तपना है। तत्त्वज्ञान सर्वज्ञ की वाणी और एक मुमुक्षु समकिति ज्ञानी जीव है... है? यह मुमुक्षु अर्थात् समकित पानेवाले की बात नहीं, समकित प्राप्त हैं, उनकी बात है।

जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... निश्चय सम्यग्दृष्टि को, निश्चयसम्यग्दर्शन जिसे हुआ है, वह पर है, परन्तु यहाँ उसके अभिप्राय को यहाँ निमित्त कहा गया है। इसलिए अन्तरंग उपचार, है तो बाह्य परन्तु अन्तरंग हेतु कहा है। है तो बाह्य। आहाहा! परन्तु उपचार से अन्तरंग हेतु कहा है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! है तो दोनों बाह्य। भगवान् की वाणी और भगवान् अथवा समकिति, दोनों हैं तो बाह्यकारण। परन्तु द्रव्यश्रुत है, वह तो साक्षात् बाह्यकारण कहा, परन्तु द्रव्यश्रुत कहनेवाले जो समकिति हैं, उनका अभिप्राय यहाँ समझना है तो उस बाह्य समकिति का अभिप्राय अन्तरंग में निमित्त कहा गया है। परन्तु अन्तरंग में उपचार से निमित्त कहा गया है। अरेरे! समझ में आया? यहाँ लोग ऐसा कहते हैं कि मुमुक्षु है, समकित पानेवाला, ऐसा नहीं। समझ में आया? मुमुक्षु है कि जो सम्यग्दृष्टि जीव को, समकिति जो मुमुक्षु है... आहाहा! उसका अभिप्राय। वाणी को बाह्यकारण कहा, परन्तु उसका अभिप्राय, उसका भाव अपने में अन्तरंग उपचार हेतु कहा गया है। आहाहा! है या नहीं अन्दर पाठ?

क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। तो यहाँ क्या अर्थ करते हैं वे? कि मुमुक्षु जो समकितदृष्टि है, वह समकित पाता है, उसे दर्शनमोहनीय क्षयादि होते हैं। ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि जो पाया, वह तो अपने आश्रय से पाया है, परन्तु बाह्य सहकारी कारण में भगवान् की वाणी जो तत्त्वज्ञान में निमित्त है,

वह बाह्य सहकारी कारण, परन्तु है तो दूसरा आत्मा भगवान या समकिति, है तो बाह्य कारण, परन्तु उनका अभिप्राय यहाँ समझना है; इसलिए उपचार से अन्तरंग कारण कहा है। वरना कारण तो बाह्य कारण है, परन्तु उपचार से अन्तरंग कारण, वाणी की अपेक्षा उनका अभिप्राय समझना है, इस कारण से उपचार से अन्तरंग हेतु कहा है। अन्तरंग हेतु कहा। है तो बाह्य। परन्तु वह अन्तरंग उपचार से कहा। भाषा है, देखो। है ?

मुमुक्षु हैं, उन्हें भी... उन्हें भी अर्थात्? सम्यग्दृष्टि है, अनुभव तो हुआ है, उन्हें बाह्य कारण वीतराग की वाणी तत्त्वज्ञान की, वह बाह्य कारण। अब दूसरे मुमुक्षु प्राणी यह समकिति है, वे भी बाह्य कारण हैं। परन्तु उनका अभिप्राय और वे क्या कहते हैं, यह भाव समझना है, इस कारण से उसके अभिप्राय को समझनेवाले को वह अभिप्राय अन्तरंग हेतु कहा गया है। सामने ज्ञानी का अन्तरंग हेतु सम्यग्दर्शन यहाँ अन्तरंग में हेतु कहा गया है। समझ में आया? ज्ञानी का। ज्ञानी को नहीं, ज्ञानी का।

मुमुक्षु : अन्य ज्ञानी का।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्य ज्ञानी का, अन्य ज्ञानी का अभिप्राय। है तो वह अभिप्राय बाह्य कारण, परद्रव्य है। आहाहा! यह गाथा (ली है), वरना बहिन का (वचनामृत) लेना था आज। परन्तु यह जरा थोड़ा....

मुमुक्षु : द्रव्यश्रुत को बाह्य कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य कहा और यह भी है तो बाह्य, परन्तु अन्तरंग उसका अभिप्राय, इसकी अपेक्षा अभिप्राय समझना है, इस कारण से अन्तरंग उपचार से अन्य द्रव्य कारण कहा। यह तो वह का वह हुआ। उपचार से अन्तरंग कहो या व्यवहार (कहो)। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? भगवान! आहाहा! अरे, भगवान! तीन लोक का नाथ तू परमात्मपना लेकर पड़ा है न, नाथ! ऐसी बात न समझ में आये, ऐसा क्या है? आहाहा!

यहाँ तो यह लेना है... शीतलप्रसाद ने यह अर्थ किया था न, भाई? बाह्य का। वह दोनों बाह्य ही है। परन्तु अन्तरंग हेतु समकिति क्षायिक समकित आदि हो, वह अन्तरंग हेतु उसे है—समकित पानेवाले को। यह उन्होंने—शीतलप्रसाद ने लिखा है।

पाया है, उसे निमित्त जो है, समकिती ज्ञानी, उस ज्ञानी को बाह्य सहकारण तो वाणी, वह बाह्य सहकारण है, परन्तु उसका अभिप्राय समझना है अथवा क्या भाव कहते हैं, यह समझना है, इस कारण से बाह्य सहकारणी होने पर भी उसे उपचार से अन्तरंग कारण कहा गया है। लालचन्दभाई! यह बात है। आहाहा! है तो बाह्य कारण, परन्तु उस वाणी की अपेक्षा उसका अभिप्राय ख्याल में लेना है। उसका भाव क्या कहते हैं? इस कारण से, है तो बाह्य व्यवहार, परन्तु अन्तरंग उपचार से वह भी व्यवहार हो गया। अन्तरंग में उपचार से हेतु कहा गया है। आहाहा! थोड़ा न समझ में आये तो रात्रि में पूछना, प्रभु! यहाँ तो छूट है। सब भगवान विराजते हैं यहाँ तो। ऐई! यशपालजी! आहाहा!

तीन लोक का नाथ आनन्द का सागर पर्वत विराजता है अन्दर। आहाहा! जिसमें पर्याय का भी अभाव। आहाहा! ऐसा तीन लोक का नाथ भगवानस्वरूप आत्मा, ऐसा भान सम्यग्दर्शन में हुआ, सम्यक् अर्थात् सत्य जैसा परिपूर्ण है, ऐसी सत्य सम्यक् पर्याय में, ज्ञान की पर्याय में उसे ज्ञेय बनाकर प्रतीति हुई है। क्या कहा? कि जो सम्यक् पर्याय ज्ञान की है, उस पर्याय में पूरे द्रव्य को ज्ञेय बनाकर ज्ञान करके प्रतीति हुई है, जानपना करके प्रतीति हुई है, अकेली प्रतीति हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी बात, प्रभु! क्या हो? आहाहा!

मुमुक्षु है। वे लोग ऐसा कहते हैं कि मुमुक्षु अर्थात् समकित पानेवाले को यह दर्शनमोह आदि का क्षय अन्तरंग हेतु है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया? दर्शनमोह आदि क्षयादि अन्तरंग हेतु कहते हैं उसे। परन्तु ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञानी का अभिप्राय अन्तरंग हेतु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अन्तरंग हेतु है। समझ में आया? हमारे पण्डितजी ने सब अर्थ किये हैं। समझ में आया? आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा... जो करना है, वह तो किया सम्यग्दर्शन। वह कर्तव्य प्रथम में प्रथम है। उसमें तो कोई बाह्य सहकारी कारण है नहीं। परन्तु वह है तो अब बाह्य सहकारी कोई चीज़ है या नहीं? आहाहा! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ के मुखकमल से समस्त पदार्थ की व्याख्या वाणी में आयी, वह समस्त पदार्थ को कहनेवाले सर्वज्ञ

परमात्मा की वाणी तत्त्वज्ञान बाह्य सहकारणी कही जाती है। तब अब बाह्य सहकारणी तो वाणी हुई। तो दूसरा आत्मा कहनेवाला है, उस आत्मा को यहाँ बाह्य कारण में क्यों लेना? है तो बाह्य, परन्तु बाह्य कारण को कैसे लेना? कि यह बाह्य कारण वाणी है, उसकी अपेक्षा उसका भाव समझना है, इस अपेक्षा से उसे अन्तरंग; है नहीं अन्तरंग, है तो बाह्य, परन्तु उसका भाव समझना है तो उपचार से अन्तरंग हेतु कहा गया है। बाबूभाई! ऐसा है, प्रभु! क्या हो?

मुमुक्षु : जिनवाणी से अधिक (वजन दिया)

पूज्य गुरुदेवश्री : वजन दिया है। वाणी की अपेक्षा भाव क्या है? क्या कहते हैं? किस अपेक्षा से कहते हैं? समझ में आया? रतनलालजी! लो, यह ऐसी बात है। आहाहा! बाह्य सहकारणी को अन्तरंग कारण कह दिया। तो उन लोगों को यह नहीं बैठा, इसलिए समकित पानेवाले को अन्तरंग कारण दर्शनमोह के क्षय, उपशम आदि है, (ऐसा कहते हैं)। समझ में आया? आहाहा! यह जरा लेना था। यह लेना था इस कारण से (यह गाथा ली है)। वरना आज बहिन के वचनामृत लेते, परन्तु यह जरा फेरफार है न... आहाहा! कल दोपहर से वचनामृत लेना है। जिसके पास हो, वे लेते आये, न हो तो यहाँ से मिलेगा। पढ़ने के लिये, हों! घर में ले जाने के लिये, ऐसा नहीं। यह वाँचने के लिये दे तो घर में ले जाये। बाह्यतत्त्व तो जहाँ है, वहाँ ही है, परन्तु उसे निमित्त क्यों कहना है? कि ज्ञान में अपने स्वरूप में वह निमित्त हुआ है और उसके स्वरूप को कहनेवाले का अभिप्राय अन्तरंग निमित्त कहा गया है। है तो बाह्य, परन्तु उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण, आहाहा! (सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं,... सम्यक् परिणाम के अर्थात् अपने सम्यक् परिणाम में सामने सम्यक् परिणामवाले जीव को अन्तरंग निमित्त कहा गया है। आहाहा! अब ऐसा है। क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। किसे? जिनके निकट सुनते हैं, उस जीव को दर्शनमोह का क्षय, क्षयोपशम और उपशम होता है, उसके परिणाम, उसका भाव, जीव में अन्तरंग हेतु उपचार से कहा गया है।

मुमुक्षु : भेदज्ञान.... ज्ञानी की होती है....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञानी जीव को भेदज्ञानी जीव निमित्त में होता है। समझ में आया ? अज्ञानी निमित्त नहीं, ऐसा बताते हैं।

मुमुक्षु : वाणी भगवान की, हेतु सम्यक्त्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जिसे वाणी का अभिप्राय अन्तर में बैठा है, अन्तर सन्मुख दृष्टि में बात बैठी है, सम्यग्दर्शन है, जिसे दर्शनमोह का क्षय... है ? क्षयादि। क्षय, क्षयोपशम और उपशम हुआ है, उस आत्मा को समकित पानेवाले जीव के लिए अन्तरंग उपचार हेतु कहा गया है।

मुमुक्षु : इसके लिये तो यहाँ सब आते हैं, महाराज !

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे ज्ञानचन्दजी, कहा फिर से, लो। बात सच्ची है, बात ही ऐसी है। आहाहा! समझ में आया ? वीतराग के अतिरिक्त की वाणी भी निमित्त नहीं और वीतरागी समकित की अतिरिक्त भी उसे निमित्त नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! इसमें तुम्हारे हीरा-फीरा में कुछ नहीं यह सब। ऐई! पंकज! यह हीरा भगवान अन्दर... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ पूर्णानन्द का प्रभु पूर्णानन्द से भरपूर अतीन्द्रिय आनन्द का गंज है, पर्वत है, पहाड़ है, सागर है। आहाहा! ऐसा अन्तर में स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए हैं। यहाँ तो चारित्र भी साथ में लिया है। व्यवहार आगे चारित्र हुआ है अन्दर निश्चय, उसे व्यवहारचारित्र—पाप से निवृत्ति हुई, उसे व्यवहारचारित्र होता है और निश्चयचारित्र तो पुण्य-पाप की निवृत्तिरूप स्वरूप की रमणतारूप चारित्र है। समझ में आया ? समझ में आये उतना समझना, प्रभु! यह तो वीतराग का मार्ग है। अरे! वीतराग का विरह पड़ा। भगवान वहाँ महाविदेह में रह गये। उसमें यह भाव यहाँ रह गये। समझ में आया ?

क्योंकि उन्हें... उन्हें किन्हें ? जो निमित्त है उन्हें। उपदेश करनेवाले का भाव, उन्हें। दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। क्षायिक समकित हुआ, उपशम हो या क्षयोपशम हो उन्हें। उस समकित पानेवाले को अन्तरंग कारण तो आत्मा है। समझ में आया ? दूसरे प्रकार से कहें, उसे भी दर्शनमोह का क्षयादि अन्तरंग कारण निमित्त से है। क्या कहा यह ? नियमसार में आता है। वहाँ अन्तरंग निमित्त कर्म का क्षयोपशम अन्तरंग

निमित्त है। कर्म का क्षायिकपना, उपशमपना, वह अन्तरंग निमित्त है। यहाँ वह बात नहीं लेना। आहाहा! यहाँ तो कहनेवाले का धर्म का अभिप्राय जो है, उसका (वह लेना है)। आहाहा! अरेरे! क्या हो? ऐसा मार्ग है। आहाहा!

निश्चय से तो अपने आत्मा के अवलम्बन से (समकित) होता है। परन्तु वहाँ व्यवहार है या नहीं निमित्त? तो बाह्यनिमित्त है तो सर्वज्ञ की, त्रिलोकनाथ की वाणी का यथार्थपने का ज्ञान, वह बाह्यनिमित्त, बाह्यनिमित्त है। कहा? व्यवहार कहा न? द्रव्यश्रुत बाह्य सहकारी कारण कहा और मुमुक्षु जो है, उसे समझानेवाले, समकित पाया है, वह समझानेवाला जो है... आहाहा! उन्हें अन्तरंग हेतु उपचार से पदार्थ निर्णय में हेतुपने के कारण (कहा है)। आहाहा! अपने अनुभव में निर्णय में हेतुपने के कारण से। अन्तरंग हेतु, बाह्य पदार्थ भगवान है या सर्वज्ञ समकिति है, उन्हें उपचार से अन्तरंग हेतु कहते हैं। **क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।** आहाहा! समझ में आया? चन्दुभाई! आहाहा! ऐसी बात है, भाई! भाई हिम्मतभाई ने तो ऐसा अर्थ किया है, शीतलप्रसाद ने दूसरा अर्थ किया है, दूसरे लोग दूसरा अर्थ करते हैं। समझ में आया?

अब यह भेद जो कहा, भेदरूप समकित व्यवहार, उसमें अभेदपना अन्दर निश्चय है, वह क्या है? पहले व्यवहार का कथन आया, परन्तु उसे निश्चय है। आहाहा! **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,**... आहाहा! जिसे भगवान पूर्णानन्द का नाथ अभेद—गुणगुणी का भेद भी नहीं, जो कहा, अन्तर स्वभाव का आधार परमात्मा... आहाहा! आत्मा पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण स्वरूप की श्रद्धा, सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसका चारित्र अभेद अनुपचार। देखो, उसमें भेद उपचार था व्यवहार में। यह निश्चय में **अभेद अनुपचार**—वास्तविक अभेद है। आहाहा! अरेरे! मनुष्यपना मिला, उसमें यह बात यदि इसे समझ में न आवे... आहाहा! तो वापस वह के वह चौरासी के अवतार में गोते खाकर मर जायेगा। वहाँ किसी की सिफारिश काम नहीं आती। किसी की सिफारिश... सिफारिश क्या कहते हैं? सिफारिश कहते हैं? आहाहा!

मैंने तो कहा था न, हमारे मनसुख आया था न। हमारे हसमुख के पिताजी। भागीदार थे न हमारे बड़े भाई के। उनके पिता के बड़े भाई हमारे भाई थे। मैंने तो कहा

था कुंवरजीभाई को। मनसुख को खबर है। कहा था, भाई! तुम इतनी ममता पूरे दिन करते हैं, भाई! तुम्हारी धन्धे में ममता देखकर... उस समय इतनी आमदनी नहीं थी। तब तो थोड़ी थी। फिर गुजर गया, तब दो लाख की आमदनी थी। अभी अधिक है। तीन लड़कों को। परन्तु वह ठीक। वह तो धूल की बातें! परन्तु उसे ममता इतनी दुकान के धन्धे की। 'मैं करता हूँ, मैं करता हूँ, व्यवस्था करता हूँ, यह करता हूँ, यह करता हूँ' भाई! हम बनिया हैं तो खुराक माँस और अण्डे का नहीं। परन्तु सुने हों, सुने। मेरे सामने बोले नहीं। वह तो इसके जन्म के पहले की बात है। हमारी दीक्षा के बाद जन्मा था। ७० में दीक्षा। ७४ में इसका जन्म है। यह तो ६६ की बात है। दुकान की पैढ़ी थी न, चुनीलाल मोतीलाल की दुकान। तब वह वहाँ थे न। आधे भाग में। आधे भाग में छोटेभाई थे फावाभाई। कंसारा का धन्धा आधे में भाग में, आधे में इसका। यह (संवत्) १९६६ की बात है। तो कहा, भाई! तुमको यह क्या है पूरे दिन? आहाहा! यह कमाया और यह दुकान गये, यह माल ले आया, यह किया, वह किया। क्या है यह वह? आत्मा का कुछ अवकाश? यहाँ से मरकर सुगति हो, मोक्ष तो बाद में धर्म तो, परन्तु यहाँ से मरकर मनुष्यपना और स्वर्ग मिले, ऐसी क्रिया दिखती नहीं तुम्हारी। मनसुख! तुमने तो बहुत बार सुना है। इसके पिता को कहा। हमारे बड़े भाई के भागीदार, दोनों भागीदार। भाई! यह क्या है? पूरे दिन। गाँव में साधु आवे तो दो घण्टे जाना, (ऐसा भी नहीं)। साधु आवे तो पूरे दिन नहीं जाये। रात्रि के आठ बजे के बाद नामा-बामा लिखकर दुकान (बन्द करके) फिर जाये एक घण्टे सुनने। परन्तु उसमें भी तत्त्व की बात कहाँ थी, उस साधु के पास भी! वह भी दो-चार घण्टे कोई समागम सत् का करना या वाँचन करना, ऐसा पुण्य भी नहीं। भाई! यह तो तिर्यच होने के लक्षण है, याद रखना। ऐई! मनसुख! सुने, हों, बोले नहीं। भाई बैठे थे, हमारे खुशालभाई बड़े भाई। सुने, बोले नहीं। भगत है, कुछ कहते हैं। किसी का पक्ष-बक्ष नहीं हमारे, कहा। हमारे भागीदार ऐसे हमारे बुआ के पुत्र होते हैं। फई-फई समझते हो? बुआ के पुत्र होते हैं। वैसे भाई होते हैं, वैसे भागीदार होते हैं। बापू! उसे मरते हुए सन्निपात हुआ। मनसुख और सब थे। सन्निपात हुआ लबालब... लबालब... हो गया, मरकर... आहाहा! चिमनभाई! यह तो हमारा घर का दृष्टान्त दिया। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें क्या समझना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तुम्हारे सबको समझना, ऐसा कहते हैं, भाई! हमने तो सब किया है न। आहाहा! अन्तिम कहा न, अन्तिम ६८ के वर्ष।

मुमुक्षु : वह तो व्यापारी थे, यह नौकरी करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौकरी करते हैं तो यह राग-पाप है। पैसा लेने के लिये वहाँ नौकरी करते हैं। ठीक कहा भाई ने। यह छापनेवाले भी पैसा लेने के लिये छापते हैं, ये कहाँ उसमें शुभभाव है? पुस्तक छापनेवाले हैं, उसके पैसे लेते हैं, इसलिए छपाते हैं, वह तो पापभाव है, भले सिद्धान्त-शास्त्र छापते हों। आहाहा! ऐसा कि यह दूसरे तो पूरे दिन पाप करे, परन्तु यह लोग तो कहाँ पाप करते हैं? उसे व्यापार नहीं। परन्तु व्यापार नहीं, वह पाप है या नहीं? पैसा लेने के लिये धन्धा करते हैं, नौकरी करते हैं, वह पाप है। ऐसी बात है, भाई! यहाँ कोई किसी का पक्ष नहीं।

मुमुक्षु : आप किसी को भी नहीं छोड़ते, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यहाँ क्या कहते हैं? **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को**,... अन्तर में भगवान पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, आहाहा! और तदुपरान्त स्वरूप में रमणता आनन्द में जम गयी, ऐसा निश्चय। अभेद अर्थात् निश्चय, अनुपचार अर्थात् व्यवहार नहीं। रत्नत्रयपरिणति अर्थात् निश्चयरत्नत्रय दशा। निश्चयरत्नत्रय परिणति अर्थात् दशा। ऐसे जीव को **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा**,... उसे अन्तर भगवान पूर्णानन्द है, उसकी श्रद्धा है, वह निश्चय है। आहाहा! समझ में आया? और तद् ज्ञानमात्र। वह भगवान पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान, शास्त्रज्ञान नहीं। आहाहा! तद् है न? तद् अर्थात् जीव के ज्ञानमात्र (**उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप**) ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा... अन्तर्मुख सम्यक् चैतन्य के सन्मुख होकर जो ज्ञान हुआ, ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा और उसरूप से (**अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से**) अविचलरूप से स्थित होनेरूप... आहाहा! चारित्र किसे कहते हैं? यह आनन्दस्वरूप में रमते हैं निजस्वरूप में, वह चारित्र है। कोई महाव्रत के परिणाम और वस्त्र बदले, वह चारित्र, ऐसा चारित्र है नहीं। आहाहा! है? आहाहा!

अविचलरूप से स्थित होनेरूप... अन्दर भगवान आनन्द में स्थित होनेरूप। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर जम गया है। आहाहा! ऐसे अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा... ऐसे सम्यग्ज्ञान और चारित्र द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। वह व्यवहार कहा, उसका फल नहीं कहा। व्यवहार समझाया, परन्तु मुक्ति होती है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से। समझ में आया? आहाहा! यह सिद्धपर्याय कैसी है? अभूत—भूतकाल में कभी पाया नहीं। आहाहा! अभूत है? अभूतपूर्व, नीचे है। पहले कभी न हुआ हो; अपूर्व। सिद्धपर्याय होती है। वह मुक्ति की दशा अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प आनन्द की दशा, प्रतीति निर्विकल्प आनन्द में रमणता, उससे मुक्ति होती है। वह व्यवहार बीच में आता है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! मुक्ति तो इस कारण से होती है। समझ में आया?

जो परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,... अकेले व्यवहार की बात नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, परन्तु अभी स्वरूप की रमणता शुद्ध उपयोग की पूर्ण नहीं तो उसे पाप की निवृत्तिरूप पहले परिणाम—शुभभाव होते हैं। है? परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,... शुभभाव होता है।

मुमुक्षु : व्यवहार आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, व्यवहार है सही, परन्तु वह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : पहला व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला नहीं। पहला यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में पूर्ण स्थिरता नहीं, उस दशा में पहले पाप से निवृत्ति होती है। आहाहा! अटपटी (बात है)। समझ में आया? पहले एकदम निश्चयचारित्र होता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते है। निश्चय अर्थात् स्वरूप की रमणता पूर्ण, पूर्ण रमणता। निश्चय अर्थात् पूर्ण रमणता पहले नहीं होती। पहले अमुक रमणता के काल में व्यवहारचारित्र के शुभपरिणाम आते हैं। यह पहले। निचलीदशा में पहले आते हैं, ऐसा कहना है। आहाहा! है? पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर

तपश्चरण होता है। व्यवहार से साधुपना कहा जाता है, वास्तविक नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। और निश्चय सहजनिश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन,... परमात्मा में प्रतपन—विशेष लीनता.... लीनता... लीनता... प्रतपयंति इति तपः। सोने में जैसे गेरु लगाने से सोना ओपता (शोभता) है, उसी प्रकार भगवान में चारित्रसहित है, उसकी उग्र लीनता से वह शोभता है, उसे यहाँ तप कहते हैं। यह अनशन, ऊनोदरी और अपवास, वह तो बाह्य लंघन है। आहाहा! है? आहाहा!

निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है। यह चारित्र अन्दर में पूर्णानन्द के नाथ में रमणता करने से होता है, कोई व्यवहारक्रिया करने से होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! तब उसकी मुक्ति अर्थात् सिद्धि होती है। लो, विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

... जो कोई विभावगुणपर्याय है... चार भाव है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! ओहोहो! चार भाव जो आत्मा में है—रागादि का उदयभाव, धर्म आदि का उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिक, यह चार पर्याय है। आहाहा! यह चार पर्याय विभावगुणपर्याय है। आहाहा! (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से... आहाहा! पर्याय के चार भाव हैं तो उन्हें व्यवहारनय से उपादेय कहा गया है। ... कि जानने का, ग्रहण करने का, ज्ञान में ग्रहण करना, वह उपादेय कहने का आशय है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं। आहाहा! क्षायिकसमकित भाव। आहाहा! निश्चय की बात है न। पूर्ण क्षायिक... निश्चय क्षायिकसमकित हो, क्षयोपशमसमकित हो, उपशम समकित हो। चारित्र क्षयोपशम हो, वह सब पर्याय विभावपर्याय है, कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... यह जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी।

वे हेय हैं। किस कारण से ? क्योंकि परस्वभाव है। पर्याय परस्वभाव है। आहाहा! वह त्रिकाली जीवस्वभाव नहीं। आहाहा! त्रिकाली जीवस्वभाव, वह नहीं। इस कारण से पर्याय परस्वभाव है। परद्रव्य परसहाव हेयं कहा। टीकाकार ने तो पद की रचना की। कहने का आशय था, वह टीका में स्पष्ट किया कि वह परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य है। आहाहा! वह परद्रव्य कौन ? शरीर, कर्म, उस परद्रव्य की यहाँ बात नहीं। इसकी पर्याय जो जीव के अस्तित्व में है, जो व्यवहारनय का विषय है। कितना ही व्यवहार उदयनय है और कितना ही असद्भूतव्यवहारनय है अथवा कितना ही उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक सद्भूतव्यवहार है। तो कहते हैं कि प्रभु! ओहोहो! प्रभु तो ध्रुव अन्दर। आहाहा! जिसकी पर्याय को परस्वभाव कहकर स्वद्रव्य कह दिया। आहाहा! भाई! मार्ग ऐसा है कोई।

वह (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं। किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं। आहाहा! पर्याय क्षायिकभाव की पर्याय त्रिकाली गुण स्वभाव नहीं, पर्यायस्वभाव है तो परस्वभाव है और परस्वभाव है तो परद्रव्य है। सूक्ष्म

बात है, भाई! आहाहा! पानी की एक-एक बिन्दू में असंख्य जीव, वे बेचारे कब मनुष्य हों? आहाहा! ऐसी बात कब सुने? अरेरे! जिसे मनुष्यपने का योग मिला, उसे सुनने की योग्यता न मिले और सुनने का योग न मिले। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! जो अन्दर में... शरीर, वाणी, मन, कर्म की बात यहाँ नहीं। कर्म का उदयभाव है, वह तो परद्रव्य, स्थूल परद्रव्य है वह तो, परन्तु अपनी पर्याय में जो क्षायिकभाव सम्यग्दर्शन, क्षयोपशमभाव सम्यग्दर्शन, उपशमभाव सम्यग्दर्शन, क्षयोपशम चारित्रभाव, उपशमभाव चारित्रभाव निर्मल वीतरागी पर्याय, वह पर्याय है, वह परस्वभाव (है); गुणस्वभाव नहीं। द्रव्य का गुणस्वभाव नहीं, शाश्वत् टिकनेवाला गुणस्वभाव नहीं, इसलिए एक समय की पर्याय है चार भाव, तो उन्हें परभाव, परस्वभाव कहकर... आहाहा! इसीलिए परद्रव्य हैं। आहाहा! गजब बात है! अभी तो शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का आत्मा और शरीर जड़ परद्रव्य है, यह बात बैठती नहीं। मेरे पैसे, मेरी स्त्री, मेरे पुत्र। अरर! प्रभु! तू कहाँ जाता है, भाई! तेरी कौनसी गति होगी इसमें? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का आखिर का पुकार है कि पर्याय के ऊपर से दृष्टि उठानी है, इसलिए पर्याय परस्वभाव गिनकर परद्रव्य कहा गया है। आहाहा! जरा शान्ति से (समझना)। सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित... सर्व विभावगुण चार प्रकार की पर्याय, विभावगुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अंतःतत्त्वस्वरूप... आहाहा! जो अन्तःतत्त्व भावस्वरूप। ध्रुव त्रिकाली भावस्वरूप। अन्तःतत्त्व कहा न? वह भावस्वरूप। आहाहा! पर्याय जो परद्रव्य कहा, तो अन्तःतत्त्व स्वभावभावरूप जो शाश्वत् रहनेवाले अनन्त गुण के भावस्वभावरूप। आहाहा! शुद्ध-अंतःतत्त्वस्वरूप... पर्याय बाह्यतत्त्व हो गयी। आहाहा! और अन्तर में अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण, वह अन्तःतत्त्वस्वरूप। वह अंतःतत्त्वस्वरूप.... आहाहा! स्वद्रव्य.... उसे स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो अन्तःतत्त्व भाव जो त्रिकाल रहनेवाला स्वभावभाव, उसे स्वद्रव्य कहा। समझ में आया?

जब एक समय की क्षायिकपर्याय को भी परद्रव्य कहा तो स्वद्रव्य क्या? अभी तो एक बात कि स्वद्रव्य जो त्रिकाली स्वभावभाव गुण है... आहाहा! अन्तःतत्त्व, शुद्ध अन्तःतत्त्व, शुद्ध अन्तःभावस्वभाव, ध्रुव अन्तर स्वभावभावस्वरूप। आहाहा! शुद्ध

अन्तःतत्त्व अर्थात् शुद्ध अन्तःस्वभावस्वरूप स्वद्रव्य, उसे स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा, तब अन्तःतत्त्व भाव, भाव हों! उस त्रिकाली भाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! ओहोहो! यह बात! नियमसार में ऐसी बात है, ऐसी बात दूसरे दिगम्बर शास्त्रों में नहीं, तो अन्यत्र तो होगी ही कहाँ? आहाहा! परन्तु जरा शान्ति से (समझना), भाई!

जब पर्याय चार भाव परस्वभाव (कहा अर्थात् कि वह) द्रव्यस्वभाव नहीं, अर्थात् कि गुणस्वभाव नहीं अर्थात् कि ध्रुवस्वभाव नहीं। आहाहा! इस कारण से उस पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। तब स्वद्रव्य क्या? स्वद्रव्य अन्तःतत्त्व स्वभावभाव, शाश्वत् रहनेवाला गुणस्वभावभाव... आहाहा! उसे स्वद्रव्य कहा। ऐई! चन्दुभाई! अलग बात है, बापू अभी। अभी स्वद्रव्य में आधार बाद में लेंगे। आहाहा! पर्याय जब क्षायिक केवलज्ञान की पर्याय भी परभाव परस्वभावभाव कहकर उसे परद्रव्य कहा है। एक समय की पर्याय। कब? कि एक समय की पर्याय है। तब त्रिकाली जो गुण है अन्तःतत्त्व, अन्तःस्वभावभाव। द्रव्य नहीं। अभी तो... आहाहा! अन्तःतत्त्व जो त्रिकाली अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, वह त्रिकाली अनन्त स्वभावभाव, अन्तःस्वभावभाव। आहाहा! जब पर्याय को बहिरतत्त्व कहा। आहाहा! उसमें अभी आया है ३८वीं गाथा में। संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह बहिरतत्त्व है। आहाहा! क्योंकि एक समय की अवस्था है। आहाहा! तब अन्तःतत्त्व क्या? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि अनन्त गुण का पिण्ड, वह अनन्त गुण अन्तःतत्त्व वह स्वद्रव्य है। समझ में आया? अभी स्वद्रव्य का आधार कहेंगे। आहाहा!

अरे! तीन लोक के नाथ का पुकार यह है। यह सुनकर सन्त आये और सन्तों ने प्रसिद्ध किया है। आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं। एक समय की अवस्था, वह कायम रहनेवाली नहीं है। इस अपेक्षा से उसे परस्वभाव; शाश्वत् स्वभाव से रहनेवाले की अपेक्षा उसे परस्वभाव कहा और शाश्वत् रहने के स्वभाव को जब द्रव्य कहा तो उस परस्वभाव को परद्रव्य कहा। आहाहा! उन सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित... एक समय की क्षायिक आदि पर्याय है, उनसे रहित शुद्ध-अंतःतत्त्व.... जो शाश्वत् ध्रुवस्वभाव। स्वभाव, हों! द्रव्य नहीं, वह गुण। उस गुण को स्वद्रव्य कहा, जब पर्याय को परद्रव्य कहा। आहाहा! एक समय की निर्मल दशावाले को परस्वभाव को कहकर परद्रव्य

कहा, तो शाश्वत् स्वभाव अनन्त गुण स्वभाव अन्तःतत्त्वभाव। आहाहा! अन्तःतत्त्वस्वरूप को यहाँ स्वद्रव्य कहा। अन्तर स्वभावभाव को स्वद्रव्य कहा। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त गुण को स्वद्रव्य कहा। द्रव्य की बात.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह (स्वद्रव्य) का आधार... उस स्वद्रव्य के आधार परिणाम है। आहाहा! जैन की शैली तो देखो! आहाहा!

परद्रव्य की तो यहाँ बात भी नहीं, परन्तु एक समय की अवधिवाली दशा चाहे तो केवलज्ञान हो तो एक समय रहता है। दूसरे समय दूसरा और ऐसा। वैसा परन्तु दूसरा। वैसा वही दूसरे समय वह नहीं। वैसा सही परन्तु दूसरा। आहाहा! समझ में आया? यह गाथा अलौकिक है, बापू! कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है, भाई! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! जिनका नम्बर 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदर्यो' तीसरे नम्बर में आता है। आहाहा! पहले नम्बर में भगवान, दूसरे नम्बर में गणधर। आहाहा! तीसरे नम्बर में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। चौथे नम्बर में जैन धर्मोस्तु मंगलं। एक ही धर्म। आहाहा! यहाँ यह कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के निकट अभी आगे कहेंगे। ... गाथा में है, कि मैं भगवान के पास सुना है। ... मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। समझ में आया? आहाहा! अरे! यह क्या है? क्या है यह? आहाहा!

त्रिकाली गुण जो स्वभाव है, त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली आनन्द, त्रिकाली गुण—ऐसा जो अन्तर स्वभावभाव। अन्तर स्वभावभाव गुण, हों! इस पर्याय को जब परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा तो त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। समझ में आया? आहाहा! वह उपादेय है। त्रिकाली स्वभावभाव, वह उपादेय है। आहाहा! जब पर्याय स्वभावभाव परद्रव्यरूप से उसे हेय कहा, तब त्रिकाली भावस्वभाव स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा। आहाहा! अभेचन्दजी! कभी सुना नहीं ऐसा जिन्दगी में। कहीं है नहीं, प्रभु! क्या करे? यह कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायदृष्टि छुड़ाने के लिये ध्रुव स्वभाव को स्वद्रव्य कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय की दृष्टि छुड़ाने के लिये त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा और ध्रुव स्वभाव गुण। गुण को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु! तेरे गुण को स्वद्रव्य कहा, उस गुण को धरनेवाले की बात क्या! आहाहा!

वास्तव में सहजज्ञान.... जिस प्रकार से अन्तःतत्त्वस्वरूप कहा था, वह सहजज्ञान। आहाहा! **सहजदर्शन-सहजचारित्र....** त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली चारित्र। वर्तमान पर्याय की बात नहीं। वर्तमान पर्याय चारित्र तो परस्वभाव कहकर परद्रव्य में लिया। क्या कहते हैं? वर्तमान में जो चारित्र प्रगट होता है निर्मल वीतरागी आनन्द के साथ, वह चारित्र पर्याय जो है वर्तमान प्रगट वेदन में, उसे तो परभाव, परस्वभाव कहकर, परद्रव्य कहकर हेय कर दिया। आहाहा! परन्तु यहाँ तो भगवान आत्मा, उसका जो भाव है, त्रिकाली रहनेवाला भाव है; इसलिए उसे स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो त्रिकाली रहनेवाले स्वभावभाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा!

यह स्पष्टीकरण करते हैं कि **वास्तव में सहजज्ञान....** जो त्रिकाली तत्त्व स्वद्रव्य कहा। वह **सहजदर्शन....** स्वाभाविक दर्शन त्रिकाल, स्वाभाविक चारित्र त्रिकाल, **सहजपरमवीतरागसुखात्मक....** परम वीतराग सुखस्वरूप त्रिकाल। आहाहा! **सहजपरमवीतरागसुखात्मक....** पर्याय में जो चारित्र की आनन्दपर्याय जो चारित्र की ऐसी है। उसे जब परभाव कहकर, परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा तो त्रिकाली चारित्र स्वभाव जो अन्तर (में) है। आहाहा! **सहजज्ञान...** स्वाभाविक ध्रुव। **सहजदर्शन....** स्वाभाविक त्रिकाल। **सहजचारित्र....** वीतरागस्वरूप त्रिकाली। **सहजपरमवीतराग-सुखात्मक....** यहाँ सिद्ध करना है परमवीतराग सुख—वीतरागी सुख। आहाहा! इन्द्रिय का सुख कहा जो कल्पना है, वह तो उदयभाव है, उसे परभाव कहकर, परद्रव्य कहकर हेय कहा। जब निर्मल पर्याय को जब परभाव कहकर परद्रव्य कहकर हेय कहा तो फिर रागादि... व्यवहाररत्नत्रय है, वह तो उदयभावरूपी मलिनभाव, उसे भी परभाव कहकर हेय कर दिया। तो स्वद्रव्य जो **सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहजपरमवीतराग...** आनन्दस्वरूप, वीतराग आनन्दस्वरूप। **शुद्ध-अंतःतत्त्वस्वरूप...** यह सब शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप कहे। जो ऊपर कहा था न? **विभाव-गुणपर्यायों से रहित शुद्ध-**

अन्तःतत्त्वस्वरूप... यह बात यहाँ ली है। उस शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का... आहाहा! त्रिकाली गुण का स्वरूप, उसे स्वद्रव्य कहा, तो स्वद्रव्य का आधार क्या? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। अब... आहाहा!

शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप... जो स्वद्रव्य कहा था वहाँ। इस स्वद्रव्य का आधार... आहाहा! अभी स्वद्रव्य कहा। जीव में जो द्रव्यत्वगुण है, प्रमेयत्वगुण है, ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, शान्ति,.... अकषायस्वभावगुण है, उन सब गुणों को यहाँ स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो त्रिकाली गुण को स्वद्रव्य कहा। अरेरे! ऐसी शैली! अब उस स्वद्रव्य का आधार। वह गुण जो है त्रिकाली स्वद्रव्य स्वभाव, उसे स्वद्रव्य कहा, पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। आहाहा! प्रभु! तेरी बलिहारी है, नाथ! आहाहा! गजब बात है। आहाहा! एक लाइन में कितना समाहित कर दिया है। आहाहा! और यह निकाला कहाँ से? कि 'पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।' ... उपादेय। कौन? अंतःतत्त्व। अब यह अन्तः अब इस अन्तःतत्त्व का आधार आत्मा। अरेरे! यहाँ कहते हैं कि तेरी पर्याय में भी एक समय की अवधिवाली क्षायिक आदि पर्याय उत्पन्न होती है, उसे जब परभाव कहकर परद्रव्य कहा। आहाहा! तो अन्तर त्रिकाली गुण का पिण्ड जो गुण है, द्रव्य नहीं, उस गुण को स्वद्रव्य कहा, अन्तःतत्त्व के, अन्तःतत्त्व के अन्तर का भाव। तत्त्वार्थश्रद्धान शब्द है न? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' तो... पर्याय और सत्त्व... उसका भाव। आहाहा! क्या कहा? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' ऐसे स्थानों में तत्त्व... शब्द। यह तत्त्व द्रव्य, गुण और पर्याय तत्त्व, उसका जो भाव। आहाहा! उस भाव से श्रद्धा यथार्थ की। आहाहा! उसे ऐसी श्रद्धा हुई। भाव की यथार्थ श्रद्धा, अर्थ की यथार्थ श्रद्धा, द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा। ... क्या कहते हैं, यह शैली! ४१५ गाथा समयसार की अन्तिम (गाथा)। यह अर्थतत्त्व... अर्थ। प्राप्त करना। आहाहा! भगवान!

जब प्रभु अनन्त गुण सम्पन्न है। अनन्त... अनन्त गुण की अस्तित्वता—सत्ता है, वह ध्रुव स्वभावभाव है। भाववान, वह तो परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! जो तत्त्व स्वभावभाव जो है त्रिकाली, उसका आधार... है? और इस स्वद्रव्य का आधार। यह स्वद्रव्य तो गुणों को स्वद्रव्य कहा है। समझ में आया? जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो त्रिकाली रहनेवाले गुण को ही स्वद्रव्य कहा। आहाहा! कहाँ गये (पण्डित) भरत

चक्रवर्ती ? ऐसी बात है, प्रभु !वाले हैं न ! मार्ग ऐसा है । दिगम्बर सन्त यह कहते हैं । ऐसी चीज़ कहाँ है ? आहाहा ! समझ में आया ? ऐई ! जेठामल ! यह तुम आये और यह बात आयी है । भाग्यशाली ! बात सच्ची । फिर नहीं मिलती । आहाहा !

क्या प्रभु की शैली ! ऐसी एक समय की अवधिवाली चीज़ को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा और हेय कहा तो त्रिकाली गुणस्वभाव को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा, गुणस्वभाव को, हों ! चन्दुभाई ! है या नहीं, प्रभु ! आहाहा ! ऐसा जो स्वद्रव्य जो त्रिकाली है, उसे जब स्वद्रव्य कहा, तो स्वद्रव्य का आधार कौन ? आहाहा ! द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों लेंगे । है ? आहाहा ! पर्याय को जब परभाव कहकर परद्रव्य कहा तो त्रिकाली रहने का स्वभावगुण स्वभाव, उसे स्वद्रव्य स्वस्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहा । उसे परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो त्रिकाल गुणस्वभाव को स्वस्वभाव जानकर स्वद्रव्य कहा । आहाहा ! समझ में आया ? है न सामने पुस्तक है या नहीं, भाई ?

मुमुक्षु : आपने नया निकाला है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात अन्दर है, वह है । अन्दर है । आहाहा ! शैली तो देखो प्रभु की ! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है । तो इसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय की दृष्टि छोड़कर वह परद्रव्य और परभाव । गुण के ऊपर दृष्टि की, उस गुण को स्वद्रव्य कहा, परन्तु गुण के स्वद्रव्य का आधार कौन ? आहाहा ! ...यह अलौकिक बात है । यह तुम्हारे पैसे की—धूल की बात नहीं । कितने एकड़ तो जमीन है धूल की । जमीन में तो धूल है न । नहीं ? पैसा है, वह धूल है । यह तो चैतन्य भगवान, बापू ! भाई ! आहाहा ! एक समय की क्षायिक पर्याय को परस्वभाव, त्रिकालस्वभाव नहीं, इसलिए क्षणिकस्वभाव को परस्वभाव कहकर... आहाहा ! त्रिकालस्वभाव नहीं, इसलिए एक समय की पर्याय चाहे तो क्षायिकसमकित हो या केवलज्ञान हो, आहाहा ! ऐसी पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहकर हेय कहा, तब त्रिकाली गुण जो ध्रुव है, उस स्वस्वभाव को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा । आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! क्या शैली ! सहज आ गयी । शिक्षण शिविर में यह गाथा लेने का भाव हुआ था । आहाहा !

मुमुक्षु : अद्भुत स्पष्टीकरण किया है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है, बापू! क्या हो ? आहाहा!

इस स्वद्रव्य का आधार... अभी स्वद्रव्य का आधार, ऐसा कहा। परन्तु वह स्वद्रव्य कहा किसे ? जो त्रिकाली गुणस्वभावभाव ध्रुव, उसे स्वस्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहा। आहाहा! अरेरे! जैसे... वनस्पति। वनस्पति। आहाहा! इसके बीच में... यह बेचारे अभी... रास्ते... हो जायेंगे। ... कपास। क्या कहा जाता है तुम्हारे वह ? शींग-शींग। हरा गोंद। ऐसे एक-एक टुकड़ा पत्ते का लो, उसमें असंख्य तो शरीर है। एक शरीर में एक जीव। प्रत्येक (वनस्पति) है न। कहा था न ? आहाहा! अरेरे! ऐसी पानी में से, वनस्पति में से कब निकले, त्रस (हो) और कब हो मनुष्य ? और कब भगवान की वाणी सुनने का योग मिले ! आहाहा! और... कब अन्तर्दृष्टि (में) जाये। यह तो दुर्लभ में दुर्लभ चीज़ है, प्रभु! आहाहा! बोधिदुर्लभभावना कहा था न ? आहाहा!

स्वद्रव्य का आधार.... अभी और स्वद्रव्य का आधार! द्रव्य का भी आधार! परन्तु उस गुण को त्रिकाली रहने के स्वभावभाव को... (जब) क्षणिकभाव को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा तो कायम रहनेवाले स्वभाव को स्वस्वभाव गुण को स्वद्रव्य कहा। उसका आधार। आहाहा! यह तो शुरुआत करने से पहले ही भगवान को अन्दर याद किया। प्रभु! तुझे कहनी हो, वह बात कहना इसमें। क्या कहा ? (चालू करने से पहले कहा) प्रभु! तुझे जो कहना हो, वह अभी कह दे, वरना हम साक्षी हैं अन्दर। ... इसमें याद नहीं रहे दूसरी चीज़, तो प्रभु! तुझे जो कहना हो, वह अन्दर से... चाहिए। ऐई! चन्दुभाई! आहाहा! इसमें अपने फेरफार नहीं आता, प्रभु ऐसा करना तू! लालचन्दभाई! ऐसा कहा था। यह तो अटपटी बात है। फेरफार नहीं आता, प्रभु! तुझे इसमें यह आया, ऐसा कहना पड़ेगा तुझे। आहाहा! यह अर्थ अन्दर से भगवान निकालते हैं। अपूर्व वचन। आहाहा!

थोड़ा भी परम सत्य अमृत के... उतरता है इसमें! कहते हैं कि अन्दर में अमृत का सागर जो स्वभाव अनन्त गुण, उसमें जो गुण और आनन्द है, वह अनुभव आनन्द का एक अनन्त गुण में है, ऐसा वह द्रव्य, वह स्वभाव त्रिकाली, वह त्रिकाली स्वभाव, उसे हम स्वद्रव्य कहते हैं। पर्याय के समीप रहनेवाले को परस्वभाव कहते हैं, परद्रव्य कहकर हेय कहा, तो त्रिकाली स्वभाव को अपना स्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहकर

उपादेय कहा। पण्डितजी! ज्ञानचन्दजी! यह हमारे दो व्यक्ति बड़े हैं न हिन्दुस्तान में। यह हमारे गुजरात के बाबूभाई। यह मार्ग है, प्रभु! आहाहा! प्रभु! तुझे कहना हो, वह अर्थ निकालना इसमें से, हों! आहाहा!

आहाहा! उस स्वद्रव्य का आधार.... परन्तु द्रव्य का आधार? परन्तु यह तो कहा न, प्रभु! कि गुण जो त्रिकाली गुण को जब स्वद्रव्य कहा, क्योंकि पर... परिणति पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! बाबूभाई! ऐसा स्वभाव है। ऐसा मार्ग! आहाहा! इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरम-पारिणामिकभावलक्षण... देखो अब! पहले पर्याय कही, फिर त्रिकाली गुणस्वभाव कहा, अब गुणस्वभाव का आधार कौन? कि परमपारिणामिकभाव त्रिकाल ध्रुव। उसे स्वद्रव्य कहा और उस स्वद्रव्य का आधार, वह त्रिकाली वस्तु। आहाहा! समझ में आया? अरे! बापू! ऐसी बात कहाँ है, भाई! दिगम्बर दर्शन, वह जैनदर्शन, वह वस्तु का दर्शन! आहाहा! जिसकी चीज़ कलेजे में चोट लगे अन्दर से। ऐसे हकार हो जाये अन्दर से आनन्द का! आहाहा! ऐसी चीज़ यह प्रभु! आहाहा! स्वद्रव्य का आधार.... यह रात्रि को पूछना प्रभु न समझ में आया हो,सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

इस स्वद्रव्य का आधार... अर्थात् स्वस्वभाव जो है, उसे स्वद्रव्य कहा, तो उस स्वद्रव्य का आधार। आहाहा! सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण.... वह गुण सहजलक्षण स्वभाव थे, परन्तु उस स्वद्रव्य का आधार? आहाहा! वह स्वस्वभाव जो त्रिकाली स्वद्रव्य, उसका आधार? आहाहा! सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण.... स्वाभाविक परमपारिणामिकभावलक्षण त्रिकाल। आहाहा! जब स्वद्रव्य स्वभाव को कहा, यह तो स्वद्रव्य का आधार परमपारिणामिक को कहा। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! इतने संक्षिप्त शब्दों में इतना भरा! आहाहा! संक्षिप्त शब्दों में गहन बात प्रभु ने भरी है। आहाहा! यह यथार्थ है, हों! पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, इसलिए अयथार्थ है, ऐसा नहीं है। तो त्रिकालीस्वभाव जो अनन्त-अनन्त अन्तःतत्त्व जो भाव है, उस त्रिकालीस्वभाव को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा। अब उस स्वद्रव्य का भी आधार कौन? आहाहा! क्या शैली! गजब शैली! आहाहा! तथापि इस निश्चय की बात

में, तो भी व्यवहार होता है तो व्यवहार... ऐसा जानना चाहिए। यह पर्याय व्यवहार है, ऐसा है, जानना चाहिए। और यह तो जाननेयोग्य परन्तु अन्दर राग का भाव आवे। यह तो सवेरे कहा था न भाई! यह शास्त्र है। इससे हवा खाना, यह महामिथ्यात्व है। पाप का पाप है। इसे गर्मी लगे और हवा खाये। अरे! यह तो नहीं, परन्तु कपड़े की हवा, सुनने बैठे और खाये, बहुत विपरीत दृष्टि है। तत्त्वदृष्टि का अनादर करता है। ऐई! जेठामल! आहाहा! जिसकी बात सुनते हुए इन्द्र पिल्ले की भाँति। गलुडिया को क्या कहते हैं? पिल्ला? यह कुत्ती के बच्चे को। पिल्ला। आहाहा! जागती ज्योति। आता है न ८वीं गाथा में, नहीं? टकटकी लगाता है। टकटकी लगाकर (देखता है)। आता है? ८वीं गाथा (समयसार)। आचार्यों ने कहा। आहाहा! कि आत्मा! वह आत्मा क्या है, यह समझ में नहीं आता। मेंढे की भाँति... आहाहा!

ब्राह्मण आवे गली में। गली-गली। स्वस्ति। यह दृष्टान्त पहला। स्वस्ति कहा तो सुननेवाला कहे कि यह स्वस्ति क्या कहते हैं? उसका अनादर नहीं, शंका नहीं, परन्तु आशंका है कि यह क्या कहते हैं, वह समझ में नहीं आता। इस स्वस्ति का अर्थ समझने के लिये टकटकी लगाता है मेंढे की भाँति... नीचे... तो वह भी खड्डे में गिरे। घेंटा-घेंटा होते हैं। बकरा कहते हैं? ... हमारी भाषा। हिन्दी तो सब आती नहीं। वह ... जहाँ टगटग ... चाहता है। ऐसे स्वस्ति शब्द कहा तो सुननेवाला तो टग... टग... टग... क्या कहते हो तुम? हम कुछ समझते नहीं। टकटकी लगावे। आहाहा! तो कहा, स्वस्ति का अर्थ प्रभु! स्वस्ति। तेरा कल्याण हो। ऐसा कल्याण अस्ति....

मुमुक्षु : तेरे अविनाशी कल्याण हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वअस्ति... स्व अस्ति है, उस अस्ति में यह कल्याण अस्ति है। यह दृष्टान्त कहने के पश्चात् आचार्य कहते हैं कि हे आत्मा! कि आत्मा टकटकी लगाकर... यह आत्मा क्या कहते हैं? टकटकी लगाता रहता है। ...कौनसा बोल है? है न आठवीं गाथा में? वहाँ झपकी नहीं खाता आँख में झपकी। आहाहा! टकटकी लगाकर ऐसे... टकटकी लगाकर ऐसे। ...आत्मा। 'प्रभु! आप 'आत्मा' कहकर क्या कहते हो?' तो कहा कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। यह व्यवहार कहा। व्यवहार कहा, वह निश्चय को समझाने के लिये कहा। व्यवहार कहा तो

व्यवहार में रहने के लिये नहीं कहा। आहाहा! तेरा आत्मा किसे कहें प्रभु! व्यावहारिक ज्ञान समकित, ज्ञान और समकित और चारित्र आनन्द की रमणता, वह अतति गच्छति। यह आत्मा उसे प्राप्त करे, वह आत्मा। वह भी व्यवहार कहा। तो तू भेद को प्राप्त कर, ऐसा कहा? आहाहा! परन्तु कहा भेद करके... साधु... अधिक बुद्धिवाला है शास्त्र में साधु। ... उसमें लिखा है। चाहे जितनी बुद्धिवाला था, परन्तु यह भेद किये बिना समझा नहीं सकता। ... अन्दर कलशटीका में है। कलशटीका में। आहाहा! चाहे जितना बुद्धिमान हो तो भी इतना तो भेद किये बिना समझा सकने की किसी की सामर्थ्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है उसमें अन्दर, हों! सर्वत्र आधार रखा है। पाँचवाँ श्लोक है। आहाहा!

तो यहाँ कहा कि जो व्यवहारनय का विषय जो पर्याय है। है, अस्ति है। पर्याय और द्रव्य दोनों चीज़ है। अकेली पर्याय है और अकेला द्रव्य है, द्रव्य है, वह पर्याय नहीं। ऐसा नहीं। उस पर्याय को जब क्षणिक को एक समय की अवधिवाली पर्याय, चाहे तो वह केवलज्ञान रहे तो एक समय रहता है। समझ में आया? आहाहा! यह मथुरा में हम गये थे न मथुरा। तो पण्डित बहुत कहते थे। यह जहाँ कहा, केवलज्ञान एक समय स्थिति रहती है। यह क्या कहते हो? पण्डित लोग। केवलज्ञान एक पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली है, वह गुण है। उत्पन्न होना, वह पर्याय है। वह गुण उत्पन्न होता है? उत्पन्न हो, तब व्यय होता है। तो जिस समय जो उत्पन्न होता है... वह उत्पन्न होता है। वह त्रिकाली गुणस्वभाव जो स्वभाव स्वद्रव्य कहा, वह चीज़ नहीं। आहाहा! गुण है, वह उत्पन्न होता है? और गुण है, वह व्यय होता है? आहाहा! एक समय की पर्याय उत्पन्न होती है। उत्पन्न हो, वह गुण नहीं और उत्पन्न होती है, उसकी अवधि एक समय की है। पर्याय की अवधि एक समय की है। समझ में आया? केवलज्ञान की अवधि एक समय की? पंचास्तिकाय में तो यहाँ तक कहा है कि केवलज्ञान तो ऐसा का ऐसा है, इसलिए कूटस्थ कहते हैं। पंचास्तिकाय में। केवलज्ञान को कूटस्थ कहा है। कूटस्थ (अर्थात्) ऐसा का ऐसा रहे। वह तो कायम रहनेवाली है, इस अपेक्षा से कहा है। आहाहा! केवलज्ञान को कूटस्थ कहा है। जैसे शिखर पर्वत हो सामने ध्वजा हिलती हो, शिखर हिलता नहीं; उसी प्रकार केवलज्ञान एक समय का है,

परन्तु शाश्वत् रहनेवाली चीज़ है। वह नहीं, परन्तु वैसी की वैसी कायम रहनेवाली है। तो उसे कूटस्थ कहा। आहाहा! तथापि वह केवलज्ञान की पर्याय भी यहाँ तो परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय... अन्दर जो ज्ञानस्वभाव त्रिकाली अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञानस्वभाव ऐसा आनन्द श्रद्धास्वभाव, अनन्त आनन्द स्वभाव, अनन्त शुद्धस्वभाव, ऐसा अनन्त-अनन्त स्वभाव कायम रहनेवाला, उस अनन्त स्वभाव को यहाँ स्वस्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहा। अब स्वद्रव्य का आधार कौन? आहाहा! अरेरे! कहाँ दृष्टि देना, ऐसा कहते हैं।

स्वस्वभाव... उसकी दृष्टि करनेवाला... आधार। आहाहा! सूक्ष्म विषय आया है, भगवान! शिक्षण शिविर में लेने का भाव था, परन्तु यह आ गया अन्दर। आहाहा! भाग्य से आया है। बात यह है। आहाहा! भवि भागन वच जोगे... परिणाम... नाथ! आहाहा! यह स्वद्रव्य कहा न? **स्वद्रव्य का आधार....** उस द्रव्य में है? परन्तु द्रव्य कहा किसे? त्रिकाली कायम रहनेवाले स्वभाव को स्वद्रव्य कहा है। सहज उसका आधार जो परमपारिणामिक त्रिकाली भाव। आहाहा! एकरूपभाव। यह तो अनन्त गुण का स्वभावभाव जो स्वद्रव्य कहा, परन्तु अनन्त गुण के स्वभाव को स्वद्रव्य कहा तो अनन्त गुण का आधार कौन? आहाहा! भगवान! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! **स्वद्रव्य का आधार...** स्वद्रव्य का आधार? आकाश को किसी का आधार नहीं। व्यवहार से दूसरे पाँच द्रव्य को आकाश का आधार व्यवहार से कहा जाता है। निश्चय से तो किसी का आधार नहीं। आहाहा! वास्तव में तो एक समय की पर्याय है, वह भी... आधार उसका गुण है और पर्याय आधेय, वह भी परमार्थ में नहीं। यह आधार का आधेय सब पर्याय में। वह पर्याय कारण और पर्याय कार्य, पर्याय आधार और पर्याय आधेय। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो वीतरागमार्ग, बापू! तीन लोक के नाथ। जो सर्वज्ञ के कथन... में समझ में आ जाये ऐसा। आहाहा!

स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभाव... अकेला पारिणामिकभाव नहीं। क्योंकि उन चार भाव की पर्याय को जयधवल में पारिणामिक कहा है। यह दया, दान, राग को पारिणामिक पर्याय कही है। क्योंकि त्रिकाली द्रव्य की पारिणामिक की पर्याय को (पारिणामिक कहा)। और वस्तु त्रिकाल को परमपारिणामिक कहा है। दूसरी भाषा

में सिद्ध पारिणामिक कहा। है ? सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण... शुद्ध परम-पारिणामिकभावलक्षण। आहाहा! (सहजपरमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण है ऐसा) कारणसमयसार है। वह स्वद्रव्य का आधार है। आहाहा! कारणसमयसार, कारणपरमात्मा वस्तु। आहाहा! वह स्वद्रव्य का आधार है। दूसरी जगह तो आधार-आधेय भी व्यवहार है। उसमें आता है। आगे कहेंगे। श्लोक में आता है न, आधार-आधेय। ... यह कहना है। आहाहा!

यहाँ तो कहा, जिसका स्वभाव सहजपरमपारिणामिकभाव। देखो, यह भी भाव तो है। यह त्रिकाली परमस्वभावभाव, वह गुण जो स्वद्रव्य है, त्रिकाली स्वभाव स्वद्रव्य है, तब पर्याय परभाव और परद्रव्य है तो त्रिकाली स्वभाव स्वद्रव्य है, तो उस स्वद्रव्य का आधार परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात कठिन वीतराग की। जैन की ऐसी बातें होंगी! अरे बापू! यह तो वीतरागमार्ग, बापू!

मुमुक्षु : कहीं नहीं ऐसी बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न, बापू! यह तो ... है न। समय के मारे... यहाँ काम करती थी। क्लास चलती थी मण्डप में। एक महिला थी। मेरी सखी... मेरा दिखाव कैसा लगे। मजदूर जैसा नहीं लगता। मुझे कहे बापू लड़के के... वह महिला ऐसा बोली। मैं जाता था। तुम्हारा दिखाव तो... महाराज! समय के मारे आ गये हैं यहाँ। विपदा के मारे। पति अकेला क्या करे? विपदा के मारे यहाँ नौकरी—मजदूरी करनी पड़ी है। लड़के को पानी। यहाँ कक्षा चलती थी न, वहाँ पानी भरने महिला को रखा था। भावनगर की थी कोई भावनगर की। ... महाराज! विपदा के, विपदा के मारे... काल ऐसा है अभी कि काल के मारे नौकरी करनी पड़ती है। ऐई! आहाहा! ... आहाहा!

(सहजपरमपारिणामिक भाव जिसका लक्षण है—ऐसा) स्वद्रव्य का आधार कारणसमयसार है। आहाहा! स्वद्रव्य में वह त्रिकालीस्वभाव जब स्वद्रव्य। क्योंकि पर्याय जब परद्रव्य कही तो त्रिकाली द्रव्य को स्वद्रव्य कहा। कायम रहनेवाली चीज़ को स्वद्रव्य कहा,पर्याय को परद्रव्य कहा। तो कायम रहने का जो स्वभावभाव जो गुण है, वह उसका आधार कौन? कि सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण उसका आधार है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

यह नियमसार शास्त्र है। इसमें शुद्धभाव अधिकार की ५० गाथा। नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग, नियम से जिससे मोक्ष हो। नियम से अर्थात्? निश्चित जो दशा प्रगट करने से आत्मा को पूर्णानन्द की प्राप्ति और संसार का किनारा—अन्त आवे। यह संसार दावानल, अनादि से अज्ञान और राग-द्वेष में सुलग रहा है। क्या कहा? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और चिदानन्द की मूर्ति सिद्धस्वरूप आत्मा का है अन्दर। उसके भान बिना यह अज्ञानभाव से विकार की वृत्तियों से आत्मा संसार दावानल में सुलग रहा है। बराबर होगा? भानुभाई! पुण्य-पाप दोनों दावानल है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पुण्य को भाईसाहेब दावानल न कहो!

पूज्य गुरुदेवश्री : तब किसकी बात की यह? अभी पूछा था भाई ने। कहते हैं कि भाई! यह गाथा दो ऊँची बहुत सरस है, इसलिए जरा आज लेने का सवेरे से और नियमसार सवेरे-दोपहर में लिया जायेगा, चले उतना चले।

कहते हैं कि प्रभु सर्वज्ञ परमात्मा जिनके आत्मा के असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त दीपक सूर्य उग गये हैं। आत्मा असंख्यप्रदेशी चौड़ा। कद-कद। एक पॉइन्ट यह रजकण जो अन्तिम इसका टुकड़ा हो, उसे जितने में रखें, उतने भाग को प्रदेश—प्र-एक अंश, उसके वस्तु का एक भाग है। ऐसा ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेश में देह में विराजमान, असंख्य प्रदेश चैतन्यधाम है। ऐसे असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द आदि गुण अन्दर में पड़े हैं। जिनकी खेती करने से, अन्तर के आनन्द के स्वरूप में एकाकार होकर श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जो मोक्ष का मार्ग प्रगट करके जिसने आत्मा में मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान अनन्त-अनन्त सूर्य प्रगट किये, तीन काल, तीन लोक जिसके एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ज्ञात हुए, वह भगवान मोक्ष का मार्ग प्ररूपित करते हैं। उनकी वाणी में बन्धन का छुटकारा और आत्मा को शान्ति कैसे हो, इसकी बात करते हैं। उसमें ५०वीं गाथा।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा ॥५० ॥

नीचे हरिगीत है—

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही ।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही ॥५० ॥

जरा गाथा पूरे मोक्षमार्ग की अन्दर मर्म की गाथा है । जो अनन्त काल में इसे रुचि में आया नहीं, ऐसा तत्त्व स्व क्या और पर क्या ? कहते हैं कि इस गाथा में हेय-उपादेय.... हेय और उपादेय । हेय अर्थात् छोड़नेयोग्य और उपादेय अर्थात् अंगीकार करनेयोग्य । त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है । हेय का त्याग और उपादेय का ग्रहण, ऐसा लेना । संक्षिप्त भाषा की है । फिर उसका अर्थ लेंगे । इस गाथा में छोड़नेयोग्य—हेय क्या और आदरणीय—उपादेय अंगीकार करनेयोग्य क्या ? उसका इसमें तत्त्व कहा हुआ है । इसकी विशेषता ।

जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,... क्या कहते हैं ? भगवान् आत्मा की दशा में, उसकी हालत में, उसकी पर्याय, पर्याय समय-समय में होती परिणामन की दशा, उसमें जितने प्रकार पुण्य और पाप के विकल्प हो या वर्तमान उपशम कोई सम्यग्दर्शन आदि की दशा हो या क्षायिक सम्यग्दर्शन की दशा हो या केवलज्ञान की दशा हो, साधक को तो होती नहीं, परन्तु जीव की दशा में वह केवलज्ञान किसी को हुआ हो... समझ में आया ? तो कहते हैं कि वह सब केवलज्ञानादि भाव तेरे लिये, या क्षयोपशम के ज्ञानादि की दशा तेरे लिये वह सब हेय है । नवरंगभाई !

पूर्वोक्त भाव कहे न ? विभावगुणपर्यायें । जो (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,... जाननेयोग्य थे, ऐसा कहा गया था । आत्मा की दशा में उदय अर्थात् विकार पुण्य-पाप का हो या उसे शान्त होकर कुछ सम्यग्दर्शन आदि की दशा हो या चारित्र की दशा हो या क्षायिकदशा सम्यग्दर्शन की हो, वह सब भाव, परन्तु आये थे, है सही, अस्ति है, उसकी दशा में उस प्रकार की वह तथाप्रकार जितना विकास और विकार, विकास और विकार जो उसकी दशा में थे, हैं और होते हैं । किन्तु

शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति अकेली शक्ति का पिण्ड। जैसे मोर के अण्डे में मोर होने की पूरी सामर्थ्य है। साढ़े तीन हाथ का लम्बा मोर हो, वह सब उसमें सामर्थ्य है अन्दर में, उस अण्डे के रस में।

इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्ध चैतन्यरस आनन्दकन्द ध्रुवस्वभाव जिसे परमभाव अन्तरतत्त्व कहा जाता है, जिसे स्वद्रव्य सामान्य अनन्त अनादि-अनन्त शक्ति का सत्त्व (कहा जाता है)। ऐसी दृष्टि करने के लिये, यह निश्चयनय का आश्रय करने के लिये, वे सब; पाप के भाव तो छोड़नेयोग्य श्रद्धा में है, पुण्य के भाव भी छोड़नेयोग्य श्रद्धा में, परन्तु धर्म की दशा त्रिकाल के अवलम्बन से हुई, वह भी हेय कही जाती है। बहुत आगे चला यहाँ तो, भाई! भानुभाई! तुम तो पुण्य का प्रश्न करते थे। यह गाथा तो सवेरे निश्चित की है, हों, कि दोपहर में लेनी है। समझ में आया ?

आत्मवस्तु एक समय में पूर्ण घन आनन्दकन्द द्रव्य अनादि-अनन्त सदृश्य स्वभाव का रसकन्द। एकबार तो यह कहा था। धर्मी ऐसा मानता है कि 'कहे विचिक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रस सौं भर्यो अनादि टेक हूँ। मोहकर्म मम नहीं, नहीं भ्रम कूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है।' सम्यग्ज्ञानी अपने आत्मा को एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में त्रिकाल शुद्ध चैतन्यरस सिन्धु पड़ा है भगवान आत्मा। यह समुद्र ऐसा कहाँ छिप गया ? लोग ऐसा कहे। हमारे भगवानभाई कहते थे कि भगवानजी वकील। कि ऐसी-ऐसी महिमा करते हो... ९९ में, ९५ में व्याख्यान में आवे। (वे कहे) कि यह सब धोया हुआ मूला जैसा गया कहाँ ? आहाहा! अरेरे! कभी खबर नहीं होती चैतन्य की। उसके सत्त्व में सामर्थ्य कितनी है ? एक शक्कर का... भाई! वह कहते हैं न ऊँची शक्कर कहते हैं। सेक्रीन। उसमें इतने में बहुत मिठास... बहुत मिठास... बहुत मिठास.... जड़ की बहुत मिठास। डली की अपेक्षा उसमें बहुत मिठास। उसकी इसे मान्यता (विश्वास)। जो जड़ के रजकण शक्कर की ऐसी डली। उसे रस निकालकर कहे, बहुत मिठास... बहुत मिठास... परन्तु तुझे कितनी कहनी है अब ? कहे। उस मिठास का जाननेवाला भगवान आत्मा, उसके अन्तर ज्ञान में बहुत ही मिठास अनन्त अमृतरस पड़ा है। समझ में आया ? परन्तु पहला परिचय करे, सुने, यह तो अपूर्व अन्तर आत्मतत्त्व

की बात है। यह अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में स्वर्ग में गया, परन्तु यह एक समय भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की पद्धति इसने जानी नहीं, प्रगट की नहीं। सब किया। वह तो बहुत आ गया सवेरे अपने समयसार में। चन्दुभाई! पंच महाव्रत पालन किये, दया पालन कीं, दान किये, तपस्यायें कीं, क्रियाकाण्ड किये। सब राग की मन्दता पुण्य तेरा मुफ्त में—फोगट में गया। धूल और धाणी।

मुमुक्षु : भैंसा चबा गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अज्ञानरूपी भैंसा चबा गया।

भगवान् आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति का सत्त्व ही पूरा अखण्ड आनन्द का रस का कन्द है, परन्तु वह राग और पुण्य के सहारे से वह प्रभु दिखता नहीं। वह पुण्य के विकल्प की प्रेम की रुचि की आड़ में वह प्रेम ले गया राग। इसलिए यहाँ प्रेम चिदानन्द त्रिकाल आनन्दकन्द कौन है, इसमें उसकी रुचिरूपी प्रेम इसने कभी किया नहीं।

यहाँ तो आचार्य (कहते हैं).... भगवान् त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजमान तीर्थकरदेव हैं, उनके पास यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव संवत् ४९, पहली शताब्दी में हुए। नग्न दिगम्बर मुनि। जंगल में आत्मध्यान में अमृत के कुण्ड खोलते थे। खोलते-खोलते नियमसार लिखा गया है। वे स्वयं भगवान् महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् वर्तमान तीर्थकर केवलज्ञानी विराजते हैं, उनके निकट गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। आठ दिन साक्षात् समवसरण इन्द्रों की सभा। समझ में आया? उन इन्द्रों की सभा में आठ दिन रहे। वे इकट्ठे बैठे मनुष्यों की सभा में। इन्द्रों की सभा थी। सर्वज्ञ की ध्वनि आठ दिन सुनी। भावलिंगी सन्त थे, परन्तु भरतक्षेत्र के सर्वोत्कृष्ट आचार्य की पदवी थी, इसलिए कितना अन्दर विरहपना खटका था। अरेरे! वर्तमान में हमको भगवान् का विरह पड़ा। महावीर परमात्मा को तो ६०० वर्ष हुए। साक्षात् मनुष्यदेह में विराजमान परमात्मा का हमको इस क्षेत्र में विरह पड़ा। ऐसा एक विकल्प जरा सा अन्दर ध्यान करते-करते आया और पुण्य का योग (हुआ)। वहाँ गये, आठ दिन सुना। सुनकर यह बनाया है। समझ में आया?

यह ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ऐसा कहते हैं कि

यह आत्मा के त्रिकाल निश्चयनय के बल से, यह वस्तु का स्वभाव आनन्द और शान्तरस, उसका आश्रय करने के जोर से यह पुण्य और पाप की तो रुचि छोड़नेयोग्य, आश्रय छोड़नेयोग्य, परन्तु जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र निश्चयमोक्षमार्ग जो त्रिकाल वस्तु के अवलम्बन से प्रगट हुई धारा, वह निश्चयमोक्षमार्ग भी अन्तर के बल से छोड़नेयोग्य है। भारी कठिन! समझ में आया या नहीं इसमें? रतिभाई! इसमें समझ में आता है या नहीं? तुम्हारे सट्टा में तो सब बातें बहुत करते होंगे वहाँ। आहाहा!

कहते हैं कि यह विभावगुणपर्यायें अर्थात् चारों ही भाव—उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव। इनकी व्याख्या अपने पहले हो गयी है। पहले हो गयी है। कहे थे न बोल? इक्कीस उदय के (बोल)। गति और लेश्या वे सब इक्कीस ऐसे अनन्त प्रकार हैं। यह गति के उदय विकृतभाव पुण्य-पाप आदि और उसकी उपशम होती दशा और एक शान्ति के रस का थोड़ा वेदन होने पर आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो और स्वरूप में रमणता का चारित्र हो, उस चारित्र के भी क्षयोपशम और उपशम आदि भेद हैं। समकित के भी उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक आदि भेद हैं। वे सब भाव विभावगुणपर्याय है, आत्मा की विशेष दशाओं के भाग हैं। वह त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति जो आदरणीय करनेयोग्य है, उसमें वे सब भेद हैं नहीं। समझ में आया? कहाँ गये प्रकाशचन्दजी? क्या कहते हैं?

देखो, व्यवहारनय द्वारा उपादेय जानने में आवे, ऐसा कहने में आया था ४९ (गाथा) में। सम्यग्दर्शन क्षायिक हो, क्षायिक। परन्तु वह अन्तर के स्वरूप में स्वभाव का आश्रय लेने के लिये वह हेय है। हेय अर्थात् पाप तो हेय, पुण्य तो हेय, यह प्रगट हुई पवित्रता की दशा के आश्रय से नयी दशा नहीं होती, इसलिए वह पवित्रता की दशा धर्मी को प्रगट हुई, उसे भी यहाँ हेय कहा गया है। आहाहा! इसने मूल तत्त्व को कभी सुनकर गिना नहीं। आवे जब तत्त्व की (बात, तो कहे), वह सब निश्चय की बातें, वह सब ऊँची बातें, वह सब किसी के लिये, ऐसा करके निकाल दिया है, दरकार की नहीं।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि भाई! भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्य के अवलम्बन के काल में और उसके बल के कारण वे सब भाव... देखो, शुद्धनिश्चयनय के बल से.... ऐसी भाषा है। अन्तर चैतन्य एक अखण्डानन्द

का ध्रुव बिन्दु। जैसे समुद्र के मध्यबिन्दु में से पानी मध्य में से पानी किनारे ज्वार आता है, उस मध्यबिन्दु की भाँति भगवान अन्तर के मध्यबिन्दु में पूर्ण आनन्दरस पड़ा है, उसके अन्तर के आश्रय के बल से वह राग और दया, दान और व्रत का विकल्प (और) पाप का (भाव) और पवित्रता की प्रगट हुई दशा के प्रकार, वे सब हेय हैं, उनका लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। हेय (अर्थात्) उनका आश्रय करनेयोग्य नहीं। बहुत कठिन! हरिभाई! है या नहीं उसमें? परन्तु न्याय है या नहीं?

जो दशा—हालत है हालत... जैसे सोना। सोना में से कुण्डल हुआ और कुण्डल का व्यय होकर कड़ा हो और कड़ा का व्यय—अभाव होकर कुण्डल हो। तो उस व्यय में से—पहली दशा का अभाव, उसमें से नयी दशा आती नहीं। क्योंकि उसका तो अभाव हो गया। कड़ा था, उसे टीपा और हो गयी अँगूठी और अँगूठी को टीप कर अँगूठी का हो गया अभाव और कड़ा हुआ। तो उस दशा का अभाव हुआ, उसमें से नयी दशा का भाव आता नहीं, ऐसा भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण ज्ञायकमूर्ति शुद्ध आनन्द परमात्मस्वरूप अपना निजपरमात्मा, निज कारणप्रभु त्रिकाल जिसमें से कार्यदशा प्रगटे, ऐसे कारणपरमात्मा का अन्तर अपना निज स्वभाव, उसके अवलम्बन से ये सब चारों ही भाव हेय हैं। समझ में आया इसमें? समझ में आता है या नहीं इसमें? कहाँ गये? जीवराजभाई! समझ में आया इसमें? इसमें अर्थात् यह। आहाहा!

यह गाथा तो देखो! अब अभी तो हेय पहले कहकर फिर बात करेंगे। जिसे अमृत के सागर में अन्दर जाना है, चैतन्य अन्दर में अमृत अतीन्द्रिय आनन्द के रस से परिपूर्ण जिसका स्वभाव, परिपूर्ण जिसका स्वभाव, एकरूप जिसका स्वभाव, अभेद जिसका निरुपाधि आत्मा के साथ स्वभाव, ऐसा अन्तर बल की दृष्टि से वह वर्तमान प्रगट हुआ विकार या अविकारी दशायेँ, वे हेय हैं। क्योंकि उनका लक्ष्य और आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

किस कारण से? वह हेय किस कारण से? छोड़नेयोग्य किस कारण से? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! क्यों? यह गाथा तो माल—मक्खन की है अकेली। वह तो समयसार में इस शैली की बात है, परन्तु वहाँ अमुक शैली से बात करके यहाँ खुल्ला रख दिया है ऐसा। क्योंकि मोक्षमार्ग का अधिकार है न। सच्चा मोक्षमार्ग। तो

सच्चा मोक्षमार्ग अर्थात् पवित्रता की धारा बहे, वह पवित्रता के पिण्ड के कन्द में से आती है। त्रिकाल पवित्रता का कन्द ऐसा आत्मद्रव्य, उसके आश्रय से पवित्रता की धारा बहती है। इससे वह सब चार दशायें—हालत है, हालत विकारी या अविकारी दशायें—पर्यायें—हालत है, वह परस्वभाव है। परस्वभाव है। त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है। विकार की अकेले की बात नहीं। यह शुद्ध आनन्द की पर्याय प्रगट हुई सम्यग्दृष्टि को और शुद्ध चारित्र आत्मा की रमणता छठवें गुणस्थान में या सातवें में प्रगट हुई, वह आनन्द की धारा और शान्ति की पर्याय अन्तर शान्त (रस की प्रगट हुई, वह परस्वभाव है)। समझ में आया ?

ऐसा श्रीमद् में नहीं आया ? 'वचनामृत वीतराग के परम शांत रसमूल, औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल।' कायर का तो कलेजा कांप उठे। 'वचनामृत वीतराग के परम शांत रसमूल।' उसकी पर्याय में शान्त (रस) आवे, परन्तु उसका त्रिकाल शान्तरस है, वह मूल सब धर्म की दशा का है। उसका आश्रय करने से आत्मा को धर्मदशा प्रगट होती है, परन्तु धर्मदशा प्रगट हुई, उसके आश्रय से नयी धर्मदशा प्रगट नहीं होती। इसलिए वह सब निर्मल और मलिनदशा के अंशों को 'परस्वभाव है'—ऐसा कहा गया है। समझ में आया ? परस्वभाव। अभी तो यहाँ चिल्लाहट मचाये। जहाँ पुण्यभाव को परभाव कहे, वहाँ चिल्लाहट-पुकार (करे)। वह धूल तो कहीं रह गयी। शरीर, वाणी, मन वह तो परमाणु, उसके कारण से उनका पलटा हुआ करता है, लहरें उठा करे, उसकी दशा की, वह तेरे कारण से नहीं, परन्तु तेरे कारण के अपराध से पुण्य और पाप के विकल्प उठे, यह व्रत और दान, दया, भक्ति, पूजा और यह संयम और ऐसे विकल्प जो उठे कि ऐसे दमन करूँ और यह व्रत करूँ, यह पालन करूँ, वह सब वृत्तियाँ तो हेय हैं, परन्तु हेय करके अन्तर का आश्रय लेकर जो धर्मदशा प्रगट हुई, वह भी हेय और परस्वभाव है। समझ में आया ? वे परस्वभाव हैं, परस्वभाव हैं। बहुत (कठिन) बात, भाई!

और इसीलिए परद्रव्य हैं। आहाहा! क्या कहते हैं ? आत्मा से जैसे यह रजकण परवस्तु है परवस्तु, उसी प्रकार पुण्य और पाप के भाव आत्म त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से परवस्तु है। वह तो परवस्तु है, परन्तु भगवान आत्मा के निश्चय के आश्रय से प्रगट

हुई धर्मदशा, उसे भी हम परद्रव्य कहते हैं। परद्रव्य कहते हैं। क्यों? कि जैसे कि रजकण में से जीव की धर्मदशा यहाँ से आती नहीं, वैसे पाप के परिणाम में से नयी धर्मदशा नहीं आती, वैसे पुण्य में से नयी नहीं आती, वैसे पवित्रता की प्रगट हुई दशा में से धर्म की दशा नयी नहीं आती। इसलिए, इस अपेक्षा से सब परद्रव्य कहे गये हैं।

‘द्रव्यति इति द्रव्यं’ द्रवे, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रवे-द्रवे। पानी होता है न, वह पानी ऐसे प्रवाह रखे, तरंगें छोड़े। उसी प्रकार द्रव्य उसे कहते हैं कि द्रवे। तो आत्मा की पर्याय जो विकार है और कुछ धर्म फिर प्रगट हुई दशा, वह द्रवकर पर्याय छोड़े, ऐसा उसमें धर्म नहीं। सूक्ष्म पड़े परन्तु सुनना तो सही न यह! आहाहा! सुनने को मिले नहीं, वह कब विचार की धार पर चढ़ावे और कब रुचि करके अन्तर्मुख में जाये।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! एक बार अन्तिम में अन्तिम यह बात कि जो तुझे कठिन लगे, तो भी एक बार तो (सुन) ! यह परस्वभाव। अरेरे! परस्वभाव? क्षायिक समकित, अन्दर शुद्धता की चारित्र अविकारी दशा, तीन कषाय विकार के मलिनभाव छूटकर (प्रगट हुई) निर्मलदशा, आत्मा के आश्रय से सन्तों को अन्तर में निर्मल धारा अमृत की बहती है, कहते हैं कि वह परस्वभाव है। क्योंकि उसमें से नयी दशा आती नहीं। जैसे राग में से नयी आती नहीं, निमित्त में से नयी आती नहीं, वैसे इसमें से आती नहीं, इसलिए हम इसे परस्वभाव कहते हैं। और परस्वभाव है, इसलिए वह परद्रव्य है। आहाहा! पाठ में तो ऐसा है न, भाई! ‘पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।’ अर्थात् पहले यह निकाला कि ‘पुव्वुत्तसयलभावा हेयं परसहाव परदव्व इति’ ऐसा। क्या कहा?

कहते हैं कि भगवान! यहाँ तो भगवान कहकर ही आत्मा को बुलाते हैं। एक कहे कि अरे! ‘पामर को प्रभु कर बुलावे रे।’ अरे! पामर नहीं, प्रभु! तू तो महा प्रभु है। तेरी बात में तेरे गीत की क्या बातें करना? तेरी निर्मलदशा प्रगटे, उसकी तो क्या बात परन्तु त्रिकाली बात की वस्तु का तो क्या कहना? ऐसा चिद्घन पूर्णानन्द प्रभु। परन्तु उसके ख्याल में अभी वर्तमान दशा का अस्तित्वपना प्रतीति में न आवे, भरोसा में न आवे, प्रगट उसकी दशाओं के अंश, राग, पुण्य, वह ज्ञान का गुण में से कुछ अंशरूप प्रगट व्यक्त क्षयोपशम व्यक्त, ख्याल में जो आता है कि ‘यह मैं हूँ, यह पर है’—यह

अवस्था, उसका भी जहाँ अस्तित्वपना, विद्यमानपना ख्याल में बराबर न आवे, उसे इन सब दशाओं के पार एकरूप भगवान है, वह प्रतीति में किस प्रकार आवे ? समझ में आया ? बराबर कहा या नहीं ? क्या कहा यह ? बराबर अर्थात् ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका पहला परिचय का अभ्यास करना कि यह क्या कहते हैं परन्तु यह ?

यह भगवान एक समय का प्रभु जिसके अन्तर रस में अनन्त केवलज्ञान ज्योतियाँ प्रगटे, उनकी खान; अनन्त-अनन्त आनन्द प्रगटे, उसकी खान—ऐसी चैतन्य वस्तु के स्वद्रव्य की अपेक्षा से और उसके त्रिकाली निरुपाधि स्वभाव की अपेक्षा से उसके वर्तमान विकृतभाव और निर्विकारी धर्मी जीव की दशा हुई, उस दशा को भी त्रिकाल निरुपाधि स्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव कहा, त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से स्वद्रव्य की अपेक्षा से उसे परद्रव्य कहा, त्रिकाल द्रव्य उपादेय की अपेक्षा से उसे हेय कहा। समझ में आया ? ऐसी बात ही ऐसी लगे न, भानुभाई ! यह तो सूक्ष्म बातें है, बापू !

मुमुक्षु : समझ में आये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आये ऐसा है ? परन्तु यह सब पुण्य से धर्म होता है, ऐसा नहीं रहता इसमें। प्रभुभाई ! अभी आये थे अन्दर। बापू कहते हैं, ऐसा होता है, ऐसा होता है। कहा, सुनो तो सही, भाई ! प्रभु ! क्या बातें कहते हैं ? परन्तु पूरे दिन वे बातें पड़े न कान में। जो मिले ऐसा कहे कि नहीं ऐसा होगा, नहीं ऐसा होगा, इससे ऐसा होगा। भगवान ! नहीं होगा। होगा वह होगा और नहीं होगा उसकी तुझे खबर पड़े नहीं।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव सर्वज्ञ से अनुभव किया हुआ तत्त्व, उसे जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। अरे ! आत्माओं ! भगवान ऐसा फरमाते हैं, त्रिलोकनाथ की वाणी की धारा में ऐसा आगम में आया है, उस आगम की रचना हमने यहाँ नियमसाररूप से की है। उसमें ऐसा कहा गया था, वह कहा जाता है कि भगवान आत्मा... यह सब बातें लोगों को बाहर का ऐसा रुचे न, ऐसी बाहर की भक्ति, पर की भक्ति, ओहोहो ! बापू ! वह तो परसन्मुख के लक्ष्यवाला भाग तो राग है। हो भले, परन्तु

उससे धर्म होगा और उसके आश्रय से नया धर्म होगा, यह वस्तु में नहीं। यह बात। समझ में आया? एक तो भक्ति के लिये रोता था, भाई। गये थे न अपने, नहीं? (संवत्) १९९६ में, नहीं? गिरनार चढ़े तब एक बाबाजी थे। बड़े भाई ऊपर नहीं आये थे तब। नहीं आये थे, खबर है। तब एक बाबाजी थे। वहाँ हम निकले बेचारे देखो न, ऐसे रोवे भक्ति के लिये। आहाहा! भगवान के दर्शन (होते नहीं)। परन्तु भगवान बाहर कहाँ है? भगवान तो यहाँ है अन्दर में। बाहर का भगवान दर्शन दे, ऐसा नहीं और भगवान हो गये वे ऊपर से उतरे, ऐसा नहीं। समझ में आया? जो पूर्णानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्तदशा के परमात्मपद को प्राप्त हुए, वे कहीं नीचे उतरते नहीं, वह कहीं तेरे पास आवे, ऐसा नहीं। तेरे पास तेरा परमात्मा पड़ा है अन्दर। **‘अप्या सो परमप्या।’**

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमस्वभाव का सत्त्व अकेला पर्वत भगवान का आश्रय लेने के लिये, उसके निश्चय अर्थात् सत्य के नय अर्थात् ज्ञान में अंश त्रिकाल में पकड़ने जाने से उसके बल द्वारा इन सब दशाओं को परस्वभाव कहकर हेय कहते हैं और उन्हें परद्रव्य कहते हैं। वह क्षायिकसमकित परद्रव्य। यह तो ३८ से शुरु किया था, भाई! **‘जीवादिबहितच्चं हेयम’** पहले से शुरु किया था। वह यहाँ आया है और फिर पाँच गाथा बाकी है। समझ में आया? अरे! एक खाना तो खाली रख, जिसमें यह माल प्रविष्ट हो। खाली खाना बिना माल आवे तो डालना कहाँ? जिस जाति का धन्धा ही न हो और माल आकर पचास हजार का माल आया। कहाँ डालना? परन्तु माल क्या है? खाना न मिले। एक तो खाना खाली रख, भाई! कोई नयी चीज़ आवे तो। इसी प्रकार अन्तर में जानने के खाना में इस बात को प्रवेश करने का अवकाश ही न रखे, ऐ... ऐसा नहीं, यह ऐसा नहीं, यह ऐसा होता है। थोड़ी देर शान्त हो, भगवान! थोड़ी देर धीर हो, प्रभु! क्योंकि अन्त में मरने के समय सब शरीर के अवयव शिथिल पड़ जायेंगे। ऐसा-ऐसा होगा। कहीं तुझे शान्त तो होना पड़ेगा उसे देखने के लिये। न देखने के लिये स्थिर हो तो उसमें राग-द्वेष करने के लिये वहाँ (स्थिर होगा)। जीव न निकले झट, तब फिर लोग ऐसा कहें न बहुत वह लगाये न इंजेक्शन यह सब डॉक्टर इकट्ठे होकर। फिर बहुत हो तो होशियार व्यक्ति हो तो कहे, भाई! रहने दो। अब देखो। ऐसा नहीं कहते? खबर है? अब देखो, अब शान्ति से देखो अर्थात् इसका अर्थ कि यह

अब दो-चार घण्टे में अभी शान्त हो जायेगा। अभी देखो। ऐ... 'अभी देखो' करने से पहले 'मैं देखनेवाला—जाननेवाला पहले से हूँ' ऐसा निर्णय कर न! पहले से देखनेवाला हो जा न! ऐसे अन्तिम स्थिति हो और वह बीस वर्ष का लड़का मरता हो, दो वर्ष का विवाहित हो और फिर बहुत इंजेक्शन लगाये हों। अभी कोई कहता था यह नानालालभाई, कि सैंकड़ों इंजेक्शन दिये। अब ८८ वर्ष की उम्र में। पत्र में आया था। भाई! इंजेक्शन फिर अन्तिम स्थिति। पश्चात् होशियार व्यक्ति कहे, भाई! अब इंजेक्शन लगाना रहने दो बहुत। इसका अर्थ कि अब आशा है नहीं। आशा नहीं और कहाँ तक... ? अब देखो, अब देखो खेल खेला जाता है उसे देखो।

उसी प्रकार कहते हैं कि हे आत्मा! एक बार यह खेल खेला जाता है शरीर का, वाणी का, मन का, पुण्य-पाप आदि पर्यायों का, अन्तर्मुख होकर एक बार देख तो सही क्या होता है? भानुभाई! सब एक प्रकार के हैं न बहुत। उसकी उम्र बड़ी हो गयी अब ८३ हुई। तुम्हारे सब धीरे-धीरे रास्ता तो लेंगे या नहीं? जो होगा अनादि का... यह शरीर तो मुर्दा है। मृतक कलेवर है। मृतक कलेवर है यह। अमृतस्वरूप भगवान है। यह आया ९६वीं गाथा में। समयसार में ९६ में आया है। भगवान आत्मा अमृत का कन्द ऐसा अमृत शरीर है और यह शरीर मृतक है। इसके सामने गुलांट खाये, ऐसा मृतक शरीर है। अभी, हों! फिर जीव निकले, तब की बात नहीं। समयसार की ९६वीं गाथा में अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। अमृत के सामने मृत। यह तो मृतक कलेवर, परन्तु तेरे आश्रय के लिये पुण्य-पाप और वर्तमान प्रगट हुई दशा तेरे जीवन के शोधन में काम आवे, ऐसी नहीं। आहाहा! तेरे लिये तो वह आत्मा के अन्तर के सरोवर में प्रवेश करना हो....

नहीं कहते, भाई? क्या समुद्र में से लेकर आते हैं न? मोती लेने नहीं जाते अभी कहीं बहुत। मरजीवा। 'मरजीवा ते महासुख माणे, अे देखनारा ते दाजे जोने। अे मरजीवा ते महासुख माणे।' पड़े हैं अन्दर में वे 'महासुख माणे' उल्टा डालकर मोती ले आवे बाहर। वह तो बाहर की बातें हैं। समझ में आया? 'समुद्र सहेजे उल्लसियो अने मोती तणाणा जाय। भाग्यवान कर वावरे अेनी मोतिये मुठीयुं भराय। पण समुद्र सहेजे उल्लसियो अने सहेजे उल्लसियो।' सहज उल्लसियो। 'अने शंखला तणाणा जाय। भाग्यहीन कर वावरे अेनी शंखले मुठीयुं भराय।'

भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं कि यह अन्तर के आनन्द के मोती बीनने अन्दर प्रविष्ट हुआ, उसे सहज मोती की धारा पकड़ने, आनन्द की धारा अन्दर में प्रविष्ट हुआ ऐसे जीव के लिये यह पुण्य और पाप, दया और दान और वर्तमान प्रगट हुई पर्यायें, इसे पकड़नेयोग्य नहीं। छोड़... छोड़... छोड़। समझ में आया ? यह आँखें ऐसा कुछ करती है समुद्र में। ऐसा इतना रखे। समझे न! जाये गहरे। बहुत गहरे जाये आँख उघाड़कर, पानी घुसे नहीं और एक भुंगला ऊपर रखे, इसलिए वह हवा उसे आवे। हवा भरे। ऐसे आँख ऐसी हो न, ऐसे रखकर देखे कुछ है या नहीं ? परन्तु भाग्यवाला हो, उसे मोती दिखायी दे। भाग्यहीन को मोती दिखायी नहीं दे। पड़े वे दिखायी न दे, ढेर न दिखायी दे पड़े अन्दर। उसी प्रकार भगवान आत्मा अमृत का कुण्ड आनन्दकन्द पड़ा है, वह पुण्यवन्त अर्थात् पवित्र दृष्टिवाला अन्दर में पड़े, उसे पवित्रता भासित होती है। समझ में आया ? उसके लिये यह सब चारों दशाओं के भाव; दशा अर्थात् हालत... समझ में आया ? पोपटभाई याद आये इसमें तो। उस दशा के कारण। यह पोपटभाई बोले थे कि दशा, वह दशावान से होती है; दशा से दशा नहीं होती। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि यह सब परस्वभाव, इसीलिए परद्रव्य है, ऐसा वापस। ओहोहो!

शरीर, वाणी, मन, जड़ तो परद्रव्य, परवस्तु; पुण्य-पाप के भाव परद्रव्य और अन्दर धर्म—क्षायिकसम्यक् और चारित्रदशा प्रगट हुई, वह परद्रव्य। एक समय की दशा में से नयी दशा नहीं आती, इसलिए स्वद्रव्य नहीं। स्वद्रव्य उसे कहते हैं कि त्रिकाल में अन्दर पड़ने से नयी दशा प्रगट हो, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। इस अपेक्षा से वह पर्याय निर्मलदशा और मलिन को परस्वभाव कहकर, परद्रव्य कहकर हेय कहा गया है। छोड़ उसका लक्ष्य। लक्ष्य छोड़े। ऐई! हरिभाई! आये पीछे से। पीछे से आये ऐसा जितना हो, उतना खताया जाता है, कहीं पूरा खताया जाता है ? कहो, समझ में आया इसमें ?

सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित... अब अस्ति की बात करते हैं। वह नास्ति की बात की, हेय की बात की, अब उपादेय की बात करते हैं। जिसमें दृष्टि देनेयोग्य है, जिसमें अंगीकार करनेयोग्य है, जो आदरणीय है। कौन ? **सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित...** यह चार प्रकार की दशायें—उदय विकार, उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम। ऐसे गुण की दशाओं से रहित, विभाव—विशेष गुण की दशा से रहित। यह मतिज्ञान आदि

सब विभाव कहलाते हैं। शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप.... शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप। ओहोहो! अकेला शुद्ध अन्तःतत्त्व। दूसरी भाषा से कहें तो उन सब दशाओं को बहिःतत्त्व कहा है। क्योंकि परस्वभाव कहा न? परस्वभाव कहो, बहिःतत्त्व कहो, बहिर्भाव कहो। समझ में आया? भगवान आत्मा उन सब दशाओं के हालत का एक अंश है, सब दशाओं से रहित शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप, शुद्ध अन्तःस्वभावस्वरूप, अन्तः त्रिकाल स्वभावस्वरूप स्वद्रव्य, वह स्ववस्तु, वह उपादेय है, वह दृष्टि में लेने योग्य और आदरणीय एक ही चीज़ है वह। समझ में आया?

वास्तव में.... उनसे रहित। सर्व विभाव से रहित, यह तो नास्ति से कहा और शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य, यह अस्ति कहा। परम अस्ति, परमसत्ता... परमसत्ता... परमसत्ता। परम अस्तिवाला स्वभाव परमसत्ता, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। वह तेरा द्रव्य अर्थात् तेरी वह चीज़ कि जिस चीज़ में से धर्मदशा का प्रवाह बहता है, उस तेरी चीज़ को हम स्वद्रव्य कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? **वास्तव में सहजज्ञान—** स्वाभाविक त्रिकाल ज्ञान, स्वाभाविक त्रिकालदर्शन, त्रिकाल सहजचारित्र... अन्तर-अन्तर चारित्र अर्थात् स्वभाव रमणतारूप स्वभाव त्रिकाल। पर्याय का नहीं, वर्तमान दशा का नहीं। सहजचारित्र अर्थात् शान्तरस कन्द पड़ा है, वह स्वाभाविक चारित्र सहजपरमवीतराग-सुखात्मक... सुख लेना है यहाँ तो। और परम सहजपरमवीतरागी, स्वाभाविक परम अविकारी सुखस्वरूप, अविकारी सुखस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर में पड़ा है पूरा। शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप.... शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप। इन चार को वापस करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र और सुख जो सहज अविकारी सुखस्वरूप ऐसा शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप। वह उस स्वद्रव्य का आधार.... उस शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार.... यह सब शुद्ध अन्तः (तत्त्वस्वरूप) इस स्वद्रव्य का आधार। आहाहा! सहजपरमपारिणामिकलक्षण कारणसमयसार है। गुण-गुणी का अभेद किया।

यह स्वद्रव्य जैसे गुण जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त सुख पड़ा है अन्दर, ऐसा जो शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप, अन्तःतत्त्वस्वभाव, वह इस स्वद्रव्य का आधार ऐसा जो स्वद्रव्य, ऐसी जो स्ववस्तु, उसका आधार, यह तो आधार-आधेय अभेद कर डालते हैं, स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव त्रिकाल। परमपारिणामिक एकरूप

स्वभाव, उसे कारणसमयसार कहते हैं। भाषा अभी कारणसमयसार क्या? आहाहा!

‘रजकण या रिद्धि वैमानिक देव की’ वह तो कहीं रह गया, परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प वर्तमान कृत्रिम दशा, वह कहीं रह गयी और अकृत्रिम जो शान्ति, श्रद्धा आदि प्रगट हुए, वह कही रह गये, यहाँ तो त्रिकाल में पड़ा हुआ बेहद अपरिमित स्वभाव का सत्त्व, वह का वह द्रव्य, उसका आधार वह तो अभेद करके वर्णन करते हैं। यह सब एक है। स्वद्रव्य अर्थात् परमपारिणामिकभाव, ऐसा। समझ में आया? उसका आधार सहज स्वाभाविक परमपारिणामिक जिसे किसी निमित्त के सद्भाव की या अभाव की अपेक्षा नहीं, ऐसा त्रिकाल चिद्घनमूर्ति प्रभु, ऐसा लक्षण सहज परमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण, ऐसा कारणसमयसार है, उसे—अतःतत्त्व को स्वद्रव्य कहा जाता है। वह एक ज्ञानियों को उपादेय है, धर्मियों को उपादेय एक ही है। ओहोहो!

भगवान! बाहर के तीर्थकर, केवली, मन्दिर, मूर्तियाँ उपादेय तो कहीं गयी। यहाँ तो राग आया उन भगवान के प्रति भक्ति का, वह उपादेय तो नहीं, परन्तु उसका ज्ञान प्रगट हुआ निर्मल सम्यग्ज्ञान, वह उपादेय नहीं। होता है, व्यवहार के काल में व्यवहार हो भले, परन्तु वह उपादेयरूप से अन्तर के निश्चय के उपादेयरूप से सत्कार करनेयोग्य है नहीं। आहाहा! समझ में आया? जाननेयोग्य है। उस उस काल में वह पर्याय निर्मल हो, स्वभाव में से प्रगट हुए आनन्द के अंकुर, शान्ति के अंकुर धर्मरूप हों, किंचित राग भी बाकी हो, (वह) जाननेयोग्य है, और उस राग का शुभभाव हो, तब सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति उसे भक्ति का झुकाव हो तो भगवान है, ऐसा जाननेयोग्य है। समझ में आया? प्रकाशचन्दजी! झगड़ा तो कहीं अभी पुण्य और पाप के व्यवहार के हैं। व्यवहार अर्थात् वह। यहाँ तो सब पर्यायें ही व्यवहारनय का विषय है। वह केवलज्ञान तो उसे भले न हो, परन्तु चार ज्ञानदशा छद्मस्थ को हो, चार ज्ञान, वह पर्याय, वह व्यवहार है, परस्वभाव है, परद्रव्य है, परतत्त्व है; इसलिए हेय है।

एक भगवान आनन्द की खान है, सच्चिदानन्द—सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का रूप, उसका त्रिकाल एकरूप है। जिसमें भले सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज सुख और सहज चारित्र—ऐसा अन्तःतत्त्वस्वरूप यह स्वद्रव्य, वही स्वयं सहज-परमपारिणामिकभाव है, उसे कारणसमयसार कहते हैं। क्यों कारण शब्द वहाँ रचा?

कि नयी कार्यदशा के लिये कारण यह है। नयी कार्यदशा के लिये चार दशायें कार्य में कारण हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहने के लिये रचा है। आहाहा! समझ में आया इसमें कुछ? यह तो सम्यग्दर्शन का विषय क्या?—कि सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन नहीं। बापू! वह तो पर्याय है, वर्तमान एक प्रगट अंकुर दशा है। वह दशा है, उसमें से नयी दशा नहीं आती। इसलिए जैसे शरीर में से धर्म की दशा नहीं आती, वैसे राग में से नहीं आती, वैसे क्षायिक समकित में से नयी नहीं आती; इसलिए जिसमें से नयी आवे, उसे स्वद्रव्य कहते हैं, यह नयी न आवे, उन सबको परद्रव्य कहा जाता है। भारी सूक्ष्म! समझ में आया? एक बात ऐसी है, इतना लक्ष्य में तो रखे कि ऐसा कुछ तत्त्व के विषय में ऐसा एक भाग कहा जाता है, कहा है, जाना हुआ है और आदर किया हुआ है, ऐसी चीज़ अन्दर पड़ी है। समझ में आया? ऐसा शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप वह स्वद्रव्य है, और यह पर्यायें जितनी प्रगट हुई विकार या अविकार, वे परद्रव्य हैं, अर्थात् कि वे आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए उन्हें परद्रव्य कहकर, परभाव कहकर, परवस्तु कहकर, परतत्त्व कहकर छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहा गया है। मूलजीभाई! क्या है इसमें?

इस प्रकार.... इस गाथ का अर्थ हो गया। ‘पुव्वुत्तसयलभावा’ देखो, एक शब्द यह पड़ा था। ‘परदव्वं परसहावमिदि हेयं’ पूर्व में कहे हुए पर्याय की वर्तमान दशा के चार प्रकार, वे ‘परदव्वं परसहावमिदि हेयं’ इसलिए उन्हें हेय कहा। ‘सगदव्वमुवादेयं’ अपना द्रव्य कौनसा? कि अन्तरतत्त्व। अन्तःतत्त्व कि जो अपना द्रव्य, उस अन्तर तत्त्व में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि डाले, उनका आधार अर्थात् उनका स्वरूप, वह परमपारिणामिकस्वभाव ज्ञायक त्रिकाली भाव, वह ‘हवे अप्पा’ वह उपादेय ‘हवे अप्पा’ वह आदरणीय हो आत्मा। ऐसा आत्मा, वह आदरणीय है। है न श्लोक में? श्लोक के शब्द में से यह सब अर्थ हैं। अब जिसकी पर्यायबुद्धि है, उसे तो सम्यग्दर्शन हो नहीं सकता, परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, उसे पर्यायबुद्धि रहती नहीं, ऐसा यहाँ तो बतलाना है। समझ में आया? आता है न उसमें?

‘स्वार्थ के साचे, परमार्थ के साचे चित्त, साचे साचे वैन कहे साचे जैनमति है। काहुं के विरोधी नाहीं, पर्यायबुद्धि नाहीं। काहुके विरोधी नाहीं, पर्यायबुद्धि नाहीं।

अन्तर गवेशी सो अजाति लक्षपति है। दास भगवंत के उदास रहे जगत सो, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है। 'समझ में आया? 'स्वार्थ के साचे।' धर्मी तो अपने स्वार्थ का सच्चा है। यह स्वार्थी को तो लोग वैसा कहते हैं। यह स्वार्थी वह पैसे-पैसे के। उनकी यहाँ बात नहीं। यह तो अपना ही प्रयोजन सिद्ध करने के लिये जिसे पर की दरकार है (नहीं)। 'स्वार्थ के साचे, परमार्थ के साचे।' परमपदार्थ ऐसा अन्तःतत्त्वस्वभाव का आश्रय करने में धर्मी परम सच्चे हैं। समझ में आया? 'स्वार्थ के साचे, परमार्थ के साचे, चित्त साचे साचे वैन कहे।' सच्चे सच्ची वाणी करे, सच्चे जैनमति वीतराग के मत के माननेवाले हैं। 'अंतर की लच्छी सो अजाची लक्षपति है।' अन्तर की शुद्ध सम्पदा की दृष्टिवन्त धर्मात्मा अजाची—किसी से याचना नहीं करता। वह पर्याय से याचना नहीं करता, राग से याचना नहीं करता, पर से याचना करना रहता नहीं। उसकी प्रगट हुई पर्याय से माँगना नहीं। अन्तर में एकाग्र हो, उतनी निधि प्रगट होती है। अकेला स्वद्रव्य चिदानन्द भगवान, वही अंगीकार करनेयोग्य सम्यग्दृष्टि को है, दूसरा कोई अंगीकार करनेयोग्य नहीं। ऐसा कहकर इस गाथा में चार भावों को हेय ठहराया। एक परमस्वभाव को उपादेय ठहराया। जिसे तत्त्वार्थसूत्र में दूसरे अध्याय में, पहले सूत्र के अन्दर पाँच भावों को जीवतत्त्व कहा था। यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के शिष्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र के अन्दर दूसरे अध्याय के पहले सूत्र में पाँच तत्त्व—यह जो भाव, उन्हें जीव का तत्त्व कहा था। जीव (का) स्वतत्त्व है। वह पर्यायदृष्टि का कथन है।

यहाँ एक परमस्वभाव त्रिकाली वह अन्तःतत्त्व एक ही जीवतत्त्व है और चार तत्त्व को बहिरतत्त्व परभाव कहकर, परद्रव्य कहकर हेय ठहराया है। विरोध तो नहीं होगा न परस्पर? वहाँ शिष्य कहे कुछ, गुरु कहे कुछ। जिनदासजी! यह आते हैं या नहीं पाँच भाव? भगवान! वह पर्यायनय का ज्ञान कराने के लिये बात की है और यहाँ तो त्रिकाल अन्तःतत्त्व को जीवतत्त्व कहा गया है, वे चार जीवतत्त्व नहीं। वे परतत्त्व परभाव परस्वभाव विभावभाव पर अपेक्षा और परद्रव्य, ऐसे दोनों का फैसला करके चैतन्य त्रिकाल एकरूप है, वह अंगीकार करनेयोग्य है, जिस निधान में से वह निधि प्रस्फुटित होकर आत्मा की दशा विशेष प्रगट होती है। उसे स्वद्रव्य कहा जाता है। यह ५०वीं (गाथा) हुई।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - ०४-११-१९५१
गाथा - ५१ से ५५, प्रवचन नं. ३९६

यह नियमसार की (शुद्धभाव अधिकार की) पाँच अन्तिम गाथायें हैं। ५१ से ५५। इनमें रत्नत्रय का स्वरूप है। रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, वह किसे कहा जाये, उसका इसमें स्वरूप है। रत्नत्रय अर्थात् मोक्ष का मार्ग। रत्न की पूर्ण शुद्धदशा ऐसी निर्मलदशा का नाम मोक्ष। उसका कारण ऐसी आत्मा की अन्दर की जो निर्मल वीतरागी पर्याय, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। उसमें शुभरागरूप व्यवहाररत्नत्रय का भाव, वह बन्धरूप है, परन्तु उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं। इसमें १०९ पृष्ठ पर।

ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। तीन बोल आ गये हैं। भगवान आत्मा अन्तर स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान, और रमणता करते हुए, उसकी अधूरी दशा जब तक होती है, तब तक उसे शुभराग होता है, शुभराग। उस शुभराग में पंच परमेष्ठी की भक्ति होती है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ऐसे पंच परमेष्ठी की परम्परा भक्ति, पंच परमेष्ठी की श्रद्धा, वह आत्मा को राग का कारण, शुभराग का निमित्त है, उसे व्यवहारश्रद्धा कही है। कहो, समझ में आया? पंच परमेष्ठी सर्वज्ञ भगवान अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन पाँच की श्रद्धा को यहाँ व्यवहारश्रद्धा कही है। क्योंकि यह शुभराग है। और संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान)... भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ जो ज्ञान, उसमें संशय, विपरीतता और अज्ञानता का त्याग होकर जो कुछ व्यवहारिक सम्यग्ज्ञान होता है, उस व्यवहारसम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? और पाप के परिणाम से मुनि को अशुभ के भाव से निवृत्ति, उसे शुभरूप व्यवहारचारित्र कहते हैं। यह बात आ गयी है। ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। १०९ पृष्ठ पर पहली लाइन। ऐसे भेद उपचार, भेदरूप व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् मोक्ष के व्यवहार निमित्तरूप कारण की परिणति अर्थात् शुभरागरूप अवस्था है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहते हैं। वास्तव में वह मोक्षमार्ग है नहीं, परन्तु वह विकल्प है, उसे उपचार से कहते हैं। समझ में आया?

उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। दूसरी लाइन।

उसमें भगवान सर्वज्ञ वीतराग तीर्थकरदेव ने छोड़नेयोग्य भाव पुण्य-पाप आदि कहे और उपादेय चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह उपादेय है, ऐसा जो विकल्पवाला, रागवाला तत्त्व का ज्ञान, वह व्यवहारसम्यग्ज्ञान है। भाई! वह व्यवहारसम्यग्ज्ञान है। कहो, समझ में आया? अभी तो व्यवहार अर्थात् विकल्प शुभराग। आत्मा में सर्वज्ञ भगवान आदि पंच परमेष्ठी की श्रद्धा यथार्थ होना, उससे विरुद्ध ब्रह्मा, विष्णु, महेश या दूसरों ने कहे हुए तत्त्वों की विरुद्ध मान्यता टलना, उसका नाम व्यवहारश्रद्धा का शुभराग है। और भगवान ने कहे हुए शास्त्रों में से संशय, विमोह और विभ्रम टालकर जो ज्ञान करना और हेय-उपादेय का विवेकवाला व्यवहारिक सम्यग्ज्ञान, उसे व्यवहारसम्यक् रत्न कहते हैं। कहो, समझ में आया? निश्चय की बात बाद में आयेगी।

इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... इस शब्द से अन्दर है तो निश्चय सम्यक्त्व। आत्मा का नीचे अन्दर बाद में कहेंगे। शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मा है, उसकी अखण्ड स्वभाव की प्रतीतिरूप निर्विकल्प सम्यक्, ऐसे समकितरूप परिणाम। परिणाम में भी समकित पर्याय है। आत्मा त्रिकाल शुद्ध ध्रुव ज्ञायक कारण शक्ति से भरपूर भगवान है। ऐसी अन्तर में निर्विकल्प रागरहित सम्यक् प्रतीति का नाम निश्चय-सम्यग्दर्शनरूप परिणाम है, वह मोक्ष का मार्ग है। उस परिणाम का बाह्य सहकारी कारण, बाह्य सहकारी अर्थात् सच्चा निमित्तकारण, **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ, ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** आत्मा के त्रिकाल शुद्ध चैतन्यस्वभाव की प्रतीति होने में निमित्तरूप से होवे तो वीतराग सर्वज्ञ भगवान के मुखकमल में से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ। भगवान की वाणी सब पदार्थ का कथन करने में समर्थ है। ऐसा द्रव्यश्रुत वीतराग की वाणी, वह तत्त्वज्ञान ही, आत्मा के सम्यग्दर्शन परिणाम को वीतरागी वाणी ही तत्त्वज्ञानरूप निमित्त है। इसके सिवाय दूसरे की वाणी निमित्तरूप हो नहीं सकती। कहो, समझ में आया? वजुभाई!

आत्मा में जिसे मुक्ति करनी हो, उसकी बात है। जिसे वर्तमान संसार की पर्याय दुःखरूप सुहाती हो, उसकी बात नहीं है। वर्तमान पर्याय में विकार पुण्य-पाप का, दया, दान, काम, क्रोध का सब दुःखदायक विकार है। उससे रहित चैतन्य शुद्धस्वरूप त्रिकाल है, उसकी रुचि, ज्ञान और रमणता, वह मोक्ष का मार्ग है। वह प्रगट करना हो, उसे क्या

होता है ? उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। वह सम्यग्दर्शन आत्मा के जो विकाररहित शुद्ध चैतन्य-स्वभाव की प्रतीतिरूप परिणाम, वह परिणाम है। सम्यग्दर्शन, वह त्रिकाल गुण नहीं। उस परिणामरूपी पर्याय को निमित्तकारण बाह्य सहकारी—साथ में हो वह। वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल में से निकला हुआ, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए शास्त्र कि जो पूर्वापरविरोधरहित होते हैं और आत्मा के कल्याण में निमित्तरूप से कहे जाते हैं।

वह समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही... वह बाह्य सहकारीकारण है। कहो, समझ में आया ? परन्तु वह वाणी किससे मिलती है, पहले उसकी व्याख्या करते हैं। जो मुमुक्षु हैं.... जो धर्मात्मा हैं, जो धर्मात्मा हैं। यहाँ मुमुक्षु लिये हैं, भाई ! निमित्त में केवली आदि नहीं लिये। जो मुमुक्षु हैं.... सम्यग्दर्शन प्रगट करनेवाला नहीं, प्रगट करनेवाले परिणाम को निमित्त कौन है, उसकी व्याख्या है। जो कोई मुमुक्षु हैं.... अर्थात् आत्मा के मोक्ष के कामी। स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता है, वह उन्हें भी.... ऐसे धर्मात्मा को भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने से.... सम्यग्दृष्टि को आत्मा के स्वभाव के निर्णय में, वह मुमुक्षु जिसे स्वयं को मोक्ष की अभिलाषा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि है। वे जीव धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव को उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण धर्मी जीव के सम्यग्दर्शन के परिणाम में वे निमित्तरूप मुमुक्षु जीव धर्मी जो स्वयं सम्यग्दृष्टि ज्ञानी आदि चारित्र है वह, उस धर्मी जीव को पदार्थ निर्णय के निमित्तपने के कारण अन्तरंग हेतु कहा है,.... समझ में आया ?

आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञान है, उसकी निर्मल प्रतीति में मुमुक्षु जीव को अन्तरंग हेतुरूप से उपचार से कहा है। क्योंकि वह तो परचीज है। इसलिए उपचार और व्यवहार ही है, परन्तु उसे मुख्यपना वीतराग की वाणी और वाणी, वह मुमुक्षु धर्मात्मा की वाणी कहने से उसके आत्मा को अन्तरंग हेतुपने कहा है। समझ में आया ? क्या कहा, समझ में आया ? वाणी तो पहले कही, परन्तु वह वाणी धर्मात्मा भी बोले स्वयं भले कहे, परन्तु वह वाणी तो बाह्य सहकारी कारणरूप सम्यग्दर्शन को है। परन्तु धर्मात्मा का आत्मा, मुमुक्षु स्वयं धर्मात्मा का आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवाला आत्मा, वह धर्मी जो धर्म प्रगट करने आत्मा में से पर्याय प्रगट करना चाहता है, उसे वह मुमुक्षु पदार्थ यथार्थ आत्मा क्या है ? पुण्य क्या है ? व्यवहार क्या ? निमित्त क्या ?—इसका

निर्णय करने में हेतुपने के कारण अन्तरंग हेतु कहे हैं। कहो, समझ में आया ? भाई !

यह कहा न कि वाणी की अपेक्षा उसका अभिप्राय उसे लक्ष्य में वह लेता है, इसलिए उपचार से अन्तरंग हेतु कहा है। वह तो है तो पर आत्मा। सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मस्वभाव की प्राप्ति प्रतीति के परिणाम में निमित्त अन्तरंग निमित्तरूप से, है तो बाह्य, इसीलिए तो कहा उपचार से, परन्तु खास वह आत्मा क्या कहता है ? उसका अभिप्राय शुद्ध ज्ञायक चैतन्यमूर्ति की ओर मोड़ने का क्या है ? पुण्य, पाप, विकल्प, राग है, निमित्त, वह पर है, स्वभाव-सन्मुख झुकने का उसका अभिप्राय क्या है ? उस अभिप्राय को वह पकड़ता है। इसलिए अभिप्रायवाला सामने जो जीव है, उसे सम्यग्दर्शन पाने के परिणाम में उपचाररूप से अन्तरंग हेतु कहा है। कहो, समझ में आया ? सूक्ष्म बात।

वस्तु तो आत्मा स्वयं ही कारण है। वह तो यहाँ निमित्त की बात चलती है। अखण्ड ज्ञायक चैतन्यज्योति निर्मलस्वरूप है, वही अपने सम्यग्दर्शन का कारण है, परन्तु उस समय निमित्त कैसा होता है, उसकी व्याख्या चलती है। क्योंकि व्यवहार की व्याख्या कर गये तो निमित्त की सब एक साथ व्याख्या की और फिर निश्चय की व्याख्या करते हैं। आत्मा जो शुद्ध ज्ञान चैतन्यमूर्ति अखण्ड आनन्द है, ऐसी प्रतीति करनेवाले को, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प व्यवहार है। हेय-उपादेय और संशय, विमोह, विभ्रमरहित का ज्ञान, वह निमित्त है और मुनि को अशुभ परिणाम की निवृत्तिरूप शुभराग, उसरूप चारित्र पंच महाव्रत का, वह अन्तरस्वरूप के चारित्र में निमित्त है। यह बात करते हुए इकट्ठे यह निमित्त की बात भी साथ में करते हैं।

धर्मी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान को पानेवाले जीव को, वीतराग सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई वाणी, वह निमित्त है और उस वाणी को समझनेवाला.... कहो, समझ में आया ? धर्मी जीव हैं, उन सम्यग्दृष्टि जीव को उपचार से, व्यवहार से, अन्तरंग हेतु कहा है। क्योंकि उसका अभिप्राय वह पकड़ता है; इसलिए उन्हें अन्तरंग निमित्तरूप से कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? बाहर दूसरी चीज है न ! अन्तरंग हेतु तो निमित्त है। अन्तरंग हेतु अर्थात् अन्तरंग निमित्त, अन्तरंग निमित्त। अन्तरंग निमित्त भी क्यों पर को अन्तरंग निमित्त कहा ? है तो पर। मुमुक्षु धर्मात्मा है तो पर। उस धर्मी जीव को पर क्यों अन्तरंग हेतु कहा ? कि उपचार से। परन्तु वाणी में वजन देने की अपेक्षा, उसके

आत्मा का वजन देने के लिये, उसे अन्तरंग हेतु कहा है। क्या कहा, समझ में आया इसमें ?

मुमुक्षु : बाह्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बाह्य है। दोनों बाह्य हैं। आत्मा ऐसे ज्ञायक चैतन्य मूर्ति अखण्ड आनन्दकन्द शुद्ध है, ऐसी अन्तर में रागरहित स्वभाव की प्रतीति के परिणाम, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। उस सम्यग्दर्शन के परिणाम को व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प शुभराग को निमित्त कहा है। निमित्त है, स्वभाव का अन्तर आदर करे तो। उस समय वीतराग की वाणी को निमित्त कहा है। बाह्य सहकारी निमित्त। उस समय धर्मात्मा समकिति का आत्मा; जो वाणी है, वह तो बाह्य सहकारी निमित्त कहा; परन्तु उसका आत्मा वह उपचार से अन्तरंग हेतु, अन्तरंग का निमित्त है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? अटपटी बात कही जरा। क्या कहा, वीरजीभाई ? उपादान कहाँ था ? वह तो निमित्त है, हेतु—निमित्त है।

आत्मा चैतन्यमूर्ति वस्तु अखण्ड आनन्दकन्द कारणपरमात्मा है। एक समय में शुद्ध ध्रुव नित्यानन्द सामान्य ध्रुवस्वभाव, उसकी एक समय की पर्याय नहीं, पुण्य विकल्प नहीं और निमित्त नहीं। त्रिकाली आनन्दकन्द ध्रुव जो द्रव्य है, उसमें से पर्याय नयी प्रगट होती है। पर्याय में से पर्याय नहीं आती, पुण्य में से पर्याय नहीं आती, निमित्त में से कुछ नयी पर्याय नहीं आती। उस पर्याय का कारण त्रिकाल शुद्ध ज्ञायकमूर्ति कारण द्रव्यस्वभाव की प्रतीति करनेवाले जीव को, वह प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन परिणाम है। वह सम्यग्दर्शन परिणाम, वह मोक्ष का कारण है। परन्तु उस परिणाम को निमित्तरूप व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प कहा। सम्यग्दर्शन परिणाम निमित्त, सम्यग्ज्ञान को व्यवहारसम्यग्ज्ञान का परिणाम निमित्त, निश्चयचारित्र को व्यवहारचारित्र के शुभ परिणाम निमित्त, परन्तु तदुपरान्त व्यवहार के साथ व्यवहार यह डालते हैं, वीतराग की वाणी। क्योंकि उस समय उसमें सर्वज्ञ जो वाणी कहते हैं, वह वाणी, परन्तु वह वाणी होवे तो मुमुक्षु से मिलती है, वह बात लेनी है, भाई! मुमुक्षु केवली नहीं लेना अब पीछे से।

जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी.... धर्मी जीव जिसे आत्मा के स्वभाव का भान करना है उसे। यह दूसरे धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीव हैं, वे **उपचार से...** व्यवहार से सहकारी

कारण अपेक्षा से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण.... भगवान आत्मा कैसा है, वह पदार्थ का निर्णय आत्मा करे, तब उसके हेतुपने के कारण धर्मात्मा दूसरा जीव उसे अन्तरंग हेतु कहा है। अन्तरंग निमित्तकारणरूप से धर्मी जीव को दूसरा धर्मी जीव परिणाम समकित पावे, उसे धर्मी जीव निमित्त है, ऐसा कहा है। कहो, समझ में आया ? गजब भाई! यह अभ्यास तो लोगों को सूक्ष्म पड़े।

क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। क्योंकि जो धर्मी जीव दूसरे धर्म पानेवाले को जो निमित्तरूप आत्मा होता है, उस आत्मा को दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय, क्षयोपशम या उपशम होता है। इसलिए, दूसरे धर्म पानेवाले जीव को (वह) अन्तरंग निमित्तरूप से कहा जाता है। नवरंगभाई! सूक्ष्म बात है जरा बराबर। शुद्ध उपादान, बाद में आता है। यहाँ तो अभी निमित्त की व्याख्या करते हैं। अपने को निमित्त कब था ? स्वयं तो उपादान त्रिकाल स्वभाव है। कहो, समझ में आया ? मोहनभाई! भारी सूक्ष्म! ओहोहो! धर्म...

यह आत्मा वस्तु है, पूरा यह मन, वाणी, देह के परमाणु से भिन्न, आठ कर्म की धूल अन्दर है, परमाणु मिट्टी से भिन्न, एक समय का दया, दान, भक्ति, काम, क्रोध का विकल्प उठता है एक समय, एक समय, वह विकार, वह तो एक समय का है। उससे त्रिकाली भिन्न ज्ञायक चैतन्य भगवान ऐसे ज्ञायक एकरूप ध्रुव चैतन्य द्रव्यस्वभाव की प्रतीतिरूपी परिणाम को वह निमित्त कहा जाता है। वह सब तो व्यवहार कहा, वह निमित्त कहा है। कहो, समझ में आया ? अब वह निमित्त किसे होता है ? यह निश्चय हो, उसे होता है। इसलिए निश्चय की व्याख्या अब करते हैं।

अब निश्चयमोक्षमार्ग, वास्तविक मोक्षमार्ग (कहते हैं)। अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,... अभेद आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति हूँ, उसके अन्तर स्वभाव-सन्मुख की श्रद्धा, स्वभाव-सन्मुख का ज्ञान, स्वभाव-सन्मुख की रमणता, उसे अभेद कहते हैं। अनुपचार अर्थात् निश्चय। उसे उपचार है नहीं। व्यवहार नहीं। अभेद-अनुपचार... भगवान ज्ञायक चैतन्य ज्योति, जिसकी द्रव्य की खान में से मोक्षमार्ग बहता है। वह वर्तमान पर्याय में से मोक्षमार्ग होता नहीं, पुण्य में से होता नहीं, निमित्त में से होता नहीं। त्रिकाल ज्ञायक वस्तु आदि-अन्तरहित आत्मा ध्रुव चैतन्य भगवान है।

आदि भी नहीं और जिसका अन्त भी नहीं। ऐसा जो ध्रुव चैतन्य द्रव्यस्वभाव कारणपरमात्मा, कारणशुद्धजीव, उसके अन्तर में स्वभाव की अभेदता, एकता, अनुपचार, उपचाररहित की यथार्थता, ऐसे रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,.... रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, वह रत्नत्रय। परिणति अर्थात् पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था। ऐसे जीव को। अब सम्यग्दर्शन की व्याख्या करते हैं।

टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,.... यह सम्यग्दर्शन, यह निश्चय। **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** भगवान ज्ञायकमूर्ति एक समय में परिपूर्ण स्वभाव से भरा है। समझ में आया? देखो, यह सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण यह... तब उन सबको निमित्त कहा जाता है। टंकोत्कीर्ण अर्थात् ऐसा का ऐसा शाश्वत् चैतन्यज्योति अन्दर पड़ा है। एक समय की पर्याय और एक समय के विकार का लक्ष्य छोड़ दो तो त्रिकाल ज्ञायक ध्रुव... ध्रुव नित्य टंकोत्कीर्ण ऐसा का ऐसा शाश्वत् परमात्मा स्वयं... स्वयं ऐसा ज्ञायक जाननेवाला, दृष्टा, ज्ञायक त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति प्रत्येक का आत्मा जिसका एक स्वभाव है... जिसका एकरूप, भेद बिना, प्रकार बिना, अनेकता बिना, संयोग बिना, निमित्तता बिना, विविधता बिना एकरूप सामान्य द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... सामान्य ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... सामान्य एकरूप ज्ञायकमूर्ति, सामान्य एकरूप स्वभाव है।

ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा... कहो, समझ में आया? ऐसा जो निजपरमतत्त्व, आत्मा, उसकी श्रद्धा को निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं। कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? उस द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है, ऐसा कहते हैं। उस द्वारा अनन्त काल में नहीं हुई—ऐसी सिद्धपर्याय, मोक्षपर्याय, कल्याण की परिपूर्णरूप पर्याय प्रगट होती है। किस द्वारा? देखो, वह व्यवहार द्वारा नहीं था कहीं। ऊपर व्यवहार समझाया था कि पंच परमेष्ठी की भक्तिरूप शुभराग, संशय, विमोह, विभ्रमरहित ज्ञान और अशुभपरिणामरहित शुभभावरूप पंचमहाव्रत के, अट्टाईस मूलगुणरूप शुभभाव, उसे व्यवहार कहा था। और यह भी व्यवहार दूसरा वीतराग की वाणी और मुमुक्षु पुरुष निमित्त कहे थे। यह पहिचान दी है। उसे मोक्ष का कारणरूप से, ऐसा कहा नहीं था। समझ में आया? यह मोक्ष के कारणरूप से। देखो, यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या।

सम्यग्दर्शन, वह कोई वाड़ा की चीज़ नहीं। कोई पुण्यपरिणाम व्यवहाररत्नत्रय, दया, दान, भक्ति का विकल्प वृत्ति उठे, ऐसी वह चीज़ नहीं, वह निमित्त की चीज़ नहीं, कर्म में से मिलती नहीं, कर्म के अभाव में से मिलती नहीं। वह तो ज्ञायक एक समय में चैतन्यमूर्ति भगवान, ध्रुवस्वभाव के सन्मुख प्रतीति करने से जो तत्त्व की श्रद्धा हुई, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। निज परमतत्त्व की श्रद्धा। किसकी ? निजपरमतत्त्व की श्रद्धा। समझ में आया ? भाई ! यह तो अभ्यास करे तो समझ में आये ऐसा है। ऊपर-ऊपर से कुछ हाथ आवे, ऐसा नहीं। ऐई ! मोहनभाई ! कैसे वजुभाई ! यह रुपये भी जहाँ-तहाँ से भटककर लाये हो, वह भी कहीं आत्मा लाया नहीं। वह तो पुण्य हो तो आवे, वरना एक लाल पाई आवे नहीं। यह तो पुरुषार्थ बिना समझ में आये, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

वह व्यवहार कहा था, परन्तु किसे व्यवहार होता है ? किसे यह निमित्त कहा जाता है ? किसे यह वीतराग की वाणी सहकारी कही जाती है ? किसे अन्तरंग हेतु धर्मात्मा मुमुक्षु पुरुष अन्तरंग निमित्तरूप से उपचार से कहा जाता है ?—कि जिसे अन्तर भगवान आत्मा परिपूर्ण स्वभाव से मैं एकरूप भरा हूँ। समय-समय की जो पर्याय मोक्षमार्ग की या राग की, वह एक समय का विकार और पर्याय है। भगवान त्रिकाल स्वरूप एक समय में द्रव्य शक्ति से भरपूर, स्वभाव से भरपूर टंकोत्कीर्ण अर्थात् शाश्वत् एकरूप रहनेवाला ज्ञायक जिसका स्वभाव, ज्ञायक जिसका स्वभाव, भेदरूप जिसका स्वभाव नहीं। पुण्य परिणाम या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो मोक्ष के परिणाम, उसरूप भी जिसका स्वभाव नहीं। क्या कहा, समझ में आया ? व्यवहाररत्नत्रय तो राग है, पुण्य है। उसरूप तो उसका स्वभाव नहीं, परन्तु निश्चयरत्नत्रय जो मोक्ष का मार्ग जो यह परमतत्त्व की श्रद्धा, श्रद्धा, वह भी भेद है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव में एकरूप वस्तु त्रिकाल नित्यानन्द पड़ी है, उसकी श्रद्धा द्वारा सिद्ध की पर्याय होती है, उस द्वारा मुक्ति की पर्याय प्रगट होती है। नहीं व्यवहाररत्नत्रय पंच महाव्रत, बारह व्रत के विकल्प से मुक्ति होती, नहीं पंच परमेष्ठी की भक्ति की व्यवहारश्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उससे मुक्ति नहीं होती, तथा हेय-उपादेय का व्यावहारिक ज्ञान, संशय, विमोह और विभ्रमरहित ज्ञान, उससे भी मुक्ति नहीं होती। कहो, समझ में आया ?

निजपरमतत्त्व की व्याख्या—टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका यह स्वभाव, ऐसा यह

निजपरमतत्त्व । निज परमतत्त्व । वापस दूसरे का— भगवान का आत्मा नहीं । भगवान का आत्मा कहीं आत्मा को तारता नहीं । राग होता है, तब उसमें निमित्त का लक्ष्य जाता है । समझ में आया ? परन्तु वह निमित्त राग, वह बन्ध का कारण राग है । परन्तु निचलीदशा में पूर्ण वीतरागता न हो, तब शुभराग होता है, इसलिए व्यवहाररत्नत्रय का वर्णन किया है, परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं । सिद्धपर्याय को मोक्ष की पर्याय अर्थात् सिद्धदशा आत्मा की परमशुद्ध पवित्रदशा उसे मोक्षदशा कहते हैं । उसका कारण तो निजपरमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा । बाबूभाई ! समझ में आया ? गजब बात, भाई ! पैसे द्वारा मिले नहीं, कहते हैं यह तो । व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची श्रद्धा करे तो राग । उस द्वारा मुक्ति मिलती नहीं । भाई ! यह तो अन्तरंग के हेतु द्वारा मिले, ऐसा कहा । वजुभाई ! यह तो निमित्त की व्याख्या की । यह तो सब व्यवहाररत्नत्रय । सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और पर की ओर के—सन्मुख से श्रद्धा करे, तब तो शुभराग । उस निज परमतत्त्व की श्रद्धा करे, तब उस राग को, निमित्त को व्यवहार कहा जाता है, वरना व्यवहार भी नहीं कहा जाता । कहो, समझ में आया ? यह तो समझने जैसा है, भाई ! शान्तिभाई ! जरा सूक्ष्म है, भाई ! ऐसे ऊपर-ऊपर से दो दिन आवे, ऐसे पकड़ में आवे ऐसा नहीं यह । जरा शान्ति से, धीरज से समझे तो पकड़ में आये, ऐसी बात है, परन्तु आत्मा का कल्याण करने की धगश हुई हो तो समझ में आये, ऐसा है यह ।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, ... पहले अभेद तो कहा, भाई ! उसे ... कैसा होता है ? कि ऐसे निजपरमतत्त्व की... भगवान ज्ञायकमूर्ति हूँ । एक समय की पर्याय है न प्रगट व्यक्त, व्यक्त-व्यक्त भले क्षयोपशम हो, चाहे जो हो, एक समय की व्यक्त प्रगट पर्याय, वह निजपरमतत्त्व नहीं । समझ में आया ? वह पुण्य विकल्प दया, दान, भक्ति का विकल्प उठे या हिंसा, झूठ का विकल्प उठे, वह निजपरमतत्त्व नहीं । निजपरमतत्त्व तो ज्ञायक ध्रुव सामान्य एकरूप द्रव्यस्वभाव जिसमें से मोक्षमार्ग की पर्याय परिणमे, बहे और हो—ऐसा जो कारणपरमात्मा एकरूप भगवान आत्मा, उसे निजतत्त्व कहते हैं । ऐसे निजपरमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा सिद्ध की पर्याय होती है, मुक्ति की पर्याय होती है । कहो, समझ में आया ?

अब ज्ञान । तद्ज्ञानमात्र (उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप) ऐसे अन्तर्मुख

परमबोध द्वारा... अब मोक्ष का कारण सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ? शास्त्र-बास्त्र का ज्ञान, वह मोक्ष का कारण नहीं है। शास्त्रज्ञान, वह परज्ञान है, यह पहले बात आ गयी। संशय, विमोह और विभ्रमरहित और हेय-उपादेय में त्यागनेयोग्य कौन और आदरनेयोग्य कौन, ऐसा जो रागवाला, विकल्पवाला ज्ञान, वह मोक्ष का कारण नहीं। शास्त्रज्ञान मोक्ष का कारण नहीं। वह परसन्मुख का झुकाव है, वह निमित्तरूप से होता है। परन्तु किसे ? कि **तद्ज्ञानमात्र...** तद्... तद्। वह निजपरमतत्त्व। ऊपर कहा वह। एक टंकोत्कीर्ण शाश्वत् ध्रुव ज्ञायक जिसका एक स्वभाव, ऐसा भगवान स्वयं आत्मा, ऐसे निजपरमतत्त्व के ज्ञानमात्र। उसका ज्ञान। शास्त्र का नहीं, देव-गुरु-शास्त्र का नहीं। वह शास्त्र का ज्ञान विकल्प में जाये, राग में जाये। किसे ? कि त्रिकाल चैतन्य का अवलम्बन लेकर निजपरमतत्त्व का ज्ञानमात्र स्वरूप ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा। अन्तर्मुख त्रिकाल चैतन्य भगवान एकरूप ध्रुवस्वभाव है, उसमें अन्तर्मुख होकर जो बोध प्रगट हुआ, ऐसे परमबोध द्वारा मुक्ति होती है। यह उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया ? कुछ समझ में आता है, ऐसा कहा जाता है। वजुभाई ! शास्त्रज्ञान शास्त्र परवस्तु है।

भगवान आत्मा ज्ञायक जिसकी ज्ञान की खान शक्ति का भण्डार भरा है। ध्रुव सामान्य ज्ञायकमूर्ति, उसका—निजपरमतत्त्व का ज्ञान, **ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा...** सिद्ध की पर्याय प्रगट होती है। ऐसे परमबोध द्वारा मुक्त की दशा प्रगट होती है। दूसरे किसी ज्ञान द्वारा मुक्ति की दशा प्रगट नहीं होती। समझ में आया ? **तद्ज्ञानमात्र ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा...** ऐसा। अकेला अन्तर्मुख। जो शास्त्र का ज्ञान कहा। संशय, मोह और विभ्रमरहित या हेय-उपादेयरहित, वह तो परसन्मुख के झुकाववाला विकल्प और शुभराग है, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष का कारण तो तद्ज्ञानमात्र चिदानन्द भगवान ज्ञायकमात्र स्वभाव ध्रुव। अन्तर्मुख झुकाव होने से जो सम्यग्ज्ञान हुआ, ऐसे परमबोध द्वारा सिद्ध की पर्याय अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। अनन्त काल में जो मोक्ष की पर्याय प्रगट नहीं हुई, ऐसी पर्याय अर्थात् आत्मा आनन्ददशा ऐसे परमबोध द्वारा होती है। इसलिए उसे सम्यग्ज्ञानरत्न कहा है। सम्यग्ज्ञानरत्न। पहला परमतत्त्व की श्रद्धा, वह श्रद्धा सम्यग्दर्शन रत्न।

मनुष्य माल लेने जाये तो रत्न कुछ लेकर देखने जाये न कुछ वस्तु लेकर। इसी

प्रकार कहते हैं कि आत्मा का परम आनन्द, मुक्तदशारूपी माल जिसे चाहिए हो, उसे तीन रत्न प्राप्त करना चाहिए। वे रत्न कहाँ से मिलेंगे? देह, वाणी नहीं, मन नहीं, शुभाशुभविकल्प दया, दान, काम, क्रोध, ब्रतादि की वृत्ति उठे, वह विकल्प उत्थान सब विकार। एक समय की क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय, उघाड़, एक समय का क्षयोपशम, उपशम या इत्यादि उस समय की पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। इसलिए एक समय की पर्यायरहित त्रिकाल द्रव्य शुद्ध स्वभाव ध्रुव का तद्ज्ञानमात्र अन्तर्मुख में एकाकार होकर प्रगट हुआ जो सम्यग्ज्ञान, उस ज्ञान द्वारा आत्मा की मुक्तपर्याय अभूतपूर्व—अनन्त काल में नहीं हुई मोक्षदशा होती है। इसके अतिरिक्त किसी उपाय से नहीं होती। कहो, समझ में आया?

अब चारित्र। तीसरा चारित्र। चारित्र किसे कहना? और उसरूप से अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा... भगवान ज्ञायकस्वरूप भगवान एकरूप चैतन्यज्योति के एक समय के महाव्रत के और पंच महाव्रत के विकल्परहित और पंच महाव्रत के स्थान में एक समय के क्षयोपशमज्ञान आदि पर्यायरहित जो त्रिकाल ध्रुव ज्ञायक मूर्ति है, उस निज परमतत्त्वरूपी अविचलरूप से, निजपरमज्ञान टंकोत्कीर्ण स्वभाव में अविचलरूप से—चलित नहीं, उसमें स्थितस्वरूप नित्यानन्द में स्थित, चिदानन्द में स्थित, ध्रुव स्वभाव में स्थित, त्रिकाल ज्ञायक परमतत्त्व में स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा। लो, इसका नाम चारित्र। यह चारित्र मुक्ति का कारण है। कहो, यह अन्दर प्राप्त है, उसमें से एकाग्र हुआ, तब पर्याय प्रगट होती है। अन्तर में से आती है। कोई पंच महाव्रत के मन्द कषाय के, ऐसे पाप की निवृत्तिरूप अशुभभाव से छूटा और शुभभाव किया, उस द्वारा चारित्र आता नहीं। कहो, समझ में आया? नये लोगों को तो यह भारी बात लगे, ऐसा है। क्या कहते हैं यह? मोहनभाई!

अन्तर उसरूप से अविचलरूप... उसरूप अर्थात्? एक समय की पर्याय-अवस्था है, उसरूप नहीं, एक समय का विकार विकल्प जो दया, दान, पंच महाव्रत का, उसरूप नहीं, निमित्त का नहीं। अन्तर निजपरमतत्त्व ज्ञायकस्वभाव एकरूप त्रिकाल परमस्वभाव है, उसरूप अविचलरूप से स्थित, अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा... ऐसे स्वाभाविक अन्तर्मुख के झुकाववाली वीतरागी पर्याय, द्रव्य के

आश्रय से अन्तर में लीन हुई वीतरागी पर्याय, उस द्वारा **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय** होती है। अभूतपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं हुई अपूर्व, ऐसे तीन सम्यक् रत्नत्रय द्वारा। उस सम्यक् रत्नत्रय द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। और जिस द्वारा सिद्धपर्याय होती है, वह निजपरमतत्त्व द्वारा होती है। समझ में आया ? आत्मा की मुक्त परम सिद्धदशा जो अनन्त काल में नहीं हुई, ऐसी निर्मल वीतरागी एक समय की पर्याय है। सिद्ध भी एक समय की ही पर्याय है। दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी। पर्याय है, इसलिए पर्याय परिणमती हुई नयी-नयी परिणमती है। ऐसी सिद्ध की वीतरागी पूर्णा शुद्धपर्याय। पर्याय सिद्ध भी एक पर्याय है, कहीं गुण नहीं, कहीं द्रव्य नहीं। द्रव्य तो त्रिकाल है, वैसे गुण भी त्रिकाल है। उसकी सिद्ध पर्याय है। संसार भी एक समय की पर्याय है। संसार, वह आत्मा में पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया-दान विकल्प उठे वृत्ति विकार, वह मेरा—ऐसा मिथ्यात्व और राग, वह संसार। संसार एक समय का विकार आत्मा में है। संसार कोई दो समय आत्मा में नहीं रहता। उस संसार का नाश करना नहीं पड़ता, कहते हैं। निज परमतत्त्व का अवलम्बन लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, यह उस द्वारा सिद्ध पर्याय (होती है), तब संसारपर्याय का व्यय हो जाता है, नाश हो जाता है। कहो, समझ में आया ? नवरंगभाई ! लो, यह मोक्ष का मार्ग।

यह तो निश्चय और व्यवहार दोनों कहे। शुद्ध उपादान और निमित्त दोनों का कथन कहा। समझ में आया इसमें ? पहले, बाद का वर्णन है इसमें, हों ! पहले, बाद स्वरूप में नहीं। अर्थात् कि पहले व्यवहार आवे और फिर निश्चय आवे, ऐसा इसमें नहीं। वस्तु तो त्रिकाल ज्ञायक परमतत्त्व चैतन्यज्योति एकरूप स्वभाव ध्रुव ज्ञायक जिसमें से पर्याय प्रगटे। पर्याय अर्थात् अवस्था। अवस्था में से अवस्था नहीं होती, इसलिए अवस्था आदरणीय नहीं है। त्रिकाल अवस्थावान स्वभाव सामान्य चैतन्य—ऐसा निजपरमतत्त्व, उसकी श्रद्धा, उसका तद्मात्र सम्यग्ज्ञान और तद्मात्र चैतन्यपरमतत्त्व में अविचलरूप से स्थित सहज निर्मल वीतरागचारित्र, उस द्वारा अनन्त काल में नहीं प्रगट हुई ऐसी मोक्ष की दशा आत्मा को होती है। व्यवहार से होती नहीं, पुण्य से, व्यवहाररत्नत्रय से और निमित्त से होती नहीं। उसमें यह बात आ जाती है। कहो, समझ में आया ?

अब जरा मुनि की बात लेकर समझाते हैं। **जो परमजिनयोगीश्वर...** परमजिनयोगीश्वर

अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो उसे प्रगट हुआ है। परम जिन अर्थात् वीतरागी योगीश्वर—योग के ईश्वर। अखण्ड चैतन्य परमतत्त्व ध्रुवस्वभाव, द्रव्यस्वभाव है, जिसमें से पर्याय बहे, प्रगट होती है, ऐसे स्वभाव में जिसने एकाग्रता की, उसे योगी कहते हैं। ऐसे भान बिना के जीव को योगी नहीं कहते। योगी-बोगी तो दूसरे अन्य में भी बहुत कहलाते हैं। ऐसा नहीं। जैसा सर्वज्ञ भगवान ने अनन्त आत्मायें, अनन्त गुण के पिण्ड और अनन्त एक समय में अनन्त गुणों की पर्याय, ऐसा जो एक आत्मा नित्य-नित्यानन्दस्वरूप निजपरमतत्त्व, ऐसे तत्त्व में एकाकार लीनता (की है), उसे योग कहते हैं। उस योग का भी ईश्वर योगीश्वर। परमजिनयोगीश्वर। परम अर्थात् उत्कृष्ट, जिन अर्थात् वीतरागी योगीश्वर। ... वह चित् निरोध-फिरोध का कहीं उड़ा यहाँ तो कहते हैं। चित् निरोध। चित् निरोधयोगः, वह नहीं। यहाँ तो त्रिकाल परमचैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड सामान्य स्वभावरूप ध्रुव नित्यानन्द जैसा सर्वज्ञ ने देखा, जाना और कहा, ऐसे चिदानन्द त्रिकाल ध्रुवस्वभाव में एकाग्रतारूप योग, उसे मुनि और जिनयोगीश्वर कहते हैं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : निरोध किसका था ? यह तो नास्ति से बात है। कहो, समझ में आया ? अकेला निरोध तो नास्ति हुई। अस्ति त्रिकाल कौन है ? त्रिकाल चैतन्यज्योति ज्ञायक ध्रुवस्वभाव के अन्दर में दृष्टि की एकाग्रता का योग, उसे यहाँ योगी कहते हैं।

ऐसे परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, ... छठवें गुणस्थान की व्याख्या है। अन्तर दृष्टि, ज्ञान और चारित्र तो प्रगट हुआ है। परन्तु जब तक छठवीं भूमिका मुनि, आत्मा के अन्तर की नित्य परमतत्त्व के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और रमणता प्रगट की है। अखण्डानन्द ध्रुव स्वभाव का अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और रमणता, वीतरागता प्रगट की है, परन्तु अभी छठवें गुणस्थान में मुनिदशा, प्रमत्तदशा में वर्तता होता है, तब उसे शुभराग होता है। इसलिए वह पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होता है। इसलिए छठवें गुणस्थान में जो अशुभराग छूटकर पंच महाव्रत के परिणाम और अट्टाईस मूलगुण जो मुनियों के विकल्प हैं, उसमें वर्तता है। इस अपेक्षा से वह व्यवहारचारित्र में वर्तता है, ऐसा कहा है। भाई! समझ में आया या नहीं ?

पहले... शब्द प्रयोग किया अर्थात्? अभी सातवाँ गुणस्थान आया नहीं, उस पहले के छठवें गुणस्थान में आत्म निजपरमतत्त्व के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो प्रगट हुआ है। यहाँ चारित्र की व्याख्या करनी है। परमजिनयोगीश्वर... अपने आनन्दकन्द ध्रुवस्वभावी के अवलम्बन में पड़ा है, परन्तु अभी जरा शुभराग का विकल्प उठता है। अट्टाईस मूलगुण मुनियों के जो नग्न दिगम्बरदशा बाह्य से और अभ्यन्तर से होती है, उसे अभ्यन्तर में एक अट्टाईस मूलगुण के विकल्प शुभराग की वृत्ति उठती है। पंच महाव्रतादि की यह सब वृत्तियाँ हैं, शुभ है, विकार है। उस विकार में अशुभराग का निवृत्त भाव हुआ है, शुद्ध चैतन्यद्रव्य की दृष्टि और लीनता में एकाकार है, परन्तु चारित्र की रमणता में निर्विकल्पचारित्र जो सातवें गुणस्थान में चाहिए, वह अभी हुआ नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसे स्वभाव में रमणता चैतन्य ज्ञानमूर्ति एकाकार में रमते विकल्प उठा है जरा, ऐसे शुभभाव में रहते हैं, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं, उसे व्यवहारमुनि कहते हैं। भाई! यह व्यवहारमुनि। व्यवहारमुनि अर्थात् निश्चय का भान नहीं, से व्यवहार-प्यवहार की बात भी नहीं। कहो, समझ में आया?

उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। तपस्या अर्थात् मुनिपना। उसे व्यवहारनयगोचर—व्यवहारनयगम्य मुनिपना होता है। अर्थात् कि जब तक मुनि... स्वभाव का भान है। निश्चय अवलम्बता चैतन्य में पड़ा है। अखण्डानन्द नित्य ध्रुव के आश्रय से मेरी पर्याय प्रगट होती है, ऐसा भान है, परन्तु स्थिर अवलम्बकर पड़ा नहीं, जब तक वीतरागी चारित्र में स्थिर नहीं हुआ, तब तक छठवें गुणस्थान मुनि को जो शुभराग विकल्प उठता है, वह अशुभभाव से निवृत्त हुआ है, इसलिए उसे व्यवहारचारित्र और व्यवहारतपस्या अर्थात् व्यवहार मुनिपना। व्यवहारी तपस्या, व्यवहारी मुनिपना उसे कहते हैं। कहो, समझ में आया? व्यवहार अर्थात् पुण्य का कारण, व्यवहार अर्थात् पुण्य का कारण।

अब निश्चय तपस्या। यहाँ से आगे जाकर मुड़ता है आत्मा में। सहजनिश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है;... लो, यह तपस्या की व्याख्या। कैसा है भगवान आत्मा? सहजनिश्चयनयस्वरूप भगवान ज्ञायक ज्योति आनन्दकन्द जिसमें से आनन्द का झरना बहता है। जिसमें से परमसिद्ध के जैसा आनन्द का झरना,

पर्याय में झरना बहता है। आनन्द का झरना पर्याय में आनन्द बहता है। ऐसा जो त्रिकाल आनन्दकन्द मूर्ति आत्मा आनन्द का पर्वत ध्रुवस्वभाव, वह सहजनिश्चयनयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप परमात्मा। ऐसा जो परमस्वभावस्वरूप परम आत्मा अर्थात् आत्मा उसमें प्रतपन—उसमें लीन हो जाना। प्र अर्थात् विशेष तपन, ऐसे आत्मा को ओपना, शोभना, ऐसी जो अन्तर की वीतरागीदशा की उज्वलता होना, उसे वीतराग त्रिलोकनाथ तप कहते हैं। तपस्या की व्याख्या भी दूसरी। दर्शन की व्याख्या दूसरी, ज्ञान की व्याख्या दूसरी, चारित्र की व्याख्या दूसरी। अब तप की व्याख्या की। कहो, वजुभाई! यह तप, हों! रोटियाँ नहीं खाना, फलाना (नहीं खाना)। कौन रोटियाँ खाता था धूल? रोटियाँ तो जड़-मिट्टी है। रोटियाँ लेना, न लेना, वह तो जड़ की पर्याय स्वतन्त्र है। किसी की पर्याय किसी से हो तो पर का कर्ता होता है। वस्तु किसी प्रकार से स्वतन्त्र नहीं रहती। स्वतन्त्र पदार्थ जो त्रिकाल, उसका वर्तमान त्रिकाल के आश्रय से वर्तमान हो। वह उसका वर्तमान दूसरे से हो, ऐसा कभी नहीं होता। तो उसका वर्तमान त्रिकाल का वर्तमान नहीं रहता। जो पदार्थ आवे, जाये, टले, वह तो पदार्थ की पर्याय के काल में होता है। आत्मा उसका स्वामी नहीं, आत्मा उसे परिणमा सकता नहीं।

आत्मा परसन्मुख यह छोड़ूँ, लूँ—ऐसा अभिमान करे, वह मिथ्यात्वभाव है। मैंने आहार छोड़ा, मैंने आहार लिया। तो परपदार्थ को छोड़ना, ग्रहण करना, वह चैतन्य (जड़) का स्वामी होता है। वह चैतन्य जड़ का स्वामी होता है और चैतन्य का वह जड़ स्वामी हो जाता है। समझ में आया? इसके हाथ में आये और जाये, आत्मा न हो तो हो नहीं, ऐसा बनता नहीं। चैतन्य का स्वामी जड़ नहीं और जड़ का स्वामी चैतन्य नहीं। इसलिए चैतन्य को लाभ कब होगा? कि आहार न हो तब। अर्थात् चैतन्य का स्वामी जड़ हो गया। और आहार कब न आवे? कि आत्मा न ले तब। इसलिए आत्मा जड़ का स्वामी हो गया। क्या कहा, समझ में आया?

आहार न आवे तो जीव को लाभ हो, इसलिए जीव के लाभ का स्वामी आहार। और आहार लेना, न लेना, वह जीव के आधीन अर्थात् जड़ का चैतन्य स्वामी हुआ। यह वस्तु का स्वरूप हो नहीं सकता। ऐसा तीन काल में है नहीं। जड़ का आना या जाना जड़ के आधार से है। चैतन्य में राग होना, विकार होना, वह अपने अपराध के कारण

से है। विकल्प उठे कि यह छोड़ूँ, वह भी नहीं, वह भी तपस्या नहीं।

तपस्या वीतरागदेव किसे कहते हैं ? कि सहजनिश्चयस्वभाव, निश्चयनयात्मक, निश्चयनयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप त्रिकाल ज्ञायक आनन्दकन्द है, सहजानन्द में अन्तर एकाग्र हो जाता है और वृत्ति का उत्थान, इच्छा उत्पन्न होती नहीं और आत्मा की पर्याय निर्मल प्रतपन, विशेष तपते हैं, शोभते हैं, ओपते हैं, बढ़ते हैं, उग्ररूप से शुद्धि की वृद्धि होती है, उसे भगवान तप है, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! तप की व्याख्या भी कैसी यह ? यह तो वर्षीतप करते हैं और फलाना करते हैं न, भाई! उसे लोग तप कहते हैं। रोटियाँ नहीं खायी, एक अपवास किया, अठम किया, अरे! परन्तु तप, वह तुझमें रहता होगा ? और तप वह तुझसे होता होगा या तप पर से होता होगा ? पर से हो तो पर तेरा स्वामी हो गया। तेरी स्वतन्त्रता धर्म करने की रहती नहीं। कहो, समझ में आया ?

भगवान आत्मा जो ज्ञायक चैतन्य शुद्ध ध्रुव ज्ञायकमूर्ति त्रिकाल एक समय में एकरूप स्वभाव, द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव पड़ा है, ऐसा जो परमात्मा अपना आत्मा, उसमें प्रतपन, उसमें लीन हो जाना, प्र अर्थात् विशेष तपना, तपना अर्थात् एकाग्र होना, उसमें लीन हो जाना, उसे भगवान तपस्या कहते हैं और उसे निर्जरा कहते हैं। दूसरे को बालतप और बालव्रत कहते हैं। कहो, समझ में आया ? बालतप अर्थात् अज्ञानी की मूर्खाई के तप, वह मूर्खाई भरपूर तप। वह मूर्खाई भरपूर तप। वरना संसार में भटके कैसे ? मूर्खाई भरपूर तप न हो तो भटके कैसे ? कहो, समझ में आया ?

अब कहते हैं कि ऐसे तपवाले को चारित्र होता है, ऐसा कहा, भाई! ऐसी जिसे शुद्ध ज्ञायक मूर्ति में लपेट होकर अन्दर पड़ा है। ज्ञायक ध्रुव टंकोत्कीर्ण शाश्वत् भगवान, एक समय की पर्यायबुद्धि छोड़कर, एक समय की पर्याय, वह बुद्धि छोड़कर, विकल्प अर्थात् शुभराग की बुद्धि छोड़कर, एक समय की पर्याय अंशबुद्धि छोड़कर, त्रिकाल अंशी, त्रिकाल ध्रुवस्वभाव की बुद्धि करके अन्दर लीन हुआ है, उसे तप होता है और निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है। कोई कहे कि भाई! यह बाहर पाँच महाव्रत ले लेना, स्त्री, पुत्र छोड़कर साधु हो गया, नग्न मुनि दिगम्बर (हो गया), इसलिए चारित्री हुआ। वह चारित्र कहलाता नहीं। कहो, समझ में आया ?

निजस्वरूप में अन्तर आनन्दकन्द में अविचल अर्थात् चलित न हो, इस प्रकार से स्थितिरूप... वर्तमान पर्याय की बात है। नया कुछ करना चाहता है न, तो जो पर्याय है, वह तो एक समय की है। शरीर, वाणी, मन तो जड़ में है, पर में है। एक समय की पर्याय दूसरे समय होती नहीं। पर्याय अर्थात् अवस्था; अवस्था अर्थात् दशा; दशा अर्थात् अंश। तो जिसे ऐसा कुछ आत्मकल्याण करना, वह पर्याय प्रगट करने का स्थान तो नित्यानन्द ध्रुवस्वभाव है। ऐसे स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता में लीन हो जाये, ऐसे तपवाले को ऐसे तप से चारित्र होता है, दूसरे से चारित्र होता नहीं। कहो, समझ में आया? कहो, समझ में आया? वजुभाई!

देखो, चारों ही व्याख्या अलग। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप। पहले व्यवहाररत्नत्रय की व्याख्या कही, पूर्ण सर्वज्ञ वीतराग न हो, तब तक चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में, छठवें गुणस्थान में मुनि आदियों को शुभराग पंच परमेष्ठी की भक्ति का शुभराग, उनकी श्रद्धा, भक्ति अर्थात् श्रद्धा, पंच परमेष्ठी की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत के परिणाम और शास्त्र की ओर का हेय-उपादेय की ओर का ज्ञान, ऐसा विकल्प और शुभराग होता है। यह बात की, परन्तु वह पूर्ण वीतराग न हो, तब होता है। परन्तु वह होता है, इसलिए जाननेयोग्य वस्तु है, वह आदरणीय नहीं। आदरणीय तो त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य वस्तु, जिसमें से पर्याय बहे। पर्याय में से पर्याय नहीं होती।

सोना है। उसका कुण्डल है तो नया कड़ा बनाना हो तो कुण्डल में से कड़ा नहीं होता। कुण्डल का अभाव और कड़ा की नयी उत्पत्ति। उस उत्पत्ति के उत्पाद का कारण तो सोना त्रिकाल है। क्योंकि उस पर्याय का तो अभाव हो जाता है। अभाव में से भाव नहीं आता। जो भाव ऐसा हो, वह त्रिकाल ध्रुवस्वभाव सोना... सोना... सोना... उसके अवलम्बन से होता है। ऐसे... यह सोना का दृष्टान्त समझ में आयेगा। चन्दुभाई! सोना समझ में आता है या नहीं? एक कड़ा हो कड़ा, उसका कुण्डल बनाना हो। कुण्डल वह दूसरी अवस्था का कारण हो नहीं सकता। वह तो उपचार से कथन है कि व्यय, वह उत्पाद का कारण वह उपचार... और उसमें तप एकाग्र हो, उसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप होता है, दूसरे को होता नहीं। दूसरे को शुभराग आदि होता है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - ०५-११-१९५१

गाथा - ५० से ५५, श्लोक - ७४, प्रवचन नं. ३९७

कलश कहा। पहले उसमें सार आ गया कि वास्तव में शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वद्रव्य उपादेय है। इस आत्मा में जो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव शुद्ध एकरूप शुद्ध ध्रुव है, वही उपादेय है। क्योंकि वस्तु में से धर्म की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया? उस पर्याय में से पर्याय नहीं होती, इसलिए पर्याय आदरणीय नहीं गिनी है। बाकी कार्य तो पर्याय में होता है। समझ में आया? कार्य तो पर्याय में होता है, परन्तु पर्याय में कार्य पर्याय द्वारा नहीं होता। पर्याय में कार्य उस पर्याय द्वारा अर्थात् नयी पर्याय, उस पर्याय में से नहीं होती। धर्म की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो पर्याय है, वह कार्य तो पर्याय है, कहीं कार्य द्रव्य नहीं, द्रव्य तो कारण है। त्रिकाल सामान्य शुद्धस्वभाव अन्तःतत्त्वस्वरूप ऐसे स्वद्रव्य का आधार सहज परमपारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार, वह कारण है। और कार्य तो धर्म की पर्याय, मोक्ष की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, वह सब कार्य है, परन्तु कार्य उस कार्य में से नहीं आता। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा की कार्यपर्याय है, केवलज्ञानादि भी आत्मा की कार्यपर्याय है, सिद्ध भगवान परमात्मपद भी आत्मा की कार्यपर्याय है, परन्तु उस कार्यपर्याय में से कार्य नहीं आता, कार्य में से कार्य नहीं आता; कारण में से कार्य आता है; इसलिए कहा कि त्रिकाल शुद्धस्वभाव एकरूप है, वही कारण है और उस कारण में से कार्य आता है। कहो, समझ में आया? इसलिए कार्य है, वह उपादेय नहीं, परन्तु कारण है, वह उपादेय है। क्या कहा जाता है, यह समझ में आया?

त्रिकाल ज्ञायक कारणसमयसार। इसलिए अन्तिम 'कारणसमयसार' शब्द रखा है कि शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप, यह जो स्वद्रव्य अर्थात् अन्तर स्वभाव, उसका आधार सहज परमपारिणामिकभाव लक्षण स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण—स्वभाव त्रिकाल एकरूप स्वभाव है, उसका लक्षण, ऐसा कारणसमयसार, वही उपादेय है, वही अंगीकार करनेयोग्य है। त्रिकाल धर्मी जीवों को यदि कारणरूप गिनकर उपादेय माना हो तो उस त्रिकाल स्वभाव को ही उपादेय अनन्त केवली, अनन्त सन्त,

अनन्त मुनियों ने कहा है और वस्तुस्वरूप ऐसा है। परन्तु कार्य होता है, वह कारण में कार्य नहीं होता। समझ में आया? वह पर्याय में होता है। कार्य, वह पर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, केवलवीर्य, वह सब कार्य है, पर्याय है और पर्याय में कार्य होता है; इसलिए कार्य में उपादेय भाव न गिनकर, कारण को उपादेय गिनने से कार्यपर्याय प्रगट होती है। कार्य को उपादेय गिनकर कार्य—नयी पर्याय प्रगट नहीं होती।

इसलिए अन्तिम सारांश ५०वीं गाथा में कहा कि सहज परमस्वभावभावरूप आत्मा, वह कारणरूप त्रिकाल शुद्ध कारणरूप परमात्मा है, वह कारणसमयसार शुद्ध ध्रुव एकरूप त्रिकाल सदृश्य है, उसे ही हम कारण कहते हैं। उस कारण में से कार्य आता है। कार्य में से कार्य नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया? इसलिए पर्याय को परद्रव्य गिना और त्रिकाल वस्तु को स्वद्रव्य गिना। भाई! पर्याय को परद्रव्य गिना। लो! वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायक एकरूप स्वभाव है, उसे स्वद्रव्य गिना और एक समय की पर्याय है, उसे परद्रव्य गिना, क्योंकि परद्रव्य में से नयी दशा नहीं होती। नयी दशा जो होती है, वह त्रिकाल शुद्धस्वभाव के आश्रय से होती है, इसलिए उसे द्रव्य गिना और पर्याय प्रगट होती है, उसे भी परद्रव्य गिना। क्योंकि वस्तु एकरूप रहे, उसे स्वद्रव्य गिना और नयी... नयी... नयी... नयी पर्याय होती है, उसे परद्रव्य गिना है। उस परद्रव्य को कार्य गिनकर स्वद्रव्य को कारण गिनकर, कारण उपादेय है, परद्रव्य—कार्य उपादेय/अंगीकार करनेयोग्य नहीं। ऐसी बात को यहाँ ५०वीं गाथा में अन्तिम मर्म सिद्ध किया है।

अनादि सत्, अनादि सत्स्वरूप, अनादि सन्तों ने अनुभव किया हुआ स्वरूप, अनादि केवलियों ने जाना हुआ और कहा हुआ स्वरूप, उसे स्पष्ट रीति से ५०वीं गाथा में पर्याय को परद्रव्य कहकर आदरणीय तीन काल, तीन लोक में यदि हो तो एक ही त्रिकाल स्वभाव वह कारण और आदरणीय है। कहो, समझ में आया? इसमें तो अकेली आत्मा की बात आयी। इसमें क्या करना, यह आया? मोहनभाई! इसमें क्या करना, यह आया कि त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव जो वस्तुस्वभाव शक्ति से भरपूर है, उसकी श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर और उसमें रमणता कर। यही मोक्षमार्ग है; दूसरा कोई तीन काल-तीन

लोक में मोक्षमार्ग है नहीं। यह बात साबित करके अब अमृतचन्द्राचार्य के श्लोक का आधार देते हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥

अपनी बात को आधार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का तो है। उसकी टीका करके फिर अमृतचन्द्राचार्य का आधार देते हैं। जिनके ज्ञान का अभिप्राय उदात्त है। जिनके चित्त का चरित्र उदात्त हैं... अर्थात् कि जिनके ज्ञान का अभिप्राय (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं... जिनके चित्त का... चित्त का अर्थात् ज्ञान का, जिनके ज्ञान में चरित्र अर्थात् ज्ञान का अभिप्राय उदात्त, उदार, उच्च और उज्ज्वल है। यहाँ उदार लेना। जिनके ज्ञान में अभिप्राय उदार है, उन उदारवन्त जीवों को क्या करना? कि ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो... जिनके ज्ञान में अभिप्राय उदार, उच्च, उज्ज्वल और ऊँचा अभिप्राय है, ऐसे जीवों—मोक्षार्थियों को इस सिद्धान्त का, इस निर्णय का, यह निश्चित स्पष्ट भाव का यह तीनों काल में एक प्रकार के नियम के भाव का सेवन करो। क्या?

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... यह उदार। क्योंकि पर्याय में से पर्याय नहीं आती, पर्याय में से पर्याय माने, वह उदार नहीं। वह उदार नहीं, उसमें—ज्ञान का अभिप्राय ऊँचा नहीं, उसके ज्ञान का अभिप्राय हल्का और विपरीत है। क्या कहा, समझ में आया? जिसके ज्ञान में अभिप्राय उदार, उच्च और उज्ज्वल उदार है, वह निमित्त से धर्म न मानो, व्यवहार से धर्म न मानो, पर्याय में से पर्याय न मानो, उदार होते हों तो उदार तो स्वभाव में होओ। क्योंकि स्वभाव में से पर्याय प्रगट होती है। पर्याय में से पुण्य में से और निमित्त में से धर्म की पर्याय तीन काल में किसी को प्रगट नहीं होती। कहो, समझ में आया? नटुभाई! यह तो उदार होने का आया। उदार-उदार होओ। कंजूस न होओ, कंजूस न होओ। ज्ञान के अभिप्राय में उदार होओ, उच्च होओ, उज्ज्वल होओ।

ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... त्रिकाल परम कारणस्वभाव ज्ञायकमूर्ति मैं हूँ। मेरा स्वभाव त्रिकाल एकरूप सदृश्य आनन्दकन्द ज्ञायक कारणपरमात्मा, कारणशक्तिस्वरूप, वह मैं ही हूँ। मैं तो शुद्ध... अर्थात् पवित्र। त्रिकाली पवित्र। चैतन्यमय—ज्ञान और दर्शनमय अभेद एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... जिसका अभिप्राय सुलटा करना हो, जिसे सच्चे अभिप्राय में उदार होना हो, जिसे सच्चे अभिप्राय में उच्च और उज्ज्वल करना हो, ऐसे मोक्ष के अर्थी जीव यह एक ही सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... त्रिकाल आनन्दकन्द शुद्ध परमधाम अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होने का भी धाम सदा ही मैं परमज्योति ही हूँ। वही अंगीकार करनेयोग्य है, शेष कोई अंगीकार करनेयोग्य नहीं। कहो, समझ में आया ?

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... परमज्योति क्यों कहा ? यह हीन अवस्था और विकारी अवस्था, उसे जला डालने की सामर्थ्य मेरे त्रिकाल चैतन्यज्योति में है। हीन का नाश करके पूरी होने की, विकार का नाश होने की वीतराग होने की वह सामर्थ्य मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति हूँ। यह अब आयेगा। परमपारिणामिकभाव ऐसा है कि संसाररूपी दावानल को बुझाने के लिये अग्नि समान है। अग्नि समान है। यह त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव अकेला चैतन्य जिसमें से अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें बहे, परिणमे—ऐसा जो आनन्दकन्द ज्ञायकज्योति, वह सदा ही मैं ऐसा हूँ। जिसे अभिप्राय शुद्ध करना हो, जिसे अभिप्राय निर्मल करना हो, जिसे अभिप्राय उदार और उच्च करना हो, उसे यह सेवन करना, दूसरे के लिये यह बात नहीं की जाती। कहो, समझ में आया ?

तीन काल—तीन लोक का यह सिद्धान्त सर्वज्ञ का, सन्तों का, ज्ञानियों का, मुनियों का, शास्त्र का कि मैं त्रिकाल एक परमचैतन्य ज्योति ही—ही। सदा ही हूँ। तीनों काल मुझमें सिद्ध और संसार के भेद व्यवहार का विषय है। सिद्ध और संसार दोनों व्यवहारनय का विषय है। मैं तो त्रिकाल एक ज्ञायकस्वभाव हूँ। देखो, यह वाणी ! आगे गाथाओं में कहेंगे। ऐसी वाणी ज्ञानी के मुख से निकले। वह वाणी उसे ...

सम्यग्दर्शन को निमित्तरूप कही जाती है, इसके अतिरिक्त निमित्तरूप भी नहीं कही जाती। यह बाद में कहेंगे। इस गाथा के पश्चात् पाँच गाथाओं में (कहेंगे)। उसे जब शुद्ध ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकाव हो और शास्त्र ने भी यह कहा, ज्ञानी के मुख में से वाणी भी ऐसे निकले कि तू त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव एकरूप है। यह ऐसी वाणी जिनसूत्र की और ज्ञानी की वाणी, उसे निमित्तरूप से कही जाती है, इसके अतिरिक्त निमित्तरूप भी नहीं कही जाती। कहो, समझ में आया ?

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले...
भिन्न-भिन्न लक्षणवाले। एक समय की विकारी पर्याय और एक-एक समय की पर्याय, वह भिन्न लक्षणवाली। **विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं,...** त्रिकाल में से जो नयी पर्याय और विकल्प उठते हैं, वह मैं नहीं, उतना मैं नहीं। भाई! प्रगट पर्याय निकाली। कहो, पुण्य विकल्प मैं नहीं, निमित्त तो नहीं, उसकी बात भी कहीं नहीं। यह तो नयी प्रगट पर्याय भिन्न-भिन्न लक्षणवाली विकल्प की पर्याय प्रगट होती है, वह भाव वह मैं नहीं। त्रिकाल में नहीं। त्रिकाल मैं सदा परमज्योति चैतन्यमूर्ति हूँ। क्योंकि वह सब मुझे परद्रव्य है। क्योंकि वे सब मुझे मेरे त्रिकाल सदा ही चैतन्यज्योति एक स्वभाव के लिये लाभदायक नहीं है, इसलिए परद्रव्य है। कार्य होता है पर्याय में, तथापि उस पर्याय को भी स्वद्रव्य का अवलम्बन लेने के लिये पर्याय स्वद्रव्य में मुड़ती है। कार्यपर्याय मुड़ती है त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध चैतन्य के झुकाव में, तब कार्य प्रगट होता है; इसलिए पर्याय को परद्रव्य गिनकर त्रिकाल द्रव्य को स्वद्रव्य आदरणीय कहा गया है। कहो, समझ में आया ?

जिसका उदार चित्त है, जिसका हृदय उच्च और उज्ज्वल है, जिसे अभिप्राय शुद्ध करना है, जिसे परमसत्य हृदय में धारण करना है। उसे अभिप्राय की उदारता, बड़ी खान चैतन्य की। एक समय की पर्याय, एक समय का विकल्प, वह उसमें कुछ खान-बान है नहीं। जिसके चित्त का अभिप्राय उदार करना हो, दानी होना हो, प्रगट करना हो... होना हो तो उसे यह सिद्धान्त सेवन करना चाहिए। आत्मा को दान देना हो दानी अर्थात्। भाई! दानी होना अर्थात्? दान कोई पर की बात नहीं। सम्प्रदान—आत्मा की पर्याय में दानी होना हो, आत्मा की पर्याय में दान देने का दानी होना हो, उसे ऐसे उदार

अभिप्राय का सेवन करना कि मैं त्रिकाल शुद्ध चैतन्यज्योति ही हूँ। पर्याय और विकल्प के भेद सब व्यवहार का विषय जाननेयोग्य है, कोई आदरनेयोग्य नहीं। कहो, समझ में आया? ओहोहो! लो, इसे उदार कहा। मोहनभाई! पैसा-बैसा खर्च करे, उसे उदार नहीं कहा। मात्र पुण्य करे और पुण्य के परिणाम करे, उसे उदार नहीं कहा। एक समय की पर्याय का आदर करे, उसे उदार नहीं कहा। ओहोहो! भाई! एक समय की पर्याय को (उदार नहीं कहा)। क्योंकि एक समय की पर्याय तो चली जायेगी। चली जायेगी इसलिए उसे तू आदर मत करना, वह उदार नहीं है। एक समय का विकल्प उठे पुण्य का, व्यवहाररत्नत्रय का, वह चला जायेगा, उसे मानेगा तो तू उदार है नहीं। उदार, उज्ज्वल, उदात्त जिसका अभिप्राय है और जिसे उस अभिप्राय का सेवन करना हो तो त्रिकाल... केवली और आत्मा का स्वभाव ऐसा ही है कि त्रिकाल चैतन्यज्योति का मैं आदर करूँ, वही अभिप्राय सत्य और सम्यक् है, इसके अतिरिक्त कोई सम्यक् है नहीं। कहो, समझ में आया?

यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव... अनेक-अनेक कहना है। अनेक-अनेक वे आदरणीय नहीं; एक, वह आदरणीय है। भाई! मैं वह शुद्ध चैतन्यमय 'एक' लिया है न? एक त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... 'एक' वह आदरणीय है। परन्तु जो विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वे 'अनेक', वह मैं नहीं। अनेक का लक्षण पर्याय, पर्याय में अनेकता आने पर धर्म की पर्याय अनेक प्रगट होने से उसका लक्ष्य—आश्रय करने से राग होता है। शुद्ध उपादान द्रव्य, शुद्ध उपादान द्रव्य। यहाँ तो त्रिकाल शुद्ध उपादान द्रव्य, वह शुद्ध उपादान है। त्रिकाल जो कारण शुद्ध उपादान स्वयं द्रव्य कारण पलटकर कार्य होता है। ओहोहो! एक बात व्यवस्थित बैठती नहीं, वह फिर शास्त्र और पृष्ठ पढ़े, उसमें उसका एक भी अक्षर सच्चा नहीं होता। अपनी दृष्टि से अर्थ करे, अपनी दृष्टि से तह बैठावे और उल्टी विपरीतता भरे।

यह यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य, यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य और यहाँ पद्मप्रभमलधारि-देव का सार अनन्त तीन काल, तीन लोक का सार (कहते हैं), कि इस सिद्धान्त का सेवन करो। लो! सिद्धान्त का सेवन करो। यह सेवन करो, वह पर्याय है, हों! सेवन करनेवाली, वह तो पर्याय है। परन्तु ऐसा सिद्धान्त का सेवन करो कि 'मैं त्रिकाल

एकरूप चैतन्य ज्ञायक हूँ' यही कारण है, बाकी कोई कारण है नहीं। विविध प्रकार के भाव... उसमें एक कहा था और उसके सामने विविध प्रकार के भाव प्रगट हों, वह मैं नहीं। अनेक पर्यायों का आश्रय, वह मेरा स्वरूप नहीं। एकरूप त्रिकाल स्वभाव है, वह मेरा स्वरूप है। वह यह द्रव्यदृष्टि है। वह कारणपरमात्मा अंगीकार करनेयोग्य है। यह अमृतचन्द्राचार्य का आधार दिया।

और (इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक (स्वयं) कहते हैं) — अब पद्मप्रभमलधारि स्वयं श्लोक इसके लिये कहते हैं।

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-

दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः ।

इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी

सिद्धिं सोडयं याति तामत्यपूर्वाम् ॥७४ ॥

श्लोकार्थः—शुद्ध जीवास्तिकाय से... शब्द दूसरा प्रयोग किया, भाई! कारणसमयसार त्रिकाल कहो, कारणपरमात्मा त्रिकाल कहो, ध्रुव कहो, शुद्ध जीवास्तिकाय कहो, नित्य कहो, कारणसमयसार त्रिकाल कहो, कारणशुद्ध जीव कहो, वह सब एक है। शुद्ध जीवास्तिकाय से... शुद्ध जीवास्तिकाय, वह त्रिकाल ध्रुव एक स्वरूप। कारणपरमात्मा कहो या शुद्ध जीवास्तिकाय कहो। एक समय की पर्याय और विकल्प को गौण करके। एक समय की पर्याय और विकल्प और राग को गौण करके, गौण करके अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाल जो शुद्ध जीवास्तिकाय एकरूप चिदानन्द आनन्दकन्द ध्रुव सामान्य पड़ा है, उससे अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं... उससे जो अन्य सभी जो पर्याय के आश्रय से रागादि होते हैं, इसलिए सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं। कहो, समझ में आया ?

शुद्ध जीवास्तिकाय... एक की बात है, हों! एक जीवास्तिकाय की, सभी जीवास्तिकाय की बात नहीं। स्वयं शुद्ध त्रिकाल शुद्ध जीव, शुद्ध जीव अस्ति है, काय असंख्य प्रदेशी। त्रिकाल एकरूप ध्रुव आनन्दकन्द ज्ञायकस्वभाव है, उससे अन्य ऐसे जो सब... पुद्गलद्रव्य—पर का लक्ष्य करने से पुद्गल अर्थात् राग की उत्पत्ति और कर्म

का बन्धन होता है। लक्ष्य अर्थात् आश्रय करने से। ज्ञान करने से, वह तो व्यवहार का विषय है। सब पुद्गलद्रव्य के भाव वे वास्तव में हमारे नहीं। **ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,...** ऐसा जो तत्त्व का जाननेवाला स्पष्टरूप से कहता है, ऐसा जो तत्त्व का जाननेवाला स्पष्टरूप से मानता है। यहाँ तो 'कहता है' का जोर देते हुए, वाचक का जोर दिया है, परन्तु वाच्य अन्दर पड़ा है। ऐसा जो तत्त्व का जाननेवाला स्पष्टरूप से मानता है और कहता है, **वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।** वह अति अपूर्व सिद्धि। अति अपूर्व सिद्धि अर्थात् मुक्ति। अनन्त काल में नहीं प्रगट हुई ऐसी मुक्तिदशा को प्राप्त करता है। लो, यहाँ तो 'कहता है' इसका वजन दिया।

जिसकी वाणी में जितना जोर आता है, उसका जोर वाणी का नहीं कहना। उसके पीछे वाच्य तत्त्व का जो है, एक शुद्ध भगवान कारणपरमात्मा के अतिरिक्त कहीं भी मुझे आदरणीय तीन काल में है नहीं, ऐसा स्वयं मानता है और जगत को कहता है। जगत को कहता है। यह भाषा... अब आता है आगे। ज्ञानी के वचन निमित्तरूप कहेंगे। ऐसा जो कहते हैं और उस अन्तर अभिप्राय के आश्रय से समझता है, उसे वीतराग की वाणी और गुरु की वाणी निमित्तरूप कही जाती है। वरना तो अनन्त बार समवसरण में सुना, तथापि उसने अपने अभिप्राय से सब बात खतौनी की। समझ में आया? सर्वज्ञ कुछ कहे, शास्त्र कुछ कहे, ज्ञानी कुछ कहे। अपनी दृष्टि से उसका अर्थ किया और अपनी दृष्टि से ज्ञानी को भी खतौनी कर डाली। ऐसी दृष्टिवाले की बात यहाँ नहीं करते।

यहाँ तो जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से स्पष्ट बात करता है कि एक तेरे जीवास्तिकाय के अतिरिक्त और मेरा मेरे जीवास्तिकाय के अतिरिक्त तीन काल में मुक्ति और मोक्ष का मार्ग कोई है नहीं। ऐसा जो स्पष्टरूप से कहता है, **वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।** वह अति अपूर्व सिद्धि (प्राप्त करता है)। साधारण सिद्धि तो पावे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसी पर्याय नहीं। वह तो अति अपूर्व। अनन्त काल में नहीं प्राप्त ऐसी परमात्म पूर्ण परममुक्तदशा को प्राप्त करता है। यह पद्मप्रभमलधारिदेव ने श्लोक किया, लो! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा था, स्वद्रव्य-परद्रव्य की व्याख्या, पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की थी, अमृतचन्द्राचार्य का आधार देकर पुष्टि की थी कि भाई! चारों ओर से देखो तो बात यह है। किसी पक्ष से दूसरी बात है नहीं।

अब पाँच गाथायें अन्तिम । देखो, यह गाथायें बहुत अलौकिक हैं । सब अलौकिक हैं एक-एक (गाथा) । परन्तु इसमें अब ज्ञानी को निमित्त किस प्रकार सिद्ध करते हैं, ऐसी अद्भुत अलौकिक रीति से बात की है ।

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१ ॥
 चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं ॥५२ ॥
 सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
 अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी ॥५३ ॥
 सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।
 ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४ ॥
 ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं ।
 णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥५५ ॥
 मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१ ॥
 चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है ॥५२ ॥
 जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।
 वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो ॥५३ ॥
 सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है ।
 व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है ॥५४ ॥
 व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये ।
 चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये ॥५५ ॥

पहले अन्वयार्थ :- विपरीत अभिनिवेश... अर्थात् अभिप्राय; आग्रह रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है;... पहले व्यवहारसमकित की बात की । अभी तो यह व्यवहार-समकित

की बात है। विपरीत अभिप्रायरहित सर्वज्ञ शास्त्रकार, गुरु और ज्ञानी जो कुछ कहते हैं, वह पर के लक्ष्य से विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धान ही... व्यवहार समकित है। अभी मोक्ष का कारण नहीं। कहो, समझ में आया? संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान), वह सम्यग्ज्ञान है। परसन्मुख का, वह भी व्यवहारज्ञान है। संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान), वह सम्यग्ज्ञान है। वह व्यवहार है, परसन्मुख की बात है।

चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है;... यह भी व्यवहार है। यह तो पहले की व्याख्या की। हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव, वह (सम्यक्) ज्ञान है। यह भी व्यवहार है। भाई! यह भी व्यवहार है। अभी तो व्यवहार का विकल्प। निश्चय ऐसा हो, उसे ऐसा विकल्प होता है। फिर कहेंगे। हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव, वह (सम्यक्) ज्ञान है। इतनी बात की। सम्यक्चारित्र की बाद में करेंगे, भाई! ध्यान रखना।

अब कहते हैं कि सच्चे सम्यक्त्व का निमित्त... सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है;... वीतराग की वाणी है। वह वाणी उसे—कारणपरमात्मा को उपादेयरूप से बताती है। वह जिनसूत्रवाणी। इसलिए से ५० के बाद यह कहा। वीतराग की वाणी जिनसूत्र ऐसी वाणी है कि त्रिकाल जिसमें से पर्याय प्रगटे, उस कारणपरमात्मा को उपादेयरूप से स्वीकारता है। वह वाणी कहते हैं। उस वाणी को निमित्तरूप से कहा। वह बहिरंग निमित्त है। बहिरंग निमित्त है। अन्तरंग कारणपरमात्मा का आदर करके श्रद्धा हो, उसे यह बहिरंग निमित्त कहा जाता है। समझ में आया?

वीतरागी सूत्र। इसलिए शब्द रखा। जिन रखा था न। वीतरागी वाणी। वीतरागी वाणी अर्थात् वीतराग की ओर ले जाये और जिसमें भेद का आश्रय न रहे, जिसमें त्रिकाल चैतन्य अभेद का आश्रय बतावे, उसे वीतराग की वाणी कहा जाता है। भाई! क्या कहा, समझ में आया? वीतराग वाणी का सार—अभिप्राय, तात्पर्य, शास्त्र तात्पर्य, सूत्र तात्पर्य, उसका योगफल वीतरागता है। वीतरागता, वह त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव के अवलम्बन से ही प्रगट होती है, किसी पर्याय से, विकल्प से और निमित्त से प्रगट नहीं होती। ऐसी वीतराग की वाणी, वह सम्यक्त्व का निमित्त है। ऐसी वाणी निमित्त कही जाती है। कहो, समझ में आया?

अब दूसरी रीति। **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** ऐसे वीतरागीभाव को जाननेवाले पुरुषों को जिनसूत्र अर्थात् ऐसे शास्त्र कहे, परन्तु वीतराग जो कहते हैं, वह जाना है अन्तर में कि आत्मा राग और पुण्य और पर्याय से प्रगट नहीं होता। आत्मा त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ है। ऐसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। चौथे से ठेठ केवली तक लेना। **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** अकेले सूत्र नहीं, हों! शब्द नहीं, अकेले पृष्ठ नहीं। जिनसूत्र शब्द से जिन के शास्त्र में जो कहना है, वाच्य जो कहना है, वह तो वाचक से कथन है, वाच्य जो कहना है कि यह आत्मा ज्ञायक कारणस्वरूप त्रिकाल है। उसकी रुचि, दृष्टि और अन्तर्दृष्टि हुई है, ऐसे जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को (**सम्यक्त्व के**)... जिसे सम्यग्दर्शन का परिणाम प्रगट होता है, उसे यह **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** दूसरे (जीव के) समकित के परिणाम में अन्तरंग हेतु कहा है। ओहोहो! गजब बात, भाई! लो! पूरा अर्थ दूसरे प्रकार का निकला।

अन्तरंग हेतु। वह वीतराग की वाणी बहिरंग हेतु। वीतराग की वाणी, वह वाणी बहिरंग हेतु है। किसे? सम्यग्दर्शन पानेवाले को, पानेवाले को। और पुरुष वह अन्तरंग हेतु है। है तो पर, है तो वह पर, परन्तु उसका अभिप्राय है, उसे यह पकड़ता है अन्तर स्वभाव के आश्रय से, इसलिए उस (बाह्य पुरुष को)—निमित्त को उपचार से उसे अन्तरंग हेतु कहा है। कहो, समझ में आया? बाह्य पुरुष तो उपचार ही है वास्तव में। पुरुष भी उपचार है और वाणी भी उपचार है। परन्तु वाणी को बहिरंग उपचार (निमित्त) कहा और पुरुष को अन्तरंग हेतु कहा है। क्योंकि उसका अभिप्राय पकड़ना है। वाणी तो गौण है। वाणी कहने का जो अभिप्राय है कि 'वीतराग आत्मा तू है, त्रिकाल ज्ञायक है, उसका अवलम्बन ले'—ऐसा उसका अभिप्राय पकड़ने में वह निमित्त होती है, इसलिए वीतरागी सूत्र के जाननेवाले पुरुष को समकित पानेवाले जीव को वह पुरुष अन्तरंग हेतु कहे हैं। कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन पानेवाले को अकेले पुस्तक से प्राप्त हो, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

पहली बात है। पहली जहाँ देशना होती है, उसकी पात्रता की पर्याय हो, अर्थात् चैतन्य का उसे पहला निमित्त होता ही है। उसकी पर्याय पराधीन नहीं, उसके क्रम में

आकर खड़ी रहती है। परन्तु उसकी पर्याय सत् का जहाँ 'त्रिकाल ज्ञायक हूँ' ऐसा समझने का हो तो उसे निज—वीतरागी सूत्र का ही बहिरंग निमित्त होता है। दूसरे सूत्रों का बहिरंग निमित्त नहीं होता और वीतरागी भाव अन्तर से प्रगट हुआ है दर्शन, वह जिनसूत्र के जाननेवाले का अर्थ यह है। वीतराग का तात्पर्य, वीतरागी दृष्टि है। वीतराग का तात्पर्य वीतरागी चारित्र है। वह दृष्टि और चारित्र आदि प्रगट हुए हैं, वह अन्तरंग हेतु कहे हैं। कहो, समझ में आया? किसे अन्तरंग हेतु कहा है? सम्यग्दर्शन जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे सम्यग्दर्शन परिणाम में वीतराग की वाणी को बहिरंग निमित्त कहा और सूत्र के जाननेवाले धर्मात्मा को दूसरे के समकित के परिणाम में अन्तरंग हेतु कहा है। कहो, समझ में आया? देखो, सत् को सत् का निमित्त होता है। उसे अकेले पृष्ठ, पुस्तक का निमित्त नहीं होता कि कोई पृष्ठ पढ़कर हो जाये, यह पहले हो सकता नहीं। इस बात को यहाँ प्रसिद्ध करते हैं। दलीचन्दभाई!

एक इसकी तैयारी... सम्यग्ज्ञान है न? ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। इसलिए जहाँ स्व को जाननेवाला जहाँ जगा, उस समय परप्रकाशक खिला; इसलिए पर निमित्त भी ऐसा ही सामने होता है, यह वस्तु का स्वभाव है। पराधीनता नहीं। पराधीनता नहीं। यह न हो तो नहीं होता, ऐसा नहीं। यह होता है अर्थात् यह होता ही है, यह वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! केसर भरना हो तो डिब्बा ही होता है, केसर भरना हो तो बोरी नहीं होती। यह ऐसा ही सम्बन्ध है। पराधीन कोई नहीं किसी के कारण से। सम्यक्त्व का निमित्त बाह्य में वीतरागी सूत्र कहे। है तो दोनों बाह्य। और जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुष हैं तो बाह्य। सम्यग्दर्शन के परिणामवाले को वह चीज तो बाहर है, तथापि भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा डाला है कि उसे हम अन्तरंग हेतु कहते हैं। समकित पानेवाले को अन्तरंग निमित्तरूप से उपचार से हो तो उसे अन्तरंग हेतु उपचार से कहते हैं और वाणी को बाहर से निमित्त कहते हैं। (इसे) बाह्य हेतुरूप उपचार, उसे अन्तरंग हेतुरूप उपचार (कहते हैं)। भाषा भी दूसरे प्रकार की! कहो, समझ में आया?

क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं। सम्यग्दर्शन पानेवाले जीव को जो निमित्त मिला है, उस निमित्तवाले जीव को या तो दर्शनमोह का क्षय हुआ है, या उपशम हुआ है और या क्षयोपशम हुआ है। क्षयादिक। भाई! यह तो बाहरवें गुणस्थान की बात

तो स्वयं अन्तरात्मारूप से करे, तब करते हैं न। यह तो करे कि अभी भले गुणस्थान न हो, उसका प्रश्न नहीं। बारहवें गुणस्थान की व्याख्या भी कर डाले कि उत्कृष्ट अन्तर आत्मा बारहवें गुणस्थानवाला, शुक्लध्यान हो तो ऐसा हो, सब पाठ में आता है। शुक्लध्यान हो, न हो, उसका प्रश्न अभी नहीं। शुक्लध्यान और धर्मध्यान करे तो ऐसा हो, शुक्लध्यान करे तो ऐसा हो। वह शुक्लध्यान कहीं मुनि को स्वयं को था नहीं, परन्तु स्वभाव की उग्र भावना में वह वाणी सब निकल गयी है। वाणी निकल गयी है, हों! लाये नहीं कोई। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, जो कोई धर्मी जीव अपने आत्मा का अवलम्बन लेने की तैयारी हुई है, कारणपरमात्मा के अवलम्बन की योग्यता हुई है, उसे बहिरंग में वीतरागी वाणी जिसमें वीतराग तात्पर्य है, वीतराग ही चारों अनुयोगों का तात्पर्य है। वीतराग अर्थात् स्वभाव का अवलम्बन, वही उसका तात्पर्य है। वह वाणी उसे बहिरंग निमित्त होती है और उस वाणी के समझनेवाले ज्ञानी जिन्हें दर्शनमोह का क्षय, उपशम या क्षयोपशम हुआ हो, वे समकित पानेवाले को बहिरंग उपचार से, बहिरंग अर्थात् उपचार से अन्तरंग हेतु कहे हैं। समझ में आया ? अब यह तो व्यवहार की बात की और यह निमित्त की बात की। यह निमित्त निश्चय का है।

अब सुन, मोक्ष के लिये... अब निश्चय की बात करते हैं। सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... यह निश्चय है। यह त्रिकाल चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से सम्यक्त्व हो, वह मोक्ष के लिये समकित है। वह व्यवहार से विकल्प था और निमित्त की ओर का झुकाव, वह भी विकल्प था। अब, वह किसे व्यवहारनय से निमित्तरूप होता है ? ऊपर जो व्यवहार कहा और यह निमित्त है, ऐसा कहा। भाई! ऊपर व्यवहार कहा और निमित्त कहा, वह किसे व्यवहार और निमित्त कहा जाता है ? सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... कि जिसका चैतन्यस्वभाव कारण भगवान के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उसे मोक्ष के लिये समकित, उसे उस व्यवहार को निमित्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया ?

यह गाथा बहुत ऊँची है! बहुत सरस! यह शुद्धभाव के अधिकार में अन्तिम अलौकिक बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने स्पष्ट कर डाली है। कितने ही लोग अभी

खतौनी कर डालते हैं कि चाहे जैसा निमित्त हो, चाहे जैसे पृष्ठ हों, परन्तु हम तो उसमें से सम्यक् प्राप्त करेंगे। वह मिलता नहीं। या पूर्व का संस्कार होना चाहिए, या पूर्व में भी सुना हुआ होना चाहिए, परन्तु एक बार ज्ञानी से उसके परिणाम को जो उपादेय त्रिकाल शुद्धात्मा है, ऐसा भणकार ज्ञानी से पहले मिला हुआ होना चाहिए और ऐसी पात्रता हो, उसे ही यह होता है। इससे यह बात करते हैं कि वह मोक्ष के लिये ही उसका समकित है। स्वभाव-सन्मुख झुकी हुई श्रद्धा, वह समकित है। उसकी व्याख्या करेंगे सब टीका में। यह तो अन्वयार्थ है। एक बार बहिनों ने कहा था कि अन्वयार्थ भी इसमें वाँचना। इसलिए यह अन्वयार्थ वाँचते हैं। कहो, समझ में आया? भाई! यह पहला-पहला है तो वाँचना। क्यों? वजुभाई! इसमें पहला अन्वयार्थ छोड़ दिया था एक बार।

सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... और इसमें जरा बात बहुत सरस है न, अन्वयार्थ में ली है। सम्यग्ज्ञान होता है। और मोक्ष के लिये सम्यग्ज्ञान होता है। उस व्यवहार की बात की, वह मोक्ष के लिये नहीं। पहले जो समकित और ज्ञान कहे, वह तो व्यवहार है, वह तो विकल्प है, वह मोक्ष के लिये नहीं। परन्तु जो मोक्ष के लिये सम्यक् होता है, ऐसा वहाँ विकल्प होता है। केवली नहीं, इसलिए (होता है)। होता है इतना। होता है। यहाँ निश्चय होता है, वहाँ विकल्प होता है। बस इतना होता है। इससे और इससे यह बात नहीं। **सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, चारित्र (भी) होता है;...** यह तीन लिये। भाई! निश्चय के लिये यह। आत्मा त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वभाव ध्रुव ज्ञायक, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान और उसके आश्रय से चारित्र, वह मोक्ष के लिये है। जितना जो जिनसूत्र को अन्तरंग हेतु और निमित्त के लक्ष्य से है, इतना अभी विकल्प और व्यवहार है, वह व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं। कहो, समझ में आया?

अब कहते हैं, **इसलिए मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा।** चारित्र के दो पहलू कहेंगे, कहते हैं। क्योंकि उसमें चारित्र नहीं आया था, भाई! उसमें दर्शन-ज्ञान दो बोल आये थे। दो बोल आये थे। चारित्र का व्यवहार-निश्चय दो बोल नहीं आये थे और इसमें निश्चय में तीन बोल आ गये दर्शन-ज्ञान और चारित्र। **‘इसलिए मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा।’** व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण

होता है;... अर्थात् कि छठवें गुणस्थान में विकल्पवाला भाव वर्तता है, उसे विकल्पवाला तप कहा जाता है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव का अवलम्बन लेकर जो दृष्टि, ज्ञान और रमणता मुनि को छठवें (गुणस्थान में) भावलिंगी सन्त को नग्नदशा प्रगट हुई है, ऐसे जो मुनि को व्यवहार अर्थात् जो विकल्प—शुभराग वर्तता है, ऐसे जीव को व्यवहार तप है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि अभी शुभराग में है। दृष्टि प्रगट हुई है, चारित्र प्रगट हुआ है, परन्तु अभी अन्दर सातवीं भूमिका निश्चयचारित्र में स्थिर नहीं हुआ। **व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है;...** तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। वह छठवें गुणस्थान में रागादि का भाव, वह व्यवहार मुनिपना है। निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है। निश्चय अर्थात् स्वभाव में लीन हो गया, ऐसे तपस्वी को। यहाँ तो ऐसा कहा कि निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपस्या होती है। टीका में तो ऐसा लेंगे कि स्वभाव के आश्रय से जो स्थिर होकर तप में पड़ा है, उसे निश्चयचारित्र होता है। समझ में आया ? क्योंकि तप अर्थात् मुनिपना लेना है। व्यवहार मुनिपना, निश्चय मुनिपना। निश्चय मुनिपना अर्थात् स्वभाव के भानसहित अन्दर में स्थिर हो गया, स्थिर हो गया है, निर्विकल्प में जम गया है, वह निश्चयमुनि और निश्चयतप। तथा दृष्टि और चारित्रस्वरूप प्रगट होने पर भी स्थिर नहीं हुआ और जो विकल्प शुभराग में छठवें में राग में—शुभभाव में वर्तता है, उसे शुभराग का व्यवहारचारित्र गिनकर व्यवहारतप में खड़ा है, ऐसा कहा है। निश्चय तो है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है, परन्तु निश्चय में लीन नहीं; इसलिए उसे निश्चयतप कहा नहीं। भाई! कहो, समझ में आया इसमें? ओहोहो! कहो, यह अन्वयार्थ हुआ। गाथा में ही बहुत भरा है, पाँचों गाथाओं में।

टीका:—यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। पहले भेदरत्नत्रय का स्वरूप है। समझ में आया ? पश्चात् दूसरा पैराग्राफ है, **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयवाला...** वह गाथा जो है वह। इसके बाद आयेगी। परन्तु यह दोनों साथ में होते हैं, हों! ऐसा नहीं कि व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, ऐसा है नहीं। यहाँ तो पहिचान कराते हैं कि जहाँ ऐसा निश्चय हो, वहाँ ऐसा विकल्प अभी नय है, साधक है, केवलज्ञानी है नहीं, इसलिए उसे ऐसा विकल्प, ऐसा जिनसूत्र का उसे निमित्त, प्रथम भी निमित्त और अभी

भी झुकाव होता है, विकल्प उठे तो वीतराग वाणी का स्वाध्याय करता है। यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। कहो, समझ में आया? प्रथम, भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है—भेद उपचार अर्थात् भेदरूप व्यवहार। भेदरूप व्यवहाररत्नत्रय इस प्रकार है। जो विकल्पवाला है, जो शुभरागवाला है, जो मोक्ष के लिये नहीं, उसका यह कथन चलता है। गजब बात, भाई!

विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत... देखो, उसमें भी व्यवहार में कहते हैं कि निश्चय का भान है और व्यवहार में विपरीत आग्रहरहित, विपरीत अभिनिवेशरहित, विपरीत श्रद्धारहित (होता है)। उसे कोई सर्वज्ञ के अतिरिक्त, सर्वज्ञ की वाणी के न्याय के अतिरिक्त कोई कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की कहीं लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं होनी चाहिए, तो उसे व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। वह भी निश्चयश्रद्धा हो तो। इतनी शर्त के ऊपर बात सब है। **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप...** अभिनिवेश अर्थात् अभिप्राय। विपरीत—उल्टे अभिप्रायरहित श्रद्धानरूप—**ऐसा जो सिद्धि (-मुक्ति) के परम्पराहेतुभूत...** लो, परम्पराहेतुभूत। निश्चय तो त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, वह कारण साक्षात् मुक्ति का कारण है। परन्तु वह विकल्प उठा है, वह क्रम से तोड़ डालेगा, इसलिए से निमित्तरूप से परम्परा हेतु (कहा है)। हेतु अर्थात् निमित्त। परम्परा निमित्तभूत **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति उत्पन्न हुआ चलता-मलिनता-अगाढ़ताररहित निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है।** निश्चय स्व भगवान् कारणपरमात्मा के प्रति निश्चयभक्ति प्रगट हुई कारणपरमात्मा की और जो श्रद्धा सम्यक् मोक्ष का कारण हुआ, ऐसा जो विकल्परूप भाव वर्तता है कि जो भगवन्त पंच परमेष्ठी... पंच परमेष्ठी—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, मुनि—यही मोक्ष के निमित्तभूत हो सकते हैं। समझ में आया? यहाँ पंच परमेष्ठी को वजन दिया है, भाई! कहो, समझ में आया? पंच परमेष्ठी, पाँच पद—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु यह पाँचों वीतरागी पद हैं। अल्प तारतम्यता में जरा अन्तर है। अरिहन्त में आचार्य, उपाध्याय, साधु... सिद्ध तो पूर्ण हो गये हैं, तथापि अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय के प्रति चलता, मलिनता (अर्थात् कि) ऐसा होगा या नहीं? यह नहीं। मलिनता नहीं, अगाढ़ता—अनिश्चितता नहीं, उससे रहित। यह तो तीन दोष हैं। इन तीन दोषरहित उत्पन्न हुआ

निश्चल भक्तियुक्तपना,... त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ आदि पंच परमेष्ठी के प्रति निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है। यह व्यवहारसमकित का विकल्प है। विकल्प अर्थात् शुभराग। समझ में आया ?

उसे विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव... वह अस्ति कही। उसे कोई विष्णु कर्ता, ब्रह्मा ने किया, किसी ने कुछ किया इत्यादि, उन्होंने कहे हुए जो तत्त्व सर्वज्ञ भगवान के अतिरिक्त के त्रिलोकनाथ परमात्मा ने एक समय में जो तत्त्व जाने, देखे और वाणी द्वारा कहे, उन कथित से विपरीत, उनके कहे हुए से सब विपरीत पदार्थ समूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव, उनके पदार्थ के आग्रह का अभाव है। अर्थात् किसी अंश में भी ' भगवान पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त किसी की वाणी कहीं आंशिक सत् होगी ' ऐसा जिसे अन्दर (अभिप्राय) पड़ा है, उसे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। यहाँ तो ब्रह्मा-विष्णु-महेश अन्यमति के जो कहे हुए तत्त्व ऐसा। यह भगवान ब्रह्मा, यह पहले कहे, वह अलग बात है। भाई ने वापस मिलाया। पहले पद में आया था न कि हे वीतराग! तू ब्रह्मा, तू विष्णु... परन्तु उनके विपरीत पदार्थ नहीं। यहाँ तो विपरीत.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - १४-०२-१९६४

गाथा - ४७, प्रवचन नं. ३९८

यह नियमसार एक शास्त्र है। जिसमें मोक्षमार्ग का अधिकार है। जीव अपने स्वभाव और शुद्धस्वभाव से पूर्ण भरपूर होने पर भी उसकी अनादि की भूल से चार गति और चौरासी (योनियों) में परिभ्रमण करता है, ऐसे संसारी जीव की मुक्ति कैसे हो ? और उस मुक्ति की दशा कहाँ से आती है ? कोई सत् में है या कोई अध्धर से नयी आती है ? उसका यहाँ नियमसार में वर्णन किया है। उसमें इस अधिकार में शुद्धभाव में तो यह बहुत सरस अधिकार है। देखो, ४७ गाथा ४७। नियमसार इस ओर नाम है और इस ओर शुद्धभाव अधिकार है। दोनों ओर लेखन है। ९९ पृष्ठ है। क्या कहते हैं ?

जारिसिया सिद्धप्या भवमल्लिय जीव तारिसा होंति ।

जरमरणजम्ममुक्का अट्टगुणालंकिया जेण ॥४७॥

नीचे इसका हरिगीत है—

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही ।

गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं ॥४७॥

इसकी टीका। उस ओर टीका १००वें पृष्ठ पर। देखो, क्या कहते हैं ? शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से... अर्थात् क्या ? कि यह आत्मपदार्थ एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्ध चैतन्य आनन्द आदि अनन्त गुण का रसकन्द एक स्वरूप वस्तु द्रव्य-द्रव्य है। द्रव्य अर्थात् कोई भगवान द्रव्य और आत्मा गुण, ऐसा नहीं, हों ! वस्तु की खबर नहीं, इसलिए यह द्रव्य और गुण आया न सवेरे, इसलिए कोई कहे कि द्रव्य अर्थात् कोई भगवान और गुण अर्थात् आत्मा। यह यह आत्मा गुण। अरे, प्रभु ! तुझे खबर नहीं। यह द्रव्य अर्थात् यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शक्तिवान, सत्त्ववान, स्वभाववान एकरूप त्रिकाल ध्रुवस्वरूप है, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। द्रव्य कोई भगवान है नियंता और उसका यह एक अंश गुण है और यह अंशी है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं कि जो संसार से रहित परमात्मा सिद्धपद को शक्ति की अन्दर में सत्त्व स्वभाव था, वह अन्तर अनुभव करके आनन्द की पर्याय को

प्राप्त हुए। वे भूले थे परन्तु स्वयं के कारण से। कोई ईश्वर ने उसे भुलाया है या कर्म ने भुलाया है, ऐसा वस्तु में है नहीं।

मुमुक्षु : पंचम काल है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में भी भूलता नहीं। कल गाया था न भाई ने। उत्तमचन्द्रभाई कहाँ गये ? गये ? हैं ? कल गाया था न दोपहर में। 'अविद्याकी ओथे रे अवरानो मारो आत्मा, अविद्याने ओणे रे अवरानो मारो आत्मा, अनेक जोग वीत्या रे अने पंथे चालता जी।' यह आयेगा अभी। 'नाव्यो नाव्यो पंथडा केरो रे पार, प्रभु तारी पासे रे हरि नथी वेगळा जी। पण आडो आव्यो रे तने अहंकार।' अपने एक समय के शुद्ध सच्चिदानन्दस्वभाव को भूलकर अपना निर्मलानन्द सत्-सत् परमात्म सत् सत्य, सत् का सत्पना, सत् ऐसा आत्मा उसका पना, ऐसा सत्पना ऐसा शुद्धभाव। देखो, यहाँ अधिकार है। इस शुद्धभाव को ही यहाँ द्रव्यरूप से वर्णन किया गया है। अकेला त्रिकाल अखण्ड ज्ञायक सूर्य का कन्द-बिम्ब ऐसा जो उसका स्वरूप, उसकी अन्तर दृष्टि बिना इसने अनादि से परपदार्थ को मेरा (है, ऐसा माना है)। मेरे की व्याख्या अपने की थी कल कि मेरे अर्थात् एक-एक रजकण अपने से भिन्न है, आत्मा भिन्न है, उसकी वर्तमान चलती—होती अवस्था के कार्य को 'मैं करूँ' उसने पर को अपना माना है, पर से भिन्न उसने अपना स्वरूप जाना नहीं। समझ में आया ?

तदुपरान्त यह पुण्य और पाप के विकल्प उठते हैं, उन्हें भी अपनी अहंकारदशा के कारण अहंकार आया उसे आडा अहंकार। चिदानन्द ज्योतिस्वरूप एक समय में पूर्ण शुद्ध का भान जिसके अन्तर घोलन में अकेला आनन्द झरे, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे अपनी वर्तमान दशा में पर के अहंकार से भूला। उसे भुलानेवाला कोई नहीं और उसकी भूल तोड़कर जो स्वभाव है, वह प्रगटे, वह स्वभाव कहीं से आता है, ऐसा नहीं। मनसुखभाई! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में... दृष्टान्त तो अपने बहुत बार देते हैं न! पीपर का नहीं दिया था ? छोटी पीपर का गाँव-गाँव में दृष्टान्त पहले शुरुआत में (देते थे)।

छोटी पीपर का कद छोटा, दिखे काली, स्वभाव से हरी, चरपराहट से चौंसठ रस से भरपूर पूरी। भानुभाई! कौन ? छोटी पीपर। इतना जिसका कद है, कद अर्थात्

जिसकी चौड़ाई, काली जिसकी झाँई है झाँई, स्वभाव जिसका चौंसठ पहरा रस से भरपूर रसकन्द है और हरा जिसका रंग है। उस हरे रंग के चौंसठ पहरे रस से भरपूर ही वह तत्त्व कद है। इतना तथापि, उसे पीसे और प्रगटता है, तब कहीं बाहर से वह चीज़ नहीं आती। वह चौंसठ पहरा रस अन्दर है, चौंसठ पहरा कहो या पूर्ण कहो या रुपया कहो या सोलह आना कहो।

ऐसा जो चिदानन्द भगवान पूर्ण, जैसे वह चौंसठ पहरा रस है तो प्राप्त की प्राप्ति होती है और हरा रंग अन्दर है तो काली का अभाव होकर हरा व्यक्तरूप से—प्रगटरूप से होता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, एक-एक दाने में जैसे पूर्ण सामर्थ्य है इस बात में, उसी प्रकार एक-एक आत्मा में पूर्ण सामर्थ्य है। सभी आत्मा होकर एक और उसका कोई बनानेवाला—नियंता अलग हो नहीं सकता। समझ में आया ? क्यों ? कि यदि कोई भी उसका बनानेवाला कहो तो वह त्रिकाली सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता। कौन ? जाननेवाला। जो सर्वज्ञ हो, वह तो गतकाल में भी जो चीज़ें हैं उन्हें वह जानता है। वर्तमान है, उसे जाने और भूत है उसे जाने। कहीं किया हुआ हो तब तो सर्वज्ञ नहीं रह सके। तो वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता और भूतकाल में कर्ता, (परन्तु ऐसा होता नहीं)। नवरंगभाई ! तो एक चीज़ सर्वज्ञ है, त्रिकाल जाननेवाला है, त्रिकाल जाननेवाला है, ऐसा यदि सिद्ध करने जाये, वहाँ प्रत्येक वस्तु त्रिकाल अपने से सिद्ध है और उसका जाननेवाला भी एक समय में त्रिकाल ज्ञायक सर्वज्ञ सिद्ध है। समझ में आया ? वह वस्तु ही ऐसी है। उसमें एक-एक आत्मा का यहाँ अब वर्णन करना है। जैसे एक पीपर का दाना पूरा रस और हरे (रंग) से भरपूर, ऐसी तो अनन्त शक्तियाँ, मुख्यरूप से दो कही।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि शुद्धद्रव्यार्थिकनय। अर्थात् आत्मा पूर्ण द्रव्यस्वभाव शुद्ध, जैसे वह रस और हरे रंग से भरपूर पूर्ण। उसकी दृष्टि से देखे तो हरा और चरपरा रस प्रगट ही है, शक्ति की अपेक्षा से, हों ! समझ में आया ? यह तो छोटी पीपर की बात। तुम्हारे डॉक्टर की बात चलती है यह। मनसुखभाई है न। बहुत तूफान-धमाल करते हैं न यह सब डॉक्टर, नहीं ? ऐसा कर दे और ऐसा करे। क्या कहलाता है यज्ञ कहलाता है ? क्या कहलाता है ? नेत्रयज्ञ, फलाना यज्ञ, ढींकणा यज्ञ। कहते हैं, भाई ! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में यह आत्मा ऐसी चीज़ है कि कोई परवस्तु की किसी भी दशा को

करे नहीं, परन्तु करे नहीं तो ठीक, परन्तु ऐसा उसका स्वभाव है कि एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी सर्वज्ञ शक्ति पड़ी है। ऐसी आत्मा में सर्वज्ञ नाम का स्वभाव और गुण अर्थात् शक्ति पड़ी है और अतीन्द्रिय आनन्द का रस है। परन्तु अब वह कुछ नजर से देखे? नजर नहीं मिलती।

‘(मेरी) नजर के आलस्य से रे मैंने निरखे न नयन से हरि।’ पोपटभाई! आहाहा! यह भगवान आत्मा अन्दर एक समय में वह अज्ञान की आड़ में दिखता नहीं। जैसे विशाल समुद्र पानी से छलाछल भरा हो, परन्तु चार हाथ का कपड़ा आड़े किनारे रखा हो और मनुष्य पकड़कर खड़ा रहे तो वह चार हाथ का कपड़ा हो, वह उसे नजर में आड़ा आवे, इसलिए उसे समुद्र ऐसे छलाछल भरा है, वह दिखता नहीं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जैसे पीपर में चौसठ पहरा रस और हरा रंग परिपूर्ण (भरा हुआ है), परन्तु जिसका स्वभाव है, उसका अपूर्ण और न्यूनता या उसमें विकार हो नहीं सकता। ऐसा भगवान आत्मा। बहुत शान्ति से यह बात तो समझने जैसी है। इसे कभी समझा ही नहीं। क्रियाकाण्ड करके मर गया यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ। दया, व्रत, भक्ति, पूजा और दान। हो, ऐसा भाव (जब तक) पूर्ण न हो तो हो, परन्तु यह राग धर्म है या इसके कारण से आत्मा को शान्ति और स्वतन्त्रता प्रगटे, ऐसा तीन काल में नहीं है।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि शुद्धद्रव्यार्थिक। जो ज्ञान का अंश वर्तमान। जो जो नय है न? जो ज्ञान का अंश त्रिकाल द्रव्यस्वभाव वस्तु को जो लक्ष्य में लेने का जिसका प्रयोजन है। जिस ज्ञान का अंश है तो उसका अंश वर्तमान प्रगट परन्तु वह वर्तमान जितने को जाने, राग को जाने, निमित्त को जाने, उसे यहाँ वर्तमान को जाननेवाला व्यवहारनय कहा गया है। वह व्यवहारनय अभूतार्थ है। वास्तव में वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। है, ऐसा जाननेयोग्य है। आश्रय करनेयोग्य और आदर करनेयोग्य नहीं। अन्दर में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में चैतन्यसूर्य पूर्णानन्द से भरपूर उसे जो ज्ञान का अंश निहारे, देखे, उसे शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। भाषा भी अटपटी जैसी। शुद्धद्रव्यार्थिकनय। मनुसखभाई को पूछो। ६६ हुए। कितने हुए? शुद्धद्रव्यार्थिकनय। लो, हमेशा सामायिक, रात्रिभोजनत्याग कितने वर्ष से और कितने वर्ष से महीने के चार

अपवास (करते हैं)। धर्म करना है तो वह धर्म करनेवाला कौन? और धर्म हो किस दशा में? और वह धर्म आवे कहाँ से, यह समझे बिना? सब्जी लेने जाये तो वहाँ दो रुपये की सब्जी लेने गया तो वहाँ जाकर खड़ा रहे दो रुपया देकर। भानुभाई! मेरे बापू ने कहा है कि दो रुपये की सब्जी दो। कौनसी? यह मुझे खबर नहीं। कितनी? यह मुझे खबर नहीं। दो रुपये की सब्जी (दो)। मूर्ख कहे या क्या कहे उसे? परन्तु यह पचास प्रकार की सब्जियाँ हैं, यदि करेला और लौकी और फलाना और ढींकणा। सब्जी दो दो रुपये की मुझे मेरे पिता ने रुपये दिये हैं। सब्जी ले आना ऐसा कहा है। परन्तु पिता ने क्या कहा, खबर नहीं उसे? ज्येष्ठ महीने का समय है, यह आधा मण आम लाये हैं और यह आम के साथ करेला शोभते हैं। यह करेला लाना, ऐसा कहा था उसे। वह वातजनक पड़े, साथ में कड़वा लाना। वह भूल गया। छॉटकर दूसरी चीज़ में से छॉटकर यह लाना, यह भूल गया। दो रुपये की सब्जी लाना। ठूँठ खड़ा रहा, लो। कौनसी सब्जी? यह मुझे खबर नहीं। मूर्ख है? वापस पूछकर आ घर जाकर। भानुभाई! कपड़ा लो तुम्हारा। कपड़ा है? क्या है इन्हें दुकान? सोना होगा। सोना। लोहा नहीं, ताँबा नहीं, कथिर नहीं, कपड़ा नहीं, लकड़ी नहीं, उससे भिन्न यह सोना, ऐसा निर्णय किये बिना सोना लेने आता होगा? मुझे कुछ धातु दो पाँच सौ रुपये की। ऐसा कहकर खड़ा रहता होगा? आता होगा? परन्तु कौनसी धातु? सोना? चाँदी? यह मुझे कुछ खबर नहीं। मेरे पिता ने पाँच सौ रुपये लेकर भेजा है। जा, धातु ले आ भानुभाई की दुकान से।

इसी प्रकार जिसे धर्म करना है, वह कहाँ से होगा? कौन है? उसे जाने बिना धर्म होता होगा? वहाँ जाने बिना चीज़ मिले नहीं, वहाँ मूर्ख कहे उसे। कहाँ तेरी नजर रखनी है? कहाँ से तेरी नजर उठानी है, जाना है? कि नहीं, यह कुछ खबर नहीं, मुझे धर्म करना है। मूर्ख है? भानुभाई! यहाँ तो भाई! बात (यह है)। मूढ़! तेरे चैतन्य के स्वभाव को एक समय के अन्दर शुद्धद्रव्यार्थिक (नय से देखो तो)। देखो, वापस यहाँ, द्रव्यार्थिक का अर्थ उसकी पर्याय में विकार हो, वह भी अशुद्धद्रव्य का विषय है कि जिसे परमार्थ से व्यवहार कहा जाता है। यहाँ शुद्ध चिदानन्दमूर्ति चैतन्य चमकता सूर्य पूर्णानन्द से भरपूर वस्तु, वस्तु अपनी स्व निजात्म, उसे जो (विषय करता है)। शुद्धद्रव्य अर्थात् वह स्वभाव त्रिकाली द्रव्य। अर्थ अर्थात् प्रयोजन। जिस ज्ञान के अंश का त्रिकाली

स्वभाव का प्रयोजन है, उसके अभिप्राय से, उसके **अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है**। जैसे सिद्ध परमात्मा अशरीरी हुए, ऐसा ही आत्मा है, ऐसा ही शुद्ध द्रव्यार्थिक का विषय, वह दृष्टि में लेना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन है अन्दर, ऐसा कहेंगे। आहाहा! समझ में आया? है न पाठ? आठ गुण अलंकृत है। अलंकृत का अर्थ यहाँ पुष्टि से पुष्ट है, पुष्टि से तुष्ट है—ऐसा अर्थ किया है। आत्मा में वह सम्यग्दर्शन, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, आनन्द जो प्रगटरूप से होता है, वह तुझमें है। प्रगट या अप्रगट, वह शुद्धद्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय में हो नहीं सकता। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण (है)। अल्पज्ञता नहीं, राग नहीं, निमित्त नहीं। अल्प ज्ञान आदि नहीं। पूर्ण सर्वज्ञस्वभाव, पूर्ण आनन्द एकरूप, उसे देखनेवाले ज्ञान के आशय से देखें तो संसारी जीव की दशा और मोक्ष की, दोनों एकसरीखी है।

मुमुक्षु : यह बात तो बहुत अच्छी है। संसारी और सिद्ध को एक समान कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किस प्रकार से? यह स्वभाव की दृष्टि की बात है। पर्याय की यहाँ बात गिनना नहीं। संसार अर्थात् क्या? संसार कोई स्त्री, पुत्र, परिवार नहीं। संसार, वह उसकी दशा की एक अवस्था भूल की, उसे संसार कहते हैं। भगवान आत्मा जो यह शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय कहा त्रिकाल, ऐसे स्वभाव की नजर से उस निधान को नजर में न लेकर नजर वहाँ से हट गयी है। उस नजर में वह राग और पुण्य और निमित्त को अपने लक्ष्य में लिया है। उस नजर से लक्ष्य में लिया, उसका नाम मिथ्यादृष्टि है। वह मिथ्यादृष्टिपना अवस्था में है। उसे संसार कहा जाता है। समझ में आया? वह संसार अवस्था के लक्ष्यवाली दृष्टि जहाँ नहीं है अर्थात् कि मेरा पूर्णानन्द स्वभाव... यहाँ मोक्षमार्ग का अधिकार है। नियमसार में यह बात ली है। मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होगी और नहीं थी, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

‘सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः’ आत्मा पूर्णानन्द की अन्तर अनुभव की, अनुभव यह आनन्द है, ऐसा अनुभव करके प्रतीति (होना), उसका नाम सम्यग्दर्शन।

यह ज्ञायकमूर्ति है, उसका ज्ञान की पर्याय में—अवस्था में ज्ञेय पूर्ण को लक्ष्य करके प्रगट हुआ ज्ञान और उस ज्ञान में स्थिरता स्वरूप में स्थिरता होकर अरागी निर्विकल्प सुधारस की चारित्र की धारा बही, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। वह यहाँ कहना नहीं है। है अधिकार मोक्षमार्ग का, भाई! आहाहा! परन्तु उस मोक्षमार्ग की जो दशा प्रगट होगी और बन्धमार्ग की दशा जायेगी, वह बात नहीं। पूर्ण स्वरूप में दृष्टि देने से वह दशा भले प्रगटे, परन्तु पूर्णस्वरूप में वह दशा अभी नहीं थी और नयी प्रगट हुई, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म परन्तु।

कहते हैं, यह भगवान आत्मा जितने सिद्ध हुए परमात्मा, वैसे ही यह संसारी जीव एक समय की विकृतदशा को लक्ष्य में से छोड़ने से, लक्ष्य में से छोड़ने पर... एक समय का संसार। संसारी जीव की पर्याय एक समय का संसार और त्रिकाली आनन्दकन्द का ध्रुव। इसमें जरा कसौटी चाहिए है ज्ञान की। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे शुद्धद्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखें तो कहते हैं कि जैसे संसारी जीव, मुक्तरूप से प्राप्त जीव हैं उनमें से, वैसे ही यह संसारी है। ऐसे और मुक्त जीवों में कुछ अन्तर नहीं है। ऐसा अन्तर नहीं, ऐसी दृष्टि करे तब मुक्तपने की पर्याय प्रगट होती है। नवरंगभाई!

उन संसारी जीवों में... अरे! निगोद की दशा में, अरे! अभव्य की पर्याय में (पर्याय को) लक्ष्य में न लेकर अभव्य का आत्मा भी अकेला आत्मा मुक्त ही है। आहाहा! चैतन्य सूर्य पूर्ण वस्तु है, उसमें अपूर्ण कैसा? उसमें यह प्रगट होगा और जायेगा, वह तो एक वर्तमान नय का व्यवहार का विषय हो गया। वह मोक्षमार्ग प्रगटे किसे? कि वस्तु से परिपूर्ण ही हूँ (ऐसा जिसे लक्ष्य है)। प्रगटेगा, उसके ऊपर जिसे लक्ष्य नहीं। बन्ध की अवस्था नाश होगी, ऐसा जिसका लक्ष्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? मुझे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होगा, ऐसी पर्याय का जिसे लक्ष्य नहीं और बन्ध मेरी पर्याय विकार संसार नाश—व्यय होगा, यह उत्पाद होगा और व्यय होगा, ऐसा लक्ष्य जिसे नहीं। आहाहा! जिसके लक्ष्य में पूरा चैतन्य भगवान जिसके लक्ष्य में, ध्येय में वर्तता है। बहुत बातें, भाई! जिसकी नजरों में परमात्मस्वभाव तैरता है। पूर्णानन्द से भरपूर चैतन्य सत्त्व का सत्त्व अकेला स्वभाव, उस अभिप्राय से देखें (तो) संसारी की एक समय की पर्याय और मुक्ति की निर्मल एक समय की केवलज्ञान की पर्याय, दोनों

का जहाँ लक्ष्य नहीं, वहाँ पूर्ण स्वभाव से सब एकसमान हैं। नवरंगभाई! ऐसी बात! आहाहा! अरे! इसने घर में जाने की बातें कभी विचारी नहीं, हों! यह कहेंगे अब देखो, अब कहते हैं। इतनी बात की। **संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।**

जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए... लो अब। अनादि संसार की दशा में जो कोई अति-आसन्न-भव्य। ऐसे तीन विशेषण जीव को दिये। कैसे जीव हुए? अति निकट जिनका संसार (का) अन्त है। निकट संसार का अन्त अब। संसार के किनारे ऐसे खड़े हैं। मोक्ष की पर्याय प्रगट होने की जहाँ तैयारी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य में आता है न भाई! प्रवचनसार में? ओहो! अति-आसन्न-भव्य। मोक्ष जिसे निकट में है। अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हैं कुन्दकुन्दाचार्य की। समझा जा सकता है या नहीं कि सामने आत्मा कितना? या नहीं समझ में आता? समझ में आया? अरे! ज्ञान किसे न जाने? परमेश्वर को जाने तो फिर यह दूसरा आत्मा और यह फलाना न जाने, ऐसा हो सकता नहीं। कहते हैं कि **जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए...** 'हुए' ऐसा सिद्ध करते हैं पहले। निकट संसार जिन्हें था अर्थात् कि निकट संसार अर्थात् संसार का नाश निकट में था और मोक्ष होने की जिनकी तैयारी थी, ऐसे अति-आसन्न-भव्य। अति अर्थात् शीघ्ररूप से नजदीक में जिनकी मुक्ति है, ऐसे भव्य जीव हुए। ऐसे हुए, ऐसा विश्वास करते हैं पहले। क्योंकि आत्मा के स्वभाव का साधन मुक्त होने की दशा का काल ही असंख्य समय का है। क्या कहा?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध नजर में तैरता है, इस प्रकार से तैरता हो, उसकी दशा के असंख्य समय में ही उसे केवलज्ञान होता है। उसे अनन्त समय चाहिए नहीं। समझ में आया? इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि जो कोई मोक्ष के रास्ते गये अभी के अनन्त प्रवाह में, उन्हें असंख्य समय में तो उन्हें केवल (ज्ञान) मुक्ति होती है, होती है और होती है। अनन्त काल हुआ, काल तो अनन्त गया, तो कहते हैं कि अति-आसन्न-भव्य जीव हुए। जीव हुआ, ऐसा नहीं। जीव अर्थात् बहुत जीव हुए। ऐसे असंख्य समय में केवल, असंख्य समय में केवल, असंख्य समय में केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले साधक जीव होकर अनन्त हुए हैं। समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो जिसने साधक स्वभाव अन्तर के शुद्ध चैतन्य के ऊपर नजर डालकर प्रगट दशा की है, ऐसे साधकरूप से केवलज्ञान को पाये हैं, वह भी शरीरसहित हो, कोई ऐसे भी जीव हैं और कोई शरीररहित हुए सिद्ध, ऐसे जीव भी हैं। किस क्षेत्र में? यह सवाल बाद में इसे विचार करने का रहा। क्योंकि यह जब शरीरसहित भी सिद्ध है अर्थात् केवलज्ञान और शरीररहित सिद्ध है अशरीरी। ऐसे असंख्य समय में स्वरूप को साधने के लिये असंख्य समय चाहिए तो एक जीव असंख्य समय में केवल(ज्ञान) पावे, ऐसे अनन्त हुए तो, उन्हें किस स्थान में रहने का है। उन्हें कोई स्थान में अर्थात् पूर्ण केवल(ज्ञान) को प्राप्त का स्थान है शरीरसहित का मनुष्यक्षेत्र और शरीररहित का क्षेत्र है ऊपर। समझ में आया इसमें? मनसुखभाई! यह तो अरिहन्त और सिद्ध की बात की। यहाँ तो सिद्ध जैसी बात करनी है, हों! आहाहा!

है, कहीं हुए हैं, ऐसे भाववाले हैं, तो है तो किसी क्षेत्र में होंगे या नहीं? समझ में आया? तो अरिहन्त पद को प्राप्त क्षेत्र में मनुष्यक्षेत्र में है। महाविदेह नाम नहीं देते परन्तु मनुष्यक्षेत्र कहा। और जो एकदम पूर्ण सिद्ध हो गये, शक्ति की पूर्णता अन्तर से प्रगट हो गयी, शरीर का निमित्त सम्बन्ध न रहा, ऐसे जीव हुए। अरे! उनका भी भरोसा कितना है? वह क्या किया है? कहते हैं कि उन्होंने किया क्या? कि जो मुक्तपद को प्राप्त हुए कि पूर्व में जो संसारावस्था में... यह अनन्त जीव मुक्तिपने को प्राप्त हुए, परम आनन्दरूपी मोक्षदशा को प्राप्त हुए, वे पूर्व में संसार (अवस्था में थे)। देखो, यहाँ सिद्धदशा से पूर्व अवस्था संसार। पूर्व और पश्चात् और पहली सब दशाओं की बात है। तो कहते हैं... वस्तु तो जो है त्रिकाल द्रव्यार्थिक को सिद्ध करना है यहाँ।

पूर्व में संसारावस्था में... देखो, यहाँ संसार दशा कही है, हों! अवस्था कहो, दशा कहो। संसार, वह दशा कोई जड़ को नहीं होती, कर्म को नहीं होती, परमाणु को नहीं होती, ऐसे जड़ को नहीं होती। **वे पूर्व में संसारावस्था में...** ऐसा कहा है न? वह जीव की संसार अवस्था में अर्थात् उदयभाव, विकारभाव, वह संसारभाव। **संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए...** क्या कहते हैं? ओहो! दुःख की थकान लगी। यह चौरासी लाख के अवतार में कारणरूप क्लेश मिथ्याभाव और राग-द्वेष, उस संसार के क्लेश से थके। चित्त में थके। खेद होकर (थके)। अरेरे! अब यह नहीं, हों! यह

विकार के दुःख सहे नहीं जाते। यह दुःख हमारे न हो। संयोग की बात नहीं। दशा में राग और द्वेष और मिथ्या-अभिप्राय, उसका जो दुःख लगा, (वह न हो)। आहाहा! क्या यह? पैसा करोड़ों हो, सुन्दर शरीर हो, स्त्रियाँ पद्मिनी जैसी हों, कहते हैं कि उसकी पर्याय में उसे क्लेश भासित होता है। उसकी पर्याय में क्लेश होता है, आहाहा! अरे! यह आकुलता! वह संयोग के कारण से नहीं। स्वभाव में नहीं। त्रिकाल स्वभाव, स्वभाव से भूले उसे पर्याय में क्लेश है।

कहते हैं, उस संसारक्लेश से... लो, यह संसार स्वयं क्लेश दुःखदायक। थके... थके... अरे! यह नहीं, हों! यह नहीं। अरे! हमारी चीज़ कौन है? अरे! कहीं विश्रामस्थान होगा या नहीं? कहीं विश्राम लेने का स्थान होगा या नहीं? कि ऐसा विश्राम काल ही गया अनन्त? चित्त में। देखा! ऐसे चित्तवाले होते हुए... शरीर में ऐसा नहीं। बाहर में वैरागी होकर निकल गये स्त्री, पुत्र को छोड़कर, वह वैराग्य नहीं। जिनकी दशा में वैराग्य—थकान लगी, अरे! यह आकुलता। अरे! परसन्मुख के झुकाव की पुण्य-पाप की वृत्तियाँ संसार क्लेश है। उससे थके ऐसे चित्तवाले होते हुए सहज-वैराग्यपरायण होने से... देखो! स्वाभाविक, वह विकार फिर शुभ हो या अशुभ हो, दोनों विकार, उनसे स्वाभाविक वैराग्यपरायण, उनसे हटे। वह राग की वृत्तियाँ शुभाशुभ से हटे। लो, यह मुक्ति कैसे पाये, इसकी बात इकट्ठी करते हैं। कैसे पाये, उसका उपाय भी साथ में बताते हैं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का धाम स्वभाव, उसे भूलकर पर्याय में—अवस्था में—हालत में यह विकार की खदबदाहट का क्लेश, (उससे) चित्त थका है। अरे! यह नहीं, हों! उससे हटकर स्वाभाविक वैराग्य। शुद्ध चिदानन्दमूर्ति की दृष्टि होने से राग से सहज हट गया। राग और स्वभाव को एकरूपे जो माना था, विकल्प जो है दया, दान, व्रतादि, काम, क्रोध का विकल्प उठता है, वह संसार उदयभाव और परमपारिणामिक-स्वभावभाव, परमपारिणामिक अर्थात् सहज स्वभावस्वरूप शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... उसे एकरूप मानने का थकान लगा अब। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह मोक्षमार्ग की लहर की नजरें। जिसकी नजर विकार के विकल्पों से हट गयी और एक ओर से हटने से दूसरी ओर स्थिर हो गयी। एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग पूर्णानन्द प्रभु

परमात्म, परम-आत्म अर्थात् परमस्वरूप—ऐसा निज-आत्मस्वरूप में नजर स्थिर हुई। सब बातें अगमनिगम की बातें, नहीं? नवरंगभाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसा ही है। ऐसा है, उसकी बात होती है न यहाँ। देखो न, कितनी बात की है!

भगवान! तेरे द्रव्यार्थिक द्रव्य के स्वभाव की क्या बात करना! परन्तु उसका माहात्म्य कब आवे? कि उसे राग के विकल्पों की वृत्तियाँ क्लेश भासित हों, तब उसमें से दृष्टि हटाकर भगवान चैतन्य आनन्दधाम में दृष्टि दे, तब उसे राग से हटना हुआ। पश्चात् शुभराग हो या अशुभ हो, सहज वैराग्य है। समझ में आया? 'ज्ञानी मगन विषय सुखमांही, यह विपरीत संभवे नहीं। ज्ञानी मगन विषय सुखमांही, यह विपरीत संभवे नहीं। ज्ञानकला जिसके घट जागी, ते जगमांही सहज वैरागी।' इस कलश के ही अर्थ बनारसीदास ने किये हैं। अपने जो कलशटीका सवेरे पढ़ी जाती है न, उसमें से बनारसीदास ने समयसार नाटक निकाला है। उसमें उसके ही अर्थों को भरकर कितने ही तो भाव वह के वह अर्थ में कहे हैं, और कितने ही नये भी अपने कहे हैं, समयसार नाटक में। उसमें यह एक रखा है। 'ज्ञानकला जिसके रे घट जागी, ज्ञानकला जिसके घट जागी, ते जगमांही सहज वैरागी। ज्ञानी मगन विषय सुखमांही, यह विपरीत संभवे नहीं।' छियानवें हजार स्त्रियों के—पद्मिनी जैसी स्त्रियों के वृन्द में पड़ा। श्मशान में मुर्दे को पॉलिशवाली लकड़ी से जलाते जिसे—मुर्दे को जलते हुए हर्ष नहीं होता और प्रतिकूल लकड़ी के बड़े लोहे के लट्टु जैसे मुर्दे के ऊपर चार मण रखे, उसे खेद नहीं (होता)। इसी प्रकार जिसकी दृष्टि में क्लेश के विकार से हटकर स्वभाव की दृष्टि में गया, सहज वैराग्य है। छियानवे हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़े ज्ञाता-दृष्टारूप से, वैराग्यरूप से परिणति में खड़े हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, वह सहजवैराग्यपरायण... वापस भाषा क्या है? आहाहा! वह स्वभाव में ऐसे वैराग्य का उफान आया है। जैसे समुद्र में पानी का ज्वार आवे, वैसे भगवान आत्मा में भरपूर आनन्दरस उसकी नजर में आने पर जिसे पर्याय में—अवस्था में वैराग्य का प्रवाह आया है। समझ में आया? और वैराग्य का प्रवाह आने पर वह प्रवाह वैराग्य

में ढला, इससे वैराग्य अर्थात् रागरहित में वह परायण है। देखो, यह मुक्ति का मार्ग। कोई विकल्प उठे या निमित्त या यह सब कोई मुक्ति का मार्ग है ही नहीं। आहाहा! अरे! बहुत परन्तु भाई! यह पत्र अभी आये हैं न, कितना लिखते हैं। आहाहा! अब यह तो... जैसा कहा। परन्तु यह कितना विरुद्ध लिखे, देखो! बाकी तो कष्ट भरते हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! लोगों को परमात्मस्वभाव निजस्वरूप की महिमा नहीं। इसलिए इस क्रिया से यह होगा और इस क्रिया से यह होगा (ऐसा मानते हैं)। जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होगा। अरे, भगवान! क्या करता है तू? जीवित शरीर कहा। वह तो मुर्दा है।

मृतक कलेवर में विज्ञान अमृतघन मूर्च्छित हुआ। (समयसार) ९६ गाथा में आता है न, कर्ताकर्म (अधिकार) में। भगवान आत्मा अमृतरसकन्द वह मृतक कलेवर जो यह शरीर, वह अमृत (आत्मा) मृतक (शरीर में) मूर्च्छित हुआ, ऐसे म-म तीन रखे हैं। छियानवें गाथा में कर्ताकर्म में। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने यह अमृत प्रभु, जिसके स्वभाव की नाभि में अन्दर में तो अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस ही पड़ा है। देखो, आनन्द से देखो तो आनन्दमय दिखता है, ज्ञान से देखो तो ज्ञानमय दिखता है, देखना तो ज्ञान से है, परन्तु वीर्यवाला देखो तो वीर्यमय दिखता है। जिस दृष्टि से देखो एक गुण से पूरा गुणमय आत्मा पूरा दिखता है। ऐसा आत्मा पर से हटा, सहजवैराग्यपरायण होने से... पहला तो संसार क्लेश से थके चित्तवाले हुए, यहाँ तक तो भाई, सम्यग्दर्शन की दशा का वर्णन है। अब यहाँ थोड़ा मुनिदशा का वर्णन करना चाहते हैं।

वह सहजवैराग्यपरायण होने से... सहज उदास... उदास... यह अनुकूलता के ढेर हों तो ज्ञान के ज्ञेय और प्रतिकूलता के ढेर हों तो ज्ञान के ज्ञेय, मुझे असर करे, ऐसी चीज़ में है ही नहीं। समझ में आया? अग्नि से शरीर सुलगता हो, चिंगारियाँ उड़ती हो अग्नि में से शरीर में से ऐसे धू... धू... ज्योति (निकलती हो तो भी) सहज वैराग्य परायण है। दृष्टि से दौलत देखी है। दृष्टि से चैतन्य प्रभु को देखा है, माना है, जाना है, अनुभव किया है और राग से हटा है। ऐसा सहजवैराग्य तत्पर होने से। अब मुनिपना कहते हैं, भाई! ऐसा हो उसे। ऐसे मुनि (वेश) लेकर चल निकले नग्न हो गये, (वह मुनिपना नहीं)। बापू! यह मुनिपना तो परमेश्वर पद है, भाई! यह मुनिपद तो परमेश्वर पद है। 'मनुष्य होना मुश्किल है, साधु कहाँ से होय? साधु हुआ तो सिद्ध हुआ, कहना

रहा न कोई।' साधु! गजब बात! भरतक्षेत्र में परमेश्वर नजर में पड़ना मुश्किल है। समझ में आया? ऐ... भानुभाई! बहुत कठिन! परन्तु अपने से वह जरा छोड़कर बैठे न, इसलिए आहाहा! बापू!

यह साधुपद की दशा यह वर्णन करते हैं, देखो! पहिचान कराते हैं कि पहले तो चित्त थककर राग से हटा, फिर वैराग्यपरायण इतना हो गया। शरीर, शरीर की दशा से हो, जिसकी जिस दशा से हो वह हो, मुझे और उसे कुछ सम्बन्ध है नहीं। ऐसा अन्तर में सहज वैराग्य के वह परायण वैराग्य के झूले में झूलता हुआ। यह झूले में जैसे झूलता हो ऐसे। यह झूला नहीं झूलते? फिर वापस नीचा आवे तो धक्का मारे ऐसे ऊपर जाने के लिये। झूला खाट हो ऐसे नहीं करते ऐसा? ऐसा मारे तो वह ऐसा चले। इसी प्रकार यहाँ स्वभाव के ऊपर पुरुषार्थ की गति करता है। इतना वैराग्य जिसे अन्दर में उत्पन्न हुआ है। 'क्रोध प्रति तो वर्ते क्रोध स्वभावता, मान के प्रति वर्ते दीनपने का मान जो, माया के प्रति साक्षी माया भाव की, लोभ के प्रति नहीं लोभ स्वभाव जो। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' (श्रीमद् को) मुनिपना नहीं था तो भावना करते थे। आत्मज्ञान था, सम्यग्दर्शन था। सम्यग्दर्शन की लहरें उठीं थीं अन्दर में से। परन्तु अरे! यह वैराग्य! यह मुनिपद जो चारित्र साक्षात् मुक्ति का कारण, साक्षात् मुक्ति की पर्याय को पहुँचा देनेवाला, अरे! वह पर्याय हमको कहाँ से हो? वह समय धन्य है! वह काल धन्य है! ऐसा करके भावना (भाते हैं)।

यहाँ साक्षात् होने से सहजवैराग्यपरायण होने से... ओहोहो! ऐसे २० वर्ष का जवान लड़का मर गया हो और जिसे खाने की आदत ही पड़ गयी हो चूरमा के लड्डू की। मनसुखभाई! यह खबर है वीरजीभाई की। क्या नाम उनका? जामनगर में हुए। प्रतिदिन चूरमा के लड्डू ही खाये। चूरमा अकेला। उसमें जवान लड़का मर गया। जलाकर आये। जलाकर जवान (लड़का)। ऐसे कभी चूरमा के अतिरिक्त रोटी खायी नहीं। चूरमा.. चूरमा... चूरमा... प्रतिदिन चूरमा। अरे! जलाकर आये, सगे-सम्बन्धी इकट्ठे हुए। अरे, भाई! तुम रोटी-रोटला खाओगे तो रोग होगा अभी, हों! एक गया साथ में दूसरा। नहीं पचेगा, नहीं परिणमेगा, अन्दर काम नहीं करेगा। तब क्या करना? अरेरे! यह लड़का जलकर राख हो गया शरीर, यह उसे जलाकर आया और चूरमे के लड्डू

बनाये। मनसुखभाई! यह पूछो वीरजीभाई को देखो, देखा हुआ है। उपाश्रय के नजदीक रहते थे वीसाश्रीमाली। क्या कुछ गोत्र था कुछ। वोरख... जैसे यह वारिया कहलाते हैं न उनकी... थी। अपने तो कुछ सब... अपने तो सुना हुआ है। यह लड्डू चूरमा के हो, गेहूँ का आटा सफेद, अन्दर घी और शक्कर या गुड़। थाली में रखे और दाल। आँसू की धारा बहती जाये और लड्डू का टुकड़ा रखे मुख में। कितना प्रेम होगा? अरे! पुत्र! तेरा विरह पड़ा, वह कभी समाप्त होगा? रोवे... रोवे... रोवे... परन्तु चूरमा के ही लड्डू खाये हुए। प्रतिदिन चूरमा। उसमें दूसरी बात नहीं। यह तो यहाँ अपने नहीं छोटाभाई थे। यह चन्दुभाई के पिता के पिता हैं न। वह चूरमा ही खाते पहले। परन्तु उनके पुत्र की बहू मर गयी, भाई नहीं? हिम्मतभाई के साथ रहते हैं न गृहस्थ व्यक्ति। पहले से पैसेवाले गर्भश्रीमन्त पहले से बहुत वर्षों से। यह चन्दुभाई अपने बालब्रह्मचारी। इनके पिता के पिता। है न जीवित है न सब जीते हैं। यह मलूकचन्दभाई बड़े नहीं आते जाड़े? उनके पिताजी। उनके पुत्र दो करोड़-करोड़ रुपयेवाले हैं न। मलूकचन्दभाई के पुत्र करोड़पति दो बड़े। यह उनके पिता जीते हैं। वह चूरमा के लड्डू ही खाते थे। जिनके इकट्ठे रहें, वह लड़के की बहू मर गयी। अरेरे! यह चली गयी लाभु? लड़के की बहू तो पुत्रीरूप से हो न! वह गयी और स्वयं की पत्नी तो गुजर गयी थी। भाई! यह लड्डू छोड़ दिये। परन्तु उन्हें तो छोड़ना रास आवे नहीं, ऐसी आदत पड़ गयी थी। ऐई! मनसुखभाई! यह लड्डू में कितना प्रेम होगा खाते समय? लोग देखते हैं कि लड्डू खाते हैं। उसका हृदय देखता है कि रोटी और लड्डू मुझे एक है अभी तो।

इसी प्रकार जहाँ धर्मी की दृष्टि स्वभाव के ऊपर गयी है, सम्यक्त्व हुआ है और उसके उपरान्त ही यह वैराग्य बढ़ गया है चारित्र का। एकदम अन्दर एक विकल्प आवे, उसका कर्ता नहीं। यह संयोग यह दूधपाक आया या ज्वार के—लाल ज्वार के छिलके कसरहित होते हैं। सफेद ज्वार के छिलकों में कुछ कस होता है। लाल ज्वार के छिलकों का कस उड़ गया होता है, उसकी रोटियाँ। यह तो सब अनुभव किया हुआ है, हों! देखा हुआ है। विठ्ठलगढ़ में भाई वह रोटियाँ मिली एक बार। विठ्ठलगढ़ वीरमगाम के पास है न। एक (संवत्) १९७६ के वर्ष की बात है। गये थे तो गरीब व्यक्ति के घर में तो लाल ज्वार के छिलके की रोटियाँ। महाराज को कैसे देना? बापू!

हमारे तो रोटियाँ यह है। दिक्कत नहीं कुछ, दे। छाछ और रोटियाँ। १९७६ की बात है। वीरमगाम के पास विठ्ठलगढ़ गाँव है वहाँ (की बात है)। समझ में आया? कहते हैं, धर्म की दृष्टि उपरान्त जहाँ चारित्रदशा का वैराग्य आया, (वहाँ) अत्यन्त उदास... उदास... उदास है। इसे, समझ में आया? दूधपाक हो तो मिट्टी, रोटी हो तो मिट्टी। शान्तरस का परिणमन जगा है जहाँ। अविकारी शान्त चिदानन्द मूर्ति का जहाँ समुद्र उछला है पर्याय में ज्वार आया है। ऐसा होने से।

अब मुनि... देखो, **द्रव्य-भावलिंग को धारण करके...** आहाहा! द्रव्य शब्द पहला लिया है। जिसकी दशा नग्न हो जाती है। नग्नदशा हो जाती है और धारण करके तो व्यवहार का शब्द लिया है। और अन्दर में अट्टाईस मूलगुण के विकल्प व्यवहार से आते हैं। वह भी द्रव्यलिंग है। देखो, यह केवलज्ञान को प्राप्त करनेवाले साधकदशा के साधु ऐसे होकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं, ऐसा कहते हैं। यह प्राप्त हुए हैं, यह कहना है, वह व्यवहारनय से, अन्दर वस्तु में पड़ा है, उसमें नजर देने से प्रगट हो गया है। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसी दशा प्रगट होने से जिसे द्रव्य अर्थात् शरीर की नग्नदशा सहज हो जाती है। जहाँ ऐसी चारित्र की दशा की योग्यता हो, वहाँ नग्नदशा हुए बिना नहीं रहती, उसे नग्न शरीर के कारण से, परन्तु जहाँ ऐसी दशा हो, उसे भावलिंग में निर्मल निर्विकारीदशा और असद्भूतव्यवहारनय का द्रव्यलिंग अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का एक विकल्प उठता है अट्टाईस मूलगुण का, पंचमहाव्रत का विकल्प है, वह द्रव्यलिंग है। और नग्नपना, वह निमित्तरूप द्रव्यलिंग है। ऐसी दशा जहाँ चारित्रवन्त हो, उसे होती है, होती है और होती ही है। आहाहा! इसलिए सर्वज्ञ के पेट के साधु जो कहे भगवान ने, जो सर्वज्ञपना प्राप्त करने के कामी सन्त हैं, वे सन्त की दशा पाये थे तो मुक्ति पाये, ऐसा कहना है। समझ में आया?

द्रव्य-भावलिंग को धारण करके... भाषा व्यवहार से है। शरीर का नग्नपना धारण करके अथवा होता है, उसे 'धारण करके' ऐसा व्यवहार कथन से कहा जाता है। और अट्टाईस मूलगुण अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के पंचमहाव्रत के विकल्प उनका कहाँ धारण करे? कहाँ स्वभाव को और उन्हें एक है कहाँ? स्वभाव में उसे

धारने जाये तो स्वभावदृष्टि हट जाये और स्वभाव को धारता है, वहाँ विकल्प को धारना दृष्टि में रहता नहीं। आहाहा! 'धारण करके' व्यवहारनय का वचन है।

परमगुरु के प्रसाद से... अब ऐसा कहना चाहते हैं कि सर्वज्ञ परमात्मा परमगुरु अथवा उसे दीक्षा देनेवाले सन्त परमगुरु के प्रसाद से अर्थात् कि उन्होंने कहा हुआ भाव प्राप्त किये हुए... उनके प्रसाद से प्राप्त किये हुए **परमागम के अभ्यास...** देखो, भाषा देखो। **परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त कर...** परमागम अर्थात् शास्त्र? उन गुरु ने कहा कि अहो! तेरा आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, उसकी तुझे दृष्टि तो है, अब उसमें लीनता में जुड़ जा एकदम। स्वरूप में गुम हो... गुम हो... गुम हो। उसे पंच महाव्रत का विकल्प भी उठे नहीं, ऐसी जो दशा, ऐसा गुरु ने उसे कही हुई। ऐसे **परमगुरु के प्रसाद से...** देखो, यह निमित्त से कहा। क्योंकि ऐसे परमगुरु ही उसे निमित्तरूप होते हैं, दूसरे कुगुरु या कुशास्त्र के माननेवाले उसे निमित्त नहीं हो सकते, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? यह सिंहनी का दूध स्वर्ण के पात्र में रहता है, उसी प्रकार ऐसी दशा में निमित्त परमगुरु सन्त, ज्ञानी वीतरागी होते हैं। अज्ञानी और कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की मान्यतावाला वह जीव निमित्त हो और इसे मुनिपना आवे, ऐसा तीन काल में नहीं हो सकता। दो-दो बातें साथ में जोड़ते हैं। द्रव्य-भाव में दो बात की और यह परमगुरु के प्रसाद से। ओहोहो! देखो, यह चारित्रदशा।

प्राप्त किये हुए... क्या? उन्होंने कहा क्या? कि चारित्र की बात उन्होंने की, भाई! आहाहा! गुरु कहते हैं, भाई! यह स्वभाव में रम जा, यह चिदानन्द धाम है, उसमें रम जा। उसमें दृष्टि तो तेरी पड़ी है, परन्तु अब उसमें गुम हो, लीन हो। उसे चारित्र कहते हैं। ऐसा परमगुरु ने कहा हुआ, सन्तों की वाणी में ऐसा आया। उसे शब्दसमय कहते हैं। कल मांगलिक किया था। शब्दसमय कहते हैं उसे कि जो वीतराग पर्याय बतावे उसकी और उसमें घोलन और ऐसे शब्दों को शब्दसमय कहते हैं और उससे विरुद्ध कहे, वह शब्दसमय नहीं, (उसे) कुसमय कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु :कथन शैली सवेरे की और अभी....

पूज्य गुरुदेवश्री : सवेरे क्या था? सवेरे में वह का वह था। दूसरे ढंग की बात थी। समझ में आया?

कहते हैं... साथ में व्यवहार का भी ज्ञान कराते हैं और निश्चय के स्वभाव की दशा का आदेश किया था, उपदेश किया था। यह वस्तु ऐसी होती है... पूर्णानन्द के ऊपर नजर लगा और झूले में झूल अन्दर में। रमते राम को देख। चैतन्यराम भगवान आनन्दकन्द अन्दर है, उसकी नजरों में तुझे निधान मिलते हैं, उन्हें देख, उसमें लीन हो। ऐसा गुरु का उपदेश था। सर्वज्ञ ने ऐसा कहा था, उपदेश वाणी में ऐसा आया, गुरु के अभिप्राय में भी यह था।

यह परमागम के अभ्यास द्वारा... अर्थात् कि परम आगम में यह कहा हुआ उसके चारित्र के अभ्यास द्वारा, ऐसा। सिद्धक्षेत्र को पाकर... देखो, यह। इस प्रकार वे सिद्धक्षेत्र के मुनि मोक्षपने को पाते हैं। इस विधि के अतिरिक्त मुक्ति को कोई दूसरे प्रकार से तीनकाल में पावे, (ऐसा) होता नहीं। इसलिए मोक्षमार्ग कैसे प्रगट हो और कैसे मोक्षमार्ग से मोक्ष होता है, यह भी साथ में आ गया। समझ में आया इसमें? यह सिद्धक्षेत्र को पाकर... भाषा कही, देखो! व्यवहार कहना है न! सिद्धक्षेत्र तो अपना है अन्तर का, परन्तु बाहर में जो ऊर्ध्व स्वभाव का उसका स्वभाव है, पूर्णानन्द की प्राप्ति होने से जैसे फली में दाना हो और फली फटे (और) दाना ऊँचा जाये, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव जहाँ पूर्ण वीतराग हो गया और पूर्ण परमपारिणामिक पूर्ण हो गया (तो) ऊर्ध्वलोक में सिद्धक्षेत्र अर्थात् वहाँ व्यवहारक्षेत्र में विराजते हैं। निश्चयसिद्धक्षेत्र स्वभाव। परन्तु सिद्धक्षेत्र को पाकर।

अब उसमें अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल केवलज्ञान... यह गुण का वर्णन किया। क्या पाये और क्या हुआ? कि अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान... केवलज्ञान की व्याख्या है यह। अकेला एक समय में तीन काल, तीन लोक को जाने जलहल ज्योति। सकल-विमल... सकल-विमल... पूर्ण निर्मल... पूर्ण निर्मल। ऐसे केवलज्ञान को अन्तर्मुख के स्वभाव में राग से हटकर स्वभाव में परायण द्वारा केवलज्ञान पाये, उसे मुक्ति कहते हैं। वह मुक्ति और संसारी जीव यहाँ लेना है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - १५-०२-१९६४

गाथा - ४७-४८, कलश-७१, प्रवचन नं. ३९९

यह नियमसार एक शास्त्र है। जिसमें मोक्षमार्ग का अधिकार है। यहाँ ऐसा कहते हैं कि जिसे मोक्षमार्ग की अभिलाषा हो, उसे अन्तर में आत्मा पूर्ण परमात्मस्वरूप है, ऐसा उसे अवलोकन करना चाहिए। समझ में आया ? क्यों ? कि जैसे अशरीरी परमात्मा—शरीररहित सिद्धात्मा पूर्ण प्रगट दशा में आनन्द और ज्ञान और दर्शन तथा वीर्य से सम्पन्न पूर्ण हैं, ऐसे प्रत्येक आत्मा अन्तर द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से ऐसे ही हैं। वह किसी का कुछ करे या किसी की सहायता से स्वयं करे, ऐसा वह आत्मा नहीं। वह आत्मा द्रव्यार्थिक के अर्थात् वस्तु शुद्ध चैतन्य एक समय में पूर्ण, ऐसे स्वभाव की दृष्टि के बल से देखें तो उसमें मोक्षमार्ग की दशा जो प्रगट होती है, वह सब उसमें भरी हुई है। आहाहा! इस जीव को यह क्या करना ?

कहते हैं कि अन्तर में परवस्तु और परवस्तु के संयोग से होते विकारीभाव,... 'एकबार तो ऐसा नियम ले, सौगन्ध ले कि मेरे आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं चलता।'

मुमुक्षु : जय हो! जय हो!

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया ? मेरा स्वभाव एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण केवल, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, वीर्य—ऐसा चैतन्य परमात्मा जिसे यहाँ कारणप्रभुरूप से वर्णन करते हैं। कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो या कारणस्वभाव त्रिकाल जो परमात्मदशा पर्याय में प्रगट हो, उसका यह कारण वस्तु है। यह द्रव्य अर्थात् वस्तु उसे संयोग से न देखकर, राग के दया, दान के विकल्पों से न देखकर उसे वर्तमान अल्पज्ञ, अल्पदर्शी और अल्पवीर्य की दशा की प्रगटता की पर्याय से न देखकर उसे एक समय में पूर्ण स्वभाव-सन्मुख देखने से वह भगवान आत्मा सिद्ध जैसा ही है। 'जैसे सिद्ध हैं, वैसा ही आत्मा है', ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि करना, उसका नाम धर्म की पहली श्रेणी सम्यग्दर्शन है। बहुत यह बात परन्तु... भानुभाई! अब इसमें करना

क्या ? सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना ? क्या करना इसमें ? ऐ मनसुखभाई बैठे थे, हों ! तुम्हारे पीछे ।

अरे, भगवान ! तेरी चीज़ एक समय के अन्दर (परिपूर्ण है) । परन्तु यह किसे (बैठे) ? पहले कहा था, जिसका संसार अवस्था के क्लेश से चित्त थका हो, थका हो । अरे ! अरे ! यह क्लेश ! परन्तु यह क्लेश संयोग की प्रतिकूलता नहीं । संयोग की प्रतिकूलता, वह क्लेश नहीं । मणिभाई ! 'यह शरीर ऐसा हो गया, इसलिए अब कैसे मिटे ?' ऐसा नहीं । संयोग की प्रतिकूलता, वह क्लेश नहीं, तथा संयोग की अनुकूलता, वह सुख नहीं । यह संयोग अनुकूल-प्रतिकूल, वह तो परपदार्थ की दशा का स्वरूप है । भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम, जिसके अन्तर में झुकाव होने पर, जिसके स्वभाव का झुकाव अन्दर (में) होने पर, जैसे यह गोंद में से पानी झरे, वैसे जिसमें से शान्ति... शान्ति... शान्ति... अपूर्व शान्ति (झरे) । सिद्ध को-परमात्मा को जो शान्ति है, ऐसी शान्ति का कण, रस जगे—ऐसा चैतन्यधाम द्रव्यस्वभाव है । उसे भूलकर उसकी पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था के अंश में ही सर्वस्व मानकर क्लेश भोगता है, दुःख भोगता है । उस दुःख को जिससे इसने चित्त में यह आया कि अरे ! अब यह कहाँ तक ? अरे ! प्रभु ! इस क्लेश की वेदनदशा ! परन्तु यह वेदन उसे लगता नहीं न दुःख का । क्यों ? कि कोई चीज़ अन्दर आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द आत्मा है, ऐसा इसे आभास भी ख्याल में आये बिना यह दुःख है और यह किस प्रकार किसके साथ मिलान करे ? किसके साथ तुलना करे ? दो माल हो तो तुलना करे । यह सोना पन्द्रहवान, यह सोलहवान और यह चौदहवान ।

यहाँ कहते हैं कि भगवान ! एकबार तुलना तो कर कि अन्तर में सच्चिदानन्द प्रभु जितने अनन्त सिद्ध अशरीरी परमात्मा हुए, वे सब अन्तर स्वभाव की शक्ति की व्यक्ति करके, शक्ति में पड़ा था, उसमें से प्रगट हुआ है । ऐसा ही तेरा आत्मा है, ऐसा देखकर कहते हैं कि जो सिद्ध क्षेत्र को सिद्धात्मा प्राप्त हुए । किसके कारण से प्राप्त हुए, यह बात आ गयी । परमागम के अभ्यास द्वारा... अर्थात् कि परमागम में जो कहा था कि स्वभावसन्मुख का अभ्यास, उसका झुकाव, उसका आचरण कर । भगवान आत्मा पूर्ण

है, उसके सन्मुख देख और अल्पज्ञता राग और संयोग के सन्मुख देखना छोड़ दे। कहो, यह क्या करना इसमें? समझ में आया? कहते हैं कि एक बार जो जीव मुक्ति को प्राप्त हुए, वे भगवान आत्मा के अन्तर्मुख के अभ्यास के बल द्वारा पाये हैं। बहिर्मुख की जड़ की क्रिया से नहीं और कोई विकल्प उठे दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा की वृत्ति, उससे मुक्ति को कोई प्राप्त नहीं हुए। मनसुखभाई! बराबर होगा यह? हाँ तो करते हैं। ऐसे लाखों रुपये के ढेर दिखायी दे। बारह महीने में दस-दस लाख की आमदनी दिखायी दे। अब इस व्यक्ति को ऐसा कहना कि... तेरे दस लाख में तो सुख-दुःख नहीं, परन्तु तूने माना है कि यह मेरा है, उसमें अकेली ममता और पाप है। प्रभुभाई! उसमें मन्दराग करके दान में कुछ क्रिया करे, परन्तु वह मन्दराग है। तीव्र राग की अपेक्षा से ठीक, बाकी मन्द राग भी... क्या? क्लेश है। वजुभाई! यह क्लेश (शब्द) प्रयोग किया, देखो न!

संसार क्लेश से थके हुए... अभी एक पढ़ा था। कहा न अभी मैंने। यह पम्पलेट आये है न, उसमें लिखा था। एक श्वेताम्बर के मन्दिर में एक व्यक्ति ने एक मूर्ति स्थापित की। एक मूर्ति स्थापित की, उसके ११,११,१११ दिये। मात्र मूर्ति स्थापित करने के। मन्दिर नहीं। एक मूर्ति पधराने के। उसे अन्दर मूल करने का। उसे गद्दी पर बैठाने का। अंजनशलाका तो दूसरे करते हैं। ११,११,१११ कल पढ़ा था उसमें। जैन के उसमें था कोई। बहुत सोनगढ़ आये हुए न। रास्ते में मिले हो तो यहाँ बड़ा ढेर लाये। कोई नजर कर गये। परन्तु बात यह कि उसमें माने क्या? कि आहाहा! निहाल हो गये अब तो अपने। और दूसरे उसे क्या कहे? आहाहा! वापस उसमें लिखा है, भाई! अन्तिम शब्द। गजब की भक्ति! एक राग मन्द किया, किया हो तो, दिया; इसलिए मन्द किया, ऐसा भी उसका अर्थ नहीं। वह क्रियायें हो गयीं ११,११,१११ जाने की, वह तो जड़ की पर्याय हुई, वह तो जड़ का उस प्रकार से जाने का ही था। उसमें उसे राग की मन्दता की वर्तमान पर्याय की हो तो वह शुभभाव मन्द क्लेश है। उसमें जो धर्म माने और जगत मनावे, उसमें से कहना कि यह क्लेश है। मनसुखभाई!

मुमुक्षु : थके नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : थके नहीं। उससे विमुख हो। आहाहा! यह सब सेठिया के

पास पाँच-पाँच, दस-दस हजार, लाख पड़े हों वहाँ, ऐसा कहे कि ... तुझे मन्द राग का क्लेश है, पुण्य होगा, ऐसा कहे उसे ?

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा पूर्णानन्द को प्राप्त कहते हैं कि भाई! उस राग की मन्दता भी न देख, हों! उसे न देख, न देख। अन्तर भगवान पूरा आत्मा, उसके अवलोकन में उसका मान तेरा गल जायेगा। अरे! क्या राग मन्द क्या और तीव्र, वह मेरी चीज़ में ही जहाँ नहीं! इससे 'पर के काम करूँ या मैं पर से मुझमें करूँ' यह तेरी दृष्टि तो उड़ जायेगी, परन्तु राग की मन्दता के परिणाम की भी महिमा और माहात्म्य भगवान चैतन्यस्वभाव पूर्णानन्द का माहात्म्य दृष्टि में करने से माहात्म्य उड़ जायेगा सब। चन्दुभाई! आहाहा! किसका प्रभु तुझे अभिमान? स्वभाव का एक बार अभिमान कर न! अनन्त काल से किया नहीं, हों! एक सेकेण्ड भी दरार की नहीं राग के बीच। राग और स्वभाव दो के बीच की एकता की गाँठ कभी तोड़ी नहीं और वह गाँठ तोड़े उसे सम्यग्दर्शन होता है, तब उसे परमात्मा हाथ में, हथेली में आवे। हथेली में। समझ में आया ?

कहते हैं कि जो कोई ऐसे अभ्यास द्वारा अर्थात् उस विकल्प के अभ्यास द्वारा नहीं। राग मन्द जो हुआ थोड़ा और लौकिक के लिये तो लोग अभी करोड़ों-करोड़ों रुपये देते हैं न। करोड़ों-करोड़ों, पाँच-पाँच करोड़, दस-दस करोड़, यह दवाखाना (बनाने के लिये), परन्तु उसमें मान क्या बैठते हैं? वह क्रिया मेरी और वह जड़ के परमाणु की पर्याय हुई, मैंने दिये तो गये। इसलिए एक तो जड़ का अभिमान। उसमें कुछ राग मन्द किया या नहीं किया, उसे देखने का ठिकाना नहीं होता और उसे शान्ति मिले, यह तीन काल में होता नहीं।

कहते हैं कि परमज्ञान के अन्तर में अभ्यास द्वारा जिसने सकल निर्मल, सकल निर्मल अर्थात् विमल केवलज्ञान प्राप्त किया। देखो, केवलज्ञान प्राप्त किया, पूर्ण ज्ञान। वह अन्तर स्वभाव शुद्ध चैतन्य भगवान के अन्तर अभ्यास द्वारा, अन्तर की एकाग्रता के ध्यान द्वारा... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह एकाग्रता का ध्यान है। उस द्वारा **केवलज्ञान-केवलदर्शन...** पूर्ण दर्शन, **केवलसुख**,... पूर्ण आनन्द और **केवलवीर्य**... पूर्ण बल, आत्मबल जो शक्ति में था, उसे अन्तर में एकाकार होकर प्रगट में प्रगट हुआ। **सिद्धात्मा**

हो गये- ऐसा कहा, देखा! ऐसे परमात्मा सिद्ध आत्मा—णमो सिद्धाणं, ऐसे सिद्ध, यह दशा से करते-करते हुए, ऐसी जिसकी मान्यता नहीं, वह सिद्ध को भी मानता नहीं। सिद्ध स्वभाव की एकाग्रता द्वारा हुए। कोई पुण्य की-पाप की क्रिया द्वारा हुए नहीं और शरीर आदि की सहायता से हुए नहीं। ऐसा जो नहीं मानते, वे सिद्ध को नहीं मानते। सिद्ध को मानते नहीं अर्थात् सिद्ध की अरिहन्तपने की जिनकी वाणी थी, उस वाणी को मानते नहीं।

जो सिद्धात्मा कार्यसमयसाररूप है... क्या कहा? देखो, कार्यसमयसार। मनसुखभाई! कार्यसमयसार कभी सुना था। कार्यसमयसार। ... कार्य। अरे! भगवान! कार्यसमयसार अर्थात्? जो आत्मा कारणरूप अन्तर आनन्दकन्द जहाँ डोलता चिदानन्द भगवान प्रभु, उसके ऊपर एकाकार होकर कार्य अर्थात् वर्तमान दशा में पूर्ण केवल(ज्ञान) आदि पर्याय प्रगट हुई, उसे कार्यसमयसार कहते हैं, उसे कार्यपरमात्मा कहते हैं, उसे कार्यशुद्धजीव कहते हैं, उसे कार्यजीव कहते हैं। यहाँ कार्यसमयसाररूप है। अर्थात् कार्यशुद्ध है। देखो, क्या कहा? कार्य अपेक्षा से जिसकी दशा शुद्ध हो गयी। कारण अपेक्षा से तो त्रिकाल शुद्ध थी ही वस्तु। उस वस्तु के अन्तर में एकाकार होकर पुण्य-पाप के विकल्प की उपेक्षा करके, संयोग की उपेक्षा करके, स्वभाव की अपेक्षा करके जिसने कार्यदशा शुद्धकार्यदशा प्रगट की, उसे कार्यशुद्ध कहते हैं। जड़ के कार्य कैसे होंगे आत्मा के? अशुद्धकार्य हैं या नहीं उसके? नहीं, नहीं। यह शरीरादि, पैसादि, मकानादि जो कुछ जगत के कार्य होते हैं, वे आत्मा के अशुद्ध कार्य भी नहीं। नवरंगभाई! यह सब दवायें करते हैं, वह अशुद्धकार्य है न अशुद्ध? उसके परिणाम में जो विकल्प उठते हैं पुण्य-पाप के, वह अशुद्धकार्य है। समझ में आया? उस अशुद्धकार्य को नाश भी किया नहीं। मात्र शुद्ध चिदानन्द का आश्रय करने से कार्यशुद्धता प्रगट हुई, इसलिए अशुद्धता का व्यय हो गया, इसलिए यहाँ तो कार्यशुद्ध से ही बात ली है। अशुद्धता का व्यय हुआ, यह बात ली नहीं। समझ में आया इसमें?

कार्यसमयसार... आहाहा! जो आत्मा पूर्ण आनन्द का भण्डार, सुख का सागर, शान्ति का कुण्ड प्रभु, उसमें एकाकार की दृष्टि और लीनता द्वारा जो कार्यदशा में, पर्याय

में पूर्णता प्रगट हुई, उसे कार्यसमयसाररूप उसका वह है। अथवा वह शुद्धकार्य है, वह कार्य शुद्ध है। कहो, समझ में आया इसमें? नीचे लिखा है, देखो, **कार्य अपेक्षा से शुद्ध...** बाकी दूसरे कार्य पुण्य-पाप के, शुभ-अशुभ आदि भाव करे, वह कार्य अपेक्षा से अशुद्ध है। पर के तो अशुद्ध है ही नहीं। पर का तो कर सकता नहीं।

जैसे वे सिद्धात्मा हैं... कार्य समझ में आता है कार्य? इसके बाद से ही कारण लेंगे ४८ में। यहाँ कार्य की बात करके कारणपरमात्मा आत्मा है। जो कारणप्रभु आत्मा स्वयं है, हों! कारण दूसरा कोई भगवान है और अपने को कार्यपना प्रगटता है, ऐसा नहीं है। यह चित्त्वमत्कार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण सत् चिदानन्द धाम एक कारण प्रभु है, कारणसमयसार है, कारणजीव है। ऐसा कहने का क्या कारण है? वह कार्यदशा जो परमात्मा की प्रगट हो, उसका कारण वह वस्तु स्वयं है। निमित्त तो कारण नहीं, वह व्यवहाररत्नत्रय कारण नहीं और निश्चयमोक्षमार्ग है, वह वास्तव में कार्य का कारण नहीं। आहाहा! नवनीतभाई! समझ में आया इसमें? यह बोल कहे, समझ में आये मनसुखभाई? यह वकील भी ठीक, हों!

कहते हैं कि आत्मवस्तु जो पूर्ण ज्ञानघन आनन्दकन्द वस्तु है, वही पूर्ण परमात्मदशा के कार्य का कारण है। वह केवलज्ञान परमानन्द और पूर्ण शान्ति, ऐसी आत्मा की कार्यदशा अर्थात् कार्य अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् शुद्ध जिसका कार्य, अर्थात् शुद्ध जिसकी दशा, शुद्ध जिसकी पर्याय, उसका नाम मुक्ति। उसका कारण वस्तु द्रव्य है। त्रिकाल वस्तु, वह उसका कारण है। वह कार्य केवलज्ञान का कारण संहनन और मनुष्यदेह नहीं, चौथा काल कारण नहीं, यह अन्दर में दया, दान, व्रत का विकल्प उठता है, वह मोक्ष का कारण नहीं। वह तो नहीं, परन्तु जो स्वभाव शुद्ध चिदानन्द भगवान, उसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की दशा प्रगट हुई, वह भी वास्तव में मोक्ष के कार्य का वह कारण नहीं। गजब व्याख्या, भाई! समझ में आया? इसमें ऐसा जैसा हो जाये ऐसा है नहीं? कि उघड़ जाये ऐसा है? उघड़ जाये ऐसा है।

कहते हैं कि जिसे 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा। मार्ग कहो, कारण कहो, उपाय कहो। आत्मा की पूर्ण शान्ति आनन्द... आनन्द... आनन्द... जिसे

कभी क्लेश नहीं और आनन्द का पार नहीं, ऐसी आनन्द की दशारूपी मुक्ति का जो कारण कहा था सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी पर्यायनय से कथन किया था। पर्यायनय अर्थात्? मोक्ष होने के पहले की दशा कौनसी थी, इतनी विद्यमानता बतलाने के लिये उसे कारण कहकर उसका कार्य मोक्ष है, ऐसा कहा था, परन्तु इस कारण से कार्य की दशा प्रगटी है, लाये हैं, ऐसा है नहीं। ओहोहो! यह आत्मा का अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन—ऐसी अरिहन्तपद दशा या सिद्धपद दशा, उन सब दशा के शुद्धरूपी कार्य, वह वस्तु त्रिकाल है, उसकी शक्ति में पड़ा है, उसमें से आया हुआ है। वह त्रिकाल द्रव्यस्वभाव, वह उसके मोक्ष की पर्याय का कारण है। बात भारी कठिन पड़े! इसमें तो देव-गुरु कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह सब उपचार से कारण अभूतार्थनय से कहे जाते हैं। यथार्थ दृष्टि में जो आत्मा का अन्तरस्वभाव उछल रहा है शक्ति में समुद्र, उस समुद्र में अन्दर नजर करने से जो दशायें पूर्ण प्रगट हुई, उनके कारणरूप वस्तुस्वभाव हुआ है, वस्तु द्रव्य उसके कारणरूप से हुआ है। चन्दुभाई! आहाहा!

अरे! तेरी महिमा तो देख, परन्तु इसे एक बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। एक बार कह कि मुझे आत्मा बिना चले नहीं। मणिभाई! घड़ीक में यह दवा बिना चले नहीं, यह चोपड़े बिना चले नहीं, कुछ व्यवस्थित हो नहीं, ढींकणा हो नहीं। यह पूरे दिन संताप। वह तो होनेवाली हो वह वह होनेवाली है। पर्याय में फेरफार करने में कोई समर्थ नहीं है।

एक बार तो जागकर खड़ा हो कि मुझे इसके बिना चले नहीं, ऐसा नियम लेकर बैठा है। इसके बिना चले नहीं। यह मर जायेगा, हों! स्त्री बिना चले नहीं, गाड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, बीड़ी बिना चले नहीं, दाल-रोटी बिना चले नहीं, शरीर बिना चले नहीं, मन बिना चले नहीं, राग बिना चले नहीं। एक बार तो निर्णय कर (कि) मेरा आत्मा आनन्द है, उसके बिना एक दृष्टि मेरा कदम नहीं चलेगा। ले! समझ में आया? पूर्णानन्द प्रभु मेरी दृष्टि में न आवे, इसके बिना मुझे चलता ही नहीं। मनसुखभाई! वहाँ जाकर कहे, इतने पैसे देने ही पड़ेंगे। दबाना पड़े, हों! उसकी चित्तवृत्ति

दबती है। मनसुखभाई जैसे आवे तो क्या करना? इनकार कैसे की जाये? और कहे मैं दान दे आया, परन्तु उसकी वृत्ति दबे, उसका क्या करना? परन्तु यह तो क्या करे? मनसुखभाई ने वहाँ बहुतों के मुफ्त के काम किये हों, ऐसा माने। यह यज्ञ किया था, ढींकणा किया था, और बहुतों के नाम ले सामने। फलाने भाई ने इतने दिये, फलाने भाई ने इतने दिये। उसको दबाकर भी कुछ पाँच हजार देना पड़े। भानुभाई! यह तो एक बात तुम्हारी, सच्ची है?

यहाँ तो कहते हैं कि पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, उसका भी दबाव कार्य होने में नहीं है। आहाहा! निमित्त का वजन नहीं, शरीर का, संहनन का, विकल्पों का धारावाही प्रवाह शुभ का बहे, उसका दबाव नहीं कि उसके कारण से मुक्ति होगी। अल्पज्ञदशा है, उसके कारण से मुक्ति होगी या मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, उसके कारण से मुक्ति होगी, कि नहीं। भगवान त्रिकाल अखण्डानन्द विराजमान चैतन्यधाम में नजर डालने से असाधारण चैतन्यस्वभाव जो त्रिकाल पड़ा है, उसका आश्रय लेने से कार्य का कारण वह द्रव्यस्वभाव होता है।

रुचि में बैठाये नहीं, श्रद्धा में बैठाये नहीं, सुख का रास्ता जो है, वह ले नहीं और फिर कहे, क्यों नहीं होता! हमको सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता? लो! मूलजीभाई! हमारी बहुत इच्छा है। हमारे मोक्ष की इच्छा है, केवल (ज्ञान) की इच्छा है। कैसे हो? भाई! क्यों होता नहीं क्या? कर्म का पराधीनपना है इसलिए। यह उसका उत्तर। अज्ञानी के यह उत्तर। अरे भाई! तुझे राग और पुण्य के विकल्प का क्लेश, उसकी तुझे थकान लगी नहीं और थकान के विश्राम का धाम भगवान 'जहाँ चेतन वहाँ अनन्तगुण और केवली बोले अेम, प्रगट अनुभव आपका यह निर्मल करो सुप्रेम, रे चेतन प्रभु चेतनता तेरी रे चेतन धाम में।' तेरी प्रभुता चेतनधाम में। परन्तु वह कहाँ मस्तिष्क में, ज्ञान में कीमत नहीं आती। सोना और हीरा की कीमत। यह एक जरा हीरा पाँच करोड़ का आवे तो 'आहाहा!' ऐ आहाहा! यह हीरा के जाननेवाले में आहा कुछ है, ऐसी खबर है तुझे? मनसुखभाई! वह पाँच-पच्चीस लोग इकट्ठे हों और एक बड़ा व्यक्ति हो तो ओहोहो! हो..हा... हो...हा... ऊपर से फूल बरसावे उसे। डालते हैं और वहाँ दरवाजा बनावे,

ऊपर फूल रखे, वह अन्दर घुसे वहाँ ऊपर डाले। आहाहा! सुलगते हुए कोयले पड़ते हैं सिर पर। यह नहीं करते भाई? बड़ा मकान खोलकर वहाँ ऊपर फूल पेटी रखे ऐसे रखकर। फिर वह अन्दर करे, तब पेटी उघाड़ डाले। डाले ऐसे। चाँदी का ताला हो और चाबी उघाड़कर दे न! फिर उसे दे चाँदी का ताला। धातु ले धूल। दोनों प्रसन्न हो जाये। उघाड़नेवाला और लेनेवाला और देनेवाला। अरे भगवान! ताला उघाड़ा यहाँ? अरे! विकल्प और निर्विकल्प के बीच की एकता का ताला लगाया, उसे एक बार खोल। तब आत्मा का वास्तु होगा और तब उसने आत्मा का घर खोला। नवरंगभाई! गजब बात, भाई!

कहते हैं, वह कार्यशुद्ध है। आहाहा! परमात्मा की दशा, वह कार्यशुद्ध है। कैसे प्रगट हुई? कि स्वरूप त्रिकाल है, उसके अन्तर में अवलोकन करते... करते... करते... करते... उग्र अवलोकन से स्थिरता हुई, वह द्रव्य के कारण से प्रगट हुई वस्तु। जैसे वे सिद्धात्मा हैं... अब तुलना करते हैं, जो कहना है वह। वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से... 'भवमल्लिय' शब्द पड़ा है न पाठ में? 'भवमल्लिय' शब्द था। पाठ में 'भवमल्लिय' अर्थात् भवलीन। अर्थ ऐसा किया, देखो, 'भवम् आलीनाः जीवाः' है न? यह उसकी विशिष्टता है। क्या कहना है? भले जीव विकल्पमय रूपी भव में लीन हो। भले जीव उसकी वर्तमान विकृतदशा का विकल्प राग का, दया, दान, भक्ति, पूजा और पाप में लीन अर्थात् मिथ्यात्व हो। 'भवमल्लिय' शब्द पड़ा है। तथापि उसके स्वभाव में वह सिद्ध समान है। समझ में आया? है भाई? यह तो सब अक्षर अलग प्रकार के हैं, हों! वहाँ बहियाँ पढ़ने से सुलझे, ऐसा नहीं। देखो, 'भवमल्लिय' शब्द पड़ा है। फिर अर्थ क्या किया है देखो अन्वयार्थ में। 'भवम् आलीनाः जीवाः' 'आलीनाः' किया है वापस अर्थ क्या किया है? भवलीन जीव। क्या कहा?

जैसे परमात्मा अनन्त सिद्ध विराजमान हैं, वैसे भवलीन, वापस ऐसा। आहाहा! अर्थात् कि भवरूप पर्याय में परिणमित हुए हैं, ऐसा सिद्ध करना है, भाई! यह संसार है, पर्याय में परिणमा है, यह सिद्ध करना है, यह वस्तु नहीं, ऐसा नहीं। भ्रम नहीं, कुछ नहीं—ऐसा नहीं। जो अनन्त-अनन्त स्वभाव का सागर पड़ा होने पर भी, वह अनादि के पुण्य और पाप के विकल्पों की लीनता में पड़े हैं, ऐसा संसार है, वह उदयभाव है।

उदयभाव वह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, काम, क्रोध का विकल्प, वह सब विकार संसार है। उसमें लीनता, वह संसार है। जीव को संसारपर्याय में, अवस्था में, दशा में है। तथापि वही शुद्धनिश्चयनय से, परन्तु अन्तर स्वभाव की दृष्टि से देखो तो वे संसारी जीव सिद्धात्मा जैसे हैं। जैसे वे सिद्धात्मा हैं, वैसे ही जीव हैं, ऐसा लेना। समझ में आया? यह अपने आप समझ में आये, ऐसा नहीं, हों! मनसुखभाई! घर में बैठकर वाँचो वहाँ। लगता है ऐसा या नहीं? अब उसे वर्ष हो गये। अब क्या काम है? मुफ्त का सिर पर बोझा उठाया था मुफ्त का। पड़ा अब, हो गया अब। अब क्या परन्तु? वह रास्ते में सुना था। कोई था न, पूछा था। कौन था कोई? यह शान्तिभाई थे। यह लखतर आये थे न लखतर। तुम आये थे ने सामने? तब लखतर बैठे थे न इकट्टे। कहा, यह डॉक्टर का क्या हुआ उस दवाखाना का? यह रास्ते में पूछा था। काँप में आये थे पहले। यह तो पन्द्रह दिन पहले उघड़ गया। तब अब तो कहा बोझा कम हुआ या नहीं? नया-नया कचरा सिर पर उठाया ही करे, निकाला ही करे कुछ।

वह बैल होता है न। बैल के छोटे बच्चे हों, तब तो एकदम वह जुड़ा ऊँचा करे तो सिर न डाले, परन्तु जहाँ अभ्यास पड़े, वहाँ वह जुड़ा ऊँचा करे वहाँ तो स्वयं सिर डाले। वह डोरा खींचे बिना। डोरा खींचकर डाले तो ठीक। इसी प्रकार जगत के काम जहाँ आ पड़े। वह कोई कहे नहीं, हों! वहाँ स्वयं सिर डालता है। यह मुझे करना है, यह मेरा काम है। मणिभाई! आहाहा! प्रभु! तूने तेरे काम किये? तेरे काम किये कभी? जड़ के और पर के तो तीन काल में कर सका ही नहीं। यह बात जगत को... आहाहा! निवृत्त हो, निवृत्त। निवृत्त ही है। बहुत तो तूने किया है विकारी परिणाम का कार्य। वह तेरी संसार की लीनता। वह 'भवमल्लिय' भव में लीन हो गया है। आहाहा! वह शुभभाव में लीन, वह भव में लीन, वह संसार में लीन। यह बात। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा का विकल्प उठता है, वह शुभराग, उसमें लीन, वह संसार में लीन है। है अवश्य वह। ऐसे संसार में लीन जीव भी उस अंश को नहीं देखकर, पूरी वस्तु जिसमें है, उसे देखने से वह तो संसारी जीव सिद्धात्मा जैसे ही हैं। सिद्ध और उस आत्मा में कुछ अन्तर नहीं। आहाहा!

जिस कारण से वे संसारी जीव... यह सब संसारी आत्मायें। सिद्धात्माओं के समान ही हैं... सिद्धात्मा जैसे। देखो, अब जरा न्याय देते हैं। जिस कारण से वे संसारी जीव सिद्धात्माओं जैसे हैं, इस कारण से... ऐसा वापस कहते हैं। इस कारण से संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित... यह वस्तु में जन्म नहीं, मरण नहीं। जन्म, जरा-अवस्था, वृद्धावस्था कुछ नहीं। वह तो भगवान चिदानन्द ज्योति ऐसा का ऐसा उस संसार को कभी वरा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

यह भी गुप्त वस्तु को... अरे! विद्यमान को अविद्यमान तूने किया और अविद्यमान विकल्पदशा को विद्यमानरूप से स्वीकार किया, यह तेरी बड़ी मिथ्यात्व की भूल है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा ? जो विद्यमान भगवान चिदानन्द से भरपूर आनन्दसागर, उसे दृष्टि के अन्दर में अविद्यमान किया और विकल्प आदि जो स्वरूप में नहीं, वह प्रगट नया-नया होता है और खड़ा रहता है, उस अविद्यमान चीज़ को तूने विद्यमानरूप से सत् रूप से स्वीकार किया। समझ में आया ? यही बड़ी परमात्मा को... यह कहीं आया था कहाँ ? उसमें आया था, पृष्ठ में आया था। 'कर्म के संग से मरण है तेरा' ऐसा भाई आया है उसमें। एक शब्द है उसमें। यह अपने आ गया है न २९ गाथा का कलश। उसमें एक जगह है कि तेरा जीवत्व मर गया। आहाहा! मरण है, ऐसा लिखा है, हों! कर्म के संयोग में तेरी दृष्टि जाने से चैतन्य के... यह उतने में नहीं होगा लम्बा है। आगे है। बाद में है। बाद के श्लोक में यहाँ है। बाद के श्लोक में यहाँ है। वहाँ तो बीच में सब पढ़ा था न थोड़ा-थोड़ा सब।

क्या कहते हैं ? अरे! भगवान! परन्तु यों ही 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण में, अपने संसारी जीव के भावमरण', आता है या नहीं ? यह चैतन्य एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण ज्ञान-आनन्द का सरोवर प्रभु डोलमडोल रहा है अन्दर। उसका आदर न करके पुण्य और पाप के विकल्पों का आदर, वह चैतन्य की मृत्यु है, वह चैतन्य का जीवन नहीं। पर की तो बात एक ओर रहने दो अब, परन्तु शुभ और अशुभ की वृत्तियाँ जो वृत्तियाँ उठती हैं विकार, उसका आदर अर्थात् कि चैतन्य आनन्दकन्द में नहीं, अर्थात् कि 'मैं मर गया हूँ' ऐसा इसने माना है। आहाहा! बराबर होगा इसमें,

नवरंगभाई ? इसके ऐसे अर्थ किये हैं न यह कलशकार ने बहुत स्पष्ट किया है। वह तो बाहर पूरा आयेगा। अन्दर सब सार ही रच दिया है।

मुमुक्षु : बाहर प्रसिद्ध करना है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले आना चाहिए वास्तव में तो परन्तु अब। मुम्बई से यह तीन महीने रहे। पौने तीन रहे न। यह वैशाख शुक्ल दूज। उसके पहले चैत्र कृष्ण में आनेवाले थे। ऐई! मणिभाई! तुम्हारे गाँव में आने से पहले प्रसिद्धि करना चाहिए, ऐसा कहते हैं रामजीभाई! समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान! इस जीव का जीव का... जीवत्वशक्ति है न? जीवत्वशक्ति नहीं? ४७ शक्ति जीवत्व। पहली शक्ति ४७ में। यह चैतन्य आनन्द ज्ञान-दर्शन के स्वभाव से भरपूर भण्डार, उसके प्राण से जीना, उसे जीवत्व कहते हैं। और राग तथा पुण्य के भाव से जीना, उसे चैतन्य के जीवन का मरण कहते हैं। व्याख्या भी भारी कठिन। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि पूर्णानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य के जीवन को स्वीकार किये बिना अर्थात् सम्यग्दर्शन बिना वह चलता मुर्दा है। वे मुर्दे तो यहाँ अर्थी में उठाकर जलाने ले जाते हैं। यह चलता मुर्दा। जिसे चैतन्य के पूर्णानन्द और ज्ञानस्वभाव की महिमा की दृष्टि हुई नहीं और जो राग और पुण्य और परवस्तु का माहात्म्य करता है, वह चलता शव अर्थात् मुर्दा है।

अरे! भगवान! मर गया तू अनादि से। किसी समय में तेरा जीवन तूने किया ही नहीं। जीव का जीवन जीवे, उसे मुक्ति हुए बिना रहती नहीं। उस जीव के जीवन को ऐसा कहा जाता है कि जिसे राग और संयोग से स्वभाव का माहात्म्य हुआ, सम्यग्दर्शन में चैतन्य पूरा पूर्ण झेला, बड़ा झेला श्रद्धा ने भगवान आत्मा हूँ स्वभाव से। 'भले पर्याय से पामर, स्वभाव से प्रभु हूँ।' ऐसा जब जीवन में सम्यग्दर्शन आया, तब उसका जीवन आया, वरना जीवित नहीं था, वह मर गया था। ऐई! मनसुखभाई! यह सब पठन की आँख दूसरी है, हों! वह आँख तुम्हारे... यह आँख दूसरी बात है। ज्ञानचक्षु।

कहते हैं, जिस कारण से वे संसारी जीव सिद्धात्माओं जैसे हैं, उस कारण से... उस कारण से, ऐसा कि उस कारण से वापस, ऐसा। उस स्वभाव के कारण से। संसारी

स्वभाव के कारण से सिद्ध जैसे हैं, उसी कारण से वे जन्म-मरणरहित हैं, ऐसा। आहाहा! प्रभु स्वभाव को प्रभु स्वभाव। एक समय का विकार छोड़ दे और पूरा भगवान प्रभु। जिस कारण से उस वस्तु की दृष्टि से वह सिद्धसमान है, उसी कारण से वह जन्म-जरा और मरणरहित ही स्वभाव है। स्वभाव को जन्म नहीं, स्वभाव की मृत्यु नहीं, स्वभाव को जीर्णता नहीं। समझ में आया? रहित है, यह तो नास्ति से बात की। अब सहित क्या है तब? क्योंकि न्याय तो यह कहा, हों! जिस कारण से वे संसारी जीव... अर्थात् शुद्धनिश्चयनय के बल से, शुद्धनिश्चय के जोर के अन्तर बल से देखने पर आत्मा को सिद्धसमान है। इसी कारण से जीव जन्म-जरामरणरहित... है।

और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं... ओहो! यह संसारी सब जीव निगोद से लेकर समकित आदि सिद्ध के जो आठ गुणों की पुष्टि से, उस पुष्टि से तुष्ट है, सन्तोष है, सन्तुष्ट हो गये हैं। क्या कहा? जैसे सिद्ध भगवान परमात्मा अशरीरी पूर्णानन्द के प्राण से पुष्टि से तुष्ट हैं, तुष्ट हैं, सन्तुष्टित आनन्द है। ऐसा ही यह भगवान आत्मा सब संसारी जीव सम्यक्त्व से समकित की पुष्टि से तुष्ट है। क्योंकि सम्यक् स्वभाव अन्दर पूरा पड़ा है। (सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व,... अमूर्तपना। अवगाहन... अपने स्वरूप में ही व्यापना। अगुरुलघु... छोटा-बड़ा (नहीं) और अव्याबाध... उसे कोई विघ्न नहीं। इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है)। जिसके पेट में—गर्भ में यह आठ गुणों की सम्पदा की समृद्धि से आनन्दमय है। लो, यह समृद्धि। यहाँ तो फर्नीचर और बाहर की समृद्धि बहुत वर्णन करते हैं। इतने हमारे घर हैं और इतने हमारे भैंसे-भैंस हैं। पाड़ा अर्थात् वह (भैंसा)। यह पाड़ा कहो या लड़का कहो। हमारे इतने लड़के हैं, लो न! यह इतने हमारे लड़के, दस लड़के। एक नहीं था अपने एक आते हैं न। एक आता है वहाँ हमारे। कैसा? मोतीरामजी। दस लड़के। नौ विवाहित। एक लड़का बालब्रह्मचारी। वहाँ आता है। बड़ी एकड़ जमीन, दो-तीन एकड़। बहुत लाखोंपति व्यक्ति। वहाँ सुनने आवे। परन्तु सब समझ बिना के व्रत लेकर बैठे हुए। दसवाँ लड़का है वह बालब्रह्मचारी रहनेवाला है। नौ बड़े विवाहित हैं। फिर लड़के ने उसके पिता को लिखा, बापू! तुम सब व्रत और प्रतिमा लेकर बैठे

हो, परन्तु यहाँ आओ, वरना नरक में जाना पड़ेगा। ऐई! वजुभाई! वह लड़का ऐसा कहे तुमको? यहाँ सत्ताप्रिय व्यक्ति आँख करे ऐसा वहाँ बोला कैसे जाये? लकड़ी ले। परन्तु उसने पिता के प्रति लिखा, उसकी आँख में से आँसू बहे उसे, हों! आहाहा! वह लड़का बालब्रह्मचारी है और दिमागवाला है। यह तत्त्व को समझने की (रुचि) है। पिताजी! प्रतिमा लेकर बैठे और धर्मसन्तोष में बैठे हो, यह भूले हो। वह यहाँ आओ और यह समझो, वरना नरक में जाना पड़ेगा। पत्र गया और बेचारा तुरन्त आया और यह बात सुनी। आँख में से आँसू बह जाते हैं, हों! आहाहा! कहाँ हम भूले और कहाँ हमने माना! अरे! भगवान! कहाँ तेरा धर्म और क्या तूने माना? इसकी उसे खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि अरे! सब जीव, अरे! स्वभाव में आठों ही गुण भरे हुए हैं। इसलिए प्रगट ही शक्तियाँ हैं सब। शक्ति कहीं अप्रगट है? शक्ति पूरा तत्त्व वह स्वरूप, वह अन्दर प्रगट पड़ा है। समकित, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, वस्तु के अन्तर स्वभाव में वह कारणप्रभु स्वयं कारणजीव में अनन्त-अनन्त सब गुण पड़े हैं, उसमें आठ व्यवहार से कहे। निश्चय से तो अनन्त हैं। ऐसे गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है। कहो, समझ में आया इसमें? कौन? यह निगोद के जीव, यह तूफान करनेवाले, मदिरा पीनेवाले, माँस खाने के भाववाले। यह भाव है, वहाँ भाव भले रहा, कहते हैं, परन्तु अन्तर के स्वभाव को निहारते हुए वह तो अनन्त गुण का पिण्ड ही पड़ा है। भाई! समझ में आया?

देवचन्दजी भगवान की एक स्तुति में कहते हैं। खत्तरगच्छ में हुए हैं न! वे स्तुति करते हैं। देवचन्दजी। 'प्रभु तुम जाणग रीति सहु जीव देखता हो लाल, प्रभु तुम जाणग रीति जग सहु देखता हो लाल, निज सत्ताअे शुद्ध सहुने पेखता हो लाल।' सर्वज्ञ की स्तुति करे, तब विकल्प भक्तिवाले तो ऐसा ही कहे, हे परमात्मा! हे सर्वज्ञ सूर्य! तीन काल-तीन लोक जिन्हें एक समय के अपने ज्ञान में ज्ञात हो गये हैं। 'प्रभु तुम जाणग रीति सहु जग देखता हो लाल, निज सत्ताअे शुद्ध सौने पेखता हो लाल।' हे भगवान! समस्त आत्मायें निज सत्ता से पूर्णानन्द है, ऐसा आप देखते हो। पर्याय में विकार है, वह तो भाव से है, खबर नहीं? एक समय का विकार, एक समय का संसार। त्रिकाल काल

का भगवान। आहाहा! भगवान के ज्ञान में भी केवलज्ञान में एक समय के संसार के अतिरिक्त पूरा भगवान शुद्ध चिदानन्द है, वह सिद्ध जैसा ही भगवान देखते हैं। भगवान देखते हैं, ऐसा है, ऐसा तू देख तो धर्मी हो। समझ में आया ?

(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)— ७१ है न ?

(अनुष्टुप्)

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।

नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम् ॥७१ ॥

क्या कहते हैं, देखो, इसमें गजब बात। ऐसी बात गाथा। नहीं, नहीं, यह व्यवहार का नय ही नहीं कहा यहाँ। वह नय ही नहीं। नय—किस नय से ? वह नय है ? ऐसा कहते हैं।

श्लोकार्थः—जिन सुबुद्धिओं को... जिन सुबुद्धियों को तथा कुबुद्धिओं को... यह सम्यग्ज्ञानी या मिथ्याज्ञानी को पहले से ही शुद्धता है,... क्या कहते हैं ? भाई! यह तो धर्म की बात है, हों! धर्मकथा कोई अलौकिक होती है। ऐसा नहीं मानना कि क्या इसमें चला ? यह क्या कहते हैं इसमें ?

बापू! तेरे माहात्म्य की ध्वनि तूने सुनी नहीं। यह 'मेरा' करके सुना नहीं तूने। और सुना हो तो उसका रास्ता निकले बिना रहे नहीं। उसे ही सुना कहते हैं न। 'एयत्तं विहत्तं'। स्व से एकत्व और पर से विभक्त, यह बात तूने सुनी नहीं। चौथी गाथा में समयसार में कहते हैं। श्रुत-परिचित-अनुभूत, सर्व को काम-भोग बन्ध कथा। जीवों ने विकार—शुभाशुभ करना और भोगना, यह बातें अनन्त बार बहुत कहनेवाले और सुननेवाले सभी ऐसे मिले हैं, कहते हैं और उसकी आदत भी तुझे पड़ गयी है विकल्पों के करने, भोगने की और अनुभव भी तुझे हो रहा है। परन्तु उन विकल्प से पार भगवान निर्विकल्प सुधारसकन्द पड़ा है, वह राग से पृथक् और स्वभाव से अपृथक् है। स्वभाववान ऐसा स्वभाव से एकत्व। ऐसी बात तूने अनन्त काल में मेरी करके सुनी नहीं। तुझे वह मिली नहीं। जो मिले, वे खोटे मिले हैं तुझे। और मिली नहीं तो उसका परिचय तो कहाँ

से होगा ? और परिचय नहीं तो उसका अनुभव तो कहाँ से होगा ? आहाहा !

क्षण में राख का पिण्ड होकर उड़ जायेगा ऐसे। आहाहा ! कहाँ गया ? क्या हुआ ? थोड़े दिन याद करे थोड़ी सी देर। कहते हैं न क्या कुछ ? 'दिन गणंता मास गणंता वरसे... सूरत भूली।' सूरत कैसी थी वह भूल गये। पिता की तीसरी पीढ़ी का कैसा मुख था, वह खबर है ? 'सूरत भूली।' सूरत अर्थात् कैसी उनकी सूरती-सूरत थी। वह तो अनादि से ऐसा चला ही आता है, बापू ! तूने तेरी सम्हाल की नहीं। ऐसे मानो मुझे याद रखे। लिखाओ नाम सामने। फलाना फलाना ने पाँच हजार और इक्यावान दिये हैं। उनके पुत्र ने उनके पिता के स्मरणार्थ, उसकी मातुश्री के वर्षीतप के पारणे में। इसलिए कितने ही नाम आवे उसमें। आहाहा ! अरे ! भगवान ! वह चीज़ ही तेरी नहीं, उसका तुझे क्या अभिमान यह ? वह चीज़ ही तेरी नहीं और मैंने दिये, लिये, भगवान ! क्या तुझे क्या हुआ ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि सुबुद्धि और कुबुद्धि भले उसकी दशा में हो, परन्तु पहले से ही शुद्धता स्वभाव में तो पड़ी है। आहाहा ! त्रिकाल शुद्ध है, उसकी श्रद्धा कर, उसकी दृष्टि कर, पर्याय और राग से विमुख हो, स्वभाव से सन्मुख हो। उनमें कुछ भी भेद... क्या कहते हैं जरा यह मुनि ? उनमें कुछ भी... कुछ भी भिन्नता। मैं किस नय से जानूँ ? देखो तो भाषा ! किस नय से जानूँ ? व्यवहारनय वह नय ही यथार्थ नहीं। यह नय नहीं। आहाहा ! असद्भूत वह नय क्या ? कि यह क्या ? यह बन्ध और मोक्ष पर्याय के। गुफा में से दहाड़ मारता सिंह निकले, उसी प्रकार अन्दर से दहाड़ पाड़ता आत्मा निकले। अरे ! यह आत्मायें परमानन्द की मूर्ति हम नय से देखते हैं। किस नय से हम उसमें भेद देखें ? व्यवहारनय से... नय है वह ? अभूतार्थ है, वह नय है नहीं। देखो भाई ! यह कहते हैं। चिल्लाहट मचा जाये ऐसा है वे तो। पढ़-पढ़कर पढ़े हो न। वह तो ऊँट को क्या कहते हैं ? रोना। जीन। जीन डाले तो ... दो डाले तो चिल्लाहट मचाये वह अलग बात, परन्तु जीन डाले तो ऊं... ऊं... करने की टेव ही पड़ गयी है उसे। यह ऊँट के ऊपर डालते हैं न ? टेव ही पड़ गयी उसे। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि व्यवहारनय से यह है और व्यवहारनय से यह है। अब सुन न ! व्यवहारनय तेरा। समझ

में आया? रोने की टेव ही तुझे पड़ी है व्यवहारनय के आश्रय से, ऐसा कहते हैं। व्यवहारनय के आश्रय से बोलने की टेव ही तुझे पड़ गयी है अकेली।

उस चीज़ में—स्वरूप में पूर्णानन्द और शुद्ध अखण्ड आनन्द है, वह कुबुद्धि और सुबुद्धि की पर्याय को हम न देखकर, वस्तु पहले से शुद्ध है। और वह सुबुद्धि प्रगट हुई और कुबुद्धि गई, दोनों में अन्दर आनन्दकन्द शुद्ध पड़ा है, ऐसी दृष्टि से देखनेवाले को किस नय से हम भेद कहें? ऐई! धीरुभाई! देखो तो सही! मुनि गुफा में से निकलकर उच्च स्वर में कहते हैं। किस नय से हम संसार और मोक्ष आत्मा में है, ऐसा कहें? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! नवरंगभाई! अर्थात् व्यवहारनय तो धुत्कार दिया धुत्कार। आहाहा!

एक भगवान (आत्मा) पूरा अखण्डानन्द पड़ा है, उसे शुद्धता तो पहले से ही है। उसमें कुछ भी, कुछ भी, हों! भेद अर्थात् भिन्नता। मैं किस नय से जानूँ? आहाहा! (वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।) यह सिद्ध समान परमात्मा। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो। चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसी दृष्टि कराने को यह बात करते हैं। व्यवहारनय का विषय-फिषय छोड़ दे अब। यह है या नहीं? यह है या नहीं? यह व्यवहार बीच में आता है या नहीं? सुन न अब। आवे, न आवे, यह देखने का क्या काम है तुझे? आहाहा! कहते हैं, यह भगवान आत्मा की पूर्णता का जहाँ बोध हुआ और दृष्टि ने दौलत देखी, वह तो शुद्धता पहले से ही थी। समझ में आया?

मुमुक्षु : मुनि व्यवहारनय को भूल जाते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने में आ गया, उसमें फिर जानना नया नहीं हुआ उन्हें। उसका स्वीकार ही नहीं। उठा स्वीकार को। एक समय में पूर्णानन्द प्रभु पड़ा है, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, उसमें शुद्धता में और पहली अशुद्धता थी और फिर शुद्धता प्रगट हुई, यह हम किस नय से भेद करें? समझ में आया? आहाहा! यह मुनि कितनों को चुभते हैं। ऐसी टीका करनेवाले हैं न! इन्होंने तो खुल्ला कर दिया। नग्नसत्य, वास्तविक सत्य। भगवान चिदानन्द ज्योति पड़ी है, उसमें फिर शुद्धता पहले नहीं थी और प्रगट हुई, वह

प्रगट हुई की बात कौन करे ? प्रगटवाले को और नहीं प्रगटवाले को शुद्धता पहले से है त्रिकाल एकरूप है। ऐसी दृष्टि में विषय में, व्यवहारनय के विषय को गिनती में गिनने में आया नहीं। हम गिनते ही नहीं। अब तू कौन व्यवहार ? एक समय का स्वीकार करनेवाला तू कौन ? नवरंगभाई ! यह ४७ गाथा हुई।

अब इस कार्य का कारण साथ में मिलाते हैं इसमें। यह ४८ में।

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा ।

जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया ॥४८ ॥

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।

लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों ॥४८ ॥

अरे ! यह उस दृष्टि में पलटा मारना, वह कोई कम पुरुषार्थ है ! वह पुरुषार्थ, वह मुझमें नहीं। लो, यह नियत हो। अब सुन न, नियत निर्णय करे, उसका पुरुषार्थ स्वभाव सन्मुख मुड़ जाता है। ऐसा अनन्त पुरुषार्थ उसमें है।

कहते हैं कि जिस प्रकार सिद्ध भगवान लोकाग्र में विराजमान, हम देह में विराजमान भगवान ऐसे हैं, हम देखते हैं। समझ में आया ? उसी प्रकार संसार में (सर्व) जीव जानना। सबमें फिर कोई भव्य या अभव्य कुछ बाकी नहीं रखा, नित्य निगोद के या यह सब। सब भगवान से भरपूर भण्डार पूरा चौदह ब्रह्माण्ड है। भगवान ही विराजते हैं सब। एक अंश का लक्ष्य छोड़ दे, स्वभाव की दृष्टि से देख तो सब ही स्वभाववान तुझे मिलेंगे। समझ में आया ? इसकी टीका विस्तार से....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



दिनांक - १६-०२-१९६४
कलश-७१, प्रवचन नं. ४००

यह नियमसार एक शास्त्र है, इसमें मोक्षमार्ग का अधिकार है। मोक्ष अर्थात् कि आत्मा जो पवित्र आनन्द और शुद्धस्वरूप है, उसकी अन्तर में से प्रगट अवस्था पूर्ण आनन्द और शान्ति प्रगट हो, उसे मोक्षदशा अथवा परमात्मदशा कहते हैं। वह मोक्षदशा कैसे प्रगट हो ? और वह मोक्षदशा प्रगट करनेवाले की दृष्टि के विषय में ध्येय क्या चीज़ होती है ? क्या कहते हैं ? ध्येय अर्थात् लक्ष्य। सम्यग्दृष्टि के लक्ष्य में क्या चीज़ होती है ? कि जिसके लक्ष्य में वह चीज़ आने से जिसे परमानन्द की प्राप्ति हो और पूर्ण शान्ति का प्रगट भाव प्राप्त हो।

जैसे पीपर के अन्दर चौंसठ पहरी सामर्थ्य अन्दर में है, ऐसी जिसे प्रगट हुई है। यह छोटी पीपर। चौंसठ पहरी चरपराई का रस और हरा रंग प्रगट हुआ है। ऐसा ही चरापरा रस और हरा रंग पीपर के दाने में मध्य में वैसा ही स्वभाव पड़ा है। कहो, मनसुखभाई ! यह समझ में आता है या नहीं ? अथवा मेंहदी के पत्ते में बाहर में हरियाली दिखती है, अन्दर में लालिमा भरी है। वह लालिमा, वह प्रगट लालिमा और अन्तर लालिमा, ऐसी ही भरी है जैसी प्रगट (होती है वैसी)। यह लड़कियाँ पीसकर अब तो कितने ही लड़के भी नख लाल करते हैं, नहीं ? ऐसा देखा है कोई देखता हो तो। लाल नख करे। वह मुट्टियों में रखकर ऐसा करते। ऐसे मुट्टी न रखे वापस वह मुट्टी में ऐसे नख रखे। इसलिए वे नख भी लाल हों और हाथ भी लाल हो।

मुमुक्षु : ठण्डक हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठण्डक तो ठीक, परन्तु लाल हो, उसका हेतु यह है। ऐसा दिखाई दे तो हरी और अन्दर देखो तो लाल। तो जैसी प्रगट हुई लाल है, वैसी ही लाल उसमें शक्ति और स्वभाव है। उसमें कुछ अन्तर नहीं। कहो, बराबर है ? डॉक्टर !

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा जैसी आत्मा को प्रगट दशा सर्वज्ञ परमात्मा को पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शुद्धता शक्ति में जो थी, वह प्रगटरूप

वर्तती है, ऐसी ही शक्ति सब आत्मा के अन्दर भरी है। परन्तु बहुत सूक्ष्म है। यह यहाँ कहते हैं। सम्यग्दृष्टि अर्थात् सत्यदृष्टि अर्थात् कि सत्य का परमसत्य का स्वीकार करनेवाला। भगवान् आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त परमात्मा, ऐसा ही आत्मा अन्दर एक समय में पड़ा हुआ है, ऐसा सम्यग्दृष्टि अर्थात् सच्ची, सत्य के, परमसत्य के स्वीकार करनेवाले, वह दृष्टिवन्त क्या जानते हैं ? क्या मानते हैं ? उसकी बात इस ७१ कलश में कही है। यह कल चला था, परन्तु यह फिर से जरा कोई नये लोग होंगे न, इसलिए रामजीभाई कहते हैं (कि) यह लो। ७१ कलश। भाई गये लगते हैं नवनीतभाई।

(अनुष्टुप्)

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।

नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम् ॥७१ ॥

क्या कहते हैं जरा ? अहो ! जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञान का भान हुआ है दशा में, सम्यग्दर्शन हुआ है, अनुभव स्वभाव का दशा में, हालत में जैसे हरी मिटकर लाल प्रगट हुई है और किसी को हरी रही है। मेहंदी के पत्ते। इसी प्रकार चौसठ पहरी किसी को प्रगट हुई है और किसी को अन्तर में रही हुई है। इसी प्रकार आत्मा की किसी को अनन्त ज्ञानादि परमात्मदशा प्रगट हुई है और किसी को हुई नहीं। सम्यग्दृष्टि सुबुद्धियों को... अर्थात् सम्यग्ज्ञान की दशा में, प्रगट हुई दशा में पूर्ण आनन्द और शुद्ध ऐसी दशा का भान हुआ, उससे पहले भी अन्दर में शुद्धता तो थी। और कुबुद्धियों को... कुबुद्धि। जिसे सम्यक् चिदानन्द प्रभु अखण्डानन्द, सच्चिदानन्द परमसत्य का ज्ञान और आनन्द का ढंग, ऐसा जिसे जिसकी दशा में भान नहीं। अर्थात् कि जो कोई शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप के राग को ही अपना स्वरूप मानता है, ऐसे कुबुद्धि। अब इसे कुबुद्धि कहा, लो ! मनसुखभाई !

जो कोई भगवान् आत्मा अन्दर परमात्मा के स्वभाव की शक्ति से भरपूर, उसका जिसे भान हुआ है और जिसे भान हुआ नहीं। भान हुआ, उसे सुबुद्धि कहते हैं और भान हुआ नहीं, उसे कुबुद्धि कहते हैं। संसार के विज्ञान और उसके जानपने की यहाँ कुछ कीमत है नहीं। बराबर होगा ? तो इतने डॉक्टर पढ़े और इतने पैसे पैदा किये और इतने

पैसे की बुद्धि। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध आनन्द अन्दर स्थित है, ऐसे पूर्ण शुद्धता में कुबुद्धि हो या सुबुद्धि हो, दोनों को शुद्धस्वभाव पहले से ही अनादि पड़ा हुआ है। आहाहा! समझ में आया ?

सुबुद्धियों को तथा कुबुद्धियों को... अर्थात् कि जिसे सम्यग्ज्ञान में भान हुआ है कि मैं शुद्ध चिदानन्द ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मैं राग, दया, दान के विकल्प, वह मैं नहीं। शरीरादि की दशा और शरीर का तत्त्व, वह मैं नहीं। मेरे तत्त्व में पूर्णानन्द और पूर्ण सर्वज्ञपद पड़ा है, ऐसी जिसे सम्यग्ज्ञान की दशा प्रगट हुई है और ऐसी जिसे प्रगट नहीं हुई अनादि निगोद आदि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौ इन्द्रिय जीव। स्वरूप के ज्ञान चैतन्य के आनन्दकन्द के अजान हैं और जो संसार के जान हैं, ऐसे कुबुद्धि। ऐसे कुबुद्धियों को **प्रथम से ही शुद्धता है...** उसे तो पहले से ही अन्तर में शुद्धता पड़ी है।

चौंसठ पहरी चरपराहट का रस, वह पीपर में और हरा रंग पहले से है। तिल में तेल। तेल निकला हुआ हो या तेल तिल के खल में पड़ा हो, वह पृथक् पड़ा हो या खल के साथ हो, परन्तु तेल तो ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा है। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ऐसे 'शुद्ध चिदानन्द की चैतन्य ज्योति हूँ' ऐसी सम्यग्ज्ञान की दशा प्रगटी हो और उसमें भान हुआ कि 'मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ' और जिसे कुबुद्धि प्रगटी हो अनादि की है, उसे दोनों को वस्तु तो अन्दर शुद्ध चिदानन्द का घन ही अनादि से पहले से पड़ा हुआ है। आहाहा! समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाल ऐसा का ऐसा पड़ा है, ऐसा यहाँ तो बताना है। शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति आनन्द का कन्द, आनन्द का रस, शान्त अविकारी अकेला वीतराग विज्ञानघन, रसकन्द। वह कुबुद्धि को या सुबुद्धि की दशावान को दोनों को पहले से शुद्धता पड़ी है। समझ में आया इसमें ? नहीं समझ में आता ? क्या नहीं समझ में आता ? ऐई... मनसुखभाई ! यह दृष्टान्त तो दो-तीन दिये। प्रगटा हुआ तेल हो या तेल प्रगट हुआ तिल की खल के पीछे न हो, परन्तु दोनों एकसरीखा ही तेल अन्दर में प्रगटा हुआ या नहीं प्रगटा हुआ दोनों को तेल का भात एकरूप पड़ा हुआ है। इसी प्रकार आत्मा में ज्ञान सम्यक् हुआ हो या कुज्ञान हो, यह दो दशायें हैं, हालत है। उस हालत के पीछे शुद्धता तो पहले से अनादि से पड़ी हुई है। आहाहा! समझ में आया ? कहो,

डॉक्टर! समझ में आया या नहीं इसमें? किसे पूछना इसमें? यह सब डॉक्टर होशियार कहलाते हैं न। अन्तर के स्वभाव में पूर्ण भरपूर ही है। भरा हुआ न हो तो आये कहाँ से? प्राप्त की प्राप्ति है। अन्तर में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान् चैतन्यमूर्ति सच्चिदानन्द सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का शुद्ध पिण्ड ही है। वह सम्यग्ज्ञान दशा में हो तो भी शुद्ध है और न हो तो वह तो (भी) शुद्ध ही है। समझ में आया?

कहते हैं, **प्रथम से ही...** ऐसा शब्द पड़ा है। 'सुधियां कुधियाम प्रागेव' ऐसा शब्द है न? पहले से ही। शुद्ध-शुद्ध चैतन्यगोला आनन्दकन्द ही है वह तो। ऐसी दृष्टि कराने को उसकी दृष्टि कर। वर्तमान राग, पुण्य और संयोग की दृष्टि छोड़ दे और अल्पज्ञता, अल्पदर्शिता, अल्पवीर्यता जो वर्तमान दशा में दिखती है, उसकी दृष्टि छोड़ दे। दृष्टि चिदानन्द पूर्ण शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध का चिद्घन पड़ा है, उसकी दृष्टि कर तो सम्यग्दर्शन और धर्म होगा। समझ में आया? यह धर्म की दृष्टिवन्त का विषय, दृष्टि हुई तो भी शुद्ध है और न हुई हो तो भी वह तो शुद्ध ही है। बहुत सूक्ष्म है, भानुभाई! यह सब रुपये-बुपये पुण्य के कारण मिल गये, ऐसा यह नहीं मिले ऐसा। यह तो पुरुषार्थ से होता है, ऐसा है। आहाहा! कहते हैं कि एकबार नजर तो बदल। उस नजर को नजर की दौलत कौन अन्दर है, वह शुद्ध चिद्घन आदि-अन्त रहित सत्, आदि-अन्त रहित सत्, शुरुआत—नाशरहित सत्, एकरूप रहनेवाला सत्। चिद्घन ज्ञान और आनन्द का रसकन्द पूर्ण शुद्ध वह तो सम्यक् समझण कर तो भी है और मिथ्याश्रद्धा कर तो भी वह तो शुद्ध ही त्रिकाल है। समझ में आया?

उनमें कुछ भी भेद... आहाहा! देखो, क्या कहते हैं? 'एक जानिये, देखिये, रमी रहिये इक ठौर, समल-विमल नहीं देखिये।' समल-विमल नहीं देखिये 'यही सिद्धि नहीं और।' भगवान् आत्मा की दशा में निर्मलता कैसे प्रगटी है और मलिनता अनादि की कैसे थी? उसका लक्ष्य छोड़ दे प्रभु एकबार। 'एक देखिये जानिये, रमी रहिये इक ठौर, समल-विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और।' एक चिदानन्द मूर्ति जहाँ पूर्ण शाश्वत्धाम अनादि-अनन्त असाधारण स्वभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा वस्तु है, वह वस्तु आदि-अन्तरहित। वस्तु है, उसका त्रिकाली स्वभाव, जैसे वस्तु त्रिकाली, वैसे उसका त्रिकाली स्वभाव अत्यन्त शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... और पवित्र है। ऐसे शुद्ध पवित्र के

धामरूप पदार्थ को कहते हैं कि हम सुबुद्धि को, कुबुद्धि को पहले से ही जहाँ शुद्धता है। उनमें कुछ भी भेद, यह मलिनता थी और निर्मलता हुई, ऐसा भेद हम वस्तु में देखते नहीं। नवरंगभाई! अब कहाँ रहा उसका दया, दान और व्रत, भक्ति के विकल्प और उससे धर्म हो। अरे भगवान! कहाँ की कहाँ तेरी बातें! कहाँ तू छुपा और कहाँ खोजने जाये? समझ में आया?

एक दृष्टान्त उसमें दिया है न! लड़का घर में बैठा था। पिता बाहर निकला। नहीं? उस अनुभवप्रकाश में (यह दृष्टान्त) कहीं दिया है। फिर कहे ... लड़का साथ में नहीं, इसलिए लड़का नहीं, ऐसा कहे? बाहर अकेला गया हो दुकान-धन्धे में। लड़का कोई न हो। घर में दो लड़के, परन्तु तुम्हारे पास लड़के नहीं। तथापि लड़के हैं उन्हें 'नहीं' कैसे कहूँ? यहाँ आया दुकान में तो लड़का भले यहाँ नहीं, तथापि लड़का घर में बैठा, उसे 'नहीं' कैसे कहूँ? ऐसा दृष्टान्त दिया है कि अरे, आत्मा! उसकी एक समय की दशा में आया, परन्तु अन्दर विद्यमान आनन्द और पूर्ण पड़ा है, उसे 'नहीं' कैसे कहूँ? आहाहा! यह दृष्टान्त दिया है, भाई! चन्दुभाई! यह कहीं अनुभवप्रकाश में, समझे न? अनुभवप्रकाश में दृष्टान्त दिया है। विद्यमान को अविद्यमान कैसे करूँ? कैसे कहूँ? समझ में आया? घर में करोड़ों रुपये की पूँजी पड़ी है। मनसुखभाई! वह साथ में यहाँ जेब में नहीं, तथापि पैसे करोड़ पड़े हैं, उन्हें कैसे कहूँ कि नहीं?

मुमुक्षु : यह अधिक समझ में आये ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और करोड़पति व्यक्ति है, हों! तुम्हारे सब डॉक्टरों में। बड़ी-बड़ी आमदनी है साढ़े सात-आठ लाख की वर्ष की। बड़ा डॉक्टर बड़ा यह धूल के ढेर का। मणिभाई! वापस फिर बदल डाला। यहाँ कहते हैं, परन्तु वह कोई साथ में है अभी? तथापि पड़े हैं या नहीं तीन लड़के और बड़ी मशीन ली है २०-२० लाख की, तीस लाख के पड़े हैं वहाँ। है या नहीं?

मुमुक्षु : वह तो सामने नजर में तैरते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर में तैरते हैं, देखो। और एक तो कुछ नैरोबी में था बीस लाख का नहीं? कितना लिया? सुना था भाई! अपने को कहाँ खबर। वहाँ एक बीस

लाख का। तीस-तीस लाख का यहाँ और बड़े-बड़े (यन्त्र)। परन्तु विद्यमान को अविद्यमान कैसे कहें? हम सधन हैं, निर्धन कैसे कहें? कहते हैं।

इसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं, अरे आत्मा! जहाँ अन्दर में आनन्द और पूर्णता भरी है पूर्णमिदं आत्म शाश्वतम्, उसकी दशा में अल्पता हो या पूर्णता हो, अरे! भेद को कौन देखे! आहाहा! एकरूप चिदानन्द शाश्वत् एक दृष्टि का ध्येय, लक्ष्य अन्दर किया। एकरूप वस्तु एक अर्थात् पूर्ण और पूर्ण अर्थात् शुद्ध। ऐसी शुद्धता अज्ञानी को पहले से पड़ी हुई है और ज्ञानी के भान में भी हुआ, तथापि शुद्धता का पिण्ड तो पहले से ही ऐसा का ऐसा पड़ा हुआ है। समझ में आया?

बिल्ली का दृष्टान्त देते हैं। बिल्ली के बच्चे होते हैं न। सात-आठ घर में फिरावे। सुना है न! छोटे लड़के थे, तब सुना था। सात दिन यहाँ रखे और सात दिन (अन्यत्र रखे)। हेतु तो ऐसा है कि वे आदतन हो जाये न लड़के-बच्चे के, इसलिए बिल्ली फिरा डाले। इसलिए फिर सात दिन जहाँ खड़ी हो, वहाँ आँख उघड़े। ...यह जगत कहाँ? जगत पहले नहीं दिखता था। आँख उघड़ी तब दिखाई दिया। यह जगत नया हुआ? या यह जगत तो तेरी आँख बन्द थी तब (भी) था और उघड़ी, तब (भी) जगत ऐसा का ऐसा है। नहीं, यह दृष्टान्त आता है शास्त्र में, हों! शास्त्र में दृष्टान्त आता है। सब दृष्टान्त शास्त्र में आते हैं। हमारे घर की एक भी बात नहीं। यह परमात्मा ने कही हुई बात है। समझ में आया? यह बिल्ली के बच्चे ने आँख उघड़ी और सृष्टि देखी, नयी हुई है? है, है और है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान में भान हुआ कि यह पूर्णानन्द है तो भी है और भान नहीं था तो भी वह तो शुद्ध त्रिकाल ऐसा का ऐसा है। समझ में आया?

कहते हैं, आहाहा! आचार्यों ने—जरा मुनि ने ऐसी जरा मशकरी की है व्यवहारनय की। व्यवहारनय की मशकरी है। आहाहा! अरे प्रभु! तुझे आत्मा पूर्णानन्द है, उसकी दृष्टि में कहते हैं कि मैं यह अपूर्ण था और पूर्ण हुआ और यह साधु हूँ, ऐसी किस नय से कुछ भी भेद मैं तो देखता नहीं। कुछ भी भेद, भिन्नता, एकरूप चीज की दृष्टि में मैं भेद अर्थात् न्यून, उल्टा, साधक और पूर्ण। जो श्रद्धा में उल्टी श्रद्धा थी, फिर भान हुआ कि यह शुद्ध है और फिर पूर्ण प्रगट हुआ, इन तीन में भेद किस प्रकार मैं देखूँ? एकरूप त्रिकाल चीज पड़ी है, उसकी दृष्टि के विषय में, सम्यग्दृष्टि के विषय में एकरूप

चैतन्यसत्ता धाम परम आनन्द दृष्टि में पड़ा है, उनमें भेद किस नय से जानूँ? अर्थात् कि व्यवहारनय से मानो वह नय क्या? वह नय है? आहाहा! बाबूभाई! यह चिल्लाहट मचाते हैं न वे सब? व्यवहार नहीं, व्यवहार नहीं। अब सुन न तेरा व्यवहार नहीं।

उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ? किस नय से जानूँ? व्यवहारनय से? वह नय है वास्तविक? वास्तविक नय तो ज्ञान को पूर्ण देखे, वह नय सच्चा है। ज्ञान का एक अंश पूर्णानन्द को देखे, वह दूज पूर्णता को प्राप्त कराये, उसी प्रकार जो ज्ञान का अंश पूर्ण प्रभु... पूर्ण प्रभु... पूर्ण प्रभु अनादि-अनन्त पूर्ण ऐसी दृष्टि के लक्ष्य में ले, उसे कहते हैं कि हम ज्ञान को नय कहा जाता है। बाकी जो नय अर्थात् ज्ञान का अंश भेद को, राग को, अंश को निर्मलता हुई और यह गयी, ऐसे नय को हम किस नय से भेद देखें? वह तो एक जाननेयोग्य बात है, उसे वास्तविक नय कहते नहीं। आहाहा! ऐई! चन्दुभाई! प्याला फटे, तब ऐसा होता है या नहीं?

मुमुक्षु : स्वयं और स्वयं पक्षकार तथा स्वयं और स्वयं न्याय देता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं का स्वयं न्याय देनेवाला और स्वयं का स्वयं पक्षकार। बादशाह भी स्वयं और दलील करनेवाला भी स्वयं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा देहदेवल के रजकण के पिण्ड, प्रभु अन्दर में प्रभु चैतन्यसूर्य विराजता है। जैसा स्फटिक हो, स्फटिक पत्थर का। उसी प्रकार यह भगवान चैतन्य और आनन्द का स्फटिक है अन्दर देह में। यह दृष्टि निकाल डालो यह। जैसे हलवाई... कंदोई कहते हैं न? हलवाई। वह लकड़ी का साँचा होता है न बनाया हुआ। उसे साँचा ऐसा करके फिर अन्दर शक्कर भरे। शक्कर का रस भरकर सूत की डोरी लपेटे। थोड़ी देर रखे आधे घण्टे वहाँ वह पिण्ड हो जाये। लकड़ी के साँचा पुरुष के आकार। लकड़ी के साँचा पुरुष के आकार। उसमें ऐसा रखकर छिद्र हो ऊपर जरा शक्कर डाले अन्दर। आधे घण्टे में जमकर पिण्ड हो जाये। डोरा छोड़ दे, वहाँ शक्कर की मूर्ति। ... कब की थी? कि ऐसे की ऐसी है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा यह देह के रजकण के लकड़ी के साँचा, उसकी दृष्टि छोड़ दे। मनसुखभाई! कब की बात चलती है यह? अभी की। यह लकड़ी के साँचा जड़ के। उसमें जैसे वह शक्कर की पुतली में जरा मैल हो और दूध डालकर धो डाला

हो, इसी प्रकार अन्दर में जरा पुण्य और पाप के विकल्प दिखते हैं, (उसकी) नजर छोड़ दे, तेरी नजर में विकार ले नहीं। वह तेरी नजर में परमात्मा नजर में आना चाहिए। वह नजर में पड़ा हुआ निधान, उस चैतन्य की दृष्टि में हम भेद किस अपेक्षा से देखें? कहते हैं। मगनभाई!

(वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।) वस्तु, वस्तुरूप से परमानन्दमूर्ति है। ऐसी दृष्टि में भेद ही जिस दृष्टि का विषय नहीं। जो विषय भेद का, व्यवहार का है, उसे यहाँ तुच्छ करके (कहते हैं), 'जा जा। तू वह कौन?' मोहनभाई! आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें कुछ? अब यह तो अभी राग और भेद, दया और दान करते हैं, उसे व्यवहार कहो न, व्यवहार कहो न। अब सुन न! वह असद्भूतव्यवहार है, ले। और यह जड़ की क्रिया होती है, कुछ ऐसा किया और हमने ऐसा किया। किसी की सेवा हुई वहाँ विकल्प उठा। ऐसा हुआ और यह हुआ। यह देह की क्रिया से हमको कुछ धर्म होगा या नहीं? अब सुन न! तेरी जड़ की क्रिया में धर्म कब था? समझ में आया? और अन्दर में पुण्य का विकल्प उठा होता है, दया, दान, भक्ति, सेवा आदि का, उस राग पर नजरवाले को कहते हैं कि तेरी नजर अन्धी है? यह वह नजर कहाँ डाली तूने? समझ में आया? नजर जिसमें पड़ी है भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी नजर कर तो तू निहाल हो जाये। इसके बिना निहाल होना का दूसरा रास्ता है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! नवरंगभाई! पकड़ना मुश्किल। मस्तिष्क में आना (कि) यह क्या कहते हैं? ऐसी विपरीतता घुसी हो न बहुत दूसरी।

कहते हैं... आहाहा! श्लोक वह भी श्लोक है, देखो न! श्लाघावाला श्लोक है। भगवान आत्मा.. इसमें पुनरुक्ति लगती ही नहीं, हों! यह वस्तु ऐसी है। चैतन्यरत्न आनन्दकन्द पूर्ण परमात्मस्वभाव, ऐसी दृष्टि के सम्यग्दर्शन के विषय में पूर्ण स्वरूप जहाँ प्रतीति में, भान में, धर्म की दृष्टि में धर्मी आया, ऐसा शुद्ध भगवान, उसमें भेद कहाँ है? और वर्तमान में भेद, वह किस नय से देखें? यह सब निर्मल होकर अभेद मिल जाता है। आहाहा! दृष्टि में चिदानन्द पूर्ण आया जहाँ सम्यक् श्रद्धा और भान हुआ, वह निर्मलदशा भी अभेद मिल जाती है, जिसमें अकेला शुद्ध ही देखते हैं, कहते हैं। उसमें फिर भंग और भेद कुछ नहीं देखते। यह उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि

धर्मी कहा जाता है। ऐई! मगनभाई! यह तो कल आया था। रामजीभाई कहे, फिर से यह जरा (वाँचो)। आहाहा! अरे, भगवान! तेरी पुकार (टेर)वह कहाँ परन्तु? शरीर की क्रिया की और यह कार्य किया और यह किया।

मुमुक्षु : जीवित शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवित शरीर कब? मुर्दा है। यह तो मुर्दा है मुर्दा। यहाँ गाथा... समयसार नहीं? समयसार है? समझ में आया? (शरीर) मृतक कलेवर है। ९६ गाथा, कर्ताकर्म की ९६ गाथा है। नहीं? उसमें नहीं एक भी। यहाँ हो तो नजर में आना चाहिए न! उसके कद की खबर हो, उसके पृष्ठ की खबर हो। उसके कद में नहीं। लो, यह ९६ गाथा। क्या कहते हैं? ९६।

अहो! भगवान मृतक कलेवर द्वारा। अरे प्रभु! यह शरीर वर्तमान मृतक—मुर्दा है। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ९६ (गाथा) की टीका करते हुए प्रसिद्ध करते हैं। प्रसिद्ध होओ कि मैं त्रिकाल शुद्ध अमृत का पिण्ड हूँ। आत्मख्याति है न भाई इसमें। जाहिर का अर्थ यह—‘प्रसिद्ध होओ दृष्टि में कि मैं अनादि-अनन्त अमृत का पिण्ड हूँ’—ऐसी मेरी दृष्टि का विषय है। मैं अल्प और राग नहीं। ऐसा जीव आत्मा के अमृत पिण्ड को भूलकर मृतक कलेवर द्वारा। यह मुर्दा वर्तमान की बात चलती है, हों! जीव निकलने के बाद मुर्दा, ऐसा नहीं। यह अभी मुर्दा ही है। क्योंकि चैतन्य का चमत्कार का ज्ञान अंश इन परमाणुओं में नहीं, इस जड़ में नहीं। जो जिसमें चैतन्य है, उस परमाणु में प्रविष्ट नहीं, परमाणु उस चैतन्य में प्रविष्ट नहीं। दोनों भिन्न-भिन्न काम करते हैं।

कहते हैं, **मृतक कलेवर द्वारा...** यह मृतक कलेवर शरीर है, यह मुर्दा। वह **परम अमृतरूप विज्ञानघन...** भगवान आत्मा तो परम विज्ञान—वि-ज्ञान घन-घन। जैसे पौष महीने के सर्दी का घी। अच्छा था, तब की बात है, अभी सब दगा हो गया है। चारों ओर कौन जाने क्या हो गया! पानी में दगा, दूध में दगा, सर्वत्र काला बाजार और धर्म में भी काला बाजार। ऐसे अज्ञानी ने विपरीतता घुसा डाली है न! व्यापार में काला बाजार और धर्म में ‘यह दया, दान, व्रत और भक्ति कर, तुझे धर्म होगा।’ काला बाजार है सुन न अब! यह विकल्प उठे, वह विकार है, मैल है। उससे आत्मा का धर्म हो, यह तीन काल—तीन लोक में नहीं होता। मनसुखभाई!

कहते हैं, अरे! अमृत का घन प्रभु, विज्ञानघन। जो सर्दी का घी अच्छा ऊँचा (हो) जिसमें अँगुली प्रविष्ट नहीं होती और प्रविष्ट हो और यदि उसकी अणी लगे (तो) रोग हो। रोग हो उसमें से। खबर है? फाँस लगे बारीक-बारीक। बहुत कठिन हो और लड़के को कहे... अँगुली डालना नहीं। बहुत कठिन हो गया है। अकेला शुद्ध घी हो और अकेला खल खायी हुई हो भैंस ने। कपास की खल। उसमें वह घी उसका जमा हुआ हो, उसमें ऐसा जमे। अँगुली घुसे नहीं, कलछी घुसे नहीं। उस घी की फाँस (लगे)। इतना कठोर हो। नीवड-नीवड घन कठोर। इसी प्रकार विज्ञानघन। आत्मा ज्ञान का घन है। कहते हैं कि जिसमें पुण्य और पाप का विकल्प प्रवेश नहीं कर सकता। आहाहा! समझ में आया इसमें? इसमें समझ में आता है कुछ? समझा हुआ छोड़ रखो पानी, कहते हैं। जगत की समझ के ऊपर शून्य लगाओ।

अमृतरूप विज्ञानघन... यह ज्ञान का रसकन्द प्रभु पूरा घन-घन पड़ा है। जिसमें शरीर-वाणी तो प्रविष्ट नहीं होते, परन्तु शुभ-अशुभ विकल्प दया, दान, काम, क्रोध की वृत्ति हो, वह अन्दर में प्रवेश करने का चैतन्यघन में अवकाश नहीं। ऐसा भगवान अमृत विज्ञानघन मूर्छित हुआ... तीन शब्द प्रयोग किये। मृतक कलेवर द्वारा अमृतरूप विज्ञानघन (स्वयं) मूर्छित हुआ होने से उस प्रकार के भाव का कर्ता प्रतिभासित होता है। क्या कहा? अरे, भगवान! अमृत विज्ञानघन के भान बिना उस शरीर में मूर्छित, 'शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, यह चलता हूँ, वह मैं, मेरी प्रेरणा न हो तो शरीर न चले, प्रेरणा करूँ तो चले,' ऐसा जो अज्ञानी मूढ़ जीव शरीर की अवस्था की दशा को और अन्दर विकल्प राग उठे, उसे कर्ता होकर अपने स्वरूप में विकार और पर का एकपना खतौनी करता है और मानता है। गजब बातें परन्तु, भाई! समझ में आया इसमें?

कहते हैं, **उस प्रकार के भाव का...** जो जो विकल्प उठे, वृत्ति हो, उसे रचता हूँ, करता हूँ, बनता हूँ, होता हूँ, परिणमता हूँ—ऐसी दृष्टि मिथ्या अज्ञानी को पुण्य और पाप के विकल्प उठे उसका कर्ता अज्ञानी अमृतघन विज्ञान की दृष्टि छोड़कर शरीर की क्रिया और राग की क्रिया में मूर्छित हो गया है। उसके कारण अनादि संसार पड़ा है। समझ में आया? यह चैतन्य विज्ञानघन की दृष्टि से देखें तो कहते हैं कि उसमें भेद हम किस दृष्टि से कहें? भेद-बेद है। पर्याय है सही, हों! नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु यहाँ उसका अभाव

गिनकर, मुख्यपने की स्वभाव की दृष्टि में उसका अभाव है, इसलिए उसे क्या गिने अवस्था को ? पूरा प्रभु पड़ा है और पूर्णानन्द की मिश्री की डली पूरा है। इसी प्रकार चैतन्य आनन्द रसपूर्ण है, आदि-अन्तरहित तत्त्व है विकार, शरीररहित। वर्तमान अवस्था का लक्ष्य छोड़कर पूर्ण है, उसे भेद किस प्रकार से देखे ? कहो, समझ में आया इसमें ? यह ४७ हुई। अब ४८ (गाथा)।

यह तो हमारे भाई ने पूछा था जमुभाई ने कि बहुत महिमा ! उसका पार ? कि पार हो, उसे महिमा नहीं कही जाती और महिमा हो, उसका पार आता नहीं। जिसका स्वभाव... आहाहा ! जिसे चैतन्यचमत्कार कहते हैं। श्रीमद् तो कहते हैं एक वाक्य में 'सृष्टि को गुप्त चमत्कार चैतन्य की खबर नहीं।' गुप्त चमत्कार चैतन्यबिम्ब प्रभु अन्दर पूरा पड़ा है। समझ में आया ? 'तिनके के आड़ में पर्वत रे पर्वत कोई देखे नहीं,' तिनके के आड़ में पर्वत। पर्वत तो विशाल ऐसा होता है। वह तिनका इतना चौड़ा रखा हो। गन्ने का डण्ठल होता है न डण्ठल ? यहाँ तो काठियावाड़ी स्पष्ट भाषा अपनी यहाँ। वह डण्ठल नहीं होता गन्ने का सूखा। ऐसे रखा हो आड़ा तो पूरा पर्वत नहीं दिखाई देता। पर्वत चला नहीं गया। आगे रखे तो जरा इतना इस ढांक को (तो) कुछ दिखाई दे, परन्तु ऐसा जितने में... ऐसा चैतन्य प्रभु पूरा आनन्दकन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसे एक पुण्य और पाप के राग की आड़ के तिनके में, तिनके में पूरा चैतन्य बिम्ब अन्दर दिखता नहीं। मनसुखभाई ! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों ! लॉजिक से बात चलती है, ऐसा का ऐसा कुछ गड़बड़ घचड़पचड़ नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : सवेरे का तो ऐसा कुछ लगे, भाई ! वह तो जरा। वाणी ऐसी है और वाणी का था न ! वाणी में ऐसा आवे। यह उत्तमचन्दभाई ने गाया नहीं था उसमें ? 'अविद्या की आड़ में रे आवृत मेरा आत्मा जी, इस अविद्या की आड़ में आवृत हुआ' कर्म से नहीं। अपने चैतन्य के अज्ञान और बेभान से। 'अविद्या की आड़ में रे आवृत मेरा आत्मा जी।' यह ज्ञान के नेत्र को अन्तर से देखने पर उसे आवरण और अज्ञान कुछ है ही नहीं। ऐसा भगवान पूर्ण स्वभाव को नजर में लेना, उसे भगवान सम्यग्दर्शन और धर्म कहते हैं। तब से धर्म शुरु होता है, फिर स्वरूप में लीनता होने से आनन्द के उस

अतीन्द्रिय आनन्द के, जैसे फब्बारे को ऐसे दबाने से फब्बारा फूटे चारों ओर से, उसी प्रकार रस चैतन्य अन्दर पड़ा है, उसमें एकाग्रता का जितना दबाव आवे, उतने आनन्द के रस का झरना बहे, उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया ? वह चारित्र यह वस्त्र बदले, यह किये और धूल की, वह चारित्र-फारित्र नहीं। आहाहा! तुझे चारित्र क्या, इसकी खबर नहीं। सम्यग्दर्शन क्या, खबर नहीं और चारित्र लेकर बैठे कि हमारे चारित्र। अब सुन न! चारित्र का मुख कैसा होता है, यह तूने सुना नहीं।

चारित्र अर्थात् चरना। आनन्दकन्द अभेद चैतन्य दृष्टि में लेकर, फिर उसमें स्थिर होकर अतीन्द्रिय आनन्द का रस अतीन्द्रिय आनन्द का रस बहे, जिसके स्वाद के समक्ष पूरी दुनिया सड़ा हुआ तिनका (लगे), इन्द्र के इन्द्रासन (सड़े हुए तिनके जैसे) लगे, ऐसी आनन्द की जमावट जहाँ अन्दर में जमे, उसे त्रिलोकनाथ परमात्मा चारित्र कहते हैं। ऐई! मनसुखभाई! कभी सुनी न हो, वाँचने में आयी न हो यह। ऐसी दया पालो, यह व्रत करो, उसे न मारो, यह ढींकणा हो गया और हो गया चारित्र। ऐई! मणिभाई! यह सब वकीलों ने ऐसे गप्प मारे हों। कोई कहे उसे हाँ... हाँ... कहे। मणिभाई! ऐसा होगा या नहीं? किसी का लेख आवे। यह पुस्तक एक बार देखी थी तो गप्प मारे थे उसमें। मणिभाई का नाम था उसमें। कुछ लिखा था अन्दर। मैंने पढ़ा था उसमें। गप्प ही गप्प। कहा, यह वकील इसमें गप्प मारते हैं।

अरे! भगवान! चैतन्य की वकालत तो कोई अलौकिक है। उसे जिसने चैतन्य के धाम देखे नहीं और चैतन्य के धाम में क्या-क्या पड़ा है? समझ में आया? ऐसी दृष्टि का विषय जो आत्मा जिसने लक्ष्य में लिया नहीं, उसे क्या खबर पड़े कि सम्यग्दर्शन क्या और चारित्र क्या और तप क्या? वह कहे, भगवान ने बारह वर्ष के तप किये थे न। बारह-बारह महीने में खाया। सुन न अब! खाया नहीं था, वह तप नहीं। आहाहा! यह आनन्द की, अतीन्द्रिय आनन्द की....

मिश्री की डली पर मक्खी बैठी हो, उसकी मिठास के कारण लड़का पाँच-दस डली रोटी में लेकर बैठा हो। चार खाये गये हों और दूसरे दो-तीन हों तो कुछ... उसे वह पंख चिपटे। लेने जाये डली वह लड़का, पंख चिपटे तो छोड़े नहीं स्वाद के कारण। वह फिटकड़ी की डली पर बैठी हो तो स्वाद न आवे, इसलिए एकदम उड़ जाये, इतनी

डली हो तो भी। इतनी डली हो परन्तु मक्खी जैसा जन्तु छोटा, जिसे चार इन्द्रिय है, मन भी नहीं, कान भी नहीं, परन्तु जिसे स्वाद का अन्तर पड़ा है, वह चीनी का स्वाद और फिटकड़ी के स्वाद का जिसे अन्तर पड़ा है। उसी प्रकार जहाँ सम्यग्ज्ञान में आत्मा का अमृत स्वाद और राग का कलुषित मलिन फिटकड़ी जैसा स्वाद (आया है)। समझ में आया इसमें? यह क्या होगा?

अगमनिगम की बातें करना और फिर समझ में आया, समझ में आया? कहना। कुछ समझ में आया? अरे भगवान! अगमनिगम की नहीं, तेरे घर की है यह। यह तो आठ वर्ष का बालक भी आत्मभान पावे, तब ऐसा होता है। पशु-पशु। उस पशु के चमड़े में—शरीर में रहा हुआ भगवान जहाँ भेदज्ञान करके चैतन्य को निहारे, देखे, अनुभव करे। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस ले। भले चमड़ा शरीर का हो ऊपर हाथी का या पशु का। सिंह, बाघ हो, मनुष्यक्षेत्र के बाहर ऐसे असंख्य जीव पड़े हैं कि जिन्हें आत्मभान के रसवाले और मगरमच्छ और सिंह, बाघ शरीर। शरीर के कारण चमड़ा ऊपर लिपटा हुआ भिन्न-भिन्न प्रकार का, इसलिए कुछ भगवान भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वभाव हो जाता है? ऐसा आत्मा, कहते हैं, वास्तव में प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि में आनन्द का रस लेते हुए जिसे दुनिया के विषय के भोग-स्वाद जिसे तुच्छ-तुच्छ लगे। वह सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में रहे, छियानवें हजार स्त्रियों में पड़ा दिखाई दे, परन्तु वह राग आवे, वह फिटकड़ी का स्वाद, अन्तर दृष्टि में आनन्द को अनुभव करता है, वह आनन्द का स्वाद, दोनों का जहाँ मिलान करे, वहाँ उसकी तुच्छता लगती है। समझ में आया? यह गृहस्थाश्रम में रहे की बात चलती है, भानुभाई! यह भानु-सूर्य पड़ा है अन्दर।

यह दिखाते हैं न। किसकी आँख से देखना है यह? वह कहे... यह रहा। आँख बन्द रखकर यह रहा। परन्तु किसे देखना? आँख तो इसे उघाड़े तब दिखाई दे या नहीं तो देखे कौन? सोना के नरिया हुए, आँख उघाड़। यह सूर्य उगता है तब वह आठ बजे उठता न हो, एक कमरा हो उसमें एक दरवाजा हो। नरिया तीन पट्टा डाला हो ऐसा। हवा न आवे, तीन पट्टा। उसमें सूर्य आठ बजे (उगे तो कहे), सोना का नरिया अर्थात् पीला (नरिया दिखाई दे)। ... उघाड़ तो सही। उसमें कीचड़ लगा हो ऊपर वापस।

आँख बन्द कीचड़ (आँख का), एक कमरा, एक दरवाजा, ऊपर तीन पट्टा नरिया, उसमें धूप दिखाई दे कैसे इसे ? मनसुखभाई ! इसी प्रकार भगवान आत्मा राग और पर की क्रियारहित का चिदानन्द, उसे 'राग मेरा, शरीर मेरा, पुण्य का कर्ता मैं, उसका कर्ता मैं, उसका भला कर दूँ, बुरा कर दूँ' ऐसे जो विकल्प, उसकी आड़ में उसे चैतन्य के सूर्य का प्रकाश दिखता नहीं। समझ में आया ? प्रभुभाई ! लो, यह श्लोक पूरा हुआ अब, हों ! पौन घण्टा तो हुआ लगभग। ऐई चन्दुभाई !

अब ४८। और यह,... गाथा तो कल बोल ली गयी है, भाई ! और यह कार्यसमयसार में... अर्थात् क्या ? कि आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द है, उसकी जिसे दशा, दशा में जैसे तिल में से तेल पृथक् पड़ गया, चौंसठ पहरी चरपराहट जैसे प्रगट हो गयी, उसे ऐसा आत्मा में जो आनन्द और ज्ञान जिसकी दशा में, हालत में, पर्याय में, अवस्था में प्रगट हो गये, ऐसे केवलज्ञानी परमात्मा को कार्यसमयसार कहा जाता है। जिसके कार्य पूर्ण हो गये। कार्य कैसे होंगे यह ? यह सब कार्य पूरे। जगत के कार्य पूरे होते नहीं और अधूरे रहते नहीं। भानुभाई ! क्या कहा ? मरे तब तक पूरे होते नहीं और पीछे अधूरे रहे उन्हें करनेवाला निकले दूसरे राग आदि के करनेवाले। धूल में भी तुम कुछ करते नहीं। मात्र राग और द्वेष करते हो। एक रजकण की पलक फिरे, वह आत्मा के राग के अधिकार की बात नहीं। ऐसे फिरे वह जड़ की पर्याय क्षेत्रान्तर होती है। यह बातें बहुत सूक्ष्म हैं।

कहते हैं, जैसे कार्यसमयसार। भगवान आत्मा पूर्ण जिसे दशा में प्रगट हुआ, केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द पूर्ण वीर्य। और कारणसमयसार में... अर्थात् यह वस्तु जो कही त्रिकाल शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... द्रव्यस्वरूप, वस्तुस्वरूप, वस्तुस्वभाव त्रिकाल एकरूप शुद्ध। यह कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। यह वस्तु में भी शुद्धता है, ऐसी प्रगट हुई में शुद्धता है। दोनों में अशुद्धता कहीं है नहीं। दोनों समान हैं। आहाहा ! जिस प्रकार लोकाग्र में... जो कोई आत्मा की पूर्ण शुद्धता, पूर्ण आनन्दता और परमात्मदशा हो उसे... रहते हैं अपने स्वभाव में, परन्तु बाह्यक्षेत्र में उसका स्थान होता है। सर्व व्यापक न हो जाये। देहदेवल में विराजमान अपनी सत्ता देह प्रमाण रखता है वह। समझ में आया ?

यह जब पूर्ण शक्ति का भान करके पूर्ण दशा प्रगट हो, तब जैसे अग्नि का धुँआ ऊँचे जाने का स्वभाव है, उसी प्रकार आत्मा पूर्णानन्द की प्राप्ति देहदेवल में भिन्न पड़कर परमात्मदशा जिसे अरिहन्त और सिद्धदशा कहते हैं, ऐसी जहाँ अन्दर सिद्धदशा हो, वह लोकाग्र में, लोकाग्र में रहते हैं। लोकाग्र और क्या ? उसका भी विवाद सब। यह चौदह ब्रह्माण्ड है संग्रहात्मक जिसमें जड़ और चैतन्य का स्वरूप है, ऐसे लोकयंति इति लोक। जिसमें जड़ और चैतन्य भिन्न-भिन्न भासित हों। भासित हो, लोकयंति ज्ञान में, उसे लोक कहते हैं। ऐसा असंख्य योजन में चौदह ब्रह्माण्ड है। उसके चारों ओर खाली (आकाश), देखो! खाली... खाली... खाली... खाली... खाली... खाली... खाली... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसा का ऐसा आकाश पड़ा है। वह खाली अनन्त आकाश और भरपूर उसके अन्त में, लोक के अन्त में, उसे लोकाग्र कहते हैं। समझ में आया ? वे **लोकाग्र में...** लोक के अग्र में।

श्रीमद् में आता है न कुछ शब्द, नहीं ? 'लोकसंज्ञा से लोकाग्र में नहीं जाया जाता।' ऐई ! आता है न या नहीं लक्ष्मणभाई ? लोकसंज्ञा से लोकाग्र में नहीं जाया जाता। सत्संग बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है। गम पड़े बिना आगम अनर्थकारक हो जाते हैं। गम पड़े बिना (अर्थात्) यह शास्त्र क्या कहते हैं, यह गज के आँक सूझते नहीं और कल्पना से पढ़े, वह गम पड़े बिना आगम सर्वज्ञ परमात्मा के शास्त्र क्या कहते हैं, यह समझ नहीं आती। और लोक की संज्ञा रखकर सिद्धपद और लोकाग्र में जाया जाये यह तीन काल में नहीं होता।

यह लोक अग्र एक स्थान है। जैसे यह स्थान है न यहाँ ? उसी प्रकार लोक पूरा होता है, परन्तु ऐसा कुछ पूरा होता है या नहीं ? ऐसा और ऐसा, ऐसा ऐसा भरपूर। अनन्त... अनन्त... अनन्त... योजन में नहीं। असंख्य योजन के... यह पुरुष जैसा खड़ा हो, पुरुष खड़ा हो, उसका गोलाकार जो ऐसे फिरता फुदड़ी का ऐसा यह लोक का आकार है। चौदह ब्रह्माण्ड जिसे भगवान के ज्ञान में, सर्वज्ञ के ज्ञान में देखा है। उस लोक के अन्त में सिद्ध परमेष्ठी भगवन्त, यह णमो सिद्धाणं आता है या नहीं ? ऐई ! भानुभाई ! भगवान जाने णमो सिद्धाणं कहाँ होगा ? देखो, है ? टीका है, देखो ४७वीं।

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी... सिद्ध परमात्मा अपनी दशा को प्राप्त भगवन्त महिमावन्त निश्चय से... वास्तव में पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण... उन्हें पाँच शरीर नहीं। परमात्म पूर्ण दशा विदेही दशा हुई, उन्हें पाँच शरीर नहीं। अशरीरी है,... अशरीरी है। ऐसा ही यह आत्मा अशरीरी है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! तुलना करना। जैसे पाँच शरीररहित। पाँच शरीर का 'प्रपंच' शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? पंच शरीर, पंचाभाव अशरीरा। प्रपंच का अभाव है। अशरीरी जैसे परमात्मा हैं, वैसा ही यह आत्मा शरीर से पार अशरीरी है। शरीर को और आत्मा को स्पर्श नहीं। क्या कहा और? यह आत्मा शरीर को छूता नहीं अन्दर।

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब की बात कहाँ चलती है यहाँ? डॉक्टर क्या करे सब? गप्प गप्प माने। वे यह सब डॉक्टर बैठे हैं यह देखो न, प्रवीणभाई और यह सब क्या है? उसमें रजकण है, उसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है। रंग, गन्ध, रस और स्पर्श है। भगवान आत्मा में रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। इसलिए जिसमें स्पर्श नहीं, वह स्पर्श कैसे? अरे! परमाणु में स्पर्श होने पर भी दूसरे परमाणु को स्पर्शता नहीं, छूता नहीं, ऐसी बातें अगम्य है।

यहाँ कहते हैं कि जैसे सिद्ध भगवान अशरीरी, एक बार नजर कर, मैं भी एक अशरीरी हूँ। मुझे शरीर नहीं और जिसे शरीर, वह मैं नहीं। आहाहा! तो इस शरीर से कितना काम लेना? मनसुखभाई! वहाँ तीन महीने पड़े रहे थे। वहाँ आफ्रीका में एक व्यक्ति। दूसरे डॉक्टर थे। घूमना नहीं। हृदय शिथिल पड़ गया है, हार्टफेल हो जायेगा। चलो भाई। भानुभाई! यह तो इनका दृष्टान्त देते हैं। सबको ऐसा ही होता है न बहुतों को। यह मणिभाई कहते थे, एक मिनिट पड़े रहना, उसके बदले कितने वर्ष से ऐसे के ऐसे। उठने जाये परन्तु क्या करे? अँगुली चले नहीं। वह तो जड़ की पर्याय, प्रभु! उस पर्याय की अवस्था आत्मा नहीं कर सकता, उसे नहीं रोक सकता, उसे नहीं बदल सकता। जड़ का शरीर का धर्म जीवपद में ज्ञात होता है। यह कहना, वह व्यवहार है। शरीर की पर्यायें मिट्टी की जो होती है, वह ज्ञान जाने कि ऐसा होता है। करे रोग या उसे

टाले, यह आत्मा के स्वभाव में तीन काल में नहीं। ऐसे आत्मा को नजर में लेना और प्रतीति में लेना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं, ... क्या कहते हैं? सिद्ध परमात्मा अशरीरी हुए, उन्हें नर अर्थात् यह मनुष्य का देह, नारकी का देह। नीचे एक नारकी है, हों नीचे। माँस खाये, मदिरा पीवे, अधर्म करे, महा लम्पटपना करे, वह मरकर उसके परिणाम में उग्रता होती है भाव में, इसलिए जितनी उग्रता कड़कता पाप की है, उतनी ही उग्रता जिस जगह दुःख भोगने का स्थान, उसे नरक कहा जाता है। नरक अर्थात् विस्ता (कल्पना) नहीं, हों, एक गति है। जितनी उग्रता यह पाप के परिणाम क्रोध, मान, कपट, लोभ, विषयभोग तीव्र-तीव्र किये, खूनाखूनी ऐसे भाव, उस भाव का जितना प्रतिकूलता दूसरे को दी, उतनी प्रतिकूलता जिस स्थान में हो, वहाँ उपजे उस स्थान को नरकयोनि कहते हैं। वह नरक शरीर और नारकी शरीर सिद्ध को नहीं। इसी प्रकार आत्मा को भी नहीं।

नरक में रहे हुए नारकी जीव हैं। सम्यग्दृष्टि श्रेणिक राजा। भगवान के समय में एक श्रेणिक महाराजा हुए। हजारों रानियाँ आदि थीं। हमारे में वह नहीं और उनमें हम नहीं, ऐसा भेदज्ञान अन्तर अनुभव दृष्टि सम्यक् हो गयी। कहते हैं कि वह ऐसा जानता है कि शरीर हमारे नहीं, हम नारकी नहीं। नारकी और नर के देह, जैसे सिद्ध को नहीं, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा में वह देह मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

नर-नारकादि... अर्थात्? पशु और स्वर्ग के देह है। बहुत पुण्य होता है पुण्य, तो उसके फलरूप से (देव होता है)। साधारण पुण्य हो तो मनुष्य होता है, विशेष पुण्य हो तो स्वर्ग होता है, परन्तु वह सब नाशवान देह है। स्वर्ग के देव एक गति है। जैसे यह मनुष्यगति, पशुगति, नरकगति और स्वर्गगति—ऐसी पर्यायें अर्थात् शरीर की दशाओं के त्याग-ग्रहण। एक शरीर को ग्रहण करना और दूसरे को छोड़ना, यह सिद्ध में नहीं है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में भी यह ग्रहण किया मनुष्य का देह ग्रहण किया और दूसरा मनुष्य क छूटा, यह आत्मा में नहीं। इस कारण से परमाणु का संयोग हो और पूर्व स्थिति छूट जाये। आत्मा में उसका ग्रहण और त्याग (नहीं है)। आत्मा शरीर ग्रहे और आत्मा शरीर छोड़े, ऐसा है नहीं। आहाहा! कब की बात होगी यह? यह तो कहते हैं

न, सिद्ध भगवान है ऐसा अन्तिम शब्द कहा, उसी प्रकार संसार में। अन्तिम शब्द है। अन्तिम लाईन का अन्तिम। यह सब बात हम सिद्ध की कहते हैं परमात्मा की (कहते हैं), ऐसा ही यह संसारी जीव ऐसा है अन्दर वस्तु से। **किसी नय के बल से...** ऐसी भाषा करेंगे, भाई! किसी नय के बल से अर्थात् स्वभाव दृष्टि के बल से उसे शरीर ही नहीं। आहाहा! शरीर कैसा? यह तो मिट्टी है। जीव को शरीर! शरीर को जीव! यह शोर मचाते हैं न अभी कितने ही पण्डित चिल्लाहट मचाते हैं, लो! जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होता है, मरे हुए से नहीं होता। अरे! भगवान!

मुमुक्षु : बन्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध होता है। उससे बन्ध होता है। अरे! तेरे भाव से बन्ध और तेरे भाव से मुक्ति। तेरे परिणाम हों, तत्प्रमाण चार गति और शुद्धता का भान होकर आत्मा की दशा प्रगट होती है, वह मुक्ति का कारण है। बाकी पर के कारण बन्ध और मुक्ति तीन काल-तीन लोक में है नहीं।

कहते हैं कि जैसे सिद्ध भगवान नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,... ऐसे संसारी जीव शरीर के त्याग-ग्रहणरहित अन्दर स्वरूप से स्थित भगवान हैं। दशा में भले मलिनता हो, परन्तु उसे यह ग्रहण किया नहीं, उसे त्यागना भी नहीं। वह तो स्वरूप है वैसा है। ओहोहो! **परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ...** कौन? कहते हैं, सिद्ध परमात्मा। यह परम तत्त्व में आत्मा, उसमें सहजदर्शन आदि ज्ञानादि गुण ऐसे कारण अन्दर गुणों को युगपद जानने को समर्थ सिद्ध भगवान हैं। अपने अनन्त गुणों को जानने में सिद्ध भगवान एक समय में समर्थ हैं।

ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं... जिन्हें संशय है नहीं। **ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं...** वे भगवान सिद्ध परमात्मा अतीन्द्रिय हैं। यह ऐसा आत्मा अतीन्द्रिय है। आहाहा! इन्द्रियाँ नहीं, शरीर नहीं, नरक का देह नहीं। **सहजज्ञानज्योति द्वारा...** जैसे सिद्ध भगवान अपने अनन्त गुण को देखते हैं, वैसे यह आत्मा के स्वभाव सहज ज्ञान द्वारा अपने अनन्त गुण को देखते हैं, ऐसा यह आत्मा है। मन से जाने, इन्द्रिय से जाने, ऐसा आत्मा नहीं। कहो, समझ में

आया इसमें? यह अतीन्द्रिय है। जरा बात इससे भी थोड़ी...

मलजनक क्षयोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण 'निर्मल' हैं... सिद्ध भगवान। परमात्मा को कुछ उघाड़ और कुछ विघ्न, ऐसा भाव सिद्ध को है नहीं। यह ऐसा आत्मा भी ऐसा है अन्दर। आहाहा! यह बात किस गज से मापना? समझ में आया? कहते हैं कि, बापू! ज्ञानी के गज ही अलग प्रकार के हैं। सम्यग्दृष्टि के गज अन्तर के माप के माप से ऐसे गज हैं। अज्ञानी के गज संयोग और राग को अपना माने, ऐसा अज्ञान गज। कहते हैं, अतीन्द्रिय ऐसा यह भगवान, वह मलविभावस्वभाव। क्षयोपशम को भी विभावस्वभाव कहा, भाई! आहाहा! कुछ विकास और कुछ न्यूनता या विघ्न, वह कहते हैं कि यह भाव सिद्ध को नहीं है। यह ऐसा वास्तव में तुझमें भी नहीं है। आहाहा! दृष्टि शरीर की तो छोड़, राग की तो छोड़, परन्तु क्षयोपशम कुछ विकास अंश है, उसकी दृष्टि छोड़। वह तो परमपारिणामिक चिदानन्दस्वभाव की दृष्टि है। आहाहा! अभी मस्तिष्क में, दिमाग में बात पहले आवे तो संग्रह कर सके नहीं। और आवे तो डूब जाये अन्दर। कोरे सकोरे में बूँद गिरे, कोरे सकोरे में, ऐसे यह सकोरे में पड़े। यह सकारो है न, देखो न यह। जैसे अभी सत्य के न्याय आवे कि क्या कहते हैं यह? गुम हो जाये अन्दर।

भाई! तू चैतन्य प्रभु है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही तू अन्दर निर्मल है। यह शरीर नहीं, राग नहीं, उदय नहीं, परन्तु क्षयोपशमभाव, वह तू नहीं, उतना तू नहीं। उसे शुद्धभाव कहा जाता है। यह अधिकार शुद्धभाव का चलता है। यह शुद्धभाव। आहाहा! जिसमें यह निर्मलता में कुछ भेद ही नहीं। ऐसा आत्मा अन्दर, उसकी प्रतीति और अनुभव करना, उसका नाम धर्म कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं;... यह सिद्ध को जड़कर्म नहीं, विकार नहीं, ऐसा यह आत्मा भी द्रव्यकर्म और विकाररहित चैतन्य शुद्ध है, ऐसे परम आनन्द की मूर्ति परमस्वभाव की दृष्टि करना, उसका नाम धर्म कहा जाता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - १७-०२-१९६४

श्लोक - ७२, गाथा-४९, प्रवचन नं. ४०१

यह नियमसार जीव अधिकार, शुद्धभाव अधिकार है। इसकी ४८ गाथा का कलश है। ४८ गाथा पूरी हुई। ७२वाँ कलश।

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
 शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
 इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सददृक् स्वयं,
 सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम् ॥७२॥

क्या कहते हैं ? जो कोई सम्यग्दृष्टि जीव अर्थात् ? यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध आनन्द और पवित्र के धामस्वरूप भगवान को शुद्ध स्वरूपदृष्टि से जानता है, वह कारणतत्त्व कहलाता है और उसमें से प्रगट हुई निर्मलदशा को कार्यतत्त्व कहते हैं। सम्यग्दृष्टि अर्थात् धर्मी की पहली श्रेणी धर्मी का, वह आत्मा में अनन्त गुण है उसमें शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को तो... होती नहीं। जरा बहुत सूक्ष्म बात की है। देखो, कहते हैं कि मैं एक आत्मा शुद्ध हूँ और अशुद्ध भी हूँ। अशुद्ध एक समय का विकृत भाव गुण में, द्रव्य में नहीं। एक समय की विकृत पर्याय, वह और शुद्ध, ऐसी दो की एकता मानता है, ऐसी विकल्पना अर्थात् विपरीत कल्पना करता है, खोटी मान्यता करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। क्या कहा, समझ में आया इसमें ?

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... विपरीत मान्यता अर्थात् कि त्रिकाल वस्तु शुद्ध है एक समय में। आनन्द और ज्ञान का अनन्त गुण का धाम शुद्ध, ऐसे को मैं शुद्ध और एक समय की विकृत पर्याय अशुद्ध, ऐसा मिलकर मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। मगनभाई ! शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... विपरीत मान्यता है। शुद्ध चैतन्यपिण्ड के साथ अशुद्धता का एक समय का विकल्प संसार, इन दोवाला उसे मानना मिथ्यादृष्टि है। गजब व्याख्या भाई सम्यग्दर्शन की ! कहो, समझ में आया इसमें ? देहादिवाला तो नहीं,

कर्मवाला नहीं, उसकी कर्म और देह की क्रियावाला नहीं, परन्तु एक समय का एक मलिन अंश जो उदयभाव, एक समय का मलिन और त्रिकाल शुद्ध, ऐसी दो की एकत्वरूप से विकल्पना-विपरीत मान्यता से ऐसे आत्मा को मानता है, उस मिथ्यादृष्टि को हमेशा ऐसे विकल्प होते हैं। आहाहा! भारी सूक्ष्म! ऐई, रतिभाई! दोनों रतिभाई साथ में बैठे हैं, देखो! एक पोरबन्दर और एक राजकोट। क्या कहा? जिसे विकार और स्वभाव की एकता की रति है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

प्रभु! अभी सम्यग्दर्शन की बात चलती है, हों! सम्यक्, सत्यदृष्टि, सच्ची दृष्टि, उसे कहते हैं कि जो त्रिकाल चैतन्य शुद्ध, जिसमें अशुद्धता की गन्ध नहीं, जिसकी वस्तु में और उसके स्वभाव में मलिन का विकल्प उदयभाव जिसे संसार कहते हैं, एक समय का संसार एक समय, सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में एक समय, वह संसार, उसे और इस शुद्ध को दोनों को एक मानकर विकल्पना—मिथ्या शंका—अनिश्चय शंका—खोटी मान्यता करता है, वह मिथ्याश्रद्धा मिथ्यादृष्टि को होती है। ओहोहो! कहो, समझ में आया इसमें? शुद्ध-अशुद्ध की जो कल्पना अर्थात् विकल्पना, विपरीत कल्पना, खोटी मान्यता। शुद्ध के साथ एक समय के विकार को कहाँ मिलाया तूने, कहते हैं। त्रिकाल भगवान परमानन्द की मूर्ति ज्ञाता-दृष्टा का कन्द रसकन्द पिण्ड है, उसके साथ एक समय का विकल्प और दोनों को मिलाकर विपरीत मान्यता करता है, वह शंकावाला है। यह भेद करनेवाला है, वह मिथ्यादृष्टि है। उस मिथ्यादृष्टि को ऐसी कल्पनायें बारम्बार आया करती है। ऐई, मगनभाई!

सम्यग्दृष्टि को तो... सत्यदृष्टिवन्त को तो, सच्ची दृष्टिवन्त को तो हमेशा... समय-समय में निरन्तर (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व... शुद्ध चिदानन्द अनन्त आनन्द का कन्द ऐसा कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व... यह शुद्धता के कारण में से शुद्ध कार्य प्रगटे, ऐसा वह आत्मा है। शुद्ध कारण है और उसका शुद्ध कार्य है। शुद्ध कारण है और उसका अशुद्ध कार्य है—ऐसा हो नहीं सकता। ऐसा जरा एक समय का विकल्प संसार, बाकी दूसरा आत्मा में कुछ नहीं होता। शरीर, वाणी, कर्म का सम्बन्ध तीन काल, तीन लोक में जीव को नहीं। परन्तु एक समय का विकृतपने का मलिन अंश, उसे और शुद्ध को दो की विकल्पना—खोटी मान्यता मिलाकर करता है, वही मिथ्या—

असत्यदृष्टिवन्त—झूठी दृष्टिवन्त—पाखण्ड दृष्टिवन्त है वह।

मुमुक्षु : मिलाकर अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलाकर अर्थात् दोनों एक है, ऐसा। यह है और यह है, यह है और यह है। यह ऐसा नहीं, अकेला शुद्ध ही है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन की व्याख्या लोगों ने तो बहुत संक्षिप्त कर डाली थी। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करना और नौ तत्त्व को मानना, भगवान को सच्चा मानना। त्वमेव ... यहाँ कहते हैं कि निःशंक तब कहलाता है... शंका है न भाई सामने ? कि त्रिकाल शुद्ध वस्तु एक समय में पूर्णानन्द का कन्द, वह कारण और उसका निर्मलरूपी कार्य—द्रव्य का कार्य निर्मल होता है, इन दो को जो माने, उसे निःशंक कहा जाता है। समझ में आया ? उसे सम्यग्दृष्टि का निःशंकपना कहा जाता है। आहाहा! ऐई, रतिभाई! कहाँ गया यह सब ? यह क्रिया का क्या हुआ ? गले उतरना कठिन पड़ता है, लो। यह उपाय भी उतारना पड़ेगा, यदि इसे सम्यक्-सत्य मानना हो तो। खटकता है जगत को क्या ? यह कहीं दया का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का जो विकल्प उठता है न, वह कुछ न कुछ मुझमें है या नहीं ? एक अंश में है, वह मुझमें है तो मेरा अर्थात् शुद्ध। उसमें अशुद्ध को मिलाकर मान्यता करता है कि यह दोनों हम हैं। मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। बहुत बात ! है, और होकर जायेगा कहाँ ? है न, उसमें होना था कहाँ ? समझ में आया ?

यह तो सत्य की, सत्य की राह, परमात्मस्वरूप अपना ऐसा शुद्ध घन, उसके अन्दर में अशुद्ध और शुद्ध, शुद्ध और अशुद्ध, ऐसी मान्यता वह विकल्प के मिथ्यादृष्टि की विपरीत मान्यता और शंका है उसे। 'मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ और मेरा कार्य भी शुद्ध है' ऐसी उसे श्रद्धा नहीं, उसे दृष्टि नहीं। क्योंकि शुद्धता की खान में से शुद्धता का कार्य आता है। शुद्धता की खान में संसार का विकल्प आवे, ऐसा कोई गुण और द्रव्य में नहीं है। मगनभाई !

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनन्त-अनन्त गुण कहे थे सवेरे, ऐसे गुण का शुद्ध का एकरूप चैतन्य है। उसके एक समय का विकल्प, एक समय का दया, दान, भक्ति आदि का विकल्प या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग का अंश, वह अशुद्ध और शुद्ध दो हूँ... दो हूँ... उसकी पर्यायबुद्धि है, उसे वस्तु की बुद्धि

नहीं, इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! पुरानी रूढ़िगत और लकीरवाले हो गये हो न। उन्हें तो (ऐसा लगता है कि) यह नहीं? यह तो कहेंगे, है सुन न अब। है, वह तो व्यवहार का जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं।

इसलिए कहते हैं कि शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... खोटी मान्यता। परन्तु अशुद्धता नहीं ही? सुन न, एक समय की है, उसे त्रिकाल के साथ खतौनी करे तो मूढ़ है। समझ में आया? आहाहा! ऐई! चन्दुभाई! क्या यह सब? दुलार किया होगा ऐसा? दुलार किया है, नहीं कहते थे कल? यह तो कहा नहीं, भगवान ज्ञान की खान चैतन्य का सूर्य जहाँ चीज़ पड़ी है। ओहो! जिसके केवलज्ञान की पर्याय का कन्द पके जिसमें, काशीफल जिस वृक्ष का मूल छोटा, परन्तु जिसमें काशीफल पके, साकरकोळा अधमण-अधमण के, वहाँ वह कहीं कड़वा करेला पकता होगा? काशीफल के वृक्ष में—उसकी बेल में कहीं करेला पके? उसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय का अमृत का कुण्ड, ज्ञान का घनरस, उसमें से वह कहीं राग पके? शुभराग विकल्प, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का विकल्प, वह उसमें से पके? वह गुण और द्रव्य वह विकार की खान है? इसलिए जिसमें—गुण में, द्रव्य में विकार नहीं, उसे 'एक समय के विकारवाला और यह वाला दोनों हूँ'—ऐसी जिसकी मान्यता विकल्प में खोटी मान्यता है, उस मिथ्यादृष्टि को हमेशा ऐसी भावना रहा करती है।

सम्यग्दृष्टि को तो सदा... दोनों के लिये हमेशा कहा है। सदा (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व... मैं एक चैतन्यसत्ता स्वभावस्वरूप अनन्त-अनन्त शक्तियों की स्वच्छता से भरपूर तत्त्व, ऐसा तत्त्व जो आत्मा, वह कारणतत्त्व, कारणस्वरूप और उसका कार्य भी अत्यन्त शुद्ध, अरागी, वीतरागी, निर्विकल्प शान्तरस का जिसका कार्य, वह कारण और कार्य दोनों शुद्ध है, ऐसी सम्यग्दृष्टि की मान्यता है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! पर्याय को इकट्ठी ली है निर्मल को, हों! भाई! उस विकल्प पर्याय को दृष्टि में से छोड़ दिया। यह विषय नहीं। उसे इकट्ठा करके यह हूँ और यह हूँ, यह हूँ और यह हूँ, (ऐसा नहीं)। वस्तु शुद्ध त्रिकाल चिदानन्द मूर्ति ऐसा कारणतत्त्व और उसका कार्यतत्त्व जो केवलज्ञानादि, वे दोनों शुद्ध ही हैं। ऐसी ज्ञानी की सम्यग्दृष्टि की अन्तर में हमेशा की कायम मान्यता होती है। उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। कहो,

समझ में आया इसमें ? रतिभाई ! क्या इसमें आता है कुछ ? आहाहा !

मुमुक्षु : बाकी क्या रहता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाकी कुछ रहता नहीं, अकेला आत्मा ही रहता है। बाकी हुआ रद्द विकार। आहाहा !

पूर्ण प्रभु अकेला चैतन्यप्रकाश और आनन्द के रस से भरपूर तत्त्व, वह विकल्प की मलिनता के अंश की पर्यायबुद्धि अर्थात् कि अंशबुद्धि छोड़कर जिसने अंशी त्रिकाल आनन्द और शुद्ध की दृष्टि की, उसकी दृष्टि में कारण भी शुद्ध है, वह शक्तिवान तत्त्व भी शुद्ध है और उसका कार्य प्रगट होता है, वह भी शुद्ध है। जिसमें अशुद्धता है नहीं द्रव्य और उसके कार्य में। समझ में आया ? लो, आस्रव और बन्धतत्त्व के अंश को त्रिकाल स्वभाव के साथ कार्यतत्त्व में और कारण में वह मिलाता नहीं।

इस प्रकार... यह कहा इस प्रकार। अब न्याय देते हैं कि यह परमागम में ऐसा होगा ? शास्त्र में ऐसा होगा, यह बात करते हो वह ? सुन। **इस प्रकार परमागम के...** परम आगम। भगवान की वाणी त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की, जो पूर्ण तत्त्व का प्रकाश होने के पश्चात् विकल्प बिना, इच्छा बिना वाणी की ध्वनि निकलती है, उस वाणी को परम आगम कहा जाता है। उस आगम की रचना गणधरों ने की, ऐसे **परमागम के अतुल अर्थ को...** जिसकी उपमा नहीं, ऐसे अर्थ को परमागम में से ऐसा जो निकालता है, उन शास्त्र में से ऐसा जो निकालता है। आहाहा ! वाँच-वाँचकर पढ़-पढ़कर यह निकाला कि व्यवहार करनेयोग्य है और पुण्य विकल्प व्यवहार आता है, वह करनेयोग्य है, उससे आत्मा को कुछ लाभ होगा, यह कहते हैं कि तू परमागम के अर्थ को समझता ही नहीं। शास्त्र को क्या कहना है, दिव्यध्वनि में त्रिलोकनाथ परमात्मा को, यह **परमागम के...** यह परम आगम विशेषण दिया। अकेला आगम नहीं, परम आगम जहाँ सर्वज्ञ के मुख में से निकली हुई वाणी, उससे रचित परम आगम। उसका अतुल अर्थ। अतुल अर्थ। उसका प्रयोजन उसमें से अतुल, जिसकी तुलना निकले नहीं, ऐसा प्रयोजन अर्थ।

सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा... देखो, आहाहा ! ऐई, मगनभाई ! पाठ में है अन्दर, हों ! देखो, 'परमागमार्थमतुलं जानाति सद्वृक् स्वयं सारासारविचार-

चारुधिषणा 'चारु' अर्थात् सुन्दर। 'धिषणा' अर्थात् बुद्धि। ओहो! जिसने चार अनुयोगों—शास्त्रों और द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग सब उस परमागम के अर्थ, अतुल अर्थ उसमें से निकाला। ऐसे अर्थ के **सारासार के विचारवाली...** सार और असार के विचारवाली और वह भी 'चारु' 'चारु' अर्थात् **सुन्दर बुद्धि द्वारा...** सारासार की सुन्दर बुद्धि द्वारा **जो सम्यग्दृष्टि...** अपने आत्मा को कारणशुद्ध त्रिकाल उसे कार्यशुद्ध है, ऐसा परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा... जानकर निकाला है और वह **सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,**... ओहोहो! स्वयं अर्थात् जिसे विकल्प का अवकाश नहीं, गुरु और देव का लक्ष्य हो तो समझ में आये, ऐसी बात नहीं। समझ में आया इसमें? ऐसा जरा सी तो उकताहट इसे आ जाये यह वह भारी ऐसा कठिन कैसा होगा यह? भगवान! तेरे घर की बातें तो सरल, परन्तु कठिन कर डाली है। मान्यता से की और मान्यता विपरीतता ने घर डाला है। और मर गया क्रिया कर-करके, अपवास किये और दया की, व्रत पालन किये और भक्ति की तथा पूजा की। एक समय का भगवान जिसकी दृष्टि में शुद्ध आया, उसका कार्य भी शुद्ध ही वह मानता है। ऐसा कहाँ से निकाला? कहते हैं।

उस परमागम के अतुल... तुलना न हो, ऐसा अर्थ उसमें से निकाला है। ऐसे **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो...** आत्मा को कारण त्रिकाल परमानन्द शुद्ध और कार्य भी शुद्ध, ऐसा जो स्वयं अपनी सुन्दर ज्ञानबुद्धि द्वारा जानता है। ऐसा आत्मा, वह शुद्ध ही चिदानन्द है, उसका कार्य भी अत्यन्त शुद्ध है, ऐसा जो स्वयं जानता है। **उसे हम वन्दन करते हैं। 'वन्दामहे तं वयम्।'** आहाहा! लो, यहाँ सम्यग्दृष्टि को वन्दन करते हैं। ऐई... विवाद... विवाद... दिक्कत। मुनि हो तो ऐसा हो। अब सुन न! वह सम्यग्दृष्टि हुआ, वह केवलज्ञान का पुत्र हो गया। समझ में आया? वह सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए वह इनकार करे तो भी केवलज्ञान आये बिना रहेगा नहीं। परन्तु श्रीमद् ने कहा है न कि भाई! स्वीकार करना कि मैं सम्यग्दर्शन,... फिर सम्यग्दर्शन होगा तो केवलज्ञान होगा, होगा और होगा। फिर ना करेगा... ना तो किसकी करे परन्तु? उन्हें सम्यग्दर्शन का ऐसा बल बतलाना है। एक समय का भगवान सब छोड़, कहते हैं। जानपना और इतना जानपना। परन्तु समभाव रखे तो? किसका समभाव? लकड़ियों

का प्रहार पड़े और घानी में डालकर पीले और समभाव करे तो वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समभाव की व्याख्या समझता नहीं। समभाव अर्थात् सम्यग्दृष्टि का भाव। सम्यग्दृष्टि का भाव, वह त्रिकाल शुद्ध को कारण और त्रिकाली कारण में से कार्य शुद्ध आवे, दो को मान्यता मानता है, उसे यहाँ समभाव कहा जाता है। समभाव कहो या वीतराग दृष्टि कहो या वीतराग ज्ञाता-दृष्टापना कहो। यह गले उतरना पड़ेगा इसमें, रतिभाई! यह पोरबन्दर बहुत कहते हैं। नेमिदासभाई दोनों व्यक्ति नहीं ?

मुमुक्षु : समभाव की व्याख्या ही आपने उल्टी कर डाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात भी सच्ची है, बापू!

मुमुक्षु : किसलिए अलग करते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है, ऐसी करते हैं। कहा न यह, परमागम के अतुल अर्थ को सारासार... असार निकालकर सार सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि... अपने आत्मा को स्वयं उपादान से। मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ, आनन्द और पवित्र के धामरूप कारण हूँ और उसका कार्य भी शुद्ध ही है। अशुद्ध-फशुद्ध मेरे कारण में नहीं और मेरे कार्य में भी अशुद्धता नहीं। अशुद्धता कारण में नहीं तो अशुद्धता कार्य में आवे कहाँ से? वहाँ आया हुआ अशुद्धता का भाव, वह मात्र ज्ञाता का विषय है। जाननेयोग्य मेरी वस्तु के अन्दर वह है नहीं, ऐसा सिद्ध किया है। पुण्य-पाप, दया, दान का भाव और वह बन्धभाव जो भावबन्ध, वह अशुद्धता का अंश है। वह अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा, अबन्धस्वभावी आत्मा त्रिकाल जो अबन्ध 'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्टं अणण्णयं णियदं।' एक स्वरूप भगवान भावबन्ध और द्रव्यबन्ध से रहित, ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है, वह कारण और कार्य को शुद्ध ही स्वीकारता है, वह अशुद्धता का स्वीकार अपने स्वभाव के कार्य और कारण में कहीं मिलाता नहीं। ओहोहो!

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं व्यवहारमोक्षमार्ग। बिल्ली को बाघ कहा है। वह बिल्ली हो गयी बाघ? होता है न बाघ के जैसे उसके वे सफेद लाल। बिल्ली को होते हैं न ऐसे बाघ को होते हैं। वह मानो कि यह बिल्ली। यह तो उसे उपमा (दी) कि

देख ऐसा बाघ होता है। ऐसा करके बिल्ली को बाघ मान ले तो ? बाघ तो बाघ है। बिल्ली बाघ नहीं होती; इसी प्रकार विकल्प को आरोप करके मोक्षमार्ग राग को कहा, बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं। अकेले त्रिकाल कारणस्वभाव को और कार्य को शुद्ध माने, वह सम्यग्दृष्टि है। व्यवहार के विकल्प को मोक्ष का मार्ग अन्दर माने, वह मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : इसमें कहाँ लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें कहाँ लिखा है ? ऐई! इसमें है या नहीं ? मगनभाई! यह अस्ति से बात की है, उसमें से नास्ति कहो तो पहले कह दिया, शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;... यह उसमें आ गया। व्यवहारमोक्षमार्ग जो विकल्प राग का अंश है और त्रिकाल शुद्ध और कार्यशुद्ध है, उसमें शुद्धता में अशुद्धता मिलाकर मानता है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है। उसे सम्यक् सत्य के स्वभाव के स्वीकार की खबर नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा! है या नहीं परन्तु यह पुस्तक सामने रखी है या नहीं ? इस पुस्तक के शब्द में से अर्थ होता है या नहीं ? किसका (अर्थ) होता है यह ? आहाहा!

मुनि भी उछल गये हैं न अन्दर से। अन्दर स्वरूप की प्रभावना करते हैं। आहाहा! अकेला ज्ञान-दर्शन का पिण्ड। अरे! उसकी खान में भी कभी विकार की गन्ध नहीं कि विकार कार्य कहाँ से आवे ? कहते हैं। और विकारी कार्य और अविकारी कारण दो का स्वीकार (करनेवाला) मूढ़ है। वह व्यवहार भी राग और निश्चय यह, इन दोनों को एकरूप से स्वरूप के अस्तित्व में मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, उसे निश्चय-व्यवहार की किसी की खबर नहीं। गजब बातें, भाई!

ओहो! उसे हम वन्दन करते हैं। अपने आनन्द के प्रमोद में जिसका कार्य आनन्द का आता है और जिसके कारण में अकेला अतीन्द्रिय आनन्द है, उसे हम नमते हैं, ऐसा माने उसे। ऐसा करके अपना वन्दन करते हैं। लो, यह ७२ कलश हुआ। ४८ गाथा हुई। 'वाद विवाद करे सो अंधा। सद्गुरु कहे सहज का धंधा, वाद विवाद करे सो अंधा।' वाद-विवाद का यह विषय ही नहीं। जिसे भगवान आत्मा की भेंट करना है, चिदानन्द प्रभु ज्ञायक निर्विकल्प रस का कन्द, उसकी दृष्टि में अकेला निर्विकल्प शान्तरस है और

जिसके कार्य में भी निर्विकल्प शान्तरस है, वह व्यवहार के राग का अशान्त रस, वह उसके कार्य में कहाँ से आया ? कहाँ से आया ? कहाँ है ? कहते हैं । उसे परद्रव्यरूप से गिनकर और अपनी शुद्धता में सम्यग्दृष्टि खतौनी नहीं करता । अब ४९ (गाथा) ।

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु ।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा ॥४९ ॥

अब उड़ाया था, उसका जरा ज्ञान कराते हैं ।

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये ।

है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से ॥४९ ॥

इसकी टीका । यह अमृत धर्मकथा है । समझ में आया ? इसे धीरे-धीरे धीरे से समझना चाहिए । इसके समझे बिना इसका पार कहीं आवे, ऐसा नहीं है ।

टीका :- यह, निश्चयनय... अर्थात् कि त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द का कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों अभेद होकर निश्चय का विषय कहा अथवा त्रिकाल वस्तु को निश्चय का विषय कहा । एकरूप चिदानन्द पवित्र धाम भगवान् आत्मा, जिसमें अनन्त केवलज्ञान के काशीफल पके, ऐसा बीज है वह । यह निश्चयनय का विषय और व्यवहारनय और वर्तमान में भेद और विकल्प उठता है, उसे जानना, उसका नाम व्यवहारनय कहा जाता है । आदरणीय नहीं । वह उपादेयता का प्रकाशन (कथन) है । भाषा ऐसी है, देखो । दोनों उपादेय है, ऐसा कहा है । इसका अर्थ कि जैसे निश्चय को उपादेयरूप से जानना, वैसे व्यवहार को व्यवहाररूप से जानना, इसका नाम उपादेय कहा है ।

मुमुक्षु : समकक्षी है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : समकक्षी-फक्षी है नहीं । कितने ही कहते हैं कि भाई ! निश्चय और व्यवहार दोनों समकक्ष । देखो, यहाँ दो समकक्ष लिये । अरे, भगवान् ! ऐसा नहीं, भाई ! दो नयों का विषय विरोध, उसका फल विरोध, उसके समकक्षी नय कहाँ से हो सकते हैं ? एक त्रिकाल शुद्ध चैतन्य का स्वीकार करनेवाला एक ज्ञान और एक भेद और राग वर्तमान उठता है, वह है, इतना जाननेवाला । वह जानना, उसे यहाँ उपादेय

कहा है और त्रिकाली चीज़ को आदरणीयरूप से जानना, उसे उपादेय कहा है। मगनभाई! दोनों को उपादेय कहा है, देखो! नीचे कहा है, देखो। नीचे इसका अर्थ किया है अपने पण्डितजी ने।

प्रमाणभूत ज्ञान में... अर्थात् कि पर्याय के राग का ज्ञान और त्रिकाल वस्तु आनन्द शुद्ध का ज्ञान। त्रिकाल शुद्ध हूँ पवित्र अनन्तगुण का एकरूप और एक क्षण का विकार, उसके दोनों के ज्ञान में... प्रमाण अर्थात् दो का ज्ञान। यह **शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का—दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए**। मैं त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द हूँ, उसका कार्य भी शुद्ध है। तथापि वर्तमान में विकार जितना है, उतना उसे बराबर जानना चाहिए। समझ में आया इसमें? यदि मलिनता न हो तो पूर्ण आनन्द का अनुभव होना चाहिए और पूर्ण आनन्द का वर्तमान प्रगट अनुभव नहीं तो उसे अवस्था में राग और दया, दान विकल्पों की अस्ति की मलिनता ज्ञात होती है। ज्ञात होती है, उसे जानना चाहिए। है, वह 'है' ऐसा जानना, उसका नाम उपादेय। ऐसी बातें!

स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं... देखो, आत्मा में एक समय का विकार, कथंचित् अर्थात् एक समय की दशा का विकार विद्यमान है। किसी अपेक्षा से अर्थात्? वर्तमान दृष्टि की अपेक्षा से। वर्तमान अंश की (अपेक्षा से) बिल्कुल पर्याय में विकार ही नहीं, ऐसा नहीं है। समझ में आया इसमें? **ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो...** ऐसा स्वीकार। मेरी पर्याय में मलिनता, दुःख और मैल ही नहीं, ऐसा जिसका स्वीकार न हो, उसे **शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता**। उसे मलिनता के अंश के अस्तित्व का स्वीकार नहीं, उसे उससे रहित त्रिकाल निर्मलानन्द प्रभु के ज्ञान का, श्रद्धा का भी उसे स्वीकार नहीं हो सकता। समझ में आया? **इसलिए व्यवहारनय के विषयों का भी...** विषय अर्थात् राग, पुण्य विकल्प होता है। आत्मा में होता है, उसका ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है... उसका ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य है। ग्रहण अर्थात्? है, ऐसा जाननेयोग्य है। टोडरमलजी ने स्पष्टीकरण किया है कि ग्रहण करना अर्थात् क्या? जानना। सातवें अध्याय में। व्यवहारनय अर्थात् आत्मा त्रिकाल शुद्ध आनन्द और उसका कार्य शुद्ध होने पर भी, उसकी संसारदशा की अवस्था में विकल्प की मलिनता है, विद्यमानता है, दशा में बिल्कुल मलिनता नहीं, उसे त्रिकाल शुद्ध आत्मद्रव्य मलिन

बिना में उसका सच्चा ज्ञान होता नहीं। बात में भी कितना अन्तर ?

एक समय की पर्याय त्रिकाल शुद्ध चैतन्य को श्रद्धा-ज्ञान में लिया होने पर भी एक समय की पर्याय में भाग पड़े, किंचित् शुद्ध, किंचित् अशुद्ध, किंचित् आनन्द, किंचित् दुःख... क्या कहा, समझ में आया ? यह विद्यमान है। आत्मा अखण्ड शुद्ध चैतन्य पूर्णानन्द की अन्तर दृष्टि होकर भान हुआ होने पर भी उसमें द्रव्य और गुण में तो पूर्ण शुद्धता है, परन्तु उसकी वर्तमान दशा में शुद्ध और अशुद्ध दोनों, अवस्था में दोनों वर्तते हैं। क्या इसमें भारी कठिन। समझ में आया ? इसमें आया था। पढ़ा है या नहीं ? ऐई ! अतुल ! तेरा नाम आया था उसमें देख। अतुल अर्थ के सारासार का आया था या नहीं ? उसने पूछा था हों कि हमारे... अच्छा प्रश्न भाई ! यह विचार पहले सुनना, विचारना, पढ़ना और शास्त्र में से अतुल अर्थ को निकालना। छिप गया है वह। प्रभुभाई ! आहाहा ! ऐसा पदार्थ परमानन्द को दृष्टि में लेना। दृष्टि में से विकार को निकाल दे। ऐसा ले यह। ऐसा अर्थ शास्त्र में कहा था, वैसा अन्दर दृष्टि में ले।

इसके अतिरिक्त, विकार तो है सही। विकार न हो तो पूर्ण शुद्ध हो और विकार के साथ शुद्धता भी है। शुद्धता न हो तो निश्चय का भान हुआ, ऐसा भी नहीं है। क्योंकि निश्चय का भान हुआ कि शुद्ध चिदानन्द आत्मा है अर्थात् द्रव्य-गुण शुद्ध तो है, परन्तु पर्याय में—अवस्था में शुद्धता तो आयी है। आहाहा ! समझ में आया ? कहाँ गये ? वल्लभदासभाई कहाँ है ? नहीं होंगे। कुछ श्वास था सही। अरे ! देह का खोळा, खोखा कैसा ! कुछ न कुछ क्रीड़ा हो अन्दर जड़ में। भगवान निराला तत्त्व पड़ा है अन्दर।

कहते हैं, अहो ! व्यवहारनय का ज्ञान तो बराबर जाननेयोग्य है। यहाँ तो नय लिया है, हों ! नय अर्थात् भाई क्या कहना है इसमें ? नय अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि होने के पश्चात् उसका नय (होता है), उसकी यहाँ व्याख्या है। पहले जो कहा कि एक समय में पूर्ण शुद्ध, अकेला पवित्र शुद्ध और कार्य शुद्ध—ऐसी दृष्टि हुई, तथापि उसकी दशा में अभी शुद्धता पूर्ण प्रगट नहीं हुई और अकेली अशुद्धता भी नहीं। अकेली अशुद्धता हो तो मिथ्यादृष्टि को होती है, अकेली शुद्धता हो तो केवलज्ञानी को होती है अथवा सिद्ध को होती है। किसमें ? पर्याय में, अवस्था में, हालत में। ऐई ! मगनभाई ! अब यह विभाव का कारण कौन ? बहुत समय का प्रश्न है। विभाव पर का जाने, फिर विभाव हो

किसलिए ? तो हुआ इसलिए कुछ अपना जाना होगा, इसलिए हुआ होगा या नहीं ? मगनभाई ! पुराना प्रश्न था न अपना ?

यहाँ यह कहते हैं, भगवान ! एक चैतन्य पूरा पूर्णानन्द से भरपूर शुद्ध चैतन्यतत्त्व की दृष्टि हुई। सम्यक् चैतन्य शुद्ध हूँ, मेरा कार्य भी शुद्ध है, तथापि वस्तु पूर्ण शुद्ध, गुण पूर्ण शुद्ध—ऐसा भान में उसे शान्ति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, संवर-निर्जरा अर्थात् राग का अभाव, ऐसी दशा भी प्रगट हुई है। उस प्रगट हुई के साथ में, उस निर्मल पर्याय के साथ उसी पर्याय में अभी किंचित् मलिनता भी है। आहाहा ! एक पर्याय में दो भाग। दो पर्याय नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, साधक है या नहीं ? दो नय का विषय है। समझ में आया इसमें ?

व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है। उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसी विवक्षा से नहीं। अर्थात् ? भगवान आत्मा शरीर की क्रिया से भिन्न, शरीर की पर्याय से, मन से असली तत्त्व भिन्न, विकल्प से भिन्न—ऐसा भान होने पर भी, निर्विकल्प शान्ति और श्रद्धा और आनन्द का अंश प्रगट हुआ होने पर भी, उस आनन्द की दशा में एक पर्याय में थोड़ा आनन्द और उसी पर्याय में एक पर्याय के दो भाग, (दूसरे भाग में) थोड़ा दुःख। एक चारित्र की पर्याय जो है, किंचित् शुद्ध है और एक भाग (अशुद्ध है)। समय एक, पर्याय एक, भाग दो। आहाहा ! ऐसी जो अशुद्ध पर्याय है, ऐसा यदि लक्ष्य में न ले तो उसे द्रव्य की खबर नहीं, पूर्ण शुद्ध है, उसकी दृष्टि नहीं। उसका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य नहीं। क्या कहते हैं ? परन्तु राग हो, उसका आश्रय, अवलम्बन, आधार लेनेयोग्य नहीं। वह आधारशिला नहीं शान्ति का। शान्ति अर्थात् धर्म को प्रगट करने की वह आधारशिला नहीं। आधारशिला तो द्रव्यस्वभाव त्रिकाल, उस आधारशिला के आश्रित शान्ति प्रगट होती है। शान्ति कहो या धर्म कहो या अविकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो।

लोगों ने माना हुआ समभाव अलग प्रकार है, हों! कोई वापस प्रश्न करे, तब अपने सबके ऊपर समभाव रखो, यह सम्यग्दर्शन। ऐसा नहीं है। यहाँ तो राग का विकल्प उठे और यह स्वभाव को, दोनों को एक माने, समभाव (माने), वह तो मूढ़ है। समभाव की व्याख्या ही ऐसी नहीं है। समभाव का अर्थ एक समय में वीतरागी विज्ञानघान प्रभु की अन्तर में अनुभव में प्रतीति करना, उसे समभाव कहते हैं। उस समभाव का सच्चा स्वरूप भी इसे कब प्रगट हो? कि इसकी दशा में अभी थोड़ा विषमभाव भी है, ऐसा इसे ज्ञान होना चाहिए। तथापि वह विषम-राग आवे, वह विषम है। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प उठे, वह विषमभाव है, समभाव नहीं।

कहते हैं, अरे! यह व्यवहारनय के विषयों का आश्रय... करनेयोग्य नहीं। ऐसा विवक्षा से नहीं कहा कि राग है न, राग है न। उस राग का आधार मानकर स्वभाव को लाभ हो, ऐसा मानने के लिये नहीं कहा। समझ में आया? बात-बात में सूक्ष्मता, कितना समझना एक घण्टे में? बीच में थोड़ी सी वार्ता आती हो तो मजा आवे थोड़ा। यह वार्ता ही लगायी है तेरी। आत्मकथा कहो या वार्ता कहो। आत्मवार्ता। कहते हैं, प्रभु! तेरी शुद्धता की दृष्टि करने पर भी और शुद्धता के कार्य पूर्ण होंगे और किंचित् कार्यरूप दशा होने पर भी अन्दर में अभी पूर्ण सिद्धपद अशरीरीदशा प्राप्त न हो, तब तक राग की विद्यमानता है, इतना उसे जानना, उसका नाम उपादेय कहा है, परन्तु उस राग के आधार से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का टिकना और निभना होता है, ऐसा मानने के लिये नहीं कहा है। समझ में आया? व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह विकल्प है, है, मुनि को भी होता है, सम्यग्दृष्टि को होता है। सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्रों का बहुमान विकल्प राग होता है, उसे 'है' ऐसा बराबर स्वीकार करना चाहिए; परन्तु वह राग है, इसलिए यहाँ आत्मधर्म टिक रहा है, उसके आश्रय से टिकेगा और उसके आश्रय से निभेगा—ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा! समझ में आया इसमें?

व्यवहारनय के विषयों का आश्रय (आलम्बन,... अर्थात् राग आता अवश्य है, होता अवश्य है। सम्यग्दृष्टि को और मुनि को आत्मा के आश्रय, आधार से शुद्धस्वभाव की खान में से प्रगट हुई शुद्धता के कार्य में उसे व्यवहार का राग होता अवश्य है, परन्तु उसका अवलम्बन नहीं होता। आलम्बन नहीं होता; आलम्बन तो त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति

की शिला में से उसके आधार से एकाग्रता की पछाड़ में से प्रगट निर्मलता होती है। राग की एकाग्रता से शुद्धता होती है, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया या नहीं? ऐई! लड़कों! यह सब समझना पड़ेगा, हों! वापस बापू... यह आत्मा के लिये समझना है, हों! कठिन है। सच्चा अर्थात्। सच्चे को कठिन कहना हो तो भले कहे। सच्चा यह है। यह सरल खोटा, वह सरल है।

मुमुक्षु : राख को कहा था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : राख को सेली करते हैं न सेली। वह राख जैसी बातें हों, वह सेली कहलाये। यह तो अमृत जैसी बात, यह उसे कठिन कहो या सच्ची कहो, सत्य कहो या सच्चा कहो।

अरे! उसका आलम्बन, आश्रय छोड़नेयोग्य ही है। किसका? उस सम्यग्दृष्टि को, धर्मी को, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ त्रिकाल स्वभाव के आश्रय के अवलम्बन द्वारा, उसके झुकाव द्वारा, उसके आधार द्वारा। उसे कारण बनाकर कार्य आया, तथापि उसे राग तो आवे, वह राग आलम्बन करनेयोग्य नहीं है, छोड़नेयोग्य है। आहाहा! चिल्लाहट मचाते हैं। व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार से निश्चय होता है। लो, अब यह रतिभाई इनकार करते हैं। परन्तु लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे, लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे, भगवान! क्या यह वह बात! गले तक ढोकला। यह ढोकला होता है न चावल का। ऊपर मसाला छिड़का हो, वह लहसुन का व्यवस्थित। दल-दल जैसा और जवान शरीर हो तो खाये उसमें। ओ... हो... डकार आती होगी कस्तूरी की? उसी प्रकार विकल्प का राग ज्ञान को होता है, परन्तु उसमें से निश्चय की प्राप्ति हो, ऐसा धर्मी समझता नहीं, मानता नहीं और उसमें राग में से लाभ हो, ऐसा राग में नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, व्यवहार अर्थात् राग। वह व्यवहार मिथ्यात्व नहीं, हों! वापस यह चिल्लाहट करते हैं। देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति विकल्प विनय, ऐसा राग होता है। वह मिथ्यात्व नहीं। उससे धर्म माने तो मिथ्यात्व है। वजुभाई! बराबर होगा? यह गले उतारना ही पड़ेगा, हों! इसके बिना शान्ति नहीं। ऐसे का ऐसा फू हो जायेगा। चले गये

कुछ श्मशान की राख हो गयी। वह चैतन्य तो अमर है। (देह को) छोड़कर जैसी मिथ्या वासना, भ्रमणा लेकर भ्रमने चला गया। भ्रमणा लेकर चौरासी (योनि की) गति में भटकने चला गया। उसके भ्रमण, वह भ्रमणा (मिटे) बिना भ्रमण मिटे, ऐसा नहीं है। भ्रमणा टाले बिना भ्रमण टले, ऐसा नहीं है। यह यहाँ कहा न विकल्पना में भ्रमणा। अशुद्धता और शुद्धता दो वाला पूरे तत्त्व को स्वीकार ले तो मिथ्यादृष्टि की मान्यता है और अशुद्धता का अंश न स्वीकारे, उसमें तो उससे रहित शुद्धता, अपेक्षा अशुद्धता की शुद्धता अन्दर आती है। शशीभाई! कितनी बातें इसमें समझना?

मुमुक्षु : स्वीकारना।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकारना अर्थात् ज्ञान करना। मान्यता में अकेला शुद्ध... यह मान्यता का विषय लक्ष्य में ले लेना। कहो, समझ में आया इसमें? राग, विकल्प पूर्ण सर्वज्ञ न हो या सिद्धपद की प्राप्ति न हो, वहाँ निचली (साधक) भूमिका में उसका विषय आवे, अवलम्बन करनेयोग्य नहीं, उसका झुकाव करनेयोग्य नहीं, उसकी सन्मुखता होनेयोग्य नहीं, उसकी भावना भानेयोग्य नहीं। आहाहा! राग की भावना भायी जाती होगी? यह सोलहकारणभावना आती है न! 'षोडशकारणभावना भाते बांधे तीर्थकरगोत्र' ऐसा नहीं आता? कहाँ गये श्रीचन्द, नहीं आये न यहाँ? वहाँ हमारे गाते हैं। आता है न भजन में आता है। 'षोडशकारण भावना...' क्या आता है? भाषा भूल गये। 'दर्शन विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थकर पद पाय परमगुरु होय।' यह भावना भायी जाती होगी राग की? भक्ति के वचन ही इस प्रकार के होते हैं व्यवहार के। आवे, उसे भावना करते हैं—ऐसा कहा जाता है।

कहते हैं... भगवान के सामने बैठकर ऐसा कहे—हे भगवान! तुझसे मुझे कुछ मिले, ऐसा नहीं, हों! ऐसा बोला जाता है? है तो ऐसा ही। तुम क्या दे दो, ऐसा है? ऐई! वीरजीभाई! तुम क्या बड़े प्रभु होकर बैठे। मुझे क्या दे देते हो तुम? ऐसा कहा जाता होगा? कहते हैं, हमारे वजुभाई कहते हैं किसी-किसी समय। प्रभु! तू भी काम का क्या तू? हमको तो काम कर दे नहीं, तू किस काम का? ऐसा कहा जाता होगा वहाँ? बोला जाता है कि हे प्रभु! आप मुझे दो। यह व्यवहार के कथन हैं। वहाँ से दे और ले, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! भक्ति के विकल्पों की उनके अनुसार भाषा भी

ऐसी होती है, परन्तु उसका अर्थ न समझे, उल्टा पाटा बाँधे तो हो गया, उसे कुछ सूझे नहीं। कहते हैं कि व्यवहारनय जो आवे, वह आत्मा के शुद्धता की पूर्ण पर्याय निर्मलदशा कार्यरूप पूर्ण न परिणमे, तब तक ऐसा विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति ऐसा आवे, परन्तु वह छोड़नेयोग्य ही है, त्यागनेयोग्य ही है, हेय ही है; उपादेय—अंगीकार करनेयोग्य नहीं।

ऐसा समझने के लिए ५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा। यह ४९ में उपादेय कहते हैं जानने के लिये। ५० गाथा में एकदम बहुत ऊँची (बात) आयेगी ५०वीं (गाथा)। जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण... भगवान परमानन्द शुद्ध चैतन्य धातु का आश्रय जिसने दृष्टि में लिया और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो,... और राग के आश्रय का जिसे त्याग हो, उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है... उसी आत्मा को वस्तु का और वर्तमान राग का और पर्याय का (ज्ञान होता है)। अरे, निर्मल पर्याय हो, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। पर्यायों के आश्रय का त्याग हो,... पर्याय ली अकेली, विकारी यहाँ नहीं ली। यह आयेगा न ५० में? जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का... पूर्ण प्रभु आत्मा का ग्रहण और पर्यायों के... निर्मल अंश प्रगट हुए हों क्षायिक समकित आदि, उसके भी आश्रय का त्याग हो, उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का... उसी जीव को वस्तु का और वर्तमान अवस्था का आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा जाने तो वह ज्ञान सच्चा। तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है ऐसा समझना, अन्य को नहीं। अन्य को नहीं। राग को भी आदरणीय माने, आश्रय करनेयोग्य माने, उसने पर्याय का आश्रय माना, उससे लाभ (माना), वह मिथ्यादृष्टि है। उसे स्वभाव का आश्रय नहीं होता और पर्याय के आश्रय से लाभ नहीं होता। लो, यहाँ आया।

पहले जो विभावपर्यायें 'विद्यमान नहीं हैं' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं,... है टीका... टीका। टीका का एक शब्द का अन्दर विस्तार नीचे (फुटनोट में) किया था उपादेय का, वह पूरा हुआ। अब पहले जो विभावपर्यायें 'विद्यमान नहीं हैं' ऐसी... क्या कहा था आत्मा में? वह विकार-विकार कुछ है ही नहीं, संसार है ही नहीं, विकल्प है नहीं—ऐसा कहा गया था। वह सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से

विद्यमान है। उन सब विकल्पों की वृत्ति जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक वह व्यवहारनय के भेद पड़े हुए वृत्ति का भाव, वह विद्यमान—अस्ति धराता है। समझ में आया? पहले समझण में, इसके ज्ञान में 'भावों का निश्चय क्या? व्यवहार क्या?' इसकी सम्यक्ता अथवा शुद्धता न करे, उसे स्वभाव की ओर के झुकाव का आश्रय प्रगट नहीं होता।

कहते हैं, पहले कहा था कि आत्मा में कुछ है नहीं संसार-फंसार। विकल्प नहीं, विकार नहीं कुछ नहीं। वह सब विभावपर्यायें क्षयोपशम आदि कहे हों, वे सब विभाव। आगे तो चारों (भाव) कहेंगे। वास्तव में व्यवहारनय के कथन से... है, पर्यायें हैं। मलिन अंश भी है, निर्मल अंश भी सम्यक् साधक जीव को है। और जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं,... चार विभावभाव। एक पारिणामिकभाव के अतिरिक्त। पारिणामिक एकरूप त्रिकाल स्वभाव, उसके अतिरिक्त का पुण्य-पाप का विकल्प, वह उदयभाव। उसका कुछ शान्त होना, ऐसी दशा, वह उपशमभाव; उसमें कुछ शान्त होना और कुछ विघ्न, ऐसा क्षयोपशमभाव; किंचित् निर्मल अकेली दशा होना, वह क्षायिकभाव—सब त्रिकाल स्वभाव में नहीं है। वह विशेष भावरूप चार पर्यायें हैं। वह विशेषभाव आश्रय करनेयोग्य नहीं है।

वे विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं,... वे पर्यायें परिणत ऐसा संसार में रागसहित ऐसे रहे हैं। वे सब शुद्धनय के कथन से... अकेला चैतन्य द्रव्य को देखें और ऐसे कथन, कथन तो वाचक कहा है, परन्तु उसके भाव से देखें तो शुद्धगुणपर्यायों द्वारा... शुद्ध गुण और उसकी पर्यायें भी अत्यन्त निर्मल। वे सिद्धभगवन्त समान (सब जीव) हैं। लो, ... संसार आया था न पहला वह ? ... सिद्धा संसारी जीवा। भवलीना। भाई! पहले आया था। ... भवआलीना। ऐसे सब सिद्ध। वे सिद्ध जैसे संसारी। सिद्ध जैसे संसारी हैं। उनमें कुछ अन्तर नहीं है। ऐसा जो कहा था उन सिद्धभगवन्त समान हैं। विकल्प का लक्ष्य छोड़ दे। सब जीव शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्धस्वभाव के समुद्र पड़े हैं। चौदह ब्रह्माण्ड में अनन्त आत्मायें अत्यन्त शुद्ध स्वभाव के समुद्र पड़े हैं। उन सिद्ध जैसे संसारी हैं। उस विकल्प का लक्ष्य यहाँ नहीं। अकेला पदार्थ और उसके

स्वभाव, ऐसी ही उसकी निर्मल पर्यायें शक्तिरूप से पड़ी हैं, ऐसे ही सब आत्मायें हैं। (अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,... वह क्षायिक आदि भी सब पर्याय है न संसार की। वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)। वे संसारी सिद्धसदृश। यह रंक, राजा जैसा। रंक की पर्याय न देख, उसमें राजा होने की सामर्थ्य है। एक क्षण में राजा होकर खड़े रहे। यह गायकवाड़ सरकार लो न! भैंसे पालता था भैंसें। यह सयाजीराव, गुजर गये। गुजर गये परन्तु ले गये वे... रानी ने बुलाया। कुटुम्ब में से मालधारी (गोपालक) लेकर। रानी ने हुक्म किया। बुलाओ अपने परिवार में से किसी को। वे (ढोर) चराते थे, दोनों को बुलाया। पाड़ा, भैंसे चराता था। बड़े को पूछा क्यों आये यहाँ? कि तुम्हारा व्यक्ति आया था ... आये। सयाजीराव बोले, उस रानी ने पूछा, क्यों यहाँ आये? 'राज लेने आये हैं।' भैंसें चरती हैं न। वह पुण्य बुलाता है। राज लेने आये हैं। राज कुटुम्ब के व्यक्ति हैं। गोपालक नहीं अभी। अरे! इसी प्रकार पवित्रता का धाम पुकार करता है कि हम सिद्ध समान हैं। परन्तु राग में पड़े हो न! सिद्ध समान हैं। दृष्टि के विषय में सिद्ध समान हैं। विशेष बात करेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - १८-०२-१९६४

गाथा-४९, प्रवचन नं. ४०२

....उसके आधाररूप पद्मप्रभमलधारिदेव अमृतचन्द्राचार्य के पाँचवें कलश का आधार देते हैं। यह (समयसार का) पाँचवाँ कलश। इसमें बहुत संक्षिप्त है। उसमें—कलशटीका में विस्तार है। पाँचवाँ।

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हंत हस्तावलम्बः।
तदपि परममर्थं चिच्छामत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥

क्या कहते हैं ? व्यवहारनय, क्या कहते हैं ? निश्चयनय का अर्थ उसमें क्या आता है ? देखो, यह विवाद निश्चय और व्यवहार के झगड़े हैं न ? व्यवहारनय... अर्थात् 'जितना कथन' ऐसा कहा। जितना कहना पड़े... यह आत्मा अनन्त ज्ञान का पिण्ड है, ऐसा गुण में भेद पाड़कर कहना पड़े, उस सब कथन को व्यवहार कहते हैं। यहाँ तो कथन को ही व्यवहार कहते हैं। विकल्प उठता है अन्दर भेद पाड़ने पर। तो कहते हैं कि जितना आत्मा एक समय में पूर्णानन्द शुद्ध अभेद एकरूप चीज़ है, उसमें प्रथम, प्रथम करना पड़े कि यह आत्मा। क्या ? कि जीववस्तु तो निर्विकल्प है। आत्मा अन्दर वस्तु तो अभेद है। उसका कोई प्रदेश या कोई उसका गुण या अन्तर वस्तु से भिन्न पड़ता नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई ! इस कलश की टीका की थोड़ी।

वह तो ज्ञानगोचर है। आत्मा शुद्ध आनन्द का कन्द, उसका अनुभव, वह तो ज्ञानगम्य है। ज्ञान के स्वभाव द्वारा अन्तर अनुभव करना, ऐसी निर्विकल्प चीज़ है। कहो, समझ में आया इसमें ? उसी जीववस्तु को कहना चाहे, ... वस्तु है अन्दर में एकरूप, अखण्ड आनन्द और शुद्ध, वह निर्विकल्प अर्थात् अभेद। उसे कोई पर्याय या कोई गुण कुछ अन्दर भिन्न पड़े, ऐसा नहीं। वस्तु अभेद एकाकार है। वह तो ज्ञानगम्य

ही है। अन्तर के ज्ञान द्वारा अन्तर अनुभव हो, वह स्वसंवेदनगम्य ही आत्मा है। समझ में आया ? वह कोई विकल्प, राग, भेद, श्रवण, उसके द्वारा वह गम्य नहीं। इसका भी विवाद उठाया है। आज मुझे पूछता था एक आकर। श्रवण से लाभ नहीं होता तो यह दिव्यध्वनि से लाभ हुआ, सबको लाभ हुआ। किससे लाभ होता है ? कहते हैं, देखो न, क्या कहते हैं ? भगवान ! उसने लक्ष्य पर का सुना हुआ हो, उसका भी लक्ष्य छोड़कर अन्तर आत्मा के ज्ञानगम्य वेदन में जाये, तब कोई विकल्प और निमित्त तथा श्रवण का लक्ष्य नहीं रहता। क्या हो ? यह वस्तु ऐसी।

वहाँ दिल्ली में अभी एक हुए न नये साधु, उन्होंने इसके विरुद्ध में लिखा है। पुस्तक आयी है। जैन शासन में हुआ विकार। ... छहढाला की टीका और बहुत सब है। अहो भाई ! प्रभु ! तेरा रास्ता बहुत निराला है। चाहे जितनी वाणी सुने या शास्त्र का पठन करे, परन्तु वह वस्तु तो जब पावे, तब तो ज्ञानगम्य से प्राप्त होती है। यह ज्ञान, उसकी दशा, उससे दशावान अन्तर वस्तु, उसका अनुभव हो, वह तो ज्ञानगम्य और सम्यग्दर्शन और ज्ञान और उसका स्वरूप इस प्रकार से है।

परन्तु उसी जीववस्तु को कहना चाहे, तब ऐसा ही कहा जाता है कि... उसे कहना पड़े कि यह आत्मा अन्दर एक-एक जीव, हों ! इस शरीर से भिन्न ऐसे अनन्त आत्मायें, उसे कोई कहना चाहे, वस्तु कोई कहना चाहे। विकल्प हो, तब ऐसा ही कहा जाता है... तो ऐसा ही कहा जाता है कि जिसके गुण दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जीव। यह बहुत संक्षिप्त बात ली। कैसा है भगवान आत्मा ? वस्तु तो अभेद है। एकरूप चिदानन्द, तथापि कोई कहना चाहे, कहने की इच्छा करे तो उसे जीव-आत्मा वस्तु, उसके गुण दर्शन-ज्ञान-चारित्र—वह श्रद्धा करे, जाने, स्थिर हो, वह जीव। क्या कहा यह, समझ में आया ? कोई दूसरी क्रिया की बात नहीं यहाँ। दया, दान, व्रत के करे तो उससे मुझे निमित्त होगा और यह समझ में आयेगा, ऐसा भी नहीं है। यहाँ तो प्रथम में प्रथम भूमिका में वह जीववस्तु अर्थात् चैतन्यप्रभु अनन्त गुण का एकरस, एक राशिस्वरूप प्रभु, उसका धर्म स्वरूप, उसे अनुभव के लिये, उसे कहना पड़े तो यह आत्मा दर्शन-ज्ञान और चारित्र, यह उसके गुण। श्रद्धा करता है, वह आत्मा; जानता है, वह आत्मा; अन्दर में एकाग्र होता है, वह आत्मा।

यह कहना चाहे, तब ऐसा ही कहा जाता है... इसका नाम व्यवहार हुआ। ओहोहो! समझ में आया? इतनी चाहना हो कि इस आत्मा को समझाना। पूरी उसमें ... पड़े कि भाई! यह जाने, वह आत्मा, जानना गुण वह आत्मा से भिन्न नहीं पड़ता, परन्तु वह जानता है कि यह जानता है, वह आत्मा; श्रद्धा करे, वह आत्मा... श्रद्धा करे वह आत्मा और यह एकाग्रता, उस ओर के झुकाववाली हो, वह आत्मा। वह यह जीव, ऐसा अपने में इतना तो कहे बिना किसी प्रकार से दूसरा समझ नहीं सकता। इतना व्यवहार आये बिना नहीं रहता। नवरंगभाई! यह व्यवहार, हों! दूसरा व्यवहार कि मैंने इतनी कषाय मन्द की, फलाना किया, वह व्यवहार आवे, फिर यह समझ में आये, यह यहाँ कुछ है ही नहीं। मनुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। उसे तो बल पड़े कि एकरूप में से तीन विकल्प कहना, इतना निमित्त हो। वह भी कब कि उसका लक्ष्य छोड़कर अभेद का अनुभव करे, तब यह भेद और निमित्त को व्यवहार कहते हैं। है पृष्ठ? समझ में आया?

वस्तु एकरूप गोला चैतन्य शरीरप्रमाण भिन्न चैतन्य अखण्ड आनन्द, उसमें भी यह ... नहीं लिया। क्योंकि प्रगट नहीं न, तो यह तो जरा जानना, श्रद्धा करना, कुछ स्थिर-एकाग्र, ऐसा इसके लक्ष्य में आवे कि देख भाई! यह आत्मा है न, वह जाने, वह आत्मा। रागवाला, वह आत्मा और कर्मवाला आत्मा, यह ... बात नहीं। समझ में आया इसमें? भाई! औदारिकशरीरवाला आत्मा, यह पंचेन्द्रिय आत्मा, पर्याप्त वह आत्मा, मनुष्य वह आत्मा—यह बात तो ली ही नहीं। वह आत्मा कुछ उसमें से लाभ में निमित्त भी उसमें नहीं। निमित्त, हों! भगवान आत्मा अपने आनन्द के अनुभव के काल के लिये, उसे इतना तो कहना पड़े, चाहे जितना बुद्धिमान हो। शब्द लेंगे।

कि या जिसके गुण... अर्थात् जिसके गुण। वस्तु आत्मा के गुण अर्थात् उसकी शक्तियाँ, उसकी दशा। यह जाने, श्रद्धा करे, स्थिर हो, वह आत्मा। जो कोई बहुत साधिक... भाषा ली है। बहुत बुद्धिवाला समझानेवाला। धी... धी शब्द है न अर्थात् अधिक बुद्धिवाला उसमें से निकाला हो। बहुत बुद्धिवाला हो, बहुत बुद्धिवाला और उसे आत्मा क्या है, उसे समझाना पड़े। तथापि ऐसा ही कहना पड़े। (-अधिक

बुद्धिमान) होवे तो भी ऐसा ही कहना पड़े। उसे यह कहना पड़े। वस्तु अन्दर अखण्ड आनन्द परमात्मस्वरूप है। वह ज्ञान, दर्शन, आनन्द उसके गुण। गुणी, वह वस्तु, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, वह गुण। इतना भेद चाहे जितना बुद्धिमान अपने में कहना चाहे तो इतना पड़े। यह कहना पड़े, उसका नाम व्यवहार।

मुमुक्षु : व्यवहार तो अलग प्रकार का।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग प्रकार का इसमें। यह तो अमृत होने का रास्ता है न। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! तुम्हारा व्यवहार और इस व्यवहार को भी क्या हो उसमें? यह वस्तु ऐसे उल्टे रास्ते चढ़ गयी है। उसे कहते हैं कि समझाने का फल तो इतना कहना पड़े और समझना चाहे उसे आत्मा गुणी में से यह गुण, इतना ऐस भेद का विकल्प आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? फलाना आवे और दया पाले, व्रत करे और यह करे और यह करे। अभी तो यह कहते हैं कि पुण्य, पुण्य का बन्धन और पुण्य के फल, ये तीनों आदरणीय हैं। आहाहा! और उसे तुम हेय कहते हो, भगवान! क्या हो परन्तु इसमें कहे। छोड़नेयोग्य है और अभी छोड़नेयोग्य? परन्तु श्रद्धा में छोड़नेयोग्य न हो तो छोड़े कैसे? समझ में आया? छूट न जाये पुण्य राग। छूटे तो आगे, परन्तु दृष्टि में उस राग की तो यहाँ बात भी नहीं की। मात्र शरण करानेवाला चैतन्य वस्तु को समझाना चाहे तो बहुत बुद्धिवान हो तो भी उसे गुणी अर्थात् भगवान आत्मा को गुण के तीन भेद द्वारा अन्त में अन्तिम यह... उसे समझाना है। आहाहा! कहो, यह व्यवहार। यह व्यवहार कौनसा होगा? यह स्त्री, पुत्र और धन्धा करना, यह व्यवहार है? यह उस व्यवहार की कहाँ बात है यहाँ?

एक व्यक्ति कहता था कि लो, व्यवहार तो हमारे करना न पड़े? ... दवा नहीं करना पड़े? तुम कहते हो कि व्यवहार छोड़नेयोग्य है। परन्तु हमारे दवा करना या नहीं? वह व्यवहार नहीं? कहो, यह कहाँ की कहाँ बात? उस व्यवहार की तो बात भी कहाँ है?

मुमुक्षु : पुत्र रोटियाँ खिलावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाये और कौन खिलावे?

यहाँ तो जिसे धर्म करना हो तो उसे धर्मी समझावे, तब धर्म करनेवाले का धर्मी ऐसा जो आत्मा, उसे गुण के भेद द्वारा इतना तो समझाये बिना दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया ? कहते हैं, यह भी कथन। वापस व्यवहारनय का (अर्थ) नय का कथन ही किया है। कथन का अर्थ ही यह भेद में विकल्प उठा समझाने का, वह सब कथन में जाता है। अर्थात् जो कोई बहुत साधिक (-अधिक बुद्धिवान) होवे तो भी ऐसा ही कहना पड़े। इतना कहने का नाम व्यवहार है। ... पहले कहा था, वह कर डाला। इतना कहना पड़े कि भगवान तू आत्मा, यह जाने वह आत्मा। विश्वास किसे हो ? राग को विश्वास हो राग का ? राग में ज्ञान हो ? राग में एकाग्रता, वह चारित्र उसमें हो ? या दूसरी चीज़ का विश्वास आदि करे, वह विश्वास करनेवाला तो आत्मा है। वह उसे विश्वास करने की पर्याय, विश्वास गुण दोनों को भेद पाड़कर इतना कहे कि विश्वास कौन करता है यह ? मैं हूँ, यह है, वह है—यह विश्वास करे वह गुण, उस विश्वास का गुण वह ... यह जाने, वह ज्ञानगुण और उसमें—जानने-देखने में एकाग्र होता है अर्थात् वह गुण। वह गुणी ऐसा जो आत्मा, उसे यह तीन गुण के भेद द्वारा समझाना पड़े, इतना व्यवहार कथन आता है। भाई! यह बाहर बात आने पर इसे क्या करना कौन जाने अन्दर से ? चिल्लाहट मचा जाये। अरे, भगवान! शान्त हो, बापू! राग होता है, कहाँ प्रश्न है ? शुभराग तो दसवें गुणस्थान तक... भूमिका (में) हो वह अलग वस्तु है और उसके आश्रय से चैतन्य का अनुभव और धर्म हो, वह दूसरी बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा जो व्यवहार इतना कहने का नाम व्यवहार है। यहाँ कोई आशंका करेगा कि वस्तु निर्विकल्प है, ... पहले कहा था कि जितना कथनमात्र कहा। अब वस्तु कही थी, परन्तु निर्विकल्प है उसके ऊपर शंकाकार ने वापस (प्रश्न) उठाया। भगवान! वस्तु तो अभेद है, उसमें यह सूखड़ की लकड़ी है, देखो! इस सूखड़ की लकड़ी में यह सुगन्ध है, वह सूखड़, कोमल वह सूखड़, पीली वह सूखड़, ऐसा सूखड़ में नहीं। वह तो एकमेक वस्तु है। उसमें तीन के भेद हैं नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा, वह तो अभेद वस्तु है। उसमें ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा भिन्न करके ... पड़ता नहीं। श्रद्धा, वह आत्मा से वह कहीं अलग पड़ती नहीं। वस्तु तो निर्विकल्प अभेद है। अभेद अन्तर में दृष्टि करने से अन्तर से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट हो,

निर्विकल्प दृष्टि, निर्विकल्प अभेद दृष्टि से होता है। तो वस्तु तो निर्विकल्प अभेद है।

उसमें विकल्प उपजाना अयुक्त है। ऐसी चीज़ अखण्ड आनन्द में... वस्तु परमात्मस्वभाव स्वयं का... उसमें—अभेद में भेद उपजाना वह उचित नहीं है, ऐसी शिष्य की आशंका है। समझ में आया? आशंका हुई है न उसे? शंका नहीं की? ...भाई! समझने में कठिन पड़ता है। आप खोटा कहते हो, ऐसा हमको नहीं लगता, परन्तु ऐसी चीज़ में भेद पाड़ने का क्या कारण? वह आपको क्या कहना है इसमें? आप इसमें क्या कहना चाहते हो? वस्तु तो अभेद है। उसमें फिर यह ज्ञान, वह आत्मा; यह गुण वह वीर्य; यह वीर्य, वह गुण का; श्रद्धा वह आत्मा की; स्थिरता, वह आत्मा की—ऐसा भेद अन्दर नहीं और आपने भेद किया, वह मुझे समझ में नहीं आया। समझ में आया? गजब कथा, भाई!

कहते हैं कि भेद। ...व्रत का विकल्प उत्पन्न करना... विकल्प उपजाना अयुक्त है। वस्तु वस्तुरूप से एकाकार... रजकणों से पार, विकल्प-राग से पार अकेला चैतन्य रस आनन्दकन्द अकेली गाँठ छुड़ाना आनन्दकन्द चैतन्य प्रभु है। उसमें फिर यह फलाना और यह फलाना, ऐसे गुणों के धर्मी के धर्म के भेद अन्दर तो नहीं, वह तो वस्तु एकरूप है। उसमें भेद उपजाना अयुक्त है। ऐसी शिष्य की आशंका अर्थात् समझने के लिये जिज्ञासा से प्रश्न किया है।

वहाँ समाधान ऐसा है... उसका समाधान इस प्रकार से है कि व्यवहारनय हस्तावलम्ब है। लो! जिस प्रकार कोई नीचे पड़ा हो तो हाथ पकड़कर (उसे) ऊँचा लेते हैं... मनुष्य नीचे गिर गया हो। हाथ पकड़कर ऐसे ऊँचा लेते हैं न? आता है, वह तो उससे, हों! इतना हाथ का निमित्तपना, वह शरीर नहीं। एक अँगुल का भी आधार दे जरा, एकदम ऐसे निकले। नीचे पड़ा हो तो हाथ पकड़कर (उसे) ऊँचा लेते हैं... हाथ पकड़कर। अकेला पानी में बहता जाता हो। अर्थात्... शरीर के ऊपर अँगुली रखना चाहिए बस। इसी प्रकार यह ... उसे अँगुली शरीर के ऊपर चली आती है। चली आती है तो उसके कारण से। तो इतना... यह हाथ पकड़कर ऊँचा लेते हैं, उसी प्रकार ही गुण-गुणीरूप भेदकथन... यह गुणी भगवान आत्मा धर्म का धारक, गुण का भण्डार ऐसा गुण, उसका जो गुण बतलाना, ऐसा कथन, भेद—जुदाई का कथन, वह

ज्ञान उपजने का एक अंग है। क्या कहते हैं ? यह ज्ञान लक्षण में ले कि गुण वह इस गुणी का अकेला वह ज्ञान को उपजने में एक निमित्त होता है। ऐसा एक उसका भाग है। दूसरा कोई उपाय नहीं।

देखो, ज्ञान उपजने का एक अंग है। राग से हो और ढींकणा से हो, यह अभेद में से भेद समझाना इतना एक अन्दर ज्ञान जाने, उसमें एक उसका भाग निमित्तपना होता है। दूसरा कोई निमित्तपना हो सकता नहीं। समझ में आया ? उसका विवरण—जीव का लक्षण चेतना... भगवान आत्मा, वह तो चेतना लक्षण से लक्षित है। चेतना अर्थात् जानना-देखना। उसके लक्षण से लक्षित—लक्ष्य होनेयोग्य है। जाननेवाला-देखनेवाला, उससे लक्ष्य होकर द्रव्य का भान हो सकता है। ऐसे चेतना, इतना कहने से पुद्गलादि अचेतनद्रव्य से भिन्नपने की प्रतीति उपजती है। इतना कहना लक्ष्य शरीर, वाणी, कर्म के अचेतन से हट जाता है। चेतना, वह आत्मा; जाननेवाला, वह आत्मा—ऐसा कहने से कहनेवाले के भाव को समझनेवाले को चेतना जानना, वह आत्मा, उसे अचेतन परपदार्थ से लक्ष्य छूट जाता है। अचेतन से भिन्न पड़ जाता है। अचेतन की प्रतीति भिन्न पड़ जाती है। पुद्गलादि अचेतनद्रव्यों से... पुद्गल, शरीर, कर्म आदि सब, आकाश इत्यादि। अचेतनद्रव्य से भिन्नपने की प्रतीति उपजती है। अभी यह अनुभव पहले की बात है, हों! उसे ऐसा हो कि यह जाने, वह आत्मा। इसलिए न जाने, वह आत्मा नहीं, अर्थात् जड़। उस जड़ के ऊपर से उसकी प्रतीति हटनी चाहिए। अचेतनद्रव्य है, वह भिन्न प्रतीति आत्मा अचेतन से भिन्न है। अचेतन शरीर, कर्म, वाणी, मन सबसे वह भगवान आत्मा चेतनालक्षण से लक्षित अर्थात् कि पर के लक्षण से लक्षित और चेतनालक्षण से परलक्षित यह बात उड़ गयी, पर की श्रद्धा उड़ गयी। भिन्न प्रतीति, जड़, शरीर, वाणी, मन सबसे मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसी प्रतीति उपजती है। इसलिए जब अनुभव होता है... देखो, जब तक उसे आत्मा के आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। समझ में आया ? ऐसा आत्मा सीधा ज्ञान से आनन्द को पकड़कर अनुभव करे, आत्मा को पकड़कर अनुभव करे, प्रत्यक्ष। जब तक। इससे जब अनुभव हो... आनन्द का अनुभव धर्म की दशा में। सम्यग्दर्शन, ज्ञान का, वह स्वभाव सन्मुख ढलकर चैतन्य का अनुभव है... तब तक गुण-गुणीभेदरूप कथन ज्ञान का अंग है। क्या ज्ञान अंग ? ...ज्ञान ...वह

नहीं। उसके ख्याल में जरा यह बात आयी कि यह अचेतन, वह मैं नहीं और चेतन, वह मैं। इतना उसके ख्याल में बात (आयी तो) पर की प्रतीति उड़ी गयी। इसलिए जब तक उसे अनुभव पूर्णानन्द प्रभु के अन्तर में प्रवेश करके अनुभव न करे, वेदन न करे, वह आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के रस को सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान का वेदन न करे, तब तक... ओहोहो! कहो, रतिभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? सुना होगा कहीं? कि इस राग से धर्म होता है और ... धर्म होता है। इस क्रिया से ऐसा होता है और भक्ति करे तो ऐसा होता है, मन्दिर बनाये तो ऐसा होता है। यह मेरी आलोचना की, लो, यह तुम मन्दिर बनाओ, ... बनाओ, वह सब विष्टा है? उस जड़ का कर सकता नहीं, परपदार्थ का कर सकता नहीं। अरे! भगवान! बापू! पर की बातें कहाँ करना? वह तो उसके कारण से वहाँ पर्याय होती है।

यहाँ तो इतनी बात कहते हैं, भगवान पूरा एकदम लक्ष्य में नहीं आता, इसलिए उसे गुणी के धर्म को लक्ष्य में लेकर उसे कहना पड़ता है कि भाई ज्ञान वह आत्मा, हों! इसलिए उसे पर से प्रतीति उठ जाती है। उठकर अन्तर के अनुभव में जाये, तब उसे अचेतन से प्रतीति पृथक् पड़ गयी। ऐसा जो लक्ष्यभाव, वह भी छूट जाये। वह लक्ष्य था कि इस अचेतन की प्रतीति गयी, ज्ञान वह आत्मा, इतना व्यवहार लक्ष्य में आये बिना... समझ में आया? चन्दुभाई! ओहोहो! गजब यह वह! सब महिलायें-महिलाओं के आत्मा को समझ में आता होगा? आत्मा में कहाँ स्त्री और आदमी (पुरुष) है? वह तो है ही आत्मा है, उसे तो यह कुछ स्पर्शा ही नहीं। वह तो उसके कारण से उसमें पर्याय हो रही है।

कहते हैं, जब तक इससे... इससे किसलिए? कि चेतना, वह आत्मा। ऐसा कहना से उसका लक्ष्य पर से उठ जाये और स्व में जाये और अनुभव हो, इसके लिये गुणी और गुण के भेद... यह गुण दूसरे में नहीं। ऐसा कहते हैं कि यह गुण... जानना गुण है वह ज्ञान... इतनी प्रतीति हुई, उसका भी लक्ष्य छोड़कर अन्दर में अनुभव करे, तब इस भेद को व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह फिर सब मन्दिर बनाना, समवसरण, देखो न! कितना करते हैं? ओहो! करते हो और ऐसा कहते हो कि करते नहीं। यह किसने किया यह परसों? ऐई! रजनीभाई! यह प्रवीणभाई दो रहे। कहाँ

गये ? यह बैठे पीछे । किसने किया यह कल ? परसों ? स्वाहा । आहाहा ! अरे भगवान ! यह तो वाणी का धर्म है, यह जड़ बोलता है । आत्मा का धर्म नहीं । यह हाथ ऐसे-ऐसे हो, वह आत्मा ने किया ही नहीं तीन काल में । क्या बात ? उसकी निराली... परन्तु प्रतीति में और यह कैसे है ? कि चेतना । जीव का लक्षण चेतना है । जड़ अर्थात् आत्मा, राग करे और शरीर को हिलावे, वह आत्मा की बात तीन काल में नहीं । वह क्रिया उस समय हो और वहाँ आगे जो (जीव) हो, उसे शुभभाव हो, तब उस शुभभाव से भी अन्तर में जा सके, ऐसा अन्तिम सोपान नहीं । अन्तिम सोपान अर्थात् चेतना, वह जीव, गुण का गुण वह यह । ऐ... चेतना अर्थात् वह उठ जाना, ऐसे प्रतीति होने के ख्याल में पहले इतनी बात आती है । समझ में आया ? बाबूभाई ! क्या इसमें अब ? उसमें पानी के छानने का क्या करना ? यह छानना पानी को कितने छनने से छानना ? यह मोहनभाई डॉक्टर तुम्हारे, देखो, कि इतने छनने से से पानी को छानना । उससे आत्मा को धर्म होगा । किससे होगा ? अरे भगवान ! यह क्रिया तो परमाणु की होने की हो तो होती है, भाई ! बापू ! तुझे वह विकल्प उठे, उसे यहाँ गिनने में आया नहीं । यहाँ तो गुणी में से गुण का भेद करने का विकल्प उठे और वह समझ में आये, इतनी बात है । समझ में आया ? यह व्यवहार आये बिना नहीं रहता । चाहे जितना बुद्धिवाला हो, तो भी समझाने में आता है और समझनेवाले को भी चाहे जितना बुद्धिवाला हो, तो भी इतना यह चेतना, वह जीव का लक्षण । चेतना, वह लक्षण राग का नहीं, शरीर का नहीं, पर का (नहीं) । उन रागादि और पर की प्रतीति भिन्नरूप से होती है और अपनी प्रतीति में मुड़े यह, इतना गुणी को गुण द्वारा पहिचान कराना, इतना व्यवहार आये बिना रहता नहीं । मगनभाई ! आहाहा !

अरे ! इसमें सत्य परमेश्वर को प्राप्त करना । कहते हैं, इसने कभी देखा नहीं, अनुभव किया नहीं । इसलिए अनुभव करने में परमात्मा के स्वयं के एकस्वरूप को अनुभव करना । उसमें यहाँ प्रतीति कही न वापस, अचेतन द्रव्य से भिन्नपने की प्रतीति... अर्थात् वस्तु दूसरी है । अकेला आत्मा है (ऐसा नहीं), इसलिए यह बात की है कि जानना, वह आत्मा । ऐसा कहने से वह जानना, जिसमें नहीं ऐसी दूसरी चीजें हैं; नहीं है, ऐसा नहीं है । अकेला आत्मा ही है, उसे चेतना लक्षण से लक्षित, वह हो नहीं

सकता। इसलिए चेतना लक्षण से भगवान आत्मा ज्ञात हो, ऐसा उसे कहने से उसे चेतना लक्षणरहित जो चीजें हैं, उनसे भिन्न प्रतीति होती है। भिन्न प्रतीति लक्ष्य को आवे। वह लक्ष्य छूटकर अन्दर में अनुभव करे, तब आत्मलक्ष्य आये बिना नहीं रहता। समझ में आया? यह तो अलौकिक कलश हैं। यह मन्दिर के ऊपर कलश रखते हैं न! उसी प्रकार यह टीका के कलश किये, उसमें और यह राजमलजी मिले टीका करनेवाले।

कहते हैं, प्रभु! तुझे आत्मा जानना है या नहीं? लो, यह आत्मा कैसे जानने में आता है, ऐई! रतिभाई! यह क्या आया देखो! है या नहीं पृष्ठ? ऐई! रतिभाई! क्या कहते हैं यह? बेरिस्टर... बेरिस्टर जानने की ऐसी बात नहीं यहाँ कही। तू कौन है? बेरिस्टर-फेरिस्टर नहीं। तब तू कौन है, उसका लक्ष्य करने के लिये कुछ राग की मन्दता और कुछ दया, दान या व्रत और यह कुछ व्यवहाररूप से लक्ष्यगत करने के लिये काम आवे या नहीं? कि नहीं। चेतना अर्थात् आत्मा इतना लक्ष्यगत करने में यह नहीं, यह चेतन की प्रतीति उड़ जाने पर चैतन्य की ओर मुड़ जाने का भाव प्रतीति में, लक्ष्य में पहले ऐसा भेदरूप आता है। ओहोहो! समझ में आया?

जब अनुभव हो... यह अनुभव चौथे गुणस्थान की बात चलती है, हों! आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त रस के पिण्ड का एकरूप, उसे भिन्न करके चेतना, वह आत्मा, अथवा चेतना लक्षण से वह लक्षित। वह राग लक्षण से लक्षित, व्यवहार लक्षण से लक्षित (ऐसा नहीं)। वह रागादि क्रिया, उसे तो निकाल दिया। शरीर अच्छा, इसलिए उससे यह लक्ष्य होता है, फलाना अच्छा, खाने-पीने की शरीर की क्रिया व्यवस्थित हो तो वहाँ आत्मा को धर्म हो, इसलिए लक्ष्य बदलकर अन्दर जाया जाये, इस बात की तो बात है ही नहीं। कहो, निर्दोष अच्छे आहार-पानी आवे अन्दर में तब तो कुछ लक्ष्य होगा या नहीं आत्मा को?

मुमुक्षु : यह तो अनन्त बार द्रव्यलिंगी हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार द्रव्यलिंग जब धारण (किया) ऐसे द्रव्यलिंग में विवाद उठाये। उसमें चला गया। वह द्रव्यलिंगी समकिति... कौन बापू, सुन न! ऐसा कि द्रव्यलिंग। परन्तु वह तो अनादि के द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से यह बात चलती है। यह भगवान आत्मा वस्तु के भान बिना इसने मुनिपना अनन्त बार लिया।

परन्तु वह चेतना, वह आत्मा और वह चेतना जिसमें नहीं, वह अचेतन शरीर, कर्म, वाणी, मन की प्रतीति और लक्ष्य उठा, चेतना वह आत्मा, इतना लक्ष्य कराने को पहले भेद आये बिना रहता नहीं। बस, इतना व्यवहार। उन तीन में से, भाई! चेतना में आया। समझ में आया ?

वह ज्ञान का अंग है... जब अनुभव होता है तब तक... आनन्द निर्विकल्प प्रभु अखण्ड आनन्द का वेदन सम्यग्दर्शन होने पर जो अनुभव आनन्द का प्रत्यक्ष राग के पर्याय की अपेक्षा बिना निरपेक्ष भगवान की अपेक्षा अन्दर में रहकर अनुभव जब हो, तब तक। गुण-गुणीभेदरूप कथन... यह गुणी ऐसा भगवान, उसे ज्ञानलक्षण से लक्षित ऐसा गुण, ऐसा कथन ज्ञान का अंग है। उस जाति का लक्ष्य करने 'अचेतन से भिन्न हूँ, अचेतन शरीर, वाणी, कर्म से भिन्न हूँ' उतना लक्ष्य करने का वह प्रकार है। अभी सम्यग्ज्ञान की बात नहीं यह, हों! आहाहा! समझ में आया ? यह 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह व्यवहार सम्बन्ध, वह इतना। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' ... का अर्थ ? ऐसा जरा अन्दर लक्ष्य इतना हो। यह चेतनालक्षण से लक्षित। राग, पुण्य, विकल्प दूसरे ऐसे चेतनालक्षण से लक्षित वह विकल्प हो। परन्तु दूसरा राग, शुभराग के लक्ष्य से लक्षित अचेतन है। अचेतन है। उस चेतनालक्षण से लक्षित उसकी प्रतीति को अन्तर में झुकाने से पहले अचेतन की प्रतीति से भिन्न आत्मा की प्रतीति और लक्ष्य आवे, इतना व्यवहार बीच में आता है। चाहे जितना कोई प्राणी हो तो इतना आये बिना रहता नहीं।

अब कहते हैं, व्यवहारनय जिनको हस्तावलम्ब है, वे कैसे हैं ? व्यवहारनय जिनका निमित्तरूप से हस्तावलम्ब जो कहा था, हाथ पकड़कर ऊँचा लाने का कहा था, वह व्यवहारनय जिनको हस्तावलम्ब अर्थात् हाथ में सहारा, परन्तु किसका सहारा हो ? जो व्यक्ति सीढ़ियाँ चढ़ता हो स्वयं, उसे वह कठेड़ा वह लकड़ी बाँधते हैं न ? क्या कहलाता है ? अभी अब तो ऐसे कहाँ रहे हैं ? अब तो वह सब प्रकार बदल गये हैं न। वह लकड़ी आड़े हो, उसमें हाथ रखे, हाथ। वह तो तुम्हारी भाषा होगी। वह कठेड़ा (रेलिंग) अपने समझते हैं अपनी सादी भाषा में। वह लकड़ी बाँधे, दो-तीन लकड़ियाँ हों और फिर ऐसा सहारा देकर चढ़े। चढ़ता है स्वयं से, हों! उस लकड़ी का निमित्त

हुआ लक्ष्य, परन्तु वह चढ़ने की क्रिया उसका आधार छोड़कर हो, वह तो फिर होता है। आहाहा! क्या होगा यह वह? प्रवीणभाई! यह किस प्रकार का धर्म होगा यह? आहाहा!

कहते हैं कि व्यवहारनय जिनका हस्तावलम्ब है, वे कैसे हैं? देखो, व्यवहार की व्याख्या पहले की थी 'जितना कथन।' अचेतन कर्म से... वह व्यवहार। ... जिसे हस्तावलम्ब कहा जाता है। 'प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां' 'इह' शब्द में विद्यमान ऐसी जो... 'प्राक्पदव्याम्' ज्ञान उपजने पर प्रारम्भिक अवस्था, उसमें... यह लक्ष्य करते हैं, वह व्यवहार आया बीच में ज्ञान उपजने पर प्रारम्भिक अवस्था... अर्थात् यह ज्ञानलक्षण से लक्षित, ऐसा जो व्यवहार, उसे हस्तावलम्ब कहा जाता है। ज्ञान उपजने पर प्रारम्भिक अवस्था, उसमें... 'निहितपदानां' निहित-स्थापित है पद-सर्वस्व जिन्हें, ऐसे हैं। अर्थात् लक्ष्य अभी अचेतन की प्रतीति से हटकर चेतना लक्षण, ऐसा आत्मा—ऐसा जिसने लक्ष्य में रख लिया है। समझ में आया? उसे यह है।

भावार्थ ऐसा है—जो कोई सहजरूप से अज्ञानी है,... देखो, वस्तु सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव नहीं, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की सम्यक् प्रतीति नहीं, उसका वेदन नहीं, ऐसा जो अज्ञानी। जो राग और पुण्य के विकल्प में अकेला रचा-पचा रहता है। यहाँ तो पुण्य की बात अधिक लेनी है। क्योंकि सुनने आया वहाँ तक तो उसे विकल्प है न ऐसा? समझ में आया? जो कोई सहजरूप से अज्ञानी है... क्या कहा? वहाँ ऐसा कहते हैं निमित्त अच्छे मिले थे, भगवान के पास गया, क्यों निमित्त से लाभ नहीं हुआ? दर्शनमोह का कर्म अन्दर एक अन्तर निमित्त था, वह हटा नहीं; इसलिए लाभ नहीं हुआ। अरे! भगवान! क्या कहता है तू? प्रभु! यह क्या कहा तूने यह? उल्टे पक्ष में से सुलटा तेरा मान नहीं, वह सुलटा पड़े का मानना तुझे कैसे प्रगट हो?

कहते हैं, क्या भाषा हुई? जो कोई सहजरूप से अज्ञानी है... सहज स्वरूप का भान भूला हुआ है, बस अपने कारण से। कर्म को... सहज शब्द रखा है। सहज अर्थात् क्या? किसी ने कराया है और किया है, ऐसा नहीं। सहज निश्चय से, सहज अर्थात् निश्चय से स्वभाव आनन्द और ज्ञान को भूलकर अज्ञान की दशा में पड़ा है। वह सर्वस्व लक्ष्य अभी पर से हटाकर स्व में आया नहीं, ऐसा जो जीव सर्वस्व... देखो, शब्द है।

एक बार सर्वस्व शब्द आ गया था। चित्स्वभाव, उसमें आया था न? आत्मा कैसा है? कि चित्स्वभावाय। चित्स्वभाव। स्वभाव अर्थात् कि सर्वस्व जिसका उसका। यहाँ सर्वथा ही आया। वह सर्वस्व। आत्मा, उसका गुण... सर्वस्व स्वभाव है। ऐसा जिसने लक्ष्य में, पर में जो लक्ष्य किया है, सर्वस्व ... पर में, अपने में आया नहीं। आहाहा! भाषा भी कैसी की है न! भाई कहते थे कल कि गजब यह कलशटीका! हीराचन्दभाई नहीं? कहाँ गये? नहीं आये? व्याख्यान... कि भाई टीका गजब तो कलशटीकाकार! यह बाहर आयेगी तो... अभी यह तो पहला-पहला वाँचन चलता है शुरुआत का।

कहते हैं, भगवान! सुन तेरी धर्मकथा। उस धर्मकथा का लक्ष्य चेतनालक्षण से लक्षित कराया, उसमें जो अभी खड़ा है। अन्दर अनुभव में आया नहीं। वह सहजरूप से अज्ञानी है। जिसका भगवान आत्मा के अन्तर में ज्ञान खुला नहीं, अन्तर में भान कौन है, वह भूला नहीं। **जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप...** एक बात। एक तो सहज ज्ञानी है, ऐसी बात सिद्ध की। अपना आनन्द का अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु दरबार, अनन्त समाज गुण का समाज ऐसा आत्म दरबार जिसने अन्तर में जाना, देखा, अनुभव किया नहीं। अन्दर दरबार है अकेला। भगवान के दरबार में अन्दर आया नहीं, अनुभव किया नहीं, वह सहजज्ञानी और अज्ञानी होने पर भी उस जिज्ञासा की मर्यादा बताते हैं। उसकी जिज्ञासा **जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं,...** देखो, क्या कहा? दूसरी बात नहीं। वस्तु जड़ क्या, चेतन क्या, उसके गुण क्या? उसकी दशा क्या? बस! **द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं,...** समझ में आया? सहज अज्ञानी है, भान नहीं। यह धर्म है क्या? यह वह पर्यायें होंगी? गुण होगा? या वस्तु होगी? समझ में आया? धर्म क्या होगा? पाप क्या होगा? पुण्य क्या होगा? यह दिखता है वह क्या होगा? कि जिसे जीव आदि ऐसा शब्द है न? षट्द्रव्य। जीव, पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, यह सब पदार्थ हैं। देखो, पदार्थ है। इतना तो इसने इसे लक्ष्य में अन्दर जानने की जिज्ञासा हुई है। पदार्थ ही नहीं, ऐसा... उसे तो ... द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने की इच्छा हो सकती नहीं। समझ में आया?

जिसे जीव-अजीव आदि। क्या है यह? ... वस्तु किसे कहना? शक्ति किसे कहना? जिसके गुण और उसकी दशा-हालत किसे कहना? देखो, यह शिष्य को ऐसा

लिया है। वह छह द्रव्य के द्रव्य और गुण और पर्याय को जानना, वह कोई दूसरा काम नहीं (कि) दुनिया में मान मिले या बड़ा हो या यह हो... मार्ग प्रभु यह छह वस्तु है भगवान ने कही हुई, उसमें एक मैं आत्मा हूँ। तो मेरे आत्मा से-क्या वस्तु से? उसका गुण क्या? उसकी दशा क्या? यह परमाणु हैं, उनके रजकण हैं, उनका द्रव्य वस्तु किसे कहना? उनकी गुण शक्ति किसे कहना? उनकी पर्याय किसे कहना? क्योंकि उसे शक्ति से समझना है, इसलिए समझाने का अणसमझण से, अणसमझण से समझण हो, ऐसी पर्याय क्या? और वह समझण की पर्याय का धारक गुण क्या और उस गुण का धारक द्रव्य क्या? समझ में आया या नहीं इसमें? गिरधरभाई! कहो, क्या करना इसमें? जिसे तीन ज्ञान हो, क्षायिक समकिति हो तो वह लड़ने की भाषा बोलता है। रतिभाई! बोले तो नहीं ही वह। तो आवे सही वह भाषा। समझ में आया? वह आवे। क्योंकि तीन ज्ञान के धनी चक्रवर्ती तीर्थकर, क्षायिकसमकित, आत्म-अनुभव, परन्तु जब तक अभी रागभाग है, राग है, कुछ रागरहित दशा हुई नहीं। हजारों रानियाँ हों, छियानवें हजार रानियाँ हों, छियानवें करोड़ सैनिक हों, कि गजब ऐसा जो यह मुझसे भिन्न, वह उसमें कैसे रहे? परन्तु उसमें रहा ही नहीं। जो दिखता है, इसलिए उसमें रहा, ऐसा कहा किसने? और उसमें जब तक राग है, राग है अभी वीतराग हुए नहीं। भाषा राग अनुसार आवे। ...समझ में आया?

चक्रवर्ती छह खण्ड के धनी भरत चक्रवर्ती, तीन ज्ञान और क्षायिकसमकित... साधने गये वह ... तूफान किया। म्लेच्छ राजा को आधीन करने गये तो म्लेच्छ राजा शूरवीर थे। महाराज साहेब या यह कभी हमको ... कोई आधीन करने आया है। इसलिए तुम कुलदेवता हो, करो कुछ। सात दिन वर्षा और सात रात मूसलधारा ऊपर। भरत को विचार होता है कि यह क्या? यह दशा प्राकृतिक नहीं। प्राकृतिक हो उसमें विश्राम आवे, अन्तराल पड़े, थोड़ा पड़े, ऐसा हो, यह वर्षा एकधारा बरसती है, इसलिए यह प्राकृतिक नहीं है, कोई कृत्रिम है, कोई करनेवाला। देव को हुकम किया। देव है न! जाओ। कौन है यह करनेवाला? देखो, भाई! ऐसी भाषा क्यों आयी? केशुभाई! ज्ञानी है न! ऐई! ...भाई! ऐसी भाषा क्यों आयी? भाव अनुसार भाषा क्यों आयी? कल नहीं कहा था सर्वज्ञ अनुसारिणी भाषा? परन्तु राग अनुसारी भाषा, उतना राग है। अभी

द्वेष भी है। भान है कि राग और द्वेष, वह मेरा स्वरूप (नहीं है)। भिन्न विवेक में वर्तता है। तथापि विवेक किसे कहते हैं? दो हो तो विवेक कहें। राग है, द्वेष है, विषय की वासना है, आदि राग की वासना भी है। परन्तु वह और मैं दोनों भिन्न, ऐसा विवेक भी वर्तता है और विवेक में दो वर्तते हैं। ... भाव और राग की पृथक्ता, इसलिए वाणी भी ऐसी निकलती है। जाओ कहे। कौन, जयकुमार जाते हैं न! उनके दीवान हैं। दीवान अर्थात् वह सेना का (सेनापति)। सेना अधिकार सेनापति। बड़ा एकावतारी उस भव में मोक्ष जानेवाला, उस भव में मोक्ष जानेवाला। वृषभदेव में गणधर होनेवाला जयकुमार गणधर होनेवाला। वह उसके पास जाता है। ... देव को वश करके... नाम दो कुछ। क्या कहा यह? ... लो ... हो वह ... पद देते हैं। इल्काब देते हैं... तुम समकित्ती हो न। कुछ ... सुन न अब। कौन यह तो विकल्प ऐसा होता है, वाणी भी उस काल में होती है। ... लिया, उस भव में उसे मोक्ष जाना है। उस भव में चरमशरीरी दोनों के। सेनापति और चक्रवर्ती दोनों का अन्तिम शरीर है। अब अन्तिम, वह दूसरा है नहीं।

यह अन्तर की दृष्टि में यह राग, वह नहीं, यह भी नहीं ऐसा विवेक अन्तर भेदज्ञान वर्तता है, तथापि भेद कहा न। वरना अकेला भेदज्ञान अकेला अभेद... उसे रागादि यह तो भेद है, वह दो प्रकार है। इसलिए जितना राग प्रकार है, उतनी भाषा से प्रकार आवे। ऐसा कहते हैं कि भाषा ज्ञानी को आती है ऐसी। क्यों? उसे विकल्प आता है। अभी उसे भेद अभी है, सर्वथा अभेद हो नहीं गया। केवलज्ञानी हो जाये, उसे समझाने का विकल्प होता नहीं। यह वाणी... कारण से निकले। ऐसा समझनेवाले को और समझानेवाले को दोनों को अभी भेद पूर्ण हुआ नहीं, इसलिए उसे... यह चेतना, वह भगवान आत्मा।

परन्तु जीवादि पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं... यह भाषा ली भाई ने, लो। द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं... ओहोहो! जिसे आत्मज्ञान प्राप्त करना हो, जिसे आत्मदर्शन प्राप्त करना हो, उसकी अभिलाषा में द्रव्य, गुण और पर्याय जानने की अभिलाषा पहले आवे। ऐसा सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : करने का नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का तो कहा यह वही कहा इसमें। वह इसे जानने की बात है। नवरंगभाई!

जीवादि... ... ज्ञान हो उसे जीवादि पदार्थों के द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं,... पहले यह करे और यह हो, यह करूँ तो यह हो, ऐसे अज्ञानी को भी आत्मज्ञान समझने के लिये अभिलाषा, वस्तु और वस्तु की शक्तियों की और उसकी दशा की अभिलाषा होती है। समझ में आया? भारी छनावट की है न! अभी यहाँ खबर नहीं होती द्रव्य-गुण-पर्याय किसे कहना! परन्तु धर्म क्या है और धर्म पर्याय है, धर्म वह गुण है, धर्म वह पदार्थ है? सामायिक। तो सामायिक क्या होगी, खबर है तुझे? वह सामायिक कोई दशा होगी? सामायिक कोई शक्ति होगी? सामायिक कोई पदार्थ होगी? पाठ में सामायिक आवे शब्दों में? वह तो जड़ की पर्याय है। उसे—पर्याय को खबर नहीं कि यह जड़ की पर्याय है। वाणी निकले, वह जड़ की पर्याय है। शरीर ऐसे बैठे, तावकायं ठाणेणं माणेणं जाणेणं। यह तो जड़ की पर्याय है, ऐसे हुई वह। ऐसे आत्मा की कौन सी पर्याय उसमें आयी? कि तुझे कुछ लाभ हो, ऐसी कौनसी पर्याय है उसमें? यह पर्याय ऐसे हुई, उसमें तुझे लाभ होगा? वह तो जड़ की पर्याय है। ... भगवान! क्या किया तूने? आहाहा!

एक व्यक्ति कहता था। जवान है न, एल.एल.बी. हुआ। राजमल नहीं वहाँ वह ... के साथ। राजमल कहे जीवित शरीर से धर्म क्रिया होती है या नहीं? अरेरे! हमको लजाया कुछ। ऐसे प्रश्न करके पण्डितों ने जैनधर्म को लजाया है। ऐसे पण्डित होंगे जैन के? जीवित शरीर की क्रिया धर्म की होती है और ऐसे प्रश्न। वह राजमल तेज व्यक्ति है, जरा कड़क है। एल.एल.बी. हुआ, देखो न नहीं कहा छोटा। कुचामन का। दो-तीन बार फेल हुआ। एल.एल.बी. की परीक्षा देने में। परन्तु बुद्धि की घनघनाहट है। बुद्धि... उघाड़ इतना है। बहुत प्रकार... बहुत प्रकार। ऐसे प्रश्न? वीतरागमार्ग के अन्दर जीवित शरीर से धर्म क्रिया होती है, ऐसे पण्डितों के प्रश्न? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि भेद पड़कर लक्ष्य हो, यह चेतन में और यह नहीं, ऐसी प्रतीति हो, वह भी धर्म का कारण नहीं। आहाहा! क्या कहा?

जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप... उसका स्वरूप जानने के

अभिलाषी हैं, ... अज्ञानी को यह अभिलाषा पहली होती है। यह वह जड़ की पर्याय-अवस्था है, वह जड़ के गुण, और जड़ का द्रव्य क्या? मेरी वस्तु क्या? मेरे गुण क्या? मेरी दशा क्या? दोनों में भेद क्या? छह को अलग-अलग जाति के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने की अभिलाषा। दूसरा... करे, ऐसा नहीं कहा यहाँ कि इतने पहले व्रत ले लो और फिर सम्यग्दर्शन। वह तो ... कहते हैं उसमें। यह ... क्रिया पहले करे तब उसे यह हो। ... करे तो यह हो। भगवान! बापू! देह छूट जायेगी, हों! कोई शरण नहीं होगा वहाँ। ऐसा फटा। डॉक्टर... डॉक्टर सहायक होंगे या नहीं वहाँ? डॉक्टर को कौन सहाय हो?

कहते हैं। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग के मार्ग में अज्ञानी अनादि के ... होने पर, उसका है वस्तु में द्रव्य-गुण-पर्याय की जानने की इच्छा हो, जानने की अभिलाषा पहले में पहली हो। उनके लिये... जिन्हें ऐसी अभिलाषा है, उनके लिये गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है। देखो! दूसरे के लिये वापस ... करके निकाल दिया। वह ... मुझे क्या करना? मुझे यह करना? अब सुन न, परन्तु तुझे द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने की अभिलाषा है या दूसरी? लालुभाई! ... द्रव्य-गुण-पर्याय किसे कहना, यह कभी प्रश्न ही नहीं पूछा।...

मुमुक्षु : इसमें तो ऐसा लिखा है न सहजरूप से अज्ञानियों ने....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि... भले अज्ञानी के ... परन्तु अपने आप अज्ञानी माने? आहाहा! अपने को तो अज्ञान ही चलता नहीं... वस्तु का भान ही नहीं कि मेरी दशा क्या? मैं कौन? मेरा स्वभाव क्या? वस्तु कौन? वस्तु का स्वभाव क्या? उसकी दशा क्या? भगवान! मुझे धर्म समझना है, उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय क्या? उसके लिये गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है। देखो, उसके लिये इतना कथन उचित है। दूसरे को सुनाने का कुछ काम नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे सुनने के योग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्य ही नहीं दूसरे। इस देह में ऐसा हो कि ओहो! यह वह धर्म करना है, परन्तु मुझे कुछ अधर्म है, मुझमें, वह टल सकता है, तो वह पर्याय है। तो वह पर्याय क्या? मुझे धर्म करना है तो वह धर्म कहाँ से आवे?

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - १९-०२-१९६४

गाथा-४९-५०, कलश - ७३, प्रवचन नं. ४०३

यह (श्री नियमसार, गाथा ४९ की टीका के आधाररूप से) समयसार का पाँचवाँ कलश है। इसमें ऐसा कहा पहले से चला आता है कि वस्तु तो निर्विकल्प आत्मा है। अर्थात् क्या? यहाँ व्यवहारनय पहले समझण के अंगरूप से होता है, यह बात जरा कहते हैं। समझण के अंगरूप से। वह क्या? वस्तु है, वह तो आत्मा अनन्त गुण का एक अभेद पदार्थ है। उसका अन्तर अनुभव होने पर उसे भेद का कथन उसको होता नहीं। भेद रहता नहीं। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन अनुभव होने पर शुद्ध आत्मा के स्वभावसनमुख प्रत्यक्ष ज्ञान के वेदन की दृष्टि में वहाँ गुण और यह गुणी, ऐसा भेद कथन में या लक्ष्य में होता-रहता नहीं। परन्तु कहते हैं कि 'प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां' यहाँ से रहा है न? क्या उतावल हुई थी? दो लाईन एकदम हो गयी थी, ऐसा कहते हैं। विद्यमान ऐसी जो ज्ञान उपजने पर प्रारम्भिक अवस्था, उसमें... हस्तावलम्ब है वह? गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है। यह? जिन्हें हस्तावलम्ब है, वे कैसे हैं? ऐसा। वह कैसा है? व्यवहारनय जिसे निमित्तरूप हस्तावलम्बरूप हो, वह जीव कैसा है? ऐसी बात चलती है। और उस व्यवहार का क्या स्वरूप है, यह दोनों बात चलती हैं।

'प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां' विद्यमान ऐसी जो ज्ञान उपजने पर प्रारम्भिक अवस्था,... आत्मा के शुद्ध अनुभव के सम्यग्ज्ञान के काल से पहले व्यावहारिक ज्ञान होने के लिये, जिसे ऊपर ज्ञान का अंग कहा था, वह ज्ञान का अंग वह अभी अनुभव नहीं। उपजने पर प्रारम्भिक अवस्था, उसमें निहित-स्थापित है पद-सर्वस्व जिन्होंने,... अभी लक्ष्य गुणी आत्मा और ज्ञान और आनन्द आदि गुण, ऐसे भेदरूप जिनका लक्ष्य रहा हुआ है, सब लक्ष्य वहाँ है, अभी अनुभव में आया नहीं। समझ में आया?

भावार्थ ऐसा है—जो कोई सहजरूप से अज्ञानी... देखो, स्पष्टीकरण किया है यह तो। जो अभी आत्मा आनन्द का स्वभाव और शान्ति का अनुभव अनादि से किया नहीं और अज्ञानी अर्थात् मिथ्यादृष्टि अनादि का है। जीवादि पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने का अभिलाषी है... उसकी शुरुआत यहाँ से होती है कि आत्मा,

पुद्गल, वह द्रव्य क्या है अर्थात् वस्तु क्या? उसके गुण क्या? उसकी पर्याय क्या? उसका जानने का पहला अभिलाषी होता है। कहो, समझ में आया? आत्मा का अनुभव करने से पहले, आत्मा के सम्यग्दर्शन प्रत्यक्ष वेदन होने से पहले अज्ञानी था, वह जीवादि छह द्रव्य के, छह गुण उसकी जाति के और छह प्रकार की उसकी पर्यायें। उसके **द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप जानने के अभिलाषी हैं...** दूसरी बात नहीं। यह वस्तु क्या है? दूसरे से भिन्न करने के लिये उसका लक्षण क्या? अथवा उसके गुण क्या? उसकी पर्याय क्या? ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन होने से पहले द्रव्य, गुण और पर्याय को जानने की जिसकी जिज्ञासा है, **उसके लिये...** उसके लिये। अर्थात् वहाँ उसकी हद बाँधी।

जिसे आत्म-अनुभव करने से पहले अर्थात् धर्म होने से पहले अर्थात् सम्यग्दर्शन होने से पहले उसे द्रव्य-गुण-पर्याय छह द्रव्य के जानने की अभिलाषा है। दूसरा कुछ करूँ, व्रत करूँ और दया पालन करूँ, यह उसकी इच्छा है ही नहीं। क्योंकि वह समझता है कि वस्तु—सम्यग्दर्शन बिना स्वरूप में रमणता (होती नहीं), इतना तो उसने लक्ष्य में लिया है। सम्यग्दर्शन होने से पहले मात्र द्रव्य, गुण और पर्याय। वस्तु अखण्ड क्या? उसके स्वभाव की शक्तियों का माप, गुण क्या और उसकी वर्तमान अंशरूपी दशा क्या?—ऐसा जिसे जानने की अभिलाषा है। **उसके लिये गुण-गुणीभेदरूप...** उसके लिये, दोनों बात कर दी। समझनेवाला द्रव्य-गुण-पर्याय समझना चाहता है, वस्तु के अनुभव से पहले, धर्म की दृष्टि अन्तर्मुख होने से पहले वह द्रव्य-गुण-पर्याय जानना चाहता है, उसके लिये अर्थात् दूसरे के लिये यह बात नहीं। समझ में आया? **गुण-गुणीभेदरूप कथन योग्य है।** ऐसे जीव के लिये भगवान आत्मा गुणी अर्थात् पदार्थ और वह ज्ञानगुणवाला, दर्शनगुणवाला, शान्ति, चारित्रगुणवाला ऐसा भेद कथन वैसे जीव के लिये प्रथम श्रेणी में उचित है। कहो, यहाँ तक आया था कल। बराबर है?

‘हन्त तदपि एषः न किञ्चित्’ आत्मा अन्तर की दृष्टि का धर्म अनुभव अर्थात् कि प्रत्यक्ष ज्ञान। सम्यग्दर्शन में मति-श्रुतज्ञान का प्रत्यक्ष ज्ञान। मति और श्रुतज्ञान आत्मा को सीधे पकड़कर वेदन करे, उसमें जो होनेवाली प्रतीति, ऐसा होने से पहले जीवों की जिज्ञासा धर्म क्या? पर्याय क्या? गुण क्या? द्रव्य क्या छहों द्रव्य के? इसलिए पहले

उसे प्रतीति तो इतनी आती है कि छह द्रव्य हैं। छह द्रव्य हैं। उसमें मैं भी एक हूँ। तो उसमें द्रव्य, गुण और पर्यायें क्या? ऐसी जिसे जानने की जिज्ञासा है। उसके लिये गुण-गुणी भेदरूप कथन उचित है। वह वस्तु तो अभेद होने पर भी, वह तो आनन्दवाला नहीं, आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप ही है। आनन्द की मूर्ति, वह तो अभेद चैतन्य निर्विकल्प वस्तु, यह तो पहले ऊपर आ गया है। दूसरी लाईन। जीववस्तु निर्विकल्प है। वह ज्ञानगम्य है। तीसरी लाईन का पहला शब्द। वह तो ज्ञान के गम्य—अनुभव होता है, परन्तु जिसे अन्तर ज्ञान की दृष्टि द्वारा, अन्तर स्वभाव का अनुभव होकर प्रत्यक्ष मति-श्रुत होकर सम्यक्त्व हुआ नहीं, ऐसे जीव को वस्तु निर्विकल्प और अभेद होने पर भी 'गुणी का यह गुण'—ऐसा भेद पाड़कर कहना, वह व्यवहार से उचित है। मोहनभाई! समझ में आया इसमें? इसमें दूसरा कुछ नहीं लिया कि इसमें कितना दान हमारे क्या करना? ऐसा नहीं लिया, लो! ऐ प्रभुभाई! दोनों बैठे हैं, देखो!

हमारे तो यह आत्मा क्या? उसका द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? यह परमाणु के द्रव्य क्या? गुण क्या? पर्याय क्या? ऐसे छहों द्रव्य के अन्दर वस्तु क्या? देखो, यह मूल चीज जैन के... जैन अर्थात् कि जीतना, स्वरूप का भान करना। अनन्त आनन्दमूर्ति का अन्तर सम्यग्दर्शन के काल में साक्षात् आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन, ऐसा जो धर्मभाव प्रगट होने से पहले जिज्ञासु को द्रव्य-गुण-पर्याय की जानने की अभिलाषा होती है। उसके लिये गुणी का, गुण का भेद करके समझाना, वह उचित है। समझ में आया?

'हन्तः' तथापि अब आचार्य कहते हैं। यद्यपि व्यवहारनय हस्तावलम्ब है... उसे भेद कथन से समझाना पड़ता है और वह समझनेवाला अनुभव करने से पहले यह गुणी, वह आत्मा और आनन्द उसका गुण अथवा गुणी आत्मा और ज्ञानगुण, ऐसा व्यवहार उसके लक्ष्य में पहला विकल्पसहित आता है। 'हन्तः' तथापि कुछ नहीं,... यह भेद के कथन में आत्मा को कुछ लाभ नहीं। समझ में आया? लो! भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड और यह गुण, ऐसा समझनेवाले के लिये भी विकल्प, वह कुछ काम का नहीं है। कहनेवाले के लिये विकल्प है, वह व्यवहार से आया, उसे भी कुछ काम का नहीं है। समझ में आया?

‘हन्तः’ करके जरा खेद बताया है कि अरेरे! क्या करें? यह बीच में गुणी में से गुण का भेद कराकर लक्ष्य कराना है, परन्तु वह कोई चीज़ नहीं। उस भेद के ऊपर लक्ष्य रहे, वह कहीं अनुभव का कारण नहीं, वह कहीं सम्यग्दर्शन का कारण नहीं। आहाहा! परन्तु ऐसा पहले अज्ञानी अनादि का है, इसलिए दूसरी बात छोड़कर कि कषाय की मन्दता ऐसे कर या फलाना ऐसा कर या... वह ऐसा कहे कि पहले हमारे कषाय की मन्दता कैसे करना? ऐसा भी पूछता नहीं। उसने तो यह द्रव्य-गुण और पर्याय किसे कहना? बस प्रभु! उस वस्तु का स्वरूप अखण्डरूप, गुणरूप और पर्यायरूप क्या है? ऐसी जिज्ञासावन्त को—उसको (कहते हैं कि) भाई! यह ज्ञान जानता है न, यह जाननेवाला आत्मा। जानता है, वह आत्मा। ऐसा करके उसकी अचेतन की प्रतीति से भिन्न अपनी ओर झुकने के लिये उसका लक्ष्य जाता है। अभी लक्ष्य जाता है। ऐसा गुण-गुणी का गुणरूप भेदरूप विकल्प हस्तावलम्ब निमित्तरूप से आया—आता है, ऐसा कहने में आया है।

तथापि कुछ नहीं... उसमें कुछ लाभ नहीं। तथापि, अपने आया था, भाई! पहला तथापि आया था न? एक जगह आया था न? नहीं आया था? कहीं आया था नहीं तथापि? किसमें आया था? कहीं आया था न! अब बाद में आया था, ठीक। पाँचवाँ चलता है न यह? तथापि क्या आया था न? यह वे झूठे हैं, यह नहीं आया था सवेरे? सवेरे आया था न? हाँ, हाँ। पाँचवें पृष्ठ पर है या नहीं? यह पाँचवें पृष्ठ पर। चौथा कलश और पाँचवें पृष्ठ पर सवेरे आया था। वह जीव को ऐसा ऐसी कल्पना समझे बिना करता है, तथापि वे ही झूठे हैं... यह सवेरे आया था। आठवीं लाईन नहीं, लाईन तो पाँचवीं है। पाँचवें पृष्ठ में पाँचवीं लाईन। आठवीं हैं उसमें ठीक। इसमें पाँचवीं है। छपी हुई है यह। यह पाँचवीं है इसमें। क्या कहा? कि जैसे वस्तु तो वस्तुरूप से है शुद्ध स्वभाव से, पर्याय में अशुद्ध, नित्य, अनित्य आदि उसमें एकान्तपक्षी उसके लिये चाहे जिस प्रकार से माने, वे स्वयं झूठे हैं। वस्तु तो जैसी है, वैसी है।

इसी प्रकार यहाँ वस्तु अखण्डानन्द प्रभु अपना परमात्मस्वभाव एकरूप है। उसे अज्ञानी अनादि का है और समझना चाहता है भेद से, द्रव्य-गुण-पर्याय से। इसलिए उसे जरा संक्षिप्त में (समझाते हैं कि) देख भाई! यह ज्ञान, वह आत्मा। अन्दर ज्ञान भिन्न

पड़ता नहीं। ऐसा कहना, उसे व्यवहार आता है, कहना पड़ता है और है। **तथापि कुछ नहीं, 'नोंध' (ज्ञान, समझ) करते हुए झूठा है।** यह सम्यक् अनुभव करने पर वे सब भेद झूठे हैं। क्या कहा समझ में आया इसमें? 'नोंध' अभी आयेगा अपने उस गाथा में आयेगा। चौथी बाकी है न भाई अभी? नहीं? उसमें आता है न, नोंध केवलज्ञान में है। यह अपने चौथा बाकी है न थोड़ा? यह जीव इस समय मोक्ष जायेगा, ऐसी नोंध—समझ केवलज्ञान में है। यह भी पाँचवें पृष्ठ पर है उसमें। वह अभी अपने बाकी है। (इतना काल) **बीतने पर मोक्ष जायेगा, ऐसी नोंध केवलज्ञान में है।** केवलज्ञान की एक समय की... यह सवेरे आयेगा अभी बहुत। थोड़ा बाकी है न? यह जीव इस समय में मोक्ष जायेगा—ऐसी नोंध अर्थात् समझ अर्थात् ज्ञान केवलज्ञान में है। यह क्या? यह बाद में उसका विस्तार है। यह तो यहाँ नोंध कहा है उसका अर्थ। उस नोंध का अर्थ (किया)। **तथापि कुछ नहीं है,...** अरे भगवान! ऐसे गुणी भगवान, अनन्त गुणवाला और यह गुण, ऐसा भेद का लक्ष्य कुछ काम का नहीं, कुछ काम का नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :सहारा दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहारा कहा न, वह तो निमित्तरूप से कहने के लिये है। निमित्तरूप से व्यवहार कहनेमात्र है, वस्तु के लिये कुछ लाभ करता नहीं, इसलिए तो 'हंत' कहा है। क्या करें? दूसरा कोई उपाय नहीं कि अन्दर गुणी का एकदम अनुभव करे। इसलिए यह आत्मा, ऐसा ज्ञान के लक्ष्य से, ज्ञान वह आत्मा—ऐसा भेद का विकल्प समझाना पड़ता है और आता है, वह आये बिना उपाय नहीं है, तथापि वह (ज्ञान, समझ) करने पर झूठा है। सम्यग्दर्शन अन्तर अभेद अनुभव करने पर, वह भेद का लक्ष्य, उसे छोड़ देना पड़ता है। इसलिए वह झूठा है। कहो, समझ में आया? उसके बदले अभी कषाय मन्द करूँगा और करते-करते यह होगा, वह सब झूठा है। कुछ व्रत पालें और कुछ दया पालें और कुछ भक्ति करें, पूजा करें और दान करें, उसमें से राग मन्द होगा, करते-करते भाई! प्राप्त हो न सम्यग्दर्शन? वजुभाई!

भगवान! यहाँ तो मात्र गुणी को गुण से भेद पाड़कर समझाना, इतना भी गुणी के अनुभव के काल के लिये वह वस्तु (भेद) तो झूठी है। क्योंकि उसका लक्ष्य रहे वहाँ तक अनुभव नहीं हो सकता। अभेद का अनुभव तब तक नहीं होता। आहाहा! क्या

व्याख्या? क्या चीज़? और कहाँ जगत ने मानकर मान लिया है। मानकर मनवाया, माना और मान्यता को सम्मत हुआ। तीनों एक जाति के हैं। कहते हैं... समझ में आया इसमें?

कहते हैं कि वह हस्त के अवलम्बन की ओर आया सही। नीचे पड़े हुए मनुष्य को जैसे हाथ पकड़कर ऊँचा करे, उसी प्रकार जरा अज्ञान में इसे कहने में आया कि भाई! यह द्रव्य वस्तु अन्तर ऐसे पूर्ण आनन्द से भरपूर अनन्त शक्ति का पिण्ड है। वह शक्तिवाला है, शक्तिवाला, इतना भेद। इतना भेद का विकल्प कहना पड़ता है, आता है, परन्तु नोंध करने पर झूठा है। सम्यक् अनुभव करने के काल में उसका लक्ष्य छूटे बिना अनुभव होता नहीं, इसलिए सम्यग्दर्शन और सम्यक् अनुभव होने पर मति-श्रुतज्ञान में आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन, साक्षात् आत्मा का मति-श्रुत में चौथे गुणस्थान में होने पर वह भेद अत्यन्त झूठा है। समझ में आया? नवरंगभाई! आया उसे कहा। सच्चा, ऐसा कहा न। विद्यमान है, ऐसा कहा, देखो, 'इह' शब्द था। 'इह' शब्द तो कहा था।

'इह' अर्थात् विद्यमान ऐसी जो ज्ञान उपजने पर प्रारम्भिक अवस्था... है, ऐसा कहा था। है? 'इह' 'प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां' अवस्था है, ऐसा कहा था। सच्ची है, ऐसा नहीं कहा था। शब्दों का एक-एक शब्द में तोला है यहाँ तो। एक अक्षर का अर्थ भी... तत्त्वार्थ राजवार्तिक में कहते हैं कि एक अक्षर कम आवे तो बड़े,.... क्या कुछ कहते हैं, भाई? बड़ा पुत्र जन्मा, ऐसा बड़ा लाभ हुआ। एक अक्षर अधिक नहीं। ऐसा तत्त्वार्थ राजवार्तिक में अकलंकदेव कहते हैं। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' कहे पहले सम्यक् क्यों रखा? ज्ञान पहले क्यों नहीं रखा? ज्ञान के दो शब्द हैं और सम्यक् के तीन शब्द हैं। तीन में पहले दो, उसे पूज्य रूप से रखना चाहिए। तीन अधिक क्यों रखे? सुन न भाई! सम्यक् में सत्यता बतलाने के लिये पहला सम्यक् तीन शब्द आये, वरना दो शब्द आवे तो तीन शब्द रखें नहीं। हमारे एक शब्द अधिक आवे, उससे कम आवे वह हमारे बड़े पुत्र का जैसे लाभ हो, वैसा यहाँ लाभ होता है, ऐसा मानते हैं—ऐसा कहते हैं। तत्त्वार्थ राजवार्तिक के अन्दर बड़ा स्पष्टीकरण अकलंकदेव ने किया है। यह तो साधारण बात की। उसमें तो एक-एक शब्द को तौलकर बहुत बात की है।

यहाँ कहते हैं, भाई ने पूछा न, सत्य था? कहे, हाँ। सत्य था अर्थात् कि था इतना। क्या सच्चा, उसकी बात नहीं। यह विद्यमान ऐसी 'प्राक्पदव्यामिह निहितपदानां' रखा है जिसने कदम अर्थात् लक्ष्य जिसने। कदम अर्थात् लक्ष्य। जिसने अभी भगवान आत्मा अन्तर अनुभव में अतीन्द्रिय अमृत के वह अतीन्द्रिय अमृत के वेदन प्रगट नहीं हुए, ऐसे वेदन का काल जो सम्यग्दर्शन का, सम्यग्ज्ञान का, ऐसे अमृत भगवान का वेदन आया नहीं, उसे यह अमृतवाला, अमृतस्वरूप कहना, वह तो अभेद हो गया। परन्तु वह अमृतवाला, ज्ञानवाला, दर्शनवाला, इतने भेद की अवस्था विद्यमान है—ऐसा कहा है। समझ में आया? यह भ्रम नहीं; वापस नहीं है—ऐसा नहीं है। आहाहा! है अवश्य। नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार वह है अवश्य। सच्चा है—ऐसा नहीं। है रूप से सच्चा, परन्तु सत्य है और सत्य को लाभ करे, इसलिए वह विद्यमान है—ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या हो?

ऐसी चीज़ कोई है कि सर्वज्ञ का पेट (अभिप्राय) खोलकर इतनी गहरी तत्त्व की बात है कि जिसे यह सर्वज्ञ को क्या कहना है, वह अभी समझे बिना यह सर्वज्ञ ऐसा कहना चाहते हैं और देव ऐसा कहना चाहते हैं, गुरु ऐसा कहना चाहते हैं, यह देव-गुरु-शास्त्र की असातना करता है। देव-गुरु-शास्त्र को क्या कहना है, उसके बदले अपने घर की कल्पना डालकर वीतराग ऐसा कहना चाहते हैं और गुरु ऐसा कहना चाहते हैं और शास्त्र ऐसा कहना चाहते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं होती, बापू! देव, गुरु और शास्त्र को क्या कहने का अभिप्राय है? यह जाने बिना तेरे घर के अभिप्राय से देव, गुरु, शास्त्र को खतौनी करे, वह तो बड़ी अन्याय की प्रवृत्ति है, चैतन्य का खून हो, ऐसी प्रवृत्ति है। खबर नहीं होती, क्या करे? क्या चीज़ है।

कहते हैं, उस जीव को इतना गुण-गुणी भेदरूप अवस्था विद्यमान है। विद्यमान है, ऐसा कहकर सिद्ध किया है। है ऊपर, भाई! अपने बहुत आता था न वजन पहली बार टालने। यह है, रखो। विद्यमान अवस्था है। भ्रमणा है, अभी वस्तु का भान नहीं, उससे पहले भी गुण-गुणी के भेद का विकल्प विद्यमान है। लाभदायक है या सच्चा है, ऐसा नहीं। 'है' रूप से सच्चा, परन्तु लाभरूप से सच्चा, ऐसा नहीं। देवानुप्रिया! चन्दुभाई! हमारे भाई सवेरे यह कहते थे कि जरा उतावल हुई। भाई कहो तब कहाँ से

अब ? तो जरा धीरे से लेते हैं । लेते हैं तो धीरे से ।

मुमुक्षु : सच्चा कहना या झूठा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह झूठा ही है वह तो । अवस्था आती है, इतनी बात । बस, बाकी झूठी । गुण-गुणी का भेद झूठा है । समझ में आया ? पहला झूठा नहीं, फिर कहाँ से झूठा हुआ ? सच्चा कहीं झूठा होता है ? मात्र विद्यमान इतनी अवस्था है । इसलिए तो हन्त, खेद है कि यह गुणी भगवान को समझाने के लिये यह गुणवाला कहना पड़ता है, यह ज्ञानवाला कहना पड़ता है । ज्ञानस्वरूप से ही अभेद है पूरा । उसे ऐसा भेद से कहना पड़े । कहते हैं कि खेद है । यहाँ मानो अर्थ खेद नहीं रखा । अपने उस अर्थ में किया है मूल समयसार में । क्योंकि उसमें खेद रखा है न अध्यात्म तरंगिणी में । यहाँ हन्त शब्द आया न । **नोंध करने पर झूठा है ।** भगवान आत्मा अपने निर्विकल्प दरवाजे से जहाँ प्रविष्ट हुआ अन्दर में... झूठा, फिर 'हन्त' खेद, वह खेद न करके, उसे झूठा ठहरा दिया । खोटा है । 'तदपि एषः न किञ्चित्' कुछ नहीं अर्थात् कि झूठा है । कुछ नहीं अर्थात् कि खोटा है । कुछ नहीं... कुछ नहीं... आहाहा ! व्यवहार का तिरस्कार और निश्चय की पकड़ !

यह नोंध अर्थात् ज्ञान । यह ज्ञान कौन सा ? अनुभव का ज्ञान । उसमें पहले आया था न ज्ञान उत्पन्न होने पर । उसके पहले ज्ञान का जो अंग कहा था भेदरूप कथन, वह ज्ञान का अंग एक प्रकार ऐसा आता है समझण का । अंग-अंश, ऐसा ।

वे जीव कैसे हैं... कौन ? जिसे समझण हुई, अनुभव हुआ और जिसे व्यवहार झूठा हुआ । था, वह टल गया । था, वह टल गया, उसका नाम झूठा । गुण-गुणी भगवान अभेदस्वरूप को गुण के भेदरूप से कहा था, वह झूठा सिद्ध हुआ । कब ? यह अन्तर अनुभव होने पर । वह कैसा जीव है ? **वे जीव कैसे हैं जिन्हें व्यवहारनय झूठा है ?** देखो, व्यवहारनय झूठा है, वह जीव कैसा है ? एक-एक शब्द को तौल-तौलकर कहा है । पूरे २७८ कलश । यह तो अद्भुत पूरा पाठ पुस्तक जब आयेगी तब कुछ अलग... वह बहुत संग्रहित करके उसी और उसी में इतना समावेश कर दिया है । पाठ के एक-एक शब्द में, बहुत शास्त्र का सार इस कलश में ही सब भर दिया है ।

‘चिच्चमत्कारमात्रं अर्थं अन्तः पश्यतां’ देखो, यह व्याख्या। ‘समझ करने पर’ कहा था न? वह ‘समझ करने पर’ ऐसा जीव कौन? ऐसा। जिसे भान हुआ, ऐसा जीव कौन? कि चेतना प्रकाश इतनी ही है... चमत्कार का अर्थ चेतना। भगवान् चेतना प्रकाश इतनी ही है... चेतनावाला नहीं, चेतना प्रकाश। इतनी ही है शुद्ध जीववस्तु... ज्ञानवाला कहा, उसे निकाल दिया। चेतना प्रकाश इतनी ही है... यह वस्तु। ऐसा अन्तर अनुभव होने पर। समझ में आया या नहीं इसमें? रतिभाई! चेतना अर्थात् चमत्कार शब्द किया है। चेतना चमत्कार का अर्थ प्रकाश किया है। क्यों प्रकाश किया? कि जिसे जानने में राग की आवश्यकता न पड़े, संयोग की आवश्यकता न पड़े, ऐसा चमत्कारी ज्ञान प्रभु है। ऐसा चमत्कारी चैतन्य सृष्टि अन्दर स्वभाव, चमत्कार जिसका है कि जिसके एक समय में राग और पर का अवलम्बन लिये बिना चमत्कार प्रगट हो, ऐसा चेतना प्रकाशमय भगवान् आत्मा अन्दर विराजता है।

इतनी ही है शुद्ध जीववस्तु... देखो, भेद नहीं, पुण्य नहीं, विकल्प नहीं, राग नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। कैसा है आत्मा अनुभव में आया? कि शरीरवाला नहीं, कर्मवाला नहीं, व्यवहारवाला नहीं, भेदवाला नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म में पड़े यह रूखा लगे ऐसा है, परन्तु क्या (हो)? वस्तु ही ऐसी है वहाँ दूसरी हो कैसे? वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है, वहाँ उसे चाहे जितना हल्का करके कहे, परन्तु सत्य कहीं जैसा है, वैसा आवे, उससे हल्का कैसे उल्टा हो? हल्का करना अर्थात् उल्टा करना कहा जाता है। दूसरा रास्ता कहे तो वह उल्टा कहा जाता है। भाई! कुछ हल्का करो न, हल्का। हल्का अर्थात् उल्टा। आहाहा!

सर्वज्ञ के—परमात्मा की वाणी में... यह तो सवेरे आया था, नहीं? एक जीववस्तु उपादेय है, ऐसा वाणी में आया था। वह वाणी ऐसा कहती है कि भेद करके तुझे कहा गया है, तथापि अभेद वस्तु चेतना ही जिसका प्रकाश, ऐसी शुद्ध जीव परमानन्द की मूर्ति, उसे ‘अन्तः पश्यतां’ प्रत्यक्षरूप से अनुभवता है। देखो, ‘अन्तः पश्यतां’ विकल्प से देखता था, वह नहीं, अब ‘अन्तः’ प्रत्यक्षरूप से अनुभवता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में चैतन्य का अकेला प्रत्यक्षपना आया। यह चौथे गुणस्थान की बात चलती है। सातवें की बात कहाँ...? अभी पाँचवाँ, छठवाँ तो कहीं रहा। उसकी दशा क्या, वह तो फिर

व्याख्या। यह तो अभी चौथे गुणस्थान की शुरुआत दशा के पहले यह विद्यमान भेद आवे और जहाँ अनुभव होने पर 'अन्तः पश्यतां' उसे भेद (विकल्प) झूठा हो गया। वह विद्यमान था सही पहले। यह गुणी है, इसका यह गुण है, ऐसा भेदरूप विकल्प था, वह अवस्था विद्यमान थी, तथापि चैतन्य चमत्कारमात्र ही शुद्ध जीववस्तु है, ऐसा 'अन्तः पश्यतां'। 'पश्यतां' का अर्थ कोई ऐसा कहे कि अन्तर मानता है और श्रद्धा करता है और रुचि करता है। इतनी व्याख्या। ऐसा नहीं है। यह सवेरे आ गया था। श्रद्धा, रुचि, प्रतीति करे—ऐसा नहीं। प्रत्यक्षरूप से आत्मा को मति-श्रुतज्ञान द्वारा वेदन करे-जाने, उसमें रुचि श्रद्धा, प्रतीति उसे कहा जाता है। अकेली श्रद्धा, ऐसा आत्मा है, अभेद है, ऐसा नहीं है। आया था सवेरे? बहुत आया था सवेरे तो बहुत आज आया था। आहाहा!

कहते हैं कि वह प्रत्यक्षपने... 'अन्तः पश्यतां' विकल्प से देखना नहीं, राग से नहीं, व्यवहार से नहीं, भेद से नहीं। 'अन्तः' जो स्वरूप शुद्ध आनन्द, उसे 'पश्यतां' अर्थात् अनुभव करना। 'पश्यतां' अर्थात् अनुभव करना। देखना, अर्थात् अनुभव करना। अन्तर स्वभाव आनन्दकन्द को अनुसरकर होना और प्रत्यक्षरूप अनुभव करना, उसे उन भेद की अवस्था झूठी हो गयी। लक्ष्य में रही नहीं। लक्ष्य छूट गया, तब अनुभव हुआ। उस अनुभव के काल में वह चीज़ झूठी हो गयी। ऐसे जीव के लिये झूठा है। समझने वाला पहले है, ऐसी अवस्था एक है, इसलिए बराबर है। परन्तु है इतना, मेरे गुण-गुणी का भेद विकल्प उठता है, इतना ही बराबर है। बराबर अर्थात् है—ऐसा बराबर। लाभदायक, ऐसा नहीं। ऐई! नवरंगभाई! नहीं, ऐसा नहीं। है इतना बराबर, ऐसा। सच्चा है, ऐसा नहीं, लाभदायक है, ऐसा नहीं, परन्तु ऐसा अंग आये बिना रहता नहीं। ओहोहो! उसके बदले तो अभी सम्यग्दर्शन की व्याख्या कहीं की कहीं और कुछ की कुछ (कर डाली)। भगवान को कहना कुछ, शास्त्र में कहना कुछ, गुरु को कहना कुछ, इन तीन को कहना कुछ और इसे मानना कुछ, मनाना कुछ। कुछ अर्थात् उसका अर्थ हुआ या नहीं? कहीं, इसलिए उससे भिन्न। भाई!

आनन्दघनजी ने कहा न, 'देव, गुरु, धर्म की श्रद्धा कहो कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध श्रद्धान आणो?' उनको तो यह कहना है कि निर्विकल्प अनुभव को सम्यग्दर्शन कहते

हैं। मति-श्रुतज्ञान की पर्याय प्रत्यक्षरूप से आत्मा को वेदे, जाने, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, ऐसा भगवान को कहना है। गुरु ऐसा अनुभव और जानते और कहते हैं। शास्त्र का कथन भी इस प्रकार का है। इस प्रकार से न जाने और कहे कि हमको देव-गुरु-शास्त्र सच्चे, मान्यता है। यह बात झूठी है। बराबर है या नहीं? 'देव, गुरु, धर्म की शुद्धि कहां कैसे रहे? कैसे रहे शुद्ध यह श्रद्धान आणो और शुद्ध श्रद्धान बिन सर्व क्रिया करे, छार पर लीपणुं तेह जाणो,' हाथ में राख डालकर ऊपर गार का लेप करे, वह गार (मिट्टी) चलती नहीं। पपड़ी उखड़ती है ऐसी की ऐसी पूरी। इसी प्रकार भगवान ने कही हुई यह प्रतीति और इस दशा के अनुभव बिना यह कहीं व्रत और नियम और क्रियाकाण्ड तथा तपस्यायें करे, वे सब पपड़ियाँ उखड़कर चार गति में भटकनेवाला है। उसे आत्मा का कहीं जन्म-मरण के एक भव के अन्त का उसे अवसर आनेवाला नहीं है। समझ में आया?

क्या कहा था? वह जीव कैसा है? कैसा अर्थात्? वह अनुभव करने पर व्यवहार झूठा है, वह किसको है? झूठा अर्थात् रहता नहीं, ऐसा। अर्थात् क्या? कि अभेद अनुभव में भेद दिखता ही नहीं और भेद है नहीं। है नहीं, इसलिए वह झूठा है, वह था सही पहला। समझ में आया? यह तो बीच में—मध्य में है न अपने, समझ में आया? वचन का विश्राम बीच में। क्योंकि यह समझण का ही विवाद है पहला और समझण बिना विश्राम आवे, ऐसा नहीं। कहते हैं, अर्थ का अर्थ किया, देखो, 'चिच्चमत्कारमात्रं अर्थ' 'अर्थ' है न अर्थ? अर्थ अर्थात् शुद्ध जीव पदार्थ। अकेला चेतना प्रकाश इतनी ही है शुद्ध जीववस्तु... वस्तु कहनी है न, इसलिए इतनी है। जीव कैसा, ऐसा नहीं। जीव वस्तु कहनी है न। वस्तु कहनी है कि चेतना प्रकाश... चेतना प्रकाश इतनी ही है... इतनी ही है शुद्ध जीववस्तु... ऐसे प्रत्यक्षरूप से अनुभव करनेवाले को भेद का विकल्प रहा नहीं और अभेद में वह है नहीं, इसलिए उसे झूठा कहा गया है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है—वस्तु का अनुभव होने पर वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है। देखो, भाषा इन्होंने पहले से की है। 'व्यवहरणनयः' दूसरी लाईन में 'जितना कथन' ऐसा लिया था। 'व्यवहरणनयः' पाँचवीं गाथा (कलश) में। ... कथन।

वह कथन सब व्यवहार है। क्योंकि विकल्प उठे छद्मस्थ है, वह सब कथन ही व्यवहार है। दूसरी लाईन थी पाँचवीं गाथा की। यहाँ तो मुझे छपा हुआ है न, इसलिए स्पष्ट शब्द हैं इसमें। तुम्हारे जरा... यह छपा हुआ आया है। तुम्हारा तो लीथो का होगा। समझ में आया इसमें? वस्तु का अनुभव होने से वचन का व्यवहार सहज ही छूट जाता है। देखो, यह गुणी भगवान ज्ञानस्वरूप, ज्ञानवाला, ऐसा जो विकल्प और ऐसा जो कथन, वह अनुभव करने के काल में वह विकल्प और वाणी रहते नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? वचन का व्यवहार छूटा, इसका अर्थ गुणी और गुण के भेद का विकल्प भी वहाँ सहज छूट जाता है।

कैसी है वस्तु? परम उत्कृष्ट है, उपादेय है। देखो, परम की व्याख्या की उत्कृष्ट। वस्तु भगवान उत्कृष्ट वस्तु और उपादेय। यह लाकर रखा वापस। सवेरे आया था कि दिव्यध्वनि में ही शुद्ध जीववस्तु उपादेय आयी है। वह शुद्ध भगवान आत्मा परम उत्कृष्ट, वही अन्तर दृष्टि में लेकर ज्ञान द्वारा वेदनेयोग्य है। उसे परम उत्कृष्ट कहा जाता है। कैसी है वस्तु? यह तो अस्ति से कहा। अस्ति से ऐसा कहा। परम उत्कृष्ट है, उपादेय है। उसमें क्या नहीं?

‘परविरहितं’ ‘पर’ अर्थात् द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से... ‘विरहितं’ भिन्न है। लो! जो भगवान आत्मा नोकर्म अर्थात् शरीर से भिन्न, कर्म से भिन्न और भावकर्म के गुणगुणी के भेद का विकल्प, ऐसा भावकर्म। समझ में आया? जो वस्तु अनुभव में आने के प्रसंग में, निश्चयदृष्टि होने के काल में वह स्वयं तो उपादेय वस्तु चित् चेतनप्रकाश ही है और वह ही उपादेय अर्थात् आदरणीय हो गयी, आदर वहाँ गया अर्थात् उस चीज में शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं। कर्म नहीं? आठ कर्म तो अभी बहुत ठेठ तक रहते हैं। केवली को चार कर्म रहते हैं। लोग कहते हैं न। सुन न, भाई!

यह ज्ञायकभाव भगवान चैतन्य का प्रकाश का पुंज कर्मरहित चीज है, शरीररहित चीज है। शरीर अर्थात् नोकर्म और भावकर्म अर्थात् गुणी और गुण का भेदरूप विकल्प, उस भावकर्मरहित वह चीज है। आहाहा! सुनने के लिये कभी मिला, ऐसा होगा यह। रतिभाई! सटोरिया के उस सट्टे और यह और वह करते-करते यह क्या है परन्तु यह? यह जैनधर्म की पद्धति होगी? जिन अर्थात् जीतना। जीतना किसे? कि रागादि को।

कौन जीते ? कि स्वभाव । तब स्वभाव कैसा ? कि अभेद । उसका आश्रय करने से राग और मिथ्यात्व जीत लिया जाता है । अर्थात् उत्पन्न होते नहीं । उसे जीतते हैं, ऐसा यह वीतराग का मार्ग है । समझ में आया ?

कैसी है वस्तु ? 'परविरहितं' द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से भिन्न है । लो, यह पाँच श्लोक पूरे हुए । अपने वहाँ आया था न, इसलिए यह लिया था, हों ! वरना तो अपने नियमसार चलता है । यह चलता है न ? यह तो वह श्लोक उसमें आया था आधार के लिये, इसलिए लिया ।

अब नियमसार, पृष्ठ १०४ । यह श्लोक आया था, देखो यह । और (इस ४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)— यह तो अमृतचन्द्राचार्य के श्लोक का आधार दिया था ऊपर । उसका बहुत संक्षिप्त अर्थ था, इसलिए यह कलश में विस्तारवाला अर्थ था, वह हुआ ।

अब मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव यह ४९वीं गाथा पूरी करते हुए एक श्लोक रखते हैं ।

(स्वागता)

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ
संसृतावपि च नास्ति विशेषः ।
एवमेव खलु तत्त्वविचारे
शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति ॥७३॥

क्या कहते हैं ? शुद्धनिश्चयनय से... अकेला आत्मा उपादेयरूप से परमानन्द की दृष्टि द्रव्य की चाहिए तो मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है... यह मुक्ति, वह भी एक पर्याय है निर्मल और संसार भी एक मलिन पर्याय है । समझ में आया ? मोक्ष भी एक पर्याय है सिद्ध की । पर्याय होगी ? ऐई ! सिद्ध-सिद्ध । अनन्त गुण प्रगट होते हैं न, वह पर्याय कैसी ? प्रगट होते हैं, ऐसा कहा न ? प्रगटे, वह पर्याय प्रगटे । गुण कभी प्रगटे नहीं । गुण त्रिकाल रहे । वस्तु और वस्तु का त्रिकाल तादात्म्यस्वभाव, वह त्रिकाल रहे । उसकी पर्याय सिद्धपद केवलज्ञान भी एक पर्याय है । मुक्तदशा भी एक अवस्था एक

समय की है। एक समय की ही है, दो समय की नहीं। केवलज्ञान और सिद्धपद भी एक समय रहते हैं। दूसरे समय में उस पर्याय का व्यय होकर दूसरी दशा उत्पन्न होती है।

इसलिए मुक्ति में एक शुद्ध निश्चय द्रव्य की दृष्टि से देखने से, अभेद स्वभाव को देखने से, जो ऊपर अनुभव कहा, उसमें देखने से उस **मुक्ति में तथा संसार में...** दो पर्याय में वस्तुरूप से कुछ अन्तर नहीं। यह वस्तु है, वह है एकरूप त्रिकाल-त्रिकाल आनन्द और अभेदस्वरूप है। **ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर (परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** सर्वज्ञ परमात्मा और सन्त और ज्ञानी अन्तर तत्त्व के रसिक जीव ऐसे तत्त्व को विचारने पर स्वभाव का ज्ञान करने पर, उस त्रिकाल स्वभाव में मुक्ति और संसार दोनों नहीं हैं। इसलिए मुक्तिवाले और संसारवाले—ऐसे दो भेद रहते नहीं। सभी संसारी जीव भी मुक्त जैसे त्रिकाल द्रव्य में पड़े हैं। ऐसी सम्यग्दृष्टि के विषय में तत्त्व के रसिक, तत्त्व के विचारनेवाले, **शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष...** ऐसा जानते हैं और ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ४९ में बहुत कहा था न यह।

एक समय के अन्दर भले वह मुक्ति होओ सिद्ध। उसमें ऐसा कहा था (संसारी) जीव सब (सिद्ध समान ही) हैं। वह किस अपेक्षा से? वस्तु रूप से। पर्यायरूप से नहीं, पर्याय तो है वह है। परन्तु पर्याय को देखता है कौन? यह तो अपने ७१ गाथा (कलश) में आ गया था न? ७१, क्या कहलाता है? ७१ कलश। **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ? किस नय से जानूँ? सुबुद्धि अर्थात् सम्यग्ज्ञानी को और कुबुद्धि अर्थात् मिथ्याज्ञानी को त्रिकाल ध्रुव द्रव्य भगवान प्रगट स्वभाव पड़ा है उनको ऐसा। उनमें मैं भेद किस नय से जानूँ? व्यवहारनय को नय ही नहीं कहा, कहते हैं। झूठा नय। एक अंश का विषय करे भेद करके वस्तु में से, यह वह कहीं नय कहलाये? ऐसा करके तिरस्कार किया है। इस व्यवहारनय के गले पड़े। हाय... हाय... अरे! हमारा व्यवहारनय, हमारा व्यवहार। परन्तु तुझे व्यवहार कब है? एकरूप चिदानन्द का अनुभव और दृष्टि हुए बिना पर्याय को जाननेवाला व्यवहारनय अज्ञानी को होता नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म लगे,**

नहीं ? रतिभाई कैसा होगा ? सरस है ? यह लोहे के व्यापार में से यह... मस्तिष्क बहुत हल्का करना पड़े इसमें, हों !

कहते हैं, यह तो नहीं—कर्म नहीं, शरीर नहीं, परन्तु मुक्ति की अवस्था और यह बन्ध की। किस नय से देखूँ मैं उसे ? आहाहा ! जो वर्तमान को जाने, वह कहीं वास्तविक नय कहलाये ? शुद्धनिश्चयनय से भगवान आत्मा में मुक्ति की पर्यायवाला या इस संसार की पर्यायवाला, दोनों वस्तु में नहीं। अभेद चैतन्य जिसमें सम्यग्दर्शन का विषय भूतार्थ 'भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो' उसमें तत्त्व विचारने पर... अर्थात् वस्तु का ध्रुवपना विचारने पर। एक समय की अवस्था को गौण करने से पूरी चीज़ में तत्त्व विचारक... तत्त्व के विचारक उसे कहते हैं, वह तत्त्व के रसिकजन उसे कहते हैं। ऐसे तो बहुत कहते हैं तत्त्व-तत्त्व। समझ में आया ? और भाई ने कहा न, देवचन्दजी ने नहीं ? 'तत्त्वरसिक जन थोडला जी, बहु योजन संवाद, जाणो छो जिनराजजी रे... यह सघळो विखवाद रे चंद्रानन जिन सांभळीये अरदास।' तत्त्वरसिक जन थोड़े। यह तो तत्त्वरसिक की व्याख्या दूसरी की। शुद्धद्रव्य की रुचिवाला अन्तर दृष्टि पड़ी, उसे तत्त्वरसिक कहा। अकेले साधारण तत्त्व के जाननेवाले को तत्त्वरसिक कहा नहीं। तत्त्व अकेला अखण्डानन्द का कन्द ध्रुव, उसमें रसिया होकर कूदकर पड़े हैं। वीर्य का जोर अन्दर मारकर पड़े हैं। समझ में आया ?

यह तत्त्व विचारने पर (परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष... उस वस्तु में मुक्ति और बन्ध दोनों दिखाई नहीं देते। यहाँ बन्ध लिया परन्तु संसार। संसार की एक समय की दशा। संसार अर्थात् एक समय और मुक्ति भी एक समय। आहाहा ! वहाँ एक समय कैसे रहता होगा ? कुछ अवरोधक होगा ? पर्याय है और यहाँ पर्यायदृष्टि की मश्करी की है। पर्याय, वह अंश, वह कहीं वस्तु होगी ? विकृत अवस्था एक समय का संसार, मुक्ति एक समय की केवलज्ञान, यह वह कहीं वस्तु है ? अब अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुणों का पिण्ड, उसमें अमुक गुण की एक समय की अवस्था की दृष्टि, यह वह कहीं वस्तु है ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह शुद्धतत्त्वरसिक पुरुष ऐसा जानते और कहते हैं। यह ४९ (गाथा) पूरी हुई।

अब ५०वीं। देखो, अलौकिक गाथा। ५० वीं अलौकिक गाथा है।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।

सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥५० ॥

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।

अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही ॥५० ॥

इसका थोड़ा अर्थ करते हैं। अन्वयार्थ। पहला इसका अन्वयार्थ कहते हैं, फिर टीका लेंगे। पूर्वोक्त सर्व भाव... पूर्व में कहे। आत्मा में उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव। चार भाव जो पूर्व में कहे कि आत्मा में राग-द्वेष का भाव, वह विकल्प, वह उदयभाव; उसका उपशम होना सम्यक्त्व आदि, वह उपशमभाव और क्षयोपशम किंचित् मलिनता और किंचित् विकास, ऐसी दशा को क्षयोपशम और एकदम निर्मलदशा का नाम क्षायिक है। परन्तु ये चारों ही एक समय की पर्याय है। चारों ही एक समय की पर्याय है। समझ में आया या नहीं इसमें? ये पूर्वोक्त... पूर्व में कहे, ऊपर बहुत सब ठेठ आ गये थे। 'एते सर्वे भावाः व्यवहारनयं प्रतीत्य भणिताः खलु' ऊपर बहुत सब कहे थे, हों! अशरीरा... ऊपर बहुत कहा। बहुत बोल लिये थे। अरस, अरूप बहुत उसके पहले सब लिये। सब उदय, उपशम, क्षयोपशम सब आ गये थे। वे सब चार भाव आत्मा के ऊपर वे पर्यायरूप हैं। क्या कहा? यह उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। इसमें अर्थ में भी आयेगा अभी। विभावपर्यायें, वे उपरोक्त गाथा में व्यवहारनय के कथन द्वारा कहा है।

भगवान आत्मा, उस आत्मा के पूर्ण स्वभाव के अतिरिक्त जितना एक समय का क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम, उदयभाव, वे सर्व भाव परस्वभाव हैं, ... यह मोक्षमार्ग का कथन है। अर्थात् जैसे अपनी नयी पर्याय परद्रव्य में से नहीं आती, उसी प्रकार अपनी वर्तमान क्षायिक समकित आदि की पर्याय हो, उससे भी नयी पर्याय नहीं आती। इसलिए क्षायिक समकित को भी यहाँ परद्रव्य कहा गया है। उसकी बराबरी में डाल दिया है। जैसे शरीर में से, कर्म में से धर्म की नयी अवस्था नहीं होती, इसलिए वह परद्रव्य है, उसी प्रकार भगवान आत्मा में क्षयोपशमसमकित, क्षायिकसमकित, क्षायिकचारित्र, क्षयोपशमचारित्र पर्याय में, उस पर्याय में से भी धर्म की वृद्धि की पर्याय

उसमें से नहीं आती। जैसे परद्रव्य में से नहीं आती, वैसे क्षायिकभाव के समकित में से नयी पर्याय नहीं आती। इस अपेक्षा से जैसे परद्रव्य रजकण हैं, वैसे क्षायिकभावों को भी... द्रवकर पर्याय जो आवे द्रव्य, उसे स्वद्रव्य कहते हैं। पर्याय द्रवकर नयी पर्याय नहीं आती, इसलिए चार भाव को परद्रव्य कहते हैं। समझ में आया ?

सर्व भाव... एक शुद्धपारिणामिक त्रिकाल भाव के अतिरिक्त। आहाहा! आधार ही ध्रुव पड़ा है अनादि-अनन्त भगवान अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड। अनन्त केवलज्ञान सादि-अनन्त। संसार की पर्याय का तो अनादि-अन्त आ गया, परन्तु यह तो जब से प्रगटी, वह अनन्त काल। आदि नहीं, पर्याय बिना का द्रव्य नहीं और द्रव्य बिना पर्याय नहीं। तो वह पर्याय बिना का कभी द्रव्य नहीं, इसलिए वह पर्याय अनन्त काल, द्रव्य अनन्त काल, पर्याय अनन्त काल, ऐसी अनादि पर्याय से केवलज्ञान आनन्द की पर्याय अनन्तगुणी पर्याय। ऐसी अनन्तगुणी पर्याय का एक पिण्ड गुण, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य, एकरूप त्रिकाल पारिणामिकस्वभाव, वह स्वद्रव्य है। क्षायिकपर्याय आदि स्वद्रव्य नहीं, परद्रव्य है। पर्याय का, मोक्षमार्ग का अधिकार है। मोक्षमार्ग पर्याय है। तो कहते हैं कि मोक्षमार्ग की पर्याय, पर्याय में से आती नहीं। समझ में आया ? भारी कठिन बातें। लो, यह तो लालभाई ने माँगी है, हों! यह गाथायें इन्होंने माँगी थी और कलश की गाथायें थीं। ऐई! नवरंगभाई!

वे परद्रव्य हैं,... एक शब्द। एक चैतन्य 'सगदव्वम्' उपादेय है। दूसरी लाईन। द्रव्य तो ध्रुव त्रिकाल एकरूप, वह स्वद्रव्य। इसके अतिरिक्त पर्याय परद्रव्य, उदय—विकल्प-राग परद्रव्य, क्षायिकसमकित परद्रव्य, क्षयोपशमचारित्र की पर्याय छठवें में प्रगट हुई, वह परद्रव्य। क्योंकि पर्याय द्रवती नहीं नयी पर्याय को और इसलिए वह परद्रव्य है, परस्वभाव है। पहले दो बात। यह सब चार परस्वभाव हैं।

एक व्यक्ति चिल्लाहट मचा गया था भाई! वह नियमसार की ४३ गाथा है न। वह सब आ गयी है उसमें से यह है। देखो, ४३ में आ गयी देखो यह ४३ है न! क्षायिकभाव नहीं, ऐसा आता है न। नहीं क्षायिकभाव... यह ४३ से पहले ४१ में होगा। ४१ गाथा। उस ४१ गाथा का यह सार अब कहते हैं यहाँ। ४१ वाँचने पर एकदम चिल्लाहट मचा गया। 'णो खयइभावठाणा' पहला शब्द है न! ४१, इसका ही अधिकार

है, यह चलता है इसका अधिकार है। 'णो खयइभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा । ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा ॥' भगवान आत्मा में क्षायिकभाव नहीं। आहाहा! वह साधु वाँचकर कहे, अररर! यह वह क्या कहते हैं? सिद्ध को क्षायिकभाव और आत्मा में क्षायिकभाव नहीं। यह क्या कहते हैं? अब सुन न, बापू! इसका हल करना कठिन है। वह यह ४१ में जो कहा था, उसके पहले सब कहे थे ४१ में सभी बोलों को यहाँ पूर्वोक्तभाव में ले लिया है। पूर्वोक्त सर्व भाव... अर्थात् ये सब कहे वे। क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम (औदयिक)। यह तो तुम्हारे कारण (कहा)। वरना अर्थ में तो आयेगा। समझ में आया? पूर्व में कहे गये। यह ४१ आदि में कहे गये। पहले भी कहे और बाद में भी कहे ४१ के बाद। सर्व पर्यायें परस्वभाव है, ... परस्वभाव है। स्त्री-पुत्र क्या होंगे? अपने होंगे या नहीं? भाई! हमारे हों, वे कहीं डण्डा मारने से पानी कोई अलग पड़े? ऐसी लोग बातें करते हैं न। इसी प्रकार दो भाई कहीं अलग पड़ें? ऐसा कहकर बातें करते हैं, हों! दो भाई अलग पड़े, भाई तो अलग थे वे अलग पड़े, परन्तु अब किसकी मांडी तुमने?

यहाँ भगवान आत्मा वह पर्याय से भिन्न है। पर्याय में तन्मय हो जाये तो द्रव्य अविनाशी का नाशवान हो। एक समय की पर्याय द्रव्यरूप हो तो एक समय न रहकर पर्याय त्रिकाली द्रव्य हो जाये। समझ में आया? इसलिए भगवान आत्मा में जितने भाव कहे, उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक केवलज्ञान आदि भाव। वह साधक को तो नहीं, परन्तु केवलज्ञान जिसे हो, उसका लक्ष्य करने जाये तो भी वह विकल्प उठते हैं और अपने को जो क्षायिकसमकित या क्षयोपशमचारित्र छठवें (गुणस्थान में) भी हो, वह भी सब परस्वभाव है, वह स्वद्रव्य स्वभाव नहीं, त्रिकाल द्रव्यस्वभाव नहीं, इसलिए उन्हें परस्वभाव हैं—ऐसा कहा, उन्हें परद्रव्य हैं—ऐसा कहा। दो बात। इसलिए हेय हैं, ऐसा कहा। आहाहा! उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। क्षायिकभाव के ऊपर से लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। कहो, अब इसे अभी विकल्प से लक्ष्य छोड़ना सुहाता नहीं, वह चिल्लाहट करे (कि) नहीं... नहीं... नहीं... उससे हो, हों! पकड़ रख तब उसे। पकड़ रखे वहाँ सम्यक्त्व होता होगा? रहता ही नहीं। विकल्प तो एक प्रकार से आते नहीं। भिन्न... भिन्न... भिन्न... प्रकार के (आते हैं)। क्योंकि विचित्र कर्म के निमित्त के अन्दर

विविध प्रकार का उसका पुरुषार्थ जुड़ता है, इसलिए भिन्न-भिन्न विकल्प उठते हैं, पकड़े रहे नहीं। ऐसा ही विकल्प लाऊँ, ऐसा हो सकता नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि वे सब क्षायिकभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द की पर्यायें, क्षायिक समकित, क्षयोपशमचारित्र, क्षयोपशमसमकित, वे सब परस्वभाव हैं। क्योंकि मोक्ष के मार्ग की... यह अधिकार नियमसार है। नियमसार की पर्याय का प्रगट होना, वह पर्याय में से आता नहीं, इसलिए उसे परस्वभाव कहते हैं, उसे परद्रव्य कहते हैं। इसलिए हेय है। अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य... एक परमपारिणामिक त्रिकाल स्वभाव ऐसा स्वपदार्थ, ऐसा आत्मा उपादेय है। वही श्रद्धा में लेकर अनुभव करनेयोग्य है। इसकी विशेष बात टीका में आयेगी...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

यह नियमसार की ५०वीं गाथा। मोक्षमार्ग अधिकार। नियमसार का अर्थ ही मोक्षमार्ग है। यह मोक्षमार्ग, वह पर्याय है। वह पर्याय-अवस्था कहाँ से प्रगटे? जहाँ से प्रगटे, वह उपादेय है। क्या कहा, समझ में आया? नियमसार। नियम अर्थात् आत्मा; सार अर्थात् पुण्य-पापरहित ऐसा समयसार कहलाता है। अब यहाँ नियमसार। मोक्ष का निर्विकल्प मार्ग जो सार अर्थात् व्यवहाररहित। यह पहले आ गया है तीसरी गाथा में। विपरीत के परिहार के लिये सार शब्द लगाया है। नियमसार अर्थात्? समयसार अर्थात् आत्मा और सार अर्थात् विकाररहित; इसी प्रकार नियमसार अर्थात् आत्मा के शुद्धस्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति अनुभव की, उसका ज्ञान और उसकी लीनता, ऐसा जो तीन पर्यायरूप एक मोक्षमार्ग, उसे नियम कहते हैं और सार अर्थात् व्यवहार से रहित। व्यवहार जितने विकल्प उठें, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि के, नौ तत्त्व के भेदरूप विकल्प, पंच महाव्रत के रागरूप विकल्प, उस व्यवहारमार्गरहित जो नियम है, उसे यहाँ नियमसार कहा गया है। बहुत सूक्ष्म! यह नियमसार मोक्षमार्ग कैसे कहाँ से प्रगट हो? उसे उपादेय क्या हो और हेय अर्थात् आश्रय करनयोग्य न हो, (वह) क्या? यह ५० वीं गाथा में कहते हैं।

टीका :- यह हेय... अर्थात् त्याग उपादेय... अर्थात् ग्रहण के स्वरूप का कथन है। जरा सूक्ष्म बात है, हों! हेय-उपादेय अर्थात्। यह हेय-उपादेय... अर्थात् छोड़ना और ग्रहण करना अर्थात् कि त्याग और ग्रहण के स्वरूप का इस गाथा में कथन है। जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,... आत्मा में विशेषरूपी पर्यायें हैं—गुण की पर्याय। क्षायिक समकित, क्षयोपशम समकित, क्षयोपशम चारित्र और रागरूप भाव, वे सब विभावगुणपर्यायें हैं। समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा अकेला परमपारिणामिक शुद्ध ध्रुव अनादि-अनन्त अन्तःतत्त्व के स्वभाव का भण्डार, ऐसा एक भगवान आत्मा के अतिरिक्त जितना पुण्य आदि का विकल्प उठे और उसकी साधकदशा में क्षायिकसमकित हो या क्षयोपशम, निर्मल चारित्र की पर्याय प्रगट हुई हो, उन सबको यहाँ विभावगुणपर्याय कहा गया है।

वि अर्थात् विशेष भाव । विशेष भावरूप दशा । सामान्यरूप त्रिकाल स्वभाव के अतिरिक्त । सामान्य क्या और विशेष क्या ? एकरूप त्रिकाल वस्तुस्वभाव ऐसा तत्त्व, इसके अतिरिक्त की उसकी दशायें रागवाली या राग के (अभाववाली) ज्ञान की, शान्ति आदि की चारित्र के अंश की पर्याय निर्मल आदि यह सब विशेषभाव हैं, विशेष दशायें हैं । वह त्रिकाली सामान्य ध्रुवस्वभाव नहीं । बहुत सूक्ष्म । इसमें कहाँ अब लड़कें क्या पकड़ें, लो ? आत्मा हमारे कैसे जानना ? यह तो पूछे । ऐसा किस प्रकार से जानना उसे पहले ? पहले इसे दूसरा जानना, (ऐसा कहे) । यह तो एक बात आवे तब कान में पड़े तो सही न इसे । आहाहा !

जिसे शान्ति और मोक्ष का मार्ग प्रगट करना है, जिसे प्रगट हुआ है, उसे भी शुद्धि की वृद्धि करना है, उसे किस आधार से प्रगट होगी ? और किसका आश्रय छोड़ने से प्रगट होगी, यह बात कही जाती है । **जो कोई...** विशेष पर्यायरूप, गुण की दशायें रूप, **वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा...** अर्थात् कि वर्तमान ज्ञान का अंश, वर्तमान भेद को जाननेवाला जो ज्ञान अंश द्वारा **उपादेयरूप से...** अर्थात् जाननेरूप से कही गयी थी... इसका स्पष्टीकरण हो गया है ४९ गाथा में (फुट)नोट में । जिसे जाननेयोग्य व्यवहार से उपादेय अर्थात् जाननेयोग्य कहा था... एक समय की निर्विकारीदशा धर्मरूप दशा, एक समय की उस काल में राग-विकल्परूप दशा, वे सब विशेष भावरूप पर्याय गुण की दशायें विशेष हैं, वे त्रिकाल ध्रुव और उसकी शक्ति का पिण्ड, वह वस्तु नहीं । समझ में आया ?

वे **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से...** अर्थात् जाननेरूप से कही गयी थीं, **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** 'बल से' शब्द प्रयोग किया है । जो ज्ञान की वर्तमान दशा, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, वह दशा अन्तर्मुख का आश्रय करे, उसे शुद्धनिश्चयनय का बल है, ऐसा कहा जाता है । भाषा सब दूसरे प्रकार की । वह तो एकेन्द्रिय की दया पालना, दो इन्द्रिय की । ऐई ! मणिभाई ! लो, वे सब जीवदया में सामने हों तो सही कर दे, फलाना कर दे । इसमें क्या सही करे ? अता-पता हाथ आता नहीं । जीवदया मण्डल में मिलो । तो कहे हाँ, चलो । क्यों, चन्दुभाई ! कि भाई ! यह फलाने में मिलो, सामने पड़ो । चलो भाई ! इसमें सामने क्या पड़ना ? यह क्या चीज़ ? आहाहा !

अरे भगवान! तेरे स्वरूप में इतनी एक समय में शक्ति के स्वभावों का भेदरूप, उसका आधार एकरूप, ऐसा परमात्मा अपना निजस्वभाव अनादि-अनन्त ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... उसे सामान्य कहते हैं और प्रगट हुए निर्मल और विकार अवस्था के अंशों को विभावरूप विशेषरूप गुण की पर्यायें कहते हैं। वे विशेषरूप दशायें आदरणीय नहीं, आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा!

शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। आहाहा! अर्थात्? भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण चिदानन्द सच्चिदानन्दस्वरूप अखण्ड परमात्मा की पूर्ण शक्तिरूप सत्त्व की दृष्टि द्वारा, वे सब प्रगट हुए निर्मल धर्मरूपी दशा या विकाररूप दशा, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए हेय है। समझ में आया? ...भाई! इसमें मस्तिष्क काम करना पड़ेगा या नहीं? यह वस्तु नहीं? यह वस्तु है या नहीं, ऐसे वस्तु पदार्थ? आदि-अन्त रहित भंगभेदरहित एक चीज़ अन्दर वस्तु-पदार्थ अनादि-अनन्त है वस्तु, ऐसे शाश्वत् रहनेवाले भाववान को सामान्य अर्थात् सदृश्यरूप रहनेवाले को सामान्य कहते हैं और उसकी मोक्षमार्गरूप दशा या बन्ध के रागरूप दशा, उन सबको विशेष, विशेषरूप विभावगुणपर्याय कहा जाता है। वे सब हेय हैं। आहाहा!

यहाँ तो अभी भाई! राग का पुण्यास्त्रव हेय कहे, वहाँ चिल्लाहट मचा जाते हैं। राग को एकबार विष्टा कहा, वहाँ तो लेखों में ऐसे सब आये हैं। भाई! राग एक विष्टा है। सूकर (विष्टा) खाये। मनुष्य अनाज खाये और उसकी करे विष्टा। वह विष्टा सूकर खाये, मनुष्य न खाये। इसी प्रकार भगवान आत्मा में रागादि पुण्य विकल्पादि हों, वे निकाल देने जैसी चीज़ है। इसलिए अमृत से विरुद्ध भाव है। फिर उसे विष्टा शब्द में कहा, इतनी खलबलाहट हो गयी। अरेरे! पुण्य को विष्टा! तो ऐसा कहे। न कहे तो उसे जहर कहे। जहर (शब्द) तो है शास्त्र में। विष्टा है, यह तो कल निकाला था समयसार नाटक में से। समझ में आया? सामने लेखन आया। भाई! वह लेखन है उसमें। अशुचि कहा था। यह तो कर्ता-कर्म (अधिकार) में अशुचि कहा है, ७२ गाथा में। पुण्य और पाप के भाव अशुचि हैं, मैल हैं, विकार है, जहर है। अरे! वास्तव में वह पाप है और वास्तव में समयसार नाटक में तो ऐसा कहा है 'वीट सो वखत वामे।' ज्ञानी धर्मी अपने शुद्ध चैतन्य के आनन्दकन्द के आश्रय में दृष्टि है, ऐसा धर्मी, वह भाग्योदय को—पुण्य

फला, उस पुण्य के उदय को विष्टा समान मानता है। ऐई! चन्दुभाई! कल बताया था। खबर है? वहाँ एक बार।

यश हो, यश जगत में। उसे नाक की लार निकाल डालने जैसा ज्ञानी मानता है। यश, किसका यश? स्वरूप आनन्दकन्द का यश तो मैं गाऊँ दर्शन, श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति से। उसका यश वह बाहर होगा? बाहर के यश को ज्ञानी / धर्मात्मा / सम्यग्दृष्टि नाक का मैल छिनक निकाल डालने जैसा मानता है। 'वीट सो वखत माने' और कहे 'अभी हमारा समय है' ऐसा नहीं कहते? भाई! अभी इसका काल है। डाला हुआ निकले। व्यापार करे, ऐसा करे, वहाँ पैदा हों पाँच हजार, लाख। एक महीने में पचास लाख। समय अच्छा कहते हैं।—नहीं।

धर्मात्मा जिसे समय आत्मा के त्रिकाल आनन्द की प्रीति और रुचि हो गयी है, उसे यह पुण्य के उदय को वह विष्टा के लेप समान मानता है। आहाहा! उसने भाग्योदय लिखा है। 'वीट सो वखत माने।' श्रीमद् ने उसे लिखा है कि 'वीट सो वखत माने'। विष्टा समान पुण्य के उदय को माने। बँधे हुए परमाणु पुण्य के, उन्हें विष्टा समान जाने, तो उसके कारणरूप पुण्यभाव भी विष्टा समान हो गया, तो उसके फलरूप सामग्री भी विष्टा समान हो गयी। गजब परन्तु भाई यह! मजा आवे, उसका क्या करना इसमें? परन्तु ऐसे मोटरें पाँच-पच्चीस साथ में हो, पाँच-पाँच करोड़ रुपये हों, डाले निकले, हाँकने से चले, हुकम करे वहाँ हजार तैयार हो। उसे वखतवाला कहलाये या नहीं? धर्मी कहे, बापू! मेरा समय तो स्वकाल और उसका आश्रय त्रिकाल। मेरा स्वकाल शुद्ध आनन्दकन्द की दशा और उसका आधार भगवान त्रिकाल, वह मेरा समय और वक्त है। आहाहा! रतिभाई क्या होगा यह? ऐई! जीवराजभाई! यह क्या कहना यह? यह सब मोटरें लेकर घूमते हैं, ऐसे सट्टा-बट्टा। फिर तो होशियार व्यक्ति हो, वह सामने जाये। लो, बड़ा भाई पड़ा रहा और छोटा करे। इतना तो समय उसका अच्छा कहलाये या नहीं? किसके सामने कहना परन्तु यह?

बनारसीदास कहते हैं... एक बनारसीदास गृहस्थाश्रम में रहे हुए हैं, हों! स्त्री-पुत्र थे, ऐसा कहने में आता है। कहने में आवे, अन्दर थे नहीं। राग भी जहाँ आत्मा में नहीं, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, वहाँ फिर स्त्री, पुत्र और कर्म आत्मा में है और (वह) आत्मा

है, आत्मा में है और वह आत्मा है, यह दृष्टि धर्मी की रहती नहीं। यह गृहस्थाश्रम में रहे हुए पुकार करते हैं। नया बनाया है उन्होंने। 'कीच सो कनक जाने।' समझे न? यहाँ नहीं पुस्तक। वह यह है। यहाँ है न! यह है न लो न! यह श्रीमद् का है न! उसमें यह बनारसीदास का लेकर डाला है। २३५ पृष्ठ है न? उसमें कितना? ३०वाँ, ज्येष्ठ कृष्ण। हाँ, बराबर। उसमें २३५। लो, आया। इसमें ४५१।

धर्मी जीव अपने चैतन्यसम्पदा की लक्ष्मी जिसने इस ज्ञान में जानी है, श्रद्धा में ली है, चारित्र में उसमें रमणता आंशिक करता है, ऐसा धर्मी। सौभागभाई के प्रति लिखा है। सौभागभाई के ऊपर पत्र है, 'कीच सो कनक जाके, नीच सो नरेशपद, मीच सी मीताई गरवाई जाके गारसी, जहरसी जोग जानी कहसी करामती हरसी होंश पुद्गल छबी छारसी, जालसो जग विलास, भाल सो भुवनवास, काल सो कुटुंब काज, लोकलाज लारसी। सीट सो सुजस जाने, वीट सो वखत माने, ऐसी जग की रीति ताही वंदत बनारसी।' समझ में आया? क्या कहा, देखो! वह—धर्मी सोना को कादव समान जाने। सोना के लम्बे टुकड़े पड़े हों न २०-२०, ५० लाख-लाख के। ऐई! मोहनभाई! वह कंचन को कादव समान जाने, राजगद्दी को नीचपद समान जाने। नीचपद विष्टा की गद्दी में बैठा, ऐसा माने। यह नीचपद चैतन्यपद को भूलकर यह क्या गद्दी? किसी से स्नेह करना, उसे मरण समान जाने। धर्मी किसी से प्रेम करने को मरण समान जाने। आहाहा! यह बनारसीदास कहते हैं, हों! यह तो श्रीमद् ने तो आधार दिया है। 'महत्ता को लीपने की मिट्टी जैसा जाने।' महत्ता मिली, मिट्टी की लीपण, लीपण जैसा माने। आहाहा! 'कीमिया वगैरे जोग को जहर समान जाने।' कीमियो आता है कुछ चमत्कार। जहर है, जहर है। 'सिद्धि वगैरे ऐश्वर्य को असाता समान जाने।' सिद्धि—ऐश्वर्यता प्रगट हुई हो। असाता... असाता... असाता... एक रोग आया। 'जगत में पूज्यता होना आदि को होंश को अनर्थ समान जाने।' होंश करे (कि) बड़ा होऊँगा, पाँच हजार वेतन होगा, पदवी मिलेगी। कहते हैं, धर्मी जीव जिसे निज सम्पदा का प्रेम और अन्तर दृष्टि हुई है, जिसने अन्तर में निधान देखा है। 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दीसे घट में प्रगट सदा।' घट में प्रगट सदा। शान्त और आनन्द का रस जिसके—आत्मा के स्वभाव में, ऐसी 'रिद्धि सिद्धि वृद्धि दीसे घट में प्रगट वह' पूज्यता होने को अनर्थ समान मानता है। 'पुद्गल

की छवि औदारिक काया को राख जैसी जाने।' यह रूपवानपना और यह, अरे! राख है यह। आहाहा! अमृत भगवान का रूप सुन्दर शरीर शान्ति है। उसका शरीर तो ज्ञान है।

'जगत के भोग विलास को उलझनरूप जाल समान जाने। घरवास को भाला समान जाने।' धर्मी आत्मा के शान्तरस का प्रेमी, अनाकुल आनन्द के कन्द का भोगी, वह घरवास को भाला समान जाने। 'कुटुम्ब के कार्य को काल—मृत्यु समान जाने।' यह कुटुम्ब के कार्य। भाई! करना पड़े यह कुटुम्ब के यह और यह। अधिक हो गये सौ-सौ व्यक्ति घर में, क्या करना? ऐसे कार्य को काल अर्थात् मृत्यु समान जाने। 'लोक में लाज बढ़ाने की इच्छा को वह मुख की लार समान जाने, कीर्ति की इच्छा को नाक के मैल जैसी जाने।' अब आया।

'पुण्य के उदय को जो विष्टा समान जानता है।' वे चिल्लाहट मचा गये। लेख लगातार किये करे सब। ऐई! सोनगढ़ से राग को विष्टा कहते हैं, पुण्य को विष्टा कहते हैं। यहाँ कहते हैं, पुण्य के उदय को जो विष्टा समान जानता है। आत्मा भगवान शान्त अनाकुल जिसमें एक विकल्प के कण का अवकाश नहीं। वह तो नहीं परन्तु जिसका आश्रय लेने के लिये निर्मल पर्याय भी जिसे काम में नहीं आती। क्या कहा? मेरे आत्मा के काम के लिये मुझे शरीर तो काम का नहीं, वाणी काम की नहीं, राग काम का नहीं, परन्तु मुझे प्रगट हुई शान्तरूपी धर्मदशा, वह मेरे नये कार्य करने के लिये वह काम की नहीं। आहाहा! चन्दुभाई! इस कारण से शुद्ध निश्चय के स्वभाव की दृष्टि में धर्मी को वह निर्मल प्रगट हुई शान्तरस की पर्याय भी हेय है। आहाहा! अभी राग दया, दान के विकल्प हेय; हेय अर्थात् छूट जाते हैं, इसलिए 'छोड़नेयोग्य हैं अर्थात् लक्ष्य करनेयोग्य नहीं' ऐसा कहने पर चिल्लाहट मचाते हैं अभी तो। अरे भगवान! यह तेरी निधि के निधान को तूने माना नहीं। तेरा निधान, आहाहा! जिसके एक क्षण की नजर में जिसे 'केवलज्ञानी हूँ' ऐसा मनावे। 'मैं एक केवलज्ञानी' मनावे ऐसी सम्यक् श्रद्धा में। केवलज्ञान कन्द हूँ। एक क्षण के अन्तर प्रतीति में केवलज्ञान होने की तैयारी के भणकार बजे। समझ में आया? अरे! ऐसा भगवान उत्तम पदार्थ, उसके अतिरिक्त जितनी पर्यायें निर्मल या मलिन, वे हेय हैं। यह शुद्ध निश्चय के आश्रय की दृष्टि से वे आश्रय

करनेयोग्य नहीं, इसका अर्थ कि मुझे वह काम की नहीं। आहाहा! मेरा कार्य करने के लिए वे मुझे काम में नहीं आती। मेरा शान्ति का—वीतरागदशा और आनन्द का कार्य करने के लिये काम का तो एक भगवान त्रिकाल वस्तु स्वभाव है। कहो, यह कैसे कितने काम में आवे धर्म के लिये? नवरंगभाई! आहाहा! अब धूल तो कहीं रह गयी।

मुमुक्षु : हेयरूप कर दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे तो इसने किया। यहाँ तो पर्याय को हेयरूप कहा। वह तो परद्रव्य है, वैसे यह एक परद्रव्य, ऐसा कहेंगे अभी तो। आहाहा!

भाई! तेरा अनादि-अनन्त प्रभु स्वभाव, प्रभु स्वभाव अर्थात् कि अनादि-अनन्त सामर्थ्य स्वभाव। दियासलाई में भड़का होने की सामर्थ्य कायम पड़ी है। ऐसे रेत को छुए, इसलिए भड़का नहीं होता। उससे होता हो तो लकड़ी घिसे नहीं वहाँ उस ओर। एक दियासलाई का इतना सा टोप, उसमें अग्नि का भड़का भरा है। बाहर में ठण्डी लगे, अन्दर में भड़का, शक्ति का भड़का, अग्नि की शक्ति। ऐसे जहाँ छुआ वहाँ फू भड़का। उस टोप के क्षेत्र से भड़का बड़ा! वह तो टोप जरा सा है और ठण्डा था ऐसे हाथ छुआवे तो। एकदम अन्दर से भड़का हुआ, वह क्या? रेत ने दिया है? उसकी वर्तमान ठण्डी दशा ने दिया है? वह भड़का किसने दिया? कहाँ से आया? ठण्डी दशा में से आया है? अकेली अग्नि की चिंगारी शक्तिरूप है, एकदम भड़का हो गया। क्षेत्र छोटा रह गया उसका, भड़का हो गया बड़ा।

उसी प्रकार भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में उसका पूर्ण स्वभाव जो ज्ञान, चैतन्य डली, चैतन्य की डली आत्मा, आनन्द का कन्द आत्मा, उसे एकाग्र होने से एकदम भड़का होकर केवलज्ञान होता है। वह वर्तमान दशा में एकाग्र होने से केवलज्ञान नहीं होता। फिर भले निर्मल सम्यग्दर्शन या ज्ञान, चारित्र की दशा प्रगटी हो, उसमें एकाग्र होने से आगे बढ़कर केवल(ज्ञान) नहीं होता। समझ में आया? इस भगवान आत्मा के अतिरिक्त जितनी यह पर्यायें विभावगुण कहने में आयी, भाई! वह लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। जाननेयोग्य, वह अलग बात है। लक्ष्य अर्थात् आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए उन्हें हेय कहा गया है। आहाहा! वह हेय करना पड़ता नहीं। स्वभाव का आश्रय लेता है तो उनका आश्रय नहीं लिया जाता, इसलिए हेय है—ऐसा कहने में

आया है। गाथा बहुत ऊँची है, भाई!

यह ५०वीं गाथा है। यह द्रव्य का आश्रय करनेयोग्य तीनों काल में। 'जब जब करना हो, तब यही करनेयोग्य है।' एकसर दृष्टि हुई, वह आधे मार्ग में आया और आगे होकर चारित्र लेकर केवलज्ञान पा जायेगा। कहते हैं, **किस कारण से?** राग को... शरीर, वाणी, मन तो कहीं रह गये। यह पुण्य-पाप के विकल्प को और उनके पीछे स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई निर्मल धर्मदशा को हेय क्यों कहा है? हेय—छोड़नेयोग्य, आश्रय करनेयोग्य नहीं—ऐसा क्यों कहा है? **क्योंकि... किस कारण से?** उसका कारण दोगे या नहीं? सुन! **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** पर की व्याख्या? त्रिकाल वस्तु का स्वस्वभाव नहीं, इसलिए उसे परस्वभाव कहा है। आहाहा! गजब बात, भाई! **क्योंकि वे परस्वभाव हैं... कौन?**

यह चौथे गुणस्थान में राजा श्रेणिक को क्षायिकसमकित प्रगट हुआ, कहते हैं कि वह परस्वभाव है। यह मुनि को आत्मध्यान करते-करते चारित्रदशा छठवीं-सातवीं भूमिका प्रगट हुई। उस छठवीं भूमिका में चारित्र की शान्ति की तीन कषायरहित की रमणता (प्रगटी), कहते हैं कि वह परस्वभाव है। एक समय की पर्याय, जब त्रिकाल स्वभाव एकरूप और एक समय की पर्याय इस अपेक्षा से उसे स्व से (स्व की अपेक्षा) उसे परस्वभाव कहा है। आहाहा! समझ में आया? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय में ऐसा शुद्ध वस्तु का पूर्ण एकरूप स्वभाव, वह स्व-स्वभाव। तब एक समय की निर्मल पर्याय धर्मदशा अथवा रागदशा; उस त्रिकाल को जब स्व कहते हैं, तब इसे पर कहते हैं। इस अपेक्षा से इसे परस्वभाव है, ऐसा कहा है। ओहोहो! समझ में आया?

और इसीलिए परद्रव्य हैं। वापस इसके पाठ में है यह, हों! यह पाठ के अन्तिम शब्द से ऐसा लिया है। 'पुव्वुत्तसयलभावा' एक। 'हेयं परसहावमिदि परदव्वं' ऐसा लेना। क्या कहा, समझ में आया इसमें? मुनि ऐसा किसलिए कहते होंगे? यह पंचम काल के प्राणी साधारण बेचारे हैं। साधारण मनुष्य हैं, उन्हें कैसा देना चाहिए ऐसा वे नहीं जानते होंगे? यह कहते हैं कि तू साधारण नहीं, भाई! तू परमेश्वर होने के योग्य है। भाई! तुझे खबर नहीं? समझ में आया? पाँच करोड़ की पूँजी रख गया हो उसका

पिता, मर गया हो और उसका मामा सम्हालता हो, महीने में सौ-दो सौ देता हो। हमको तो सौ-दो सौ मिलते हैं, बापू! अरे! तेरे पास पच्चीस करोड़ है। परन्तु कहाँ मेरे पास? तो यह सौ माँगना (पड़ते हैं)। परन्तु उन्हें ट्रस्टीरूप से रखा है। यह बड़ा हो तो सब ही तुझे मिलनेवाले हैं।

इसी प्रकार एक समय की पर्याय में देखे तो धर्म या अधर्म जरा दिखाई दे। दृष्टि में देखे तो महाभगवान आत्मा, वह झेला झिलाये नहीं, वह ज्ञान में पूरा आवे नहीं। पूर्ण अर्थात्? प्रगटरूप से श्रद्धा में आवे, परन्तु वह पूर्ण एक समय में पूरा द्रव्य आ जाये, ऐसा वह वस्तु का स्वभाव नहीं। ऐसा महा भगवान तेरा निधान पड़ा है। ऐसे निधान स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से ये सब निर्मल धर्मदशायें या विकारी पर्यायें, वे परस्वभाव हैं, इसलिए उन्हें परद्रव्य कहा है। समझ में आया? चिल्लाहट मचा जाये, हों! सच्चे को खोटा ठहरावे, ऐसा है इसमें तो। ऐसा यह क्या? परन्तु सुन न, तुझे खबर नहीं क्या परमात्मा? उसे कहाँ से परमात्मदशा प्रगटे? कारणपरमात्मा त्रिकाल स्थित है अन्दर स्वयं, उसे जब अपना स्व द्रव्य कहे, तब उसकी पर्याय को हेय गिनकर परस्वभाव गिनकर उसे परद्रव्य कहा गया है। यह दृष्टि को बदलने के लिये यह बात की है। दृष्टि छोड़ विकल्प और पर्याय के ऊपर की। दृष्टि का निधान अन्दर चिदानन्द भगवान एकरूप स्थित है, वहाँ दृष्टि दे, तुझे पर्याय का माहात्म्य उड़ जायेगा। इसलिए फिर पैसा और इज्जत और कीर्ति, यह पुण्यभाव और उनके फल आये, सबका माहात्म्य फू होकर उड़ जायेगा।

मुमुक्षु : कार्यसमयसार भी परद्रव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्यसमयसार भी परद्रव्य, क्योंकि एक समय की पर्याय है इसलिए। कार्य तो यहाँ प्रगटा नहीं, जो यह शुद्धनय का बल है, (राग) विकार, उसे तो कार्य प्रगटा नहीं। कार्य प्रगट हुआ, उसे नय होते नहीं। वह तो प्रमाण हो गया। परन्तु दूसरे के केवलज्ञान की पर्याय या अपनी क्षायिकज्ञान की, क्षायिकसमकित की पर्याय और क्षयोपशम ज्ञान की सम्यक् पर्याय या क्षयोपशमचारित्र की निर्मल पर्याय, वे सब परभाव वस्तु त्रिकाल स्वभावरूपी द्रव्य। अभी इसके भंग बहुत करेंगे, देखो तो सही! एक-एक के तीन-तीन (कहकर) त्रेवडी बातें करेंगे।

कि वह किस कारण से हेय है ? कि वह परस्वभाव है । उसकी खान में से नयी पर्याय नहीं आती । राग में से धर्म की पर्याय की वृद्धि नहीं होती, परन्तु धर्म प्रगटी पर्याय में से नया धर्म प्रगट नहीं होता । इसलिए उसे परस्वभाव (कहकर), **इसीलिए परद्रव्य** हैं । आहाहा ! शरीर, वाणी, परद्रव्य ? एक व्यक्ति कहे कि देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य ? चिल्लाहट मचा गया था । श्रीमद् की भक्ति करे तीन-तीन घण्टे सवेरे से उठकर । टोकरी बजाये श्रीमद् के ... एक बार कहा, देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य । परद्रव्य ? देव-गुरु शुद्ध वे परद्रव्य ? यहाँ तो कहते हैं कि तेरी निर्मल पर्याय परद्रव्य, सुन न अब । क्यों ? कि जैसे परद्रव्य में से शान्ति की निर्मल पर्याय नयी प्रगट नहीं होती, वैसे तेरी धर्म की पर्याय में से नया धर्म प्रगट नहीं होता, गजब व्याख्या !

और इसीलिए परद्रव्य हैं । तीन बातें कीं । हेय, परस्वभाव, परद्रव्य । भगवान आत्मा की दशा में पुण्य-पाप के विकल्प उठे या धर्म की दशा हुई हो, इन दो को एकरूप गिनकर पर्याय अंश है, इसलिए हेय है, आश्रय करनेयोग्य नहीं । क्योंकि परस्वभाव है, इसलिए वे परद्रव्य हैं । अब बात गुलांट खाती है ।

सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित... भगवान आत्मा का चैतन्यकन्द सर्व विभावगुण । ऊपर कहा था न विभावगुणपर्यायों व्यवहारनय से जानना, (ऐसा) कहा गया था । उन सब विभावपर्यायों से रहित । अर्थात् ? शरीर, वाणी, कर्म से तो रहित; पुण्य-पाप के राग से रहित; परन्तु उसकी श्रद्धा—सम्यग्दर्शन-ज्ञान मोक्ष के मार्ग की पर्याय प्रगट हुई हो छठवें में । ऐसे विकारी गुणपर्याय अर्थात् विशेषगुणपर्याय से रहित । मुनि का— भावलिंगी सन्त को आत्मा के आनन्द की दशा का उफान आया है । जिस आनन्द के समक्ष राग को तुच्छ जानकर, पर को हेय जानकर ज्ञेय जानते हैं । ऐसे धर्मी जीव को भी जो वर्तमानदशा में चारित्र की, सम्यग्दर्शन की पर्याय निर्मल जो मोक्ष का कारण है व्यवहार से; व्यवहार से । व्यवहार अर्थात् क्या ? वह पर्याय टलकर मोक्ष होता है, वह पर्याय रहकर होता नहीं ।

तब कितने ही ऐसा प्रश्न करते हैं कि लो ! राग हेय है, तब तो क्षायिकभाव भी हेय है, तो क्षायिकभाव यदि उपादेय हो तो राग भी उपादेय हो, भाई ! ऐसा प्रश्न करते हैं । अरे भगवान ! तुझे क्या करना है, बापू ! ऐसा कि जब तुम राग हेय कहते हो, क्योंकि टल जाता है इसलिए; तब तो क्षयोपशम और क्षायिक पर्याय भी टल जाती है, इस

अपेक्षा से हेय है, सुन न! वह तो बात करनी है यहाँ। प्रगट करनेयोग्य, वह राग है या प्रगट करनेयोग्य वह शान्ति और वीतरागी पर्याय है? यह प्रगट की हुई परन्तु जिसे हेय कहा जाता है। प्रगट हुई में से नयी प्रगट नहीं होती। इसीलिए उसे जैसे परद्रव्य और प्रगट हुई पर्याय का आश्रय करने जाय वहाँ विकल्प उठते हैं, इसलिए उसे परद्रव्य गिनकर और उस परद्रव्यरहित आत्मा का स्वभाव गिनकर **सर्व विभावगुण...** सर्व शब्द प्रयोग किया है।

सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित... आहाहा! शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप... देखो, पाठ है न! 'अंतरतच्च सगद्व्यमुवादेयं' इसकी व्याख्या होती है दूसरे पद की। शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप। स्वरूप अर्थात् स्वभाव, भाव। पहले सामान्य व्याख्या करते हैं, फिर उसकी विशेष करेंगे। अन्तर में शुद्ध अन्तःतत्त्व, अन्तःतत्त्व। एक समय की पर्यायरहित अन्तःतत्त्व अर्थात् भाव। एक समय की क्षायिक, क्षयोपशम आदि की पर्याय, उस रहित अन्तः, अन्तः शुद्ध अन्तःतत्त्व अर्थात् स्वरूप। तत्त्व-भाव ऐसा जो स्वरूप, वह स्वद्रव्य उपादेय है। वह **स्वद्रव्य उपादेय है**। गजब व्याख्या, भाई! यह तो संवर-निर्जरा भी उपादेय नहीं। वह तो प्रगट करने के लिये उपादेय मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कहा है टोडरमलजी ने। भाई! आस्रव वह हेय है; निर्जरा, वह हित का कारण है; मोक्ष, वह हित है; बन्ध अहित है; संवर, उपादेय है; आस्रव हेय है—ऐसे जो भाग सात तत्त्व के—नौ (तत्त्व) के किये। तब प्रगट करनेयोग्य क्या है, इस अपेक्षा से उसे उपादेय कहा है और छोड़नेयोग्य क्या है, इस अपेक्षा से उसे—आस्रव को हेय और बन्ध को अहितकर कहा है। परन्तु यहाँ तो प्रगट हुई पर्याय कहाँ से प्रगटे, ऐसी जो खान भगवान आत्मा, जिसकी खान में... इतना बड़ा उसे अब। उसे कहे, तू भगवान है। भाईसाहेब चिल्लाहट मचा जाये। हाय.. हाय.. लो! एक व्यक्ति को कहा भगवान आत्मा। यहाँ नहीं। यह रखो सोनगढ़। मन में ऐसा। ऐसा बोले नहीं परन्तु ऐसा कि यह यहाँ नहीं। भगवान आत्मा कहाँ है? यह तो विकार है और फलाना। अब सुन न, बापू! वे यहाँ से सुनकर गये बराबर मौके से और वहाँ कहा भगवान आत्मा। यहाँ आता है न भगवान आत्मा। कर्ता-कर्म (अधिकार) में। विकार है, वह महिमा रहित और भगवान आत्मा महिमावाला अन्दर त्रिकाल। सब जगह भगवान आत्मा ही कहा है न। भगवान महिमा।

आत्मा अर्थात् महिमावन्त जिसका स्वरूप। जो तत्त्व ही अजीव और आस्रव से भिन्न है। अजीव कर्म, शरीर ऐसे अजीव और आस्रव अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्पों से जो प्रभु अत्यन्त असली तत्त्व जिससे वास्तव में असली भिन्न है। ऐसा भगवान आत्मा, उसे महिमावन्त ही कहा है।

यहाँ तो कहते हैं, यह उसकी पर्यायों में जो प्रगट हुई, उनसे रहित शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य। यहाँ अभी शुद्ध अन्तःतत्त्व, अन्तःभावस्वरूप द्रव्य, ऐसा कहा है। शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य, वह उपादेय है, अन्तर आदरणीय है। उसे श्रद्धा में लेकर उसकी ओर का आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया ? नये हों, उन्हें तो अटपटा जैसा लगे जरा, हों ! परन्तु अब आया यह तो भाई ! इसने पकाया हो, वह परोसा जाये न ! नया कहाँ से लावे। इसी प्रकार अभी तो यह पकता है। भगवान चैतन्य प्रभु, अरे ! तुझे उसका माहात्म्य आया नहीं। यह गुप्त चमत्कार चैतन्य प्रभु है। गुप्त चमत्कार चैतन्य है कि जिसके अन्तर में एक क्षण में केवलज्ञान आकर भड़का (प्रकाश) खड़ा हो, ऐसा गुप्त चमत्कार चैतन्य प्रभु तू है।

ऐसे शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य... देखा ! अभी सामान्य बात की। अब इस अन्तःतत्त्व का विस्तार करते हैं। अन्तःतत्त्व जो कहा। क्या है अन्तःभाव ? तत्त्व अर्थात् भाव। वह अन्तर में अन्तःतत्त्व अर्थात् भाव, स्वभाव क्या है ? वास्तव में सहजज्ञान— यह अन्तर स्वाभाविक ज्ञान। यह अब अन्तःतत्त्व का विस्तार करते हैं। एकरूप के प्रकार वर्णन करके भगवान आत्मा एक समय की वर्तमान पर्यायदृष्टि को छुड़ाकर त्रिकाल स्वभाव की दृष्टि का आश्रय कराने और उसके आश्रय से शान्ति और सुख और धर्म होता है। इसलिए कहते हैं, यह अन्तःतत्त्व स्वरूप जो स्वद्रव्य है, वस्तु वह वास्तव में सहजज्ञान— है, स्वाभाविक ज्ञान है। प्रगट हुए की बात नहीं। स्वाभाविक अन्तःतत्त्व ज्ञान, स्वभावज्ञान, सहजज्ञान, सहजज्ञान, ज्ञान का पुंज अकेला सहज त्रिकाली।

सहजदर्शन- दर्शन उपयोग। सहजदर्शन... श्रद्धा, परन्तु त्रिकाल सहजश्रद्धास्वभाव। सहजचारित्र... स्वाभाविक अन्दर चारित्र। प्रगट हुई पर्याय की बात नहीं। अन्तःतत्त्व का स्वाभाविकचारित्र। और सहजपरमवीतराग-सुखात्मक... सुख लिया। चारित्र और सुख दो लिये इसमें तो। समझ में आया ? वहाँ ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख—ऐसा लेते हैं।

यहाँ भगवान आत्मा एक समय की पर्याय प्रगट अवस्था, उसके अतिरिक्त का पूरा पदार्थ दल वह सहजज्ञान—स्वाभाविकज्ञान, स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकशान्ति त्रिकाली और स्वाभाविक वीतरागसुखात्मक, अरागी ऐसा वीतराग सुखस्वरूप भगवान आत्मा, वीतराग सुखस्वरूप भगवान, सहजपरमवीतराग-सुखात्मक... देखा! दशा में प्रगटे वीतरागी सुख, वह तो पर्याय है। यह तो सहजपरमवीतरागसुखात्मक। आत्मक अर्थात् सुखस्वरूप। ऐसा शुद्धअंतःतत्त्वस्वरूप... ऊपर कहा था न सामान्य। शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वद्रव्य, वह अन्तःतत्त्व क्या है? स्वाभाविकज्ञान, स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकचारित्र, शान्ति और स्वाभाविक वीतरागी आनन्दरूप जिसका है त्रिकाल, ऐसा जो शुद्धअन्तःतत्त्वरूप भाव, ऐसा जो शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप इस इस स्वद्रव्य का... स्वरूप यह स्वद्रव्य। इसे स्वद्रव्य कहा था पहले। कहा था न पहले? शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है, ऐसा कहा था। वैसा यह स्वद्रव्य, उसका आधार। वे चार प्रकार वर्णन किये न चार। अन्तःतत्त्वस्वभाव, स्वाभाविक दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनन्दरूप ऐसा जो स्वद्रव्य, उसका एक आधार, ऐसा करके वस्तु यह स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार है। आहाहा! वह तो कितने ही पण्डित अक्षर पढ़-पढ़कर लप में यह वह लप किया है। समझ में नहीं आये न! कितनी भाषा और क्या कहते हैं? अरे! भगवान! तेरे इस अन्दर के स्वभाव की स्थिति के गीत गाते हैं। समझ में आया? तुझमें कितना भरा है अन्दर! आहाहा!

एक समय की दशा बिना का पूरा तत्त्व जो शुद्धअन्तःभावस्वरूप कि जो स्वद्रव्य। जो शुद्ध सहजदर्शन-ज्ञान-चारित्र और वीतरागी आनन्दरूप जो स्वद्रव्य। शुद्धअंतःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य... यह स्वद्रव्य। ऐसे भाव को भावरूप से अन्तःतत्त्व को गिनकर और उसका आधार एकरूप पदार्थ परमपारिणामिक है, ऐसा कहा गया है। कठिन बात, भाई! आज की तो बहुत कठिन है, हों! ऐसा लगता है, हों! कठिन नहीं। इसमें क्या पकड़ना? लो, अतुलभाई कहते हैं कि भाई! इसमें क्या पकड़ना इसमें? यह अतुल है, तुलना बिना की चीज है अन्दर। कहो, समझ में आया इसमें? कहाँ गये रतिभाई? ऐई! रतिभाई! क्या है यह? कहे, ऐसी बातें धर्म में क्या होगी? ऐसा कहते हैं कि कुछ सेवा करो, यह करो, दया पालो, ऐई! दोशी! उसमें तो कहीं सूझ भी पड़े

अज्ञान की। अज्ञान की सूझ न पड़े। अज्ञान का ज्ञान करे तो ज्ञान हो जाये, अज्ञान टल जाये। आहाहा! कहते हैं... आहाहा! इस मान्यता के घोटाले इसने अनन्त काल की शल्य निकाली नहीं और वह शल्य निकले बिना इसे आत्मा की प्राप्ति तीन काल में होती नहीं, अर्थात् कि धर्मदशा प्रगट नहीं होती। एक समय की पर्याय भी आश्रय करनेयोग्य है—ऐसी मान्यता है, तब तक उसे मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ?

कहते हैं कि ऐसा शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप जो यह स्वद्रव्य, यह कहा न? यह चार बोल से अशुद्ध अन्तःतत्त्व वर्णन करके यह स्वद्रव्य (कहते हैं)। द्रव्य क्यों कहा? द्रव्यती इति द्रव्यं। उसमें से पर्याय बहती है। ऐसे स्वद्रव्य का आधार उस स्वभावभाव का आधार स्वभाववान, ऐसा कहकर आधार-आधेय की बात की है। समझ में आया? ऐसा भगवान अन्तःतत्त्वस्वभाव, ऐसा जो स्वद्रव्य अर्थात् उसमें से पर्याय द्रवती है, इसलिए उस अन्तःतत्त्व को ही स्वद्रव्य कहा और उसका एकरूपपना जो त्रिकाली एक परमपारिणामिकस्वभावभाव, सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण, स्वाभाविकपरम-पारिणामिक सहज एकरूप रहनेवाला ऐसा भाव लक्षण कारणसमयसार है। लो, यह कारणसमयसार। कितने भंग-भेद सुनना इसे? यह सब शब्द याद रहें, ऐसा नहीं तो भाव... भाव भी याद रहे और सब याद रहे। उसमें केवलज्ञान होने की सामर्थ्य है। लो!

जहाँ पामररूप से माना, उसे प्रभुता की क्या खबर पड़े? एक क्षण में चक्रवर्ती का राज यह अन्तर के निहाल में जाने के लिये छूट गये एकदम। अरे! हमारा निधान तो अन्तर में है। ऐसा स्वद्रव्य अनादि-अनन्त तो मैं हूँ। उसका आश्रय करके प्रगट हुआ, अब अधिक आश्रय करने के लिये छह खण्ड का राज भी जिसे तुच्छ लगकर, जैसे विष्टा छूट जाती है, छूट जाती है। वह विष्टा मैसूर की हो तो छोड़ते हुए ममता रहे, ऐसा बने? इसी प्रकार राग और उसके निमित्त यह स्वभाव के निधान की दृष्टि होने पर भी विशेष स्थिर होने के प्रसंग के लिये यह नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... यह हाँ... हाँ... और हाँ। एक चैतन्य परमस्वभाव लक्षण ऐसा कारणसमयसार। देखो, किसलिए यह शब्द प्रयोग किया है? कि सब मोक्ष के मार्ग को मोक्ष का कार्य, वह इस कारणपरमात्मा में से आता है। मोक्षमार्ग की पर्याय जो कही निश्चयमोक्षमार्ग, हों! रागभाग, वह मोक्षमार्ग है नहीं, जिसे व्यवहार कहा, वह मार्ग नहीं। परन्तु भगवान

आत्मा शुद्ध चैतन्य की मूर्ति द्रव्यस्वभाव का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, कहते हैं कि उसके फलरूप से मोक्षकार्य, वह व्यवहार है। वास्तव में तो परमपारिणामिकस्वभावरूप कारणसमयसार आत्मा, इस कार्य का कारण है। समझ में आया ?

अब ऐसा यहाँ लिखे। दूसरी जगह कहे, निश्चयमोक्षमार्ग, वह कारण और उपाय है, उपेय वह उसका फल है, फलाना है। और इसके साथ कैसे मिलान करना ? अब सुन न! यह अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं वही यह कहते हैं और यह कहते हैं, वही वे कहते हैं। उन्होंने ही कहा है। अमृतचन्द्राचार्य कहेंगे नीचे श्लोक में आधार देकर। एक ही परमस्वभाव। अरे! जिसका स्वभाव उसे क्या कहना ? आहाहा! यह शक्कर की सैक्रीन क्या कहलाती है वह ? सैक्रीन इतनी थोड़ी हो क्षेत्र से थोड़ा परन्तु मिठास का पार नहीं होता। जड़ की अवस्था की ऐसी मिठास इतने क्षेत्र में! इतनी डली हो तो कम मिठास ऐसा! ऐसी एक दशा परमाणु में, परन्तु वह मीठी अर्थात् गळी की अवस्था की तारतम्यता बढ़ गये हुए स्कन्ध में दिखती है, तो भगवान इतना अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द के रस के कन्द से भरपूर तत्त्व है। परन्तु उस मिठास की प्रतीति कैसी आवे उसे ? वहाँ हाँ करे तो तुरन्त हाँ करे कि हाँ, सैक्रीन में बहुत मिठास... बहुत मिठास... बहुत मिठास... ओहो! बहुत... बहुत... बहुत... तीन हो गया उसे। श्रद्धा खोटी, ज्ञान खोटा, चारित्र-वर्तन खोटा। तुझमें कुछ मिठास है अन्दर ?

यहाँ कहा न, **परमवीतरागसुखात्मक...** परमवीतराग सुख से भरपूर भगवान भाव, उस भाव को स्वद्रव्य कहकर उसका आधार एकरूप परमपारिणामिक कहा गया है। आहाहा! टीका, वह भी टीका है न! टीका का अर्थ—स्पष्टीकरण करना। ऐसा भगवान कारणसमयसार, वह एक ही उपादेय है। लो! यह पहले कहा था न! समझ में आया ? **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अंतःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है।** वह उपादेय यह है, ऐसा अन्तिम सार करके रखा। उठाना किस प्रकार इसे उपादेय करना अर्थात् ? उप अर्थात् समीप में आदेय अर्थात् ग्रहण करना। उसकी दृष्टि अन्दर पड़ने से, पर का आश्रय छूटे, इसलिए उसे हेयरूप से गिना कहा जाता है और स्व का आश्रय का आश्रय किया, उसे उपादेयरूप से कहा जाता है। बहुत धर्म की पद्धति और

धर्म कैसे प्रगटे ? यहाँ तो अभी बाहर की साधारण बात जहाँ सुने, वहाँ अरे ! यह वह क्या कहते हैं ? भाई ! अभी तक तो ऐसा नहीं था। यह सब ही कहे, वे खोटे होंगे ? भाई ! खोटे-सच्चे रहने दे किसी की बात। सत्य की है, वह ले न, सुन न अब। इतने सब कहे, वह हमारे मानना या तुम्हारा मानना ? हमारी बात कहाँ है ? यह तो वीतरागस्वभाव की बात है। हमारी अर्थात् विकल्प की और शरीर की नहीं। समझ में आया ?

भगवान वीतरागस्वभाव। वीतराग अर्थात् ? निर्दोष स्वभाव वीतराग। समझ में आया ? वीत अर्थात् बीत गया है राग, रहा है एक अकेला स्वभाव। दशा में वीतराग हो, वह तो मुक्तिदशा, परन्तु कहते हैं, उस दशा की खान में यह दशा कहाँ से प्रगटी ? वह खान वीतराग के आनन्द की खान है। ऐसा आत्मा परमस्वभाव वह जो कारणसमयसार है अर्थात् कारणरूप से होकर कार्यरूप आनन्द की दशा के मोक्ष के कार्य का कारण, वह कारणप्रभु होता है। जिसे कारणसमयसार कहो, कारणजीव कहो, परमपारिणामिकभाव एकरूप स्वभाव कहो, वह एक ही उपादेय है। इसके अतिरिक्त कोई उपादेय नहीं।

यहाँ मोक्षमार्ग पर्याय का अधिकार है इसमें। मोक्षमार्ग का नियमसार अर्थात् पर्याय है यह। पर्याय के अधिकार में पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहा है। समझ में आया ? यह त्रिकाल भगवान कारणसमयसार, वही श्रद्धा में, अनुभव में लेकर और वही आश्रय करने, वह सदा निरन्तर। किसी समय भी.... भाई ! स्याद्वाद है। ऐसा कोई कहते हैं न। यह भी उपादेय और वह भी उपादेय, यह भी आश्रय करनेयोग्य और वह भी आश्रय करनेयोग्य, तो अनेकान्त हो, ऐसा होगा ? अनेकान्त की व्याख्या ही ऐसी नहीं। एक स्वभाव त्रिकाल, वह उपादेय है, आदरणीय है और दूसरा उपादेय नहीं। यह अस्ति-नास्ति की शक्तियों का विरुद्ध का प्रकाशित होना, उसे अनेकान्त कहते हैं। समझ में आया ? यह तो एकान्त निश्चय हुआ। परन्तु इसमें कहीं कोई पक्ष से व्यवहार किंचित्... किंचित्... किंचित्... किंचित्... है या नहीं ? वह सर्वथा पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं और सर्वथा द्रव्य का आश्रय करनेयोग्य है, इसका नाम अनेकान्त है। ऐसा अनेकान्त तत्त्व भगवान आत्मा, उसे उपादेयरूप से जानना, मानना और उसमें स्थित होना, वही मोक्ष का मार्ग है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



दिनांक - २१-०२-१९६४

गाथा-५० से ५५, कलश-७४, प्रवचन नं. ४०५

निमयमसार, शुद्धभाव अधिकार। नियमसार अर्थात् तो मोक्ष का मार्ग है निश्चय-सच्चा, परन्तु वह कैसे प्रगट हो? अर्थात् वह शुद्धभाव जो त्रिकाल, उसके स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है, इसलिए यह शुद्धभाव का अधिकार वर्णन किया गया है। ५० गाथा हो गयी है। अब इसके आधार के लिये पद्मप्रभमलधारि मुनि अमृतचन्द्राचार्य का एक श्लोक समयसार का कहते हैं।

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥

किसमें से निकलता है? इस कलश में से निकलता है। कल प्रश्न था न कि भाई! ऐसा कुछ समयसार में से निकलता है? ११वें, ६वें कलश में यह निकलता है। देखो, आधार स्वयं इसके लिए दिया है इसमें। वह तो यहाँ देखने गये थे न वहाँ अन्धशाला और कल गूंगा-बहरा। तो आत्मा बहरा बाहर का तो अनादि का है, परन्तु एकेन्द्रियरूप से बाह्य बहरा अनन्त बार हुआ है। उसे एकेन्द्रिय की पाँच इन्द्रिय मिली तब आँख और कान का सब था। उसमें आत्मा को क्या? पाँच इन्द्रिय हुई। नवरंगभाई! आँख मिली तो आँख गयी। उसमें आत्मा ने क्या नया किया? वह तो जड़ की इन्द्रिय में इतना फेरफार हुआ और पर्याय में इतनी हीनता हुई। परन्तु आत्मा एक समय का शुद्ध अखण्ड आनन्द, उसका विश्वास और अनुभव बिना, ये सब मिले हुए भी टल जानेवाले हैं। पाँच इन्द्रियाँ मिली हैं आँख, कान, जीभ सब टल जानेवाले हैं। और मिली है उसमें इस आत्मा का भान न करे तब तो वह मिली, न मिलने (जैसी) है। भान करे तो मिली, वह टलकर केवलज्ञान होनेवाला है। उस भी वह टलेगी। भानवाले को टलेगी और

अज्ञानी को पाँच इन्द्रियाँ टल जायेंगी। उनसे कुछ लाभ-नुकसान नहीं है। एक समय का भगवान आत्मा... यह वहाँ कोई भीखाभाई है, अन्ध थे। वे बेचारे बोलते थे 'यह बात सच्ची है।' मैंने कहा भाई! ऐसा तो सब अन्धे गये और वे हुए आत्मा के ज्ञान के भान बिना, उस आत्मा में डोरा पिरोये बिना। वे अन्ध डोरा पिरोते थे, वे महिलायें, लड़कियाँ। उसमें क्या? वह तो जड़ की क्रिया है। आत्मा अन्दर में डोरा पिरोवे। जो सम्यग्ज्ञान, मेरे स्वभाव में आनन्द और पूर्णता, मैं कहाँ किसकी कीमत आंकूँ? मेरे स्वभाव की कीमत के समक्ष प्रगट दशा हुई, उसकी भी कीमत नहीं तो राग और निमित्त और उसके फलरूप से यह धूल और संयोग पाँच इन्द्रियाँ आदि मिट्टी, उसकी क्या कीमत है? कीमती भगवान एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण वस्तु स्वभाव जिसका धाम अनन्त गुण का एकरूप, उसके सम्यग्ज्ञान बिना उसने सब किया। सब अर्थात्? राग और द्वेष। सब कहीं पर का किया, वह बात है नहीं।

इससे यहाँ कहते हैं कि आत्मार्थी जीव ने। देखो, मोक्षार्थी जीव ने इतना शब्द है। जिसे बन्धन से मुक्त होना है और जो मुक्तस्वरूप आत्मा है, उसकी मुक्त पर्याय प्रगट करने का जो अभिलाषी है। समझ में आया? जो आत्मा मुक्तस्वरूप है, वस्तु से तो मुक्तस्वरूप ही है, अबद्धस्पृष्ट है। कर्म का बन्धन और राग उसके स्वरूप में नहीं। ऐसे स्वरूप के मुक्तस्वभाव, ऐसा आत्मा, उसकी पर्याय में मुक्त के अभिलाषी जीव को क्या करना? समझ में आया इसमें? परन्तु इसे मोक्षार्थी है या बन्धार्थी है या रागार्थी है या संसार-अर्थी? इसे निर्णय कर लेना चाहिए। अनन्त काल में इसने त्यागीपना अनन्त बार लिया। साधु अनन्त बार हुआ मिथ्यादृष्टि रखकर। त्यागी हुआ, व्रत, नियम पालन किये, सब इसके व्यर्थ हैं। उसमें आत्मा का कुछ कल्याण नहीं। क्यों? कि जो स्वरूप है, उसकी जहाँ कीमत अन्तर दृष्टि में हुई नहीं और 'मोक्ष का अभिलाषी हूँ' ऐसा कहलवाता हो, मानता हो, वह सब रण में शोर मचाने जैसी बात है। उसकी आवाज सुने नहीं और उसे जन्म-मरण मिटे नहीं।

तो कहते हैं कि जिनके चित्त का चरित्र उदात्त... जिनके ज्ञान का अभिप्राय उदात्त (उदार, उच्च, उज्वल)... देखो भाषा! जिसके ज्ञान की पर्याय में, अभिप्राय में चारित्र अर्थात् वर्तन उसकी श्रद्धा का, ज्ञान का उदात्त है, अर्थात् कि उदार है। क्या उदार

हैं ? उच्च है और उज्वल है । ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो... जिसे ज्ञान की एक समय की वर्तमान दशा में उदार ज्ञान है । पूर्णानन्द प्रभु है, उसे वह ज्ञान स्वीकार करता है । गजब बातें ! पूर्णानन्द चिद्घन आत्मा अखण्डानन्द ध्रुव है, उसे जो ज्ञान की पर्याय उदार चित्त से, उदार मेरे स्वभाव में तो अकेला आनन्द और ज्ञान का रस ही भरा है, ऐसे चित्त का चरित्र अर्थात् वर्तन की श्रद्धा, ज्ञान की, लीनता की उदारता है, वे मोक्षार्थी । उसे यहाँ मोक्षार्थी कहते हैं ।

इस सिद्धान्त का सेवन करो... एक बार उदार तो हो । किसका उदार ? पैसा खर्च करने का ? तेरे ज्ञान के वर्तमान अभिप्राय में इतना उदार हो कि अल्पज्ञता और अल्पदर्शिता प्रगट दिखने पर भी 'मैं त्रिकाल पुण्य और पाप से रहित पूर्णानन्द प्रभु हूँ'—ऐसा एक बार ज्ञान के अभिप्राय में उदार हो । भारी उदार, भाई ! समझ में आया ? जिसके ज्ञान का चरित्र अर्थात् वर्तन अभिप्राय का उदार और उच्च और उज्वल है । **ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो...** यह नियम का निश्चयतत्त्व का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... मैं नहीं शरीर, नहीं शरीर की क्रियायें, मैं नहीं दया, दान के परिणाम, यह दया, दान की क्रिया विकार की और उसे जानने का अल्पज्ञान का क्षयोपशम, वह राग की ओर झुकी हुई दशा, वह मैं नहीं, इतना मैं नहीं । मैं तो शुद्ध ज्ञायक चैतन्य एकरूप, चैतन्यमय ज्ञान का पिण्ड ज्ञाता-दृष्टा का रसकन्द शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदा हूँ, तीनों काल में हूँ । समझ में आया इसमें ?

इसमें उदारता क्या आयी ? इसमें उच्चता क्या आयी ? उज्वलता क्या आयी ? लोग कहते हैं कि भाई ! उज्वलता ... ऐसा करे, व्रत, भक्ति करे, वह उज्वलता नहीं । तुझे खबर नहीं । वे राग की मन्दता के परिणाम हैं, वह उज्वलता नहीं । उज्वलता, उच्चता, उदारता उसे कहते हैं कि जिसके अन्तर अभिप्राय में 'पूर्णानन्द प्रभु ज्ञाता-दृष्टा त्रिकाल रहा हूँ' ऐसी अभिप्राय की दृष्टि का दौर स्वभाव के ऊपर रखना, उसे उदार, उच्च और उसे उज्वलता (कहते हैं) । अभिप्राय की उज्वलता में पूर्ण परमानन्द मूर्ति उज्वल पूर्णरूप से प्रतीति में लिया, उसे उज्वल, उच्च और उदार कहा जाता है । समझ में आया ?

और यह जो... विद्यमानता बताते हैं। मेरी दशा में अल्पज्ञता, राग, दया, दान का विकल्प और कर्म, शरीर ये भिन्न लक्षणवाले... ये मेरा स्वरूप नहीं, मेरे लक्षण से लक्षित होनेयोग्य यह वस्तु नहीं। समझ में आया? यह सम्यग्ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई है, वह मेरे स्वरूप से भिन्न लक्षणवाली है। वजुभाई! गजब बातें! कभी बेचारे को कान में पड़े नहीं। यह कान मिले हैं, उसके लिये ऊँचा गिना है पंचेन्द्रिय में। वहाँ कहा था कि भाई! अन्धे की अपेक्षा कान मिले हो न, उसे सुनने का... तो मिले। कान हो तो सुनने में उसे समझने में विवेकपने का निमित्त हो, परन्तु आँख हो और कान न मिले, अन्तिम इन्द्रिय का काम (कान) न मिले, क्या वस्तु है उसे सुनने का, फिर बहरे ही है अन्दर से। अनादि काल का बहरा, उसने सत् को सुना नहीं। अनादिकाल का गूँगा, उसने सत्य को ग्रहण करके सत्य की बात कही नहीं। आगे कहेंगे अभी बाद के कलश में। 'ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहता है' ऐसा कहेंगे आगे।

मैं एक पूर्णानन्द शुद्ध हूँ, मेरे स्वभाव में राग नहीं, विकल्प नहीं, व्यवहार नहीं, निमित्त नहीं, कुछ नहीं—ऐसा जिसने स्पष्टरूप से कभी कहा नहीं कि उसकी मान्यता में स्पष्टता ऐसी होनी चाहिए। समझ में आया? आहाहा! वजुभाई! क्या होगा यह? क्या बात अगम-निगम की? बाहर सूझे यह व्रत पालन किये, भक्ति की, तप किया, यह अपवास किये। धूल भी किया नहीं, सुन न! वह तो सब राग का मलिनभाव है। करूँ... करूँ... करूँ और यह करूँ और यह छोड़ूँ, वह सब अभिप्राय मिथ्यात्व है। चैतन्यज्योति में यह करूँ और यह छोड़ूँ, ऐसा वस्तु में है ही नहीं। आहाहा!

ऐसा सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप चिदानन्द के सिद्धान्त को सेवन करो। सेवन करो, यहाँ कहते हैं सेवा करो। लो, यह सेवा करने का तो आता है इसमें। लोग कहते हैं न सेवा करते हैं पर की। धूल भी करता नहीं। कौन करे पर की सेवा? तुझे राग हो कि इसकी सेवा करते हैं। सेवा कौन किसकी करे? स्वतन्त्र पदार्थ है। उस पदार्थ की अवस्था होना, वह उसके कारण से, दूसरा कौन उसकी सेवा कर सके? नवरंगभाई! क्या होगा यह? बराबर है? वहाँ हो न तुम तो! यह राग है, विकल्प है। वह कहीं नयी चीज़ नहीं। ऐसे विकल्प अनन्त बार किये हैं और बाहर की दशा होनी हो, वह उसके कारण से होती है। उसमें कोई कहे कि हम इसका कर दें, इस बात में एक भी प्रतिशत

सत्यता नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि अरे प्रभु! यह चैतन्यज्योति तेरे विश्वास में आयी नहीं कि मैं एक पूर्णानन्द का पिण्ड हूँ। वह महासमुद्र शुद्ध। आता है न, कहा उसमें? 'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रस सों भर्यो अनादि टेक हूँ; मोहकर्म मम नहीं, नहीं भ्रम कूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है।' हम तो शुद्ध चैतन्य के समुद्र भरे हैं। वह किस प्रकार मापना? समझ में आया? ऐसी श्रद्धा के अनुभव की प्रतीति और सेवन करो, उसकी सेवा करो। आहाहा! कहा नहीं था एक बार? दृष्टान्त दिया था उस मोती का। सुना था? नवरंगभाई! सुना नहीं था? याद नहीं, ऐसा कहो। सुना नहीं था, ऐसा नहीं। एक था बनिया। उस बनिया को मोती का व्यापार। फिर एक मोती टूटा हुआ अच्छा ऊँचा था तो साफा में बाँधकर, साफा के छोर में, उगाही को गया गाँव में। दो-पाँच-दस हजार की उगाही होगी। उगाही में चढ़ा। वहाँ पहले तो ऐसा था न, पटेल अच्छा हो वहाँ जाये तो कहे पधारो पधारो सेठ पधारो। पानी लाओ पटेल! पानी पीना है। तब तो बनिया पीते नहीं थे किसान का। अब तो सब समान हो गया है। इसलिए कहे... पानी ले आओ ब्राह्मण के यहाँ से। तो वह पानी लेने गया, वहाँ देरी लगे न दस मिनट की। आस-पास दो-चार घर दूर लेने जाये। इसलिए वह मोती था छोर में बाँधा हुआ खोलकर (देखने लगा)। पानी लेकर आया। पटेल! इसमें (मोती में) पानी बहुत है इसमें। तो किसलिए मँगाया पानी? इसमें पानी हो तो मँगाया किसलिए पानी? इसलिए वह बनिया भी छग-छग कहता हूँ। ठग, ऐसा नहीं। छग। छग अर्थात् होशियार। छग अर्थात् माया और कपट हो, वह नहीं। इसलिए कहे कि पटेल! इसमें तो समुद्र भरा है। समुद्र भरा है इस मोती में इतना? यह लोटा किसलिए मँगावे? सेठ! वह लहरें उठें न। मोती बहुत ऊँचा। ऊँचा मोती, बहुत ऊँचा हो। बहुत ऊँचा मोती (बहुत मूल्यवान)। ऐसा हो कि ऐसी उसकी चमक उठे। यह वस्त्र नहीं होते? क्या कहलाते हैं? वायल। वायल नहीं होती? वह तो हो तो एक डोरा में वायल। परन्तु उसके अन्दर लहरें उठे ऐसा दिखाई दे या नहीं? वह कहीं जाडा नहीं। जाडा तो एक तानाबाना है, परन्तु ऐसी वायल आती है न, ऐसी कुछ चीज़। उसमें लहरें दिखाई दे, हरी और पीली ऐसी लहरें। उसके दल में तो एक ताना-बाना ही है, परन्तु लहरें दिखाई दे अन्दर। उसी प्रकार इसमें

एक मोती में इतनी ऊँची है न। वहाँ मोती की मूर्ति है, वहाँ मूडबिद्री में। मोती की मूर्तियाँ बड़ी। बड़ी ऊँची-ऊँची। करोड़-करोड़ रुपये की, ५०-५० लाख की एक-एक मूर्ति है वहाँ मूडबिद्री। तब सब अरबोंपति थे, बना गये। फिर कौन जाने कहीं बिखर गये तो सब मूर्तियाँ छोड़ गये हैं वहाँ। ३०-३५ मूर्तियाँ हैं। बड़ी करोड़ों रुपये की कीमत की। मोती की मूर्ति।

इसी प्रकार यह मोती ऐसा ऊँचा था। ऐसे झलक... झलक... झलक... मोती हो। पटेल कहे कि परन्तु इसमें पानी समुद्र कहाँ है? मेरी पछेड़ी का छोर छुआओ यहाँ। डूबे तो पानी मानूँ। ऐ पटेल! इस पानी की कीमत कपड़े से नहीं होती। ऐ पटेल! यह तेरे छोर से इसकी कीमत नहीं होती। यह तो नजरों में इसकी कीमत दिखती है। जिसकी नजर में इस मोती का पानी कैसा और कीमत जिसे आयी है ज्ञान में, वह आँख उसके पानी को जानती है। तेरा वस्त्र गीला हो तो कहे पानी, इसमें ऐसा नहीं होता।

इसी प्रकार भगवान चैतन्य मोती राग के पट में बँधा हुआ अनादि काल का, उसे देखे तो दूसरे को कहे कि यह आत्मा तो ऐसा है। परन्तु किस प्रकार? कुछ हमको बाहर में दिखना चाहिए। परन्तु वह नजर से नहीं दिखता इस नजर से। उसकी नजर दूसरी होती है। वह अन्तर चैतन्य के अभिप्राय की नजर से देखने पर वह भगवान चैतन्य उदार उच्च और उदात्त है। जिसमें अनन्त ज्ञान और आनन्द का अकेला पुंज और रस पड़ा है। उस सम्यग्ज्ञान की नजरों से उसकी कीमत होती है, उसकी, तेरे राग और पुण्य दया, दान के व्रत के परिणाम से उसकी कीमत, यह वस्त्र-कपड़ा भींगे, वह नहीं होता कि उसमें ऐसे हम बहुत व्रत पालते हैं ऐसा हो तो आत्मा बड़ा कहलाये। अब सुन न! समझ में आया? तुझे उस चैतन्य की कीमत की खबर नहीं।

भगवान आत्मा एक समय में जहाँ अशान्ति जरा थी और अज्ञान टलकर जहाँ ज्ञान का चमत्कार जगा कि ओहो! इस चमत्कार का अंश जहाँ पहले नहीं था और आया, वह सब कहाँ से? अज्ञान और राग की एकता टली, उसमें से नहीं आया यह। यह सम्यग्ज्ञान का चमत्कार सम्यक् अनुभव में आवे, वह ज्ञान का चमत्कार अन्दर पड़ा है। समझ में आया? यह पीपर के दाने में से जैसे चौंसठ पहरी की चमकार प्रगट हुई, वह त्रेसठ पहरी गई, उसमें से नहीं आयी, अन्दर में पड़ी है, उसमें से आयी है एकदम

अन्दर से। छोटी पीपर के दाने-दाने में चौंसठ पहरी चरपराई का रस... रस... रस... पूरा (भरा है)। उसी प्रकार भगवान आत्मा में अन्दर पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, अखण्ड आनन्द और अखण्ड ज्ञान पड़ा है। कहते हैं कि यह उसके अनुभव की प्रतीति और सेवा। आहाहा! कहाँ नजर डालनी? जहाँ डालनेयोग्य है, वहाँ डालता नहीं और जहाँ-तहाँ भटका करता है।

ऐसे अभिप्राय को अन्दर में सेवन कर, (कि) मैं तो सदा ही शुद्ध हूँ। मुझसे यह... विद्यमानता तो है, हों! ज्ञान की अल्पज्ञता, राग विकल्पता, निमित्त की संयोगता। ज्ञान की अल्पज्ञता, राग की विपरीतता और परपदार्थ की संयोगता, यह तीन हैं तो सही। परन्तु वे यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ,... आहाहा! समझ में आया? यह दया, दान, व्रत का विकल्प उठे, वह मैं नहीं। यह शरीर प्रगट हो, वह मैं नहीं। यह अल्पज्ञ पर्याय प्रगट हुई न साधक को, उतना भी मैं नहीं। कठिन बातें, भाई!

अभी तो यह सम्यग्दर्शन की बात चलती है, हों! पहला गुणस्थान पलटकर, मिथ्यात्व टलकर सम्यक्त्व हो, उसकी दशा में इतना चैतन्य का चमत्कार प्रतीति में और अनुभव में आवे, उसे सम्यग्दर्शन धर्म, शुरुआत का पहले में पहली धर्म की दशा उसे कहते हैं। कहते हैं, यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध... देखो, वह एक था सामने। मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति... था। यह जो भिन्न लक्षणवाले, मुझसे भिन्न लक्षण हैं और विविध प्रकार के भाव, फिर उदय, उपशम, क्षयोपशम इत्यादि। वे प्रगट (होते हैं), वह मैं नहीं। क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं। उसके साथ में लगा दिया, ५०वीं गाथा के साथ में। क्या कहते हैं इसमें, कहीं कभी उसका पता लिया नहीं। सुनने को मिलता नहीं, विचार कब और रुचि में लाकर अनुभव कब करे? और इसके बिना तीन काल में धर्म होता नहीं। भानुभाई! कितने वर्ष गये परन्तु यह कभी सुना नहीं था यह।

क्या कहा? मेरा भगवान मेरे पास पूर्ण है, कहते हैं। उसके अतिरिक्त जितने भाव प्रगट हों, राग या अल्पज्ञता आदि, वे दूसरे लक्षणवाले, मेरे चैतन्य के लक्षण से लक्षित होनेवाली वह चीज़ नहीं। क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं। वह सब मेरे लिये तो परपदार्थ है। ओहोहो! समझ में आया? भगवान आत्मा मैं एक समय में पूर्ण प्रभु,

उसमें श्रद्धा के अभिप्राय के झुकाव को अन्तर में झुकाया और पूर्ण स्वरूप है, क्योंकि जो वस्तु स्वभाव है, वह अपूर्ण विकार, दुःख आदि होता नहीं, ऐसा जहाँ आनन्द का अंश प्रगट हुआ, श्रद्धा के सम्यक् के अंश प्रगट हुए और सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, इन तीनों किरणों रूप एक दशा में यह प्रगट हुआ, वह पूरा उस जाति का है, ऐसी इसके प्रतीति में—सम्यग्दर्शन में, अनुभव की प्रतीति में आता है। उस अनुभव को सेवन करो, ऐसा यहाँ कहते हैं। उस अनुभव का सेवन करो, बाकी सब सिरपच्ची और खटपट और सब संसार खाते है। प्रभुभाई! क्या करना यह? लो, एक कलश पूरा हुआ। अब पाँच गाथा बाकी है। अभी एक कलश है इसमें, लो! स्वयं का कलश है, भाई!

और (इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) — वे स्वयं कहते हैं।

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-

दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः ।

इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी

सिद्धिं सोडयं याति तामत्यपूर्वाम् ॥७४ ॥

श्लोकार्थः :- शुद्ध जीवास्तिकाय से... देखो, एक शब्द प्रयोग किया है। क्योंकि वस्तु का स्वरूप जीव, अस्ति और काय शब्द प्रयोग किया है। यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा आत्मा किसी ने देखा नहीं। सर्वज्ञ के माननेवाले भले माने और देखे, परन्तु सर्वज्ञ के अतिरिक्त जितनों ने कथन किये, उन सबने 'शुद्ध जीवास्तिकाय'—ऐसा नहीं देखा। क्योंकि एक तो शुद्ध अस्ति है और काय अर्थात् असंख्य प्रदेश का चौड़ा है। क्या कहा? वस्तु और उसका क्षेत्र दो के कारण उसके अनन्त गुण जो भाव पड़े हैं, उसे इसने प्रतीति में, श्रद्धा में अनन्त काल में लिया नहीं। सर्वज्ञ भगवान् जिनको एक समय—सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक ज्ञात हुए, उन्होंने जीव को जीवास्तिकाय कहा है। 'जीव है' इतने मात्र से नहीं, है वह तो अस्ति में जाता है, परन्तु उसे काय अर्थात् चौड़ा कितना? लोकव्यापक, ऐसा नहीं, परन्तु लोक के जितने आकाश के प्रदेश हैं, उतने प्रदेश का काय। काय अर्थात् उसकी काया वह। असंख्य प्रदेश का चौड़ा, वह

उसकी काया अर्थात् प्रदेश के समूह रूप आत्मा है। समझ में आया ?

शुद्ध जीवास्तिकाय से... भाषा देखो न! एक भगवान जीव अर्थात् आत्मा, अस्ति अर्थात् है, शुद्ध पवित्र और काया असंख्य प्रदेश, असंख्य प्रदेश। एक परमाणु पॉइन्ट है। यह (शरीर) तो अनन्त रजकण का पिण्ड यह है। इसका अन्तिम टुकड़ा, उसे परमाणु कहते हैं और वह परमाणु जितने क्षेत्र को रोके, उसे प्रदेश (कहते हैं)। वस्तु का विशेष, प्र अर्थात् विशेष, देश अर्थात् भाग। जैसे सोने की सांकल है, पाँच सौ मकोड़ा उसमें हों, उसकी मकोड़ा की जाति में और इसमें अन्तर है। मकोड़ा तो ऐसे होते हैं, इसमें ऐसा नहीं। इसमें तो एक प्रदेश परमाणु को जितने में रहे, उतने अंश को भाग—प्रदेश कहते हैं। ऐसे-ऐसे प्रदेश जीव में असंख्य हैं। पूरे लोक के आकाश प्रदेश जितने एक जीव के प्रदेश हैं। वह सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त, वीतराग परमेश्वर जिन्हें विज्ञान और वीतरागता दोनों पूर्ण हो गयी, उन्होंने जैसा आत्मा प्रत्यक्ष देखा और जाना। सम्यग्दृष्टि भी उसे प्रतीति में, अनुभव में वेदन से, आनन्द से ले, परन्तु वह असंख्य प्रदेश है, ऐसा उसे नजर में पड़ता नहीं। और अज्ञानी को तो असंख्य प्रदेश और अनन्तगुण यह किसी प्रकार से प्रतीति में अनन्त काल से आया नहीं। इसलिए इन्होंने शब्द ऐसा प्रयोग किया है कि शुद्धजीवास्ति, जीव-अस्ति एक-एक आत्मा की बात है।

पवित्र आत्मा भगवान जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव,... लो, यह सब चौदह गुणस्थान और मार्गणास्थान इन सब भेदों की व्याख्या बहुत लम्बी है। ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव,... (हैं)। क्योंकि पर्याय है, उसके आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है, इसलिए पर्याय को भी यहाँ पुद्गलद्रव्य के भाव कह दिया है। परद्रव्य कहो या पुद्गलद्रव्य कहो। वे वास्तव में हमारे नहीं हैं—आहाहा! श्रद्धा से बड़े पर्वत को उठाना! तराजू में मेरुपर्वत तोलना! वह कहे तुलता नहीं, यहाँ कहे तुलता है। यह सम्यग्ज्ञान के नेत्र से पूरा भगवान तौला जाता है अर्थात् मापा जाता है, प्रमाण में आ जाता है। प्र अर्थात् विशेष, माप अर्थात् प्रमाणज्ञान, उसमें पूरा तत्त्व पूर्ण क्या, ऐसे अन्तर के ज्ञान के प्रमाण के माप में पूरा जीवास्तिकाय आ जाये, उसे सम्यग्ज्ञान और प्रमाणज्ञान और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। समझ में आया ? कहते हैं... अस्ति-नास्ति की।

शुद्धजीवास्तिकाय वह मैं और अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं'—ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,... भाषा प्रयोग की है, कहता है, प्रयोग की है। व्यक्तं ऐसा है न। 'इत्थं व्यक्तं वक्ति' ऐसा शब्द पड़ा है। व्यक्तं। कहता है। 'कहता है' इसका अर्थ ऐसा जो वेदता और जानता है और जैसा वेदे-जाने, वैसा वाणी में आवे। ऐसा भगवान आत्मा एक समय का डोला डोले नहीं, हिलाया हिले नहीं, ध्रुवस्वभाव से भरपूर अनन्त आनन्दकन्द—ऐसा जिसने दृष्टि में, अनुभव में लेकर प्रतीति की, वह ऐसा कहता है कि हमारा स्वभाव पूर्ण है। इसके अतिरिक्त हमारे में दूसरा कुछ है नहीं।

ऐसा जो तत्त्ववेदी... अर्थात् जाननेवाला, अनुभव करनेवाला स्पष्टरूप से कहता है... पाठ में ऐसा है न? 'व्यक्तं' 'व्यक्तं' स्पष्ट कहता है। यह नहीं कि इसे छिपाऊँ, इसकी बात छिपाऊँ। अरे! चल... चल... भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण-पूर्ण परमात्मा, वह मेरी दृष्टि का विषय और वह मेरा ध्येय, वह तो पूर्णानन्द है। ऐसा जो स्पष्टरूप से वेदे और स्पष्टरूप से वेदे, वैसा कहे, वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं। वह अति अपूर्व, अति अपूर्व, देखो! अपूर्व तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। यह तो अति अपूर्व सिद्धि, अनन्त काल में मुक्तदशा सिद्धपद पाया नहीं, वह ऐसे अभिप्राय को अनुभवी समकिति उस मुक्तिपद को पाता है। कहो, समझ में आया?

तत्त्ववेदी वे अति अपूर्व सिद्धि को... मोक्षदशा कभी पूर्व में हुई थी? अपूर्व। वह पर्याय आत्मा में ऐसा पूर्ण जिसने जाना और दृष्टि का जहाँ ध्येय पकड़ा, उसे अल्प काल में अतिअपूर्व मुक्तदशा होनेवाली है, होनेवाली और होनेवाली है! दूज उगी, उसे पूर्णिमा हुए बिना रहे नहीं। दूज जहाँ उगी तो पूर्णिमा चौदह दिन में होगी। समझ में आया? इसी प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन हुआ उसे चौदह गुणस्थान होकर सिद्ध हुए बिना रहेगा नहीं। समझ में आया इसमें? गजब बातें परन्तु सुनने में एक भी बात संग्रहित करे, ऐसी हो नहीं। सुनी हुई हो दूसरी। ऐई! मणिभाई! कुछ वाँच-वाँचकर निवृत्ति में पोथा और थोथा फिराया। यह न मिले उसमें। परन्तु अधिक घुस गया हो न जहर अन्दर वापस सुलटा आना मुश्किल पड़े।

कहते हैं कि तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ देवाधिदेव वीतराग परमेश्वर जिनके एक

समय में तीन काल, तीन लोक अपनी पर्याय जानने पर ज्ञात हो गये। पर्याय जानने पर ज्ञात हो गये। उसे जानना पड़ा नहीं इन्हें। यह पर्याय पूर्ण, वह अपने को जाना, वहाँ सब ज्ञात हो जाता है। भगवान ऐसा कहते थे, ऐसा कहते हैं, ऐसा कहेंगे। तीन काल, तीन लोक में जहाँ-जहाँ भगवान विराजते हैं, वहाँ कहते हैं कि हे जीव! तेरे पूर्ण स्वभाव के अतिरिक्त 'मेरा कुछ नहीं' ऐसा तू निर्णय और अनुभव कर। ऐसा तत्त्ववेदी कहे, वह थोड़े काल में सिद्धि को—मुक्तिपद को पाता है।

अब पाँच गाथायें रहीं। थोड़ा-थोड़ा गाथा का सार ले लेते हैं। फिर पूरा हो जायेगा। फिर कलश का शाम-सवेरे दो बार लिया जायेगा। तीन दिन है न अभी? अब पाँच गाथायें।

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१ ॥
 चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं ॥५२ ॥
 सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
 अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी ॥५३ ॥
 सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।
 ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४ ॥
 ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं ।
 णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥५५ ॥

नीचे इसका हरिगीत—

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१ ॥
 चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है ॥५२ ॥

जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।
 वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो ॥५३॥
 सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है ।
 व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है ॥५४॥
 व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये ।
 चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये ॥५५॥

व्यवहार-निश्चय दोनों का स्पष्टीकरण पाँच गाथाओं में है। इनकी टीका। इनकी संस्कृत टीका का नीचे अर्थ। यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। है? अब व्यवहाररत्नत्रय की पहले बात करते हैं। व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् कि जो मोक्षमार्ग में निमित्तरूप हो और व्यवहाररत्नत्रय, वह बन्ध का कारण हो और निश्चयरत्नत्रय, वह मोक्ष का कारण हो। ऐसे दोनों निश्चय और व्यवहाररत्नत्रय के स्वरूप को कहेंगे। **प्रथम...** रत्नत्रय समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। आत्मा भगवान है, अन्त में मोक्ष के कारणरूप रत्नत्रय के बाद कहेंगे। और पहले व्यवहार को (कहते हैं) परन्तु, होता है निश्चय हो उसे व्यवहार होता है। जिसे भगवान आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्द के अनुभव में प्रतीति हुई है, शान्ति का, आनन्द का कण वेदन में आया है, उसकी जो प्रतीति हुई अनुभव में, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं। उसके साथ ऐसे जीव को पूर्ण वीतरागदशा न हो, इसलिए उसे व्यवहारसमकित का एक विकल्प-राग, उसकी अस्ति में होता है। वह व्यवहार विकल्प की श्रद्धा का क्या स्वरूप है, जिसे निश्चय हो उसके? वजुभाई! इसकी व्याख्या करते हैं।

प्रथम... पहले अर्थात्? पहले होता है, ऐसा शब्द यहाँ नहीं है। पहली बात करते हैं कि ऐसा शब्द है। 'तावत्' समझ में आया? **भेदोपचार-रत्नत्रय...** भेदवाले अर्थात् उपचाररूप रत्नत्रय अर्थात् मोक्ष का मार्ग उपचाररूप। भेदरूप, वास्तविकरूप नहीं, उपचाररूप। ऐसा रत्नत्रय **वह इस प्रकार है** :— व्यवहाररत्नत्रय। व्यवहारसम्यग्दर्शन, व्यवहारसम्यग्ज्ञान, व्यवहार सम्यक्चारित्र। निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान, निश्चयचारित्र हो, उसे व्यवहार के ऐसे रत्नत्रय के विकल्प हों, उसका स्वरूप उसे कहते हैं। केसर का डिब्बा हो तो साथ में डिब्बा केसर में तोला जाता है। सेर केसर लेने

जाये तो डिब्बा तोला जाता है। वह डिब्बा केसर का तोला गया परन्तु वास्तविक केसर वह नहीं है। इसी प्रकार आत्मा के आनन्दस्वरूप निश्चय के अनुभव की प्रतीति का सम्यग्दर्शन, उसका सम्यग्ज्ञान और उसके अनुभवरूप चारित्र रमण आनन्द, वह वास्तव में केसर अर्थात् माल और उस माल में पूर्णता नहीं, इसलिए एक विकल्प उठता है। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का एक राग होता है, उसे व्यवहारसमकित कहते हैं। आरोप से, भेद से, उपचार से समकित कहते हैं। वह समकित क्या है, उसकी व्याख्या करते हैं।

विपरीत अभिनिवेशरहित... जिसे विपरीत अभिनिवेश टल गया है अन्दर में से। ऐसे निश्चयसमकितवन्त को **श्रद्धानरूप — ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति...** व्यवहारसमकित। व्यवहार में विपरीत अभिप्राय कहा है और निश्चय में उसे विपरीत अभिप्राय टलकर अन्तर अनुभव सम्यक् हुआ है। उसे व्यवहार का समकित कैसा होता है? कि वह **सिद्धि के परम्पराहेतुभूत...** निश्चयसम्यग्दर्शन तो साक्षात् मोक्ष का कारण है, परन्तु विकल्प उठता है, सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र की प्रतीति का जो विकल्प उठता है, वह शुभरागरूपी व्यवहारसमकित परम्परा हेतु अर्थात् कि उसे टलकर फिर वीतरागता होगी, ऐसा व्यवहारसमकित किसे होता है? कैसा होता है? बहुत सूक्ष्म बातें हैं।

भगवन्त पंच परमेष्ठी... पाँच परमेष्ठी—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। महासन्त मुनि, ज्ञानी, ध्यानी आत्मा के आनन्द में विचरनेवाले। अरिहन्त, वे सर्वज्ञदेव; सिद्ध वे शरीररहित सर्वज्ञदेव; अरिहन्त वे शरीरसहित सर्वज्ञदेव; आचार्य, उपाध्याय, साधु, वे साधक की दशा में खड़े हुए। अर्थात् पाँचों ही गुणवाचक नाम हैं, कोई सम्प्रदायवाचक नाम नहीं। जिन्होंने आत्मा में से अरि अर्थात् विकार के—दुश्मन के भाव को टाला है और चार कर्म जिन्हें टल गये हैं। आत्मा के आनन्द की अनन्त चतुष्टय ज्ञान, आनन्द, वीर्य और शान्ति प्रगट हुई है। सशरीर होने पर भी उसे अरिहन्तपद की व्याख्या कहा जाता है। समझ में आया?

दूसरा सिद्धपद। जिन्हें आठों ही कर्म का नाश होकर अशरीरी पूर्ण दशा प्रगट हुई, ऐसी आत्मा की दशा को सिद्ध पद कहते हैं। तीसरे। पंच परमेष्ठी की व्याख्या

चलती है। तीसरे आचार्य। आचार्य अर्थात् अन्तरस्वरूप में आनन्द के श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के आचार में जो रमते हैं, ऐसे जो आचार्य। उपाध्याय, ऐसी ही बात जो दूसरे को पढ़ावे और ऐसा ही स्वरूप जो अन्तर में साधते हैं। ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु, ये तीन गुरु की व्याख्या में जाते हैं, पहले दो देव की व्याख्या में जाते हैं। साधारण रीति से कहें तो पाँचों ही परमगुरु की व्याख्या में जाते हैं। इन प्रत्येक की व्याख्या है। अभी लम्बी करने जायें तो (बहुत समय चाहिए)।

यहाँ तो आया है, वह ऐसे पाँच परमेष्ठी, उनके प्रति **चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित उत्पन्न हुआ निश्चल भक्तियुक्तपना,...** ऐसे परमात्मदशा पंच परमेष्ठी की दशा में उनके प्रति चलता नहीं, चलिनता नहीं। अस्थिर लकड़ी की भाँति, वृद्ध चले ऐसे नहीं। चलतारहित, मलिनता और अगाढ़ता अर्थात् अनिश्चितता रहित निश्चितता। **रहित उत्पन्न हुआ निश्चल भक्ति...** भगवान पंचपरमेष्ठी के प्रति जिसका भक्ति का विकल्प उठा है। जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन, ज्ञान स्वभाव के आश्रय से मुक्ति मार्ग तो है, परन्तु विकल्प उठता है, उसमें पंच परमेष्ठी के प्रति ही भक्ति उसे उछलती है। ऐसे बिना उसे भक्ति का राग अज्ञानी को जो दूसरे के प्रति उठे, ऐसा ज्ञानी को उठता नहीं। समझ में आया ?

भक्तियुक्तपना **निश्चल भक्तियुक्तपना,...** चलित नहीं। दुनिया ऐसे चलित करने आवे पूरी। पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त कोई देव-गुरु हो सच्चे, तीन काल में नहीं। समझ में आया ? ऐसा जिसे श्रद्धा में प्राण जाये परन्तु धर्म के विकल्प और उस जाति की मान्यता को न छोड़े, ऐसा विकल्प व्यवहार है। उसके पीछे निश्चय अनुभव की प्रतीति का सम्यक् निश्चय सम्यक् है। उसे ऐसा भक्ति का राग हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया ? ऐई ! रतिभाई ! क्या कहते हैं इसमें ? किसमें रति हो, ऐसा कहते हैं। भक्ति। उसे विकल्प उठता है कि ओहो ! यह परमात्मस्वरूप अरिहन्त, सिद्ध भगवान, आचार्य, उपाध्याय, साधु अर्थात् अन्तर के आनन्द के आचरण में रहते हैं और जिनकी प्रचुर शान्ति, जिन्हें शान्ति के कुण्ड में से प्रगट हुई है। ऐसी जो आचार्य, उपाध्याय और साधु की दशा, जिसे भगवन्त पंच परमेष्ठी में सम्मिलित करती है। पाँचों ही को परमेष्ठी कहा न ? जिस साधु को गणधर भी नमस्कार करे। गमो लोए सव्व साहूणं। विकल्प उठता

है, बार अंग रचते हैं जब गणधर। भगवान के निकट विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु के पास गणधर विराजते हैं। भगवान महावीर के पास गौतम थे। जब वाणी खिरी और सुना और आत्मभानपूर्वक जहाँ चौदह पूर्व की रचना की, पहले उसमें लिखे, णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व साहूणं अन्त में आता है। वह अन्तदीपक शब्द है। वास्तव में वह पाँचों को लागू पड़ता है। उसका विस्तार है पूरा। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। आत्मा के सर्वज्ञ ने कहे हुए आत्मपद को अनुभव करके अन्तर के साधक, वे साधु। आनन्द अतीन्द्रिय को साधे, रागादि हो, उन्हें हेय जाने। ऐसे सन्तों को गणधर के नमस्कार में, विकल्प में वे नमनेयोग्य में आ जाते हैं। वह कैसा पद होगा? समझ में आया? आहाहा! ऐसे पंच परमेष्ठी के प्रति चलतारहित, मैलरहित, अनिशचिततारहित, निश्चित—ऐसा **उत्पन्न निश्चलभक्ति...** भक्ति-भक्ति। आहाहा! व्यवहारभक्ति की बात है न! निश्चयभक्ति तो अपने स्वरूप के अनुभव की प्रतीति, वह निश्चयभक्ति है। समझ में आया?

भगवान आत्मा के प्रति जिसे अनुभव में सम्यग्दर्शन हुआ, उसे पंच परमेष्ठी के प्रति भक्तियुक्त राग का भाव, जिसे व्यवहारसमकित कहते हैं, अर्थात् समकित तो नहीं, इसलिए व्यवहार से उसे समकित कहते हैं। नहीं, उसे कहे, उसको व्यवहार कहा जाता है; है, उसे कहे, उसका नाम निश्चय कहा जाता है। समझ में आया? इसलिए भेद और उपचार पहला शब्द प्रयोग किया है। उपचार से,... परन्तु वह जिसे आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह तो मोक्षमार्ग जिसे है और या मोक्षमार्ग का फल पा गये हैं, ऐसे पाँच परमेष्ठी के प्रति ही उसे भक्तियुक्त राग आता है। समझ में आया? जिसकी दृष्टि विपरीत, जिसका ज्ञान विपरीत, जिसका वर्तन विपरीत, जिसके मार्ग की कोई गन्ध भी नहीं, उसके प्रति सम्यग्दृष्टि को भक्ति का राग आता नहीं। चन्दुभाई! यह और व्यवहार आया यह। अकेला निश्चय-निश्चय चलता था तो व्यवहार आना चाहिए न साथ में?

ऐसा समकित। जगत के सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई व्यापक माननेवाले आदि विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव... इस जगत को किसी ने उपजाया या उपजाता है या नाश करे, यह इत्यादि कर्ताओं का जहाँ अभिप्राय है, उस अभिप्रायरहित

ही सम्यक्त्व है—ऐसा अर्थ है। उस समकित का अर्थ किया, भाई! यह शैली अमृतचन्द्राचार्य की प्रयोग की है। आती है न चारित्र की व्याख्या, नहीं? यह चारित्र, उसका स्व आचरण, यह उसका अर्थ है, ऐसा आता है न? प्रवचनसार। उसकी शैली सामने प्रयोग की पद्मप्रभमलधारिदेव ने। आत्मा की भक्ति जिन्हें उछली है 'पूर्णानन्द प्रभु मैं तो हूँ' उसका नाम श्रद्धा और उसका नाम भक्ति। ऐसी भक्ति अर्थात् निश्चयसम्यग्दर्शन को ही भक्ति कहते हैं। वह सच्ची भक्ति भगवान आत्मा की। और उसे राग हो, पूर्ण वीतराग न हो, इसलिए उसे विकल्प होता है, तो पंच परमेष्ठी के प्रति उनकी भक्ति का झुकाव, भक्ति का झुकाव वहाँ जाता है। आहाहा! प्रभु पूर्णता को प्राप्त हुए और पूर्णता को साध रहे हैं अन्तर आनन्द को, ऐसे गुरु को, तीन—आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा अरिहन्त, सिद्ध। बहुत-बहुत ज्ञान अपेक्षित है, इसकी समझण अपेक्षित है। ऐसा का ऐसा मान लेना कि यह साधु हैं और यह आचार्य हैं और उपाध्याय, बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

यहाँ कहते हैं कि उनके प्रति अभिनिवेश का अभाव... कोई दूसरे अज्ञानी, सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहे हुए पदार्थ के अभिप्राय का जिसकी श्रद्धा में अभाव है। ऐसा व्यवहारसमकित कहा जाता है। वह व्यवहारसमकित उसे कहते हैं। किसे? जिसे आत्मा की अनुभव की प्रतीति निश्चयसम्यक्त्व हुआ हो, उसे ऐसा व्यवहारसमकित होता है। अज्ञानी को व्यवहारसमकित भी नहीं होता। अभव्य को व्यवहाररत्नत्रय भी होता नहीं। जिसे आत्मा निश्चय के भान बिना, उसे व्यवहार कैसा? अन्ध व्यवहार? जगे बिना व्यवहार कौन उसे जानेगा? समझ में आया? कहते हैं, भगवान आत्मा के भान की भूमिका में परमेष्ठीपद में जिसकी भक्ति उछलती है, उसे व्यवहारसमकित ऐसा उसका अर्थ होता है।

संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान)... उसे व्यवहारज्ञान कहा जाता है। यह अभी व्यवहारज्ञान की व्याख्या चलती है, हों! जिसे... यह बाद में कहेंगे, आत्मा अखण्डानन्द का अन्तर स्वसंवेदन का ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान और संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे (ऐसा शंकारूप), वह संशय है;... दूसरे भी कल्याणमूर्ति कोई होंगे दूसरे? ऐसा अन्दर

संशय, वह शंका। वह जिसे नहीं होती। व्यवहारसमकिति को वह नहीं होती। निश्चयसमकिति की भूमिका में व्यवहार ज्ञान में भी ऐसे संशय आदि नहीं हो सकते।

शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय (अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है;... विपरीतता। अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है तत्सम्बन्धी अज्ञानपना) ही विभ्रम है। तीनों की व्याख्या की। संशय, विमोह और विभ्रम। यह विभ्रम, उसे अज्ञान कहते हैं। ऐसा अज्ञान सम्यग्ज्ञानी को आत्मा का ज्ञान जिसे सम्यक् प्रगट हुआ, उसे व्यवहारिक ज्ञान भी ऐसा होता है। व्यवहारिक ज्ञान में गड़बड़ उठे, ऐसा ज्ञान नहीं होता। समझ में आया ? और जहाँ-तहाँ, हे भगवान! उस ओर दक्षिण में, भाई गये न वहाँ। क्षेत्रपाल और पद्मावती के ढेर। ले जाये महाराज को चरण करो, परन्तु यह देवियाँ पद्मावती बड़ी यह घाघरा और यह भगवान एक ओर रह गये। भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा। पद्मावती देवी। महाराज! यह पद्मावती देवी है। परन्तु क्या देव हैं वे ? वाड़ा में जन्में, इतनी उसकी खबर नहीं होती तुमको ? सर्वज्ञदेव परमात्मा पूर्णानन्द की प्रतिमा के अतिरिक्त दूसरी प्रतिमा वहाँ रखो, तुम्हारा व्यवहार का ठिकाना नहीं, धर्म कहाँ से आता होगा ? हमको मानो धर्म हो गया।

कहते हैं कि जिसे जिसके ज्ञान में संशय नहीं। व्यवहार के ज्ञान में, हों! कैसे होगा ? यह सच्चा होगा या यह सच्चा होगा ? यह सच्चा होगा या यह सच्चा होगा ? ऐसा तो व्यवहार में भी ठिकाना नहीं, वह तो मूढ़ निश्चयमिथ्यादृष्टि है और व्यवहार में वह खोटे ज्ञानवाला है। इतना सब निर्णय करना कब ? रोटियाँ खाना ? स्त्रियाँ निभाना ? या यह निर्णय करना हमारे ? भानुभाई! क्या करना परन्तु ? इतना सब करना, ऐसा विचार करना। व्यापार करना हो आत्मा के लाभ का तो सब विचार करना पड़ेगा।

पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। व्यवहार। उस धर्मी जीव को आत्मा के अनुभव के आनन्द के वेदन में अविकारी चारित्र के परिणाम प्रगट हुए, वे निश्चयचारित्र। उसे पाप के परिणाम से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति, वह व्यवहारचारित्र है। निश्चयसम्यग्दृष्टि, निश्चयज्ञान, निश्चयचारित्रवन्त को अशुभ पाप के परिणाम की निवृत्तिरूप परिणाम (आवे), उसे व्यवहारचारित्र पुण्यबन्ध के परिणाम स्वभावचारित्र है, उसे ऐसे परिणाम होते हैं। समझ में आया ? ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है।

लो, ऊपर कहा था यह। भेद अर्थात् व्यवहार, विकल्पवाला उपचार, ऐसी रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान की परिणति है।

उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। यह व्यवहार हो गया। यह भी व्यवहार, भाई! क्या कहा? सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्वों में भी यह हेय है और यह उपादेय के विकल्पवाला ज्ञान भी व्यवहारज्ञान है। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने फरमाया और ऐसा है, ऐसा है-ऐसा जाना, ऐसा कहा। यह ऐसे ज्ञान में भी यह हेय है—छोड़नेयोग्य है, यह उपादेय है। ऐसा जो ज्ञान भेदवाला, उसे भी व्यवहारसम्यग्ज्ञान, वह जिसे निश्चय आदरणीय आत्मा आनन्दमूर्ति का ज्ञान स्वसंवेदन हुआ, उसे ऐसा हेय-उपादेय का ज्ञान व्यवहार से होता है। यह व्यवहार बहुत है तो लम्बा नहीं लम्बाते। कोई कहे, हमारे चन्दुभाई सवेरे कहे, यह इतना लम्बा चल गया, इतना चल गया। हेतु तो ऐसा है कि कदाचित् कल पूरा हो जाये तो एकाध कलश आ जाये सवेरे, दोपहर ऐसा। कलश आ गये हैं। ६४ पृष्ठ आ गये हैं आज। पृष्ठ आ गये। यहाँ तो दिन रहे तीन।

भगवान! तेरी घर की बातें, भाई! क्या हो? सुखी होने का रास्ता। यह आनन्दकन्द सुख का स्वाद जिसने दृष्टि में लिया है, उसकी प्रतीति जहाँ अनुभव में हुई है, ऐसे आत्मा का स्वसंवेदन आत्मज्ञान हुआ है, और ऐसे आत्मा में स्वरूप की लीनता के चारित्र के परिणति की धारा बहती है, उसका नाम निश्चयमोक्षमार्ग, वह सच्चा मोक्षमार्ग। ऐसी भूमिका में व्यवहार कैसा होता है, यह उसकी व्याख्या की है। समझ में आया? व्यवहार अर्थात् भेद और व्यवहार अर्थात् पुण्यबन्ध का कारण। उसे पुण्य का विकल्प भी ऐसी जाति के, व्यवहारश्रद्धा भी सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की, पंच परमेष्ठी की, खोटे की नहीं। है सच्चे की, खोटे की नहीं। भगवान ने कहे हुए हेय-उपादेय का ज्ञान, खोटे का नहीं। और भगवान ने कही हुई भूमिका प्रमाण वहाँ पंच महाव्रत के विकल्प, वे व्यवहारचारित्र हैं। यह भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। उसमें, जिनप्रणीत... उसमें... ऐसा कहा है न? चलती बात में उसमें, जिनप्रणीत... वीतराग सर्वज्ञ के मुख में से निकला हुआ छह द्रव्य का, नौ तत्त्व का वास्तविक वस्तु का स्वरूप है जो त्रिकाल सिद्ध है, उसे हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। इतनी व्यवहार की बात की है।

अब, सम्यग्दृष्टि को सुनानेवाले देशना देनेवाले निमित्त कैसे हों समकिति को

समकित पाने में? सम्यग्दर्शन पावे, वह तो अपने अनुभव से पाता है, परन्तु उसके देशना देनेवाले गुरु और सर्वज्ञ कैसे होते हैं, उनकी वाणी कैसी होती है कि जिसे निमित्तरूप से सिद्ध हो, उसकी व्याख्या की जाती है। समझ में आया?

इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... समकित परिणाम, यह निश्चय है, भाई! निश्चयसमकित। भगवान आत्मा जो अनुभव की दृष्टि करके प्रतीति जहाँ की, ऐसा जो सम्यग्दर्शनरूप परिणाम है वह, वह गुण नहीं। गुण त्रिकाल होता है, सम्यग्दर्शन पर्याय है, उसे परिणाम कहते हैं। वह सम्यक्रूपी परिणाम, उसका बाह्य सहकारीकारण। ध्यान रखना जरा, इसमें अभी बड़ा विवाद है। **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** उसे आत्मा का भान... क्योंकि सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा आत्मा है और सर्वज्ञ की जो वाणी निकली, वह कैसी है? कि वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल में से ॐ ध्वनि खिरी, ऐसा समस्त वस्तु के प्रतिपादन। क्यों? तीन काल, तीन लोक देखे भगवान के ज्ञान में, उनका प्रतिपादन करनेवाली वाणी। **समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** तत्त्वज्ञान ही है। उसे वाणी तो सर्वज्ञ और सन्तों की सम्यग्ज्ञानी की ही वाणी उसे निमित्तरूप से होती है। उसका सम्यक् अनुभव करे, उसे निमित्तरूप से सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी, सम्यक् सन्त और केवली की ही वाणी निमित्तरूप से होती है। दूसरी निमित्तरूप से हो नहीं सकती। समझ में आया? यह बाह्य सहकारी निमित्त। अब अन्तरंग एक कारण कहते हैं, उसका विस्तार है थोड़ा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - २२-०२-१९६४
गाथा-५१ से ५५, प्रवचन नं. ४०६

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथायें चलती हैं। यहाँ अधिकार यह आया है कि इस आत्मा का अनन्त अतीन्द्रिय शुद्ध आनन्दस्वरूप का सम्यग्दर्शन अर्थात् कि ऐसे परम पूर्ण स्वभाव की सम्यक् सच्ची प्रतीति आत्मा के स्वसंवेदन प्रत्यक्ष में (हो), वह सम्यग्दर्शन एक परिणाम है। परिणाम अर्थात् पर्याय है। उस परिणाम में निमित्त कौन होता है, यह बात चलती है। कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शान्तरस का और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव समुद्र है। ऐसा आत्मा पूर्ण अनन्त गुण के पिण्ड स्वभावस्वरूप उसका जो स्वसंवेदनज्ञान में अन्तर्मुख होकर प्रत्यक्षपना ज्ञान में होना और उसमें उसकी प्रतीति होना, ऐसा जो सम्यग्दर्शनरूपी परिणाम जो मोक्ष के मार्गरूप है, उस परिणाम में निमित्त कौन होता है, यह बात करते हैं।

कहते हैं कि इस सम्यक्त्वपरिणाम का... देखो, यहाँ विवेक करते हैं। अज्ञानी और अल्पज्ञानी विपरीत बुद्धिवाले के शब्द उसे समकित के परिणाम में निमित्त नहीं होते। ऐसा ही कोई निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है कि जिसे आत्मज्ञान के परिणाम स्वभाव के भान में सम्यग्दर्शन के हो, उसे ज्ञानी की ही वाणी निमित्त होती है, उसे निमित्त की राह देखनी नहीं पड़ती। निमित्त के आधीन नहीं, परन्तु आत्मा जिसे धर्मरूपी पर्याय की दशा सम्यग्दर्शन के परिणाम हों, उसे बाह्य सहकारी, साथ में निमित्तरूप से रहनेवाले किसके शब्द होते हैं, उसकी बात पहले करते हैं।

उस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ... एक समय में जिसे वीतरागता पूर्ण हो गयी है अर्थात् कि निर्दोषदशा जिसे पूर्ण प्राप्त है और जिसके ज्ञान की सम्पूर्ण शक्ति का पूर्ण विकास जिसकी दशा में प्राप्त है, उसके मुखकमल में से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ... वह वाणी कैसी है? वह वाणी कैसी सर्वज्ञ वीतराग के मुख से निकली हुई? समस्त वस्तु

के... क्योंकि सर्वज्ञ हैं और एक समय में तीन काल, तीन लोक अपने ज्ञानपर्याय की साक्षात्कार में प्रत्यक्ष हो गये हैं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसे भगवान सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में... वाणी ही ऐसी है वह। यह पहले आ गयी है। सर्वज्ञ अनुसारिणी वाणी। इसलिए वाणी भी पूज्य है, ऐसा व्यवहार से आया था। निश्चय तो अपना स्वभाव पूजनेयोग्य, सत्कार करनेयोग्य, आदरणीय, उपादेय, परन्तु सर्वज्ञ के भाव प्रगट हुए जिसे अन्तर में, जिसे चरमशरीरी—अन्तिम शरीर रहा और अन्तर दशा पूर्ण हो गयी, उसके शरीरसहित जीव की वाणी। उनकी बात कहनी है न यहाँ? अशरीरी सिद्ध हुए हों, उन्हें तो वाणी होती नहीं। शरीर में व्यवहार से रहे, तथापि उसमें अन्तर में सर्वज्ञ ज्ञान की दशा जिन्हें पूर्ण हुई है, इसलिए उन्हें वीतरागता निर्दोषता ही सर्वज्ञपद में वर्तती है। उनके मुखकमल में से निकला हुआ; यह अपेक्षा वचन है, बाकी निकलता है तो पूरे सर्वांग से। सर्वांग से ॐ ध्वनि निकले सर्वज्ञ परमात्मा को। जो तीर्थकर हो, जिसे सर्वज्ञपद प्राप्त हुआ, सर्वांग में ॐ ध्वनि निकले। 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' सन्त, गणधर, मुनि उसे सुनकर उसके विस्तार के स्पष्ट भाव अन्तर स्मृतिपट में विचारकर बारह अंग की गणधर रचना करते हैं। देखो, यह शास्त्र किसे कहना, इसका विवेक बताते हैं। जैसा-तैसा पृष्ठ और पम्पलेट और पुस्तकें पढ़ें और धर्म हो और ज्ञान हो, धूल में भी नहीं होता। समझ में आया?

जिसे भगवान आत्मा का जो सम्यग्ज्ञान में प्रतीतिरूप परिणाम, उस परिणाम को उपादान का कारण तो स्वयं है। वह परिणाम पर्याय धर्म की धर्मी के अवलम्बन से हुई होती है, परन्तु हुए परिणाम में उसे निमित्तरूपी बारदान, कोथला कैसा होता है? उसने वाणी किसकी सुनी हुई होती है? देखो, यह देशनालब्धि कहते हैं। रतिभाई! पैसा कोई भी दे देवे, ऐसा तो नहीं। पुण्य बिना पैसा मिले नहीं, पवित्रता अपने आत्मा के आश्रय बिना मिले नहीं, परन्तु उस पवित्रता के परिणाम में निमित्त कैसा होता है, उसका जिसे विवेक नहीं... जिसे सर्वज्ञ वीतराग ने कहा हुआ तीन काल, तीन लोक के भाव समस्त पदार्थ जाने, उसकी वाणी में समस्त पदार्थ को कहने की सामर्थ्य है और सम्यग्दर्शन के परिणाम में अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड समस्त गुण का समाज जिसे प्रतीति में सामर्थ्य है, ऐसे परिणाम को सर्वज्ञ के वीतराग की वाणी निमित्तरूप हो सकती है। दूसरा निमित्त

हो सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी के अतिरिक्त या सन्त, यह तो वाणी उनकी, मुनि कहते हैं, वह वाणी उनकी ही कहते हैं, समकिति भी उनकी ही वाणी कहते हैं। इसलिए फिर मुमुक्षु (ऐसा शब्द) लेंगे। अर्थात् जिसे आत्मशान्ति, आत्मधर्म अनाकुल आनन्द के अनुभव के परिणाम सम्यग्दर्शन के हुए, उसे निमित्तरूप से, संयोगरूप से, बाह्यकारणरूप से उपस्थित रहे उपचार से, वह कैसा वचन होता है ?

वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ... लो, वाणी। ओहो! भगवान का ज्ञान तीन काल, तीन लोक को जाने, तब वाणी समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ, ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। क्या कहा, समझ में आया ? यह लोग भ्रमणा... अभी सर्वज्ञ कौन हैं ? वीतराग कौन हैं ? आत्मा की पूर्ण दशा के प्राप्त जीव कहाँ हैं ? कौन हैं ? कैसे हैं ? उसकी भी जिसे खबर नहीं, उनकी वाणी कैसी होती है, यह भी उसे खबर नहीं हो सकती, और जब सम्यग्दर्शन पाने के योग्य जीव हो, तब उसे सर्वज्ञ भगवान की वाणी पूर्ण स्वभाव को प्राप्त जो आत्मा है, उनकी वाणी भी पूर्ण पदार्थ को स्थापन करने की सामर्थ्यवाली है।

समस्त वस्तु में क्या बाकी रहा ? तीन काल के द्रव्य, तीन काल के गुण और उनकी अवस्थायें, इन सबको प्रतिपादन—कहने में समर्थ हैं। वाणी में स्व-पर कहने की ताकत—शक्ति है। ज्ञान में स्व-पर जानने की पूर्ण सामर्थ्य है, भगवान की वाणी में स्व-पर की पूरी बात कहने की सामर्थ्य है। समझ में आया ? ऐसे वाणीरूप द्रव्यश्रुत। द्रव्यश्रुत वाणी, शब्द। द्रव्यश्रुत कहा है। यह कहेंगे, लिखे हुए शब्द नहीं, परन्तु कहे हुए शब्द। ज्ञानी के मुख में से सम्यग्दृष्टि या सम्यग्ज्ञानी या मुनिपद प्राप्त भावलिङ्गी सन्तों के मुख में से निकली हुई वाणी, वह सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई तत्त्वज्ञान की द्रव्यश्रुतरूप वाणी, वही ज्ञानी को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में निमित्त होती है। समझ में आया इसमें ? सब निकाल डाला। सर्वज्ञ के ज्ञान के अतिरिक्त जिसने कल्पना से पदार्थ की व्याख्या की है और पदार्थ को बोधा है, वे सब आत्मा के धर्म को पाने में बाह्य सहकारी निमित्त भी हो नहीं सकते। समझ में आया इसमें ?

वह द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान... देखो, उसे तत्त्वज्ञान (कहा)। उस वाणी को भी तत्त्वज्ञान कहा, भाई! वाणी तत्त्वज्ञान, हों! अभी भावतत्त्वज्ञान तो अभी उसे प्रगट हुआ

उसका भाव। आहाहा! जिसकी वाणी में ॐ ध्वनि छूटकर सर्वज्ञपद की अनुसारिणी वाणी, तीन काल, तीन लोक के पदार्थ हस्तावमल की भाँति जिसने ज्ञान में जाने, ऐसे भगवान को अनुसरकर वाणी भी पूर्ण स्वभाव को स्थापन करनेवाली सामर्थ्यवाली वाणी, **ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान...** द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही उसे बाह्य सहकारी निमित्त होता है। पावे स्वयं से, पावे स्वयं से सम्यग्दर्शन आत्मा के अवलम्बन से, परन्तु पाने के काल में उसे पहले ऐसी ही देशना मिली हुई होना चाहिए। अज्ञानी की देशना पावे और सम्यग्दर्शन हो, तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ?

कहते हैं, **ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** बाह्य सहकारी, बाह्य सह—साथ में रहनेरूप, यह शब्द की धारा पूर्ण स्वरूप को कहनेवाली, वह वाणी पूर्ण स्वरूप के आत्मा का पूर्ण स्व-परप्रकाशक ज्ञान आदि पूर्ण स्वभाव, उन्हें प्रतीति में लेनेवाले सम्यक् परिणाम, उसे बाह्य निमित्त यही होते हैं। समझ में आया ? ऐई! रतिभाई! वाडा में जन्मे तो भी खबर नहीं होती। भगवान जाने क्या होगा ? यह विवादी गाथा। चन्दुभाई! ऐतिहासिक गाथा! यह चन्दुभाई ने विवादी गाथा सवेरे कही थी। कहते हैं, यह ऐतिहासिक विवादी गाथा ५३वीं। उसका अर्थ।

जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... टीका का शब्द ही ऐसा है। टीका की गलती और झूठा कहे, उसे यह अर्थ झूठा कहना पड़े। पद्मप्रभमलधारिदेव... ऐसा सम्यग्दर्शन यह मोक्षमार्ग का अधिकार है नियमसार अर्थात्। उसमें भी शुद्धभाव त्रिकाली ज्ञायकभाव में अनन्त गुण का पिण्ड, उसे बतलानेवाली वाणी। इसलिए उसके अन्दर में यह बतलानेवाली वाणी जो है, उसे बाह्य निमित्त कहा और जो सम्यग्दृष्टि ज्ञानी है, वे आत्मा के भानवाले चारित्रवन्त सन्त, मुनि, भावलिंगी मुनि हैं, जिन्हें दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों अन्तर में प्रगट हुए हैं, ऐसे मुमुक्षु, उन्हें भी, उस वाणी को तो बाह्य निमित्त कहा, परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त परिणामवाले जीव को धर्मी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी का अभिप्राय जो है, वह उसे जानने में निमित्त होता है, इसलिए उसे अन्तरंग कारण सम्यग्दृष्टि ... सम्यग्ज्ञानी, सम्यक्चारित्रवन्त, वे जीव भी उपचार से... वह बाह्य सहकारी कारण है, यह भी कारण तो यह है, परन्तु उपचार से अर्थात् व्यवहार से **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** आत्मा एक समय का पूर्ण आनन्द और शुद्ध

ऐसे पूर्ण पदार्थ आत्मा के निर्णय के परिणाम में हेतुपना वह धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि का भाव, वह मुमुक्षु यहाँ लिये हैं। मुमुक्षु पूरे लिये हैं।

धर्मात्मा स्वयं दूसरे सम्यग्दृष्टि के परिणाम को उपचार से अन्तरंग कारण होता है। उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण अन्तरंग हेतु कहे हैं,... अटपटी भाषा, देखो! क्या कहते हैं? दूसरी जगह अधिकार ऐसा आता है कि दर्शनमोह आदि क्षय, वह अन्तरंग कारण है और नोकर्म हटना, वह बाह्य कारण है। वह दूसरी बात है। यहाँ सम्यग्दर्शन के, आत्मा के आनन्द के साक्षात्कार के जो परिणाम हुए, उन परिणाम को जिसे साक्षात्कार पूर्ण हुआ आत्मा का, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव उन्हें अन्तरंग हेतु उपचार से कहा जाता है। वाणी भी पर है और वे धर्मात्मा भी सम्यग्दर्शन पानेवाले परिणाम को पर ही है। परन्तु पर में दोनों में अन्तर करने को वाणी (को) बाह्य सहकारीकारण कहा और पदार्थ का निर्णय करनेवाला जो धर्मी जीव, उसे पदार्थ का निर्णय किये हुए सम्यग्ज्ञानी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... क्योंकि ज्ञानी की वाणी और उसके अभिप्राय में यथार्थ पदार्थ का निर्णय है और यथार्थ पदार्थ का प्रतिपादन है। समझ में आया ?

यथार्थ पदार्थ का प्रतिपादन, वह सम्यग्दर्शन के भाव को बाह्य निमित्त होता है और यथार्थ पदार्थ का भान हुए जीव, वे उपचार से अन्तरंग हेतु हैं। हैं तो वे बाह्य हेतु, परन्तु उसका वजन उस वाणी की अपेक्षा उनके कहने का आशय जो है, निर्विकल्प अनन्त गुण का पिण्ड आनन्दकन्द सहजानन्द प्रभु, ऐसा जिसे वाणी में कहना है कि शुद्धात्मा उपादेय है, शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसा जिसका अभिप्राय हुआ, ऐसे धर्मात्मा ज्ञानी उस सम्यग्दर्शन परिणाम में पाने को उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतु के कारण से सम्यक् परिणाम के अन्तरंग हेतु कहे हैं। ऐसा बाह्य जीव होने पर भी, उसे परिणाम पाने के इनके परिणाम उसको अन्तरंग हेतु कहा जाता है। निमित्त में भेद है। अन्तरंग हेतु यहाँ उपादान की बात नहीं। चन्दुभाई! समझ में आया? पाठ है संक्षिप्त अन्दर, देखो! 'सम्यक्त्वपरिणामस्य बाह्यसहकारिकारणं वीतरागसर्वज्ञमुखकमलनिर्निर्गतसमस्त-प्रतिपादनसमर्थद्रव्यश्रुतमेव तत्त्वज्ञानमिति। ये मुमुक्षुवः तेऽप्युपचारतः' 'तेऽप्युपचारतः' वह तो कहा तो यह दूसरा कहना है इसलिए। वह कर्म का अन्तर क्षयोपशम है, यह

बात यहाँ कहनी नहीं है। यहाँ 'मुमुक्षुवः तेऽप्युपचारतः' है न? 'उन्हें भी', ऐसा शब्द है न भाई! उन्हें भी... शब्द क्यों रखा? एक बाह्य सहकारिणी बताया, ऐसा ही एक बाह्य निमित्त बतलाना है उन्हें भी... आहाहा! उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... पदार्थ स्वरूप अखण्ड आनन्द है, उसके निर्णय के सम्यक् धर्म के परिणाम में उसका अभिप्राय और वे आत्मायें निमित्तरूप से हेतु होने से उन्हें अन्तरंग हेतु कहा है। है तो बाह्य हेतु दोनों, परन्तु शब्द की अपेक्षा शब्द के कहनेवाले आत्माओं को नजदीक गिनकर उन्हें अन्तरंग हेतु कहा है। समझ में आया?

क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। ऐसा कहा है। उन्हें अर्थात्? मुमुक्षु को। जिसके भाव दूसरे आत्मा को सम्यग्दर्शन परिणाम में उपादान अन्तरंग कारण आत्मा; परन्तु निमित्त कारण अन्तरंग अर्थात् शब्द की अपेक्षा भी उनका आत्मा अन्तरंग अर्थात् नजदीक का कारण है, उसका अभिप्राय क्या समझने के लिये उन्हें अन्तरंग कारण कहा है, ऐसे धर्मात्मा जीव धर्मी को धर्म पाने में निमित्तवाले कि जिन्हें दर्शनमोह के क्षयादि हुए हैं। जिन्हें सम्यग्दर्शन क्षायिक हुआ हो, क्षयोपशम हुआ हो या उपशम, ऐसे जीव दूसरे धर्म पानेवाले के परिणाम को निमित्तरूप से हो सकते हैं। अज्ञानी उसे निमित्तरूप से नहीं हो सकता। समझ में आया इसमें? ऐई रतिभाई!

दूसरे अर्थ जो चलते हैं गोम्मटसार में, वहाँ दूसरी बात है। वहाँ तो वह कर्म की बात लेनी है कि बाह्यकर्म, नोकर्म, शरीर आदि और अभ्यन्तरकर्म उसे निमित्तरूप से स्वीकार किया है। यहाँ दूसरी बात है। टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव ने की हुई टीका, उसका संक्षिप्त कहो तो ५३ गाथा। इस गाथा का विस्तार कहो तो टीका। उसका विस्कार कहो तो टीका और संक्षेप कहो तो गाथा। इसलिए गाथा का स्पष्टीकरण की हुई टीका है। इस गाथा को गलत और झूठी ठहराना, (वह दोष है)। मुनियों के कथन जो पंच महाव्रतधारी सन्त, आत्मज्ञानी-ध्यानी सातवें-छठवें गुणस्थान में विराजमान, वे मुनि स्वयं कहते हैं कि हमारे मुख में से आगम झरता है। आगे आता है दो-तीन जगह। हमारे मुख में से आगम झरता है। हमने आत्मा के आनन्द का अनुभव किया है। चारित्रसहित, स्वरूप की रमणतासहित मुनिपने की दशा में हमारे और केवलज्ञान में जरा-सा अन्तर है, ऐसा वह कलश आता है। समझ में आया? ऐसे सन्त के मुख में से

वाणी निकली, वह सर्वज्ञ ने कही हुई वाणी का ही वह स्पष्टीकरण का भाव है। अरे! जगत के जीवों को कहीं न कहीं अटककर अटकना और भटकना है, इसलिए अटककर रुक गये, परन्तु वास्तविक तत्त्व क्या है और उसके निमित्त सच्चे कैसे होते हैं, उसकी भी जिन्हें खबर न हो और जहाँ-तहाँ से भटका करे यहाँ से मिलेगा... यहाँ से मिलेगा... यहाँ से मिलेगा। समझ में आया ?

धर्म समझनेवाले को, समझे हुए अनुभव किये हुए धर्मी ही निमित्त हो सकते हैं। देखनेवाला, यह मार्ग बतानेवाला, अन्धा मार्ग को बतावे कि जाओ इस मार्ग में, ऐसा नहीं हो सकता। निमित्तरूप से भी वह नहीं हो सकता। समझ में आया ? जिसने मार्ग देखा नहीं, जो मार्ग... ऐसा पाठ धवल में आता है। 'जेण दिट्ठ मग्गे' जिसने अन्तर का मार्ग बारम्बार देखा है, वह मार्ग को पाते हुए अन्तर में उसे देरी नहीं लगती। विकल्प में भले आवे, परन्तु उसमें अन्तर पहुँचने में देरी नहीं लगती। क्योंकि मार्ग में कैसे जाया जाता है अन्दर में, यह देखा है। समझ में आया ? ऐसे सर्वज्ञ वीतराग की वाणी को अनुसरकर अपने स्वभाव को अनुसरकर जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुए, निमित्तरूप से जिसे वह वाणी थी, ऐसा ही धर्मात्मा दूसरे धर्म पानेवाले के परिणाम को वह निमित्त होता है। समझ में आया ? क्या है यह कथन ? पहले अर्थ तो किया था (संवत्) २००० के वर्ष में नियमसार पढ़ा तब। यह उसने लिखा था, ऐसा अर्थ किया। हिम्मतभाई कहे, परन्तु टीका में अन्तर है। लाओ भाई टीका। टीका में ऐसा है। कहा, यह बात बराबर है। पहले दिन व्याख्या में वह शीतलप्रसाद ने अर्थ किया हुआ, वह पढ़ा। टीका पढ़ी सही, परन्तु इसके साथ मिलान करके ख्याल नहीं आया। इसलिए पढ़ा और दूसरे दिन इन्होंने कहा कि टीका में अन्तर है लेखन से। टीका में धर्मी जीव दूसरे को निमित्त हो, ऐसा कहना है। धर्मी जीव के दर्शनमोह क्षयकारण समकित पाने में हो, ऐसा टीका में नहीं है। यह २००० के वर्ष की बात है। २००० की दीपावली से पहले की बात है। समझ में आया ? हमारे पण्डितजी तो बहुत शान्त, वैरागी, दिमागवाले, तत्त्व के बहुत अभ्यासी और बहुत ही स्थिर। हिम्मतभाई-हिम्मतभाई नहीं गये ? चले गये ? गये। आवे और जाये, आवे और जाये। नजदीक है न। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा!

देखो, 'पदार्थनिर्णयहेतुत्वात् अंतरंगहेतव इत्युक्ताः' ऐसा कहने में आया है। जिस धर्मी जीव ने जिसने आत्ममार्ग देखा और अनुभव किया, ऐसे जीव की वाणी बाह्यनिमित्त कहलाती है और वे आत्मायें अन्तरंगनिमित्त कहलाती हैं उपचार से। वापस शब्द पड़ा है न। उपचार से कहो या व्यवहार से अन्तरंग कारण कहा। वह व्यवहार से अकेला कारण कहा और यह व्यवहार से उससे अधिक वजन देने के लिये वे आत्मायें जिन्हें आत्मभान सम्यक्त्व है, वे ही धर्म पानेवाले जीव को बाह्यनिमित्त होने पर भी उनकी वाणी बाह्यनिमित्त, परन्तु उनका आत्मा बाह्य होने पर भी अन्तरंग हेतु भगवान ने कहा है। समझ में आया? लो, यह अधिकार पूरा हुआ।

अब निश्चय। अब निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्याख्या। व्यवहार-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की व्याख्या कही और सम्यग्दर्शन में निमित्तरूप से व्यवहार कौन, उसकी व्याख्या की। अब अकेला निश्चय सिद्ध करते हैं। क्या कहा, समझ में आया? पहला तो अन्दर सम्यग्दर्शन निश्चय जिसे हुआ हो और व्यवहार में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, मिथ्या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा न हो। उसे सच्चा ज्ञान हुआ हो, उसे व्यवहारिक ज्ञान में भी वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए तत्त्वों का हेय-उपादेय का व्यवहारिक ज्ञान सच्चा वर्तता हो और जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित स्वरूप की रमणता के आनन्द के घोलन में घोंटा हो, उसे सावद्ययोग के पाप के तीव्र परिणाम से निवृत्तिरूप शुभपरिणामरूप व्यवहारचारित्र पंचमहाव्रतरूप उसे होते हैं। परन्तु ये तीनों व्यवहार पुण्यबन्ध के कारण हैं और आत्मा की दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्वभाव की स्थिति है, वह मोक्ष का कारण और संवर-निर्जरा है। ऐसी बात पहले अकेली व्यवहार की करी और वापस वह भी व्यवहार कहा। सम्यग्दर्शन के साथ मेलवाली बात है कि सम्यग्दर्शन के परिणाम जिसे प्रगट होनेवाले हों, उस जीव को ऐसे ही निमित्त होते हैं, खोटे निमित्त हो तो समझना कि उसे सम्यग्दर्शन परिणाम प्रगटे नहीं। समझ में आया?

अब उसका निश्चयस्वरूप यथार्थ परमात्मा स्वयं कौन है अन्दर, उसका निश्चय अर्थात् सत्यता के भणकार की बातें करते हैं। पहले भेदोपचार था, अब अभेद-अनुपचार... है न? भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शुद्ध जिसके एक अंश में, दशा में अल्पज्ञता थोड़ी घसकर विशेष सर्वज्ञ-सन्मुख होने की दशा की सम्यक्ता प्रगटे, वे सब

ज्ञान के अंश जिसमें अन्तर में पड़े, वह प्रगट हों। ऐसे पूर्ण स्वभाव में जो अन्तर स्वभाव शक्ति पड़ी है, ऐसे पूर्ण आत्मा को अभेद से अनुपचार जिसमें व्यवहार नहीं, 'अकेला अखण्ड परमानन्द प्रभु हूँ' ऐसा रत्नत्रय परिणतिवाला जीव। उसे ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, आचरण में शान्ति की डकार शान्ति के रस के कुण्ड बहते हैं। शान्तरस... शान्तरस... जिसके नयन और शरीर में भी शान्तरस। अन्दर में है तो ढला पासा दिखता है। जिसका बर्फ ठण्डा हुआ, वह बर्तन पड़ा हो, वह बर्तन भी ठण्डा दिखता है। समझ में आया? इसी प्रकार जिसका आत्मा अन्तर के अनन्त शान्तरस की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रमणता की चारित्रदशा हुई, वह तो शान्ति के रस के पिण्ड हो गये। गजब भाषा भाई यह! उसके शरीर और वाणी में शान्तता... शान्तता... शान्तता... चारित्रसहित मुनि है न! शान्त ढलता हो सब। स्थिर हो गया, वाणी शान्त, शरीर शान्त। ऐसी जिसकी शान्तरस की झरती वाणी और उपशान्तरस का शरीर मानो पिण्ड हो गया हो। वह अन्दर में भक्तामर में कहते हैं न प्रभु को स्तुति करते हुए, मानतुंग आचार्य (कहते हैं) नाथ! आपकी पूर्ण शान्तदशा और आनन्द प्रगट हुआ, मुझे तो ऐसा लगता है कि आपके शरीर में जितने रजकण हैं, वे सब उपशान्तरूप से परिणमित जितने उत्कृष्ट में उत्कृष्ट रजकण शरीर में आ गये हैं। कोई बाकी रहा नहीं। भक्तामर में है। समझ में आया? इसमें पूरे न्याय अध्यात्म के, व्यवहार के सब बहुत प्रकार धर्मी की स्तुति में भी दूसरे भणकार होते हैं।

मानतुंग आचार्य को जब ४८ तालों में डाला था। तालों में। तोड़े, भगवान! परन्तु मैं तो... था और तू छूटा बतानेवाला, भगवान! यह क्या हुआ? तेरी उपस्थिति मेरे लक्ष्य में रहे और यह ताले रहें, कैसे बने यह? यह तो योग बना हों पुण्य के निमित्त का। ऐसे स्तुति करते... करते... करते... उपशान्तरस से भगवान! आप स्थिर हो गये हैं। आपकी वाणी, आँख और शरीर में उपशान्तरस के ढाले ढल गये हुए हमको तो दिखते हैं। यह जहाँ ऐसा स्तुति करके, पुण्य का योग था इसलिए, हों! स्तुति कारण और वह कार्य, ऐसा नहीं। यह सब कथन ऐसे हैं जरा। इस कारण से ताला टूटने के थे तो एकदम-एकदम टूटकर अकेले बैठे थे। राजा को लगा कि ४८ तालों में डाला (था) यह क्या? भाई! मैं तो भगवान की स्तुति करता था। 'भक्तामर प्रणित मौली (मणि) प्रभाणां।'

इससे बहुत पैसेवाले सवेरे पैसे लेने (के लिये) गाये। चन्दुभाई! बहुत से सवेरे भक्तामर गिने। नंगे-भूखे न रहें। इसलिए शरीर मिला करे और रोटियों के भिखारी रहा करे। अरे! यह तो भक्तामर तो भगवान की स्तुति का एक विकल्प आया। ... उस विकल्प से पुण्य बँध जाता है। उसके पुण्य के फलरूप से सहज उसे अनुकूल संयोग आ जाते हैं। अनुकूल संयोगों का ज्ञानी कामी होता नहीं। ऐसे अन्दर गिनते जहाँ एकदम-एकदम ताले टूटने लगे। यहाँ अन्दर में राग की एकाग्रता जरा अस्थिर थी, वह टूटने लगी और स्थिरता होने लगी। उनकी वाणी में प्रभु आप तो उपशमरसवाले हो न! ऐसा शरीर दिखता है। जितने परमाणु उपशम के थे जगत में, उतने प्रभु! तुम्हारे पास आये, बाकी एक भी रहा नहीं। न्याय से ऐसा है कि उनका पुण्य ही ऐसा होता है कि उत्कृष्ट शान्त और स्थिर परमाणु वहाँ परिणमकर स्कन्धरूप से, शरीर से होते हैं और केवलज्ञानरूप से शान्त ज्ञान अपने परिणमन में वहाँ उपस्थित होता है। ऐसा शरीर होता है।

यहाँ कहते हैं, जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणतिवाला लिया है यहाँ, हों! ऐसे रत्नत्रय की परिणति दशावाला जीव है। ऐसे जीव को, **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,...** यह समकितदर्शन की व्याख्या। ऐसे जीव को क्या होता है अन्दर में? टंकोत्कीर्ण शाश्वत् ज्ञायकमूर्ति प्रभु सर्वज्ञ ने जैसा देखो, वैसा पूर्ण जिसका एक स्वभाव है। देखो, **ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** आत्मा का। ऐसे **निजपरमतत्त्व की...** निजपरम अर्थात् अपना परमस्वभाव शुद्ध आनन्द और पूर्ण, उसकी श्रद्धा द्वारा। ऐसी श्रद्धा द्वारा, उसे सम्यग्दर्शन कहा। समझ में आया? यहाँ कहना है क्या? ऐसी श्रद्धा द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। अन्तिम शब्द ऐसा है। ऐसी श्रद्धा द्वारा जिसे अभूतपूर्व सिद्धपर्याय—मोक्षदशा होती है। किस श्रद्धा द्वारा?

निश्चयरत्नत्रय में सम्यग्दर्शन किसे कहना? कि एकरूप ज्ञायक जिसका स्वभाव, ऐसा निजपरम प्रभु, निजपरमतत्त्व स्वभावमय पिण्ड की अन्तर श्रद्धा द्वारा अनन्त काल में नहीं प्रगट हुई, ऐसी अपूर्व मुक्तदशा—सिद्धदशा प्राप्त होती है। देखो, यहाँ मोक्ष लिया, उसमें मोक्ष कहीं नहीं लिया था व्यवहार में। व्यवहार की व्याख्या की थी। व्यवहार समकित और व्यावहारिक ज्ञान उसका मोक्ष नहीं लिया था उसके कारण में।

यहाँ मोक्ष (कहा है)। पाठ में ऐसा है न, देखो न! सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... देखो, चौथी गाथा (५४ गाथा)। है न? सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... इसकी यह व्याख्या है। चौथी गाथा है, देखो न! पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं व्यवहारनय का कहेंगे और वह चौथी यह है, देखो! सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... पहले मोक्ष के लिये नहीं कहा था। ऐई! चन्दुभाई! गाथा में है, हों! गाथा खोले नहीं, समझे नहीं और ऐसे के ऐसे वाद और विवाद (करे)। भाई! यह वाद-विवाद का विषय ही नहीं है। 'सद्गुरु कहे सहज का धंधा, वादविवाद करे सो अंधा।' यह चैतन्यप्रभु सहजात्म के अमृत से डोला हुआ अन्दर, उसे श्रद्धा में कैसे लेना? कहते हैं, उस पूर्ण स्वभाव-सन्मुख ढलने पर उस विकल्प का पक्ष छोड़ने से उसे प्रत्यक्ष ज्ञान का अनुभव हो, उसमें प्रतीति हो, वैसे सम्यग्दर्शन द्वारा उसे मुक्ति होती है। उसे—सम्यग्दर्शन के परिणाम को ही मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। व्यवहार बीच में आवे, वह बतलाया सही कि व्यवहार ऐसा ही होता है, परन्तु वह वास्तव में मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया?

तद्ज्ञानमात्र... भाषा क्या कही, देखो! (उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप)... बारह अंग और पर की यहाँ बात नहीं लेनी। वह व्यवहार में जाता है। शास्त्रज्ञान बारह अंग का ज्ञान, वह विकल्पात्मक है। भगवान के कहे हुए ज्ञान को जानना, वह विकल्पात्मक है, पर की ओर का लक्ष्य है। अज्ञानी के ज्ञान को जानना, वह तो बात में माल कुछ नहीं जरा भी, व्यवहार भी नहीं और परमार्थ भी नहीं। परन्तु भगवान ने कहे हुए बारह अंग पूर्ण ज्ञान की ध्वनि, उसकी ओर के लक्ष्य से बारह अंग का ज्ञान, वह विकल्पमात्र है। विकल्पमात्र ज्ञानस्वरूप वह नहीं। क्या कहते हैं यह, समझ में आया?

तद्ज्ञानमात्र... वह निजपरमतत्त्व जो आनन्दकन्द, उसका जो ज्ञानमात्र स्वरूप ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा... ऐसे अन्तर्मुख आत्मा के ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है। आत्मा के ज्ञान द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। यह है न, उसमें आता है। पुस्तक है यहाँ? नहीं कहा था एक बार? ... आता है न। देखो, कितनी गाथा है यह? आत्मस्वभाव। १६वीं। १६वीं गाथा का कलश कितना है? यह आत्मानुभूति। यह कलश १३वाँ। आत्मानुभूति। देखो, कहते हैं कि **भावार्थ इस प्रकार है कि जीवस्तु का ही प्रत्यक्षरूप**

से... १३वां कलश है, हों! **आस्वाद, उसे नाम से आत्मानुभव ऐसा कहा जाता है...** भगवान आत्मा के आनन्द का ज्ञान में प्रत्यक्ष वेदन हो, उसे ज्ञान कहते हैं, उसे ज्ञान कहते हैं। **अथवा ज्ञानानुभव, ऐसा कहा जाता है; नामभेद है, वस्तुभेद नहीं, ऐसा जानना कि आत्मानुभव मोक्षमार्ग है।** आत्मा ज्ञानानन्द का ज्ञान अन्तर्मुख अन्तरबोध, वह ज्ञान, आत्मा का ज्ञान मोक्षमार्ग में माना जाता है।

इस प्रसंग में दूसरा भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांगज्ञान कोई अपूर्वलब्धि है। कोई ऐसा जाने कि बारह अंग का ज्ञान कोई अपूर्वलब्धि है। **उसका समाधान ऐसा है कि द्वादशांग ज्ञान भी विकल्प है।** बारह अंग का भगवान ने कहा हुआ, सर्वज्ञ के मुख से निकला हुआ बारह अंग का भी, वह परवस्तु की ओर लक्ष्य है उसका। उसका ज्ञान परन्तु वह विकल्प और भेदरूप है। **उसमें भी ऐसा कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है।** आत्मा ज्ञान का पिण्ड, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग है। बारह अंग का ज्ञान भी व्यवहार है, विकल्प और भेद है। तो अज्ञानी के पठन को, उसके शास्त्र के पठन की तो बातें क्या कहना? वह तो एकान्त संसार और बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? **शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। इसलिए शुद्धात्मानुभूति होने पर शास्त्र पठन की कोई अटक (बन्धन) नहीं है।** क्या कहा? यह १३वें कलश की बात है। आयेगा। यहाँ तो कहाँ आयेगा अब समय थोड़ा है न। परन्तु यह आयेगा न! पुस्तक बाहर आयेगी न! तीन हजार प्रकाशित होती है। कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं, भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का पुंज सूर्य, उसका जो ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग है। बाकी दूसरे लौकिक पठन की बातें तो क्या करना? अज्ञानी के पोथे और थोथे पढ़े, उसकी बातें तो क्या करना? परन्तु ज्ञानी के ज्ञान की बातें भी परसन्मुख के लक्ष्यवाला ज्ञान, वह भी विकल्पवाला, भेदवाला है। चन्दुभाई! आहाहा! 'अगम प्याला पीओ मतवाला, चिन्ही अध्यात्म वासा, आनंदघन चेतन व्हे खेले देखे लोक तमासा, आशा औरन की क्या कीजे ज्ञान सुधारस पीजे।' भगवान आत्मा ज्ञानसुधारस, अमृत का पिण्ड अन्दर पूरा पड़ा है, यह उसका ज्ञान रसानन्द निर्विकल्प अनुभव का ज्ञान, उस ज्ञान द्वारा आत्मा मुक्ति की पर्याय को अभूतपूर्व सिद्ध की दशा को (पाता है)। अभूत

अर्थात् गत काल में नहीं हुई मुक्तरूपी पर्याय को पाता है। समझ में आया ? गजब बातें परन्तु, भाई !

कहते हैं, ऐसा जो आत्मा ज्ञायक एक निजपरमतत्त्व तद्ज्ञानमात्र। देखा ! तद् अर्थात् उसका निज परम का ज्ञान। वस्तु... वस्तु... वस्तु... स्ववस्तु का ज्ञान। ऐसे अन्तर्मुख परमबोध... वह बारह अंग का (ज्ञान) बहिर्मुख है। आहाहा! वह निमित्तरूप से कहा था, उसका अभिप्राय के ऊपर लक्ष्य था, वह भी सब बहिर्मुख है, परन्तु निमित्तरूप से होता है, इसलिए ही पृथक् रूप से होता है, उसका सिद्धान्त हो गया यह। निमित्त एक पृथक् वस्तु है। यह बारह अंग का ज्ञान भगवान के मुख से निकली हुई वाणी, वह निमित्तरूप से होती है, तथापि वह विकल्पात्मक भेदरूप उसकी ओर लक्ष्य है। अन्तर भगवान के ज्ञान में प्रविष्ट होने से जो स्वसंवेदनज्ञान निजतत्त्व का ज्ञान अकेला अन्तर्मुख, अन्तरबोध उस ज्ञान द्वारा ही आत्मा को। देखो न, परमबोध द्वारा... परमबोध द्वारा। अन्तर्मुख परमबोध द्वारा... अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। अन्तिम शब्द है चौथी लाईन का। ऐसे ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है। दूसरे कहते हों कि व्यावहारिक ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है, व्यवहारश्रद्धा द्वारा मुक्ति होती है, वे मूढ़ जीव तत्त्व को समझते नहीं। समझ में आया ?

और उसरूप से (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से स्थित... भगवान ज्ञान का पुंज जहाँ दृष्टि में आया और वेदन में ज्ञान आया, उसमें अन्दर स्थिर होकर जमा, स्थिरता के भाव से जमा, निर्विकल्प स्थिरता हुई, अविचल स्थिरता चारित्र की हुई, विकल्प के राग के अंशरहित वीतरागी अन्दर जमावट आत्मा में हुई, उसे सहजचारित्र कहा जाता है। समझ में आया ? उस पाप की निवृत्तिरूप परिणाम चारित्र कहा था, उसे मोक्ष का कारण नहीं कहा था शब्द में वहाँ। एक अस्तिरूप से ऐसा होता है, ऐसा ज्ञान कराया था। इसलिए व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह बात सिद्ध रखकर वहाँ कही है। समझ में आया ?

कहते हैं, अहो ! (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से)... भगवान ज्ञानमूर्ति में स्थिर होना, वह अविचलरूप से... अविचलरूप से—चलित नहीं हो, इस प्रकार से स्थिर होनेरूप... स्थिर होनेरूप पंच महाव्रत के विकल्परहित निर्विकल्प स्वरूप की स्थिरता

का चारित्र अमृत का प्याला फटा है अन्दर से। उस द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। समझ में आया? लो, इन तीन पर्याय द्वारा मुक्ति होती है, ऐसा कहा। निश्चय तो जाने नहीं कुछ और व्यवहार हो गया सर्वस्व मालिक। वह भी वापस निश्चय बिना का। यहाँ तो कहते हैं कि निश्चय के ऐसे स्वरूप के दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भूमिका में ऐसे व्यवहार हो पहले कहा, वैसा हो बराबर है, परन्तु वह कहीं मोक्ष के कारण और संवर-निर्जरा के कारण नहीं। वह तो एक बन्ध के कारण को उपचार से मोक्षमार्ग के कारण के साथ निमित्त देखकर, सहचर देखकर उपचार से मार्ग है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया?

अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। क्या कहा? एक निश्चयमोक्षमार्ग से ही मोक्ष होता है। ऐसा सिद्ध किया यहाँ तो। भगवान ऐसा पूर्ण ज्ञान की मूर्ति, उसकी श्रद्धा अन्तर, उसके अनुभव में संवेदन का ज्ञान और उसमें लीनता अविचलरूपी स्थिरता, वह तीन दशा जो निर्मल है, निर्विकल्प है, रागरहित अवस्था प्रगट हुई है, त्रिकाल ध्रुव के अवलम्बन से, वही ध्रुव के पर्याय की पूर्णता को प्राप्त कराता है। उस मुक्ति की पर्याय का कारण वे तीन पर्यायें—मोक्ष का मार्ग है, दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं। समझ में आया? चन्दुभाई! उसमें है या नहीं परन्तु?

जो परमजिनयोगीश्वर... परमजिनयोगीश्वर। ऊँची बात से बात करते हैं न! चारित्र से बात लेते हैं न! जो परमजिनयोगीश्वर... परम वीतरागी योग में जुड़े हुए के ईश्वर। भगवान आत्मा वीतरागी विज्ञानघन प्रभु है, उसकी दृष्टि, ज्ञान और (चारित्रस्वरूप) परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,... क्या कहते हैं? यह छठवें गुणस्थान का व्यवहार पहला, हिम्मतभाई! पहले व्यवहार और फिर निश्चय, यह इस अपेक्षा से लिया है। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय छठवें गुणस्थानयोग्य तो है। क्या कहा? छठवें गुणस्थान में मुनि को। उसकी बात ली है। एकदम अन्तिम बात है न यहाँ तो। अब अन्तिम गाथायें हैं न, यह शुद्धभाव की। परमजिनयोगीश्वर... जिसने योग अर्थात् अपने स्वभाव में जुड़ान किया है। जुड़ान करके परमयोग्यता जिसने प्राप्त की है और जिसमें योग की, स्वरूप की स्थिरता में भी ईश्वर अर्थात् अधिकपने हो गये हैं—ऐसे सन्त, मुनि, ध्यानी, ज्ञानी, उन्हें छठवें गुणस्थान

में पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,.... उन्हें छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के परिणाम हिंसा आदि से निवर्तनेरूप के शुभभाव का चारित्र होता है। अभी शुद्ध निर्विकल्प चारित्र जो सातवें में चाहिए, वह वहाँ नहीं। समझ में आया इसमें? चारित्र की व्याख्या है न? यहाँ कहाँ पहले व्यवहारसमकित और फिर निश्चयसमकित, यह बात यहाँ नहीं है।

उसे पाप अर्थात् पहला छठवें गुणस्थान की भूमिका में, मुनिदशा जहाँ अन्तर ध्यान में प्रगटी है, उसे पाप के परिणाम से निवृत्ति, ऐसे पुण्य-परिणाम का पंच महाव्रत के विकल्प उसे वर्तते हैं, उसे व्यवहारचारित्र व्यवहारनय से कहा जाता है। व्यवहारचारित्र व्यवहारनय से कहा जाता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। और उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। ऐसे रागवाली दशावाले को व्यवहार से मुनिपना, व्यवहार से मुनिपना कहा जाता है। तपश्चरण अर्थात् व्यवहार मुनिपना। वह विकल्प उठा है, और अशुभ टला है, उसे शुभ में प्रवर्तता है। पीछे स्वरूप में श्रद्धा, ज्ञान और निर्विकल्प परिणति वर्तती है, परन्तु उपयोग शुद्ध में वर्तता नहीं। अत्यन्त ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद छूटकर स्वरूप में स्थिर हो जाना, आनन्द में ऐसा शुद्ध उपयोग के निश्चयरहित का यहाँ भाव शुद्ध परिणतिसहित के शुभराग को व्यवहार मुनिपना कहा जाता है। समझ में आया? भाई! यह तो उसे व्यवहारमुनि कहा। उसको व्यवहारमुनि भी नहीं—द्रव्यलिंगी अट्टाईस मूलगुण पाले, वह व्यवहार से भी मुनि नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन के भान बिना अकेले छठवें गुणस्थान की पंच महाव्रत की आदि परिणाम की क्रिया हो तो वह व्यवहारमुनि नहीं।

व्यवहारमुनि उसे कहा जाता है कि जिसे आत्मा का भान होकर ज्ञान और स्वरूप चारित्र आचरण वर्तता है। उसकी दशा में ऐसे पाप के परिणाम से हटकर शुभ परिणाम वर्तते हैं, उसे व्यवहार(मुनि) कि जिसे प्रवचनसार में सास्त्रवीमुनि कहा। छठवें गुणस्थानवाले मुनि को सास्त्रवी कहा। सातवेंवाले को निरास्त्रवी कहा। यह बात यहाँ कहते हैं। समझ में आया? पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु! अब इतने मनुष्य के ऐसे कितने वर्ष चले गये? अब कितने रहे होंगे, यह तो ज्ञानी के खबर में। शरीर का कितना आयुष्य रहा होगा? मणिभाई! यह कुछ खबर पड़ती है? परन्तु एक समय में एकदम

उड़ जाये, लो! देखो न, मोहनभाई! आहाहा! साथ में रहते, पूरे दिन काम किया करे, हों! ऐसे-ऐसे। उड़ गये एक क्षण में। कहीं सूरत देखने की मुश्किल पड़ेगी बाद में। उनका मुख कैसा था? बाद में याद भी नहीं रहे, वह तो शरीर के खेल ऐसे हैं। संयोग जब छूटने का, उस समय एकदम छूट जाता है। उसके पहले छूटने से पहले, छूटने की बातें समझा नहीं हो, यह बन्धन से छूटने की कला यदि इसने नहीं ली, तो यह छूटा, उसे छूटा नहीं। उसको नये शरीर मिलकर परिभ्रमण ऐसे के ऐसे किया करेगा।

कहते हैं, ओहो! यह ज्ञान सच्चा कराते हैं। सम्यग्दर्शन की भूमिका में मुनियों की दशा सच्चे सन्त की दशा, महात्मा की दशा, जो णमो लोए सच्च साहूणं में सम्मिलित हैं, ऐसे सन्तों की दशा कैसी होती है? कि निश्चय तो उन्हें चारित्र-दर्शन-ज्ञान निर्विकल्प के आनन्द का प्याला फटा (प्रस्फुटित) होता है, परन्तु अभी छठवीं भूमिका में पाप की क्रिया अर्थात् राग अशुभ से निवर्तता है, शुभ के प्रवृत्ति को व्यवहारतप मुनिपना कहा जाता है। **सहजनिश्चयनयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है;** अब तप की व्याख्या। तप अर्थात् मुनिपना कहा जाता है। मुनिपना कहो या तप कहो। भगवान में आता है या नहीं तपकल्याणक, भाई? तपकल्याणक अर्थात्? मुनिपना ले, वह तपकल्याणक कहलाता है, चारित्रदशा अंगीकार करे। भगवान को जन्मकल्याणक आता है न, तपकल्याणक, केवलज्ञानकल्याणक, निर्वाणकल्याणक होता है। अर्थात् कि आत्मा के आनन्द में दृष्टि और ज्ञान और लीनता तो है कितनी ही, परन्तु सहजनिश्चय-स्वरूप, परमस्वभावस्वरूप, भाषा देखो! **सहजनिश्चयनयात्मक...** सहजनिश्चयनय स्वरूप से। अब नय तो ज्ञान है। परन्तु उस ज्ञान का जो विषय अन्दर भगवान आत्मा में प्रगट हुआ सहजानन्द के, वह ढाला शान्ति का ढल गया अन्दर। वीतरागी लोढ जहाँ अन्तर में से आया एकाग्र होकर, चैतन्य के पूर जो बहते हैं ध्रुव, उसमें एकाग्र होने से चैतन्य के पूर पर्याय में पसरे, ऐसे सहजनिश्चयनयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में। ऐसा परमस्वभावस्वरूप, ऐसा जो परमात्मा अपना स्वभाव, उसमें प्रतपन। प्र—विशेष, तपन—लीनता। इच्छा का उत्पन्न नहीं होना, आनन्द की लहरें उत्पन्न होना, उसे सच्चा तप कहते हैं, उसे सच्चा-मुनिपना कहते हैं। सब व्याख्या अलग है। 'आनन्द कहे परमानंदा माणसे माणसे फेर, एक लाखे न मळे अने एक त्रांबिया न तेर।' इसी प्रकार

ज्ञानी कहे आत्मा बात-बात में फेर। व्यवहार के माननेवाले और निश्चय के माननेवाले में बात-बात में अन्तर। शब्द-शब्द में अन्तर। समझ में आया ?

कहते हैं, उसे हम तप कहते हैं कि भगवान... जैसे सोना गेरूँ लगाकर ओपता है। सोना-सोना। गेरूँ होती है न गेरूँ? ओपे-शोभे। इसी प्रकार भगवान चैतन्यबिम्ब आनन्दकन्द जिसके शुद्ध उपयोग से रमणता, उसकी शोभा में वृद्धि होती है, ऐसी शुद्धोपयोगदशा को यहाँ तप और चारित्र और मुनिपना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सहजनिश्चयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन,... प्र-तपन तपना अर्थात् स्थिर होना, अन्दर उग्ररूप से स्थिर होना। आनन्द की लहर उठे अन्दर अतीन्द्रिय। अतीन्द्रिय आनन्द की लहर में आहार लेने का, चलने का जहाँ विकल्प का उत्थान नहीं, जहाँ वृत्ति का उत्थान नहीं, ऐसे आनन्द में जहाँ झूलते हैं, उसे निश्चयतप कहते हैं। और निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है। देखो, यह तप अर्थात् ऐसे मुनिपने से उसे निजस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहजनिश्चयचारित्र ऐसे मुनिपने में, मुनिपने की दशा में होता है। उसे सहजचारित्र शुद्धोपयोग का कहा जाता है। वह सातवें गुणस्थान की भूमिका की बात है। लो, यह अधिकार पूरा हुआ।

अब, इसका जरा आधार पद्मनन्दि आचार्य (के पद्मनन्दि पंचविंशति में) अधिकार है पच्चीस उसमें का जरा आधार देते हैं कि भाई! मैं तो यह कहता हूँ सर्वज्ञ के कहे हुए भाव और मेरे अनुभव के भाव, परन्तु पूर्व में मुनि अमृतचन्द्राचार्य आदि या पद्मनन्दि आचार्य हुए महासन्त, आकाश के स्तम्भ धर्म के धुरंधर, वे भी यही बात करते हैं, ऐसा इन्होंने पद्मनन्दि का श्लोक रखा है। है ?

दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्वोध इष्यते।

स्थितरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः॥

आत्मा का निश्चय, वह दर्शन है,... भगवान ने कहा हुआ आत्मा पूर्ण शुद्ध का कन्द, उसका अन्तर अनुभव में निर्णय करना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आत्मा का बोध, वह ज्ञान है,... उस आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है। आत्मा में ही स्थिति, वह चारित्र

है... उस स्वरूप भगवान पिण्ड पड़ा शान्तरस का शक्ति, उसमें स्थिरता का भाव, उसे चारित्र कहा जाता है। ऐसा योग (अर्थात् इन तीनों की एकता) शिवपद का कारण है। शिव अर्थात् मोक्ष। मोक्ष की पूर्ण शान्ति और अमृत आनन्द के अनाकुल की दशा, उसका यह तीन की एकता, वह कारण है। इसके अतिरिक्त व्यवहार विकल्प बीच में आवे, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है। उसके लिये एक गाथा स्वयं भी कहेंगे अधिकार में।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

यह चारित्र अधिकार, उसके अन्तर्भेद में निश्चयप्रतिक्रमण का अधिकार है। (गाथा) ७७ से ८१। निश्चयप्रतिक्रमण अर्थात् कि यहाँ तो वहाँ तक लिया है कि विषय जो आत्मा है वस्तु, ऐसा धर्मी की दृष्टि में और द्रव्यस्वभाव जो है, वह वस्तु है अथवा आत्मा त्रिकाली अभेद चीज़ है और उस चीज़ की दृष्टिवन्त की दृष्टि में भी अभेद वस्तु होती है। क्या कहा? आत्मा स्वयं अभेद चीज़ है। उसमें शरीर, वाणी, मन, राग और भेद उसमें नहीं। इसीलिए कहते हैं, वह अभेद चीज़ जो है, उसमें यह नहीं। अर्थात् कि सम्यग्दृष्टि के विषय में अभेदपना उसका विषय है। अर्थात् धर्मी का विषय अभेद है। इसलिए धर्मी ऐसा कहता है कि मुझमें राग नहीं, द्वेष नहीं, गति नहीं और जो भेद पड़ते हैं ज्ञान के पाँच भेद इत्यादि, वे भेद अभेद में नहीं। इसका नाम प्रतिक्रमण कहते हैं। मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण पहला तो। समझ में आया?

यहाँ आया न? पहला आया है कि चार गति है सही, ऐसा सिद्ध किया। मनुष्यगति, तिर्यचगति, देवगति, नरकगति है सही, परन्तु द्रव्य का जो स्वभाव और धर्मी की जो दृष्टि का विषय, उसमें वह गति नहीं। समझ में आया? वस्तु जो है एक समय में निश्चय अखण्ड अभेद चीज़, वह वस्तु, तो उस वस्तु में गति नहीं, चार गति नहीं; इसलिए धर्मी जीव की दृष्टि के विषय में अभेद है, यह भेद गति उसमें नहीं। इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। समझ में आया? देखो, आया न यहाँ से?

मुझे देवपर्याय नहीं। यहाँ तक आया है अपने। चार गति की दशा, वह अवस्थादृष्टि में अवस्थावन्त को है। समझ में आया? वह अस्तित्व पर्याय—अवस्थादृष्टि में चार गति की दशा अवस्था में है। इसलिए कहा न, 'संसारी जीव को वह है' ऐसा कहा था न, दूसरी लाईन में। संसारी जीव अर्थात्? जिसकी दृष्टि पर्याय के ऊपर है, वह संसारी जीव है। समझ में आया? आहाहा! उस संसारी जीव को पर्याय में चार गति का अस्तित्व है, परन्तु वस्तु जो चिदानन्द भगवान अभेद है, उसमें वह नहीं। इसलिए दृष्टि

का—सम्यग्दृष्टि का विषय अभेद है, इसलिए यह भेद दृष्टि का विषय धर्मी का यह विषय नहीं। आहाहा! भाई! यह इसके अन्त में योगफल में ऐसा लिया है। पूरा योगफल यह है इसका। कलश है न, कलश? इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है... कलश है अन्तिम सार। यह कहना है उसमें। है? कलश है अन्तिम १०९। पाँचों ही रत्नों को संक्षिप्त में वापस। इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है... यह भेद का विकल्प, वह मेरा नहीं, यह भेद ही मेरा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म तत्त्व है।

यह तो नियमसार है न! मोक्ष का मार्ग। नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। आत्मा को पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का उपाय। उसमें पहला उपाय सम्यग्दर्शन। उस सम्यग्दर्शन का विषय—ध्येय अभेद चीज़ है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है और वह वास्तविक आत्मा है। पर्याय में चार गति है, उस धर्मी के द्रव्य में वह नहीं, धर्मी के विषय में नहीं, द्रव्य में नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो अनन्त काल इसने यह चीज़ क्या है? यहाँ पर्याय और गति को सिद्ध करते हैं। जितना व्यवहार है अवस्था में, वह सब है सही, परन्तु वह अज्ञानी का, मिथ्यादृष्टि का वह विषय है। समझ में आया? फिर ज्ञान में वर्ते, (वह) अलग बात है। परन्तु उसे (अभेद को) ध्येय बनाकर उसका विषय वहाँ ज्ञानी ने किया है अकेला। आहाहा!

तो कहते हैं, जिसे सच्चा प्रतिक्रमण हो, उसे भगवान आत्मा... यह कहेंगे स्पष्टीकरण। ऐसा है, यह बाद में कहेंगे। नहीं कहकर, फिर अस्ति कहेंगे पाठ में। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! यह भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में है। पूर्णानन्द का नाथ अपना स्वभाव अभेद, ऐसी चीज़ में चार गति ही नहीं। आहाहा! अर्थात् कि वह संसार का भाव ही उसमें नहीं। समझ में आया? संसार का भाव जो है, वह मिथ्यादृष्टि का विषय है। समझ में आया? अभेद चीज़ में ऐसे भेद के भाव का अभाव है, ऐसी दृष्टि करना, उसका नाम भेद से उसने प्रतिक्रमण किया। आहाहा! भेद से विमुख हुआ और अभेद में गया, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। अभी तुम्हारे भाई नहीं आते, हों! चितळीया रूक गये। वैसे तो आ गये थे कल दोपहर में। संसार के बहुत काम, इसलिए निवृत्त हो तो यह हो। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **मुझे देवपर्याय नहीं**। मुझे चार गति ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अवस्था में गति का अस्तित्व साबित किया, संसार पर्याय है सही, परन्तु वह अभूतार्थ है। भूतार्थ तो मेरा आत्मा अभेद है, वह है। आहाहा! समझ में आया? एक-एक शब्दों में अन्दर महा भाव भरा है। यह तो पंचरत्न। ऐसा कहा न? अभेद चैतन्यरत्न को वहाँ वर्णन करते हैं। आहाहा! जो परिपूर्ण वस्तु भगवान आत्मा स्वयं पूर्णमिदं पूर्णस्वरूप एकरूप अभेदस्वरूप ऐसा मैं, ऐसा धर्मी को ऐसा होने से यह चार गति की पर्याय, वह मेरा विषय नहीं, वह मेरा ध्येय नहीं, इसलिए मेरे ध्येय में वह वस्तु है नहीं। समझ में आया? कहो, रमणीकभाई! यह ऐसी बात है। वहाँ मुम्बई में ऐसा कुछ रखा जाये? न समझे। यह क्या बात कहते हैं? परन्तु इसे पकड़ने की जरा योग्यता हो तो समझ में आये ऐसी चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं यहाँ **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान...** वे मुझे नहीं। देखो न! आहाहा! गति के पहले लिये। इन चौदह में पहले गति आती है। है न? ४२ गाथा है न! ४२ में आता है, देखो! ४२ न? ४२-४२ गाथा है न, उसमें चौदह भेद आते हैं। गति, इन्द्रिय की। यह पृष्ठ ८८। पृष्ठ ८८ है। क्या कहते हैं? कि यह चार गति की पर्याय मुझमें नहीं, यह तो विस्तार से आ गयी। अब यह इन्द्रियाँ। यह पाँच जड़ इन्द्रियाँ और पाँच खण्ड इन्द्रियाँ, वह मेरे अभेद विषय में (नहीं है), वह विषय मेरा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञानरूप से जाने, परन्तु मेरा विषय-ध्येय, वह मैं नहीं। समझ में आया? आहाहा! इस प्रकार प्रतिक्रमण है। मिच्छामी दुक्कडम्, यह पाप किया, वह सब थोथा है। वह प्रतिक्रमण कब था? परन्तु 'भेद में मैं हूँ', यह निकालकर 'अभेद में मैं हूँ, भेद नहीं', इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

इन्द्रिय। यह पाँच इन्द्रिय। अपने यहाँ नाम नहीं न इसमें। इसमें नाम नहीं। ४२ में है। यह इन्द्रिय पाँच, खण्ड-खण्ड इन्द्रिय जो खण्ड ज्ञान द्वारा एक विषय जानने में आवे, ऐसा भेद मेरे अभेद विषय में नहीं। इस दृष्टि के विषय में वह चीज़ ही नहीं। आहाहा! इसका नाम मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वैसे तो शाम-सवेरे पहाड़े बोले, प्रतिक्रमण कर आये। लो! धीरुभाई! प्रतिक्रमण किया होगा या नहीं वहाँ? कितने ही किये खोटे, ऐसा। इसका नाम प्रतिक्रमण है।

भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि सच्चा प्रतिक्रमण किसे कहना? कि जो अन्दर इन्द्रियों का खण्ड-खण्ड भाव और जड़ इन्द्रियाँ, वह पर्याय का विषय मिथ्यादृष्टि का है। वह विषय बदलकर 'एकाकार अभेद हूँ' ऐसे विषय में उन पाँच इन्द्रियों का अभाव है। खण्ड-खण्ड का उसमें अभाव है। क्योंकि भेद है। आहाहा! समझ में आया? कहो, नवरंगभाई! इसका खास घर में (क्या) है! बात सच्ची। जमी का अर्थ अभेद जमी, इसका नाम जमी है, भाई! भाई! अभेद वस्तु अन्दर। आहाहा! उस चीज़ में भेद इन्द्रिय का नहीं। आहाहा! इन्द्रिय, खण्ड और जड़ है सही, अस्तित्व है। कोई उड़ाता हो तो वह नास्तिक है। समझ में आया? यह इन्द्रियों का खण्ड-खण्ड और द्रव्य इन्द्रिय अस्ति है, परन्तु द्रव्य में नहीं; इसलिए द्रव्यदृष्टिवन्त धर्मी की दृष्टि में वह उसका विषय नहीं। उसका उसे अभाव है, इसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गोकुलभाई! प्रतिक्रमण किये तो होंगे पहले?

काया के... यह पन्द्रह है न मन, वचन और काया के योग, काययोग वह काया। यह औदारिक आदि कम्पन हों काया की आदि। और काया-शरीर, वाणी, औदारिक, वैक्रियक, आहारक, कार्मण, यह काया मुझमें है ही नहीं। कायारूप से काया है। अस्ति बतायी है वापस। ऐसा है। कोई उड़ावे कि यह नहीं, वह तो पर्याय को ही मानता नहीं अभी। आहाहा! परन्तु वह काय मेरे अभेदस्वरूप भगवान आत्मा (में नहीं)। आहाहा! बापू! यह तो अलौकिक प्रतिक्रमण है। लोकोत्तर कभी किया नहीं, ऐसी यह बात है। आहाहा! समझ में आया? यह काय, यह भेद है, वह मैं नहीं। योग पन्द्रह प्रकार के हैं—चार मन के, चार वचन के और सात काया के, ये कम्पन के पन्द्रह प्रकार हैं। है सही, परन्तु वस्तु में नहीं और धर्मी की अभेददृष्टि में वे नहीं, उसका यह प्रतिक्रमण करे कि मुझमें वे नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वेद। यह चौदह मार्गणा भेद नहीं, ऐसा आया है न? है न, देखो, चौदह भेदवाले मार्गणास्थान... यह चौदह भेदवाले मार्गणा के प्रकार, वे मुझमें नहीं। आहाहा! मैं एक अभेद चिदानन्द प्रभु ऐसे अभेद में ऐसे चौदह प्रकार अर्थात् योग के पन्द्रह आदि प्रकार अस्तिरूप से है, पर्यायदृष्टि का विषय है, वह द्रव्यदृष्टि में और धर्मी की दृष्टि में उसका

वह विषय नहीं। समझ में आया? यह तो ऐसी परमसत्य (बात) है। आहाहा! कहो, रतिभाई! रतिभाई पहुँचे... व्याख्यान में। आहाहा! वेद। यह द्रव्यवेद, यह शरीर आदि पुरुष का, वह वेद जड़ और भाववेद। वह भाववेद, वह खण्ड-खण्ड विकल्प, वह वस्तु में नहीं; इसलिए धर्मी की दृष्टि में वह नहीं। इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? वेद नहीं। आता है न उसमें? अलिंगग्रहण में आता है, भाई! द्रव्य और भाव वेदविरहित भगवान अलिंगग्रहण है। वह भाववेद और द्रव्यवेद, वह लिंग ही उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य और भाववेदरहित भगवान है। आहाहा! वेद है सही पर्याय में, अस्ति है; परन्तु मेरे अभेद चिदानन्द में वह नहीं; इसलिए वह वेद वह मेरा विषय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कषाय। क्रोध, मान, माया, लोभ, वह पर्याय में है। देखो न, कितना ही व्यवहार डाला है! व्यवहार जितना है, उतना बताया है, परन्तु वह कषाय द्रव्य में नहीं और धर्मी के विषय में अभेद में वह नहीं। समझ में आया? आहाहा! कषाय के भेद ही मुझमें नहीं। मैं तो अकषायस्वभाव एकरूप, पर्याय का अकषाय, वह नहीं यहाँ, त्रिकाली अकषायस्वभाव (की बात है)। आहाहा! समझ में आया? कषाय और अकषाय, दो पर्यायें, वे द्रव्य में नहीं। आहाहा! वह मार्ग में दो आते हैं। समझ में आया? यह प्रतिक्रमण शाम-सवेरे करने बैठे और भान न हो कुछ, वह प्रतिक्रमण नहीं कहलाता। एक समय का प्रतिक्रमण जन्म-मरण को टाले। आहाहा! उस ग्रन्थी की गाँठ एक समय का प्रतिक्रमण गलाता है। समझ में आया? 'भेद मैं हूँ और राग मैं हूँ', ऐसी जो गाँठ राग की, मिथ्यात्व की। आहाहा! उसे वस्तु अखण्डानन्द प्रभु हूँ, वही मैं हूँ, इससे मुझमें वे कषायें नहीं। वह कषाय मेरे सम्यक्त्व का विषय नहीं अथवा वह मेरा विषय नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है न सामने पुस्तक है। मनसुखभाई! है न पुस्तक? परन्तु अपने आप पढ़े तो कुछ सूझ पड़े ऐसा है इसमें? यह करके बताया तो सही वह कलश। कलश बताकर तो कहा। क्योंकि बताना है, वह अभेद। उसमें यह भेद नहीं, ऐसा कहा है न!

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान नहीं... समझ में आया? लालचन्दभाई तो ऐसा सब मक्खन माँगते हैं न। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! कहते हैं,

अरे! एक बार तेरा अभेद नाथ, उसे देख तो सही। अखण्डानन्द प्रभु पूर्णानन्द से अभेदरूप से विराजता है। ऐसी दृष्टि के विषय में और उस वस्तु में; वह तो वस्तु में नहीं, इसलिए दृष्टि के विशयवाले को भी नहीं, ऐसा सिद्ध करना है न! द्रव्य में नहीं... द्रव्य में नहीं अर्थात् क्या? अर्थात् पकड़ में आया? लक्ष्य में लेना, इतनी बात है? वस्तु अभेद में वह नहीं, ऐसी दृष्टि वहाँ की है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा है, ऐसी दृष्टि गयी अन्दर में, तब कहते हैं कि मुझमें वह कषाय के भेद नहीं। भेद है सही भेद के स्थान में। (भेद के) स्थान में भेद है, वस्तु में नहीं और वस्तु के विषयवन्त धर्मों को भी नहीं। इसका नाम प्रतिक्रमण भेद का और राग का कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? समझना भारी कठिन पड़े।

पश्चात् ज्ञान... यह ज्ञान के पाँच भेदों की लक्ष्य की ऐसी दृष्टि, वह मेरा विषय ही नहीं, कहते हैं, ऐसा कहते हैं। ...भाई! आहाहा! यह भाषा क्या है, देखो न, चौदह भेदवाले मार्गणास्थान... वे मुझे नहीं। है न? परमभावस्वभाववाले को नहीं। ऐसा है न अन्दर? क्या है नीचे, देखो न इसमें। चौदह भेदवाले मार्गणास्थान तथा उतने ही (चौदह) भेदवाले जीवस्थान या गुणस्थान शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव (दृष्टि में आया) है, ऐसे मुझे) नहीं है। है? नहीं। आहाहा! पश्चात् है, यह उसका ज्ञान नहीं परन्तु अपने स्व-परप्रकाशक ज्ञान में वे हैं, ऐसा व्यवहार से है, ऐसा जानने में (आता है)। व्यवहार है, वह व्यवहार से उसका 'ज्ञान' है, ऐसा जानने में आता है। वह व्यवहार स्वयं नहीं, आहाहा! परन्तु उसके सम्बन्धी का अपने से हुआ अपना ज्ञान, उसे जानता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब बात यह। समयसार और नियमसार आदि अलौकिक लोकोत्तर शास्त्र हैं। आहाहा! समझ में आया? चिदानन्द भगवान आत्मा अन्दर शरीररहित तो है, रागरहित तो है, भेदरहित है, ऐसा यहाँ तो सिद्ध करते हैं। समझ में आया? मेरा परमभावस्वभाव त्रिकाली परमभावस्वभाववाले को नहीं, ऐसा कहा है न? ...अर्थ क्या? (कि) द्रव्य में तो परन्तु परमस्वभावभाव जिसकी दृष्टि हुई, ... आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा भगवान आत्मा, उसने सुना नहीं, श्रुत-परिचित इसने परिचय किया

नहीं और अनुभव में तो आया नहीं। आहाहा!

ज्ञान के पाँच भेद और अज्ञान... भेद। संयम... चारित्र के भेद जो पाँच प्रकार के सामायिक आदि। क्या सामायिक? छेदोपस्थापना आता है न? वे पाँच। वे पाँच भेद मुझमें नहीं। समझ में आया? पहले क्या कहना? सामायिक। सामायिक है न, पर्याय। छेदोपस्थापन, सूक्ष्मसाम्पराय की पर्याय, ये पाँच भेद हैं, वस्तु है। यह परमस्वभाववाला मैं, उसमें वे नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मेरा स्वभाव तो परमस्वभाव त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक अभेद स्वभाव। आहाहा! वह मुझे इन चारित्र के भेदों के प्रकार, वे मेरे नहीं, मुझमें नहीं, मेरा विषय नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अमृत सागर को डोलाते हैं, हिलाते हैं। अमृत का सागर भगवान आत्मा, उसके अन्दर ऐसे भेद में ऐसे भेद जहर के नहीं। भेद के ऊपर लक्ष्य जाये तो राग होता है। आहाहा!

कहते हैं, ऐसे संयम के भेद। ओहोहो! मोक्षमार्ग का वर्णन है न यह। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, कहते हैं कि ऐसे भेद मुझमें नहीं। दर्शनभेद नहीं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन। उस ज्ञान में भी केवलज्ञान आदि भेद मुझमें नहीं, ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! केवलज्ञान एक पर्याय है और वह तो सद्भूतव्यवहारनय का विषय है, वह निश्चय दृष्टि का विषय द्रव्य में नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! राजकोट में ऐसी बात निकले, हों! वहाँ दूसरा इतना सब लम्बा करने जाये तो वे वापस पकड़े नहीं कि यह क्या कहते हैं? आहाहा!

दर्शन... यह केवलदर्शन और अवधिदर्शन, ऐसे भेद मुझमें—अभेद चिदानन्द परमस्वभावभाव वस्तु और उसकी दृष्टिवाला मैं और वह परमस्वभाव मेरा विषय, उसमें वह भेद मेरा विषय नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? मुनि ने पूरा कहकर कलश में यह डाला है, उसका योगफल। इस भेद की चिन्ता ही नहीं, भेद मुझमें नहीं तो फिर किसकी चिन्ता-विचारणा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपूर्व बात है, भगवान! यह तो अनन्त काल में इसने यह जाना नहीं। जो है, उसे जाना नहीं तो अनुभव तो कहाँ से हो? आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा, मुझमें लेश्या के भेद नहीं। लो, और पीत, पद्म और शुक्ल शुभलेश्या; कृष्ण, नील और कापोत अशुभ लेश्या। वे लेश्या के स्थान में लेश्या हो। वह व्यवहारनय का—पर्याय का

विषय हो, मेरे परमस्वभाववाले ऐसे मेरे विषय में वह वस्तु नहीं। आहाहा! समझ में आया? वे भाई चले गये बांकानेरवाले, नहीं? धीरुभाई गये? आँख का कच्चा। समझ में आया? आये थे? गये हैं।

यह भव्य-अभव्य भेद मुझमें नहीं। आहाहा! यह पर्याय के भेद हैं। अभेद में भव्य और अभव्य ऐसे भेद मुझमें नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह भव्य जीव को ही ऐसा अभेद का विषय होता है। समझ में आया? तथापि अभेद परमस्वभावभाव का विषय ही समकिति का नहीं। वह हो भव्य ही, परन्तु वह भव्यपना मेरी वस्तु में नहीं। आहाहा! उसमें तो पर्याय को लिया है। समझ में आया? और, समकित। लो, यह तो समकित। अरेरे! सम्यग्दर्शन का विषय जो अभेद, उसमें यह समकित के भेद, वह अभेद का विषय नहीं। आहाहा! गजब है न! समझ में आया? क्या कहा यह? क्षायिकसमकित जिसका विषय अभेद अखण्डानन्द, ऐसे परमस्वभाववाला मेरा विषय, उसमें क्षायिकसमकित आदि की पर्याय के भेद का उसमें अभाव है। आहाहा! समझ में आया? वापस क्षायिक, क्षयोपशम आदि है, ऐसी अस्ति सिद्ध करते जाते हैं, व्यवहार सब है, ऐसा सिद्ध करते जाते हैं, परन्तु त्रिकाल स्वभाव में और दृष्टि के विषय में वह है नहीं। आहाहा!

संज्ञीत्व-असंज्ञीत्व। और कहे न कि संज्ञी हो, उघाड़ हो, वह धर्म पावे। यहाँ कहते हैं कि संज्ञीपना ही मुझमें नहीं। आहाहा! और आहार-अनाहार, ऐसे भेद चौदह मार्गणास्थान। है न अपने उसमें। चौदह भेदवाले ऐसे मार्गणा अर्थात् जिसकी पर्याय में कहाँ जीव है, ऐसे शोधने जाये तो चौदह प्रकार दिखते हैं। वे सब शुद्धनिश्चयनय से त्रिकाल जिसका विषय है, ऐसे नय से और सम्यग्दर्शन... सम्यग्दर्शन का विषय परमस्वभावभाव के विषय में ऐसे भेद उसमें नहीं। यह ऐसा नहीं, अस्ति यह और यह नहीं, ऐसा अनुभव करना, इसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। ऐई! पोपटभाई! ऐसा तो प्रतिक्रमण सुना नहीं होगा कभी। उपाश्रय में जाकर शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे। अरे! प्रतिक्रमण किसे कहना, उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसे भेद और इतने भेदवाले जीवस्थान। कहो, एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त, संज्ञी और असंज्ञी के... ऐसे जीवस्थान, वे जीव की पर्याय के

स्थान जीव में नहीं। गजब! भगवान आत्मा अभेद चिदानन्द प्रभु जो दृष्टि का विषय और जो त्रिकाल परमस्वभाववाला अभेदतत्त्व, उसमें ऐसे भेद हैं नहीं। समझ में आया? वे जीव के भेद के (स्थान) जीव में नहीं, ले ठीक! जीव के भेदों के प्रकार, वे जीव में नहीं, ले ठीक! आहाहा! वह जीव परमस्वभाववाला त्रिकाली, परमस्वभावभाववाला त्रिकाली भाव, वह जीव, उसमें ऐसे चौदह भेद नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम अनेकान्त कहते हैं। वह अस्तित्पना कहेंगे पेरिग्राफ में। है? ऐसे भेदवाले जीवस्थान और ऐसे भेदवाले गुणस्थान। वे चौदह गुणस्थान। आहाहा! पहला, दूसरा, तीसरा, तेरहवाँ और चौदहवाँ। ऐसा परमस्वभाव मेरा भगवान। है? परमभावस्वभाववाले को... जिसकी धर्म की दृष्टि हुई, ऐसे धर्मी को। धर्मी ऐसा जो भगवान अनादि-अनन्त अभेद एकरूप स्वभाववाले को... समझ में आया? ऐसे गुणस्थान भेद नहीं। आहाहा!

पर्यायदृष्टि में भेद हैं, वे जाने, परन्तु जानने का अर्थ इस अभेद की दृष्टि हो, तब उसके ज्ञान में भेद है, ऐसा व्यवहार से जानने में आता है। ऐसा है। समझ में आया? पहली उसकी पद्धति है, वह तो सीखे कि मार्ग यह है। मार्ग की पद्धति जाने बिना मार्ग में जायेगा किस प्रकार अन्दर में? आहाहा! उल्टा पकड़ा हो, उल्टा माना हो, फिर कहे हम अन्दर में जाते हैं। कहाँ से जायेगा? उसका बहुमान अभेद का आये बिना भेद का बहुमान टले बिना अन्दर में जा नहीं सकेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म का उपदेश कैसा? वह तो एकेन्द्रिय की दया पालना, व्रत करना, अपवास करना, संथारा करना संथारा। ऐई! ढेबरभाई! संथारा दो-दो महीने, महीने का, फिर सेठिया वहाँ जाये और मनावे। पैसे इकट्ठे डाले थोड़े लाख, दो लाख। करो और फिर यादगिरी करो। उसे धूल भी संथारा नहीं।

यहाँ परमात्मा तो कहते हैं, तेरा परमस्वभावस्वरूप भगवान आत्मा को दृष्टि में लिये बिना और भेदों का अभाव किये बिना तुझे सम्यग्दर्शन होगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वह कैसा? आहाहा! पर्याय के भेद जितने हैं, उतने बताये सही, हों! बताकर और फिर इसमें नहीं, अभेद में नहीं। समझ में आया? कहो, प्रकाशदासजी! कैसी है यह चीज़? सुनी नहीं कभी? वे साधु होनेवाले थे कानपुर। मुश्किल से रह गये। आहाहा! अरे भगवान! यह स्थानक तो आत्मा का अभेद है, वह स्थानक है।

उसमें बसना, उसका नाम यहाँ तो स्थानकवासी है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय की पर्याय के भेदरहित त्रिकाली तत्त्व, उसमें जाना और स्थिर होना, उसका नाम मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण और भेद का प्रतिक्रमण है। आहाहा! समझ में आया ? अब उसे तो भेद क्या और अभेद की खबर नहीं पड़ती। मिच्छामी दुक्कडम् तावकायं ठाणेणं माणेणं जाणेणं अप्पाणं वोसरे। पूरा आत्मा वोसरे। आहाहा! कहते हैं... आहाहा! सन्तों ने मार्ग को सरल करके बताया है। तेरे पास तू वह है। अभेद चीज़ एक समय के भेद बिना की वह चीज़ है, वहाँ दृष्टि कर, तेरे विषय में अभेद आयेगा, भेद का विषय आयेगा नहीं। आहाहा! यह चीज़ ऐसी है, भगवान! आहाहा! भगवान ने कही हुई यह है भगवान आत्मा के लिये। आहाहा! अभी तो भगवान आत्मा कहे वहाँ चिल्लाहट मचाये। परमस्वरूप से भगवान ही है। परमेश्वर परम ईश्वरस्वरूप भगवान आत्मा है। ऐसे भगवान परमस्वभावभाववाले को गुणस्थान शुद्धनिश्चय से। अर्थात्? शुद्धनिश्चयनय से अर्थात्? कि जो ज्ञान का विषय पूर्ण अभेद है, उस विषय से देखने पर उसमें यह है नहीं। समझ में आया ?

शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है...) भगवान आत्मा का परमभाव जिसका स्वभाव है, वह ऐसी पर्याय के भाव का उसमें स्वभाव नहीं। आहाहा! अभेद को सिद्ध करने की पद्धति और कला तो देखो! पहले उसका ध्यान तो करे तो त्रिकाली अभावस्वभाव, भेद के अभावस्वभाववाला परमस्वभावभाव, उसमें यह भेद नहीं। ऐसा जो अन्तर में स्व का आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना, उसका नाम भेद और राग का प्रतिक्रमण कहा जाता है। इस प्रतिक्रमण का पहला यह पाठ है अभी तो। समझ में आया ? वह (-परमभाव जिसका स्वभाव है, ऐसे मुझे) नहीं हैं। देखा! 'मुझे नहीं' अर्थात् कि वह पर को है, ऐसा हुआ यह तो। आहाहा! वह भले वहाँ उसमें 'मुझे नहीं' ऐसा कहा नहीं, परन्तु उस परमस्वभाववाले को, बाद में कहा है, देखो, **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** भाई! मुझे नहीं। बाद में कहा है। है न ? २५वाँ बोल। इन सबमें मुझे नहीं, ऐसा लेना। अरे! तदुपरान्त ऐसे भेद मुझमें मेरे विषय में नहीं, इसलिए उस भेद का मैं कर्ता नहीं, भेद का करानेवाला नहीं और भेद

में मैं सम्मत नहीं। वहाँ तो यह बात लेनी है न वापस। जो मुझमें नहीं, ऐसे भेद का कर्ता मैं कहाँ से होऊँ? आहाहा! ऐसे भेद चौदह गुणस्थान आदि भेद, वे मुझे नहीं, मुझे नहीं इसलिए उनका मैं कर्ता नहीं, उनका करानेवाला नहीं, उन भेद को मैं सम्मत नहीं, भेद है, वह ठीक, उसे सम्मत मैं नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! भाई! तेरा मार्ग ऐसा है, बापू! यह तो भगवान का पंथ है। आहाहा! भगवान होने का मार्ग है यह तो। यह भगवान अभेद स्वभाव का आश्रय न ले और दृष्टि न करे और भगवान के पंथ में जाये, ऐसा होता नहीं। आहाहा!

(-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे) नहीं हैं। तब किसे है? वह तो पर को है। आहाहा! वह तो पुद्गल से हुए भेद, उनका वह कर्ता, मैं उनका कर्ता नहीं। आहाहा! गजब बात की न! ऐई! कहेंगे फिर यह सब, हों! पेरोग्राफ के बाद। विविध विकल्पों से भरे हुए विविध पर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता और कार्य... यह पुद्गलकर्म का कर्ता, उनका अनुमोदक नहीं। बाद में आयेगा यह। यहाँ तो अभी उसकी वस्तु की... आहाहा!

अब, मनुष्य और तिर्यचपर्याय की काया के, वयकृत विकार से... बालपना, युवापना, स्थविरपना, वृद्धावस्थापना चार बोल लिये हैं। शरीर में बालपना कोमल अंग, युवापना कठोर अंग। यह जवान है। युवक क्या कहीं आत्मा युवक है? इसकी हड्डियाँ मजबूत और कठोर, वह युवक। स्थविर अवस्था। स्थविर जरा स्थिर हुआ हो, वह ५०-६० वर्ष हो तो फिर... और वृद्धावस्था, ऐसी अवस्थादिरूप अनेक स्थूल-कृश विविध भेद... यह देह के वयकृत भेद, वे शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से मेरे नहीं हैं। वे सब 'मुझे नहीं' ऐसा लेना। कहो, पण्डितजी! ऐसा सुना है? आहाहा! तेरी जाति को तूने सुना नहीं भगवान! तेरा अखण्डानन्दस्वरूप प्रभु सच्चिदानन्द अभेदस्वरूप है, वह दृष्टि का विषय और वह तू। इसके बिना के भेद भी मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? मुझे नहीं। आहाहा! कितने ही कहे न कि 'भाई! वृद्धावस्था हुई, अब हम धर्म कैसे करें? युवा अवस्था हो तो हो' मोहनभाई! ऐसा कहते हैं न कितने ही? परन्तु अवस्था ही नहीं तुझमें, फिर अवस्था से होता है, यह बात कहाँ से आयी? आहाहा! यह तो देह जड़ की अवस्था के भेद हैं मिट्टी के।

बाल-युवा-स्थविर-वृद्धावस्थादिरूप... रोगादि अवस्था, निरोगादि अवस्था।

भाई! निरोग अवस्था हो तो धर्म होता है। रोग अवस्था में क्या हो? छह डिग्री बुखार आया हो, आठ डिग्री उसमें कहे ध्यान करने बैठो। कैसे हो? अरे! सुन न! नहीं तुझमें, (धर्म) हो, ऐसा कहते हैं यहाँ। समझ में आया? आहाहा! नारकी के जीवों को अनन्त वेदना वयकृत की पहले से जन्मे तब से वृद्ध रोग का घर। परन्तु उसमें वह अवस्था उसमें नहीं अन्दर में। ऐसी दृष्टि करने से वह अवस्था उसे अवरोधक नहीं और अवस्था मददगार भी नहीं और उसे बाधक भी नहीं। आहाहा! भाई! निरोग अवस्था हो तो धर्म होता है, ऐसा कहते हैं न! यह अज्ञानी की मान्यता है। ज्ञानी कहते हैं कि सरोग और निरोग अवस्था, वह दशा जड़ की है, मुझमें नहीं। आहाहा! भेद नहीं मुझमें तो फिर यह दशा और यह भेद कहाँ से आये? कि यह भेद हुए, इसलिए मुझे सम्यग्दर्शन नहीं होता। परन्तु तुझमें नहीं, इसलिए होता है। समझ में आया?

वयकृत विकार से (-परिवर्तन से) उत्पन्न होनेवाले... ऐसे जो अनेक स्थूल वयकृत विविध भेद, वे शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से, कहीं शुद्धनिश्चय के बल से कहें, कहीं परमस्वभाववाले को कहे, परन्तु वह सब मेरे स्वभाव में यह है नहीं, ऐसा कहना है। ऐसी अभेद की दृष्टि कराने के लिये (यह सब बात है)। क्योंकि अभेद, वह परमसत्य है। उसकी दृष्टि कराने को यह नहीं, ऐसा प्रतिक्रमण कराते हैं। आहाहा! भेद से विमुख हो और अभेद में जा, ऐसा कहते हैं, लो! गजब बात, भाई!

पश्चात् सत्ता, अवबोध, परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण करनेवाले... देखा! त्रिकाली सत्ता, अवबोध—ज्ञान, परमचैतन्य दर्शन—ज्ञान इकट्ठे और सुख, इन चार में अनुभूति में लीन वह तो भगवान है, कहते हैं। आहाहा! ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण करनेवाले... ऐसे आत्मतत्त्व को पकड़नेवाले ऐसे शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से... यहाँ बल कहा, उसमें अभिप्राय कहा था। भिन्न-भिन्न शब्द प्रयोग करते हैं। शुद्धद्रव्यार्थिकनय से, नय से शब्द से त्रिकाली द्रव्यदृष्टि करने से जो ज्ञान का विषय हो, उसके बल से मेरे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं। मोह-राग-द्वेष दशा की दशा में हो, मेरे त्रिकाली अभेद स्वभाव में वे हैं नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहा है न ऐसे अनुभूति में लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण

करनेवाले अर्थात् कि आत्मा तो अनुभूति में लीन है, अपने स्वभाव में अनुभूति में है। यह ७३ में आता है न, भाई! ७३ गाथा (समयसार)। अनुभूतिस्वरूप आत्मा, वह त्रिकाल अनुभूति है। भगवान आनन्द का नाथ चैतन्य का बिम्ब प्रभु अनुभूतिस्वरूप त्रिकाल ही है। ऐसा अस्तित्व मेरा, अवबोध अर्थात् ज्ञान, परमचैतन्य दर्शन-ज्ञान इकट्ठा और आनन्द सुख—ऐसे स्वभाव में अनुभूति प्राण है उसके, ऐसा कहते हैं। ऐसे प्राण में वह निश्चय में अन्तर में लीन वस्तु है। ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को, ऐसे खास आत्मतत्त्व को पकड़नेवाली दृष्टि में शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से मुझे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय जो अभेद शुद्धद्रव्यार्थिक, उसमें यह सब मुझमें है नहीं। आहाहा! उसमें है, वे मुझमें नहीं, ऐसा कहते हैं। यह दो बात सिद्ध करते हैं। उसमें है। उसमें भी नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या। यह ब्रह्म आत्मा में वे नहीं, उनमें वे हैं। समझ में आया? न हो तो 'यह मैं नहीं, यह मैं नहीं' ऐसा किसे कहना? किसे जानना? यह मैं नहीं और यह मैं हूँ। आहाहा! स्याद्वाद की शैली सर्वज्ञ की अनेकान्त अलौकिक वस्तु को सिद्ध करती है। समझ में आया? ध्यान में तो ले देखे कि ऐसी एक वस्तु है। सिद्धान्तों में, शास्त्रों में ऐसे आत्मा का वर्णन है। वह हमने सुना नहीं और किया नहीं कभी, ऐसा तो इसे होना चाहिए न! आहाहा! अरे! यह तो तू स्वयं है। आहाहा! ऐसा तो इसे होना चाहिए कि 'अरेरे! ऐसी बात, ऐसा स्वरूप है, वह तो सुना नहीं था, तो समझण में तो आवे कहाँ से? समझण में आये बिना श्रद्धा हो कहाँ से? श्रद्धा बिना स्वरूप में स्थिरता हो कहाँ से? यह तो १७-१८ में चलता है अपने। ... भाई! ऐसा स्वरूप है। मुम्बई में कठिन पड़े यह, हों! वहाँ तो अमुक-अमुक व्याख्यान... लोगों-लोगों के झुण्ड परन्तु ओहोहो! आठ हजार, दस हजार लोग होंगे। लोग चलने दे नहीं, निकलने दे नहीं। पैर पकड़े सब। परन्तु निकलते तो दस हजार को बाहर निकले तो हमारे एक घण्टा हो और यहाँ साढ़े चार तो हो गये थे। बेचारे भीड़ कर-करके। उसमें ऐसी बात कहीं रखी जाये? यह समझे कौन? लो, यह भेद है, वह भी क्या कहाँ होंगे? उसकी दशा में यह है, परन्तु वे त्रिकाल दृष्टि के विषय में और वस्तु के द्रव्यार्थिकनय का विषय अभेद, उसमें वे हैं नहीं। ऐसी दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है, उसके भेदों का अभाव नास्तिरूप से जानना, उसका

नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? आहाहा ! कहो, रतिभाई ! आहाहा ! गजब !

सत्ता—अस्तिवाला पदार्थ त्रिकाल अभेद चीज। अवबोध ज्ञान, परमचैतन्य, परमचैतन्य त्रिकाली और सुख आनन्द, उसमें वह वस्तु अभेद लीन ही है। ऐसे खास आत्मतत्त्व को, ऐसा कहते हैं। पर्याय को व्यवहार आत्मा कहा जाता है, परन्तु वह खास आत्मतत्त्व नहीं। समझ में आया ? यहाँ तो एक-एक शब्द में कीमत है न ! यह कहीं सन्तों के—आचार्यों के आचार्य परमेष्ठी के शब्द, यह निमित्त से कहा जाता है। उनका ज्ञान वहाँ शब्दों में निमित्त था। समझ में आया ? फिर पीछे कैसा भाव था, यह बताते हैं इसमें। आहाहा ! पर्याय सिद्ध करते हैं, भेद हैं, ऐसा साबित करते हैं, तथापि त्रिकाल में नहीं—ऐसा साबित करके उसकी नास्ति बताते हैं। आहाहा ! मेरा परमस्वभाव भगवान आत्मा, उसमें ऐसे खास आत्मतत्त्व को जाननेवाला, ऐसा कहा न ? अभेद चैतन्यस्वरूप को जाननेवाला, ग्रहण करनेवाला, पकड़नेवाला जो शुद्ध द्रव्यार्थिकनय, उसके बल से मुझे यह सब कुछ नहीं है। सकल मोह-राग-द्वेष संसार का उदयभाव, वह मुझमें तीन काल-तीन लोक में नहीं। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? पाँच मिनट हैं। अब हूँ मैं कैसा, यह बात करते हैं। यह नास्ति से बात की।

सहज निश्चयनय से... भाषा देखो, त्रिकाली स्वभाव निश्चयदृष्टि से देखें तो वस्तु को (१) सदा निरावरणस्वरूप... है वह तो। भगवान आत्मा परमब्रह्मस्वरूप अभेद, वह तो त्रिकाल निरावरण है, उसे आवरण है नहीं। सदा निरावरणस्वरूप, (२) शुद्धज्ञानरूप,... निरावरणस्वरूप, परन्तु है क्या ? शुद्धज्ञानरूप... अकेला पवित्र ज्ञान का ध्यानरूप आत्मा है। आहाहा ! पक्ष में चढ़ा नहीं, इसलिए यह क्या है, ऐसा इसे मानने में आता नहीं। समझ में आया ? पर्याय का पहलू बदला नहीं, पर्याय के पहलू में खड़ा है। वह पर्याय-अवस्था के पहलू में खड़ा; इसलिए अन्दर में क्या है, इसने देखा नहीं। आहाहा ! कहते हैं कि शुद्ध ज्ञानरूप हूँ। मैं तो शुद्ध ज्ञान, भेद-बेद नहीं। शुद्ध ज्ञान का पिण्ड प्रभु। अस्ति कहते हैं।

सहज चित्शक्तिमय,... स्वाभाविक चित्शक्ति वीर्य का पिण्ड स्वाभाविक चित्शक्ति। समझ में आया ? ज्ञान का वीर्य परमस्वाभाविक त्रिकाल, आत्मबल त्रिकाल मेरा स्वभाव है। अस्ति-अस्ति। आहाहा ! (४) सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण मूर्ति... भाषा

देखो! यह पर्याय की बात नहीं, तथापि भाषा स्फुरण रखी है। सहजदर्शन का स्फुरण अर्थात् है प्रगट, ऐसा। सहज दर्शन स्फुरण है, ऐसा प्रगट, ऐसी परिपूर्ण मूर्ति आत्मा है। आहाहा! (-जिसकी मूर्ति अर्थात् स्वरूप सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण है ऐसे)... दर्शनस्वरूप स्फुरण अर्थात् प्रगटरूप अन्दर है, ऐसा कहते हैं। और (५) स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यात चारित्रवाले ऐसे मुझे... लो! है न? अविचल स्थिति सहज यथाख्यात। जैसा स्वरूप है, वैसा प्रसिद्ध ही अन्दर पड़ा है, कहते हैं।

ऐसे मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं। यह साबित करके 'नहीं' ऐसा कहा उसमें। पहले साधारण कहा था। कषाय नहीं, फलाना नहीं। ऐसा जो मैं आत्मा। आहाहा! यह अनन्त पुरुषार्थ से दृष्टि अन्दर पड़ती है। यह कहीं साधारण कायर के, आलसी के यह काम नहीं। आहाहा! दृष्टि गुलांट खाती है ऐसे। पर्याय के ऊपर अनादि की दृष्टि है। आहाहा! ऐसा त्रिकाली स्वभाव भगवान, ऐसा मैं, ऐसे मुझे, ऐसे मुझे। समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ (मुझे) नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया?

अब इतनी बात करके (कहते हैं), अब, इन (उपरोक्त) विविध विकल्पों से (भेदों से)... विकल्प शब्द से यहाँ भेद कहे हैं। भरी हुई विभावपर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ,.... आहाहा! भेदरूप मैं नहीं तो उनका कर्ता मैं नहीं। मैं होऊँ, उसका कर्ता होऊँ। समझ में आया? आहाहा! धर्मी की दृष्टि अभेद के ऊपर होने से धर्मी कहता है, ऐसे भेद का मैं कर्ता नहीं, हों! आहाहा! मेरे नहीं, उन्हें मैं कैसे करूँ? यह तो अमृतचन्द्राचार्य ने कहा, ऐसी बात यह पद्मप्रभमलधारिदेव (ने) नियमसार में स्पष्ट अमृत बहाया है अकेला। आहाहा! ऐसे विभावपर्यायों का... विभाव शब्द से विशेष भेद। ऐसे विशेष भेदों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं,.... आहाहा! कारयिता नहीं... अब इसमें से कुछ थोड़ा आयेगा। अब अभी बन्द रखो। और क्या निकले वापस। यहाँ तो फिर संक्षिप्त करना है न, निकले नहीं वापस।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



दिनांक - ०६-०३-१९७२

गाथा-७७ से ८१, कलश-१०९, प्रवचन नं. ४०८

परमार्थ-प्रतिक्रमण का अधिकार है। यहाँ तक आया था अपने। परमार्थ-प्रतिक्रमण कैसे हो? कि मैं एक आत्मा। ऊपर अस्ति आ गयी है। सदा निरावरणस्वरूप हूँ, शुद्धज्ञानरूप हूँ, स्वाभाविक वीर्यशक्तिमय हूँ अथवा ज्ञानशक्तिमय हूँ। सहजदर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण मूर्ति... हूँ और स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यात चारित्रवाले... त्रिकाल स्वभाव, ऐसे मुझे समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ... पुण्य-पाप के विकल्प, वे मुझे नहीं। आहाहा! मैं एक त्रिकाल अकषाय-स्वभावसम्पन्न, उसमें कषायें मुझमें नहीं। ऐसा अन्तर में स्वभाव की अस्तिरूप से और विकार की नास्तिरूप से होना, उसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है, जो अनन्त काल से एक सेकेण्ड भी किया नहीं। जितने पुण्य और पाप आदि के भेद हैं, वे सब मेरी अस्ति में भी नहीं, मेरी सत्ता शुद्ध आनन्दघन ध्रुव चैतन्य प्रभु आत्मा मैं हूँ, उसमें वह नहीं। इसका नाम पर से विमुख होकर स्व में स्थिर हुआ, उसे सच्चा प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा!

अब, इन (उपरोक्त) विविध विकल्पों से (भेदों से) भरी हुई विभावपर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ,.... वहाँ आया है अपने। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य धातु ध्रुव, ऐसे मुझमें यह सब भेद, उनका मैं कर्ता नहीं। आहाहा! राग-द्वेष आदि भेद, उन पर्याय के भेद में समय जाने से विकल्प उठता है, वे सब भेद मुझमें नहीं। आहाहा! मैं उनका कर्ता नहीं। आहाहा! अभी तो पर का कर्ता हटे नहीं। 'निमित्त तो है न पर में'—ऐसा करके पर का कर्ता, शरीर का, वाणी का, भाषा हो, वह मुझसे होती है—ऐसा कर्ता माने, उसे तो यह बात कभी बैठती नहीं। यहाँ तो विविध प्रकार के दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के विकल्प, पंच महाव्रत के विकल्प, एक चैतन्य अभेद में भेद के लक्ष्य से उत्पन्न होता विकल्प, वह सब ही, मैं उनका कर्ता नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को यह प्रतिक्रमण होता है। अज्ञानी को यह होता नहीं।

जिसकी दृष्टि ध्रुव परमस्वभावभाव ऐसे मुझे। आया था न अपने? परमभाव-स्वभाववाला मैं। चौदह भेद में आया था। परमस्वभावभाव मेरा अस्तित्व, ऐसे मुझे यह सब भेद मुझमें नहीं। यह समझाने में तो क्या करे? 'यह भेद मुझमें नहीं' यह भी एक विकल्प है। परन्तु यहाँ तो उसके परिणमन की व्याख्या करते हैं। 'ये भेद मुझमें नहीं' यह भी नास्ति की दृष्टि पर के ऊपर जाती है। परन्तु वह वस्तु परमस्वभावभाव सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव परमस्वभावभाव की दृष्टि में यह नहीं, ऐसा समझाते हैं। परन्तु 'यह मुझमें नहीं', ऐसा करने जाये तो विकल्प उठते हैं। आहाहा! ऐसा है। बहुत सूक्ष्म। अनन्त काल से परमसूक्ष्म परमस्वभाव नित्यानन्द को पकड़ा नहीं इसने और उसे पकड़े बिना सब थोथा है, कहते हैं। समझ में आया? यह भेद में विकल्प आदि का मैं कर्ता नहीं, मैं उनका करानेवाला नहीं, यह पुद्गल कर्म उनका कर्ता, उसमें मैं सम्मत नहीं। आहाहा!

ज्ञानानन्दस्वभाव जो मेरा त्रिकाल सर्वज्ञ ने जैसा त्रिकाल स्वभाव था, वैसा देखा, जानकर, रमकर, रमणता करके प्रगट किया, ऐसा ही मेरा स्वभाव ध्रुव चिदानन्द है, ऐसा दृष्टि में आवे। आहाहा! जब उसमें वह रागादि के भाव या विभाव आदि विशेष पर्यायों का मैं कर्ता नहीं, कराता नहीं और उनका कर्ता पुद्गल, उसमें मैं सम्मत नहीं। गजब बातें, भाई! (ऐसा वर्णन किया जाता है)। अब नीचे स्पष्टीकरण करते हैं।

मैं नारकपर्याय को नहीं करता,... यह नारकी की गति का मैं कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप...** भगवान् स्वाभाविक चैतन्य के विलासस्वरूप ही भगवान् आत्मा है। उसमें राग और संसार का विलास उसके स्वभाव में नहीं। आहाहा! **ऐसे सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को...** ऐसा आत्मा, उसे ही भाता हूँ। यह 'भाता हूँ' वह पर्याय है। स्वाभाविक चैतन्य का विलास, ज्ञानानन्द का विलास ऐसा जो स्वभाव आत्मा उसे ही, उसमें एकाग्र होकर उसकी दशा को मैं भाता हूँ। आत्मा को ही भाता हूँ, ऐसा। यह भाता हूँ तो आत्मा को, परन्तु 'भाता है', वह पर्याय है। उसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा!

मैं तिर्यचपर्याय को नहीं करता,... ऐसा सबमें ले लेना। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मेरा भगवान् पूर्णानन्द प्रभु, उसमें ही मेरी वृत्ति

की परिणति है। मैं पर में हूँ नहीं। मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,... लो, यह कोई मनुष्यपना मिला तो आत्मा को धर्म होता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। यह मनुष्यपने की पर्याय का मैं कर्ता ही नहीं, कराता नहीं और हुआ, उसे मैं सम्मत नहीं। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं देवपर्याय को नहीं करता,... बहुत ऐसा कहते हैं कि यहाँ से अपने जरा दया, दान, व्रतादि करो, उससे देवलोक में जाया जायेगा और वहाँ से भगवान के पास जाया जायेगा। यह उसकी मान्यता भ्रम-अज्ञान है। देवपर्याय ही आत्मा में नहीं, फिर जाना-आना कहाँ रहा उसे? आहाहा! उस देवपर्याय का ही कर्ता माने तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? मैं तो सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं चौदह मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता,... यह सूक्ष्म। गति के भेद, इन्द्रिय के भेद, ज्ञान के भेद, दर्शन के भेद, समकित के भेद, उन सब भेदों को मैं करता नहीं। आहाहा! मैं तो अभेद चिदानन्दस्वरूप एक समय में त्रिकाल अखण्ड आनन्दकन्द का नाथ अकेला मैं हूँ। उसमें चौदह प्रकार के पर्याय से शोधने में आवे कि यह जीव किस पर्याय में है, ऐसी मार्गणा को मैं करता नहीं, मैं उसका करनेवाला नहीं, करानेवाला नहीं और होता हो, वह मुझे सम्मत नहीं। आहाहा! यह सूक्ष्म। ऐसा है, भगवान! ऐसी चीज़ है अन्दर। अभेद के ऊपर दृष्टि गये बिना उसे कल्याण तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? कहते हैं, उन मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता,... इसमें 'यह करता नहीं' यह डाला है और फिर कहा कराता नहीं और सम्मत भी नहीं। तीनों ले लेना। यह बाद में कहेंगे।

मैं तो सहज चैतन्य के विलासस्वरूप... भगवान। चैतन्य के विलासस्वरूप प्रभु आत्मा, ऐसी चीज़ के ऊपर मेरी एकाग्रता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? बाहर के प्रतिक्रमण करके मर गया अनन्त-अनन्त काल से, परन्तु इस प्रतिक्रमण बिना इसके भव का अन्त नहीं आता। कहो, समझ में आया? मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता,... यह तेरहवाँ गुणस्थान और चौदहवाँ गुणस्थान, ऐसे भेद का मैं कर्ता नहीं। आहाहा! मोह और योग के निमित्त से होते चौदह भेदों का मैं कर्ता नहीं, उनका

मैं करानेवाला नहीं और वे होते हों पुद्गल के निमित्त से मोहनीय से तो उसमें सम्मत नहीं। आहाहा! मैं तो अभेद चिदानन्द प्रभु हूँ। सम्यग्दृष्टि का विषय तो अभेद है। इस विषय में एकाग्र हो, उसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा! समझ में आया ?

मैं एकेन्द्रियादि जीवस्थानभेदों को नहीं करता,... लो, एकेन्द्रिय का पर्याप्त, अपर्याप्त, दो इन्द्रिय के सब भेद हैं न चौदह ? उन्हें मैं करता नहीं, स्वाभाविक कराता नहीं, करते को मैं सम्मत (अनुमोदक) नहीं। वे पुद्गल के भेद से सब भेद पड़े हैं, कहते हैं। मैं नहीं। मैं तो अभेद चिदानन्द आत्मा हूँ। आहाहा! समझ में आया ? यह मन्त्र सूक्ष्म है। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को... आत्मा कैसा ? कि यह गति आदि नहीं, भेद आदि नहीं। स्वाभाविक चैतन्य के विलासस्वरूप भगवान आत्मा में मेरी दृष्टि और उसमें मेरी भावना है। ऐसी भावना, उसे यहाँ परमार्थ-प्रतिक्रमण कहा जाता है। मैं शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता,... यह बाल अवस्था, युवा अवस्था, वृद्धावस्था, स्थविर अवस्था, रोग अवस्था, निरोग अवस्था, उस देह की-जड़ की अवस्था को मैं करता नहीं। मेरे ध्यान से वह बराबर रह सके, ऐसी वह चीज़ नहीं, मैं उसे कराता भी नहीं। आहाहा! और करता हो, उसे सम्मत करता नहीं। वह तो पुद्गल जड़ की दशा से यह सब शरीर की दशायें, बाल, युवा, वृद्धादि हों। आहाहा!

लो! वह प्रश्न है न, उसमें देखो न! क्या कहलाता है वह ? खानियाचर्चा। उसमें पहला बोल (प्रश्न) यह है विद्वानों का, जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं ? परन्तु गजब है न! ऐसा कि यहाँ जीव है, तब तक इस शरीर से धर्म होगा या नहीं ? पण्डितों की चर्चा में पण्डितों का प्रश्न। अरेरे! यहाँ तो कहते हैं कि शरीर की कोई भी अवस्था हो, उसका मैं कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, सम्मत नहीं और उससे धर्म हो, यह तीन काल में है नहीं। आहाहा! अरे! विकल्प है शुभराग का, उससे धर्म नहीं होता। अरे! एक समय की पर्याय है, उसके लक्ष्य से धर्म नहीं होता। उसके बदले शरीर की अवस्था से कुछ होता है... शरीर अनुकूलता हो। आता है सही अन्दर में, 'शरीर की अवस्था (में) रोग नहीं हो, जरा अवस्था नहीं हो, जरा... नहीं हो, तब तक धर्म कर ले।' ऐसा शास्त्र में आता है। अष्टपाहुड़ में आता है। वह तो एक निमित्त के कथन हैं कि यह जब तक यह दशा है, तब तक अन्दर के ध्यान में जाना। उस दशा से नहीं, परन्तु अन्दर में

ध्यान में जाना और आत्मा का कार्य करना, फिर नहीं होगा। प्रमादी और आलसी और पुरुषार्थहीन हो इसलिए, ऐसा कहते हैं। वह पर से कुछ हो, ऐसा नहीं। शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं। देखो, आता है या नहीं? किसमें आता है, खबर है? पुरुषार्थसिद्धि उपाय, पुरुषार्थसिद्धि उपाय। पहले शुरुआत में शरीर आद्यं खलु धर्म साधनं। ऐई! पण्डितजी! धूल भी नहीं, कहते हैं, सुन न! यह तो मिट्टी, जड़ है। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। यह वह क्या साधन धूल हो? आहाहा! शुभ विकल्प भी जहाँ साधन नहीं, एक समय की पर्याय के ऊपर लक्ष्य रखे और वह जो भाव हो, उससे साधन नहीं। आहाहा! साधन तो त्रिकाल आत्मा में एक साधन पड़ा है, करणगुण, उसमें अन्तरदृष्टि करने से उसमें से—साधन से (साध्य) होता है, बाकी दूसरे साधन से होता नहीं। ऐसी बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु, हों! साधारण समाज को तो पकड़ना नहीं, इसलिए ऐसी की ऐसी जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

कहते हैं बाल, युवक, स्थविर। शरीर स्थिर हो जाये बहुत वृद्धावस्था में। ... वृद्धावस्था से सरोग या निरोग, उन सब अवस्थाओं को मैं करता नहीं, उनका मैं करानेवाला नहीं और वह होता हो, उसमें मैं कारण नहीं अथवा सम्मत नहीं। सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।

मैं रागादिभेदरूप भावकर्म के भेदों को नहीं करता,... यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प का राग, यह शास्त्र के पढ़ने का राग, कहते हैं कि उस राग का मैं कर्ता नहीं। समझ में आया? उस राग का मैं करानेवाला नहीं। राग हो, उसे मैं सम्मत नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहे, शुभराग हो तो शुद्धोपयोग होता है, (ऐसा मानना) बड़ा मिथ्यात्व शल्य है। समझ में आया? आहाहा! क्या हो? भूला है अनादि से, इसलिए उसे अन्दर कैसे पकड़ में आये और किस प्रकार से पर से निरपेक्ष है, (इसकी खबर नहीं)। व्यवहार के विकल्प से निरपेक्ष तत्त्व है। ऐसे व्यवहार को मैं करता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। जितना सर्वज्ञ परमेश्वर ने पंच महाव्रतादि का व्यवहार चरणानुयोग में जो वर्णन किया, उस व्यवहार का मैं कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ११वीं गाथा में आता है, नहीं? जिनवर ने कहा हुआ निमित्त व्यवहार, उसका फल संसार है। आता है। जितना जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार

मुनियों का और श्रावक का, उसका फल संसार है। आता है ? ११वीं गाथा में आता है। आहाहा!

भगवान सहज चैतन्यस्वरूप और सहज ज्ञानानन्द के विलास से प्रभु, उसका आश्रय लेकर पर का कर्ता आदि मैं नहीं, ऐसा अन्तर में स्थिर होना, इसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण मिथ्यात्व और अज्ञान का कहा जाता है। अरे! अभी मिथ्यात्व के प्रतिक्रमण हुए नहीं, उसे बारह व्रत और अव्रत और त्याग और ढींकणा, यह सब अतिचार का दोष लगे और वह सब गप्प-गप्प है, वे सब बातें। समझ में आया ? बारह व्रत में अतिचार लगे, परन्तु थे कब अभी तेरे व्रत ? अखण्ड ज्ञानानन्दमूर्ति प्रभु का जहाँ साक्षात्कार दृष्टि में हुआ नहीं, उस चीज़ की सत्ता की अस्ति ज्ञान में ज्ञेयरूप से भासित हुई नहीं, उसे श्रद्धा होती नहीं तो उसमें यह प्रतिक्रमण उसे सच्चा होता नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

मैं भावकर्म के भेदों को नहीं करता,... आहाहा! समझाने में तो ऐसा आवे न! परन्तु भावकर्म का कर्ता नहीं, यह और लक्ष्य जाये तो वह विकल्प है। परन्तु समझाना है तो किस प्रकार समझावे ? यह विकल्प भावकर्म का उठे, उसका करानेवाला मैं नहीं और कर्ता दूसरा हो, उसे सम्मत नहीं। अर्थात् पर कर्ता है और सम्मत नहीं, ऐसा लक्ष्य करने जाये तो विकल्प उठता है। परन्तु समझाने की शैली किस प्रकार से समझावे ? समझ में आया ? **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप...** भगवान अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द से विराजमान परमात्मा स्वयं ही स्वरूप से परमेश्वर है, उसकी मैं भावना करता हूँ, उसमें मैं एकाग्र होता हूँ, बस एकाग्र अन्दर हो, इतना उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है, उसे धर्म कहा जाता है, उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान और चारित्र कहा जाता है।

मैं भावकर्मात्मक चार कषायों को... वे चार कषाय कहे न अन्त में ? क्रोध, मान, माया और लोभ। वह भावकर्म, हों! यहाँ जड़ की बात नहीं है। राग और द्वेष के चार भाग। पहले में रागादि लिया। राग के दो भाग—माया और लोभ, द्वेष के दो भाग—क्रोध और मान, ऐसे भावकर्मस्वरूप। ओहोहो! देव-गुरु-शास्त्र को सुनना, कहते हैं कि वह भी एक विकल्प भावकर्म है। अरेरे! गजब बातें हैं न! समझ में आया ? ऐसे भावकर्म को मैं करता नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव का यह

आचरण है। यह विकल्प भी मेरा कर्तव्य नहीं। आहाहा! गजब बातें हैं न! श्रवण, वीतराग की वाणी श्रवण में आवे और सुने, तब उसे विकल्प उठे शुभराग, वह वीतराग की वाणी से राग हुआ नहीं, राग हुआ स्वयं से। वह राग का कर्तव्य भी मेरा नहीं। आहाहा! समझ में आया? उस राग का कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, मैं सम्मत नहीं। मैं तो एक स्वाभाविक चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। कर्ता नहीं, ऐसा कहा था न, इसलिए स्पष्टीकरण किया है।

(यहाँ टीका में जिस प्रकार कर्ता के सम्बन्ध में वर्णन किया,... ऐसा पाठ में आया है। कारयिता और अनुमन्ता—अनुमोदक के—सम्बन्ध में भी समझ लेना।) आहाहा! गजब! अरे! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठे, उसे मैं सम्मत नहीं, ऐसा कहते हैं। यह दूसरे को उठे, उसे मैं मान्य रखता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बातें, बापू! समझ में आया? सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को माननेवाला जो विकल्प, उसे मैं करता नहीं, कराता नहीं और है, उसे मैं सम्मत नहीं। आहाहा! गजब बातें हैं न! ऐसा वीतरागमार्ग और ऐसा सर्वज्ञ का कहा हुआ पंथ है। समझ में आया? उसमें आया या नहीं यह? सुनने के समय विकल्प होता है, वह मेरा कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : किसके संग से हुआ वह कार्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्म के निमित्त के संग से हुआ, वह मेरे संग से नहीं। वह वास्तव में उस कर्म के निमित्त का कार्य है, मेरा नहीं। वह पुद्गलकर्म उसका कर्ता; मैं नहीं। है, यह कहा न अपने वहाँ। ७५ में आयेगा। विकार के परिणाम का व्यापकपना कर्म व्यापक है और व्याप्य उसकी अवस्था विकारी उसकी है; मेरी नहीं।

सम्यग्दृष्टि जीव अपने त्रिकाली चिदानन्दस्वभाव का आश्रय लेता हुआ, उसे ही स्वीकारता हुआ कि आत्मा परिपूर्ण है, ऐसा स्वीकारता हुआ धर्मी विकार के परिणाम का व्यापक आत्मा और व्याप्य अवस्था भावकर्म की, वह नहीं। कर्म है, वह व्यापक लम्बाता है और उसकी अवस्था—कर्म की अवस्था से पुण्य-पाप का भाव है। समझ में आया? गजब! तब दूसरे कहते हैं कि कर्म के कारण विकार होता है, तुम इनकार करते हो कि कर्म के कारण से नहीं। वजन आवे। वह दूसरी बात है। उसमें होता है, वह उसके पुरुषार्थ की निर्बलता से, कहीं कर्म के कारण से नहीं, परन्तु निर्बलता और

निमित्त दोनों को एक डालकर उससे हुआ, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! परन्तु जिसकी दृष्टि स्वभाव के ऊपर हुई, उसकी यहाँ बात है। अज्ञानी की बात यहाँ कहाँ है? जिसे त्रिकाल परमात्मा परमब्रह्म आनन्दस्वरूप ऐसा चैतन्यतत्त्व, उसका जहाँ शरण और आश्रय हुआ तो मैं उस विकार का कर्ता-करानेवाला हूँ नहीं। जड़ के कारण से होवे तो होवे, न होवे तो न हो, उसका मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। आहाहा! अरेरे! गजब काम, भाई!

है न? कर्ता नहीं, कराता और अनुमोदक मैं नहीं। आहाहा! इस प्रकार पाँच रत्नों के शोभित कथनविस्तार द्वारा सकल विभावपर्यायों के संन्यास का (-त्याग का) विधान कहा है। विकल्पमात्र और भेद का त्याग, उसमें पाँच रत्न में वर्णन किया गया है। अब देखो यह स्पष्टीकरण। यह मेरा विषय ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धर्मी अपने चैतन्य के स्वभाव का विषय बनानेवाला कहता है कि यह भेद और राग, वह मेरा विषय ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मार्ग ऐसा, भाई! यह टीका करते हुए मुनिराज कहते हैं, देखो!

(वसंततिलका)

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः
स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पंचरत्नात् ॥१०९॥

यह तो अध्यात्म की परम धारा बहती है, उसकी बात है, सूक्ष्म है। आहाहा! भगवान् चैतन्य का विलास रमनेवाला प्रभु, वह राग में कैसे विलसे? वह व्यवहार राग को कैसे विलासित हो? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है... आहाहा! गजब! पाँच का सार कहते हैं। धर्मी जीव ने पूर्णानन्द का नाथ, उसकी दृष्टि में आया, इसलिए उसने राग और राग से निमित्त के अन्दर पर्याय के भेद पड़ें, उसकी चिन्ता को जिसने छोड़ दिया है। पर के विषय का जो त्याग और स्वविषय का ग्रहण, उसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। देव, गुरु और शास्त्र परविषय है। आहाहा! खोटी मान्यता के ऊपर तो पानी फिरे न! सुजानमलजी!

क्या कहते हैं, देखो न! प्रकार पंच रत्नों द्वारा जिसने... इसका अर्थ कि अन्दर अभेदरत्न द्वारा जिसने। समस्त विषयों के ग्रहण... परसन्मुख के विषय का ग्रहण उसके विकल्प का जिसने त्याग किया है। आहाहा! भारी अजब बात! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा (हुआ) यह मार्ग है। समझ में आया? उन परमात्मा का यह पुकार है। तीर्थंकर त्रिलोकनाथ एक समय में तीन काल, तीन लोक का जिन्हें ज्ञान, वे ऐसा कहते हैं, कहते हैं कि मेरी ओर का विषय तुझे जो हो, वह परविषय है। आहाहा! उन समस्त विषयों के ग्रहण... विषय अर्थात्? कि परविषय, उसका नाम विषय है। यह भोग और विषय, वह तो स्थूल बात है। समझ में आया? आहाहा! समस्त विषयों... अन्तर अभेद विषय के अतिरिक्त पूर्णानन्द प्रभु अखण्ड अभेद, उसे विषय के 'विषयकुरवन्' ऐसा आता है, भाई! परमअध्यात्म तरंगिणी में दो-चार जगह आता है। परमअध्यात्म तरंगिणी है न। (समयसार) कलश की टीका संस्कृत में आती है। 'विषयकुरवन्।' उसे ध्येय बनाना, वह स्व का विषय किया और पर का विषय जिसने दृष्टि में से छोड़ दिया। आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी हो या तीन लोक के नाथ स्वयं हो, परन्तु वह सब परविषय है। आहाहा! समझ में आया?

उन समस्त विषयों... भोग की वासना के निमित्त स्त्री, शरीर आदि, वे तो अशुभ विषय हैं, अशुभराग का विषय है, परन्तु परमात्मा और देव, गुरु, वे भी शुभराग का विषय है; वह धर्म का विषय नहीं। यह तो मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण और समकित का आदर, उसकी बात है। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण अभेद की चीज़ की दृष्टि में वह विषय एक चैतन्य अभेद उसका-धर्मी का विषय, इसके अतिरिक्त दूसरे विषय अर्थात् ध्येय स्त्री, कुटुम्ब, परिवार या देव-गुरु-शास्त्र या सम्मेदशिखर आदि यात्रा के सब भाव, वह सब परविषय है। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐई पण्डितजी! गाते हैं या नहीं? 'एक बार वंदे जो कोई।' परन्तु देखो, यह कहते हैं कि नरक, पशु न होय, परन्तु पर विषय है, उससे धर्म होता नहीं, ऐसा कहते हैं। लाख सम्मेदशिखर की यात्रा करे और करोड़ करे, वह परविषय है, शुभराग का निमित्त है वह। आहाहा! साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजते हैं, यहाँ अनन्त हो गये, उन्हें ऐसे मणिरत्न के थाल, मणिरत्न के दीपक और

हीरा के थाल और कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) साक्षात् परमात्मा की उपस्थिति में ऐसी आरतियाँ अनन्त बार कीं, वह परविषय है। ऐई! पोपटभाई! क्या है यह ? ऐसा सब ? यह तो उत्थापित हो जाता है, यह कहते हैं। आहाहा!

देखो, यह क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण स्वरूप अभेद जिसका विषय धर्मी का है। इसके अतिरिक्त दूसरे पर का विषय यह प्रतिक्रमण में ऐसा डाला, पर के विषय का जिसे त्याग है और स्वविषय का जिसे ग्रहण है। आहाहा! समझ में आया ? परन्तु ऐसा धर्म कैसा ? बापू! धर्म तो ऐसा है। यह माने, तो कुछ दूसरे प्रकार से माने, इसलिए कहीं दूसरा हो जाये ? आहाहा! पूरे पंचरत्न का सार यहाँ रख दिया है कि मेरा विषय धर्मी, ऐसा जानता है, मेरा विषय अर्थात् ध्येय—मेरे ज्ञान की पर्याय का ध्येय द्रव्यश्रुत है। मेरा विषय परसन्मुख जो जाये विकल्प, वह मेरा विषय नहीं। आहाहा! जिसे तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि सुनना, वह भी परविषय है। यह वापस उसे एक-एक भगवान को देखना, लो न ऐसे। अरे! 'यह केवलज्ञानी है' ऐसा देखना, वह भी विषय है। समझ में आया ? 'सर्वज्ञ एक समय में त्रिकाल ज्ञान है और पूर्णानन्द है' ऐसे पर का लक्ष्य करना, वह भी परविषय है। ऐई! नवरंगभाई! क्या है यह ? नवरंगभाई का यह स्वतन्त्र शब्द है। आहाहा!

तेरे स्वरूप में तेरा रक्षण और तेरा प्रगट करना, बाकी पर का रक्षण और पर का प्रगट होना, वह तेरे स्वरूप में है नहीं। आहाहा! परमात्मप्रकाश में तो स्पष्ट लिया है कि दिव्यध्वनि से भी जो आत्मा ज्ञात न हो, ऐसा आत्मा है। और सन्तों की, मुनियों की, धर्मात्मा ज्ञानियों की वाणी से भी ज्ञात न हो, ऐसा वह आत्मा है। है ? परमात्मप्रकाश में, भाई! लालचन्दभाई! परमात्मप्रकाश। आहाहा! वहाँ तो यहाँ तक लिया है कि त्रिकाली द्रव्यस्वभाव ध्रुव अखण्डानन्द प्रभु के आश्रय से प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भावलिंग, भावलिंग भी जिसमें नहीं। परमात्मप्रकाश। भावलिंग उसमें नहीं। शरीर का द्रव्यलिंग और पंच महाव्रत के विकल्प द्रव्यलिंग तो उसमें (आत्मा में) नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कल कहा कि यह कषाय और कषाय के परिणाम अन्दर में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। पर्याय कहाँ अन्दर में थी ? यहाँ तो मोक्ष का मार्ग, वह अखण्ड दिव्य ध्रुव अभेद चीज़ की दृष्टि हुई, उसका ज्ञान हुआ और उसकी रमणता हुई,

वह भावलिंग पर्याय है। मोक्ष का मार्ग पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं। कठिन काम, भाई! समझ में आया? क्योंकि वह पर्याय व्यवहारनय का विषय है। निर्मल, हों! आहाहा! यह परसन्मुख के विषय की बात तो छोड़ दी, परन्तु मेरे ध्येय से प्रगट हुई दशा, वह भी व्यवहार है। मेरी अभेद चीज़ में वह भेद है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! कायर का तो कलेजा कांप जाये, ऐसा है। 'वचनामृत वीतराग के परमशान्त रसमूल' यह अशान्त तो विकल्प पर का विषय हो। यह देव-गुरु का विकल्प अशान्ति है। आहाहा!

पंच महाव्रत का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, वह भी कषायरूपी भट्टी है। उसे दूसरा कुछ करने जायेगा तो घर खोयेगा। उससे, इससे मुझे लाभ होगा। उस कषाय की अग्नि से मुझे शान्ति होगी, ऐसा करने जायेगा तो मिथ्यादृष्टि होगा और घर खोयेगा। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो राजकोट में तो चले या नहीं, दूसरी जगह की अपेक्षा? ऐई! इसके लिये तो कितने ही सुनने आये हैं। भाई! राजकोट के व्याख्यान सूक्ष्म निकले। चलो सुनने। मुम्बई से आये हैं लो यह। चतुरभाई तो यहाँ के कहलाये, परन्तु अब यह दूसरे आये हैं न। यह सेठी... आये, लो न। देखो, धन्धा छोड़कर सुनने आये हैं। आहाहा! गजब बात परन्तु!

अरे! तेरा स्वरूप... विकल्प पर का विषय हो, उसमें विकल्प उठता है। उसकी भी जिसे अपेक्षा नहीं, ऐसा वह अभेदतत्त्व है। उसे ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य हो। आहाहा! गजब बातें हैं! भाई! यह तो लोगों को... वह भी व्यवहारनय का विषय। केवलज्ञान व्यवहारनय का विषय है। क्योंकि केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है और भगवान आत्मा तो अनन्त-अनन्त पर्याय का पुंज पूरा आत्मा है। आहाहा! सुख का सागर, सुख का पूर चैतन्य का नूर, ऐसा भगवान अभेद है। आहाहा! परन्तु कैसे माने? जाना कहाँ? उसके ऊपर दृष्टि जाने से उसने-जिसने धर्मी ने अभेद को विषय बनाया, उसे पर के विषय का त्याग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें परन्तु गजब, भाई! सब साधारण प्रसन्न हो जाये। जाओ, यह गुरु की कृपा होगी तो कल्याण हो जायेगा। परन्तु कृपा कहाँ से हो? यह आता है खबर है न। कृपा कब कहलाये? उस आनन्दमूर्ति का भान किया हो, तब गुरु की कृपा, ऐसा कहने में आवे।

उसे कृपा से हो जाता हो तो सब अनन्त जीवों को एक गुरु मिले तो कृपा से सबका कल्याण हो जाये। आहाहा! इसका अर्थ यह। आता है न उसमें भी आता है वह, 'करुणा हम पावत है तुमकी वह बात रही सुगुरुगम की, पल में प्रगटे मुख आगळ है।' अन्दर अभेद चीज़ अन्दर पड़ी है, उसका आश्रय करने से एक पल में सम्यग्दर्शन और अनुभव होता है, वह पर का विषय छोड़े तो। आहाहा! समझ में आया? पर का विषय रखकर उसे सम्यग्दर्शन हो और आत्मा ज्ञात हो, (ऐसा नहीं होता)। यह लाईन आती है, नहीं? वहाँ लिखी है तुम्हारे में 'जब जाना निजरूप को, तब जाना सब लोक, न जाना निजरूप को, तब जाना सब फोक।' इसका अर्थ क्या? 'जब जाना निजरूप को, तब जाना सब लोक' अपना निजस्वरूप अखण्ड अभेद निर्विकल्प अभेद चीज़ को जहाँ अनुभव में आया, उसने सब जाना। निज जाना, उसने सब जाना। परन्तु निज जाने बिना का सब फोक। शास्त्र के पठन और पर का विषय सब फोक, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें आता है हो! एक जगह उसमें कहीं। गुरु चरण की पूजा से जो आत्मा प्रगटे, ऐसा भी आत्मा है एक कलश में। कहीं आता है सही, अब कुछ इसी में और इसी में आता है। यह तो निमित्त से कथन आते हैं। आहाहा! वे गुरु स्वयं आत्मा गुरु। स्वयं आत्मा देव, स्वयं धर्मी धर्म का धारक। आहाहा! समझ में आया? उसकी सेवा, पूजा करने से अखण्डानन्द प्रभु की पूजा करने से आत्मा को परमानन्द की दशा और मुक्ति का मार्ग प्रगट होता है। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

कहते हैं, इस एक लाईन में तो कितना भरा है इसमें! **पंच रत्नों द्वारा...** ऐसा भगवान ने कहा कि सन्तों ने कहा, वह भगवान ने कहा। सन्त भी पंच परमेष्ठी में आते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी आचार्य परमेश्वर हैं, टीकाकार साधु परमेश्वर हैं, उन परमेश्वर ने इसमें ऐसा कहा कि **जिसने समस्त विषयों के ग्रहण...** यह भेद, विकल्प और निमित्त का ग्रहण जिसने छोड़ दिया है, अर्थात् उसके ओर की चिन्ता जिसने छोड़ दी है। आहाहा! ऐसा मार्ग, भगवान! ऐसा तेरा भी अब उसे... उसके उपयोग को परज्ञेय का आलम्बन नहीं, ऐसा आयेगा, भाई! अलिंगग्रहण में, जानने का उपयोग, उसका आलम्बन द्रव्य वस्तु है, जानने के उपयोग का आलम्बन वस्तु है, जानने के उपयोग का आलम्बन भगवान की वाणी और भगवान भी उसका परज्ञेय आलम्बन नहीं। समझ में आया?

आहाहा! ऐसे परमेश्वरों-अनन्त तीर्थकरों का यह पुकार है। अब इसे न जँचे इसलिए नहीं... नहीं... नहीं... ऐसा नहीं। यह आगे की बात। यह ऊँची बात पहली। यह पहली की बात है यह। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **पंच रत्नों द्वारा जिसने...** अर्थात् कि अन्दर अभेद द्वारा जिसने अर्थात् कि आत्मा अखण्डानन्द अभेद है, ऐसे द्वारा जिसने **समस्त विषयों के ग्रहण की...** ओहोहो! **अन्तर्मुख अवलोकता**। आता है न? तो अन्तर्मुख अवलोकते तो पर का विषय कहाँ रहा वहाँ? पर से होता है, ऐसा रहा नहीं। समझ में आया? अन्तर्मुख अभेद के ऊपर दृष्टि पड़ने से चिदानन्द ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... परमस्वभाव, परमपारिणामिकभाव ऐसे द्वारा जिसने समस्त विषय। ओहोहो! यह निमित्त, निमित्त के लक्ष्य से होता राग और राग के निमित्त से होता पर्याय में भेद, यह सब विषय जिसने छोड़ा है। समझ में आया? इसके ख्याल में तो ले कि मार्ग यह है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग दूसरे प्रकार से कहता हो तो जिन्दगी चली जायेगी और तत्त्व नहीं मिलेगा इसे। समझ में आया? दीनतावाला अर्थात् कि दूसरे से मिले और इससे मिले, इससे मिले तो प्रसन्न हो। यहाँ कहते हैं, दूसरे से मिले, उसमें तेरा कराजीपना और मिथ्यात्व है। समझ में आया? कठिन ऐसी बातें!

जिसने समस्त विषयों के... ध्येय इसे पकड़ना कि उसका लक्ष्य करना, उसकी चिन्ता जिसने छोड़ दी है। आहाहा! **और निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में चित्त एकाग्र किया है...** देखो, पर्याय आयी वापस। अर्थात् कि अन्दर द्रव्य वस्तु शुद्ध, उसका गुण और उसकी जो पर्याय निर्मल, उसमें जिसने चित्त को जोड़ा है, ऐसा कहते हैं। वह अन्दर निर्मल अभेद की पर्याय हो, उसमें चित्त को जोड़ा है। समझ में आया? अभेद तो त्रिकाली है, उसमें लीन हुआ, वह पर्याय है, उसमें जिसने चित्त को जोड़ा है। आहाहा! कथन की शैली ऐसे बहुत प्रकार से आती है।

एक जगह तो ऐसा आता है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र के सन्मुख हुआ। आहाहा! आवे न, परन्तु क्या हो? समझ में आया? त्रिकाल भगवान आत्मा। आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमस्वभावभाव ध्रुवभाव बड़ी खान, अनन्त आनन्द का पूर और अनन्त ज्ञान का नूर, ऐसा तेजरूप भगवान आत्मा स्वयं उसमें लक्ष्य (करके),

उसमें लीन होने से, उसमें चित्त को एकाग्र किया है। व्यवहार के विषय से जिसने चित्त को वापस मोड़ा है, ऐसा कहते हैं। गजब काम! ऐसा धर्म भारी कठिन! इसलिए लोगों ने चला दिया फिर पर की सेवा करना, आहाहा! व्रत पालना, यह महाव्रत पालना। पालना। राग को पालना, आहाहा! यह सब मिथ्यात्व के लक्षण हैं। जिसने परविषय से दया, दान, व्रत आदि, वे तो परविषय हैं। उनसे आत्मा को परविषय से स्वविषय पता लगे (माना वह तो) मिथ्यात्व है, अज्ञान है, मूढ़ता है। आहाहा!

कहते हैं, जिसने स्वविषय अभेद को विषयकुर्वन। ऐसा पाठ है, स्वद्रव्य को जिसने विषय किया, उसने परविषय को दृष्टि में से छोड़ा। अरे! ऐसा कैसा धर्मध्यान का ऐसा स्वरूप होगा? सामान्य समाज के लिये ऐसा होगा? समाज अर्थात् क्या? समाज में बहुत आत्मा होते हैं, वह समाज। आत्मा तो ऐसा है। एक के लिये, वह समाज के लिये और समाज के लिये, वह एक के लिये। मार्ग तो यह है। आहाहा!

कहते हैं, वह भव्य जीव... आहाहा! त्रिकाली अभेद चिदानन्द ध्रुव वस्तु में जिसने ध्येय बनाया है और परवस्तु का ध्येय तथा विषय जिसने अन्तर से छोड़ा है। वह भव्य जीव... आहाहा! निजभाव से भिन्न... स्पष्ट किया वह। निजभाव जो त्रिकाली आनन्द और ज्ञायकभाव ध्रुव, उससे भिन्न ऐसे सकल विभाव को... आहाहा! विशेष भाव को। छोड़कर... वे सकल पर्याय के भेद विभाव आदि छोड़कर अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है। पूर्णानन्द की दशा वह प्राप्त करता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! इसमें अर्थात् कहा यह...

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कहा वह इसे समझ में आता है अन्दर में, ऐसा कहा। उसे समझ में आता है। कहा वह तो पर, परन्तु इसको समझने में आवे इसे। कब? यह सुना, समझने में आवे वह नहीं। सुना समझने में आवे, वह नहीं, वह तो परलक्षी ज्ञान है। आहाहा! सुनकर ख्याल में आता है जो ज्ञान की पर्याय, वह आती है उससे, तब वाणी को निमित्त कहा जाता है। परन्तु वह आती है उससे, उससे ज्ञान नहीं। क्योंकि वह सुना हुआ जो ज्ञान, वह परविषय का ज्ञान है। आहाहा! कठिन बात! समझ में आया इसमें? परन्तु ऐसा सुनने से पहले ज्ञान कहाँ था लो इसे? इतना ज्ञान हुआ या

नहीं? ऐई! पण्डितजी! 'लक्ष्मण थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी' आता है न? वह तो पर का लक्ष्य है, इसलिए यह कहना चाहते हैं ऐसा, उसमें यह अभेद का आश्रय कर, ऐसा लक्ष्य में इसने जाना, तब अभेद का आश्रय करे तब परलक्षी ज्ञान था, उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा आत्मा जिसने परमानन्दस्वरूप का साक्षात्कार किया अन्दर में, ऐसे अन्तर आनन्द के साक्षात्कारवाला भव्य जीव, पर के विषय की ओर के विकल्प को, भेद को छोड़कर, वह अल्पकाल में मुक्ति अर्थात् आनन्द को प्राप्त करता है। आहाहा! लो, यह वापस पर्याय आयी। पर्याय प्राप्त होती है न? द्रव्य तो है, वह है। एक पूर्ण द्रव्य ज्ञायकभाव, एक समय की पर्याय और राग की रुचि में (ज्ञात होता) नहीं था, वह आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा के ऊपर दृष्टि पड़ने से पर्याय में वह ज्ञायकभाव आया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! इसका अर्थ कि ज्ञायकभाव ज्ञात हुआ। जो जानने में नहीं था, जो पर को जानने का ज्ञान था और स्व का नहीं था, वह जब स्वसन्मुख आया तो निर्मल ज्ञान में ज्ञायकभाव ज्ञात हुआ अर्थात् ज्ञायकभाव प्रगट हुआ। प्रगट हुआ अर्थात् है, उसकी स्वीकृति आयी। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय में स्थित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में स्थित कहाँ होता है? द्रव्य में कहाँ स्थित होता है? ऐई! द्रव्य में स्थित होने की व्याख्या यह। द्रव्य में क्या? द्रव्य तो ध्रुव त्रिकाल है, उसकी ओर का विषय बनाकर उसमें लीन होना, वह द्रव्य में लीन हुआ कहलाता है। आहाहा! द्रव्य तो ध्रुव है। उस ध्रुव में होगा? ध्रुव में पर्याय आती है? आहाहा! कठिन बातें, भाई!

मुमुक्षु : ध्रुव पर्याय को छूने देता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्पर्शती नहीं। पर्याय का जिसे लेप नहीं। आहाहा! ऐसा त्रिकाली ध्रुव भगवान, उसकी एक समय की पर्याय उसमें नहीं, परन्तु पर्याय में पर्याय है। आहाहा! पर्याय का अंश जो आनन्द का, केवलज्ञान का, वह उसमें है; त्रिकाली में नहीं। उसमें (द्रव्य में) नहीं, इसलिए यहाँ (पर्याय में) भी नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? और उस पर्याय में पूरा आत्मा है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन

बातें भाई! ऐसी बात परन्तु। वस्तु ऐसी है। सत् का साहेब। ऐई! प्रकाशदासजी! वह सत्साहेब यह। आहाहा! अरे! इसे ख्याल में तो, ध्यान में तो ले कि यह चीज़ अभेद है, उसका आश्रय करने से ही कल्याण होगा। तीन काल में दूसरा कोई उपाय (नहीं है)। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।'

मुमुक्षु : द्रव्य तो आश्रय.... नहीं, किसमें आश्रय.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय लेता है, इसलिए देता है—ऐसा कहा जाता है। क्या कहा और यह ? कि त्रिकाली जो ध्रुव है, वह आश्रय देता नहीं। परन्तु वह तो ध्रुव है। परन्तु जिसने उसमें आश्रय लिया, उसने आश्रय दिया, ऐसा कहा जाता है। गजब! पर्याय उसमें ढली, इसका नाम आश्रय लिया कहा जाता है। आहाहा! जो पर्याय राग में, निमित्त में झुकी हुई थी, उसने पर का आश्रय किया है। जो पर्याय द्रव्य में ढली, उसने द्रव्य का आश्रय किया, ऐसा कहा जाता है। वह आश्रय देता कहाँ है ? ऐसे ढली, उसने आश्रय लिया, ऐसा कहा जाता है। भारी कठिन भाई यह! आहाहा! ऐसी कथा सुननेवाले थोड़े। 'विरला जाने तत्त्व को, विरला समझे कोई, विरला धारे तत्त्व को विरले श्रद्धा जोई।' आता है स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में।

कहते हैं, ओहो! **भव्य जीव...** देखो, वापस भव्य जीव लिया। उसमें भव्य-अभव्य में इनकार किया था। भव्य-अभव्यपना आत्मा में है नहीं। ऐसे भेद-बेद नहीं। परन्तु जो कोई ऐसा जीव है, ऐसे निजभाव भगवान आत्मा, उसके निजभाव से दूसरे सकल विभाव। जो उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार भाव इसने लक्ष्य में से, दृष्टि में से छोड़े हैं, आहाहा! उसे केवलज्ञान की क्षायिक पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया ? **अल्प काल में...** और क्रमबद्ध है न, अल्प काल कहाँ से आया वापस ? कहते हैं कि जिसने भगवान आत्मा पूर्णानन्द के प्रति आश्रय लिया, अन्दर दृष्टि जमायी, उसे अल्प काल में केवलज्ञान होने का ही प्रसंग होता है, उसे असंख्य समय में ही केवलज्ञान होता है, उसे अनन्त समय चाहिए नहीं। इसलिए अल्प काल में होता है, मुक्ति को प्राप्त (करता है), ऐसा कहा जाता है। यह गाथा पूरी हुई।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



दिनांक - १२-०४-१९५५

गाथा-१०९-११०, कलश-१५६ से १५९, प्रवचन नं. ४०९

यह नियमसार, परम-आलोचना (अधिकार की) १०९ वीं गाथा का भावार्थ। मूल तो आलोचना का स्वरूप कहने से यह भगवान आत्मा एक समय में स्थिर चिद्घन है। ...दृष्टिपूर्वक स्थिरता द्वारा परमपरिणामिक, परम परिणाम को समताभाव से स्थापित कर, उसे संवर और निर्जरा और उसे आलोचना कहते हैं। कहो, समझ में आया? एक समय में पूर्ण परमात्मा कारणशुद्ध भगवान की महिमा और अन्तर ज्ञान द्वारा अन्तर में देखना, उसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव संवर और आलोचना कहते हैं। इसलिए फिर पद्मप्रभमलधारिदेव टीकाकार कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा है, फिर बीच में जो विकल्प पुण्य के आवे, गुरु के निकट आलोचना करना इत्यादि। वह तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य उसका उपहास करते हैं। अरे! यह बात क्या होगी इस व्यवहार से? मशकरी, मजाक, हँसी। व्यवहार आचरण में विकल्प की कुन्दकुन्दाचार्य ने मशकरी में तिरस्कार किया है। समझ में आया? क्योंकि व्यवहार आलोचना, वह आलोचना ही नहीं। भगवान पूर्णानन्द, पूर्णमिदं शुद्ध चैतन्यमूर्ति को शरीर, वाणी, मन का लक्ष्य छोड़कर पुण्य-पाप की वृत्ति की रुचि छोड़कर उसकी अस्थिरता छोड़कर स्वरूप में स्थिरता के परिणाम द्वारा देखे, वही आलोचना, वही संवर और वही मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार-प्यवहार का तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि उसकी मशकरी-हँसी उड़ाई है। अब तू कहाँ आलोचना में घुस गया। तेरा पूर्ण स्वरूप तो ... कहलाये, भाई! ऐसा कहते हैं। आलोचना तो इसे—अन्तर को देखे, उसमें कही जाती है। उसमें और यह बीच में विकल्प शुभ उठा, उसे आलोचना, उसे प्रतिक्रमण, उसे प्रत्याख्यान, उसे यह क्या आया? कहते हैं, चल चल; वह नाममात्र कथन कहा है। वह वस्तु है नहीं।

ऐसा पद्मप्रभमलधारिदेव ने कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक में से यह मर्म और हार्द निकालकर कहा है। वह तो स्वयं ने कहा है न, उसका प्रश्न ही कहाँ है? समझ में आया? समझे? व्यवहार-प्यवहार की मजाक उड़ा दी है। आता है। आता है, तो क्या

हैं तुझे ? एक समय में चिद्घन परमात्मा अनन्त आनन्द का पिण्ड कन्द पूरा समुद्र... पड़ा है, ऐसे ध्रुव स्वभाव के सन्मुख जाकर स्थिर होना, वही आलोचना, संवर और मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार की तो मशकरी की है। कहो, समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य ने मशकरी की है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि और व्यवहार आलोचना... इसका अर्थ स्वभाव-सन्मुख जाना... लगा हो... प्रभु यह। अरे! यह आलोचना कैसी ? ... और आलोचना कौन कहे ? जो स्वरूप में नहीं है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। इसलिए सम्यग्दृष्टि ही व्यवहार की मशकरी करता है। लो ! समझ में आया ? हीराभाई ! वीतराग को होता है केवली को ? मुनि को जरा विकल्प उठे, उसकी मशकरी करते हैं। अब तू यह बीच में आया, वह कहाँ वस्तु है तू ? यह चैतन्य सत्ता सन्मुख की दृष्टि होकर स्थिर हो, वही वस्तु है, वही मोक्ष का मार्ग है, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य, वही प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना है। बाकी बीच में राग और व्यवहार की विपरीतता घुसाई, कहते हैं कि उस व्यवहार-प्यवहार का हम आदर नहीं करते। जानते हैं परन्तु उसका तिरस्कार करते हैं कि यह वस्तु का स्वरूप नहीं। कहो, समझ में आया ? हरिभाई ! देखो तो सही !

कहा न, यह पद्य अर्थात् वह श्लोक लेना १०९वाँ। अज्ञानी आदर करता है तो संसार में भटकता है। ज्ञानी आदर नहीं करता। वह चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द का अन्तर रुचि में आदर करता है तो संसार का नाश हो जाता है, कहीं व्यवहार से नाश नहीं होता। कहो, समझ में आया ? इसमें इस पद द्वारा (अर्थात् कि) १०९ श्लोक के न्याय से परमजिनयोगीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य ने वास्तव में व्यवहार आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है। ऐसा पाठ में ... है न ? 'आलोचयामिदि जाणह' ऐसा कहा था न ? यही आलोचना है, यही आलोचना है। 'जो पस्सदि अप्पाणं' भगवान आत्मा को अन्तर स्वभाव ज्ञान द्वारा समभाव से देखे 'आलोचयामिदि जाणह' उसे ही आलोचना जान। कौन उपदेशे ? 'परमजिणदस्स उवदेसं' भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र का यह उपदेश कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। इसलिए कुन्दकुन्दाचार्य व्यवहार की मशकरी उड़ाते हैं। तू और आलोचना-फालोचना कहाँ से कही ? तुझे कुछ कहा नहीं।

लकड़ी को घोड़ा कहा या नहीं ? लकड़ी हाथ में रखे उसे घोड़ा कहे। यह घोड़ा

है वह ? लकड़ी है। बालक कहता है। वह जानता है कि घोड़ा नहीं। बिच्छु काटे तो उस घोड़े के ऊपर बैठ जाये कहीं बाहर नहीं जाया जाता। सुनो ! समझ में आया ? इस पद द्वारा परमजिनेश्वर, जिनयोगीश्वर अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य। उन्होंने वास्तव में व्यवहार आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है। एक आलोचना ... व्यवहार का। जितने प्रकार के व्यवहारसमकित, व्यवहारज्ञान, व्यवहारचारित्र, व्यवहारधर्म अर्थात् ... व्यवहारआलोचना, व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारभक्ति। सबकी मशकरी उड़ा दी है कुन्दकुन्दाचार्य ने। व्यवहार-प्यवहार वस्तु कैसी ? और राग देखकर तुझे धर्म कह देना है ? राग देखकर तुझे आलोचना कह देनी है ? राग देखकर तुझे साथ में यह प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान कहना है ? वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं, ऐसा पद्मप्रभमलधारिदेव १०९ गाथा कुन्दकुन्दाचार्य ने जो कही, वे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तेरे व्यवहार की हँसी उड़ा देते हैं। तेरे व्यवहार-प्यवहार को हम धर्म कहते नहीं और वह धर्म का कारण भी नहीं। समझ में आया ?

अब, यह श्लोक १५६।

(पृथ्वी)

जयत्यनघचिन्मयं सहजतत्त्वमुच्चैरिदं
विमुक्तसकलेन्द्रियप्रकरजातकोलाहलम्।
नयानयनिकायदूरमपि योगिनां गोचरं
सदा शिवमयं परं परमदूरमज्ञानिनाम् ॥१५६ ॥

श्लोक है पद्मप्रभमलधारिदेव का। कैसा है भगवान आत्मा ? एक समय में सहजतत्त्व कारणभगवान ध्रुवस्वभाव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और शुक्लध्यान तथा केवलज्ञान होता है, ऐसा जो भगवान, एक समय में शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु सहजतत्त्व निर्मल शुद्ध सकल इन्द्रियों के समूह से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल से विमुक्त है, ... इन्द्रियाँ और इन्द्रियों की ओर के झुकाव का भाव ही उसमें नहीं। अतीन्द्रियस्वरूप भगवान में इन्द्रियों की ओर का झुकाव और इन्द्रियाँ, वे उसके स्वरूप में ही नहीं। सकल इन्द्रियों के समूह से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल... विकल्प, पाँच

इन्द्रिय से विमुक्त है, जो नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी... मन लिया। मन में श्रुतज्ञान के विकल्प उठें। भाई! पाँच इन्द्रियाँ ली और मन लिया। समझ में आया? भगवान आत्मा इन पाँच इन्द्रियों से तो पार है। परन्तु मन है मन, वह श्रुतज्ञान का जो विकल्प और भेद पड़े, श्रुतज्ञान अन्दर आत्मा स्वभाव-सन्मुख होकर सम्यक् हुआ, उसमें राग से भेद पड़े मन के सम्बन्ध से, ऐसे नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी। उस मन के सम्बन्धी... 'व्यवहार से बद्ध हूँ, स्वभाव से शुद्ध हूँ, पर्याय से अशुद्ध हूँ' ऐसा जो श्रुतनय ज्ञान में नय का विकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार उठे, उनसे आत्मा दूर है। वे आत्मा में हैं नहीं। नय भी नहीं और अनय भी नहीं। नय भी नहीं और कुनय भी नहीं। नय के निश्चय और व्यवहार के विकल्प उसमें नहीं और कुनय तो उसमें है ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया?

एक समय का सहजतत्त्व परमात्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, जिसके कारण सम्यग्दर्शन प्रगटे, ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय, उसका ध्येय जो सहज भगवान आत्मा ध्रुव, वह नय अर्थात् निश्चय और व्यवहारनय के विकल्प, उनसे पर है। परनय, कुनय। यह शरीर मेरा, वाणी मेरी, यह कर्म मेरे। यह नहीं, उसे कहना, ऐसे जो कुनय के समूह से दूर है। होने पर भी योगियों को गोचर है,... तथापि सम्यग्ज्ञान गम्य, वह आत्मा है। स्वयं को ज्ञान के गम्य है। नय और कुनय से दूर है, इन्द्रियों से दूर है, परन्तु सम्यक् चैतन्य ज्ञान की पर्याय से गम्य आत्मा है। कहो, योगियों अर्थात् स्वरूप (चैतन्य) है, उसमें अन्तर में जुड़ान शुद्ध... करनेवाले को—धर्मी जीव को वह आत्मा गम्य ... ज्ञानवेदनगम्य है।

जो सदा शिवमय है,... कैसा है भगवान? सदा कल्याणमूर्ति है। शिव-शिव। अनादि-अनन्त ध्रुव चैतन्यमूर्ति स्वभाव। ध्रुव हों ध्रुव है न! यहाँ तो कारणपरमात्मा शिवमय—कल्याण की ही मूर्ति है कि जिसके आश्रय से कल्याण होता है। कल्याण की मूर्ति आत्मा के आश्रय से कल्याण होता है। व्यवहार-प्यवहार कल्याण की मूर्ति नहीं कि उसके आश्रय से कल्याण हो। उत्कृष्ट है... भगवान परमात्मा कारणशुद्धचैतन्य शिवमय प्रभु सर्व से उत्कृष्ट है। परमात्मा सिद्ध होते हैं, वे भी उत्कृष्ट कारणपरमात्मा से

होते हैं। कहो, समझ में आया ? क्योंकि उनसे भी यह उत्कृष्ट अर्थात् सिद्धपने की पर्याय में तेरा परमात्मा सिद्ध को समय-समय में प्रगटा करता है। ऐसा भगवान सच्चिदानन्द त्रिकाल सत् और ज्ञान और आनन्द की मूर्ति सर्व से उत्कृष्ट है।

और जो अज्ञानियों को परम दूर है,... ... उसको अगोचर था, इसे दूर है। अज्ञानियों को परम दूर है। राग और पुण्य और व्यवहार से धर्म माननेवाले, एक समय की पर्याय के आश्रय से धर्म होगा, ऐसा माननेवाले, निमित्त के लक्ष्य से कल्याण होगा, ऐसा माननेवाले, ऐसे अज्ञानियों को वह चैतन्य परम दूर है। कहो, समझ में आया ? मोहनभाई! देखो, इसको गम्य है। पहले समझना तो पड़ेगा या नहीं कैसी है वस्तु ? समय-समय में परिणाम... चैतन्य त्रिकाल ध्रुव है, ऐसी दो बात बराबर पकड़नी चाहिए। समय-समय के परिणाम वह करे और त्रिकाल ध्रुव है, ऐसे स्वभाव के आश्रय से धर्म होता है, बाकी धर्म नहीं होता। कहो, समझ में आया ? यह कहते हैं, अज्ञानियों को। अनादि से विपरीतता घुसी है आत्मा में। यह राग हो तो होता है, पुण्य हो तो होता है, व्यवहार हो तो निश्चय होता है, निमित्त ऐसा हो तो (कार्य) होता है, ऐसा आहार हो तो होता है, पानी हो तो होता है; धूल में भी नहीं होता अब, सुन तो सही! समझ में आया ?

यह अज्ञानी जिसने निमित्त से और विकल्पों से तथा पुण्य-पाप के भाव और भेद से अथवा भेदपने से आत्मा अभेदपने को प्राप्त होता है, ऐसे अज्ञानी के अज्ञानभाव से परम दूर है। सहजतत्त्व से परम दूर है। **ऐसा यह अनघ...** अनघ-निर्दोष, मलरहित शुद्ध **चैतन्यमय सहजतत्त्व...** देखो आया! सहजतत्त्व अर्थात् कारणपरमात्मा। द्रव्य चेतन। कैसा है ? चैतन्यमय, चैतन्यमय, उसके चैतन्य का स्वभाव गुणमय है। सहजतत्त्व चैतन्यमय। और सहजतत्त्व तथा चैतन्यमय ? चैतन्य है, वह तो गुण है; तत्त्व है, वह गुणी है। यह गुण-गुणी त्रिकाल एकमेक पड़े हैं। अनघ अर्थात् निर्दोष, मलरहित शुद्ध चैतन्यमय। **सहजतत्त्व अत्यन्त जयवन्त है।** अत्यन्त त्रिकाल ऐसा का ऐसा कारणभगवान पड़ा है। उसके अवलम्बन से सम्यक्त्व, उसके अवलम्बन से चारित्र और उसके अवलम्बन से मोक्ष होता है। इसलिए इस तत्त्व की आलोचना में महिमा की है। १५७।

(मंदाक्रान्ता)

शुद्धात्मानं निजसुखसुधावार्धिमज्जन्तमेनं
 बुद्ध्वा भव्यः परमगुरुतः शाश्वतं शं प्रयाति ।
 तस्मादुचैरहमपि सदा भावयाम्यत्यपूर्वं
 भेदाभावे किमपि सहजं सिद्धिभूसौख्यशुद्धम् ॥१५७॥

अहो! २१६ पृष्ठ। कैसा है भगवान आत्मा? यह सम्यग्दर्शन में विषय अर्थात् सम्यग्दर्शन का ध्येय निज सुखरूपी सुधा के... अपना आनन्द जो त्रिकाली, ऐसे आनन्दरूपी जो अमृत, उसके सागर में डूबते हुए इस शुद्धात्मा को जानकर... वह तो आनन्दमय है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड पड़ा है। ध्रुव-ध्रुव चैतन्य नित्य भगवान सदृश्यस्वभावी भगवान। एकरूप चैतन्य निज आनन्द के अमृत के सागर में डूबता अर्थात् अमृत के सागरस्वरूप। डूबता अर्थात् आनन्दमय। यह पानी में जैसे मनुष्य डूब जाये तो पानी ही दिखता है। समझ में आया? ऐसे एकाकार। ऐसे यह आत्मा आनन्दमय है। आनन्द के सागर में आत्मा डूब गया है। डूब (गया) अर्थात् आत्मा आनन्दमय, एकाकार है। त्रिकाल सच्चिदानन्द अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु है। उस शुद्धात्मा को भव्य जानकर। लो, ऐसे शुद्धात्मा को जानकर। ऐसे शुद्धात्मा को सम्यग्दृष्टि जानकर भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;... लो, कौन? भव्य-लायक प्राणी एक बात और परम गुरु द्वारा। यह मिथ्यादृष्टि होगा परमगुरु द्वारा? सूक्ष्म मिथ्यात्व... पढ़ा है या नहीं? अरे! गप्प ही गप्प मारे हैं कितने ही।

भव्य जीव परमगुरु द्वारा... सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा गुरु द्वारा अर्थात् निमित्त कौन है, ऐसा बताते हैं। सम्यक् धर्म चैतन्य को पाने में सम्यग्ज्ञानी ही उसे प्रथम निमित्त होता है। उसे पहली देशना ज्ञानी ज्ञानपने का निमित्तरूप से उसे होता है। उन परमगुरु द्वारा... भव्य जीव। ऐसे आनन्दमय अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द व्यवहार के विकल्प वे सब दुःखरूप हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, बारह व्रत के भाव सब दुःखमय है। उस दुःखमय को आनन्दमय हो इसमें यह तीन काल में बनता नहीं। ऐसा कहते हैं कि इस शुद्धात्मा को जानकर भव्य जीव... देखो, भव्य लिया, अभव्य तो जानता नहीं। परमगुरु द्वारा... तब भव्य को भी वापस निमित्त ज्ञानी का। ... स्वभाव कि शाश्वत् सुख है... पहले कहा

न पहले ? आनन्द पड़ा हुआ स्वभाव है। वह आत्मा के शाश्वत् सुख को पाता है। अन्तर आनन्दमय है, ऐसा भव्य जीव जानकर परमगुरु निमित्त, शाश्वत् जो पर्याय है सिद्ध की, ऐसे शाश्वत् सुख को पाता है। लो ! आनन्दमय त्रिकाल है, वह नित्य उसमें से प्रगट पर्याय हो, वह शाश्वत् सुख को पाता है।

इसलिए, भेद के अभाव की दृष्टि से... देखो ! भेद के अभाव की दृष्टि। क्या कहा ? गजब बात परन्तु। एक समय का भगवान, उसे यह उसकी पर्याय है और यह गुण है और द्रव्य है—ऐसे भेद का जिसमें अभाव है। समझ में आया ? भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है,... उसमें भेद ही नहीं। यह और चैतन्यस्वभाव तथा यह आत्मा, यह गुण-गुणी का ऐसा भेद ही नहीं। ऐसे भेद के अभाव की दृष्टि से जो सिद्धि से उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध है,... सिद्धि से उत्पन्न होते सुख द्वारा शुद्ध है। ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व को मैं... वह तो त्रिकाल ऐसा ही है, ऐसा कहते हैं। इसलिए उत्पन्न होते भेद के अभाव की दृष्टि की सिद्धि उत्पन्न होनेवाले सौख्य द्वारा शुद्ध... ही त्रिकाल है। ऐसे किसी (अद्भुत) सहजतत्त्व (त्रिकाल) को मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से अत्यन्त भाता हूँ। कहो, समझ में आया ? ऐसा स्वाभाविक सहजानन्द परमात्मा मैं, उसे भी सदा, दूसरे सिद्धिपने को इस प्रकार से पाये और मैं भी सदा-सदा अति अपूर्व रीति से। देखो, यह सदा-सदा अति अपूर्व रीति से। अपूर्व अर्थात् निश्चय को मुख्य करके, स्वभाव को मुख्य करके अति अपूर्व रीति से अनन्त काल में... इस प्रकार अत्यन्त भावना की हुई। एक तो सदा, अति अपूर्व रीति से और अत्यन्त इतने शब्द प्रयोग किये हैं।

सम्यग्दृष्टि ने एक समय में पूर्ण शुद्ध चैतन्य जो दृष्टि में लिया, उसकी मुख्यता किसी समय में टलती नहीं और अपूर्व रीति से अनन्त काल में यह रीति पकड़ी नहीं, उस रीति से अत्यन्त भाता हूँ। मुनि है न ! स्वभाव में एकदम एकाग्र होता हूँ और उस एकाग्रता की आलोचना द्वारा ही मुझे मुक्ति होगी, दूसरी मुक्ति की कोई पद्धति और उपाय नहीं है। १५७ हुआ।

१५८। यह श्लोक है।

निर्मुक्तसंगनिकरं परमात्मतत्त्वं
निर्मोहरूपमनघं परभावमुक्तम् ।
संभावयाम्यहमिदं प्रणमामि नित्यं
निर्वाणयोषिदतनूद्भवसंमदाय ॥१५८ ॥

सर्व संग से निर्मुक्त,... यह अन्तरतत्त्व तो सर्वसंग से संसार की पर्याय से भी मुक्त है। संसार की एक समय पर्याय, हों! स्त्री, पुत्र संसार नहीं। वह उदयभाव एक समय का... त्रिकाल स्वभाव, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। ओहोहो! संसार में भी बहुत ... लड़का हो तो ही ... समझे न? थाल भरा सग मोतिये। उसमें (घर में) तो एक भी मोती न हो, परन्तु विवाह में महिमा आवे, ऐसा नहीं, हों! यह तो वस्तु का स्वरूप (ऐसा है)। कैसा? कि उसे जिसकी रुचि उसे बहुत... वह खोटा मनवाना। यह तो सच्ची चीज़ है। कहते हैं कि सर्वसंग से निर्मुक्त... भगवान आत्मा राग का विकल्प तीर्थकरपने का गोत्र का कारण राग से मुक्त है, स्वरूप में कुछ है नहीं। ऐसा चैतन्य भगवान सम्यग्दर्शन का कारण है। दूसरा कोई कारण-फारण नहीं।

निर्मोहरूप... जिसमें जरा भी मोह नहीं। रागादि परसन्मुख का सावधानपना, वह स्वरूप में है। अनघ... सदा ही निर्दोष है, पुण्य-पाप के परिणामरहित है। उसमें पुण्य और पाप दोनों स्वरूप में नहीं। और परभाव से मुक्त... विभाव नामक स्वभाव की कोई भी विकारी दशा, उससे त्रिकाल मुक्त, ऐसे इस परमात्मतत्त्व को। लो, ऐसे इस परमात्मतत्त्व को... एक समय में मेरा भगवान, उसे मैं निर्वाणरूपी स्त्री से उत्पन्न होनेवाले... किसलिए नमता हूँ? किसलिए ऐसे स्वभाव-सन्मुख ढला हूँ? मुक्तिरूपी स्त्री, परमानन्दरूपी पर्यायरूपी मुक्ति, उस स्त्री से उत्पन्न होते अनंग सुख को... अनंग अतीन्द्रिय सुख अनंग। अंग का सुख, वह जड़ का; अनंग का सुख, वह चेतन का। कहो, समझ में आया? इन इन्द्रियों को जड़ के अंग का स्पर्श करके मानना कल्पना, वह जड़ सुख, (वास्तव में) दुःख है।

मेरे परमात्मतत्त्व को मैं निर्वाणरूपी मेरी परिणति वीतराग सर्व शुद्ध अवस्थारूपी मुक्ति, उस स्त्री से उत्पन्न होते अनंग सुख के लिए नित्य संभाता हूँ (-सम्यक् रूप से भाता हूँ)... हमेशा, नित्य सम्भाता (सम्यक् रूप से भाता) हूँ। खाते होंगे कब? पीते

होंगे कब ? यह लिखने के समय विकल्प उठता है या नहीं ?—नहीं। कौन कहता है ? हम तो स्वभाव-सन्मुख में ही स्थित हैं। एक समयमात्र भी सम्यग्दृष्टि को ध्येय परमात्मतत्त्व से एक समय हटता नहीं। कहो, समझ में आया ? सेठी ! क्या कहते हैं ? नित्य सम्भाता हूँ। यह लिखते समय तो विकल्प आया मुनि को, उसे गौण कर दिया। नहीं, यह नहीं। हम तो यह। यह है ... यह नहीं। पूर्ण स्वभाव प्रगटमय भी है, ऐसे स्वभाव को नित्य सम्यक् रूप से भाता हूँ और परिणमता हूँ। और उसमें ही मेरा प्र-विशेष नमन हो, उसे नमस्कार करता हूँ स्वभाव चिदानन्द को। यह उसका नाम आलोचना, उसका नाम संवर, उसका नाम प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान। हीराभाई ! कितने प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, देखो ! लोगों ने कितने प्रतिक्रमण किये और कितनी ही सामायिकें। अब एक भी सामायिक की नहीं, सुन तो सही ! एक सामायिक हो और मुक्ति हुए बिना रहे, ऐसा होता नहीं। यह सम्यक् प्रकार से उसे मैं भाता हूँ अर्थात् कि एकाग्र होता हूँ और उसे प्रणमता हूँ।

१५९ श्लोक।

(वसंततिलका)

त्यक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं

चिन्मात्रमेकममलं परिभावयामि ।

संसारसागरसमुत्तरणाय नित्यं

निर्मुक्तिमार्गमपि नौम्यविभेदमुक्तम् ॥१५९॥

क्या कहते हैं ? निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर... निज भाव अर्थात् स्वभावभाव चैतन्यस्वभावभाव ऐसे, अपने त्रिकाल परमानन्दभाव से भिन्न, ऐसे सकल विभाव पुण्य विकल्प व्यवहाररत्नत्रय के भाव को छोड़कर, एक निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ। एक निर्मल ज्ञानमात्र सर्वज्ञस्वरूप ऐसा भगवान, उसे मैं अन्तर में भावना करता हूँ। संसारसागर को तर जाने के लिये,... संसार उदयभाव, विकारभाव ऐसे सागर को विकार के उदय के विकल्पों के अनेक प्रकार को तिर जाने के लिये अभेद कहे हुए मुक्ति के मार्ग को... निर्वाण है न यह, नियमसार है न ! नियमसार अभेदमार्ग कहा। अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे)... समझ

में आया ? देखो, वह है न, 'आलोयणमिदि जाणह परमजिणदस्स उवदेसं' उसमें से निकाला है कि अभेद भगवान ने तो मोक्ष का मार्ग एक ही कहा है। तू अभेद पूर्ण परमात्मा की ओर की अभेद श्रद्धा, अभेद का ज्ञान और अभेद में स्थिरता, वह एक ही मोक्षमार्ग है। बीच में जो विकल्प उठें, उसे भगवान मोक्षमार्ग नहीं कहते। समझ में आया ? यह व्यवहाररत्नत्रय को मोक्षमार्ग नहीं कहते, ऐसा कहते हैं। सेठी!

अभेद कहे हुए... यह इसमें से निकाला है न। 'आलोयणमिदि जाणह परम-जिणदस्स उवदेसं' परम जिनेन्द्र के उपदेश में उसे—अभेद को ही आलोचना कही, भेद पड़े उसे आलोचना कही नहीं। इसलिए मोक्ष का मार्ग तो भगवान ने अभेद कहा है। एक चैतन्यसत्ता के स्वरूप सन्मुख की रुचि, प्रतीति, रमणता और ज्ञान में एकपना होना, वही एक मोक्ष का मार्ग है। बीच में व्रत, तप के विकल्प आवे भूमिका प्रमाण, वे कहीं मोक्षमार्ग नहीं। अभेद कहे हुए (-जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे) मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ। दोनों लिया। उस त्रिकाल को भाता हूँ और ऐसे मुक्तिमार्ग को भी मैं नित्य नमता हूँ। मेरा अभेदस्वभाव चैतन्य है। देखो, भेदमोक्षमार्ग और अभेदमोक्षमार्ग, व्यवहारमोक्षमार्ग और निश्चयमोक्षमार्ग, वह तो कथनमात्र है, वस्तु ऐसी है नहीं। एक ही अभेद में चैतन्यसत्ता को अवलम्बकर जो स्थिरता श्रद्धापूर्वक करना, वह एक ही मोक्षमार्ग है। कहो, समझ में आया ? ...कुमारजी ! ... सुनने को मिली इतने भाग्यशाली या नहीं ? ... हो जाता है। ... कहो, समझ में आया ?

अभेद कहे हुए मुक्ति के मार्ग को... भगवान त्रिलोकनाथ जिनेन्द्र ने तो मोक्ष का मार्ग अभेद एक ही कहा है। समझ में आया ? आदरनेयोग्य एक ही, उसे वही मार्ग है, बाकी कथनमात्र। विकल्प आवे, उसे आलोचना कहना, वह तो कथनमात्र है। वह स्वयं ने ऐसा स्थापित किया। ऐसे मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमता हूँ। अन्तर झुकाव करके उसमें स्वभाव-सन्मुख होकर झुकाव करके परिणमूँ, उसे ही यहाँ नमन कहा जाता है। बात जरा समझने में न आवे। ऐई ! कपूरभाई ! देखो, यह मोक्ष का मार्ग। यह हरितकाय की दया पालन की, उसे मोक्ष का मार्ग कह दिया... दूसरे को आहार देना... किया, ... नहीं खाया, यह नहीं पीया। अब जड़ की पर्याय कहाँ घुस गयी थी आत्मा में ?

मुमुक्षु : खाना या नहीं खाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कोई खा सकता है, वह खाना-पीना ? खाये कौन और पीये कौन ? वह तो जड़ की पर्याय के कारण से जड़ का काल परिणमता है । आत्मा उसे जाननेवाला है, वह करनेवाला-फरनेवाला नहीं । अरे ! ... विकल्प उठे, वह भी स्वरूप में नहीं । स्वरूप में तो त्रिकाल में नहीं, परन्तु अभेदमार्ग में उसका आश्रय नहीं । कहो, समझ में आया ? एक समय में भगवान का आश्रय ... मार्ग है ... ऐसा भेद ... परन्तु अभेद मेरा मुक्ति का मार्ग है, उसे ही मैं नमन करता हूँ । १०९ गाथा हुई, लो ! ११० वीं गाथा ।

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो ।

साहीणो समभावो आलंछणमिदि समुद्धिं ॥११० ॥

जो कर्म-तरु-जड़ नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है ।

स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है ॥११० ॥

इसका श्लोकार्थ-अन्वयार्थ :- कर्मरूपी वृक्ष का मूल छेदने में समर्थ ऐसा जो समभावरूप स्वाधीन निज परिणाम... अर्थात् त्रिकाली परिणाम, वह भाव । समझ में आया ? लो, उस परिणाम में से त्रिकाली परिणाम ... एकरूप परमस्वभावपारिणामिकभाव, वह कर्मरूपी वृक्ष का मूल छेदने में समर्थ है । ऐसा समभावरूप ... निज परिणाम उसे आलुंछन कहा है ।

टीका :- यह, परमभाव के स्वरूप का कथन है । परमभाव चैतन्यस्वभाव परमपारिणामिक 'सकीय' कहा है न ? उसमें वह परम अर्थात् पारिणामिक आता है न ? भाई, आता है न ? पंचास्तिकाय में ... उस परिणाम को परिणाम को पारिणामिक । परिणाम अर्थात् त्रिकाली पारिणामिकभाव । त्रिकाल परमपारिणामिकभाव का उसमें कथन और उसके आश्रय से आलोचना, संवर । देखो, यह मोक्षमार्ग में आलोचना में आचार्य ने गाथा इतनी ऊँची डाली कि जो वर्तमान मूल स्वभाव है, वर्तमान धर्म की पर्याय का मूल स्वभाव है और स्वभाव के मूल में से यह सब धर्मों की दशा प्रगट की है, इसलिए आलोचना में इस प्रकार के चार बोल भगवान ने कहे हैं । इस बात का वर्णन किया है ।

भव्य को... भव्य—लायक जीव को पारिणामिकभावरूप स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है। कहो, समझ में आया ? क्योंकि उसे प्रगट होने के योग्य है, इसलिए भव्य को। अभव्य को स्वभाव तो ऐसा ही है, परन्तु प्रगट होने को—व्यवहार में योग्य नहीं। परन्तु भव्य को तो परमपारिणामिक चैतन्यकन्द भगवान स्वभावभाव त्रिकालभाव, ऐसा जो स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है। वह पंचमभाव... लो, इस पद को परमपारिणामिकस्वभावभाव एकरूप चैतन्यस्वभाव ज्ञायकभाव, वह पंचम भाव। भाव पाँच प्रकार के हैं। औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है। ओहोहो! क्या कहते हैं ? कि पंचम एकरूप चैतन्य परमपारिणामिकस्वभावभाव; व्यवहाररत्नत्रय जो उदयभाव है, उससे अगम्य है, उससे प्राप्त हो ऐसा नहीं। और यहाँ चार को विभाव कहा वापस। (उदय), उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार विभावस्वभाव है, अर्थात् कि विशेष पर्यायरूप है। चार—उदयभाव वह विकार पर्यायरूप है, उपशम है, वह निर्विकारी पर्यायरूप है सम्यग्दर्शन-चारित्र आदि, क्षयोपशम है वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र को आनन्द आदि अथवा वीर्य आदि की कुछ विकार की अथवा किंचित् अविकार की अवस्थारूप है, क्षायिक पूर्ण निर्विकाररूप अवस्था है, परन्तु है वह अवस्था। यहाँ कहते हैं कि ... भावना विशेषभावरूप है, इससे विशेष के आश्रय से स्वभावभाव गम्य नहीं होता, इसलिए चार विभावस्वभाव को अगम्य है। ओहोहो! टीका। कलिष्ट की, भाई कहते हैं न वे।

यह तो कहते हैं कि परमस्वभावभाव वह यह राग है, इसलिए व्यवहार विकल्प, इसलिए मैं उसका ... वस्तु में ऐसा नहीं। पर्याय उपशम हुई, इसलिए अब मुझे क्षायिक होगा, उपशम के आश्रय से क्षायिक होगा, हराम है। क्षयोपशम ज्ञान हुआ, उसके आश्रय से क्षायिक होगा, खोटी बात। क्षायिक आदि जो पर्याय हुई और भविष्य में होगी, वह हुई न आश्रय से और होगी न आश्रय से, मुझे केवलज्ञान होगा, यह बात है नहीं। मोहनभाई! यहाँ तो निवृत्ति लेकर समझना चाहे तो सब समझ में आये ऐसा है, हों! संसार का करना या यह करना ? कहो, समझ में आया ?

कैसा है भगवान परमस्वभाव ? भगवान परमस्वभाव। परमपारिणामिकभाव के श्रद्धागुण में और रमणता एक पर्याय परन्तु पर्याय के आश्रय से आत्मा को लाभ होता

नहीं। इसलिए चार विभावस्वभावों को अगम्य है। क्या सेठी? समकित को अगम्य है, ऐसा कहा। और ऊपर कहा था गम्य है, फिर आगे कहेंगे गम्य है। समझ में आया? समकित को अगम्य है, कहने का आशय कि सम्यग्दर्शन को तो गम्य है, परन्तु उस पर्याय का आश्रय करके ... परमपारिणामिक प्रगट हो, ऐसा है नहीं। समझ में आया? ऐसे चारित्रपर्याय है क्षयोपशमभाव, उसमें से क्षायिकपर्याय प्रगट हो, ऐसा नहीं। वह तो त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से क्षायिक होता है। इसलिए उपशम, क्षयोपशम, उदयभाव से अगम्य है और क्षायिकभाव कहो उसे चारित्र... साधक को होता नहीं और जिसे होता है, उसका लक्ष्य करने जाये तो अपने को लाभ होता नहीं। समझ में आया?

उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार पर्याय है और पंचमभाव त्रिकाल, वह गुण है, वह स्वभाव त्रिकाल है, नित्य है और चार हैं, वे पर्यायें हैं। पर्याय के आश्रय से परमपारिणामिकभाव प्रगट नहीं होता, ऐसा कहने के लिये चार विभावस्वभाव को अगोचर है, ऐसा कहा। क्षायिकभाव को भी विभाव कहा। ...भाई! विशेष, बस बात विशेष पर्याय है। परमपारिणामिक तो त्रिकाल सामान्य स्वभाव है, सामान्य स्वभाव है। एक समय का सामान्य गुण सदृश्य ध्रुव, वह सर्वस्व पर्याय प्रगट होने का कारण है। यह चार पर्यायें भी विशेषभाव है, वह स्वभाव प्रगट होने का कारण नहीं। सेठी! सेठी उलझ जाते हैं। ऐसे वृद्ध व्यक्ति को... क्षायिक को विभावस्वभाव कहकर निकाल डाला। किस अपेक्षा से निकाल डाला, कहा न? विभावस्वभाव—विशेष पर्याय है वह। क्षायिकभाव भी वर्तमान विशेष एक दशा है। कहीं सामान्य त्रिकालस्वभाव और त्रिकालस्वभाव के अवलम्बन बिना किसी का कल्याण तीन काल में नहीं, इसलिए कहते हैं। सर्वज्ञ भगवान का लक्ष्य करने जाये क्षायिक पर्याय का तो विकल्प उठते हैं। समझ में आया? ओहोहो!

एक ही कारण द्रव्य। औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है। जिसे तत्त्वार्थसूत्र में दूसरे अध्याय में पाँच भाव को जीव के स्वतत्त्व कहा है। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तथा पारिणामिक—पाँचों ही जीव के स्वतत्त्व हैं। परन्तु चार पर्यायरूप तत्त्व कहे और पारिणामिक गुणरूप जीवतत्त्व, ऐसा कहकर... हो, परन्तु यहाँ कहते हैं कि मोक्ष का मार्ग वह चार पर्याय—अवस्था है, उसके आश्रय से बढ़ता नहीं,

उत्पन्न होता नहीं, टिकता नहीं। समझ में आया ? यह आलोचना, यह आलुंछन, यह संवर-संवर के अधिकार में यह भूतकाल का प्रतिक्रमण, भविष्य का प्रत्याख्यान और वर्तमान की आलोचना, आता है न ? प्रतिक्रमण में आता है न ? परन्तु वह क्या है ? पहाड़ा है ? एक समय की चैतन्य सत्ता भगवान परमात्मा पड़ा है, उसके ही आश्रय से संवर होता है। संवर हुआ, उसके आश्रय से संवर होता नहीं। बस।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह किसकी बात करते हैं ? श्रद्धा कैसे करेगा ? स्वभाव की श्रद्धा कर, इसके अतिरिक्त दूसरी श्रद्धा दिखाई दे, ऐसा है नहीं। जीवदया पाले, व्रत पाले, वह श्रद्धा में आवे, ऐसा है नहीं। इसलिए तो यह बात चलती है कि भाई ! वह अवस्था में आवे। परन्तु कब आवे ? परमस्वभावभाव की श्रद्धा कर तो आवे। बाकी कोई क्रियाकाण्ड करे, व्रत-तप करे, दया-दान करे, तप करे, खाना-पीना और क्रिया में सँभाल करे, वह अवस्था में आवे, यह तीन काल में बने ऐसा नहीं। यह तो उदय में राग की क्रिया है अब, उसमें कहाँ आत्मा था और धर्म था ? समझ में आया ? ऐसे दूसरी अवस्था हो, तब हो, अपने क्या करना ? यह किसकी बात चलती है तब यह ? यह चैतन्यस्वभाव एक समय में पूर्ण है, उसकी श्रद्धा कर और व्यवहार वर्तमान पर्याय के आश्रय से धर्म नहीं, ऐसी प्रतीति कर। कहो, समझ में आया ?

वह पंचमभाव त्रिकाल स्वभाव... किसे सुनाते हैं यह गाथा ? शिष्य को जानने के लिये है न। ऊपर आ गया न यह ? समझ में आया ? उसे आलुंछन कहा है। इसके ऊपर कहा आलुंछन जान कहा था। कहा है, ऐसा आया न ? कहा है... परन्तु किसके लिये कहा है ? स्वभाव समझना चाहता है और धर्म करना चाहता है, उसे ऐसा कहा है कि तुझे यदि संवर करना हो, धर्म करना हो, मुनिपना प्रगट करना हो तो परमपंचमभाव के अवलम्बन से होनेवाला है, बाकी तीन काल में किसी काल में होनेवाला नहीं। कहो, समझ में आया ? यह दूसरी विपरीतता लेकर बैठा है न कि भाई ! धीरे-धीरे कषाय मन्द करूँगा तो होगा, आहार-पानी अच्छे खाऊँगा तो होगा, घी और पानी अच्छा पीऊँगा तो होगा। घी और पानी पीने से आत्मा जागता होगा ? कहो, समझ में आया ? ऐई ! सेठी ! ... उसमें अशान्ति है। आकुलता का पार नहीं होता। यह करूँ... यह करूँ... यह लूँ...

यह लूँ... यह लूँ... यह तो ज्ञानस्वभाव का अवलम्बन हुआ, फिर सहज उस प्रकार की भूमिका और विकल्प हो, पूर्व के पुण्य के योग से ऐसा ही निमित्त का योग होता है। ...यह तो आकुलता का पार नहीं, अरे ऐसा हुआ, उसने ऐसा किया, उसका ऐसा किया। कहो, समझ में आया ?

चार विभावस्वभावों को अगोचर है। इसीलिए वह पंचम भाव उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम... समझ में आया ? उदीरणा, यह सब यह उदीरणा, यह तो उपशमभाव। उपशम अर्थात् वहाँ उदीरणा लिया। समझ में आया ? क्षयोपशम ऐसे विविध विकारों से रहित है। ले, क्षय को भी विकार कहा वापस। एक तो विभावस्वभाव कहा। चैतन्य सत्ता की दृष्टि कर, स्वभाव कर, रुचि कर, बाकी सब समझने जैसा है। बाकी धर्म के साधन-फाधन कोई है नहीं। यह कर तब निमित्त को, विकल्प को व्यवहार आरोप आवे। वरना व्यवहार आरोप भी आता नहीं। पंचमभाव भगवान आत्मा कर्म के उदयरहित, उदीरणारहित, क्षयरहित और कर्म की उदीरणा करे, उसका पुरुषार्थ करके ऐसा करे— ऐसा नहीं, कहते हैं। परमपारिणामिकभाव एकरूप सत्ता पड़ी है। क्षायिक, क्षयोपशम के विविध प्रकार के विकार, विकार अर्थात् विशेष कार्य। मलिन भाव, ऐसा नहीं लेना। विविध प्रकार के ऐसे विकार्य, उन रहित परमपारिणामिकभाव त्रिकाल पड़ा है।

इस कारण से इस एक को परमपना है,... इस कारण से उस एक को परमपना। एक को अर्थात् पंचम भाव। पंचम भाव, वह स्वभावभाव; चार भाव, वे विभावभाव। दो। पंचम भाव, वह अविकारी भाव, वह एक। विविध प्रकार के समय बिना का भाव और यह चार भाव, वे विविध प्रकार के समयवाला भाव। अब इस कारण से इस एक को परमपना है,... पंचम भाव, एकस्वभावभाव, शेष चार विभावों को अपरमपना है। तीसरा बोल यह। राग, पुण्य-पाप के परिणाम तो अपरम हैं। उपशमभाव भी अपरम है, क्षयोपशम, क्षायिक भी अपरम है। तीन-तीन ... करके। एक ओर स्वभावभाव, तब एक ओर चार विभावभाव पर्याय। एक ओर पंचम भाव विविध विकाररहित, विकार्य अर्थात् कार्यरहित, तो चार भाव पर्याय के कार्यवाला। एक ओर पंचम भाव परमपना है, तब चार भाव को अपरमपना है। कहो, समझ में आया ? देखो, इसका नाम भेदज्ञान है। समझ में आया या नहीं ? बहुत सूक्ष्म परन्तु। भाई इकट्ठे हों, तब इसमें से कोई बात भी

निकले ? अब पंचम भाव की और परम... भाई ! अब क्या करना यह सरकार लेकर बैठे हैं, अब अपने क्या करना ? उसमें कुछ पैसा निकालकर कुछ दान में देना, ऐसा विचार तो किसी समय आता होगा। बाकी कि भाई ! यह ले जाते हैं, इसकी अपेक्षा डालो न कुछ धर्म की वह (प्रभावना) हो। बाकी तो सब अब कैसे रखना और कैसे बेचना ? यह बंटवारा करते हैं, देखो ! समझ में आया ? सेठी !

एक समय में भगवान आत्मा, पंचमभावस्वभावभाव। एक बात। वह सम्यग्दर्शन का आश्रय। चार भाव विभावभाव, वे सम्यग्दर्शन का आश्रय नहीं। पंचमभाव विविध प्रकार के कार्यरहित भाव। पर्यायरहित है वह तो। द्रव्य है त्रिकाल। यह बाह्य की पर्याय, हों ! वह ध्रुव पर्याय तो अन्दर पड़ी है वह। ध्रुवपर्याय सहित का परमपारिणामिकभाव। द्रव्य त्रिकाल, गुण त्रिकाल और पर्याय ध्रुव त्रिकाल, उसे यहाँ पंचम भाव कहा जाता है। ध्रुव कारणपर्याय, वह पूरा पंचम भाव नहीं, परन्तु पंचम भाव पूरा कहते हैं, उसमें द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों आ जाते हैं। कहो, समझ में आया ? ओहो ! पूरा पंचमभाव नहीं, अंश पर्याय। पारिणामिकभाव, वह अंश पर्याय। त्रिकाल एक पारिणामिकभाव के तीन अंश हैं—द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य सामान्य शक्ति का पिण्ड, गुण शक्तियाँ, ... उसकी पर्याय विशेष अंश ध्रुव, वह तीन होकर परमपारिणामिकभाव है। वह परमपारिणामिक तीन होकर स्वभाव और उदय आदिक चार भाव होकर विभाव। ये तीनों होकर परमपारिणामिक उत्पाद-व्यय के कार्यरहित और चार भाव से विविध कार्यवाला। वह परमपारिणामिकभाव, वह एक परमपना, वह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों होकर और चार विभाव, ऐसे अपरमपना। उसे कोई उत्कृष्टता है।

देखो, ऐसे स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि और रुचि करना, पहले उसे सुनना, उसका निर्णय करना, और यह स्वभावसन्मुख (हो), इस हेतु के लिये यह कहा जाता है। इसके अतिरिक्त यह करूँगा तो ऐसा होगा और यह करूँगा तो ऐसा होगा, यह सब रण में शोर मचाने जैसी बातें हैं। छोटूभाई ! यह ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा, फिर ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा, इतने व्रत पालूँगा, इतनी तपस्या करूँगा, इतने अपवास करूँगा, इतनी कषाय को मन्द करूँगा। यह कहते हैं कि सब बातें भले हों, परन्तु स्वभाव को पाने का तो यह एक ही उपाय, दूसरा कोई उपाय है नहीं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : क्रिया निकाल डाली ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्रिया निकाल डाली नहीं। वह साबित होता है कि वीतरागपर्याय क्रिया जो हो, उसका आश्रय लेने योग्य नहीं। इसलिए अस्ति स्थापित की जाती है, परन्तु उसका आश्रय लेने योग्य नहीं। सेठी ! आश्रय तो यह त्रिकाल का आश्रय लेने योग्य है और विकार की क्रिया वह है, परन्तु विभावविकार है, उसका आश्रय लेने और उससे जानता... ऐसा नहीं। स्थापित की जाती है कि यह है, वह दोषवाला है और यह है, वह लाभदायक है। लाभदायक कौन और अलाभदायक कौन, इसकी दोनों की अस्तित्ता साबित होती है। कहो, समझ में आया ?

समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,... अब कहते हैं। तीन की तो पहिचान दी तीन प्रकार से। स्वभाव, विभाव, विविध कार्यरहित, विविध कार्यवाला, यह चार बात और परमभाव, अपरमभाव।

अब **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के...** आठों कर्म के जहररूपी वृक्ष। लो, इसमें तो तीर्थकरगोत्र भी आता होगा या नहीं ? तीर्थकरगोत्र पड़ा है, वह विषवृक्ष होगा या नहीं ? या अमृतकुम्भ होगा जड़ ? १४८ प्रकृति तो जहर के वृक्ष हैं, मिट्टी, धूल है। **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में...** अंश रहे नहीं, कहते हैं। यदि मूल हो तो उगे। बोरड़ी होती है न खेत में ? गहरी न खोदे तो फिर उगे वापस दो महीने में, छह महीने में। यह तो **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के...** अमृत का कुण्ड भगवान है। आत्मा अतीन्द्रिय अमृत का पिण्ड है। उसकी दृष्टि, उसकी दृष्टि में आश्रय करनेयोग्य परमपारिणामिकभाव के आश्रय से। **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,...** लो, ऐसा यह परमभाव। पहले समझ तो करे, इसके ज्ञान में इस प्रकार से ज्ञेय होनेयोग्य है, ऐसा तो जाने और दूसरा ज्ञेय कर, उसमें कुछ लाभ है नहीं।

त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी, अविद्यमान ही है... क्या कहते हैं ? कि यह परमभाव एक समय में भगवान पूर्ण आनन्द अमृत का कुण्ड विविध पर्याय के कार्यरहित, परमभाव, स्वभावभाव और उत्कृष्ट, वह

त्रिकाल निरावरण निजकारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा। आत्मा त्रिकाल निरावरण है—ऐसा निज भगवान, उसके स्वरूप की श्रद्धा जिसे नहीं, ऐसे स्वरूप की श्रद्धा करता नहीं और पुण्य और व्यवहार से धर्म होता, ऐसी श्रद्धा करता है। निमित्त अच्छे हों तो कुछ तो लाभ होता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि, ऐसे स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण। पहले तो स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष है, इसलिए तीव्र कर्म मिथ्यात्व का उदय कहा है। उल्टी श्रद्धा की, इसलिए कर्म का उदय कहा, न करे तो कर्म का उदय अपने आप खिर जाये। पहली बात की न, भाई!

निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष... की है विपरीत श्रद्धा, ऐसे तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को,... उल्टी दृष्टिवाले को। पुण्य, पाप और निमित्त, व्यवहार और विकल्प और यह हो तो यह हो तो लाभ होगा, ऐसी कु—बुरी दृष्टिवाले को सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,... परमभाव है तो सही, परन्तु उसे नहीं। क्योंकि अन्दर में माहात्म्य आया नहीं, इसलिए उसे है नहीं। है तो भी नहीं। समझ में आया? क्योंकि होनापना वह राग को और पुण्य को और विकल्प को एक समय की पर्याय को माहात्म्य देता है। एक समय की अवस्था क्षयोपशमज्ञान विकल्प, निमित्त, एक समय की अस्ति, उसका माहात्म्य आता है, इसलिए उसे स्वभाव का माहात्म्य नहीं। उसकी पर्याय में ऐसा परमपारिणामिकभाव है, यह बात बैठता नहीं, इसलिए नहीं है। है तो सही, कहीं चला नहीं जाता। कहो, समझ में आया? ओहो!

तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण... अर्थात् ऐसे मिथ्यात्व कर्म का उदय और उसमें कुछ परमपारिणामिक की ओर जुड़ता परमस्वभावभाव है, उसका माहात्म्य करता नहीं और माहात्म्य सब एक समय का उघाड़, इतना उघाड़ हुआ, इतना ज्ञान हुआ, इतना यह हुआ। इतना राग घटा, इतना तो पुण्य किया, उसका माहात्म्य करे, ऐसा कुदृष्टि—मिथ्यादृष्टि, उसे सदा निश्चय से तो विद्यमान परमपारिणामिकभाव है, तथापि अविद्यमान है। तथापि उसकी दृष्टि में आता नहीं, इसलिए उसके लिये तो नहीं। उसके लिये नहीं। समझ में आया?

एक समय की सत्ता पूर्ण शुद्ध है, उस ओर की श्रद्धा के बल बिना उसकी श्रद्धा का जोर वर्तमान क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय या राग या संयोग अनुकूल, उनकी अस्ति को

स्वीकारता है। ऐसी कुदृष्टिवन्त को परमपारिणामिकभाव जो कहा, वह अस्ति धराता होने पर भी उसके लिये अस्ति नहीं। उसके लिये तो वर्तमान अवस्था राग और निमित्त ही अस्ति धराते हैं। बाकी सब उसे व्यर्थ लगता है। कहो, समझ में आया ? सेठी ! गाथा तो बहुत अच्छी है। सब अच्छी है गाथायें तो।

ओहोहो ! विपरीत श्रद्धा, विकल्प की श्रद्धा, राग की श्रद्धा और निमित्त के अनुकूलता की श्रद्धा और सन्मुख वर्तमान पर्याय के ऊपर जिसकी बुद्धि और स्वभावभाव पर्याय कार्य है, राग भी विकार और उदयभाव है, निमित्त तो पर है, उसकी सत्ता यदि हो, उसकी सत्ता जो हो, उसकी सत्ता का उत्साह, उसकी सत्ता का उल्लास, उसकी सत्ता की महिमा और माहात्म्य, परन्तु परमस्वभावभाव का माहात्म्य आता नहीं। उसे विद्यमान अस्ति धराता होने पर भी वह परमभाव अविद्यमान ही है। वह विद्यमान पूँजी से अपूँजीवाला। कहो, समझ में आया ? भाई ! पैसा तो घर में है, परन्तु मेरा बाप खर्च करने नहीं देता। हम तो भाई ! विद्यमान पूँजी के कंगाल हैं। कहते नहीं ? कहो, समझ में आया ? उसी प्रकार यह निश्चित कि यह तो कहते हैं कि वह कहता नहीं, हम कहते हैं। तब है ही नहीं तुझे। तेरी पूँजी का तुझे पता नहीं और भिखारीपने का तुझे पता है। जब हो तब, अरे ! इतना हमने उघाड़ किया, राग करके क्षयोपशम ज्ञान किया। ओहोहो ! अब ग्यारह अंग और नौ पूर्व का अनन्त बार किया, उसमें भला क्या हुआ ? समझ में आया ? और राग की मन्दता कर-करके कष्ट सहन करके उसमें कषाय पतला किया है और हमने कोमल प्रकृति की है। पहली प्रकृति पाँच ... हमको नहीं थी ... मारते हैं, ऐसा कहे कितने ही। अब हमारी प्रकृति कोमल है। क्या किया परन्तु धूल किया कोमल हुई उसमें ? तूने क्या किया ? उसकी सत्ता, उसका माहात्म्य, उसका उत्साह, उसका प्रमोद, इसे आता है, परन्तु स्वभाव एक समय में पूर्ण सत्ता चैतन्य परमभाव पड़ा है, उसका माहात्म्य और रुचि, उत्साह आता नहीं, इसलिए विद्यमान होने पर भी उसके लिये तो अविद्यमान है।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



पौष शुक्ल १०, दिनांक - ०३-०१-१९५५

गाथा-१०, कलश-१७, प्रवचन नं. ४१०

गाथा १०वीं चलती है। यह उपयोग की व्याख्या है। यह आत्मा है, वह अनादि-अनन्त वस्तुस्वरूप है, उसमें ज्ञान और दर्शन स्वभाव है, वह भी अनादि-अनन्त है। उसका यहाँ उपयोग की पर्याय के भेद का वर्णन चलता है। उपयोग अर्थात् ज्ञान और दर्शन का जानने-देखने का व्यापार। उपयोग अर्थात् कि जानने-देखने का व्यापार, उसे उपयोग कहते हैं। उस उपयोग की व्याख्या में अध्यात्मदृष्टि से जरा सूक्ष्म बात है। पहले तो ऐसा कहा कि **आत्मा का चैतन्य-अनुवर्ती परिणाम, सो उपयोग है**। भगवान आत्मा का चैतन्य जो गुण, आत्मा द्रव्य है और उसका चैतन्य जो गुण है, उसे अनुसरकर, उसे अनुसरकर होनेवाला, अनुसरकर वर्तनेवाला ऐसा जो परिणाम, पर्याय, अवस्था, उसे यहाँ उपयोग कहते हैं। वह उपयोग धर्म है और जीव है, वह धर्मी है। उपयोग पर्याय है, उसका धारक धर्मी, वह आधार है। ऐसी बात सब चली आती है आधार की, भाई! आधार की ऐसी है। श्वेतादि गुण का आधार वह मूर्तद्रव्य, ऐसा सब चला आता है इस शैली से।

इसी प्रकार आत्मा का चैतन्यस्वभाव जो गुण, उस चैतन्य के दो प्रकार—ज्ञान और दर्शन। उसे अनुसरकर वर्तनेवाला, होनेवाला, अनुसरकर होनेवाला—गुण को अनुसरकर होनेवाला जो परिणाम अर्थात् अवस्था, उसे यहाँ उपयोग कहते हैं। वह उपयोग, वह धर्म अर्थात् पर्याय है, और जीव उसका धारक, वह धर्मी है। धर्मी—धर्म का धारक। उपयोग पर्याय है, वह धर्म है, उसका पर्याय स्वभाव है, उसका धारक वह आत्मा है। दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। फिर से लिया है। दीपक और प्रकाश जैसा उनका सम्बन्ध है। ज्ञान और दर्शन के भेद से यह उपयोग दो प्रकार का है (अर्थात्, उपयोग के दो प्रकार हैं—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग)। ज्ञानपर्याय, ज्ञानरूपी परिणाम और दर्शनरूपी परिणाम। ज्ञानरूपी पर्याय, परिणाम और दर्शनरूपी परिणाम, ऐसे उपयोग के दो भेद हैं।

इनमें ज्ञानोपयोग भी स्वभाव और विभाव के भेद के कारण दो प्रकार का है। वह ज्ञान चैतन्य अनुविधायी परिणाम, ज्ञान के अर्थात् चैतन्य के अनुविधायी जो परिणाम उपयोग। उस उपयोग के दो प्रकार हैं। एक स्वभाव उपयोग और एक विभाव उपयोग। एक स्वाभाविक चैतन्य अनुविधायी परिणाम। समझ में आया? एक विभाविक चैतन्य अनुविधायी परिणाम। परन्तु स्वभाव के भी दो भेद हैं। समझ में आया? भाई! ज्ञानोपयोग के स्वभावरूप चैतन्य अनुविधायी स्वभावरूप परिणाम और एक चैतन्य को अनुसरकर वर्तनेवाले विभावरूप परिणाम, उस ज्ञान उपयोग के भी इस प्रकार से दो भेद पड़ते हैं।

अब उसमें भी स्वभावज्ञान, वह स्वभाव ज्ञानरूप उपयोग परिणाम चैतन्य अनुविधायी। आत्मा वस्तु, उसका चैतन्यगुण, उसे अनुसरकर, उसे वर्तनेवाले जो ज्ञान के परिणाम, ज्ञान के स्वभावरूप परिणाम, ज्ञान के स्वभावरूप उपयोग परिणाम, वे कैसे हैं? अमूर्त... है। अव्याबाध... है वह पर्याय। अतीन्द्रिय और अविनाशी है... स्वभाव। आत्मा वस्तु का चैतन्य को अनुसरकर वर्तनेवाला ज्ञानस्वभाव परिणाम, वह चार प्रकार से है। अर्थात् कि अमूर्त है, अव्याबाध (अर्थात्) जिसे कोई विघ्न नहीं, वह अतीन्द्रिय है, अविनाशी है। आत्मा वस्तु है, उसके चैतन्यगुण को अनुसरकर वर्तनेवाला, होनेवाला अनुविधायी उपयोगरूप परिणाम, उसे ज्ञानरूप, स्वभावरूप परिणाम, वह ज्ञानस्वभावरूप परिणाम के दो प्रकार हैं। उन दो प्रकार की यह व्याख्या कही कि दोनों अमूर्त है, अव्याबाध है, अतीन्द्रिय है और अविनाशी है।

वह स्वभावरूप ज्ञानोपयोग चैतन्य को अनुसरकर होते परिणाम, वे भी कार्य और कारणरूप से दो प्रकार के हैं। समझ में आया? देखो, यह सूक्ष्म बात आयेगी अब। परिणाम एक स्वभाव। चैतन्य अनुविधायी उपयोग परिणाम एक स्वभाव चैतन्य अनुसरकर होते कार्यरूप परिणाम, वह कारणरूप परिणाम। आत्मा वस्तु है, उसका चैतन्य अनुसरकर होनेवाला उपयोग है, उस उपयोग के ज्ञानोपयोग स्वभावरूप के दो प्रकार—ज्ञानस्वभावरूप उपयोग के परिणाम के दो प्रकार—एक कार्यस्वभावज्ञान, एक कारणस्वभावज्ञान। ओहोहो! अब कार्यस्वभावज्ञान और कारणस्वभावज्ञान दोनों चैतन्य को अनुसरकर होते उपयोगरूप परिणाम दोनों अमूर्त हैं, दोनों अव्याबाध हैं, दोनों अतीन्द्रिय हैं, दोनों अविनाशी हैं।

उसमें **कार्य तो...** अब कार्य अर्थात् आत्मा वस्तु, चैतन्य गुण, उसे अनुसरकर वर्तनेवाला-होनेवाला। समझ में आया ? ऐसा कार्यरूप उपयोग **सकल-विमल केवलज्ञान है...** केवलज्ञान उपयोग को सकल-विमल—सर्वथा निर्मल केवलज्ञान, वह स्वाभाविक चैतन्य को अनुसरकर होता कार्यरूप स्वभाव ज्ञानोपयोग है। वजुभाई ! केवलज्ञान। **और उसका कारण...** उस स्वभावरूप चैतन्य को अनुसरकर वर्तनेवाला, होनेवाला केवलज्ञानरूपी उपयोगरूप परिणाम जो कार्यस्वभाव उपयोग परिणाम कहा, **उसका कारण...** वह कहाँ से प्रगट हुआ कहते हैं ? कहीं निमित्त में से केवलज्ञान का कार्यस्वभाव उपयोग आता नहीं, तथा राग और पुण्य विकल्प में से आता नहीं, तथा चार ज्ञान की वर्तमान पर्याय प्रगट हो, उसमें से भी एक चैतन्य को अनुसरनेवाला केवलज्ञानरूपी कार्यस्वभाव उपयोग, चार ज्ञान की वर्तमान क्षयोपशम पर्याय में से भी वह केवलज्ञान कार्यस्वभाव उपयोग आता नहीं। तब किसमें आता है ?

उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित,... परमपारिणामिकभाव जो चैतन्य का स्वभावभाव, त्रिकाल शुद्धस्वभाव, उसमें रहा हुआ, **त्रिकाल निरुपाधिक सहजज्ञान है।** त्रिकाल निरुपाधिरूप—तीनों काल जिसमें उपाधि नहीं, ऐसा एक कारणज्ञानस्वभाव उपयोग जो ध्रुवरूप पर्याय है, उसे कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग कहते हैं। ओहोहो ! सेठी ! यह पर्याय है, हों ! देखो ! यह बात अत्यन्त अपूर्व और नयी है। साधारण में यह कारण उपयोग, उपयोग और पर्याय, और ध्रुव, यह क्या ?

जैसे सिद्ध पर्याय सामान्यरूप से अनादि-अनन्त है, जैसे सिद्धपर्याय सामान्यरूप से अनादि-अनन्त है। वह तो व्यक्ति से लो तो सादि-अनन्त है। समझ में आया ? सिद्ध-सिद्ध। पहले सिद्ध नहीं थे, ऐसा है ? सामान्यरूप से लो तो सामान्य जैसा आत्मा शुद्ध है, वैसी उसकी पर्याय सिद्धरूप पर्याय भी अनादि की है। सामान्य। व्यक्तिगत करो तो सिद्धपद सादि-अनन्त होता है। समझ में आया ? समझे ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं, यह नहीं। मैं तो दूसरी बात करता हूँ। उसे कारण-कार्य नहीं। यहाँ तो मैं यह कारण उपयोग कैसे है, यह बात सिद्ध करने के लिये जरा दलील देता हूँ कि जैसे आत्मा सामान्य द्रव्य-गुण-पर्याय से शुद्ध है, वैसे उसकी

शुद्ध सिद्धपर्याय भी अनादि की इस जगत में सिद्ध पर्याय नहीं थी और संसार पहले था और सिद्ध बाद में है, ऐसा सामान्यरूप से नहीं है। जगत के अन्दर सिद्ध की पर्याय कभी नहीं थी, ऐसा है नहीं। क्या कहा, समझ में आया? अनादि सिद्ध है। जैसे सामान्य द्रव्य चैतन्य वस्तु अनादि-अनन्त, उसका चैतन्य गुण अनादि-अनन्त और उसकी प्रगत पर्याय शुद्ध सिद्ध की सामान्यरूप से गिने, ऐसे लोक में तो भी वह अनादि-अनन्त है। सिद्ध अनादि है या नहीं? जरा सूक्ष्म बात! नयी बात तो है। यह व्यक्ति का अभी काम नहीं। यहाँ तो व्यक्तिगत सादि, वह तो बात हो गयी। मुझे तो यहाँ दूसरा कारण उपयोग स्वभाव अनादि का है, यह सिद्ध करना है। जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

जैसे आत्मा द्रव्य और गुण से त्रिकाल शुद्ध है शक्तिरूप से, उसकी पर्याय भी प्रगटरूप से सिद्धों की गति, सिद्धरूपी गति अनादि की है। प्रगटरूप सिद्धपर्याय भी... सब जीवों का प्रश्न नहीं। सिद्धगति की अपेक्षा से है। देखो, उसमें से सिद्धान्त है जरा कि जैसे सिद्धगति की पर्याय, वह भी जगत में पहले नहीं थी, ऐसा नहीं है। वह अनादि-अनन्त है, वह शुद्धपर्याय प्रगत अनादि-अनन्त है। सिद्ध की गति की अपेक्षा से। ऐसे आत्मा लें तो आत्मा द्रव्य से, गुण से शुद्ध है और उसकी प्रगत संसार पर्याय भी अनादि की है और अनन्त काल रहनेवाली है। सिद्ध जैसे पहला नहीं, वैसे संसार का कभी अन्त सभी जीवों के आयेगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

जैसे ऐसे आत्मा और उसका गुण जैसे शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शक्तिरूप से अनादि है, वैसे उसकी प्रगत पर्याय की सिद्धगति भी अनादि की है। और जैसे आत्मा का शुद्ध द्रव्य-गुण शुद्ध अनादि है, वैसे संसारपर्याय विशेष प्रगटरूप भी अनादि की है। और उस संसारपर्याय का अनन्त काल रहने की है सामान्यरूप से। समझ में आया? और सिद्ध में जैसे व्यक्तिगत सादि-अनन्त है, वैसे संसार के व्यक्तिगत अनादि-सान्त है। व्यक्ति का अनादि-सान्त संसार हो जानेवाला, समझ में आया? परन्तु संसारपर्याय का कभी अन्त आ जाये जगत में, (ऐसा नहीं होता)। अनादि-अनन्त है। ...अनादि-अनन्त है। समझ में आया? ऐसे मोक्षमार्ग की पर्याय जगत में अनादि-अनन्त है।

यह नियमसार चलता है न, नियमसार। तो नियम मोक्षमार्ग, यह पहले जगत में नहीं था सामान्यरूप से (-ऐसा नहीं है)। वह भी अनादि-अनन्त है। व्यक्तिगत करे

जब मोक्षमार्ग, तब सादि होकर मोक्षमार्ग का अन्त आ जाता है और मोक्ष की सादि-अनन्त दशा प्रगट होती है। क्या कहा, समझ में आया? दो पर्याय सिद्ध की न, अनादि-अनन्त प्रगट शुद्ध पर्याय सिद्ध, अनादि-अनन्त प्रगट अशुद्ध पर्याय संसार की। सिद्ध में व्यक्तिगत मुक्ति सादि-अनन्त, संसार में व्यक्तिगत संसार का अन्त अनादि-सान्त। नियम मोक्षमार्ग के दो प्रकार—एक मोक्षमार्ग जगत में अनादि है कि नियमसार—मोक्षमार्ग पूर्व में कभी नहीं था और कोई जीव नया एक पहला पका, ऐसा है नहीं। समझ में आया? मोहनभाई! कितना सूक्ष्म! आया है तुम्हारे इसमें कुछ?

नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। यहाँ निश्चय मोक्ष का मार्ग, वही मोक्षमार्ग है, व्यवहार विकल्प मोक्षमार्ग है नहीं। और निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय उसके साधनेवाला कोई जीव पहला हुआ, ऐसा नहीं, अनादि है; और व्यक्तिगत लो, व्यक्तिगत लो तो इसने निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट किया, तब सादि हो गयी और उसे उस मार्ग का अन्त आ जाता है। क्योंकि मार्ग का अन्त आकर मार्ग का फल सिद्ध हो जाता है। केवलज्ञान प्रगटे, तब मार्ग का अन्त आ गया। मार्ग नहीं रहा, मार्गफल हो गया सादि-अनन्त। मोक्षमार्ग सादि-सान्त व्यक्ति को और यह सामान्य में अनादि-अनन्त और सादि-सान्त मोक्षमार्ग होकर, फिर मोक्ष प्रगट हुआ, वह सादि-अनन्त व्यक्तिगत। ऐसे अनादि-अनन्त सामान्य, संसार अनादि-अनन्त सामान्य। ऐसे आत्मा में द्रव्य और गुण से जो शक्तिरूप त्रिकाल है, उसका एक उपयोगरूप शुद्ध कारण। यहाँ कारण की व्याख्या आयी, इसलिए यह बात चलती है। यह कारणरूप जो पर्याय अनादि-अनन्त है... समझ में आया? यह विषय सूक्ष्म है, भाई! जरा ऐसे जैसे बोल लिये, वैसे आत्मा द्रव्य-गुण अनादि-अनन्त, वैसे उसका उपयोगरूप ध्रुव स्वभावरूप कारण चैतन्य अनुविधायी परिणाम, वह ध्रुव अंश विशेष, जैसे द्रव्य-गुण सामान्य है, वैसे ही विशेष, परन्तु तीनों होकर द्रव्यार्थिकनय-निश्चयनय का विषय, वह शुद्ध कारण चैतन्य अनुसारी परिणाम, वह भी अनादि का है, अनन्त काल जीवों को रहनेवाला है। वीरजीभाई! समझ में आया इसमें? समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : मोक्ष में....

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें है, सब जीव में है। किसी जीव में शुद्ध कारण उपयोग

नहीं, ऐसा जीव ही नहीं।

कहते हैं न, **और उसका कारण...** किसका कारण? यह परमस्वभावज्ञान उपयोगरूपी कार्य केवलज्ञान, उसका कारण। केवलज्ञान नया व्यक्तिगत। ऐसे सामान्य केवलज्ञान अनादि-अनन्त। केवलज्ञान का उपयोग जगत में अनादि-अनन्त। बराबर है? केवलज्ञान का उपयोग जगत में अनादि-अनन्त है। ओहोहो! ऐसे विभावरूप प्रगट उपयोग जो है, वह भी जगत में अनादि-अनन्त। विभावरूप मति-श्रुतादि जो विभावरूप उपयोग; कुमति, कुश्रुत, वह भी अनादि-अनन्त। जैसे केवलज्ञानरूपी उपयोग जैसे अनादि-अनन्त है सामान्य और सामान्य विभावरूप मति और श्रुत का कुज्ञान का उपयोग भी अनादि का सामान्य है, ऐसा भगवान एक-एक आत्मा में द्रव्य और गुण शुद्ध है, उसकी पर्याय द्वारा कारणस्वभाव उपयोगरूप परिणाम भी प्रत्येक जीव को अनादि-अनन्त है। समझ में आया? बहुत अलग बात है।

तो कहते हैं कि **उसका कारण...** किसका कारण? कि केवलज्ञानरूपी चैतन्य-अनुसरण कर होनेवाले परिणाम, उसका कारण। कारण तो अनादि है, परन्तु जब कारण की ओर का उपयोग, अपना वर्तमान उपयोग अन्तर विशेष कारण ध्रुव है, जिसकी पर्याय कारण की बात ली तो द्रव्य-गुण कारण उसमें आ गये। जिसका पर्यायरूप ध्रुव कारणस्वभाव परिणाम उपयोग, उसके गुण और द्रव्य, उसमें आ ही गये हैं। वह कारण परिणाम जो है, उसे कारण बनानेवाला, कारण है त्रिकाल। समझ में आया? कारण है त्रिकाल, उसे कार्य बनानेवाला नवीन होता है, एक व्यक्तिरूप से। समझ में आया? कारण, कारणरूप से तो त्रिकाल रहता है और कारण में से कार्य उपयोग सामान्यरूप से तो अनादि है, परन्तु व्यक्तिगत कारण को, कारण को कारण बनाकर, कारण को कारण बनाकर कारण में से कार्य प्रगट करे, वह व्यक्ति नयी होती है।

तो कहते हैं कि **उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित,...** परमपारिणामिक ज्ञानस्वभावभाव जो है, उसमें रहा हुआ त्रिकाल निरूपाधिरूप... त्रिकाली निरूपाधिरूप, ऐसा सहजज्ञान है। अर्थात् स्वाभाविक चैतन्य-अनुसरकर होनेवाला उपयोगरूप परिणाम, वह अनादि-अनन्त है। समझ में आया? यह विषय तो भाई! ऐसी चीज है कि ऐसे वस्तुस्वभाव है द्रव्य और गुण जैसे अभेद, उसकी एक समय की पर्याय

त्रिकाल अभेद है। अभेद करनेवाला जगे, तब उसे कारण का ख्याल आता है, वरना कारण का ख्याल नहीं आता, अर्थात् कारण नहीं, ऐसा नहीं। त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मूलजीभाई! यह मूलजीभाई मुश्किल से सुनने में रुके हैं आज में। कहो, समझ में आया? केवलज्ञान कार्य है, उसका कारण कौन? कि कारण तो त्रिकाल पड़ा है। ऐसे आत्मा द्रव्य, उसका ज्ञान चैतन्य गुण। चैतन्य के दो प्रकार—ज्ञान और दर्शन। उसे अनुसरकर—ज्ञान को अनुसरकर होनेवाला वर्तमान शुद्ध कारण उपयोगरूपी परिणाम, समझ में आया? वह भी त्रिकाल है। उसका लक्ष्य करके कार्य केवलज्ञानरूपी उपयोग प्रगट किया। वह कार्य किया, वह तो वह का वह कार्य शुद्ध जीव हुआ, कार्य शुद्धजीव हुआ, परन्तु कार्य शुद्ध जीव होने से पहले जो कारणशुद्धोपयोग की पर्याय त्रिकाल है, उसकी प्रतीति और ज्ञान और रमणता का अंश किया, वह नियमरूपी मोक्षमार्गरूपी कार्य किया। मोक्ष, नियममोक्षमार्ग, यह नियममोक्षमार्ग, परन्तु कार्यरूप जो केवलज्ञान जो कार्य है, वह तो इसका फल है। परन्तु वह नियमरूपी कार्य, यह तीसरी गाथा में आ गया है।

नियम, नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। नियम। इस नियम के दो प्रकार—एक शुद्ध चैतन्य परिणाम त्रिकाल, वह त्रिकाल, वह नियम पर्याय त्रिकाली और उसे अवलम्बकर वर्तमान प्रतीति, ज्ञान और रमणता का अंश निर्विकल्प प्रगटे, वह वर्तमान नियमरूपी कार्य, परन्तु वह नियमरूपी कार्य। वह शुद्ध कार्यजीव नहीं अभी, तथा शुद्ध कार्य केवलज्ञान उपयोगरूपी परिणाम नहीं, मोक्षमार्ग है। परन्तु मोक्षमार्ग में वह कारणरूप जो शुद्धोपयोगरूपी पर्याय है और वह सामान्य द्रव्य-गुणरूप भी त्रिकाल है और त्रिकाली तीनों की प्रतीति, ज्ञान और रमणता तीन के ओर की झुकाव की, उस झुकाव का अधूरा भाव, उसे नियमरूपी मोक्षमार्गरूपी कार्य कहते हैं और उसका पूर्ण फल हो जाये, केवलज्ञान के कारणरूपी केवलज्ञान कार्य के स्वभाव कारणरूपी उपयोग की पर्याय का अवलम्बन लेकर पूर्ण पर्याय हो जाये, उसे कार्यरूप केवलज्ञान कहते हैं। समझ में आया? अब ऐसा यह रिकॉर्डिंग में उतरा। कहो, समझ में आया? छोटाभाई! यहाँ तो किसी समय एकाध शब्द हो न, वह ख्याल में रहकर बात चलती होती है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग कोई परमपारिणामिकभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : परमपारिणामिकभाव की पर्याय। त्रिकाल निरुपाधि, जिसमें कर्म के निमित्त और निमित्त के अभाव की अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। केवलज्ञान में तो निमित्त के अभाव की अपेक्षा लागू पड़ती है, वर्तमान केवलज्ञान में निमित्त की अपेक्षा वर्तमान नहीं। परन्तु उसमें तो वर्तमान और पश्चात् कहीं भी निमित्त की अपेक्षा लागू न पड़े, ऐसा आत्मा चैतन्य, उसका चैतन्य गुण, उसके ज्ञानरूपी जो ज्ञान को अनुसरकर शुद्ध कारणस्वभाव उपयोगरूपी परिणाम त्रिकाल निरुपाधि है। वह पर्याय, वह गुण और द्रव्य तीन होकर द्रव्यार्थिकनय—निश्चयनय का विषय है। समझ में आया? ऐई! हिम्मतभाई!

इस नियमसार में नवीन अपूर्व बात भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने रखी है शास्त्र में। उसे पद्मप्रभमलधारिदेव ने स्पष्ट खुल्ली कर डाली है। महा अध्यात्म में मस्त जंगल में रहते मुनि, छठवें और सातवें गुणस्थान में झूलते और कहा है पहले कि यह टीका हम हमारे से नहीं करते, भाई! यह पहले आ गया है। हमको परम्परा से देव-गुरु आदि, आचार्यों आदि से हमको प्राप्त है। वह आया है पहले देखो, है न? देखो, तीसरे पृष्ठ पर है।

गुण के धारक गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से भले प्रकार व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन? समझ में आया? कहते हैं कि हमको गणधरों से परम्परा और श्रुतधर से परम्परा हमारे गुरु की ओर से इस शास्त्र की टीका का भाव भले प्रकार से हमको प्रगट करके समझाते हैं। भाई! उसमें यह बात आ गयी है या नहीं? व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का... पदार्थ के समूह का जो भाव कथन करने में... जो हमको व्यक्त गुरु ने किया हुआ है, उसमें हम करनेवाले मन्दबुद्धि वे कौन हैं? हमको परम्परा मिली है, परन्तु अभी हमारा मन आगम की ओर के घोलन में चला करता है, इससे तो आगम की पुष्टि के लिये यह टीका होती है, ऐसा बाद की गाथा में (कलश में) कहा न भाई! बाद में तो। फिर कहे, हमको तो मिला हुआ है, परन्तु क्यों अभी हमारा झुकाव वहाँ जाये? हमारा हृदय अभी इस काल में, वर्तमान काल में उस ओर ऐसे झुकाव हुआ करता है। इसका यह अर्थ, इसका यह अर्थ, इसका यह उपयोग, इसका यह भाव, ऐसा अभी

झुकाव हुआ करता है। इसलिए परमागम के सार की पुष्ट रुचि से बारम्बार अत्यन्त प्रेरित होता है। बारम्बार उपयोग उसकी ओर जाता है, उसका यह, उसका यह, उसका यह, गुरु ने ऐसा कहा था, उसका न्याय यह, ऐसी रुचि की प्रेरणा से यह टीका होती है। उसका भाव तो प्रगट अनादि हमको हमारे गुरु, बाद में हुए, उनकी परम्परा से हमको सब प्राप्त है। देखो, मैं यह एक-एक आत्मा ऐसा है। ऐसे आत्मा... आत्मा सब करे, ऐसा नहीं चलता।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! स्पष्ट कर डाली है। सुनो! समझ में आया?

आत्मा द्रव्य अनादि-अनन्त वस्तु, शक्तिवान वस्तु अनादि-अनन्त, उसकी ज्ञान, दर्शन आदि शक्तियाँ अनादि-अनन्त और उसका विशेष सामान्य का विशेष अंश... पर्यायनय से सब पलटन है तीनों ही, परन्तु सदृश्यपने द्रव्य, गुण और शुद्धकारणरूप पर्याय का उपयोग सदृश्यरूप से तीनों ध्रुव हैं। समझ में आया? ऐसा आत्मा, उसे कारण बनावे, वह कारण तो है। उसे कारण बनाकर पहले श्रद्धा, ज्ञान और रमणता स्वभावसन्मुख ऐसी शुद्धकारणपर्याय, जो चैतन्यरूपी समुद्र का ऊपर का तल। तल कहते हैं, समझ में आया? समझ में आया या नहीं? यह ऊपर की सपाटी। समुद्र की ऊपर की सपाटी होती है न, वैसे आत्मा शक्ति अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी अनन्त गुण शक्ति, उसका ऊपर का तल, वह शुद्धकारणपर्याय ऊपर की सपाटी, सामान्य स्वभाव की ऊपर की सपाटी का अंश जो शुद्धकारणज्ञानउपयोग, जो शुद्धकारणज्ञानरूपी ध्रुव उपयोग, उसके ऊपर की सपाटी, स्वभाव का ऊपर का तल बाहर पर्याय, शुद्धकारणविशेष। उसकी प्रतीति और ज्ञान और रमणता करने से मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है और पूर्ण रमणता करने से कार्यशुद्ध केवलज्ञान उपयोग होता है। इस कार्य का यह एक ही कारण है, दूसरा कोई कारण-फारण है नहीं। ऐसा करके नवीन जो सामान्यगुण का विशेष अंश भी सिद्ध किया और जगत के कारण के विवादों का भी वहाँ समाधान स्पष्टीकरण कर डाला। भायाणी! कारण का यह विवाद है या नहीं? कोई कहता है कि निमित्त कारण से होता है, कोई कहता है कि व्यवहार कुछ विकल्प, दया, दान, भक्ति आदि करें तो सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान होगा, कोई कहे कि वर्तमान पर्याय में से नयी पर्याय होगी,

प्रगट व्यक्त पर्याय में से नयी प्रगट-व्यक्त पर्याय होगी। सबका स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया ? क्या कहा ? चन्दुभाई !

परमपारिणामिक एक समय में शक्ति का पिण्ड प्राप्त है जो छोटी पीपर के एक-एक दाने में चौंसठ पहरी अर्थात् पूरी अर्थात् सोलह आना अर्थात् रुपया, जैसे चरपराहट भरी है; उसी प्रकार भगवान आत्मा में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण सोलह आना द्रव्य, सोलह आना गुण और सोलह आना शुद्धकारणपर्याय (मौजूद हैं)। समझ में आया ? यह प्राप्त में से प्राप्ति आती है; न हो, उसमें से नहीं। तो कहते हैं कि सामान्य है, सामान्य जो द्रव्य-गुण है, उसमें से प्रगट होता है, परन्तु उसमें प्रगटता का मूल कारण यहाँ नजदीक का शुद्धकारण ध्रुव पर्याय है। समझ में आया ? यह बहुत सूक्ष्म विषय है, भाई ! वस्तुदर्शन आत्मवस्तु किसे कहना ? आत्मा अखण्ड परिपूर्ण किसे कहना और उस आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता अन्दर में प्रगट हो, उसे मोक्षमार्ग कहा जाता है। इस नियमसार में यह अधिकार इसलिए लिया गया है। कहो, समझ में आया ?

उसका कारण... किसका कारण ? **कार्य तो सकल-विमल...** सकल-विमल, देखा ! (सर्वथा निर्मल) **केवलज्ञान है...** तब **उसका कारण भी...** सर्वथा निर्मल अप्रगट। भाई ! सकल-विमल, यहाँ कहा न मूल पाठ में। सकल-विमल प्रगट है इसलिए। अन्दर एक पर्याय जिसे आगे स्वरूपप्रत्यक्ष कहेंगे, स्वरूपप्रत्यक्ष कहेंगे। किसे ? उस त्रिकाल शुद्धकारणपर्याय का जो अंश है। ब्रह्मचारीजी ! नींद क्यों आती है ? ऐसा उपयोग तो पहले सुनने में आता है। यह भी आता है। समझ में आया ? सूक्ष्म पड़ता है, इसलिए कहते हैं कि सुनने को सरल मिलता नहीं, उसमें ऐसा होता है। अन्दर में समझ में आता है कुछ ? ऐई ! पारेख ! यहाँ क्या कहते हैं ? **और उसका कारण, परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक सहजज्ञान है।** क्या कहते हैं ? वह केवलज्ञानरूपी कार्य है, उसका अंश वर्तमान-वर्तमान अत्यन्त ध्रुव निर्मल... निर्मल... निर्मल... द्रव्य निर्मल, स्वभाववान निर्मल, स्वभाव निर्मल त्रिकाली और उसका अंश भी वर्तमान ध्रुव निर्मल है पारिणामिकभाव से रहा हुआ, उसमें एकाग्र हो, उसे केवलज्ञान प्रगट होता है। सब कारण का एक निचोड़ कर डाला। दुनिया कहे कि निमित्त कारण आवे तो ऐसा हो, ऐसा व्यवहार विकल्प उठे, भगवान सच्चे देव-गुरु-शास्त्र हो श्रवण

में, यह आगे लेंगे। आगे लेंगे शुद्धभाव अधिकार में। समकिति को समकित पाने में समकिति-निमित्त होता है। क्योंकि मोक्षमार्ग अधिकार... नियमसार मोक्षमार्ग के परिणाम, उन परिणाम में किसके परिणाम निमित्त हैं ? यह अधिकार लेने के लिये आगे शुद्धभाव अधिकार में टीका में लेंगे। यह बात इसमें एकदम नयी है और यही है वस्तु का स्वरूप। अन्यत्र ऐसा स्पष्ट कहीं है नहीं। वह भी पर्याय की बात है।

यहाँ तो कहना है कि जिसे यहाँ कारण परिणाम कहा, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं। आगे कहेंगे ११-१२वीं गाथा में स्वरूपप्रत्यक्ष। स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात् ? केवलज्ञान नहीं। वह द्रव्य त्रिकाल और गुण त्रिकाल की वर्तमान पर्याय केवलज्ञान का कारणरूप, केवलज्ञान का कारणरूप जो स्वरूपप्रत्यक्ष जिसे यहाँ सहजज्ञान उपयोगरूप परिणाम कहे, उसे आगे ११-१२वीं (गाथा) में स्वरूपप्रत्यक्ष कहेंगे। वह स्वरूपप्रत्यक्ष भी ज्ञान का वर्तमान अंशरूपी कारण उपयोग, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं। कहो, समझ में आया ? स्वरूपप्रत्यक्ष सुना है कहीं ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं, यह नहीं। तुम सुनो तो सही, नयी बात है। समझ में आया ? आगे आयेगा। यह तो यह और वह दोनों एक हैं, ऐसा अभी सिद्ध करना है। समझ में आया ? ११-१२वीं गाथा में आयेगा। स्वरूपप्रत्यक्ष नाम का केवलज्ञान, केवलज्ञानरूपी कार्य के कारणरूप द्रव्य-गुण के साथ रहा हुआ ज्ञान को अनुसरकर ध्रुवरूप अंश को कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहते हैं, उसे स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं, वह ध्रुव का अंश है। १२वीं गाथा में आयेगा। तीनों ध्रुव हैं। तीनों की पर्याय जो वर्तमान ध्रुव है, वह स्वरूपप्रत्यक्ष करनेवाली है, कहते हैं। ओहोहो! भाषा भी किस प्रकार की! कहो, समझ में आया ?

उसका कारण... अपने तो आज यह आया है न कारण का ? **परमपारिणामिकभाव से रहा हुआ...** भाव में रहा हुआ **त्रिकालनिरूपाधिरूप...** वे ऊपर परिणाम कहे, उसमें की जाति है यह। यह गुण की बात नहीं। त्रिकालनिरूपाधिरूप सहजज्ञानरूपी जो उपयोगरूप चैतन्य को अनुसरनेवाले परिणाम, उसे यहाँ कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहते हैं। उसे ११-१२वीं गाथा की टीका में स्वरूपप्रत्यक्ष उपयोग कहेंगे। प्रगट नहीं, अप्रगट।

त्रिकाल अप्रगटरूप ध्रुवपर्याय, वह सामान्य द्रव्य-गुण का एक अंश विशेष ऐसी एकरूप पर्याय न हो तो यह उपयोग जो तीन अज्ञान, चार ज्ञान और केवलज्ञान। तीन अज्ञान, चार ज्ञान और केवलज्ञान, वह तो एक रूप परिणाम नहीं हुए अनादि-अनन्त। क्या कहा? ज्ञानगुण की एक समय की प्रगट पर्याय संसार अपेक्षा से लो अनादि-अनन्त में तो मति-श्रुत और अवधि, वह अमुक पर्याय, पश्चात् मति-श्रुत अज्ञानरूप। मति, श्रुत, विभंग, पश्चात् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय यह सादि-सान्त, वे अनादि एक सान्त और केवलज्ञान सादि-अनन्त, यह तीन की विषमता हो गई, तीन में एकरूप परिणाम नहीं आये। क्या कहा, समझ में आया?

जैसे धर्मास्तिकाय आदि के त्रिकाल शुद्धरूप उत्पाद-व्ययरूप परिणाम एकरूप सदृश्य अनन्त गुण के हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल चार द्रव्य हैं, उनके अनन्त गुण और उनकी पर्याय का उत्पाद-व्ययपना सदृश्य अनादि-अनन्त एकरूप है, उसमें कहीं उदय और विषम तथा हीन और अधिक नहीं; उसी प्रकार आत्मा में प्रगटरूप ज्ञान की पर्याय की यदि अवस्था लो तो मति-श्रुत और विभंग, उसमें फेरफार का पार नहीं। पश्चात् चार ज्ञान, उसमें भी फेरफार का पार नहीं। केवलज्ञान, वह सादि-अनन्त एकरूप, परन्तु वह सादि-अनन्त एक खण्ड हो गया। तो उसमें आत्मा द्रव्य चैतन्य, उसका चैतन्य उसका ज्ञानगुण, उसकी पर्याय एकरूप जैसे एक गुण में एकरूप अनादि-अनन्त चार द्रव्यों में है, ऐसी इसमें एकरूप पर्याय नहीं रही। समझ में आया? चन्दुभाई! वे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, काल आदि एकरूप उत्पाद-व्यय पारिणामिक की पर्याय त्रिकाल, पारिणामिक की पर्याय त्रिकाल। चार द्रव्यों में प्रगटरूप उत्पाद-व्यय पारिणामिकभाव की पर्याय, स्वभावभाव की पर्याय, वह स्वभावभाव की पर्याय अनादि-अनन्त है। और आत्मा ज्ञानस्वभाव का धारक आत्मा, उसकी प्रगट पर्याय मति, श्रुत, विभंग; मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय तथा केवल (ज्ञान) एकरूप अनादि-अनन्त नहीं आयी। इसलिए यह सब विषय व्यवहारनय का हो गया। मति-श्रुत, विभंग, चार ज्ञान और केवल (ज्ञान) अनादि-अनन्त की अपेक्षा से व्यवहारनय का विषय हो गया, सापेक्ष पर्याय हो गयी। ज्ञान की पर्याय प्रगट, प्रगट के भेद, वह सब सापेक्ष हुई। अन्दर में आत्मा वस्तु का चैतन्य गुण का ज्ञान अनुसार पर्याय हो, वह एक निरपेक्ष पर्याय है। ...भाई!

देखो, इसके इतने बोल लागू पड़े कि एक तो परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक सहजज्ञान... रूप ध्रुव पर्याय, कारणपर्याय ज्ञान की, केवलज्ञान के कार्य की। स्वरूपप्रत्यक्ष। समझ में आया? और एकरूप त्रिकाली पर्याय अनादि-अनन्त। तब वह द्रव्य और गुण और एक समय की पर्याय त्रिकाल, तब निश्चयनय का पूर्ण विषय होता है। समझ में आया? ओहोहो! यह तो अध्यात्म का अन्दर का रहस्य है, भाई! इसे यह समझे बिना... अभी यह तो इन्होंने खुल्ला रख दिया नियमसार टीकाकार ने। जो दूसरे में कहीं गुप्तरूप से हो, खुल्ला नहीं। यह तो ९०वीं गाथा समयसार की है, उसमें अर्थ में तो यह कहा, भाई! वह उपयोग है न तीनरूप से परिणमता है। शुद्ध निरंजन अनादि-अनन्त उसमें। टीका में तो प्रयोग किया है कि 'चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोगः' वहाँ ९०वीं गाथा में चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग, ऐसा प्रयोग किया है और 'उपयोग में उपयोग है' जो वहाँ संवर में (गाथा-१८१ से १८३) वहाँ तो 'शुद्धोपयोग, वह आत्मा' ऐसा करके प्रयोग किया है। परन्तु यहाँ जो कर्ता-कर्म में तो ९०वीं गाथा ली है, उसमें गूढ़ में पड़ा है कुछ। वहाँ उपयोग की व्याख्या करते हुए 'चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोगः' ऐसा जयसेनाचार्य की टीका में यह उपयोग की व्याख्या, वह व्याख्या यहाँ है। यहाँ स्पष्ट है, वहाँ गूढ़ पड़ा है। क्योंकि कर्ताकर्म है न! इसलिए परिणाम की तो व्याख्या है वहाँ। परन्तु परिणाम में जरा गुप्त पड़ा है। यहाँ खुल्ला रख दिया है आचार्य ने, मुनि ने कि भगवान आत्मा, वह चैतन्यस्वभाव उसका त्रिकाल, उसे अनुसरकर होनेवाले परिणाम, उन परिणाम के दो भेद—ज्ञानरूप परिणाम और दर्शनरूप परिणाम। उन ज्ञानरूप परिणाम के दो भेद—स्वभावरूप ज्ञानपरिणाम और विभावरूप ज्ञानपरिणाम। स्वभावरूप ज्ञानपरिणाम के दो भेद—कार्यरूप स्वभावज्ञान उपयोग परिणाम और कारणरूप स्वभावज्ञान उपयोगरूप परिणाम कि जिसे प्रत्यक्ष कहते हैं, जिसे त्रिकाली एकरूप कहते हैं, जिसे कारणपर्याय केवलज्ञान के कारणरूप ज्ञान की पर्याय कहते हैं। कहो, समझ में आया? ऐ दास!

परम-पारिणामिकभाव से स्थित, त्रिकाल निरुपाधिक... जिसे कोई उपाधि थी और गई, ऐसा भी (नहीं)। उपाधि थी और गई, ऐसा नहीं। आत्मा का ऐसा ही कोई शुद्धकारणरूप ज्ञानस्वभावरूप उपयोग जो पर्याय, जो ध्रुव, जो उत्पाद-व्यय की

अपेक्षारहित, तथापि पारिणामिकभाव की ज्ञानगुण की, ज्ञान की पर्यायरूप परिणति, उसे यहाँ कारणस्वभाव उपयोग कहा है। कहो, समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म ! आँखों से सूझे नहीं, बाहर की आँखों से सूझे, ऐसा नहीं। लो, यह बात कारण उपयोग की कही। इतनी हुई। उसमें उन चार ज्ञान की व्याख्या में टीका में नहीं आया। वह पाठ में लेंगे। पाठ में दोनों लेंगे परन्तु...

यहाँ तो मुझे दूसरा कहना है कि यह केवलज्ञान के कारणरूप और केवलज्ञान कार्यरूप-स्वभाव के दो भेद किये और विभाव के दो भेद टीका में नहीं किये। विभाव के दो भेद आगे की गाथाओं में आयेंगे। इन्होंने तो केवल विभावरूप ज्ञान तीन हैं, इतना टीका में कहा है। वह बीच का मार्ग है, मोक्षमार्ग जो चार ज्ञानवाला, उसकी व्याख्या टीका में नहीं की। क्या कहता हूँ, समझ में आया इसमें ? वह जोर देना है न ! कार्यज्ञान और कारण का। भाई ! कार्यज्ञानरूप केवलज्ञानरूपी कार्य और उसका कारण शुद्धकारण, इन दो की बात करते हुए वे चार ज्ञान बीच में प्रगटे, वे गाथा में कहेंगे, टीका में नहीं कहा। मोक्षमार्ग को कहा, परन्तु केवलज्ञान कार्य, उसका कारण कहा और उसे नहीं समझनेवाले ऐसे तीन अज्ञान की व्याख्या की।

केवल विभावरूप ज्ञान, तीन हैं... केवल विभावरूप ज्ञान तीन हैं, वे प्रगटरूप। यह टीकाकार की टीका करने में भी कुछ मर्म है, देखो, मोहनभाई ! समझ में आया या नहीं ? कहाँ गये चन्दुभाई ? क्या है यह ? देखो, इस टीका में वे चार ज्ञान नहीं लिये। केवल विभाव की बात ली बतलाने को कि अनादि के **कुमति, कुश्रुत और विभंग**। तीन थे। तीन थे इतना। परन्तु कारण को अवलम्बन किया, कार्य प्रगट होता ही है। इसलिए बीच की दशा की व्याख्या टीका में नहीं रखी, बाद की गाथा में रखेंगे। परन्तु इसमें है, इसमें भाई ने टीका की है न। मैंने कहाँ टीका की है गुजराती ? गुजराती तो हिम्मतभाई ने की है न। इसलिए जरा हिम्मतभाई के सामने देखना पड़ता है न मुझे, देखो न कि भाई ! देखो, इसमें यह चार बोल नहीं। सही कि नहीं ? मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय जो विभावज्ञान के दो भेद, केवल विभाव और सम्यक् विभाव। उसमें सम्यक् विभाव के भेद टीकाकार ने नहीं लिये, भाई ! मोक्षमार्ग की बात नहीं ली। यह तो वह कारण और कार्य और यह विपरीत था अनादि का तीन—मति, श्रुत और विभंग, उसे स्थापन किया।

वह था। तू कहे कि नहीं, ऐसा नहीं। अज्ञानी अनादि का पुण्य-पाप, विकल्प और निमित्त का आश्रय करे और स्वभाव का आश्रय नहीं करता, उसे कुमति, कुश्रुत और विभंग अनादि के, भले विभंग किसी समय न हो, परन्तु अनादि के अनन्त बार अनन्त जीवों को आ गये, उनकी व्याख्या टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। कहो, समझ में आया ?

इस उपयोग के भेदरूप ज्ञान के भेद,... अब ११वीं-१२वीं की व्याख्या करेंगे। इस उपयोग... जो कहा गया है, उसके भेदरूप ज्ञान के भेद, अब कहे जानेवाले दो सूत्रों द्वारा (११ और १२वीं गाथा द्वारा) जानना। यह भावार्थ की बात है, वह सब वास्तव में अपने अर्थ में आ गयी यह सब। भावार्थ का पाठ छोड़ देते हैं क्योंकि यह बात आ गयी है।

[अब, दसवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]

(मालिनी)

अथ सकलजिनोक्तज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा
परिहृतपरभावः स्वस्वरूपे स्थितो यः।
सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ॥१७॥

इसके पहले नीचे की नोट लेते हैं इसके साथ सम्बन्धवाली है इसलिए। सहजज्ञानोपयोग, परमपारिणामिकभाव से स्थित है... सहजज्ञानोपयोग जो कहा गया है, वह परमपारिणामिकभाव में त्रिकाल ध्रुवरूप से स्थित है। तथा त्रिकाल उपाधिरहित है, उसमें से... तीनों काल उपाधिरहित है। उसमें से (सर्व को जाननेवाला) केवलज्ञानोपयोग प्रगट होता है। इसलिए सहजज्ञानोपयोग, कारण है और केवलज्ञानोपयोग, कार्य है। ऐसा होने से सहजज्ञानोपयोग को कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है और केवलज्ञानोपयोग को कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहा जाता है।

अब कहते हैं जिनेन्द्रकथित... ऐसी भाषा रखी। किसलिए? सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव के अतिरिक्त ऐसे तत्त्व को तीन काल, तीन लोक में कोई जान नहीं सकता।

एक समय में जिन्हें, देखो, केवलज्ञान जिन्हें प्रगट हुआ है, तीन काल-तीन लोक का पता जिन्होंने केवलज्ञान में स्व में प्राप्त कर लिया है। स्व में प्राप्त कर लिया है, हों! एक समय का ज्ञानोपयोग पूर्ण निर्मल, जिसका ज्ञानस्वभाव, उसका उपयोग अपूर्ण रहे? पूर्ण हुआ और जानना बाकी रहे? कहते हैं कि यह जिनेन्द्रकथित भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव तीर्थकरदेव ने कहे हुए ज्ञान के भेद हैं ये। समझ में आया? ये ज्ञान के भेद कोई कल्पना से किसी ने कहे हुए नहीं हैं। वस्तुस्वभाव में है, जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित हैं। अन्यत्र यह बात तीन काल में अज्ञानी के घर में हो सकती नहीं।

जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर,... समस्त ज्ञान के भेद अर्थात् यह प्रकार जानकर, जो ऊपर बहुत कहे थे वे। **जो पुरुष परभावों का परिहार करके,...** परभाव विकल्प और पुण्य और व्यवहाररत्नत्रय का राग तथा निमित्त का आश्रय छोड़कर और विकल्प के परभाव को परिहारकर। परिहार, यह उपदेश के कथन में यह स्वभाव में एकाग्र होने पर व्यवहार परिहार हो जाता है। यहाँ तो विशेष वजन दिया कि ओहो! ऐसे ज्ञान और दर्शन के और उनके स्वभाव और विभाव के भेद और यह प्रकार—स्वरूप न हो तो वस्तु किसी प्रकार से सिद्ध होती ही नहीं। आत्मा किसी प्रकार से साबित नहीं होता कि आत्मा है, उसका ज्ञान स्वभाव है जाननेवाला, उसकी प्रगट पर्याय के इतने भेद मति, श्रुत आदि, अवधि और चार ज्ञान और केवलज्ञान आदि, इन भेद में अभेदरूप केवलज्ञान की जो ध्रुवपर्याय इस प्रकार केवलज्ञानी के अतिरिक्त कहीं होता नहीं। वस्तु में यदि ऐसा न हो तो वह वस्तु नहीं हो सकती। वस्तु कहो, उसका स्वभाव कहो और उसकी पर्याय प्रगट अव्यवस्थित रहे और स्व आकारी पर्याय एक त्रिकाल न हो और अव्यवस्थित पर्याय में इतने भेद अज्ञान के, फिर सम्यग्ज्ञान के, फिर पूर्ण ज्ञान के, तो उसमें बाधकपना, साधकपना और सिद्धपना भी साबित नहीं होता। भाई! समझ में आया?

इसलिए कहते हैं **जिनेन्द्रकथित...** सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ, तू आत्मा है, आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, ज्ञान की प्रगट पर्याय तू देख, तुझे खबर पड़ती नहीं? प्रगट पर्याय में हीनाधिकता है, हीनाधिकता के भेदों के प्रकार की तुझे खबर है कि हीनाधिकता के विपरीत में मति, श्रुत और विभंग, हीनाधिकता के फेरफार

में साधक में भान में चार ज्ञान और पूर्ण में केवलज्ञान। अव्यवस्थित परिणाम के ऐसे भेदज्ञान की पर्याय के और उसकी व्यवस्थित एक समय की पर्याय, ऐसा गुण, ऐसी एक समय की पर्याय ध्रुव, उसके अवलम्बन से निकले, इसलिए एक समय की पर्याय यह। ऐसे भेद जिनेन्द्रकथित हैं। इसके अतिरिक्त तीन काल-तीन लोक में सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई इस बात को जानता नहीं, समझता नहीं और उसे धर्म होता नहीं। समझ में आया? सर्वज्ञ का आश्रय लेकर जो यह बात समझे, उसे यह बात समझ में आये, ऐसी है।

जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर, जो पुरुष परभावों का परिहार करके, निजस्वरूप में रहते हुए,... देखो, इसमें सब आ गया। यहाँ तो परभाव और परिहारी आया था न, भाई! कि अज्ञान को छोड़कर, स्वभाव में स्थिर रहा हुआ। स्थिर रहते हुए,... ... स्वभाव और चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है... गहरा-गहरा अन्दर पर्याय में शुद्ध कारणपर्याय को अवलम्ब जाता है। गहरा उतर जाता है,... स्वभाव में। वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है... देखो, केवलज्ञान ले लिया। देखो, एक श्लोक में तो कितना लिया! जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को... इस प्रकार से न हो तो किसी प्रकार से आत्मा साबित नहीं होता। उसे जानकर, जो पुरुष परभावों का परिहार करके,... मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान आदि पर का भाव, उसकी ओर से लक्ष्य छोड़कर निजस्वरूप में रहते हुए,... अपना ज्ञानानन्दस्वरूप में स्थिर रहे, उसमें निर्मल पर्याय सम्यग्ज्ञान की मति-श्रुत आदि की आयी। शीघ्र चैतन्य-चमत्कारमात्र तत्त्व में... द्रव्य-गुण-पर्याय शुद्ध ऐसे चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है... एकाग्र हो जाता है, गहरा उतर जाता है,... मोक्षमार्ग। और वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी... परमलक्ष्मीरूपी स्त्री जो मोक्षरूपी लक्ष्मी, वह स्त्री, उसका वल्लभ होता है... अर्थात् कि उसकी मुक्ति की पर्याय कभी अलग नहीं पड़ती। उसे मुक्त सादि-अनन्त इस प्रमाण हुआ करता है। यह १०वीं गाथा का कारण और कार्य तथा फल सब एक श्लोक में वापस संक्षिप्त में रख दिया। कहो, समझ में आया? अब ११ और १२ (गाथा)।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



पौष शुक्ल ११, दिनांक - ०४-०१-१९५५
गाथा-११-१२, प्रवचन नं. ४११

यह जीव अधिकार चलता है। यहाँ उस जीव के उपयोग की व्याख्या चलती है।
११ और १२वीं गाथा है।

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणं ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं ॥११ ॥
सण्णाणं चउभेयं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं ति-वियप्पं मदियाई भेददो चेव ॥१२ ॥

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल वह स्वाभाविक ज्ञान है।
दो विधि विभाविक-ज्ञान सम्यक् और मिथ्याज्ञान है ॥११ ॥
मति, श्रुत, अवधि, अरु मनःपर्यय चार सम्यग्ज्ञान हैं।
अरु कुमति, कुश्रुत, कुअवधि ये तीन भेद मिथ्याज्ञान हैं ॥१२ ॥

देखो, यह आत्मा अनादि-अनन्त वस्तु है, उसमें उपयोग भी एक अनादि-अनन्त उसका गुण और एक पर्याय है, उसमें से प्रगट होती पर्याय, उसे भी उपयोग कहते हैं। इन सबकी व्याख्या इसमें है। पहले बात हो गई है, उसका यह विस्तार से अब ज्ञान के भेदों का वर्णन विशेष करते हैं। आत्मा सामान्यरूप से अर्थात् सदृश्यशक्ति और उसका गुण, जो सदृश्यशक्तिवान आत्मा और उसका ज्ञान शक्तिस्वभाव और उसकी प्रगट पर्याय और अप्रगट पर्याय, इन सबको यहाँ ज्ञानोपयोगरूप से कहा गया है। इस ज्ञानोपयोग के भेद करते हैं।

जो (ज्ञान) केवल, इन्द्रियरहित... जो ज्ञान केवल इन्द्रिय के अवलम्बन और इन्द्रियरहित है असहाय है,... जिसे इन्द्रिय की सहायता नहीं वह स्वभावज्ञान है;... उसके भेद टीका में करेंगे। सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानरूप भेद किये जाने पर, विभावज्ञान दो प्रकार का है। यह है वे दोनों विभावज्ञान, परन्तु उनके दो प्रकार हैं—सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानरूप भेद किये जाने पर विभाव के दो प्रकार हैं। सम्यग्ज्ञान, चार भेदवाला

है... यह विभाव का पहला भेद, विभावज्ञान का पहला भेद। विभाव क्यों कहा? कर्म का उसमें निमित्त है चार ज्ञान के समय, इसलिए उसे विभाव कहा है और तीन ज्ञान तो विपरीत हैं, और उसमें कर्म का भी निमित्त है, इसलिए तीन अज्ञान को भी विभावज्ञान कहा है। इस विभावज्ञान के दो भेदों में पहला **सम्यग्ज्ञान, चार भेदवाला है...** वह चार भेद **मति, श्रुत, अवधि तथा मनःपर्यय; और...** इस विभाव का एक **अज्ञान...** भेद। वह सम्यग्ज्ञान और यह अज्ञान। मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं। (कु) मति, कुश्रुत और कुअवधि, ऐसे तीन भेदवाला है।

यहाँ (इन गाथाओं में) ज्ञान के भेद... ज्ञान के प्रकार, ज्ञानरूपी उपयोग के अनेकता के भेद क्या हैं, उनका यहाँ वर्णन इसमें है। अब पहली व्याख्या जो है इन्द्रियरहित और असहाय स्वभावज्ञान की व्याख्या करते हैं। जो आत्मा में स्वाभाविकज्ञान के दो प्रकार हैं, उनकी दोनों की साथ में व्याख्या पहली है। स्वाभाविकज्ञान एक त्रिकाल कारणरूप उपयोग स्वाभाविकज्ञान और उसके आश्रय से होता स्वाभाविक केवलज्ञान, इन दोनों को यहाँ स्वाभाविक ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? **जो उपाधिरहित स्वरूपवाला होने से केवल है;**... अकेला है। **निर्भेल...** मिलावट बिना का **अकेला, शुद्ध...** है। इसके दो भेद करेंगे, प्रत्येक के, हों! **केवल...** अकेला। भगवान आत्मा द्रव्य से और गुण से सामान्य से तो शुद्ध है, परन्तु उसकी ज्ञान की ध्रुवपर्याय भी शुद्ध है। उसे भी केवल उपाधि बिना के स्वरूप की ध्रुवपर्याय को ज्ञान के स्वभाव का उपयोग कहा है। समझ में आया?

आवरणरहित स्वरूपवाला होने से... आवरणरहित स्वरूपवाला होने से **क्रम, इन्द्रिय और (देश-कालादि) व्यवधानरहित है;**... देश-काल अर्थात् यह क्षेत्र और इस काल को न जाने, इस क्षेत्र और इस काल में उसे आड़ आवे या उसे पर्दा पड़े या अन्तर पड़े या अन्तराल पड़े या विघ्न हो, ऐसा यह स्वाभाविक ज्ञान नहीं है। इस स्वाभाविक ज्ञान के दो प्रकार करेंगे। त्रिकाल द्रव्य आत्मा, उसका त्रिकाल ज्ञानगुण स्वभाव और उसकी वर्तमान गुण का विशेष अंश ध्रुवरूप पर्याय और उसका प्रगटरूप केवलज्ञान पर्याय। वह केवलज्ञान प्रगटरूप पर्याय और अप्रगटरूप केवलज्ञान, ज्ञान के स्वभाव कारण उपयोग, दोनों को स्वभाव उपयोग यहाँ कहा जाता है। समझ में आया? वह

व्यवधानरहित... एक-एक वस्तु में नहीं व्यापता होने से स्वाभाविकज्ञानोपयोग चैतन्य को अनुसरकर, ज्ञानरूप चैतन्य के जो परिणाम, जो स्वभावरूप त्रिकाल ध्रुव और प्रगटरूप जो सादि-अनन्त केवलज्ञान, वे दोनों एक-एक-वस्तु में (क्रम से) नहीं व्यापता होने से (समस्त वस्तुओं में व्याप्त होता है), इसलिए असहाय है, ... भारी व्याख्या सूक्ष्म, भाई! वह असहाय है। इन्द्रिय कहा न पहले कि उपाधिरहित होने से केवल है। केवल अर्थात् मिलावटरहित, आवरणरहित स्वरूपवाला होने से क्रम, इन्द्रिय और (देश-कालादि)... उसमें आते नहीं। वह ज्ञान क्रम-क्रम से जाने, इन्द्रिय के अवलम्बन से जाने और देश-काल / क्षेत्र-काल का उसे अन्तराय पड़े कि इतना क्षेत्र-काल न जाने, ऐसा उसमें है नहीं।

ऐसा वह एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता... व्यवधानरहित है, ऐसा कहकर वापस अस्ति कहते हैं। एक-एक वस्तु में व्याप्त नहीं होता... नहीं पसरता होने से, एक-एक वस्तु में नहीं अटकता होने से वह स्वभावज्ञान उपयोगपरिणाम, वह असहाय है। स्वभावज्ञान उपयोग, वह असहाय है। उस स्वभावज्ञान उपयोग में वह कार्यस्वभावज्ञान है। देखो, वह कार्यस्वभावज्ञान है। यह ऊपर कहा वह। केवल आवरणरहित होने से क्रमरहित। क्रम-क्रम से जाने, वह केवलज्ञान नहीं कहलाता। इन्द्रिय और इन्द्रिय के अवलम्बन से जाने, वह केवलज्ञान नहीं कहलाता। क्षेत्र और कालादि का अन्तरायरूप से कि अमुक क्षेत्र को पहले जाने और अमुक क्षेत्र को बाद में जाने, फिर भूतकाल को पहले जाने और भविष्य काल को पर्याय हो जगत की, तब जाने, ऐसा केवलज्ञान में अन्तराल नहीं होता। कितने ही कहते हैं कि भाई! केवलज्ञान में तो एक समय में तीन काल-लोक जाने, तब तो सब पर्यायें हुई, होनेवाली, उन्हें जाने, परन्तु अभी हुई नहीं, वह किस प्रकार जाने? परन्तु जब उसकी पर्याय हो, तब केवलज्ञान जाने। वे केवलज्ञान को समझते नहीं। कहते हैं या नहीं? मैं जैसा कार्य करूँगा, वैसा केवलज्ञान देखेगा। क्या तुझे केवलज्ञान की श्रद्धा भी नहीं? और पदार्थ की अवस्था क्रमबद्ध जिस काल में जो होनेवाली है, वह होनेवाली है, उसका ज्ञान केवलज्ञान में क्या पहले से नहीं आता? यह कहते हैं।

क्षेत्र और काल का भेद कि प्रथम क्षेत्र ऊर्ध्व जाने या पहले मध्य जाने या अधो

जाने या पहले लोक जाने या फिर अलोक जाने, पहले भूतकाल जाने और फिर भविष्यकाल जाने, जब-जब काल की पर्याय भविष्य में परद्रव्य की होनेवाली, होती है तब केवली जाने, वह केवली नहीं हो सकते। पूछते हैं न कितने ही ? क्या है ? जो पर्याय हुई नहीं और होगी, होगी तब जाने, वह केवलज्ञान नहीं। वह केवलज्ञान अन्तरायवाला, आड़वाला, विघ्नवाला, पर्देवाला हो गया। समझ में आया ? आड़ समझते हो आड़ ? बीच में विघ्न हो गया। केवलज्ञान तो एक समय के अन्दर तीन काल, तीन लोक में हुई, है और होगी भविष्य में। होने से पहले पर्याय और होगी इस काल में, वैसे ज्ञान में ज्ञात हो जाती है, वैसे ज्ञान को असहाय कहते हैं। ऐसा केवलज्ञान मानने से ऐसा हो जाता है कि यह केवलज्ञान प्रमाण जहाँ पर्याय पर में हो तो वह पर्याय केवलज्ञान के आधीन है ?—नहीं। केवलज्ञान के आधीन वह पर्याय नहीं। तो आधीन नहीं तो वह पर्याय हो, तब केवली जाने ?—कि नहीं। होने से पहले किस समय में होगी, उसे केवली जानते हैं। तो फिर केवलज्ञानी का निर्णय करने से तो पुरुषार्थ का अवकाश रहता नहीं। क्योंकि केवलज्ञान प्रमाण भले उसके आधीन होकर नहीं, परन्तु अपने काल में, उसी समय में वही पर्याय होवे तो फेरफार करने का तो अवकाश रहता नहीं। सेठी ! किसका फेरफार करना है तुझे ? केवलज्ञान इन्द्रिय, क्रम और देश-काल के अन्तर और विघ्नरहित है, ऐसा जिसने केवलज्ञान का वर्तमान पर्याय में निर्णय किया, निर्णय किया, उसे अपना राग या पर का कुछ फेरफार करने का रहता नहीं। वह तो ज्ञाता-दृष्टा हो गया। समझ में आया ?

तो कहते हैं... इतने तो विशेषण दिये। यह दोनों को लागू पड़ेंगे, हों ! अभी व्याख्या यह। वह असहायज्ञान केवलज्ञान है। वह कार्यस्वभाव ज्ञान है, कार्यस्वभावज्ञान, केवलज्ञान, कार्यस्वभावज्ञान। नहीं था और पर्याय में प्रगट हुआ, इसलिए उसे कार्यस्वभावज्ञान कहते हैं। अब वह कार्य प्रगट हुआ किसके कारण से ? **कारणज्ञान भी वैसा ही है।** भाषा देखो ! यह केवलज्ञान का कारण कोई व्यवहाररत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय (नहीं)। निश्चयरत्नत्रय नहीं केवलज्ञान का कारण ? केवलज्ञान कार्य जो आत्मा में उत्पन्न होता है, उसका कारण कोई निमित्त नहीं, व्यवहाररत्नत्रय विकल्प भी कारण नहीं, निश्चयरत्नत्रय निर्विकल्प पर्याय, वह भी कारण नहीं। वास्तव में कारण, **कारणज्ञान**

भी वैसा ही है। आत्मा में ज्ञानगुण की वर्तमान ध्रुव उपयोगरूपी पर्याय, वह केवलज्ञान का कारण है, वह केवलज्ञान का हेतु और कारण है। उस कारण के अवलम्बन से केवलज्ञान होता है। दूसरे किसी कारण के अवलम्बन से केवलज्ञान किसी जीव को हुआ, होता और होगा, ऐसा बनता नहीं। ओहो! समझ में आया ?

अब **कारणज्ञान भी वैसा ही है।** कौनसा कारणज्ञान ? यह उपयोग की बात चलती है। आत्मा वस्तु, उसकी ज्ञानशक्ति, उसका वर्तमान पर्यायरूप उपयोग, वह शक्ति, वह कारणज्ञान भी केवल, केवल अर्थात् किसी के मिलावट बिना का शुद्ध है। देखो, शुद्ध उपयोगरूपी पर्याय ध्रुव, वह भी केवल मिलावट बिना की है। भेळसेळ समझते हो ? मिलावट-मिलावट। उस कारणज्ञान की उपयोगरूपी पर्याय भी क्रमरहित है। उसमें क्रम नहीं कि क्रम-क्रम से वह अपने अन्तर के गुणों को जाने, ऐसा उसमें क्रम नहीं। उसे इन्द्रिय का अवलम्बन नहीं। अन्दर कारणज्ञान ध्रुव उपयोगरूपी पर्याय आत्मा त्रिकाल है, उसके ज्ञान की वर्तमान शुद्ध अंशरूप पर्याय, उसे इन्द्रिय का अवलम्बन नहीं, उसे क्षेत्र-काल का व्यवधान अर्थात् विघ्न और अन्तराय नहीं और कोई क्षेत्र-काल उसके वह वर्तमान अंश हैं, वह अन्तर के गुणों को जानने की सामर्थ्यवाला है, उसे तो इन्द्रिय, इन्द्रिय निगोद की इन्द्रिय हो, तो भी उसे विघ्न करे, ऐसी सामर्थ्य किसी इन्द्रिय में नहीं, किसी क्षेत्र में नहीं, किसी काल में नहीं। ऐसी आत्मा वस्तु है, उसके ज्ञानगुण का वर्तमान ध्रुव अंशरूपी कारणस्वभाव उपयोग, वह भी कार्यस्वभावज्ञान उपयोग के जैसा ही है। गजब भाषा, भाई! समझ में आया ?

मुमुक्षु : केवल कहने से दूसरे धर्म आते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं। यहाँ तो कारण और कार्य (की) बात करनी है न!

आत्मा वस्तु है अनादि-अनन्त। एक-एक आत्मा, उसका जो ज्ञानगुण है, गुण जो शक्ति स्वभाव, उसका वर्तमान उपयोगरूपी परिणाम, वर्तमान उपयोगरूपी पर्याय, वह ध्रुव है, ध्रुव है, अनादि-अनन्त है। उस ध्रुव पर्याय के अवलम्बन से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। ध्रुव पर्याय के अवलम्बन के अतिरिक्त केवलज्ञान प्रगट नहीं होता। कहो, समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात है। आत्मा एक समय में पूर्ण-पूर्ण शुद्ध ज्ञानस्वभाव है। सेठी! ज्ञानस्वभाव की एक समय की पर्याय जो उपयोगरूप ज्ञान की

पर्यायरूप ध्रुवपर्याय, ध्रुवपर्याय, निश्चलपर्याय, अविचलपर्याय, वह कारणरूप जो ज्ञानोपयोग... समझ में आया ? वह कारणरूप ज्ञानोपयोग, वह भी असहाय है, इन्द्रिय के अवलम्बनरहित है, कर्मरहित है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात है। गुजराती समझते हो या नहीं ? नहीं समझते। थोड़ा-थोड़ा। यह विषय बहुत सूक्ष्म है। बहुत सूक्ष्म विषय है और उसमें तुम पहली बार आये हो। क्या कहते हैं, समझ में आया ? कहो, सेठी ! समझने की बात है।

देखो, नियमसार की ११-१२वीं गाथा चलती है। तो कहते हैं कि भगवान आत्मा, भगवान यह आत्मा, हों ! दूसरे भगवान उनमें—भगवान में रहे। इस आत्मा में जो ज्ञानगुण त्रिकाल ध्रुव है, त्रिकाल ध्रुव की वर्तमान ध्रुव पर्याय, वह ध्रुव पर्याय जिसे कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहते हैं। समझ में आया ? आत्मा वस्तु है, उसका त्रिकाल ज्ञानगुण है, उसकी वर्तमान ध्रुव पर्याय कारणस्वभावज्ञानोपयोग, कारणस्वभावज्ञानोपयोग के अवलम्बन से, कार्यस्वभावज्ञानोपयोग केवलज्ञान होता है। निमित्त के अवलम्बन से केवलज्ञान कभी नहीं होता, कभी व्यवहार, विकल्प, दया, दान, भक्ति के अवलम्बन से केवलज्ञान नहीं होता, कभी निश्चयरत्नत्रय के कारण से भी केवलज्ञान होता है, ऐसा कहना वह व्यवहार है। क्या कहा ? निश्चयरत्नत्रय से केवलज्ञान हो, यह व्यवहार है। पर्याय है। पर्याय में से पर्याय नहीं आती। समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में जो वस्तु त्रिकाल अनादि-अनन्त अन्तर सृष्टि, अन्तर स्वभावसृष्टि स्वभावसृष्टि अनन्त गुण का पिण्ड है। उसकी वर्तमान पर्याय ध्रुव, वह उसकी पर्याय की सृष्टि है। आत्मा में कारणस्वभावज्ञानोपयोग है, उस स्वभाव के अवलम्बन से स्वभाव की विशेष पर्याय ध्रुव कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग में से कार्यस्वभावज्ञानोपयोग होता है। समझ में आया ? कारणज्ञान भी वैसा ही है। वैसा ही अर्थात् जैसा केवलज्ञान एक समय में इन्द्रियरहित, क्रमरहित, व्यवधान, अन्तररहित और केवल—मिलावट, दूसरे की मिलावटरहित ऐसी केवलज्ञान पर्याय कार्यस्वभाव-ज्ञानोपयोग है। कार्यस्वभावज्ञानोपयोग का कारण आत्मा में शुद्ध चिदानन्द ज्ञानशक्ति में और उसकी पर्याय में जो केवलज्ञान के कारणरूप स्वभावज्ञानोपयोग है, वह कार्यस्वभावज्ञानोपयोग जैसा ही है। गजब बात, भाई !

यह नियमसार की बात दूसरी चीज़ है। समझे ? आत्मा वस्तु, उसका चैतन्यगुण, उस चैतन्यगुण में ज्ञान और दर्शन दो और चैतन्य को अनुसरकर होनेवाले परिणाम, उसे उपयोग कहते हैं। उस उपयोग के दो भेद, ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग के दो भेद—एक स्वभावज्ञानोपयोग, एक विभावज्ञानोपयोग। स्वभावज्ञानोपयोग के दो भेद—एक कारणस्वभावज्ञानोपयोग, एक कार्यस्वभावज्ञानोपयोग। कारणस्वभावज्ञानोपयोग भगवान सर्वज्ञ किसे कहते हैं ? कि आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध चिदानन्द आनन्दकन्द है, उसके ज्ञानगुण की वर्तमान ध्रुव पर्याय, ध्रुव पर्याय को कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहते हैं और उसके अवलम्बन से केवलज्ञान उत्पन्न होता है, उसे कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहते हैं। दोनों परिणाम की बात चलती है। ओहोहो!

क्या कहा ? कि कारणस्वभावज्ञान भी वैसा ही है। वैसा ही है। जैसा केवलज्ञान है, वैसा अन्तर में अपनी वर्तमान ध्रुव विशेष पर्याय में जो विशेष पर्यायरूप कारणस्वभाव-ज्ञानोपयोग है, वह भी कोई परपदार्थ की उसमें मिलावट नहीं, उसमें कोई अपना स्वरूप—अन्तरस्वरूप जानने में क्रम नहीं, अन्तरस्वरूप, हों! और अन्तरस्वरूप जानने में देश-काल का व्यवधान अर्थात् विघ्न नहीं और अन्तरस्वरूप जानने में ध्रुवपर्याय में कोई इन्द्रिय का अवलम्बन नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विशेषण कारण के हैं। जरा सूक्ष्म बात है। यह बात है।

कैसा कारणज्ञानोपयोग ? कारणज्ञानस्वभाव उपयोग ? वह प्रगट नहीं, प्रगट नहीं। प्रगट तो केवलज्ञानरूपी उपयोग पर्याय प्रगट होती है, वह प्रगट होती है, उत्पाद-व्ययस्वरूप। यह कारणज्ञान प्रगट नहीं (होता)। वह अप्रगट केवलज्ञान, केवलज्ञान के कारणरूप ज्ञानोपयोग; केवलज्ञान कार्य, उसका ज्ञान कारणउपयोग कैसा है ? कि जैसा कार्यस्वभावज्ञान है, वैसा ही कारणज्ञान है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! यहाँ तो कोई पर की दया पालने से केवलज्ञान होगा ? कि नहीं। व्रत पालने से केवलज्ञान होता है ? नहीं। वह तो राग है। देह की क्रिया से केवलज्ञान होता है ? कहते हैं, नहीं। वह तो जड़ है। व्यवहाररत्नत्रय से केवलज्ञान होता है ? कि नहीं। वह तो व्यवहाररत्नत्रय विकार है।

निश्चयरत्नत्रय से मोक्ष होता है ? कि नहीं । क्योंकि वह पर्याय है । निश्चयरत्नत्रय पर्याय है । पर्याय में से नयी मोक्ष पर्याय नहीं आती । ओहोहो !

तो मोक्ष की पर्याय आत्मा में केवलज्ञान कार्यस्वभावज्ञानोपयोग की पर्याय कहाँ से आती है ? किसके अवलम्बन से आती है ? तो कारणस्वभावज्ञान का उपयोग अन्दर आत्मा में पड़ा है, शुद्ध चिदानन्द ज्ञान की पर्याय ध्रुव और गुण त्रिकाल है, वह द्रव्य शुद्ध, उसका ज्ञानगुण शुद्ध और उसके अंशरूप ध्रुवपर्याय कारणस्वभाव उपयोगरूपी भी ध्रुव, उसका अवलम्बन लेने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र (प्रगट) होता है और उसके अवलम्बन से केवलज्ञान होता है । ओहोहो ! समझ में आया ? पारेख ! बहुत सूक्ष्म, भाई ! समझ में आया ? यहाँ तो व्यवहार उड़ जाता है । वह विकल्प है, राग है, वह बन्ध का कारण है और निश्चयरत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है, वह भी पर्याय है । आत्मा में निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकारी पर्याय (प्रगट होती है)... समझ में आया ? वह भी निर्विकारी पर्याय, वह भी पर्याय है । तो मोक्ष केवलज्ञान पर्याय, मोक्षमार्ग निश्चय निर्विकल्प आनन्दरूपी पर्याय में से भी नयी पर्याय नहीं आती । समझ में आया ? यह कारणस्वभावज्ञानोपयोग में से केवलज्ञानपर्याय आती है । बहुत सूक्ष्म बात है, भाई ! समझ में आया ? सब उड़ जाता है न ! व्यवहारनय का ज्ञेय रह जाता है । व्यवहारनय का ज्ञेय रह जाता है । ज्ञेय है । अपनी पर्याय में शुद्ध चिदानन्द के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्विकल्प पर्याय हुई, वह ज्ञेय है, ज्ञेय है और उसकी भूमिका में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह ज्ञेय है, परन्तु वह केवलज्ञान का कारण नहीं । केवलज्ञान का कारण निश्चयनय का ज्ञेय है । समझ में आया ?

आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसका गुण और उसकी पर्याय भी ध्रुव अनादि-अनन्त है । तो कारणस्वभावज्ञान भी उपयोग है । उस ज्ञान की वर्तमान पर्याय में ध्रुवरूप निमित्त की अपेक्षा बिना, इन्द्रिय की अपेक्षा बिना, उत्पाद-व्यय की अपेक्षा बिना उसमें कारणस्वभावज्ञान की पर्याय आत्मा में ज्ञानगुण के साथ रहती है । उसके अवलम्बन से केवलज्ञान होता है । ऐसी बात सिद्ध करते हैं । समझ में आया ?

कहते हैं कि **कार्यस्वभावज्ञान...** यह उपयोग की बात चलती है, हों ! उपयोग तो

परिणति है। ज्ञानगुण की परिणति, यहाँ उसकी बात चलती है। परिणति अर्थात् पर्याय। तो केवलज्ञान भी पर्याय है, केवलज्ञान गुण नहीं है। केवलज्ञान जो प्रगट होता है, वह गुण नहीं, वह तो पर्याय-अवस्था है, गुण त्रिकाल है। गुण प्रगटता नहीं, गुण आवरण में होता नहीं, गुण तो शक्तिरूप निरावरण त्रिकाल है। उसकी केवलज्ञानरूपी पर्याय प्रगट होती है, वह कार्यस्वभावज्ञान है, कार्यस्वभावज्ञान और उसका कारण, कारणज्ञान, वह आत्मा के ज्ञानगुण के साथ विशेष ज्ञानगुण की उपयोगरूप अन्तर परिणति ध्रुव, ध्रुव उत्पाद-व्यय की अपेक्षारहित वह कारणज्ञान की उपयोग परिणति की पर्याय, वह केवलज्ञान का कारण है। ओहोहो! भारी कठिन बात, भाई! समझ में आया?

जैसा कार्यस्वभावज्ञान है, वह मिलावटरहित, इन्द्रिय, क्रम और विघ्नरहित, असहाय—ऐसा भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वह आत्मा द्रव्य, उसका ज्ञान गुण और उसके ज्ञानगुण की ध्रुव, ध्रुव कारणस्वभावज्ञानोपयोग पर्याय। यह कभी सुनी नहीं, ऐसी यह बात है। पर्याय ध्रुव है। एक पर्याय ध्रुव है आत्मा में। ओहोहो! पर्याय ध्रुव कहाँ से आयी और? उत्पाद-व्यय को तो पर्याय कहते हैं।

‘उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्’ और सत् द्रव्यलक्षणं। द्रव्य का लक्षण सत् है और सत् ‘उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्’ है। उत्पाद—नयी पर्याय का उपजना, पुरानी पर्याय का व्यय होना और सदृश्य रहना ध्रुव, ये तीनों एक समय में मिलकर सत् होता है और वह सत् द्रव्य का लक्षण है। कहते हैं कि वह ध्रुव जो है, उस ध्रुव में तीन अंश हैं। एक शक्तिवान द्रव्य और उसका ज्ञान ध्रुव, वह गुण और उस गुण का एक समय का अंश ध्रुव, ये तीन मिलकर द्रव्यार्थिक निश्चयनय का विषय होता है और वह ध्रुवपर्याय अन्दर में शुद्ध उत्पाद-व्यय की अपेक्षा बिना की है, उसका अन्तर अवलम्बन लेने से केवलज्ञान होता है। कभी तीन काल में कोई बाह्यक्रियाकाण्ड से, कोई व्यवहार शुभपरिणाम से या निश्चयरत्नत्रय में से केवलज्ञान नहीं होता। समझ में आया? निमित्त है, वह तो पर है। क्या पर में से केवलज्ञान आता है? व्यवहाररत्नत्रय है। समकित्ती की बात चलती है, हों! मिथ्यादृष्टि को व्यवहार है ही नहीं। सम्यग्दृष्टि का व्यवहार जो रागादि आते हैं, उस राग में से क्या केवलज्ञान आता है? और सम्यग्दृष्टि के निर्विकल्प आनन्द के अनुभव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वीतरागपर्यायरूप मोक्षमार्ग, क्या उस मोक्षमार्ग

में से मोक्ष आता है ?—बिल्कुल नहीं। मोक्षमार्ग का व्यय होकर मोक्षमार्ग की मोक्षपर्याय उत्पन्न होती है। मोक्षमार्ग का व्यय होकर, अभाव होकर मोक्ष की पर्याय का उत्पाद होता है, तो उत्पाद कहाँ से आया ? क्या यह मोक्षमार्ग जो है, उसमें से आया ?—नहीं। वह मोक्ष आया कारणस्वभावज्ञान के अवलम्बन में से। बहुत कठिन बात है। समझ में आया ? मोहनभाई !

उपयोग की बात चलती है। पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका करके नियमसार की स्पष्ट टीका की है और कहा कि हमको परम्परा से मिला है। हम क्या टीका कर सकते हैं ? हमको तो परम्परा से मिला है, उसकी बात करते हैं। तो कहते हैं कि भगवान ! तेरे स्वभाव ज्ञानोपयोग के दो भेद हैं—कार्यस्वभावज्ञानोपयोग परिणाम और कारणस्वभाव-ज्ञानोपयोग, यह परिणाम, यह कार्यस्वभावज्ञानोपयोग उत्पाद-व्यय परिणाम और कारणस्वभावज्ञानोपयोग ध्रुवरूप परिणाम। और ध्रुवरूप परिणाम और परिणति कहाँ से लाये ? भाई ! वस्तु अध्यात्म की चीज़ अन्दर दूसरी है। अन्तरसृष्टि स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... चैतन्य ज्ञान समुदाय, शक्ति, उसके ज्ञान का विशेष अंशरूप ध्रुवपर्याय, वह ध्रुवपर्याय, ध्रुवगुण और ध्रुव द्रव्य, तीन होकर निश्चयनय का विषय है। सम्यग्दृष्टि, उस निश्चयनय के विषय को ध्येय करता है अन्तर में। तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह निश्चयस्वभाव के अवलम्बन से होता है और फिर केवलज्ञान भी स्वभाव ध्रुव के अवलम्बन से केवलज्ञान होता है। निश्चयमोक्षमार्ग के अवलम्बन से भी केवलज्ञान नहीं होता। क्योंकि पर्याय में से पर्याय कभी नहीं आती है। समझ में आया ?

अब कहते हैं कि कारणज्ञान भी वैसा ही है। काहे से ? शाथी अर्थात् ? किस कारण से ? शाथी ? हमारे गुजराती भाषा है। क्या हेतु से ? कि जैसा कार्यस्वभावज्ञानोपयोग कहा केवलज्ञान, वैसा एक कारणस्वभावज्ञानोपयोग आत्मा में है, वह केवलज्ञान जैसा ही है। क्यों ? कि निजपरमात्मा में विद्यमान सहजदर्शन,... देखो, जरा बात एकदम दूसरे ढंग की बात है अन्तर अध्यात्म की। जो आत्मा में कारणस्वभावज्ञानोपयोग उत्पाद-व्यय की अपेक्षा बिना का ध्रुव उपयोगरूपी परिणति है, उस परिणति में से केवलज्ञान आता है। उसके कारण में से। तो यह कार्यपर्याय कैसी है ? ज्ञान कारणशुद्धोपयोगरूपी पर्याय कैसी है ? निजपरमात्मा में... देखो, यह आत्मा अन्दर

परमात्मा पूर्ण शुद्ध ज्ञायकभाव है। परमपारिणामिकस्वभावभाव ज्ञायकभाव है। उसमें रहे हुए। रहेला को क्या कहते हैं? रहनेवाला।

निजपरमात्मा में विद्यमान... तुम्हारी हिन्दी भाषा में। **सहजदर्शन...** आत्मा वस्तु एक समय सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय, एक समय में आत्मा सहजदर्शन अन्तर में त्रिकाल है। शक्तिरूप परमात्मा आत्मा, उसमें सहजदर्शन, दर्शन उपयोग, दर्शनशक्ति, दर्शनशक्ति त्रिकाल **सहजचारित्र,...** यह पर्याय की बात नहीं, अन्दर स्वभाव की बात है। **सहजचारित्र,...** आत्मा में स्वाभाविक चारित्र जो ध्रुवरूप है, ध्रुवरूप है। **सहजसुख...** जो आत्मा में आनन्द... आनन्द... आनन्द... सहज ध्रुवरूप है और **सहजपरमचित्शक्तिरूप...** स्वाभाविक परमज्ञान की शक्तिरूप, ज्ञान के वीर्यरूप, ज्ञान के बलरूप **निजकारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ होने से वैसा ही है।** ब्रह्मचारीजी! क्या बात है, देखो, क्या कहते हैं? एक समय सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग, उसमें जो आत्मा, उसका ज्ञानगुण, उसकी ज्ञान एक ध्रुवरूप पर्याय। ध्रुव की पर्याय की बात चलती है, केवलज्ञान की नहीं। केवलज्ञान की बात आ गयी। वह केवलज्ञान कारणपर्याय में से अवलम्बन लेने से आता है और उसकी कारणपर्याय, ज्ञानस्वभाव कारण उपयोगरूपी पर्याय कैसी है? वह जो कारणस्वभाव ज्ञानोपयोगरूपी परिणति ध्रुव, वह आत्मा परमात्मा में रहनेवाले सहजदर्शन, त्रिकाल दर्शन दृष्टा स्वभाव, सहज-चारित्रस्वभाव, सहजआनन्दस्वभाव, स्वाभाविक परमवीर्य-बल, वह निजकारणसमयसार है। निजकारणसमयसार ध्रुवस्वभाव एक समय में ध्रुव।

समयसार के स्वरूपों को... ओहोहो! युगपद् जानने को... कौन सी पर्याय? ध्रुव पर्याय। ओहोहो! ध्रुव पर्याय है, उसमें ऐसी सामर्थ्य है। उत्पाद की पर्याय जो प्रगट हुई केवलज्ञान की, वह तो कार्यस्वभाव लोकालोक और स्व को जाने, उसकी बात यहाँ नहीं। यहाँ तो आत्मा में ज्ञानगुण की एक वर्तमान अप्रगट अव्यक्त ध्रुव पर्याय जो कारणस्वभावज्ञान उपयोग है, उसमें सामर्थ्य कितनी है? कि अपने निजपरमात्मा में रहे हुए स्वाभाविकदर्शनगुण त्रिकाल, स्वाभाविकचारित्रगुण त्रिकाल, स्वाभाविकसुखगुण त्रिकाल और स्वाभाविकवीर्यगुण निजशक्ति का बल गुण त्रिकाल अन्तर में, उसे कारणस्वभावज्ञान उपयोग ध्रुव युगपद् जानने को समर्थ होने से कार्यज्ञान जैसा ही

कारणज्ञान है। ओहोहो! समझ में आया? बात तो दूसरी है। केवलज्ञान की बात नहीं। उसका कारणरूप स्वभावज्ञानोपयोग पर्याय और कैसी है वह पर्याय? ध्रुव है, उसमें उत्पाद-व्यय नहीं, सदृश्य उसका लक्षण है। द्रव्य, ज्ञानगुण और एक समय की पर्याय सदृश्यता उसका लक्षण है और उत्पाद-व्यय तो विसदृश्य है। क्यों विसदृश्य? कि नयी पर्याय उत्पन्न होती है, पुरानी का व्यय होता है तो विसदृश्य हो गया, दोनों का सदृश्य न रहा; परन्तु स्वभाव द्रव्य, उसकी शक्ति गुण और उसकी वर्तमान पर्याय ध्रुव सदृश्य एकरूप, उसमें उत्पाद-व्यय दो विषमता नहीं। ऐसे सदृश्य द्रव्य-गुण-पर्याय जो है, उसमें जो पर्याय है, वह परमात्मा में रहे हुए दर्शन-चारित्र-आनन्द और बल को युगपद् जानने को समर्थ है। ऐई! हिम्मतभाई! क्या यह परन्तु कहाँ से निकाला यह सब? क्या कहा, समझे? उस ध्रुवपर्याय की बात चलती है। टीका (में) तो अमृत निकाला है जंगल में से। जंगल में से। मुनि जंगल में रहते थे। दिगम्बर मुनि थे। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे। झूलते थे छठवें-सातवें में, उन्हें मुनि कहते हैं, दूसरे को मुनि नहीं कहते। छठवें-सातवें में भावलिंग में झूलते हैं और जिनका द्रव्यलिंग नग्न सहज हो जाता है, सहज हो जाता है, उन्हें मुनि कहते हैं, दूसरों को मुनि-साधु कहते ही नहीं तीन काल में। जैनदर्शन में दूसरे को मुनि-साधु कहते ही नहीं। समझ में आया? समझाय छे काँई अर्थात् समझ में कुछ आता है? हमारी भाषा है, यह समझाय छे काँई?

यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ११-१२वीं गाथा में जो अध्यात्म के स्वभाव का सार रखा है... गोठव्या को क्या कहते हैं तुम्हारी भाषा में? रखा है। ठेठ गुजराती आ जाती है। हमको कहीं हिन्दी बराबर नहीं आती। समझ में आया? यहाँ इस आत्मा में जो द्रव्य शक्तिवान, गुण शक्ति और उसकी पर्याय भी शक्ति ध्रुवरूप पर्याय, इन तीन में जो ध्रुवरूप पर्याय है, वह कैसी है? कि जिसका केवलज्ञान इन्द्रिय, व्यवधान, अन्तराय, मिलावटरहित केवलज्ञान सर्व लोकालोक को जानता है। भविष्य में जो पर्याय जिस द्रव्य की जैसी होगी, जहाँ होगी—ऐसा केवलज्ञान जानता है। केवलज्ञान में कभी फेरफार नहीं होता और केवलज्ञान में देखा, वैसा जगत में परिणमन होता है। ऐसा फेरफार केवलज्ञान दूसरा देखे और पर में दूसरा कार्य हो, ऐसा कभी नहीं होता। और भविष्य में पर्याय होगी तो केवलज्ञान जानेगा, ऐसा भी कभी है ही नहीं। तीन काल, तीन

लोक को केवलज्ञान एक समय में भूत की अनन्त पर्यायों, वर्तमान की अनन्त, भविष्य की अनन्त। वर्तमान की अनन्त क्यों की? अनन्त गुण की अनन्त पर्यायों हैं।

ऐसा एक समय में जैसा केवलज्ञान तीन काल, तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को युगपद् जानता है, युगपद् अर्थात् एकसाथ प्रगट केवलज्ञान, अप्रगट केवलज्ञान के कारणरूप जो स्वभाव ज्ञानोपयोग भी एक समय में अपने परमात्मा में रहे हुए... लोकालोक की यहाँ बात नहीं। वह तो उसमें आ गया है। सब शक्ति पड़ी है न! अपना द्रव्य, उसमें गुण, ज्ञान, उसकी पर्याय ध्रुव। उस ध्रुव पर्याय की सामर्थ्य इतनी है कि अपने परमात्मा में रहे हुए सहजदर्शन, ज्ञान, आनन्द और बल को जानने में, युगपद् जानने में ध्रुव पर्याय की सामर्थ्य है। ध्रुव पर्याय की सामर्थ्य! ऐई! हिम्मतभाई! ऐई नारणभाई! ध्रुव क्या जाने? ध्रुव जाने, तब तो उत्पाद-व्यय हो गया। शक्ति की बात चलती है। यहाँ शक्ति की बात चलती है।

प्राप्त की प्राप्ति है। केवलज्ञान कार्यरूप होता है, वह प्राप्त अन्दर पड़ा है, उसमें से होता है। उसमें है, उसमें से आता है। न हो, उसमें से आवे, ऐसा तीन काल में कभी नहीं बनता। तो केवलज्ञानरूपी पर्याय किसके अवलम्बन से, किसमें से, किस आधार से होती है? तो कहते हैं, भगवान आत्मा ज्ञानगुण और ज्ञानवान और ज्ञानगुण की वर्तमान शुद्धकारणस्वभाव उपयोगरूपी पर्याय में से आता हुआ केवलज्ञान तो वह पर्याय भी अपने सहजस्वभाव में रहे हुए दर्शन-ज्ञान-चारित्र-आनन्द को बराबर एकसाथ जानती है। ऐसी उसकी पर्याय में सामर्थ्य है। ओहोहो! लो, इसमें क्या कहा जाता है, समझ में आया? शु कहेवाय छे अर्थात् तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं? राजमलजी! कहो, यह सब बात कहाँ से? यह धर्म बाहर से ऐसे क्रियाकाण्ड, ऐसा खाना, ऐसा पीना, वह सब चीज़ कहाँ से आयी? वह चीज़ चीज़ के कारण से आती है, अपने कारण से नहीं। वह चीज़ अपने कारण से छूटती है, तेरे कारण से नहीं। उस चीज़ में तुझे राग होता है और तेरे कारण से होता है, वह भी धर्म का कारण नहीं और 'रागरहित स्वभाव चिदानन्द आत्मा अखण्डानन्द मैं हूँ'—ऐसी अपनी स्वभाव की दृष्टि से जो सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ और सम्यक्चारित्र हुआ तो उसमें से भी केवलज्ञान नहीं आता। समझ में आया? मोक्षमार्ग की पर्याय नहीं।

समयसार को दो प्रकार से कहते हैं। समयसार के तीन प्रकार हैं। समयसार तीन को लागू पड़ता है कि एक कार्यसमयसार केवलज्ञान, एक कारणसमयसार एक मोक्ष का मार्ग, एक कारणसमयसार ध्रुवपर्याय और एक कारणसमयसार पर्याय और गुण और द्रव्य तीन को लेकर भी कारणसमयसार कहते हैं। समझ में आया ? यहाँ निजकारण-समयसार अर्थात् पूरा द्रव्य। द्रव्य और गुण, वह कारणसमयसार। उसे कारणज्ञानोपयोग, कारणसमयसार त्रिकाल द्रव्य, गुण, ध्रुव की पर्याय, वह अपने को भी जानती है न! उसकी सामर्थ्य है न!

निजपरमात्मा में रहे हुए... स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकज्ञान, स्वाभाविकचारित्र, स्वाभाविकसुख। ज्ञान तो स्वयं है, अपने को जानता है। **सहजपरमचित्शक्ति...** चित् अर्थात् ज्ञानरूपी बल अन्दर में, आत्मा के स्वभाव में उसका **निजकारणसमयसार...** निजकारण द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसा जो निज कारणसमयसार, उसे वह पर्याय वर्तमान जो ध्रुव है, उसे **युगपद् जानने को समर्थ होने से...** एक समय में अपनी शक्ति का पिण्ड है आत्मा, उसे युगपद् जानने को समर्थ **वैसा ही है।** जैसा केवलज्ञान है, वैसा अन्दर में कारण ज्ञान की पर्याय भी वैसी ही है। वैसी ही है। तेवी ज अर्थात् क्या ? वैसी ही है। समझ में आया ? **इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा।** इस प्रकार शुद्धज्ञान का स्वरूप कहा। कहो, समझ में आया ? कहो,...

इसमें मोक्षमार्ग, मोक्ष, मोक्ष का कारण सभी बातें आ गयीं। तीनों आ गये। मोक्षमार्ग, मोक्ष और मोक्ष का कारण, इस स्वभावज्ञानोपयोग में सब बातें आ गयीं। स्वभावज्ञान उपयोग। उपयोग शब्द से पर्याय, पर्याय शब्द से परिणति, परिणति शब्द से अवस्था। यह कारणस्वभाव ज्ञान उपयोग और कार्यस्वभावज्ञानोपयोग दो का भेद लेकर कार्यस्वभावज्ञानोपयोग केवलज्ञान और कारणस्वभावज्ञानोपयोग आत्मा के ज्ञानगुण में ध्रुव पर्याय। यह होकर दोनों शुद्ध है। केवलज्ञान भी शुद्ध है और उसका कारण अन्तर में पड़ा है, वह भी शुद्ध है।

नियमसार है न इसका नाम ? नियमसार। तो नियम अर्थात् यह तो मोक्षमार्ग की पर्याय है। नियमसार, वह तो मोक्षमार्ग की पर्याय है। निर्विकल्प आत्मा शुद्ध चिदानन्द की प्रतीति, ज्ञान और रमणता स्वसंवेदन में, उसका नाम नियमसार। सार क्यों ? कि

पुण्य-पाप के रागरहित। व्यवहाररत्नत्रय, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं, वह नियमसार है ही नहीं। बीच में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग आता है। सच्चे देव-गुरु की प्रतीति, पंच महाव्रत का, बारह व्रत का विकल्प आवे, वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। मोक्षमार्ग एक ही है। मोक्षमार्ग दो है ही नहीं तीन काल में। समझ में आया? मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार का है। मोक्षमार्ग दो प्रकार का तीन काल में नहीं। मोक्षमार्ग तो एक ही है निश्चयमोक्षमार्ग। वह निश्चयमोक्षमार्ग जो स्वभाव के अवलम्बन से हुआ... समझे? उसका नाम नियमसार। उसका नाम वर्तमान पर्याय, पर्याय। तो पर्याय का अधिकार है तो पर्याय का अधिकार बहुत स्पष्ट करके, कारण और कार्य का स्पष्ट कर दिया। समझ में आया? यह शुद्धज्ञान का (अधिकार पूरा) हुआ।

अब, यह (निम्नानुसार) शुद्धाशुद्धज्ञान का स्वरूप और भेद कहे जाते हैं :-
अब मतिज्ञान, है न पहला? सम्यक् मतिज्ञान। सम्यक् मतिज्ञान। सम्यक् मतिज्ञान किसे कहते हैं? उपलब्धि, भावना और उपयोग से तथा अवग्रहादि भेद से अथवा बहु^३, बहुविध आदि भेद से मतिज्ञान अनेक भेदवाला है। सम्यक् मतिज्ञान, सम्यक् दृष्टि में जो सम्यक् मतिज्ञान होता है, उसकी बात चलती है। सम्यक् मतिज्ञान, जो पर्याय व्यय होकर मोक्ष की पर्याय उत्पन्न होती है। यह भी चला है। यह बात भी आयी थी कि वहाँ भी आता है, भाई! चिद्विलास में आता है। और यह अपने कहा कि मोक्षमार्ग जो निर्विकल्प पर्याय है तो उसे मोक्ष की पर्याय आनी चाहिए, ऐसी जबरदस्ती नहीं। समझ में आया? चिद्विलास में लिया है और विद्वत्जनबोधक में लिया है। मोक्षमार्ग साधक है साधक। 'शुद्ध चिदानन्द आत्मा पूर्णानन्द में हूँ' ऐसी निर्विकल्प प्रतीति हुई, श्रद्धा, ज्ञान, आनन्द हुआ। वे तीन हैं साधक, तो साध्य को आना ही पड़ेगा, (ऐसा हो) तो साध्यपर्याय साधक के पराधीन हो जाती है। ऐसा लिया है। परन्तु ऐसा नहीं है। तो साधक क्यों कहा? निश्चयमोक्षमार्ग स्वभाव की दृष्टि को साधक क्यों कहा? साधक का फल साध्य है, तो साधक है तो साध्य है, तो साधक हुआ तो साध्य को आना पड़ेगा, तो साध्य जो केवलज्ञान पर्याय है, वह क्या साधक के आश्रित पराधीन है? स्वतः है। समझ में आया? एक पर्याय दूसरी पर्याय के आधीन-पराधीन है, ऐसा है ही नहीं। परन्तु वह साधक क्यों कहा? मोक्षमार्ग साधक, हों! निश्चयमोक्षमार्ग। व्यवहारमोक्षमार्ग

तो है ही नहीं, निमित्त तो धर्म है ही नहीं। अपना शुद्ध एक समय का पूर्ण स्वभाव की प्रतीति, ज्ञान और रमणता अन्दर निर्विकल्प होती है, वह मोक्षमार्ग साधक और केवलज्ञान साध्य। तो कहते हैं कि मतिज्ञान आदि जो साधक हुआ तो केवलज्ञान को आना पड़े, तो मतिज्ञान की पर्याय की जबरदस्ती से केवलज्ञान को आना पड़ा, ऐसा नहीं। बड़ा अनर्थ हो जाता है। इसमें भाई! अपने तब निकाला था न? विद्वत्जन (बोधक) परन्तु चिद्विलास में भी ऐसा है, हों! चिद्विलास में दो जगह है। बाद में ख्याल आया। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान जो केवलज्ञान में पूर्व पर्याय में होता है। केवलज्ञान होता है, जब कार्यस्वभावज्ञानोपयोग, उससे पूर्व में मति और श्रुतज्ञान होता है। किसी को अवधि और मनःपर्याय हो और नहीं भी होता, परन्तु मति और श्रुतज्ञान, दो तो सम्यक् होते ही हैं, परन्तु होते हैं, इसलिए केवलज्ञान आता है, ऐसी जबरदस्ती नहीं। परन्तु क्या है? केवलज्ञान होने से पहले मति-श्रुतज्ञान की पर्याय है, इस अपेक्षा से साधक कहा और फिर पर्याय होती है, उसे साध्य (कहा)। क्योंकि पश्चात् पर्याय में केवलज्ञान आता ही है, उसके कारण साधकसाध्य कहा है, नहीं कि साधक की पर्याय की बलजोरी से साध्य को आना ही पड़े। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात भाई! ऐई! वीरजीभाई!

मुमुक्षु : बलजोरी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बलजोरी नहीं। साधक साध्य कहो, बलजोरी क्या है? क्या एक समय की पर्याय दूसरे समय की पर्याय अधिपति है? मालिक है कि एक समय की पर्याय दूसरे समय की पर्याय को बलजोरी से प्रगट करे? ऐसा है ही नहीं। परन्तु, परन्तु केवलज्ञान की पर्याय होने से पहले मति और श्रुत सम्यग्ज्ञान होता है, उसका आश्रय लेकर ऐसा कहा कि वह साधक और साध्य है। समझे? परन्तु केवलज्ञान की पर्याय स्वतन्त्र प्रगट होती है, मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से भी नहीं। सम्यक् मति-श्रुतज्ञान से भी केवलज्ञान नहीं। ओहोहो! वह केवलज्ञान जो प्रगट होता है, ऐसा कहो तो कारणस्वभाव-ज्ञानोपयोग में से आता है। समझ में आया? और केवलज्ञान है, ऐसा कहो, जब केवलज्ञान है, ऐसा कहो, वह किसी के आश्रय से नहीं। है, पर्याय पर्याय से है, द्रव्य से भी नहीं। सामान्य द्रव्य है और केवलज्ञान पर्याय, वे दोनों स्वयं से है। यदि किसी के

कारण से हो तो दोनों की हानि होती है। अपनी स्वयंसिद्धता सिद्ध नहीं होती। समझ में आया? इसलिए यहाँ मति और श्रुतज्ञान पूर्व में सम्यग्ज्ञान होता है, उसकी व्याख्या चलती है। परन्तु वह जबरदस्ती केवलज्ञान को लाती है, ऐसा नहीं।

इस मतिज्ञान के तीन भेद हैं। उपलब्धि, भावना और उपयोग से... इसकी व्याख्या नीचे चलती है। मतिज्ञान तीन प्रकार का है, उपलब्धि, भावना, और उपयोग। इसकी व्याख्या। मतिज्ञानावरण क्षयोपशम जिसमें निमित्त है - ऐसी अर्थग्रहणशक्ति, सो उपलब्धि है; लब्धि कहते हैं। अपनी ज्ञानगुण शक्ति है, उसमें से प्रगटरूप, लब्धरूपपर्याय, लब्धरूप व्यक्तपर्याय, लब्धरूप व्यक्तपर्याय, जिसमें अर्थग्रहणशक्ति होने की सामर्थ्य है, उसे मतिज्ञान की लब्धि कहते हैं। ओहोहो! बहुत सूक्ष्म मोहनभाई! इसमें कितना याद रखना? और कार्यस्वभावज्ञान तथा कारण और यह फिर तीसरी बात वापस। यह तो मतिज्ञान की बात चलती है। वह कारणस्वभावज्ञान ध्रुवपर्याय त्रिकाल उत्पाद-व्ययरहित, केवलज्ञान उत्पाद-व्ययवाली और यह है उत्पाद-व्ययवाली मतिज्ञान (पर्याय)। आत्मा में मतिज्ञानावरणीय का क्षयोपशम से अपनी पर्याय में पदार्थग्रहणशक्ति का लब्धरूप शक्ति में से व्यक्त अंश हुआ, उसे उपलब्धि कहते हैं।

और जाने हुए पदार्थ के प्रति पुनः पुनः चिन्तन, सो भावना है;... उस पदार्थ के प्रति बारम्बार भावना (हो)। पश्चात् उपयोग। 'यह काला है' 'यह पीला है' समझे न? यह काला है, पीला है। इत्यादिरूप अर्थग्रहणव्यापार... यह पहले उपलब्धि में अर्थग्रहणशक्ति और उपयोग में अर्थग्रहणव्यापार। मतिज्ञान की पर्याय में लब्धरूप अर्थग्रहणशक्ति को लब्धि कहते हैं और अर्थग्रहणशक्ति का व्यापार होता है, उसे मतिज्ञान का उपयोग कहते हैं। यहाँ तो समझाते हैं कि ऐसा मतिज्ञान होता है। समझ में आया? उस मतिज्ञान से केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं बतलाना। पहली पर्याय कौन सी, यह बतलाना है। पूर्वचर... पूर्वचर। पूर्वचर क्या था, सहचर क्या था। समझ में आया? तो कहते हैं कि पूर्व में मतिज्ञान की ऐसी पर्याय जो निर्मल है। आत्मा के भान में सम्यग्दर्शन हुआ और सम्यग्दर्शन के साथ मतिज्ञान होता है। मिथ्यादृष्टि को मतिज्ञान नहीं होता। उस मतिज्ञान के तीन प्रकार—लब्धरूप, चिन्तनरूप, व्यापाररूप। लब्धरूप, वह ज्ञान की पर्याय की प्रगट अवस्था, पदार्थ की ग्रहणशक्ति की सामर्थ्य को लब्धि

कहते हैं और बारम्बार पदार्थ है, उसकी चिन्तवना को भावना कहते हैं और उस अर्थग्रहणशक्ति का व्यापार पर में जानने जाये, उसे उपयोग कहते हैं। यह मतिज्ञान के तीन प्रकार। समझ में आया ?

और अवग्रह... आदि भेद से। यह तो आता है अपने तत्त्वार्थसूत्र में आता है न! अवग्रह आदि और बहु, एक, बहुविधि... आदि। मतिज्ञान अनेक भेदवाला है। लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। श्रुतज्ञान के दो प्रकार, उसमें उपयोग नहीं डाला, भाई! लब्धि और भावना। वह भावना में समाहित हो गया है और दूसरी जगह अलग ले, तब उपयोग प्रमाण के कारण नय का भेद करके उसे श्रुत में डाला है। क्योंकि नयव्यापार भी श्रुत उपयोग है। नय, निश्चय-व्यवहारनय है, ज्ञान का अंश है, ज्ञान का अंश उपयोगात्मक है और वह उपयोगात्मक अंश नय है, वह श्रुतज्ञान का ही अंश है। श्रुतज्ञान पूरा प्रमाण है, एक समय में वर्तमान पर्याय और सामान्य दोनों को जाननेवाला वह प्रमाण है और प्रमाण का एक अवयव अंश, वह नय है कि जो नय एक पक्ष को जाने, एक भेद को अथवा वर्तमान को अथवा त्रिकाल को। वर्तमान को जाने वह व्यवहार और त्रिकाल को जाने, वह निश्चय। तो श्रुतज्ञान प्रमाण, उसका भेद नय, वह उपयोग और नय की व्याख्या में आता है। यहाँ तो दो ही भेद लिये। श्रुतज्ञान की लब्धि और भावना के भेद से श्रुतज्ञान दो प्रकार का है। यह मति और श्रुतज्ञान केवलज्ञान से पहले सबको होते हैं। किसी भी प्राणी केवलज्ञान प्रगट होने से पहले मति-श्रुत न हो और केवलज्ञान हो, ऐसा होता नहीं, परन्तु मति-श्रुतज्ञान हो तो उससे केवलज्ञान होता है, ऐसी भी बात नहीं है।

देश, सर्व और परम के भेद से (अर्थात्, देशावधि, सर्वावधि तथा परमावधि— ऐसे तीन भेदों के कारण) अवधिज्ञान तीन प्रकार का है। देश-अवधि, पदार्थ की अवधि—मर्यादा जानने में देश—अंश जानता है, एक सर्व जानता है अवधि और परम-अवधि। तीन भेद हैं। समझ में आया ? यह अवधिज्ञान तीन प्रकार के हैं। श्वेताम्बर में दो प्रकार का चला है। देश और परम। सर्व उसमें नहीं आता। तीन यथार्थ वस्तु.....

मुमुक्षु : परमावधि नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सर्वावधि नहीं आता, परमावधि मानते हैं। यहाँ तीन हैं। देश, परम, सर्व।

और ऋजुमति और विपुलमति के भेद के कारण मनःपर्ययज्ञान दो प्रकार का है। मनःपर्ययज्ञान। तो कहते हैं कि ये चार ज्ञान किसे होते हैं? परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को... यह सम्यग्दृष्टि की व्याख्या। परमभाव पंचमभाव त्रिकाल कारणशुद्धपर्याय ऐसी द्रव्य, गुण सब। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय का पिण्ड है, ऐसे स्वभाव में स्थित, उस स्वभाव में स्थित, ऐसे सम्यग्दृष्टि को चार ज्ञान होते हैं। दूसरे को चार ज्ञान होते नहीं। यह स्पष्टीकरण कर दिया कि किसे चार ज्ञान होते हैं? भले किसी को दो, किसी को तीन, किसी को चार, यह नीचे लिखा है। समझ में आया? परन्तु वह सम्यग्ज्ञान किसे होता है? परम चैतन्यमूर्ति में ज्ञानानन्द हूँ। शुद्ध द्रव्य, गुण और मेरी शुद्ध कारणपर्याय स्वभावज्ञान है, उसमें तिष्ठ, उसमें लीन, उसकी अन्तर रुचि होकर परिणमन हुआ, ऐसे सम्यग्दृष्टि को ही चार ज्ञान होते हैं, मिथ्यादृष्टि को होते नहीं। जिसकी रुचि निमित्त की है, जिसकी रुचि व्यवहार की है, जिसकी रुचि वर्तमान पर्याय में से पर्याय होती है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को चार ज्ञान होते नहीं, यह बात विशेष कहेंगे.....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



पौष शुक्ल १२, दिनांक - ०५-०१-१९५५

गाथा-११-१२, प्रवचन नं. ४१२

यह नियमसार, जीव अधिकार, इसकी ११ और १२वीं गाथा चलती है। देखो, यह ज्ञान, स्वभावज्ञान किसे कहना, इसका अधिकार चलता है। यह आत्मा जो वस्तु है, उसका जो त्रिकाली ज्ञानगुण स्वभाव है, उसकी एक वर्तमान ज्ञानगुण की निर्मल अप्रगट ध्रुवपर्याय है, उसे यहाँ कारणस्वभावज्ञानोपयोग कहते हैं और उसके अवलम्बन से कार्यस्वभावज्ञानोपयोग अर्थात् केवलज्ञान प्रगट होता है। अब यहाँ कहा कि इसके अतिरिक्त सम्यग्ज्ञान के चार प्रकार हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान। ये चार हैं विभाविक। क्योंकि उसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा आती है, तथापि है वह सम्यग्ज्ञान। यह चार ज्ञान किसे होते हैं? उसकी व्याख्या अपने थोड़े बाकी है अभी।

परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि को ये चार सम्यग्ज्ञान होते हैं। देखो, सम्यग्दृष्टि अर्थात् चौथे गुणस्थान से, आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण ज्ञान और आनन्द-स्वरूप शुद्ध चिदानन्द है, ऐसी अन्तर्दृष्टि के अनुभव में जो आत्मा की प्रतीति हुई, ऐसा चौथा गुणस्थान, पाँचवाँ हो या छठवाँ, वे सभी परमभाव में स्थित हैं। सेठी! परमभाव ज्ञायक चैतन्य परम स्वभावभाव आत्मा, उसकी अन्तर की दृष्टि और रुचि में स्थित है, उस सम्यग्दृष्टि को यह चार सम्यग्ज्ञान होते हैं।

उसमें नीचे लिखा है कि **सुमतिज्ञान और सुश्रुतज्ञान, सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होते हैं। सुअवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है। मनःपर्ययज्ञान किन्हीं-किन्हीं मुनिवरो को-विशिष्टसंयमधरो को होता है।** सब मुनियों को मनःपर्ययज्ञान होता है ऐसा नहीं, परन्तु खास, विशिष्ट अर्थात् खास प्रकार का संयम जिनका उग्र-विशेष होता है, ऐसे छठवें गुणस्थान के मुनि, सातवें गुणस्थानवाले मुनियों को मनःपर्ययज्ञान होता है, परन्तु होता है वह चौथा, पाँचवाँ या छठवाँ और सातवाँ, वे सब सम्यग्दृष्टि। इसलिए उनकी व्याख्या की है कि परमभाव त्रिकाल शुद्ध चिदानन्द एक समय में परमस्वभावभाव से भरपूर भगवान जिसकी प्रगट पर्याय वह नहीं, वह परमभाव नहीं,

यह परमभाव अर्थात् केवलज्ञान, वह परमभाव नहीं, केवलज्ञान प्रगट होता है, वह परमभाव नहीं। चार ज्ञान—सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं, वह परमभाव नहीं। आत्मा का एक समय में केवलज्ञान और चार ज्ञान की जो पर्याय है उत्पाद-व्यय की, उसके अतिरिक्त त्रिकाल स्वभावभाव शुद्ध चिदानन्द में स्थित है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उस सम्यग्दृष्टि में मति और श्रुत तो सबको होते हैं, अवधि किसी-किसी को होता है—चौथे, पाँचवें और छठवें आदि में और मनःपर्ययज्ञान तो खास प्रकार के संयमधर मुनियों को होता है, इतनी बात की।

ये^४ चार सम्यग्ज्ञान होते हैं। मिथ्यादर्शन हो, वहाँ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान 'कुमति ज्ञान', 'कुश्रुतज्ञान' तथा 'विभंगज्ञान'—ऐसे नामान्तरों को प्राप्त होते हैं। जहाँ आत्मा शुद्ध एक समय में पूर्ण आनन्द और परमस्वभाववान है, ऐसी अन्तर दृष्टि हुई नहीं और बाह्य निमित्तों से धर्म मान रहे हैं, दया, दान, भक्ति के विकल्प से धर्म मान रहे हैं, वर्तमान क्षयोपशमज्ञान की पर्याय वर्ते, उसके आश्रय से धर्म होता है, ऐसा मान रहे हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि को कुमति, कुश्रुत और विभंग होते हैं। उसे सुमति, सुश्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान होते नहीं।

इसलिए बात की है कि मिथ्यादर्शन हो वहाँ अर्थात् कि परमभाव में स्थित न हो वहाँ। भाई! गुलाँट मारकर बात करते हैं कि परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि। तब मिथ्यादृष्टि? वह वर्तमान ज्ञान की एक समय की उघड़ी हुई पर्याय है, उससे धर्म होगा, ऐसा मानता है। पुण्य-पाप के परिणाम आदि दया, दान के विकल्प शुभ उठें, उससे धर्म होगा, ऐसा मानता है, परम्परा होगा—ऐसा अज्ञानी मानता है और अनुकूल निमित्तों से परम्परा धर्म होगा, ऐसा मानता है, वह परमभाव में स्थित नहीं है। परम एक समय में शुद्ध चिदानन्द में वह स्थित नहीं। उसकी उसे श्रद्धा, ज्ञान का भान भी अन्तर में वर्तता नहीं। वह तो मानो पर के अवलम्बन से और राग से, पुण्य से, क्रिया से, संयोग से, बाहर के आश्रय के अवलम्बन के निमित्त से धर्म और सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि को मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान होता है, परन्तु सब कु होते हैं कु। कु अर्थात्? आत्मा का स्वप्रकाश स्वभाव चैतन्य है, उसकी दृष्टि में नहीं, मात्र परप्रकाशपना उसके ख्याल में वर्तता है। परप्रकाशपना अर्थात् यह पुण्य है, यह राग है, यह व्यवहार है, यह निमित्त है।

यह ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है, वह स्वसन्मुख, परमभाव-सन्मुख होकर जो सम्यग्ज्ञान होता है, वह मिथ्या रुचि में स्वस्वभाव सन्मुख रुचि नहीं और अकेला परप्रकाशकभाव एकान्तरूप से अज्ञान में वर्तता है। राग और पुण्य, व्यवहार और विकल्प तथा संयोग की ओर का ज्ञान एकान्त परप्रकाशक है। वह एकान्त परप्रकाशक मिथ्यादर्शन में कुमति, कुश्रुत और विभंगज्ञान होता है। कहो, समझ में आया? सूक्ष्म बात है, मोहनभाई! व्याख्या ही ऐसी की है कि भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमस्वभाव अनन्त केवलज्ञान की जो पर्याय प्रगटे, उसके अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड है। एक समय में स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... शुद्ध चिदानन्द है, उसकी रुचि और परिणमन दृष्टि का होना, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसके अतिरिक्त कोई संयोग निमित्त, व्यवहार, पुण्य, दया, दान, विकल्प, भक्ति, यात्रा, ब्रह्मचर्य, पंच महाव्रत के विकल्प, पंच महाव्रत का पालन ऐसा करूँ और वैसा करूँ, वह सब विकल्प का उत्थान—विकार है। उस विकार के अवलम्बन से जो धर्म माने, उस मिथ्यादृष्टि को यह तीन अज्ञान होते हैं।

अब जरा सूक्ष्म बात आयेगी। यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञानों में)... ऊपर कहे ज्ञान के प्रकार कि एक तो ज्ञान के दो प्रकार कि स्वभावज्ञान और विभावज्ञान। स्वभावज्ञान के दो प्रकार कि एक कारणस्वभावज्ञान त्रिकाल पर्यायरूप उपयोग और कार्यस्वभावज्ञान उपयोग केवलज्ञान। दूसरे, विभावज्ञान के दो प्रकार—एक सम्यग्ज्ञान के विभावज्ञान के चार प्रकार—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय। मिथ्याज्ञान के विभावज्ञान के तीन प्रकार—कुमति, कुश्रुत और विभंग। इन कहे हुए ज्ञानों में सहजज्ञान,... जो आत्मा का एक समय का जो द्रव्यस्वभाव और उसका गुणस्वभाव है, उसके साथ एक समय की पर्याय ध्रुवस्वभाव है, उसे यहाँ सहज ज्ञान कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई!

यह बात कारण में शुद्धपर्याय एक ध्रुव है, यह बात अत्यन्त अचिन्त्य और अपूर्व है। समझ में आया? ऐसे वस्तु एक समय में अनन्त शक्ति का पिण्ड है, उसमें अनन्त गुणरूप ध्रुवरूप सदृश्यरूप शक्तियाँ अनन्त हैं और उन गुण सामान्य के साथ एक समय की पर्याय जो अप्रगट उत्पाद-व्यय की अपेक्षारहित ध्रुवरूप विशेष पर्याय का अंश है, उसे यहाँ सहज ज्ञान उपयोग, कारण उपयोग पहले कहा था, उसमें का यह भेद कहते

हैं। जो प्रकार किये थे, उसमें कौन आदरणीय है? इतने सब प्रकार किये, उसमें आदरणीय और आश्रय करनेयोग्य कौन है? कि सहजज्ञान। कैसा है सहजज्ञान?

शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है। स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात् यह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष नहीं। ब्रह्मचारीजी! स्वसंवेदनप्रत्यक्ष सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वह नहीं, वह तो प्रगट पर्याय है। यह भी पर्याय है, यह भी पर्याय है, परन्तु अप्रगट पर्याय है। समझ में आया? कारणपर्याय को स्वरूपप्रत्यक्ष कहा है। ज्ञान के भेद किये, उसमें इतने भेद में से एक... यहाँ उपयोग की व्याख्या चलती है न, ज्ञानरूपी उपयोगरूपी परिणामरूपी पर्याय, उस उपयोग के प्रगटरूप के तो केवलज्ञान, चार ज्ञान और तीन अज्ञान, तीन और पाँच आठ हो गये। ये आठों ही आदरणीय नहीं। समझ में आया? तीन अज्ञान भी आदरणीय नहीं, वे तो मिथ्या। चार ज्ञान प्रगट पर्यायरूप है अल्प, वे भी आदरणीय नहीं और केवलज्ञान तो है नहीं पर्याय में वर्तमान नहीं, उसे आदरणीय कैसे स्वीकारना? और केवलज्ञान नहीं, उसे केवलज्ञान का आदर करने जाये कि यह पर्याय, वहाँ विकल्प और राग उठता है। इसलिए, पाँच ज्ञान सम्यक् और तीन ज्ञान मिथ्या, ये आठों ही आदरनेयोग्य नहीं सम्यग्दृष्टि को। जरा सूक्ष्म बात है। वह सम्यग्दृष्टि में... सुनाई देता है न बहिन? वरना यहाँ आवे। प्रेमी है, जिज्ञासु है। यह एकदम नयी बात है, इसलिए जरा कठिन पड़े, ऐसी है।

आत्मा वस्तु, उसका ज्ञानस्वभाव त्रिकाल, उसका एक अंश ध्रुवस्वभाव त्रिकाल और उसकी प्रगट पर्यायें ज्ञान की आठ—सम्यग्ज्ञान की पाँच पर्यायें, मिथ्याज्ञान की तीन पर्यायें हैं। वे तीन और चार जो छद्मस्थ को हैं, वे तो आदरणीय नहीं। क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, परन्तु केवलज्ञान साधक को वर्तता नहीं और केवलज्ञान का लक्ष्य करने जाये तो भेदरूप लक्ष्य होने से उसे विकल्प और राग की उत्पत्ति होती है। इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव को, धर्मी जीव को जो यह उपयोग के प्रकार कहे, उसमें एक कारणस्वभावज्ञानोपयोग की पर्याय कही थी, वही एक अंगीकार करनेयोग्य और आदरनेयोग्य है। उसके ऊपर एकाग्र होने से केवलज्ञान हो जाता है। समझ में आया? मोहनभाई!

(ऊपर कहे हुए ज्ञानों में)... यह भेद कहे न बहुत? आठ और कारणपर्याय का,

नौ। नौ भेद ज्ञान के कहे, भाई! समझ में आया? ऐसे दो भेद किये थे न कि एक आत्मा, उसका उपयोग, उसके दो भेद ज्ञान और दर्शन। उसके ज्ञान के दो भेद स्वभावज्ञान और विभावज्ञान। स्वभावज्ञान के दो भेद—कारणस्वभावज्ञानोपयोग और कार्यस्वभावउपयोग। विभावज्ञान के दो भेद—सम्यग्ज्ञान चार ज्ञान और मिथ्याज्ञान तीन। अर्थात् कि तीन अज्ञान, पाँच ज्ञान, आठ और कारणस्वभावउपयोग ऐसे नौ भेद किये थे। नौ में एक ही उपयोग जो कारणस्वभावज्ञान है, वह सम्यग्दृष्टि को अंगीकार करके आदरनेयोग्य है। ओहोहो! समझ में आया?

(ऊपर कहे हुए ज्ञानों में)... क्योंकि दर्शन की व्याख्या तो बाद में आयेगी। यहाँ तो अभी ज्ञान की चलती है। सहजज्ञान,... स्वाभाविकज्ञान। स्वाभाविकज्ञानोपयोगरूपी पर्याय, स्वाभाविकज्ञानोपयोगरूपी परिणति कि जो शुद्धअन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में... जो भगवान आत्मा एक समय में शुद्धअन्तःतत्त्व। अन्तःतत्त्व अर्थात् स्वभाव, तत्त्व अर्थात् भाव। अन्तः त्रिकाली शुद्धभाव, त्रिकाली आत्मा का शुद्धभाव, ऐसे शुद्धअन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से। वह अन्तःतत्त्व आत्मा तत्त्ववान, उसका अन्तःतत्त्व निरुपाधि शुद्धस्वभाव ऐसे परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है। वह स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात् कि कारणज्ञान स्वभाव उपयोग की पर्याय, उसे यहाँ स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं। ओहोहो! सेठी! जयपुर में कभी सुना नहीं ऐसा।

देखो, भगवान आत्मा एक-एक आत्मा, ऐसे अनन्त आत्मा, सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान से लेकर भगवान आत्मा ज्ञान के जो नौ प्रकार किये, उसमें आठ प्रकार तो पर्याय, प्रगट पर्याय के हैं, पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान, वे तो प्रगट पर्याय—अवस्था के हैं और एक स्वभाव कारण उपयोगरूपी अप्रगट ध्रुव पर्याय का भेद है। यह विशेषरूपी सामान्य द्रव्य और गुण का विशेष अंश जो स्वरूपप्रत्यक्ष जो अन्तःतत्त्वरूप, अन्तःस्वभावरूप परमतत्त्व ऐसा जो स्वभाव शुद्ध त्रिकाल ध्रुव ज्ञायक। जैसे छोटी पीपर, उसमें पीपर स्वयं, उसमें चौंसठ पहरी सामर्थ्य शक्तिरूप से पड़ी है। वह गुण जो है, उसका एक अंश पर्याय विशेष भी शक्तिरूप से, चौंसठ पहरी चरपराई का विशेषरूप से पर्याय अप्रगटरूप से है। उसके अवलम्बन से चौंसठ पहरी बाहर में प्रगट होती है। प्राणभाई!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भागरूपी समय में द्रव्य, गुण और उसके साथ रहा हुआ एक अंशरूपी ऊपर-ऊपर अर्थात् जैसे समुद्र का तल है, समुद्र एक है, उसमें पानी है और ऊपर की सपाटी का तल ऊपर का, हों! नीचे का तल नहीं, ऊपर; उसी प्रकार आत्मा एक समय में अनन्त शक्तिवान, उसकी अनन्त शक्तियाँ, उसके एक समय में ऊपर पर्याय ध्रुव, अप्रगट कारणस्वभावरूप उपयोग की पर्याय कि जो शुद्ध अन्तःतत्त्व परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है। वह आदरणीय है। यह अन्तिम कहेंगे, भाई! यहाँ तो अभी यह भेद करते हैं। भेद करके समझाते हैं। समझ में आया? एक स्वरूपप्रत्यक्ष कहते हैं कि कारणस्वभाव पर्यायरूप उपयोग, वह केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष... केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष। यह सब प्रत्यक्ष के भेद देते हैं। पहले भेद दिये थे कारण और कार्य। अब यहाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद करके कौन आदरणीय है, यह बात सिद्ध करते हैं। समझ में आया? कोई कहे कि यह फिर से आया?—नहीं, नहीं। भाई! यहाँ प्रत्यक्ष-परोक्ष की व्याख्या करके कौन सा प्रत्यक्ष आदरणीय है, इसलिए यह कथन चलता है।

यह ज्ञान जो नौ कहे थे, उनमें एक कारणस्वभावज्ञानोपयोग की पर्याय जो कही थी, वह अन्तःतत्त्वस्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से स्वरूपप्रत्यक्ष। बस, उसे स्वरूप-प्रत्यक्ष कहना। इतना। फिर आदरणीय है, यह बाद में कहेंगे। केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष... केवलज्ञान की पर्याय तीन काल—तीन लोक को जानने का अरिहन्त सिद्धों को जो प्रगट हुआ, वह केवलज्ञान, वह सकलप्रत्यक्ष अर्थात् (सम्पूर्ण प्रत्यक्ष) है। वह प्रगटरूपी पर्याय है, वह प्रगटरूपी अवस्था है। स्वरूपप्रत्यक्ष अप्रगटरूपी ज्ञान के स्वरूप के कारणरूप पर्यायरूप भाव है।

‘रूपिष्ववधेः’ (अवधि-ज्ञान का विषय-सम्बन्ध रूपी द्रव्यों में है)—ऐसा (आगम का) वचन होने से... तत्त्वार्थसूत्र का अवधिज्ञान, विकलप्रत्यक्ष है। विकलप्रत्यक्ष है। विकल अर्थात् एक अंश प्रत्यक्ष है। एक अंश अर्थात् एकदेश प्रत्यक्ष है। एकदेश अर्थात् एक भाग प्रत्यक्ष है। भाई! उस सम्पूर्ण की अपेक्षा से एक भाग प्रत्यक्ष है। ध्यान रखना, यह प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद करके वह तो मात्र कितने भेद किये थे? कि कारणस्वभावज्ञानोपयोग और कार्यस्वभावज्ञानोपयोग, कार्यस्वभाव के अतिरिक्त चार

ज्ञान विभावज्ञानोपयोग, अज्ञान विभावज्ञान, अकेला केवल विभावज्ञानोपयोग ।

यहाँ प्रत्यक्ष-परोक्ष के भेद करके भगवान आत्मा एक समय की अन्तर ध्रुवपर्यायरूप से स्वरूपप्रत्यक्ष है । स्वरूपप्रत्यक्ष की व्याख्या नीचे की है, देखो जरा, **स्वरूप से प्रत्यक्ष; स्वरूप-अपेक्षा से प्रत्यक्ष; स्वभाव से प्रत्यक्ष** । यह प्रगट पर्याय नहीं, परन्तु अप्रगट पर्याय । ध्रुवरूप अवस्था, वह स्वभाव से प्रत्यक्ष है । केवलज्ञान सकल-सम्पूर्ण-पूरा प्रत्यक्ष है और अवधिज्ञान, वह विकलप्रत्यक्ष अर्थात् एक अंश—एक भाग प्रत्यक्ष है । उसके अनन्तवें भाग में वस्तु के अंश का ग्राहक होने से मनःपर्ययज्ञान... मनःपर्ययज्ञान मुनि को संयमधारी को होता है और उस ज्ञान के समय की पर्याय में बहुत सामर्थ्य है, अवधिज्ञान से, यह बताने को बात करते हैं । वह अवधिज्ञान का जो विषय है, उससे भी अनन्तवें भाग में वस्तु के अंश का ग्राहक होने से मनःपर्ययज्ञान भी **विकलप्रत्यक्ष** है । विकल—एकदेश, एकभाग, एक अंश प्रत्यक्ष है । सर्वांश प्रत्यक्ष केवलज्ञान है ।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनों परमार्थ से परोक्ष हैं और व्यवहार से प्रत्यक्ष हैं । इस प्रकार प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद समझाये । समझ में आया ? ओहोहो ! कभी कहाँ बात है, यह सुनी न हो, अब उसे यह कहते हैं, क्या यह कहते हैं और ? स्वरूपप्रत्यक्ष कहाँ से आया यह ? अब स्वरूपप्रत्यक्ष तो आत्मा का यह सम्यग्ज्ञान और दर्शन हो, वह स्वरूपप्रत्यक्ष । वह यहाँ बात नहीं । वह तो चार ज्ञान में मति-श्रुत में प्रगट पर्याय में गया । जो मति-श्रुत आत्मा का वेदन करे स्वसंवेदन (करे), उसे भी प्रत्यक्ष, स्वभाव अपेक्षा से उसे प्रत्यक्ष कहते हैं, वह प्रगट पर्याय की अपेक्षा से, (वह) दूसरी बात है । चन्दुभाई ! क्या कहा और ? यह विषय यहाँ नहीं, भाई ! मति और श्रुत सम्यग्ज्ञान होने से आत्मा अन्तर के अनुभव के समय वह मति और श्रुत तो प्रत्यक्ष ही है । ब्रह्मचारीजी ! परपदार्थ को जानने के काल में वह मति और श्रुत सम्यग्दृष्टि को परोक्ष है, परन्तु मति और श्रुत का अन्तरसन्मुख सम्यक् चैतन्यमूर्ति आत्मा का भान होने से जो सम्यक् मति और श्रुत वर्ते स्व अपेक्षा से तो प्रत्यक्ष ही है, परन्तु यह तो प्रगटरूप पर्याय की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है । यह स्वरूपप्रत्यक्ष तो त्रिकाली ध्रुव कारणरूप पर्याय जो प्रगट नहीं, वह स्वरूपप्रत्यक्ष तो अनन्त जीवों को है । क्या कहा ?

अवधि और मनःपर्यय, वे तो विकलप्रत्यक्ष हैं, वे छद्मस्थ को होते हैं। केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है, वह अरिहन्त और सिद्धों को होते हैं। मति और श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष हैं, वे कब? कि सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर में स्व प्रत्यक्ष आत्मा के अनुभव और वेदन में पड़ा होता है, तब चौथे में, पाँचवें में और सातवें में। वे-वे मति और श्रुत स्वसंवेदन के समय मति-श्रुत प्रत्यक्ष है। वह यह प्रत्यक्ष नहीं। और वे मति तथा श्रुतज्ञान पर के जानने की अपेक्षा से छद्मस्थ समकिति को परोक्ष कहे जाते हैं। समझ में आया? और वे मति और श्रुत परमार्थ से पूर्ण स्वरूप का ज्ञान नहीं, इसलिए तो उन्हें परोक्ष कहते हैं। व्यवहार से उसे ऐसे प्रत्यक्ष जैसा दिखता है इन्द्रियाँ और मन के निमित्त से कि मैंने यह देखा प्रत्यक्ष, ऐसा कहा जाता है न? इस अपेक्षा से मति-श्रुत को प्रत्यक्ष कहा जाता है। कहो, इतने प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद किये। बीच में जो मति और श्रुत का समकिति का अनुभव के समय का प्रत्यक्ष है, वह व्याख्या यहाँ नहीं ली। समझ में आया? यह पंचाध्यायी में स्पष्ट करके रखा है। अन्यत्र भी इसका अधिकार है।

सम्यग्ज्ञान सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में होने पर आत्मा अन्दर ज्ञानरूप चिदानन्द शुद्ध हूँ, उसका—अनुभव का स्वसंवेदन का निर्विकल्प अनुभव, उसके काल में वह मति-श्रुत प्रत्यक्ष ही है, वह स्वरूपप्रत्यक्ष है। वह स्वरूपप्रत्यक्ष प्रगट पर्याय का है। यह स्वरूपप्रत्यक्ष है, वह अप्रगट पर्याय का है। दोनों के भाव में अन्तर है। ओहोहो! कहो, समझ में आया?

और विशेष बात यह है कि उक्त (ऊपर कहे हुए) ज्ञानों में... यह प्रत्यक्ष और परोक्ष के जो भेद किये, प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद किये, ऐसे ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल,... साक्षात् मोक्ष का मूल। मूल-मूल। 'मूलं नास्ति कुतो शाखा' कहते हैं न? ऐसे मूल ही न हो, वहाँ शाखा-पत्ते (कहाँ आये)? ऐसे मूल क्या है, उसकी ही खबर न हो, वहाँ उसकी ओर के श्रद्धा, ज्ञान उसके सन्मुख झुकाकर धर्म प्रगट करना, यह बात अज्ञानी को अनादि से खबर नहीं। अर्थात् कि ज्ञानों में... (ऊपर कहे गये) ज्ञानों में... ऊपर कौन कहे? स्वरूपप्रत्यक्ष, सकलप्रत्यक्ष, विकलप्रत्यक्ष, मति, श्रुत परमार्थ से परोक्ष और व्यवहार से प्रत्यक्ष। ऐसे भेदों में उन ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित... निजपरमतत्त्व चिदानन्द आत्मा में स्थित पर्यायरूप से। समझ

में आया ? लो, यह धर्म कहलाता है। लोग कहे परन्तु यह धर्म भाई ! कैसे करना हमको खबर पड़ती नहीं। यह इतनी-इतनी बात आवे, परन्तु यह ऐसा है और वैसा है, परन्तु उसमें धर्म कैसे करना ? यह धर्म की ही बात शाम-सवेरे यही चलता है। लोगों ने उल्टी रीति से, दूसरे प्रकार से पकड़ी है, इसलिए यह ग्राह्य परन्तु हुआ कैसे, यह इसे ख्याल आता नहीं।

भगवान आत्मा प्राप्त की प्राप्ति है। उसमें हो तो बाहर आयेगा। तो कहते हैं कि यह ज्ञान के भेद कहे, वह केवलज्ञान भी मोक्ष का... केवलज्ञान तो मोक्षस्वरूप है और वह तो साधक को होता नहीं। चार ज्ञान मोक्ष का मूल नहीं। क्योंकि चार ज्ञान तो पर्याय है। पर्याय का तो अभाव होकर केवल (ज्ञान) होता है। तीन तो अज्ञान हैं। उनका अभाव करके सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्ज्ञान की चार पर्यायों का अभाव होकर केवलज्ञान होता है। साधक को केवलज्ञान होता नहीं। तब कहे मति और श्रुतज्ञान होता है, वह भी कहाँ से होता है ? कि **ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है...** उसमें से मति-श्रुतज्ञान होता है। समझ में आया ? ऊपर जो स्वरूपप्रत्यक्ष कहा, पहले कारणस्वभाव ज्ञानोपयोग कहा, उसे आदरणीय कहने के लिये यह बात ली है। समझ में आया ? ज्ञानों में यह भगवान आत्मा,...

यहाँ नियमसार है न! नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग और मोक्ष का मार्ग तो पर्याय है। कहीं मोक्ष का मार्ग द्रव्य-गुण नहीं, द्रव्य-गुण तो ध्रुव है और यह कारणपर्याय भी ध्रुव है। यह स्वरूपप्रत्यक्ष कारणस्वभाव उपयोगरूपी पर्याय भी ध्रुव पर्याय विशेष है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। मोक्ष का मार्ग तो वह ध्रुवपर्याय त्रिकाल सहजज्ञान स्वरूपप्रत्यक्ष कारणस्वभावज्ञानोपयोगरूपी पर्याय, उसका अन्तर अवलम्बन लेने से मति और श्रुतज्ञान और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगटती है अथवा यहाँ सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है। कहो, समझ में आया ?

ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल, निजपरमतत्त्व में स्थित... भगवान एक समय में द्रव्य से, गुण से और पर्याय से पूर्ण है। वह पर्याय एक समय की ध्रुवरूप कारणस्वभावरूप उपयोग, वह निजपरमतत्त्व में स्थित पर्याय पड़ी है विशेष। **ऐसा एक सहजज्ञान ही है...** देखो, उसमें तो भेद पड़ गये। तीन ज्ञान, चार ज्ञान, एक केवलज्ञान। यह एक सहज ज्ञान

त्रिकाल है। आत्मा की ध्रुव पर्याय शुद्ध अप्रगट विशेषभाव स्वरूपप्रत्यक्ष, वह एकरूप है, त्रिकाल एकरूप है। वह केवलज्ञान प्रगटे तो भी एकरूप है। और क्या कहा? केवलज्ञान प्रगटे तो भी यह सहजज्ञान तो एकरूप ही है। अब केवलज्ञान प्रगट हुआ, इसलिए अन्तर की ध्रुवपर्याय में कुछ न्यूनता आयी या भेद पड़ा और केवलज्ञान प्रगट नहीं हुआ था और चार ज्ञान प्रगटे, तब इस ध्रुवपर्याय में कुछ पुष्टि थी और फिर कमजोर पड़ गयी, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? गजब विषय, बापू! यह विषय....

एक समय में... देखो, चौंसठ पहरी पर्याय प्रगट हुई, तो भी उसमें से चौंसठ पहरी पर्याय का परिणाम तो सदा चालू ही है। चौंसठ पहरी सदा ही चालू है। सदा ही चालू किसके आधार से? अन्दर शक्ति के आधार से सदा ही चालू ही है। इसी प्रकार केवलज्ञान की पर्याय अरिहन्त को, सिद्धों को हुई, वह पर्याय तो एक समय की है। केवलज्ञान ही एक समय रहता है। दूसरे समय उसका व्यय होकर दूसरी केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। केवलज्ञान कहीं गुण नहीं। केवलज्ञान, केवलदर्शन नयी पर्याय प्रगट होती है और वह एक समय की पर्याय होती है। संसारपर्याय भी एक समय की, मोक्षमार्ग भी एक समय की पर्याय और मोक्ष में केवलज्ञान भी एक समय का है। दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा, चौथे समय में चौथा। ऐसे नयी-नयी पर्यायों केवलज्ञान की भी अरिहन्त के आत्मा और सिद्ध के आत्मा में से प्रगट होती है। यह केवलज्ञान हुआ तो भी कारणपर्याय तो ऐसी की ऐसी है। ओहोहो! समझ में आया? ऐसी की ऐसी एकरूप है। सुनने में कभी आयी नहीं। क्या करे? यह बात ही हिन्दुस्तान के लिये नयी है। समझ में आया? धर्म, वह आत्मा क्या है और धर्म कैसे होता है? यह बात ही कोई दूसरी अपूर्व और दूसरी चीज़ है।

यहाँ कहते हैं कि साक्षात् मोक्ष का मूल निजपरमतत्त्व। निज, हों! परपरमतत्त्व परमात्मा नहीं, अरिहन्त नहीं, सिद्ध नहीं और मति तथा श्रुतज्ञान की पर्याय, वह निजपरमतत्त्व नहीं। निजपरमतत्त्व जो एक समय में पूर्ण ज्ञानघन स्वभाव शक्ति का पिण्ड है। जैसे पीपर के दाने-दाने में चौंसठ पहरी भरपूर शक्ति, चौंसठ पहरी कहो, पूरी कहो, सोलह आना कहो, रुपया कहो; उसी प्रकार आत्मा में एक-एक समय में पूर्ण ज्ञान निजतत्त्व स्वभाव में पड़ा है। उसमें स्थित, उसके गुण के साथ रहा हुआ एक समय

में पर्याय। ऐसा एक सहजज्ञान ही है... मोक्ष का मूल कारण, मोक्ष का मूल। ओहोहो! समझ में आया? मोक्ष का मूल क्या? सहज ज्ञानपर्याय, ध्रुवपर्याय मोक्ष का मूल है। उसके अवलम्ब को मोक्ष की पर्याय और मति-श्रुतज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है। बाकी दूसरे किसी कारण से मोक्ष की पर्याय और सम्यग्ज्ञान उत्पन्न ही नहीं होता तीन काल में। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय त्रिकाल....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल रहती है, ऐसी की ऐसी सदृश्य रहती है। समय-समय में सदृश्य। पर्यायदृष्टि से परिणमन तो सबका है। द्रव्य का, गुण का, पर्याय का सबका परिणमन है न पर्यायदृष्टि से। गुण है, वह कहीं एकरूप नहीं रहते। जैसे चक्की का पाट है। घंटी को क्या कहते हैं? चक्की। तो चक्की का निचला पाट है, वह पड़ा रहता है, ऊपर का पाट घूमता है, ऐसा है इस आत्मा में? कि ऊपर की पर्याय फिरती है... यह क्रमबद्ध में सब आया है कि ऊपर की पर्याय फिरती है और द्रव्य-गुण तो एकरूप रहते हैं, फिरते ही नहीं कभी, ऐसा नहीं। क्योंकि जो पर्याय प्रगट है, वह अप्रगट है और नहीं प्रगटी हुई बाहर आती है। तो अन्तर द्रव्य-गुण में भी उसका परिणमन होता है, परन्तु पर्यायदृष्टि से परिणमन है। द्रव्यदृष्टि से द्रव्य-गुण और वह पर्याय सदृश्य ध्रुव है। प्राणभाई! ऐई! हिम्मतभाई! गजब व्याख्या, भाई! पूरा चक्र पलटता है। चक्की का, चक्की का पाट नीचे पड़ा, वह नहीं पलटता, ऊपर का पलटता है, ऐसा नहीं। आत्मा की ऊपर की पर्याय प्रगट परिणमती है और वह पूरा द्रव्य-गुण तो बिल्कुल नहीं परिणमता, ऐसा नहीं है। ऐसा हो तब तो प्रगट पर्याय का व्यय, अप्रगट पर्याय का उत्पाद किसके आश्रय से हुआ? पूरा द्रव्य गुलाँट खाता है। गुलाँट खाता है। गुलाँट समझ में आता है? एक समय का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, वह दूसरे समय रहते ही नहीं। यह क्रमबद्ध में सब रखा है।

आत्मा में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग का एक समय जो द्रव्य, जो क्षेत्र असंख्यप्रदेशी, जो अनन्त गुण-भाव और एक समय की पर्याय चारों ही पलटा खाते हैं, ऐसे गुलाँट खाते हैं। वीरजीभाई! सूक्ष्म विषय है, भाई! यह बात क्रमबद्ध में विस्तार से मूल पाठ की अपेक्षा से डाली थी। क्रमबद्ध का अधिकार डाला उसमें। समझ में

आया ? अर्थात् पूरा आत्मा, पूर्ण आत्मा द्रव्य, क्षेत्र—असंख्य प्रदेशी, काल—एक समय की पर्यायरूप, भाव—त्रिकाल शक्ति, सब समय-समय में पलटते हैं। परन्तु वह द्रव्य, क्षेत्र और भाव त्रिकाली हैं और उसकी ध्रुव पर्याय जो एक अंश स्वरूपप्रत्यक्ष है, वह सदृश्यरूप से एक रहती है। सदृश्यरूप से एक रहती है, परन्तु पर्यायदृष्टि से सबका परिणामन होता है। समझ में आया ? ... भाई ! क्रमबद्ध में थे ? थे, ठीक। कहो, समझ में आया ? क्रमबद्ध का व्याख्यान चलता हो, तब तो १३ व्याख्यान हुए थे न ? बहुत सूक्ष्म थे।

ज्ञानों में... यह क्रमबद्ध की व्याख्या, यह कारण की व्याख्या शुद्धकारणपर्याय की। दोनों इस वर्ष के लिये विस्तार से नयी है। विस्तार से नयी है, हों ! संक्षेप से तो पहले सब कही जा चुकी थी। विस्तार से विशेष है। यहाँ कहते हैं कि यह आत्मा, उसका जो ज्ञानस्वभाव त्रिकाल, उसमें जो पर्यायरूप कारणस्वभावज्ञानोपयोग, जो पर्यायरूप स्वरूपप्रत्यक्ष ज्ञानरूप अप्रगट उपयोग, वही साक्षात् मोक्ष का मूल है। लो ! मोक्ष का मूल दूसरा कोई नहीं। यह संहनन और मनुष्यदेह मोक्ष का मूल है या नहीं ?—नहीं। संहनन मजबूत होना चाहिए केवलज्ञान में वज्रकाय, वज्रकाय। वज्रकाय कहते हैं न तुम्हारे हिन्दी में ? हमारे यहाँ काठियावाड़ में वज्रवृषभनाराचसंहनन। वज्रकाय। संहनन मनुष्यदेह, चौथा काल, काल ऐसा, वैसा, मन चाहिए, पंचेन्द्रिय चाहिए। वह मोक्ष का मूल नहीं। अपनी पर्याय में व्यवहार विकल्प दया, दान, भक्ति का, व्रत का उत्पन्न हो, वह विकार मोक्ष का मूल कारण नहीं। अपनी प्रगट पर्याय है मति-श्रुत सम्यग्दृष्टि की, सम्यग्दृष्टि की प्रगट मति-श्रुत पर्याय, वह मोक्ष का मूल नहीं। मिथ्यादृष्टि का मति-श्रुत तो अज्ञान है, उसकी तो गिनती नहीं, परन्तु सम्यग्दृष्टि की मति-श्रुतज्ञान पर्याय है, वह मोक्ष का मूल नहीं, तो केवलज्ञान साधक (को) तो है ही नहीं।

तो कहते हैं कि ऊपर कहे हुए ज्ञानों में कितने भेद किये ? स्वरूपप्रत्यक्ष एक समय की पर्याय ध्रुव, सकलप्रत्यक्ष केवलज्ञान, विकलप्रत्यक्ष अवधि और मनःपर्याय, परमार्थ से परोक्ष मति और श्रुत, व्यवहार से प्रत्यक्ष मति और श्रुत। इन भेदों में साक्षात् मोक्ष का मूल, मोक्ष का कारण, मोक्ष का मूल कारण वह निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहजज्ञान ही है। एक सहजज्ञान ही है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया ?

अब शास्त्र में कथन का पार नहीं होता। शास्त्र में। यह चरणानुयोग में कथन ऐसी विधि। ओहोहो! ऐसा लेखन, ऐसा देखना। क्या है? वह तो विकल्प आता है तो ज्ञानी जानता है। ऐसा होता है, होता है, मैं कुछ करता नहीं, जड़ की पर्याय परमाणु का लेना-देना। और मैं शुभविकल्प लाता भी नहीं, आता है। लाऊँ, मैं ऐसा शुभराग लाऊँ तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। क्योंकि क्रमबद्ध में राग को लाना, वह पर्याय के ऊपर दृष्टि हो जाती है। कर्मचेतना हो जाती है। राग में एकाग्र होकर लाऊँ, वह तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। सम्यग्दृष्टि का सम्यग्ज्ञान जो मति-श्रुत प्रवर्तता है, वह भी मोक्ष का मूल नहीं है। राग मोक्ष का मूल नहीं, निमित्त मोक्ष का मूल नहीं। ओहोहो! मोहनभाई!

उन सब ज्ञानों में... पहले भेद किये थे नौ, पश्चात् प्रत्यक्ष के और परोक्ष के भेद किये। अब उसमें उपादेय कौनसा, यह बात करते हैं। उसमें उपादेय समझे न? उसमें अंगीकार करनेयोग्य कौन है? तो कहते हैं कि उन ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष का मूल कारण,... परम्परा वे मति और श्रुतज्ञान परम्परा से मोक्ष का कारण कहे जाते हैं, परन्तु यहाँ स्वभाव को कारण करे तो। समझ में आया? ज्ञानों में साक्षात् मोक्ष... अर्थात् परम शुद्धदशा। मोक्ष अर्थात् क्या? कि आत्मा की परम शुद्धदशा, आत्मा की परम निर्मल वीतरागी केवलज्ञानसहित की दशा, उसे मोक्ष कहते हैं। वह मोक्ष आत्मा की एक पर्याय है; वह कहीं गुण नहीं, द्रव्य नहीं। जैसे संसार विकारीपर्याय है, वैसे मोक्षमार्ग निर्विकारी अपूर्ण पर्याय है और मोक्ष एक निर्विकारी पूर्ण पर्याय है। ऐसे तीन भेद हुए। यह साक्षात् ज्ञान में जो ध्रुव स्वरूपप्रत्यक्ष और निजपरमतत्त्व में स्थित, निजपरमतत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से स्वरूपप्रत्यक्ष ऐसा जो अकेला कारणस्वभावज्ञानउपयोगरूप पर्याय, वह एक ही मोक्ष का मूल है। ऐसा एक सहजज्ञान ही है... कहो, समझ में आया?

अब यह धर्म की पद्धति और धर्म कैसे हो, यह आता है या नहीं इसमें? इसमें समझने न? इसमें आता है या नहीं? बहुत गड़बड़ हो गयी, ऐसी गड़बड़ हो गयी। पढ़-पढ़कर पढ़े पण्डिताई ऊपर पानी। पण्डिताई के ऊपर पानी फिर जाता है। धर्मदास क्षुल्लक सम्यग्ज्ञानदीपिका में कहते हैं, कि जब आत्मा एक समय में 'शुद्ध ज्ञायक हूँ, चिदानन्द हूँ' ऐसी दृष्टि हुई, (वहाँ) सब पण्डिताई के ऊपर पानी। क्यों? कि ऐसा होता था, ऐसा होता था, राग से होता है, व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, राग मन्द

करने से होता है, ब्रह्मचर्य पात्रता में से होता था, वह सब छूट गया। एक समय में मैं शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण और शुद्ध ध्रुवपर्याय का अवलम्बन लेकर जहाँ आत्मा का अनुभव हुआ, अहो! मोक्ष का मूल तो यह एक ही द्रव्य, गुण और पर्याय शुद्ध है, दूसरा कोई मोक्ष का मूल नहीं। सब कथन वर्तमान अप्रगट। अप्रगट पर्याय अर्थात् अपूर्ण पर्याय चार ज्ञान में हों, अथवा रागादि हो, उन्हें जानने में व्यवहारनय जानता है। व्यवहारनय का विषय जानना है। परन्तु निश्चय का विषय, वह निजपरमतत्त्व में स्थित ऐसा एक सहज ज्ञानोपयोग, वही अंगीकार करके, आदरणीय करके सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान होता है। यहाँ तो ज्ञान का अधिकार है। उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है और उसके ही आश्रय से श्रुत आदि का भाव-उपयोग होता है। कहो, समझ में आया ?

तथा सहजज्ञान,... अर्थात् कारणस्वभावज्ञानोपयोगरूपी स्वरूपप्रत्यक्षरूप पर्याय (उसके) पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण,... स्वभाव के कारण। सहजज्ञान पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण,... पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण। लो! यह कारणरूप स्वभावउपयोग पारिणामिकभाव है, यह उदयभाव नहीं, उपशमभाव नहीं, क्षयोपशमभाव नहीं, क्षायिकभाव नहीं। चार भाव तो प्रगट पर्यायरूप है। यह तो त्रिकाल चैतन्यभावरूप परमपारिणामिकभाव। तत्त्वार्थसूत्र में दूसरे अध्याय में पहला सूत्र आता है। तत्त्वार्थसूत्र का दूसरा अध्याय, पहला सूत्र आता है न निजतत्त्व, उपशम। मिश्र, उदय, जीव... जीव का ... है पाँचों ही। उसमें क्षायिक, क्षयोपशम, उपशम और उदय तो जीव की एक समय की पर्याय है। एक समय की पर्याय और पारिणामिकभाव त्रिकालभाव है त्रिकालभाव। अनादि-अनन्त उस पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण सहजज्ञानरूप उपयोग, सहजज्ञानरूप स्वरूपप्रत्यक्षरूप, मोक्ष के मूलरूप जो कारण-स्वभावज्ञानोपयोग, वह पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण, भव्य का परमस्वभाव होने से,... भव्य का परमस्वभाव होने से। क्योंकि भव्य को भान होता है। अभव्य को वह भान नहीं होता। अभव्य को... समझ में आया ? यह घोरडू मूंग और घोरडू मठ। घोरडू कहते हैं न, क्या कहते हैं तुम्हारे ? घोरडू मूंग और मठ होते हैं न। लाख मण पानी दे तो भी वह सीझता नहीं। कसकर चूरा हो परन्तु पिघलता नहीं। कसकर चूरा हो।

भरडे समझे न? यह चक्की में पीसे तो आटा हो, पिघले (सीझे) नहीं। अज्ञानी अभव्य और वे अभव्य जैसे भव्य, वह परमपारिणामिकभाव मोक्ष का कारण है, उसका ज्ञान उन्हें होता नहीं। मोहनभाई! देखो, **भव्य का परमस्वभाव होने से,...** अभव्य को तो है, हों! परन्तु किस काम का? यह तो आगे आयेगा। मेरुपर्वत के नीचे सोना है। मेरुपर्वत के नीचे स्वर्ण है, किस काम का? यह आगे (११०) गाथा में आयेगा। उसी प्रकार अभव्य को परमपारिणामिकस्वभावभाव तो है, उसकी दृष्टि करता नहीं। यहाँ से धर्म मिलेगा, यहाँ से—पुण्य से मिलेगा, क्रियाकाण्ड से मिलेगा, राग से मिलेगा, व्यवहार से मिलेगा, पर से मिलेगा, ब्रह्मचर्य पालने से मिलेगा, दया पालने से मिलेगा, व्रत-तप करने से मिलेगा, मूढ़ अभव्य और अभव्य जैसे भव्य अनादि काल के उस पर से धर्म की शोध करते हैं।

तो कहते हैं कि परमस्वभावरूपभाव, वह पारिणामिकभावरूप स्वभाव के कारण, **भव्य का परमस्वभाव होने से, सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है।** सम्यग्दृष्टि को अपना सहजज्ञानस्वभाव उपयोग के अतिरिक्त। इसके अतिरिक्त कहते हैं न? इसके अलावा दूसरा कुछ उपादेय नहीं है। सम्यग्दृष्टि को दूसरा कुछ उपादेय नहीं। व्यवहाररत्नत्रय उपादेय नहीं, निमित्त उपादेय नहीं, निश्चयरत्नत्रय पर्याय में प्रगट हुए, वे भी उपादेय नहीं। ओहोहो! समझ में आया? **सहजज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है।** भव्य जीवों को, धर्मी जीवों को, आत्मार्थी जीव को, कल्याणार्थी जीव को, मोक्षार्थी जीव को परम आनन्द के अभिलाषी जीव को इस स्वभाव में रहा हुआ शुद्धपरमपारिणामिकभाव से स्थित ऐसा शुद्धकारणस्वभावज्ञानोपयोगरूप प्रत्यक्षज्ञान, स्वरूपप्रत्यक्षज्ञान के अतिरिक्त कुछ अंगीकार करनेयोग्य नहीं। बीच में राग आता है, निमित्त आते हैं, उन्हें जाननेवाला आत्मा है। है... है... जानता है, आदरणीय नहीं। कहो, समझ में आया?

देखो, यहाँ तो **अन्य कुछ उपादेय नहीं है।** ऐसा कहा। दूसरा कुछ उपादेय नहीं। 'कुछ' शब्द प्रयोग किया है। कुछ के ऊपर वजन दिया है। कुछ उपादेय नहीं। समझ में आया? **'परमस्वभावत्वात् सहजज्ञानादपरमुपादेयं न समस्ति।'** किञ्चित्मात्र भी समकित्ती को, धर्मी जीव को अन्तर स्वभाव में से खान में से ज्ञानपर्याय निकलती है।

ज्ञानपर्याय का धारक पर्यायवान, उसमें जो निर्मलपर्याय शुद्धकारणरूप ज्ञानपर्याय है, वही उपादेय है कि जिसके अवलम्बन से केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होती है और इन चार ज्ञान की पर्याय का व्यय होता है। लो, भाई! यह तो इतना स्पष्ट कर दिया। तो व्यवहारनय से तो उपादेय है न? परन्तु व्यवहारनय से उपादेय का अर्थ क्या? कि निश्चय से उपादेय नहीं। व्यवहारनय से कुछ उपादेय आवे, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य व्यवहार विकल्प। उसका अर्थ यह कि व्यवहार से अर्थात् 'ऐसा है नहीं', परन्तु स्वभाव को उपादेय करने में वह विकल्प आदि निमित्त और वर्तमान वर्तते हैं, इस कारण से उन्हें व्यवहार से उपादेय कहा, परमार्थ से उपादेय नहीं होता और परमार्थ से सहजज्ञान उपादेय माना, तब व्यवहार से उपादेय, ऐसा कहने में आता है, परन्तु अपनी दृष्टि स्वभाव सन्मुख न हुई और विकार का प्रेम, पुण्य, पाप, निमित्त की क्रिया से धर्म होगा, उस मिथ्यादृष्टि को उसे मोक्ष के कारण की खबर नहीं। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! अभी यह १५ गाथा तक सूक्ष्म आयेगा।

अब कहते हैं... वह की वह बात है जरा देखो, यह सहजचिद्विलासरूप से... यह सहज चिद्विलासरूप से रमणता में, स्वाभाविकज्ञानविलासरूप से स्वभाव अनन्त चतुष्टययुक्त आत्मा को भाना, ऐसा कहना है, भाई! सहजज्ञान विलासरूप से स्वभाव अनन्तचतुष्टयसहित आत्मा को भाना। कैसा आत्मा? कि (१) सदा सहज परमवीतराग सुखामृत,... एक विशेषण दिया। कैसा है भगवान आत्मा? यह त्रिकाल की बात चलती है त्रिकाल। अन्दर में-अन्दर में शक्ति। सदा त्रिकाल सहज परमवीतरागसुखामृत ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव है, त्रिकाल ध्रुवस्वभाव है। समझ में आया? सदा अर्थात् त्रिकाल, सहज अर्थात् स्वाभाविक, परम अर्थात् उत्कृष्ट, वीतराग अर्थात् राग की आकुलतारहित और सुखामृत अर्थात्, वीतराग तो रागरहित नास्ति से कहा, सुखामृत—सुखरूपी अमृत आत्मा का अन्तर स्वभाव चौंसठ पहरी चरपराई, वह प्रत्येक पीपर में जैसे भरी है, उसी प्रकार भगवान आत्मा में सुखामृत चैतन्यशक्ति में पड़ा है। अन्तर ध्रुवस्वभाव में सुखामृत अतीन्द्रिय आनन्दअमृत, एक बोल। चार चतुष्टयवाला आत्मा भाना, ऐसा कहना है, भाई! यहाँ चिद्विलास ज्ञान कहा न! ऐसे ज्ञान के विलास में ऐसे चार गुणसहित आत्मा को भाना। चार गुण अन्तर के, हों, अन्तर की पर्याय। यह सुख की व्याख्या की।

(२) अप्रतिहत निरावरण परमचित्शक्ति का रूप,... कैसा है भगवान आत्मा अन्तर में? अप्रतिहत जिसका वीर्य और ज्ञान या जिसका बल किसी से प्रतिहत नहीं होता। ध्रुवरूप, ध्रुवरूप, त्रिकाल ध्रुव। गुण और पर्याय ध्रुव ऐसे हैं कि अप्रतिहत, कोई उन्हें प्रतिहत करे, हटा दे। पाछो पाड़े समझे? हटा दे पीछे, ऐसा नहीं। अप्रतिहत अन्तर में निरावरण परमचित्शक्ति, ज्ञान का बल, ज्ञान का बल, ज्ञान का वीर्य। समझ में आया? यह ज्ञान के अन्तर वीर्य, यह प्रगट वीर्य की बात नहीं। अन्तरबल प्रगट वीर्य होता कहाँ से है? अन्तर वीर्य प्राप्त की प्राप्ति है। अन्तर में परमचित्शक्ति ज्ञान का बल वर्तता है अन्तर में अनन्तगुना। चित्शक्ति का रूप वह है। यह तो उसका स्वरूप त्रिकाल है। दो बोल। पहला सुख, दूसरा वीर्य।

तीसरा चारित्र। (३) सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज परमचारित्र,... यह प्रगट चारित्र की व्याख्या नहीं। सामायिक, अन्दर जो छेदोपस्थानीय प्रगट शान्ति वीतरागी पर्यायरूप चारित्र की बात नहीं। सदा अन्तर्मुख। आत्मा में सदा अर्थात् त्रिकाल अन्तर्मुख। वह तो पर्याय बाहर हुई। स्वभाव का भान करके सामायिक पर्याय शान्ति की, सम्यग्दृष्टिपूर्वक जो शान्ति आनन्द की पर्याय हुई, वह सामायिक तो प्रगट पर्याय है। यह तो सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल... अपना निजस्वरूप उसमें अविचल—चलित नहीं ऐसा स्थितिरूप सहज परमचारित्र,... यह तीसरे गुण और पर्याय। यह शक्तिवान, उसकी शक्ति और शक्ति की ध्रुवपर्याय सबमें लेना। समझ में आया? यह सुखगुणरूप है और सुख की पर्याय ध्रुवरूप ही है, वह वीर्य गुणरूप भी है और वीर्य का अंश ध्रुवपर्यायरूप भी है और चारित्र ध्रुवरूप गुण है और उसकी पर्याय ध्रुवरूप एक कारणरूप है। ऐई! वीरजीभाई! परन्तु बहुत सूक्ष्म भाई बहुत कांता, कहते हैं।

मुमुक्षु : पर्याय ध्रुव है? प्रगट चारित्र की बात नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय भी ध्रुव है। यहाँ प्रगट चारित्र की बात नहीं। यह प्रगट की बात नहीं। त्रिकाल की बात है, ध्रुव की बात है। उसकी भावना करना, उस भावना में प्रगट ज्ञान-दर्शन-चारित्र आते हैं। यह भाव आयेंगे। यह तो त्रिकाल की बात है। एक समय में आत्मा स्वाभाविक परमवीतराग अमृतस्वरूप अप्रतिहत। वीर्य का अधिकार

आया न! वह स्वाभाविक वीतराग सुखामृत विशेषण दिया, आनन्द को वीतराग विशेषण दिया, यहाँ अप्रतिहत निरावरण परम बल कि उस बल को कोई घात करनेवाला नहीं, बल को कोई हत करनेवाला नहीं, ऐसा त्रिकाली आत्मा में बल पड़ा है ध्रुव, वह गुण और पर्याय।

अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में... वापस चारित्र शब्द है न चरना अर्थात् शब्द बदला। अन्तर्मुख वह त्रिकाल की बात है। चारों के विशेषण भिन्न हैं। आनन्द का विशेषण, बल का विशेषण, चारित्र का विशेषण कि **सदा अन्तर्मुख ऐसा स्वस्वरूप में अविचल स्थितिरूप...** अन्तर में अविचल—चलित न हो, ऐसी स्थितिरूप स्वाभाविक परमचारित्र त्रिकाल। गुण, गुणरूप और पर्यायरूप त्रिकाल। अब एक श्रद्धा बोल लेते हैं। समझ में आया? अब श्रद्धा बोल लेते हैं। चौथा बोल श्रद्धा। त्रिकाल की बात चलती है, हों! प्रगट की नहीं।

(४) **त्रिकाल अविच्छिन्न...** देखो, श्रद्धा का विषय भाई इसमें लिया है। विषय ही अलग लिये हैं चारों के ही। **त्रिकाल अविच्छिन्न (अटूट)...** अटूटक—अभंग होने से **सदा निकट, ऐसी...** सदा अन्दर निकट ऐसी **परम चैतन्यरूप की श्रद्धा...** परम चैतन्यरूप की श्रद्धा ध्रुव, प्रगट की बात नहीं। समझ में आया? ऐई! हिम्मतभाई! क्या है? **इस स्वभाव-अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ (सहित) है...** क्या है? कैसा है भगवान आत्मा? एक समय के अन्दर सेकेण्ड के असंख्य भाग में। चारों के विशेषण दूसरे प्रयोग किये, भाई! अलग कारण है, हेतुसहित है। आनन्द वीतरागी, बल अप्रतिहत और निरावरण, चारित्र अविचल स्थितिरूप और श्रद्धा त्रिकाल अटूटरूप। समझ में आया? अन्दर की बात है यह तो, हों! अभी प्रगट की नहीं। ऐसा जो स्वचतुष्टय, उस स्वभाव अनन्त चतुष्टय से जो सनाथ है। आत्मा में यह चारों ही पर्याय और गुण भरे हैं। सनाथ अर्थात् सहित है। वह रहित कभी आत्मा होता नहीं। क्या कहा? इन चार भाव से रहित कभी आत्मा नहीं। ऐसे आत्मा को, ऐसा आत्मा जो सदा वीतराग आनन्दरूप, सदा अप्रतिहत निरावरण चित्शक्तिरूप, सदा अविचल स्थितिस्वरूप परमभाव में स्थितिरूप चारित्र और त्रिकाल अटूट चैतन्यरूप श्रद्धा, ऐसी पर्याय और गुणरूप, ऐसे आत्मा को **अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को...** अनाथ मुक्तिसुन्दरी, उसका नाथ वह वही स्वयं ही

है। उसका नाथ दूसरा आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं होता। अनाथ मुक्ति सुन्दरी, मुक्तिरूपी सुन्दरी निर्मल पर्याय, निर्विकारी सुन्दरी वीतरागीदशा के नाथ को भाना... यह भाना, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आ गये, नयी पर्याय। भाना, भाना। वह त्रिकाल की बात आयी चार और ऐसे आत्मा की भावना करना, भावना करना। यह भावना में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक् आनन्द इत्यादि आ गये। प्रगट पर्यायरूप। वह अनाथ है, अनाथ मुक्तिसुन्दरी के नाथ को... मुक्तिसुन्दरी का दूसरा कोई नाथ ही नहीं। वह स्वयं आत्मा ही उसका नाथ है। उसका अनाथ, उसका नाथ एक आत्मा ही है, उसका दूसरा कोई नाथ नहीं। समझ में आया? (अर्थात्, सहजज्ञान-विलासरूप से... वह कहा था न सहजचिद्विलासरूप से? पहला शब्द था यह। पहला शब्द था उस ओर २९वें पृष्ठ पर। सहजचिद्विलासरूप से। क्योंकि यह ज्ञान का अधिकार है न? इसलिए ज्ञान के विलासरूप में ऐसे चार गुण और पर्यायवाले आत्मा की भावना करना, अनुभव करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



पौष शुक्ल १४, दिनांक - ०७-०१-१९५५

गाथा-१३, प्रवचन नं. ४१३

यह नियमसार, इसका जीव अधिकार है, इसकी १३वीं गाथा ।

तह दंसणउवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो ।

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं ॥१३ ॥

दर्शनपयोग स्वभाव और विभाव दो विधि जानिये ।

इन्द्रिय-रहित, असहाय, केवल, दृग्स्वभाविक मानिये ॥१३ ॥

इसका अन्वयार्थ । देखो, यह दर्शन-उपयोग के अधिकार की गाथा है । ज्ञान-उपयोग के अधिकार की बात आ गयी । तीन अज्ञान, पाँच ज्ञान और एक कारणस्वभाव उपयोग त्रिकाल, ऐसे नौ का अधिकार आ गया । इसमें दर्शन-उपयोग की व्याख्या है और दर्शन उपयोग के साथ श्रद्धा का भी अधिकार साथ में अधिकार लिया है । भेड़ो समझे ? साथ में । स्वरूपश्रद्धा और दर्शनोपयोग दोनों की बात साथ में ली है । क्योंकि दर्शन देखना है और यह दर्शन अर्थात् श्रद्धा है । दोनों की बात साथ में इसमें गिनकर बात ली है । कहते हैं कि ज्ञान के जो भेद कहे, उसी प्रकार... अन्वयार्थ है । दर्शनोपयोग... देखने का जो उपयोग स्वभाव और विभाव के भेद से दो प्रकार का है । यह जरा सूक्ष्म बात है । वह ज्ञान की आयी, ऐसे यह दर्शन में भी दो-दो प्रकार, इसलिए जरा सूक्ष्म बात है । जो केवल इन्द्रियरहित और असहाय है, वह स्वभावदर्शनोपयोग कहा है । समझ में आया ?

टीका :- यह दर्शनोपयोग के स्वरूप का कथन है । दर्शनोपयोग अर्थात् चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग । आत्मा के चैतन्यगुण को अनुसरकर होता अन्दर एक पर्यायरूप परिणाम, उसे उपयोग कहते हैं । उस उपयोग के ज्ञान परिणाम जो ध्रुव है, उसका अधिकार आ गया, अब दर्शनोपयोग के परिणाम किस प्रकार के हैं, उसका अधिकार इसमें कहते हैं । जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है,... बहुत

भेदवाले आ गये न? पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान और एक कारणस्वभावज्ञानोपयोग। और विभाव के भी भेद आ गये। विभावज्ञान के भी सात भेद। सम्यक् विभावज्ञान के चार भेद और अकेले विभावज्ञान के तीन भेद। यह अधिकार आ गया।

जिस प्रकार ज्ञानोपयोग बहुविध भेदोंवाला है,... देखो, उपयोग की व्याख्या है यह। चैतन्य को अनुसरकर होनेवाला उपयोगरूप परिणाम—पर्याय की व्याख्या है। उसी प्रकार दर्शनोपयोग भी वैसा है; (वहाँ प्रथम, उसके दो भेद हैं) स्वभाव-दर्शनोपयोग... स्वभाव सामान्यदर्शनोपयोग और विभावसामान्यदर्शनोपयोग। स्वभाव-दर्शनोपयोग भी दो प्रकार का है—कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभाव-दर्शनोपयोग। ओहो! देखो, कारणस्वभावदर्शनोपयोग जो आत्मा में, आत्मा त्रिकाल है, उसका दर्शनगुण सामान्य त्रिकाल है, उसकी एक समय की ध्रुव पर्याय, उसे कारणस्वभाव दर्शनोपयोग कहते हैं। और उस कारणस्वभाव उपयोग के अन्दर कारणदृष्टिरूप श्रद्धा की जो निर्मल पर्याय, आत्मा त्रिकाल, उसका श्रद्धागुण भी एक त्रिकाल, उस श्रद्धागुण के साथ रही हुई सामान्य ध्रुवरूप कारणश्रद्धारूप स्वरूपश्रद्धानरूप पर्याय, वह भी ध्रुवरूप है। समझ में आया? यह कारणस्वभावदर्शनोपयोग में इसके भेद लेंगे। और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग। यह तो केवलदर्शन, वह केवली को सर्वज्ञपने में तीर्थकरों को, केवली को जो केवलदर्शनोपयोग होता है, उसे कार्यस्वभावदर्शनोपयोग कहते हैं।

वहाँ कारणदृष्टि तो,... अब दृष्टि ली। यह तो दर्शनोपयोग और दृष्टि दोनों को साथ में अधिकार वर्णन करते हैं। देखो नीचे दृष्टि=दर्शन (दर्शन अथवा दृष्टि के दो अर्थ हैं : १. सामान्य प्रतिभास, (दर्शनोपयोग) और २. श्रद्धा। जहाँ जो अर्थ घटित होता हो, वहाँ वह अर्थ समझना। दोनों अर्थ गर्भित हों, वहाँ दोनों समझना।) सामान्य व्याख्या करके संक्षिप्त ही करे न! वह तो फिर विस्तार में करे, भाई! वहाँ... अब देखो, बात जरा यहाँ दो बातें आती हैं कि आत्मा एक समय में ध्रुव है, उसका दर्शनोपयोग भी ध्रुव है। दर्शनशक्ति गुण और उसके साथ रहा हुआ दर्शनोपयोग की एक समय की पर्याय भी ध्रुव है। जैसे आत्मा ध्रुव है, उसका श्रद्धा गुण त्रिकाल ध्रुव है, उसका एक समय का स्वरूपश्रद्धानमात्र पर्याय ध्रुव है। स्वरूपश्रद्धानमात्र पर्याय ध्रुव, और दर्शनोपयोग की पर्याय ध्रुव, दो की बात है इसमें। एक में दो की बात साथ में है। समझ में आया? अरे!

सूक्ष्म परन्तु अब समझना पड़ेगी या नहीं यह मनुष्य हुए उसे। एक समय की पर्याय ध्रुव। कारणस्वरूपश्रद्धान पर्याय और एक दर्शनोपयोगपर्याय। दर्शनगुण की दर्शनोपयोग पर्याय, श्रद्धागुण की स्वरूपश्रद्धानरूप पर्याय। दोनों ध्रुव पर्याय को एक साथ यहाँ समझाया है। समझ में आया? यह सूक्ष्म बात है, भाई! उसमें तो अकेले ज्ञानोपयोग की बात थी, इसमें दर्शनोपयोग और श्रद्धा दोनों साथ-साथ में ली जाती है।

कारणदृष्टि तो... कारणदृष्टि अर्थात् स्वरूपश्रद्धान। अन्त में लेंगे स्वरूपश्रद्धान। समझ में आया? कारणदृष्टि कहो या स्वरूपश्रद्धानमात्र कहो अथवा कारणस्वभाव-दर्शनोपयोग कहो या कारणसामान्यस्वभाव उपयोग कहो, पर्याय। दर्शनगुण की, दर्शन सामान्यगुण की पर्याय स्वभाव कारण उपयोगरूप पर्याय, वह सामान्यदर्शनगुण की पर्याय और त्रिकाल श्रद्धागुण की स्वरूपश्रद्धानमात्र ध्रुव पर्याय, उसे कारणदृष्टि अथवा स्वरूपश्रद्धानदृष्टि कहते हैं। अथवा कारणदृष्टि में दोनों भी समाहित हो जाते हैं। स्वरूपश्रद्धान भी समाहित होता है और कारणदर्शनोपयोगरूप पर्याय भी समाहित होती है। समझ में आया? मोहनभाई! बहुत सूक्ष्म इसमें। समझ में आया या नहीं? इन बच्चों को समझ में आता है या नहीं इन्हें—लड़कों को? लड़कों को समझ में आये और बड़ों को न समझ में आये? क्या कहना चाहते हैं यह तो ख्याल में आता है या नहीं? ख्याल में कि यह क्या कहना चाहते हैं?

कारणदृष्टि तो... इसके दो अर्थ। आत्मा और उसका दर्शनगुण त्रिकाल, उसके दर्शनगुण के साथ रही हुई दर्शनोपयोगरूप पर्याय ध्रुव भी त्रिकाल। दूसरी बात, आत्मा त्रिकाल, उसका श्रद्धागुण त्रिकाल। उस श्रद्धागुण की वर्तमान पर्याय स्वरूपश्रद्धानमात्र भी त्रिकाल ध्रुव। समयसार से भी जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया? छोटाभाई! यह तो सब पूर्व के सुने हुए को अधिक जरा... अब पर्याय की बात है, वह अधिक, इसलिए बात चलती है।

यह अधिकार नियमसार है। नियमसार अर्थात् मोक्ष के मार्ग की पर्याय अर्थात् कि पर्याय का इसमें अधिक अधिकार लिया है। देखो, जितना आलोचना, प्रायश्चित्त, छह आवश्यक, समाधि, भक्ति, वह सब पर्याय सत्क्रियारूप पर्याय का अधिकार है। सत्क्रिया निर्विकल्प शुद्धपर्यायरूप अधिकार है, उसमें यह ऐसा विस्तार लिया है।

समयसार में यह बात अधिकार खुल्ला नहीं, देखो, प्रवचनसार में नहीं, पंचास्तिकाय में नहीं। सामायिक और छह आवश्यक, प्रायश्चित, आलोचना, प्रतिक्रमण। समझ में आया ? इत्यादि-इत्यादि। समाधि, भक्ति वह सब पर्याय की व्याख्या। अरे ! शुद्धोपयोग अन्तिम, वह सब पर्याय की व्याख्या। शुद्धोपयोग है न अन्तिम अधिकार ? दर्शन भी स्वपरप्रकाशक, ज्ञान भी स्वपरप्रकाशक। वह पर्याय की बात है पर्याय की। वह पर्याय मोक्षमार्ग अधिकार है, इसलिए पर्याय का अधिकार इसमें स्पष्ट किया है।भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, नहीं। अनित्य नहीं। यह नहीं, यह तो स्वरूपश्रद्धान्धुव नित्य है, उसकी बात है। जो श्रद्धा प्रगट करनी है, उसकी स्वरूपश्रद्धा के ऊपर लक्ष्य रहता है। त्रिकाल स्वरूपश्रद्धारूप ध्रुवपर्याय, उसके आश्रय से वर्तमान सम्यग्दर्शन-पर्याय प्रगटती है, और त्रिकाल आत्मा का दर्शनगुण और दर्शन का स्वभाव कारणरूप पर्याय, उसके आश्रय से कार्यस्वभाव दर्शनोपयोग केवलज्ञानी को उत्पन्न होता है। कहो, समझ में आया ? सब अलग-अलग। दोनों पर्यायें अलग-अलग हैं। कारणदृष्टि में दो प्रकार हैं—एक स्वरूपश्रद्धानरूप पर्याय ध्रुव और एक कारणस्वभावदर्शनरूप उपयोगरूपी पर्याय ध्रुव। पर्याय की बात चलती है।

यह **कारणदृष्टि तो,...** कैसी है ? यह अब दोनों ले लेना। **सदा पावनरूप...** यह सदा पावनरूप पारिणामिकभाव। समझ में आया ? **सदा पावनरूप...** पवित्र सदा पवित्र अन्तर स्वभाव शुद्ध सदा पवित्र है। समझ में आया ? तीनों काल में पावनरूप पारिणामिकभाव ऐसा आत्मा, उसकी बात है आगे। **ऐसे आत्मा के यथार्थ स्वरूप-श्रद्धानमात्र ही है...** ऐसा लेना है। अन्तिम लाईन है न, भाई ! यह सब आत्मा के विशेषण हैं। कैसा है आत्मा ? **सदा पावनरूप...** वह सदा पवित्र आनन्दकन्द। भले उसकी पर्याय में विकार, पुण्य और पाप, काम-क्रोधादि हो। वह तो जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक होते हैं, परन्तु स्वभाव तो सदा ही पवित्र और पावन है।

कैसा है ? **औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर—ऐसा सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;...** किसका ? एक समय में त्रिकाल आत्मा शुद्ध परमपारिणामिकस्वभाव है। कैसा है ? कि उदय (अर्थात्) कर्म के निमित्त से

आत्मा की पर्याय में पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, शुभ-अशुभ विकार होता है, उसे उदय कहते हैं। उस उदय की अपेक्षारहित स्वभाव परमपारिणामिक है। उसे यह उदय है नहीं। समझ में आया ? औदयिकादि चार। उपशम। उपशमभाव है न। दर्शनमोह का उपशम होता है, चारित्रमोह का उपशम। उपशमभाव, वह तो एक समय की पर्याय है। एक समय की पर्याय की अपेक्षा बिना का परमपारिणामिक त्रिकाल भाव, उसे आत्मा कहते हैं। परमपारिणामिकभावस्वरूप जिसका स्वभाव है। उसमें उपशमभावरहित वह स्वभाव है। क्षयोपशमभाव। यह चार ज्ञानादि का क्षयोपशम हो, उस क्षयोपशमभावरहित वह स्वभाव है और केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिकभाव, उस क्षायिकभावरहित त्रिकाल परमपारिणामिकस्वभाव है। समझ में आया ?

यह चार विभावस्वभाव। औदयिकादि चार। उदय अर्थात् पुण्य-पाप, काम-क्रोध, दया, दान के विकल्प विकार से रहित त्रिकाल स्वभाव शुद्ध है। उपशमरहित है, क्षयोपशमरहित है और क्षायिक की वर्तमान पर्यायरहित त्रिकाल शुद्ध है। ऐसे चार विभावस्वभाव परभावों को। देखो, विभावस्वभाव परभाव। एक तो चार भाव को विभावस्वभाव कहा और चार को परभाव कहा। क्षायिकभाव भी परभाव। क्योंकि पारिणामिकभाव एक समय में पूर्ण शुद्ध सामान्य एकरूप चैतन्यद्रव्य है दल आनन्दकन्द परमपारिणामिक नित्यानन्दस्वरूप। वह चार पर्यायों, यह उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक, वह पर्याय है, वह विभावस्वभाव है। क्योंकि उसमें तीन में निमित्त की अपेक्षा है और चौथे में निमित्त के अभाव की, केवलज्ञान में क्षायिक में अपेक्षा है। इसलिए चार को विभाव—विशेषभावरूप स्वभाव कहा और चार को परभाव कहा। त्रिकालस्वभाव परमपारिणामिकभाव की अपेक्षा से चार पर्याय को परभाव कहा। भारी सूक्ष्म व्याख्या भाई! ...भाई! समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो सदा पावनरूप... त्रिकाल पवित्र और औदयिकादि चार विभावस्वभाव परभावों को अगोचर... वह पारिणामिकभाव है, वह चार भाव से अगम्य है। अगम्य का अर्थ वे चार भाव उसमें नहीं, इतनी बात है। इतर भाव बस इतना। वरना गम्य तो क्षयोपशम, उपशम और क्षायिक (में) गम्य पारिणामिकभाव है। नहीं—ऐसा नहीं। पारिणामिकभाव,

त्रिकाल शुद्धभाव, वह उपशम समकित को गम्य है, क्षयोपशम समकित को गम्य है, क्षायिक समकित को गम्य है, केवलज्ञान क्षायिक को तो पूर्ण गम्य है। परन्तु देखो, भाषा कितनी है? लोगों को कठिन पड़ती है इसका अर्थ करते हुए टीकाकार। और टीका, वह तो और बहुत ऐसा कि गूढ़ बात कर दी।

तो कहते हैं कि कारणदृष्टि कैसी है? अथवा कारणस्वभावदर्शनोपयोग कैसा है? अथवा कारणदृष्टि अर्थात् स्वरूपश्रद्धानरूप पर्याय कैसी है? इतनी बात। कैसी है, इतनी बात। बस।

अब सदा पावनरूप... ऐसा जो आत्मा। यहाँ आत्मा की व्याख्या अब चलती है त्रिकाल। जो पावनरूप आत्मा उदय आदि चार विभावस्वभाव... सेठी! क्षायिकभाव विभावस्वभाव। विशेषभाव है न, वह सामान्यभाव नहीं। त्रिकाल परमपारिणामिकभाव सामान्य है और चार भाव विशेष है, विभावस्वभाव। दूसरी बात परभाव, वह एकरूप त्रिकालभाव की अपेक्षा से परभाव हैं। परमभाव एकरूप है, त्रिकाल समय में परम शुद्धभाव, इस अपेक्षा से कहा परभाव। समझ में आया? सोमचन्दभाई! यह बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह सब प्रत्येक गाँव में जो कुछ हो, उसे यह समझना पड़ेगा। वहाँ वाँचने बैठे हैं सभी वे। वहाँ वाँचते हैं न। तो यह उसे समझकर खबर पड़े बिना वह क्या वाँचना नियमसार में से? क्या वह कहलाता है? अरे! वह क्या कहलाता है यह तुम्हारे प्रवचन में क्या आता है। उसे खबर पड़े नहीं। थोड़ा अभ्यास करना चाहिए।

परभावों को अगोचर... तीन शब्द प्रयोग किये। एक तो परमपावनरूप पारिणामिकस्वभावभाव, चार भाव से, चार भाव विभावस्वभाव और चार भाव परमभाव से परभाव और चार भाव से परमपारिणामिक अगोचर-अगम्य। चार भाव से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं। ऐसी भाषा प्रयोग की। इसका अर्थ यह है कि चार भाव उसमें नहीं अथवा चार भाव के आश्रय से परमभाव ज्ञात नहीं होता। परमभाव के आश्रय से पर्याय प्रगट होती है, तब भले उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक हो, परन्तु परमपारिणामिकभाव के आश्रय से परमपारिणामिक समझ में आता है, इतना लेने के लिये चार भाव के अगम्य कहा है। चार भाव के अगम्य हो तो सम्यग्दृष्टि परमस्वभाव को श्रद्धे कैसे? समझ में आया? समझ में आया? अगोचर तीन शब्द लिये हैं चार भाव को।

मुमुक्षु : व्यास नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। उसमें व्यास नहीं और उसके आश्रय से—क्षायिक के आश्रय से पारिणामिकभाव उत्पन्न नहीं होता, पारिणामिकभाव के आश्रय से उत्पन्न होता है, इस अपेक्षा से कहा। अब नीचे अर्थ है, देखो, यह ३२ पृष्ठ पर नीचे। २। नीचे है न नोट।

विभाव=विशेष भाव... देखो, विशेष भाव। परमपारिणामिकभाव सामान्य त्रिकाल और विशेषभाव। ३२ पृष्ठ पर नीचे इस ओर, इस ओर। देखो, विभाव अर्थात् विशेषभाव। परमपारिणामिकभाव सामान्य त्रिकाल भाव। यह चार भाव विशेषभाव **अपेक्षित भाव**। आगे १५वीं गाथा में केवलज्ञान को निरपेक्ष भाव कहा जायेगा। वह अलग अपेक्षा है। १५वीं गाथा में केवलज्ञान को निरपेक्ष कहा जायेगा। यहाँ उसे अपेक्षित भाव (कहा है)। क्यों? यहाँ परमपारिणामिक एक समय में शुद्ध आनन्द परम शक्ति का पिण्ड है, उसकी अपेक्षा से केवलज्ञान और क्षायिकभाव भी अपेक्षित है। क्योंकि कर्म के निमित्त का अभाव कर उत्पन्न हुआ, परमपारिणामिक किसी कर्म के अभाव से उत्पन्न हुआ नहीं है, ऐसा उसका स्वभावभाव है। निरपेक्ष है। निरपेक्ष तो एक परमपारिणामिकभाव ही निरपेक्ष यहाँ, हों! १५वीं गाथा में दूसरा अर्थ करेंगे। समझ में आया?

आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्धस्वरूप जो है त्रिकाल शुद्ध ध्रुव, वह कैसा है? कि निरपेक्ष है। किसी कर्म के निमित्त की अपेक्षा या कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा उस स्वभावभाव को नहीं। उदय को भी कर्म के निमित्त की अपेक्षा है। विकार होता है निमित्त के आश्रय से; उपशम भी कर्म के उपशम के निमित्त की अपेक्षा है; क्षयोपशम भी कर्म के निमित्त के क्षयोपशम की अपेक्षा है; क्षायिक भी कर्म के निमित्त की (अभाव की अपेक्षा है)। होता है कर्म उसके कारण से, परन्तु उसे निमित्त की अपेक्षा आत्मा में आती है, इसलिए वे चार भाव अपेक्षित भाव होने से। बहुत सूक्ष्म, भाई! प्रवीणभाई! मुम्बई से भाई सुनने आये हैं यह सब। १५वीं गाथा। अभी १५वीं गाथा तो कब आवे तब सही, हों! अभी तो १३वीं चलती है। समझ में आया? यह चार भाव अपेक्षितभाव होने से। अनादि-अनन्त एकरूप ध्रुवस्वरूप, उसे निरपेक्षभाव कहते हैं और उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक को निमित्त और निमित्त

के अभाव की अपेक्षा आती है, इसलिए सापेक्ष भाव कहते हैं। ऐसे भाव यह पर्याय चारों ही हैं। यह चारों ही पर्याय है और परमपारिणामिकभाव त्रिकाल ध्रुव है। समझ में आया ?

ये चार भाव, अपेक्षितभाव होने से उन्हें विभावस्वभाव परभाव कहा है। देखो, विशेषभाव की अपेक्षा से इनको विभावस्वभाव कहा और त्रिकाल ध्रुव की अपेक्षा से उस पर्याय को परभाव कहा। परमपारिणामिकभाव है, वह नहीं, इसलिए क्षायिकभाव को भी परभाव कहा। देखो तो सही, कितनी अपेक्षा! समझ में आया ? एक बार ऐसा कहे कि आत्मा की पर्याय में पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे स्वभाव हैं। स्वस्य भवनं स्वभाव। अपनी पर्याय में विकार होता है। पुण्य के, पाप का, दया, दान का, काम-क्रोध के जो रागादि होते हैं, वे अपनी पर्याय में, इसलिए पर्याय को स्वभावभाव कहा। क्योंकि अपनी पर्याय है इसलिए। उपशम को भी स्वभावभाव पर्याय कहा, क्षयोपशम को स्वभावभाव पर्याय और क्षायिक को स्वभावभाव पर्याय (कहा)। यहाँ कहा कि ये चारों ही परभाव हैं। कहो, समझ में आया ? परम त्रिकाल एक समय में शुद्ध ध्रुव, ध्रुव अनादि-अनन्त वह भाव परमभाव है। परमभाव की अपेक्षा से यह चार भाव परभाव है। परमभाव निरपेक्ष है, उसकी अपेक्षा से चार भाव अपेक्षित हैं, इसलिए विशेषभावरूप विभावस्वभाव है। ऐसा यहाँ कहा गया है। समझ में आया ?

एक सहज परमपारिणामिकभाव को ही... एक त्रिकाल स्वाभाविक परम-पारिणामिकभाव को ही स्वाभाविक, परमपारिणामिक जो त्रिकाल ध्रुवस्वभाव को सदा-पावनरूप निजस्वभाव कहा है। देखो, सदा पावन की व्याख्या यहाँ दे दी। सदा पवित्ररूप, सदा पवित्ररूप निजस्वभाव कहा है। देखो, उसके आश्रय से सब विकार टलकर केवलज्ञान होता है। कहीं केवलज्ञान साधक को नहीं होता और साधक को कहीं क्षयोपशम की पर्याय के आश्रय से केवलज्ञान होता नहीं, इसलिए त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से होता है, इसलिए उसे सदा-पावनरूप निज... चार को जब पर कहा, तब परम को निज कहा; चार को जब परभाव कहा, तब परमपारिणामिक को स्वभाव कहा। दो विशेषण समझाये। समझ में आया ?

चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं

होता। बस, यह बात है। अगोचर का अर्थ यह। अब अगोचर का अर्थ आया। भाई! विभावस्वभाव, परभाव, इन दो की व्याख्या आ गयी। विभावस्वभाव कैसे कहा? कि उसमें अपेक्षा आती है और वह विशेषभाव है; सामान्य त्रिकाल नहीं।

दूसरी बात। उसे परभाव क्यों कहा? कि निजस्वभाव से पर है। निजस्वभाव परमपारिणामिक से पर पर्यायरूप है, इसलिए उन्हें परभाव कहा। परन्तु यह आत्मा के सदा पावनरूप भाव को निजस्वभाव और निरपेक्षभाव कहा। **चार विभावभावों का आश्रय करने से...** क्षायिक का आश्रय करने से। अरे! क्षायिक समकित प्रगट हुआ चौथे गुणस्थान में, क्षायिकसमकित, तो कहीं क्षायिकसमकित के आश्रय से चारित्र नहीं होता। नया चारित्र या वीतरागभाव कहीं क्षायिकसमकित के आश्रय से नहीं होता। क्षायिकभाव के आश्रय से चारित्र नहीं होता। चारित्र तो परमपारिणामिक चिदानन्द ध्रुवस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान, उसके आश्रय से सम्यक्चारित्र, उसके आश्रय से शुक्लध्यान, उसके आश्रय से केवलज्ञान। समझ में आया? सूक्ष्म है।

चार विभावभावों का आश्रय करने से... अर्थात् कि उदय का राग का आश्रय करने से कभी आत्मा को लाभ हो, ऐसा है नहीं। देखो, आया ब्रह्मचारीजी! राग अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय। तो व्यवहाररत्नत्रय उदयभाव है। उसका आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं होता। व्यवहाररत्नत्रय शुभराग, उसके अवलम्बन से भी, वह उदयभाव है, उसके आश्रय से भी परमपारिणामिकभाव का लाभ नहीं होता। समझ में आया? अभी तो झगड़ा तो वहाँ मांडा है। झगड़ा तो वहाँ है उसे पहले कि शुभराग है या नहीं? शुभराग है या नहीं? मन्द राग आवे और फिर लाभ हो और आवे? छोड़ न तेरी। राग और पुण्य का विकल्प जो उदयभाव, उसके आश्रय से परमपारिणामिकभाव की श्रद्धा नहीं होती। परमपारिणामिकभाव का ज्ञान और चारित्र नहीं होता। इसी प्रकार उपशमभाव के आश्रय से आत्मा का चारित्र नहीं होता, इस उपशमभाव के आश्रय से आत्मा को केवलज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार क्षयोपशमभाव की पर्याय के आश्रय से,... अपनी पर्याय है, वह क्षयोपशम, क्षयोपशम तो स्वभाव का अंश है, उपशम भी स्वभाव का अंश है, परन्तु उसके आश्रय से भी केवलज्ञान-

मोक्षदशा नहीं होती और क्षायिकसमकित आदि प्रगटता हुआ हो, उसके आश्रय से भी केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञान तो साधक को होता नहीं। इसलिए केवलज्ञान के आश्रय से केवलज्ञान हो, यह बात तो रहती नहीं। समझ में आया ?

चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का आश्रय नहीं होता। अर्थात् कि चार भाव का लक्ष्य करने से आत्मा परमपारिणामिकस्वभाव है, उसका लक्ष्य नहीं हो सकता। बहुत सूक्ष्म, भाई! यह पन्द्रह गाथा तक तो सूक्ष्म विषय इतना लिया है कि बहुत शान्ति से यह रुचि और यह श्रद्धा करनेयोग्य है। बाकी सब समझने जैसा है। सेठी! **चार विभावभावों का आश्रय करने से परमपारिणामिकभाव का...** अवलम्बन, लक्ष्य उसका हो सकता नहीं। **परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही...** त्रिकाल ध्रुव एक समय में द्रव्य, गुण और पर्याय, वह ध्रुव है, शुद्ध है, ऐसा परमपारिणामिकभाव का आश्रय करने से ही। 'ही'। **सम्यक्त्व से लेकर...** समकित भी परमपारिणामिकस्वरूप स्वभाव के अवलम्बन से होता है। व्यवहारसमकित के आश्रय से निश्चयसमकित होता नहीं। समझ में आया ? **सम्यक्त्व से लेकर मोक्षदशा तक की...** दशा है न ? मोक्ष भी दशा है, अवस्था है। यह सब तक की अवस्थायें प्राप्त होती हैं। किसके आश्रय से ? परमपारिणामिकभाव स्वभावभाव के आश्रय से समकित होता है। यह बात तो अभी यहाँ श्रवण करे, मनन करे, ग्रहण करे और धारण करे, तब उसके ख्याल में उसका वीर्य काम करे।

आत्मा एक समय में आनन्द, अतीन्द्रिय शुद्ध चिदानन्द है। समझ में आया ? पूर्ण ध्रुव है। उसका आश्रय करने से समकित से लेकर केवलज्ञान होता है। बाकी कोई व्यवहाररत्नत्रय, निमित्त और उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक के आश्रय से भी जब केवलज्ञानादि नहीं होते तो किसके आश्रय से अभी क्रियाकाण्ड करके इसे केवलज्ञान लेना है ? समझ में आया ? यह अर्थ किया। ऊपर अब फिर से।

ऐसा जो परमपारिणामिकभावरूप, परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है। अर्थात् कि चार भावरूप यह परमपारिणामिकभाव, वह त्रिकाल ध्रुव और चार भाव, वह पर्याय। उस पर्याय को विभावस्वभाव और परभाव कहा और उसे निजस्वभाव तथा परमभाव कहा। **जो कारणसमयसारस्वरूप है;...** जो एक समय में त्रिकाल कारण-

समयसारस्वरूप है। कारणसमयसारस्वरूप। समझ में आया ? जो कारणसमयसारस्वरूप है;... त्रिकाल वह कार्यसमयसार केवलज्ञान, केवलदर्शन और परम आनन्द, वह कारणसमयसार के अवलम्बन से प्रगट होते हैं। जो कारणसमयसारस्वरूप है। कारण अर्थात् त्रिकाल द्रव्य, गुण और पर्यायवाला। समझ में आया ?

निरावरण जिसका स्वभाव है;... त्रिकाल निरावरण है। उसे कोई आवरण है ही नहीं। एक समय में ध्रुव परमभाव, स्वभावभाव, निजभाव, निरपेक्षभाव, वह निरावरण जिसका स्वभाव है। तीनों काल में निरावरण है। आहाहा! यह परमपारिणामिकभाव क्या चीज है यह... सिरपच्ची में पड़े अभी बाहर में। या तो यह राग छोड़े, यह करे और यह छोड़े और... अब वह तो बाहर की बात है। समझ में आया ? और या राग घटाओ, राग को पृथक् करो। सेठी! राग कहाँ पृथक् करे ? राग को पृथक् करो। किसके साथ पृथक् करे ? परमपारिणामिक चैतन्यस्वभाव के भान बिना राग का भेदज्ञान और पृथक्पना कभी होता नहीं। समझ में आया ? वह **निरावरण जिसका स्वभाव है;...** किसका ? **कारणसमयसारस्वरूप है;...** सहज-परमपारिणामिकभावरूप जिसका स्वभाव है;... ऐसे आत्मा का। ऐसे आत्मा का। आगे बात करेंगे। यह तो स्वभावभाव लेते हैं न। ऐसा भाव का धारक आत्मा है।

जो निज स्वभावसत्तामात्र है;... पहले सत्ता उठाई। कैसा है आत्मा ? कि **निज स्वभावसत्ता...** निजस्वभावसत्तामात्र है। देखो, सात तत्त्व है न ? तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन। आत्मा-आत्मा। निजस्वभावसत्तामात्र। बाकी तो सब संवर, निर्जरा, वह क्षयोपशमपर्याय, मोक्ष क्षायिकपर्याय और राग-द्वेष उदयभावपर्याय। संवर-निर्जरा, क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक आदि पर्याय और केवलज्ञान अकेली क्षायिकपर्याय और पुण्य, दया, दान, व्रतादि उदयभाव पर्याय। वह आत्मा नहीं, वह आत्मा नहीं। सात तत्त्व के अन्दर जो है न। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्त्व। जीवतत्त्व, आत्मतत्त्व कैसा है ? कि चार विभावस्वभाव के परभाव से अगम्य ऐसा आत्मा।

मुमुक्षु : वह कारणपरमात्मा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जीवतत्त्व, वह कारण कहा। कारणशुद्धजीव। कारण-शुद्धजीव, वह जीवतत्त्व, वह आत्मतत्त्व। सब कारणसमयसार है। समझ में आया ?

जो निज स्वभावसत्तामात्र है;... कहते हैं कि उसमें चार भाव की सत्ता नहीं, भाई! परमपारिणामिकभाव में उदय की सत्ता नहीं, क्षायिक की सत्ता, क्षायिक का अस्तित्व नहीं, उपशम का अस्तित्व नहीं, क्षयोपशम का अस्तित्व नहीं। वे चार तो पर्याय की सत्ता में हैं। स्वभाव निजसत्ता में उन चार का अभाव है। ओहोहो! समझ में आया? जो... जो अर्थात् आत्मा। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव और कारणसमयसाररूप निरावरण जिसका स्वभाव, वह स्वभाव कैसा है? कि निजस्वभाव-सत्तामात्र है। निजस्वभावसत्ता। अपनी स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... त्रिकाल ऐसी स्वभावसत्तामात्र है। भाई! वजन दिया है। एक क्षायिकभाव भी उसमें नहीं, उपशमभाव उसमें नहीं, क्षयोपशम उसमें नहीं और विकार तो स्वभाव में तीन काल में नहीं। भगवान आत्मा एक समय में जो निजस्वभावसत्तामात्र है। कान्तिभाई! खास सुनने आये हैं।

जो निजस्वभावसत्तामात्र... निजस्वभावसत्तामात्र। अकेली परम सत्... सत्... सत्... उत्पाद-व्यय की अपेक्षारहित निजस्वभावसत्ता। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में तो उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय आता है। और इसके अतिरिक्त की निजस्वभाव सत्ता। 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' उसमें का उत्पाद-व्यय नहीं। भाई! 'उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' 'सत् द्रव्य लक्षणं।' उस सत् में ध्रुव निजस्वभावसत्ता परमपारिणामिकभाव, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। सात तत्त्व में उसे आत्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया? निजस्वभावसत्ता... अपना स्वभावसत्तामात्र वह आत्मा है। समझ में आया?

जो परमचैतन्यसामान्यस्वरूप है... परमचैतन्यसामान्यस्वरूप है। चैतन्यसामान्य दर्शन लिया। परमचैतन्यसामान्यदर्शनस्वरूप है। जिसमें दर्शनसामान्य त्रिकाल पड़ा है। दर्शन, दर्शनशक्ति परमचैतन्यसामान्य ऐसा दर्शन त्रिकाल जिसमें पड़ा हुआ है। किसमें? परमपारिणामिकभावरूप भावस्वभावरूप आत्मा में। जो परमचैतन्यसामान्यस्वरूप है... यह त्रिकाल की बात, ध्रुव की बात है। आत्मा। सत्ता पहली ली, पश्चात् परमचैतन्यसामान्य लिया दर्शन, पश्चात् चारित्र। जो अकृत्रिम... कहो, यह चारित्र नया प्रगट होता है न? वह तो नयी पर्याय है। वह तो अनादि का अकृत्रिम एक आत्मा में, ध्रुव में, अकृत्रिम— नहीं कराया हुआ। चारित्र तो पुरुषार्थ से नया प्रगट हुआ, कराया हुआ है। विकार तो

कृत्रिम है, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि नयी पर्याय भी कृत्रिम हुई। ऐई! धीरुभाई! समयसार में आता है, भाई! ९६ गाथा में आता है न कर्ताकर्म में कि विकार कृत्रिम है और आत्मा अकृत्रिम है। यह समयसार कर्ताकर्म (अधिकार) में आता है।

यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य-पाप के भाव तो कृत्रिम हैं, परन्तु यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय कृत्रिम है। कृत्रिम अर्थात् नयी उपजी हुई, नयी उत्पन्न हुई। परन्तु आत्मा में वह चारित्र कैसा है अनादि? अकृत्रिम। **परमस्व-स्वरूप में...** परमस्व-स्वस्वप में **अविचलस्थितिमय...** अविचल। अविचल—चलित नहीं, वह अविचल ऐसी स्थितिमय **शुद्धचारित्रस्वरूप है,**... त्रिकाल शुद्धचारित्रस्वरूप है। त्रिकाल शुद्धचारित्रस्वरूप ध्रुव की बात चलती है यह। आत्मा की बात चलती है। आत्मा के ऐसे भाव हैं, ऐसा चलता है। आत्मा भाववान, आत्मा भाववान और उसके भाव यह। परमपारिणामिकभाव कारणसमयसारस्वरूप जो द्रव्य। समझ में आया? उसका यह भाव, निरावरण जिसका स्वभाव, निजस्वभावसत्तामात्र भाव, परमचैतन्यसामान्यस्वरूप भाव, अकृत्रिम परमस्व-स्वरूप में अविचलस्थितिमय शुद्धचारित्ररूपभाव। समझ में आया? त्रिकाल। चार अपेक्षा बिना—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक।

जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है... यह ज्ञान आया। दर्शन, चारित्र और ज्ञान। दर्शन, चारित्र और ज्ञान। त्रिकाल नित्य शुद्ध। नित्य, शुद्ध, निरंजन (अर्थात्) अंजन नहीं—ऐसा ज्ञानस्वरूप वह आत्मा है। त्रिकाल आत्मा परमपारिणामिकभाव। सेठी! सुना ही नहीं कभी। नहीं सुना? **नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप...** भगवान आत्मा है। ठीक। अब यह चार हो गये। और जो **समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की ध्वजा के नाश का कारण है...** कैसा है परमपारिणामिकभाव? उसके अवलम्बन से नाश होता है। नाश होती है पर्याय, परन्तु पर्याय द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट होती है, इसलिए परमपारिणामिकभाव ही **समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर...** पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। आत्मा में पुण्य का भाव हो या पाप का, दोनों कैसे हैं? टालनेयोग्य हैं। उसकी श्रद्धा-ज्ञान तो करे। यहाँ तो श्रद्धा-ज्ञान करने की बात करते हैं। तीर्थकर चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियाँ। क्या करे तुम्हारे शादी करे, ऐसा कहते हैं न? शादी करे, लो, समकित्ती। समकित्ती, ज्ञानी। समझ में आया? परन्तु आश्रय अन्दर में परमभाव का

श्रद्धा में टला नहीं। ओहोहो! यह गजब! इनकार करे और करे वापस सब, ऐसी बातें करते हैं। हरिभाई! देखो, छियानवें हजार स्त्रियाँ? छियानवें हजार और परमपारिणामिकभाव का आश्रय? भाई! छियानवें हजार स्त्रियों में परमपारिणामिक का आश्रय कहाँ? वहाँ तो राग है जरा, भले हो, परन्तु श्रद्धा में उसका आश्रय नहीं। श्रद्धा में परमस्वभाव... परमस्वभाव... परमस्वभाव का आश्रय एक समय भी छूटता नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

जो समस्त दुष्ट पापोंरूप... दुष्ट पाप। पुण्य-पाप दोनों दुष्ट हैं। पुण्य-पापभाव दोनों घोर संसार का मूल है। संसाररूपी घोर संसार समुद्र का मूल है। ऐसे दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु... उनकी सेना की। वीर दुश्मन की सेना, उसकी ध्वजा के नाश का कारण है... ध्वजा गिरी तो सेना का नाश हो जाता है। दुश्मन होता है न? तो उसकी जो ध्वजा होती है न ध्वजा? ध्वजा गिरा डाले तो समाप्त हो गया। वह हार गया दुश्मन हार गया। लश्कर चला जाता है। ऐसे वीर दुश्मनों की सेना राग-द्वेष-भ्रान्ति-अज्ञान इत्यादि, अस्थिरता, पुण्य, विषयभोग वासना, विकार आदि की सेना अर्थात् झुण्ड विकल्प का, विकार का, उसकी ध्वजा का नाश का चिह्न है। विकार का लक्षण ही नाश कर डालता है। समझ में आया? नाश का कारण ऐसा आत्मा है। ओहोहो! कहो, समझ में आया?

ऐसे आत्मा के... अब आया। ऐसे... कैसा आत्मा? कि सदा पावनरूप उदयादि चार विभावस्वभावपरभावों को अगम्य, सहजपरमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव, ऐसा आत्मा, कारणसमयसारस्वरूप ऐसा आत्मा। वह कारणस्वरूप, वही आत्मा। निरावरण जिसका स्वभाव, निजस्वभावसत्तामात्र, परम चैतन्यसामान्यस्वरूप अकृत्रिम परमस्व-स्वरूप में अविचलस्थितिमय शुद्धचारित्रस्वरूप स्वरूप। और जो नित्य-शुद्ध-निरंजनज्ञानस्वरूप है, और जो समस्त दुष्ट पापोंरूप वीर शत्रु सेना की ध्वजा के नाश का कारण है—ऐसे आत्मा के... कहाँ से शुरु किया है? कारणदृष्टि। कारणदृष्टि कैसी है? पहली शुरु की न पहले। कहाँ? पहले आगे में। कारणदृष्टि कैसी है, उसकी बात चलती है यह तो। कारणदृष्टि कैसी है? कारणदृष्टि कैसी है? कारणदृष्टि अर्थात् दर्शनस्वभाव का कारण-उपयोगरूप पर्याय अथवा कारणदृष्टि अर्थात् स्वरूपश्रद्धानमात्र। वह कैसी है कारणदृष्टि? कि ऐसा जो आत्मा कहा, उस आत्मा के वास्तव में स्वरूपश्रद्धानमात्र ही

हैं। वह कारणदृष्टि जो पहला शब्द उठाया था न? कारणदृष्टि। वह वास्तव में आत्मा के स्वरूपश्रद्धानमात्र ही है... यह त्रिकाली ध्रुवपर्याय, स्वरूपश्रद्धानमात्र। प्रगट पर्याय की बात नहीं। ऐसी स्वरूपश्रद्धामात्र जो श्रद्धागुण की ध्रुवपर्याय, जो कारणदृष्टि, श्रद्धागुण की ध्रुवपर्याय अथवा जो दर्शनगुण सामान्य, उसके दर्शन उपयोगरूपी पर्याय। समझ में आया?

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट - ४० मिनट के बाद प्रवचन रिपीट होता है।



पौष कृष्ण २, दिनांक - १०-०१-१९५५

कलश-२६, गाथा-१५, प्रवचन नं. ४१४

श्री नियमसार, जीव अधिकार, इसकी १४वीं गाथा का अन्तिम कलश है। २६वाँ कलश।

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः,
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः।
सनाथ-मपि जीव-तत्त्व-मनाथं समस्तैरिदं,
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्धयै सदा ॥२६॥

देखो! इस १४वीं गाथा के अन्तिम उपसंहार में तीन श्लोक कहते हैं, उसमें दो तो कहे जा चुके हैं। अन्तिम लाईन एक ही है न?

देखो! कहते हैं, यह जीवतत्त्व कैसा है?—कि क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है,... भगवान् आत्मा-जीव पदार्थ स्वभाव ज्ञायक क्वचित् अर्थात् किसी समय सद्गुणों अर्थात् केवलज्ञानादि पर्यायसहित भासित होता है। विलसता है अर्थात् दिखाई देता है;... दिखाई देना; दिखना; झलकना; आविर्भूत होना; प्रगट होना। इतने अर्थ किये हैं। भगवान् आत्मा एक समय में जो पूर्ण ज्ञायकस्वभाव है, उसकी पर्याय में क्वचित् पर्याय शब्द से यहाँ गुण लिये हैं। सद्गुण अर्थात् केवलज्ञानादि गुण, क्वचित् किसी समय अन्दर पर्याय में झलकते हैं।

क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;... क्वचित् अर्थात् किसी समय, अशुद्धगुण अर्थात् मति और श्रुतज्ञानादि विभावगुण, इनसे वह जीवतत्त्व पर्याय में दिखता है। समझ में आया? क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है;... अर्थात् कि जब ऐसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि विभावगुणों का लक्ष्य जाता है, तो वह उस समय आविर्भाव मानो मति और श्रुत के विभावगुणरूप अशुद्धगुणरूप दिखायी देता है। क्वचित् सहज पर्यायों सहित विलसता है... क्वचित् इसकी षट्गुण हानि-वृद्धि जो अगुरुलघुगुण की जो पर्याय है, जो षट्द्रव्य को, छहों द्रव्यों को सामान्यरूप से है, ऐसी

एक आत्मा में षट्गुणहानिवृद्धिरूप जो पर्याय है, जो अनादि-अनन्त सामान्य अर्थपर्यायरूप है, इस प्रकार से भी विलसता अर्थात् दिखायी देता है।

और क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है। किसी समय अशुद्ध पर्याय अर्थात् व्यंजनपर्याय—मनुष्य, देव, नारकी, पशु आदि की व्यंजन अर्थात् प्रदेश गुण की आकृति विकारी पर्याय, इस प्रकार से आत्मा पर्याय में दिखायी देता है अथवा ऐसी पर्याय आविर्भूत को प्राप्त होती है। प्रगट होती है, ऐसा दिखायी देता है। चार बातें की। समझ में आया? **इन सबसे सहित होने पर भी,...** देखो! पर्याय का विषय तो है, व्यवहारनय का विषय है। यह केवलज्ञानादि पर्याय शुद्धगुणरूप, मतिज्ञानादि पर्याय अशुद्धगुणरूप, षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय सहज पर्यायरूप और व्यंजन पर्यायरूप से अशुद्ध पर्याय—**इन सबसे सहित होने पर भी,...** आत्मा की पर्याय में यह व्यवहारनय का विषय है, विद्यमान है, वह नहीं है – ऐसा नहीं है। देखो! इस प्रकार चारों व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञानादि, मति-श्रुतज्ञानादि, अगुरुलघु आदि षट्गुणों की (षट्गुणीहानिवृद्धि की) पर्याय, वह भी ऋजुसूत्र की वर्तमान सहज पर्याय, वह वर्तमान नय का विषय है और अशुद्ध पर्याय व्यंजनपर्याय भी वर्तमान नय का विषय आत्मा की पर्याय में है। पर्यायरूप से विद्यमान विषय है।

(इन सबसे सहित होने) पर भी, जो इन सबसे रहित है... अकेला एक समय में ज्ञायक परमात्मतत्त्व, जो कि केवलज्ञानादि पर्यायरहित त्रिकाल तत्त्व है, मतिज्ञानादि गुण विभावरहित तत्त्व है और अगुरुलघु की षट्गुण वृद्धि (हानि) एक समय में पर्याय हो, उस रहित भी एक जीवतत्त्व एकरूप है और अशुद्ध व्यंजनपर्यायरहित प्रदेशगुण की आकृतिरूपी विभाव पर्याय से भी रहित है। **ऐसे इस जीवतत्त्व को...** देखो! एक समय में ज्ञायक त्रिकाल द्रव्य-गुण और शुद्धकारणपर्यायसहित का जीवतत्त्व लिया है। वह इन सबसे रहित है... देखो! है और नहीं।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : ये चार तो प्रगट रूप से।

इन सबसे रहित है... एक जीवतत्त्व। ज्ञायकतत्त्व। एक समय में पूर्ण द्रव्य, गुण

और पर्याय से शुद्ध, पर्याय अर्थात् कारणशुद्धपर्याय से शुद्ध अभेद एकरूप तत्त्व, इन पर्यायों में चार प्रकार से दिखायी देता है। केवलज्ञानादि पर्याय, मतिज्ञानादि पर्याय, सहज अगुरुलघु पर्याय और अशुद्ध व्यंजनपर्याय, तथापि इन चारों पर्यायरहित जीवतत्त्व, एकरूप अखण्ड ज्ञायकतत्त्व है, वह पर्याय से रहित है। **इन सबसे रहित है—ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं... ऐसे जीवतत्त्व को मैं। सकल अर्थ की सिद्धि के लिए... सकल आत्मा की मोक्षपर्याय निर्मल आनन्द अमृत के अनुभव की पर्याय, उसकी सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ,...** निरन्तर उस ज्ञायकभाव की ओर मेरी रुचि और परिणमन चलता है। समझ में आया ?

एक समय में, सेकेण्ड का असंख्य भाग, उसमें आत्मा जीवतत्त्व पूर्णानन्द पड़ा है। ऐसा जीवतत्त्व; ये चार प्रकार की पर्यायें व्यवहारनय का वर्तमान विषय, ये पर्यायें, पर्याय में होने पर भी जिस स्वभाव में त्रिकाल में इनका अभाव है, ऐसा जो जीवतत्त्व, उसे मैं **सकल अर्थ की सिद्धि के लिए...** ऐसा कहना चाहते हैं कि मोक्ष की सिद्धि इस अन्तर ज्ञायकतत्त्व के अवलम्बन से होती है। इसके अतिरिक्त हो नहीं सकती। ऐसी सिद्धि के लिए सदा, निरन्तर एक समय का विरह पड़े बिना। मति या अज्ञानादि भले विभाव हो, केवलज्ञान तो साधकदशा में है नहीं परन्तु ख्याल में है कि प्रगट होनेवाला है और सहज अगुरुलघु षट्गुणहानिवृद्धि पर्याय में वर्तती है, वह आगम प्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य है और अशुद्धपर्याय का ख्याल आता है कि विभावरूप व्यंजनपर्याय है।

यह सब होने पर भी उस समय, उस क्षण में सदा निरन्तर मैं ऐसे जीवतत्त्व में नमता हूँ, झुकता हूँ, उन्मुख होता हूँ, परिणमता हूँ, भाता हूँ, एकाग्र होता हूँ। कहो, समझ में आया ? नमता हूँ, नमन करता हूँ, उन्मुख होता हूँ, अन्तर परिणमन करता हूँ। एक समय के विरह बिना साधकस्वभाव में ज्ञायक चैतन्यतत्त्व की ओर श्रद्धा-ज्ञान की रमणता में उसे किसी समय विरह और अन्तराल नहीं पड़ता। समझ में आया ?

ऐसे इस जीवतत्त्व को मैं सकल अर्थ की सिद्धि के लिए सदा नमता हूँ, भाता हूँ। मैं ऐसी भावना करता हूँ। यह १४वीं गाथा पूर्ण हुई। अब १५वीं गाथा।

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विहावमिदि भणिदा ।
कम्मोपाधिविवज्जियपज्जाया ते सहावमिदि भणिदा ॥१५॥

तिर्यञ्च, नारकि, देव, नर पर्याय हैं वैभाविकी ।
पर्याय कर्मोपाधि वर्जित हैं कही स्वाभाविकी ॥१५॥

लो, यह १५वीं गाथा । लोग इन्तजार करते थे, वह आज आयी । पहले अन्वयार्थ, 'नरनारकतिर्यक्सुराः पर्यायाः' देखो ! वहाँ १४वीं गाथा में पर्याय के दो भेद कहे थे । दूसरे पद में । समझ में आया ? १४वीं गाथा में । 'पज्जाओ दुवियप्पो' पर्याय दो प्रकार की । स्व-पर अपेक्षित और निरपेक्षित, ऐसे दूसरे पद में दो प्रकार कहे थे । उसमें से स्व-पर अपेक्षित पर्याय का यह पहला पद है । मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देवरूप पर्यायें, वे विभावपर्यायें कही गई हैं;... जो वहाँ स्व-पर अपेक्षित कहे थे, उन्हें यहाँ विभावपर्याय कहकर उसका वर्णन किया है । क्योंकि उसमें व्यंजनपर्याय में स्व-पर्याय अपनी योग्यता भी है और कर्म के निमित्त की उपस्थिति है, इसलिए उसे स्व-पर अपेक्षित व्यंजनपर्याय, विभाविक पर्याय को स्व-पर अपेक्षित कहने में आया है । कर्मोपाधि रहित पर्यायें,.... यह दूसरे पद का पहला शब्द है । 'कर्मोपाधिविवर्जितपर्यायाः' कर्मोपाधि रहित पर्यायें,.... इसमें से यह सिद्धान्त पद्मप्रभमलधारिदेव ने इस शब्द में से निकाला है । मूल वस्तु इसमें से निकाली है ।

कर्मोपाधि रहित पर्यायें, वे स्वभावपर्यायें कही गयी हैं ।... 'निरपेक्षः' १४वीं गाथा में अन्तिम बोल जो 'निरपेक्ष' था । वह निरपेक्ष पर्याय, कर्म उपाधिरहित पर्याय को निरपेक्ष पर्यायरूप से कही गयी है । उसमें कर्म के वर्तमान निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसी स्वभाविक पर्याय कहने में आयी है । भगवन्तों ने कहा है, मुनियों ने कहा है, तदनुसार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं भी कहता हूँ और पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि हमें परम्परा से इसका जो अर्थ मिला है, उसी की टीका और व्याख्या मैं करता हूँ ।

अब, व्यंजनपर्याय जो पहला पद है, उसकी व्याख्या पहले न करके, पहली व्याख्या स्वभावपर्याय की करते हैं क्योंकि स्वभाव का भान होवे, उसे व्यंजनपर्याय का यथार्थ भान कहा जाता है; नहीं तो व्यंजनपर्याय का भी वह व्यवहारज्ञान यथार्थ नहीं कहलाता ।

टीका :— यह स्वभावपर्यायों तथा विभावपर्यायों का संक्षेप कथन है। देखो! भाषा ऐसी ली है वापस। 'संक्षेपोक्ति' थोड़ा कथन है। विस्तार तो वह यथार्थरूप से स्वयं ज्ञानगम्य से अधिक विचार लेना। संक्षेप कथन यह है। स्वभावपर्याय और विभावपर्याय का संक्षिप्त कथन है।

वहाँ, स्वभावपर्यायों और विभावपर्यायों के बीच... दो के अन्दर में। प्रथम स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है,... स्वभावपर्याय जो निरपेक्ष पर्याय, जो भेदरूप पर्याय। 'परिसमंतात भेदं गच्छति' आया था न! वह स्व-पर अपेक्षारहित पर्याय अर्थात् अकेली निरपेक्ष पर्याय अर्थात् स्वभावपर्याय अर्थात् कर्मोपार्जित के निमित्त की अपेक्षा रहित पर्याय अर्थात् सामान्य आत्मा त्रिकाल है, उसके भेदरूप पर्याय, उसकी विशेषरूप पर्याय... स्वभावपर्याय दो प्रकार से कही जाती है, कारणशुद्धपर्याय और कार्यशुद्धपर्याय। ऐसे दो भेद हैं। स्वभावपर्याय के दो भेद—एक, कारणशुद्धपर्याय; दूसरी, कार्यशुद्धपर्याय। अब वह कारणशुद्धपर्याय कौन ?

सामान्य जो आत्मा एक समय में द्रव्य और गुण से शुद्ध ध्रुव एकरूप है, उसका एक अंश विशेष। 'परिसमंतात भेदं गच्छति इति पर्यायः' जो आत्मा एक समय में द्रव्य, गुण से शुद्ध ध्रुव... ध्रुव.. ध्रुव... है, उसकी एक समय की विशेष, एक समय का भेद, सामान्य एक समय का अंश जो कारणपर्यायरूप से कारणशुद्धपर्यायरूप से कहने में आवे, वह पर्याय निरपेक्ष पर्याय है, सामान्य त्रिकाल द्रव्य-गुण की अपेक्षा से वर्तमान अंश... अंश... अंश... अंश... अंश... है सदृश, है ध्रुव, है निश्चयनय का विषय। सेठी! तथापि वह पर्याय सामान्य जो द्रव्य है और गुण है, वह सामान्य सदृश,... सामान्य सदृश, उसका विशेष सदृश।

कारणस्वभावपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, कारणस्वभावपर्याय कहो या कारणशुद्धपर्याय कहो, वह उसका अंश है। वह अंश और कार्यशुद्धपर्याय का स्वभाविक प्रगट अंश है। प्रगट अंश... प्रगट अंश, वह भी निरपेक्ष है, वह भी भेदरूप है, वह भी कर्म के निमित्त की उपस्थिति उसमें नहीं और वह भी एक अंशरूप है। उस स्वभावपर्याय के दो अंश हैं : एक कारणशुद्धपर्याय, एक कार्यशुद्धपर्याय। उस अंश में कारणशुद्धपर्याय की पहले व्याख्या चलती है।

यहाँ सहज... स्वभाविक शुद्ध निश्चय से,... आत्मा एक समय में सामान्य द्रव्य और गुण से जो शुद्ध है, स्वभाव है, स्वभाविक है, सहज है। उसके साथ रहा हुआ एक समय की ध्रुव सदृश पर्याय स्वभाविक है, शुद्ध है। निश्चयनय का निश्चयदृष्टि का वह विषय है। द्रव्यार्थिकनय का वह विषय है, अभेददृष्टि का वह ध्येय है। वह सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त,... परमपारिणामिकभाव जो शक्तिस्वभावरूप, जिसमें से केवलज्ञानादि अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्यायें आविर्भाव / प्रगटपने को प्राप्त होती है, ऐसा जो द्रव्य-गुणस्वभाव, उसके साथ एक पर्यायरूप अंश स्वभाव, कारणशुद्धपर्याय, वह अनादि-अनन्त है, अनादि-अनन्त। जिसे आगे पारिणामिकभाव की परिणति कहने में आता है। पारिणामिकभाव की परिणति, पारिणामिकभाव की पर्याय, पारिणामिकभाव का अंश, पारिणामिक सामान्य भाव की भेदरूप विशेष पर्याय। ओहोहो! समझ में आया ?

अनादि-अनन्त, अमूर्त,... उसमें मूर्तपना नहीं। समझ में आया ? अतीन्द्रियस्वभाववाले.. जो पर्याय शुद्ध ध्रुव, विशेष स्वभाव अंश, जो सामान्य अभेद का अंशरूप भेद परन्तु द्रव्यदृष्टि से तो सब तीनों अभेद हैं। निश्चयदृष्टि से तीनों अभेद हैं। ऐसे अतीन्द्रियस्वभाववाले... वह इन्द्रियस्वभाव से गम्य नहीं और वह स्वयं अतीन्द्रियस्वभावस्वरूप है। वह किसके साथ आता है, ऐसा कहते हैं। अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान... देखो! सहजज्ञान। त्रिकाल भाव स्वभाविक... स्वभाविक... स्वभाविक... त्रिकाल ज्ञान। सहजदर्शन... स्वभाविक दर्शन त्रिकाल। सहजचारित्र... स्वभाविक चारित्रस्वरूप त्रिकाल और सहज परमवीतरागसुखात्मक... और उस आत्मा में, परमपारिणामिकभाव में स्वभाविक परमवीतराग-रागरहित सुखात्मक-सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप। चार बोल हुए। स्वभाविक ज्ञान, स्वभाविक दर्शन, स्वभाविक चारित्र, और स्वभाविक परमवीतराग आनन्दस्वरूप।

शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप... एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में-एक समय में-जो शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप... परमपारिणामिकभावस्वरूप। इस जीव का अन्तःतत्त्वस्वरूप, शुद्ध अन्तःतत्त्व, अन्तरभाव, अन्तरस्वभाव, अन्तर पारिणामिकभावस्वरूप जो स्वभाव-

अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,... वह त्रिकाल अन्दर स्वभाव अनन्त चतुष्टय। ऊपर कहा न? ज्ञान-दर्शन -चारित्र और आनन्द। ऐसे स्वभाव-अनन्त चतुष्टय का स्वरूप,... ऐसा जो भाव, जो त्रिकालभाव, त्रिकाल परमपारिणामिकभाव, उसके साथ की जो पूजित... सेठी! उसके साथ की... किसके साथ की? शुद्धअन्तःतत्त्व -स्वरूप जो स्वभाव-अनन्त चतुष्टय... एक समय में पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण स्वभाविक। यह तो मुख्यरूप से चार लिये। ऐसे अनन्त गुण लेना। अनन्त गुण, परन्तु मुख्य तत्त्व ऐसा जो त्रिकाल भाव, उसके साथ की जो पूजित... लो। उसके साथ की जो पूजित... परम पूजित, परम पूजनेयोग्य, परम आदरणीय, परम उपादेय, परम अंगीकार करनेयोग्य पंचम भावपरिणति... देखो! यह जैनदर्शन, वस्तुदर्शन, आत्मदर्शन की विशेषता। ऐसी बात वीतरागमार्ग के अतिरिक्त जीवतत्त्व का यह स्वरूप अन्यत्र कहीं तीन काल-तीन लोक में नहीं हो सकता। अन्यत्र धर्मास्ति, अधर्मास्ति भी नहीं हो सकते, परन्तु ऐसा एक आत्मा, उसका सहज शुद्ध निश्चय से, अनादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान-सहजदर्शन... स्वभाविक आनन्द और स्वभाविक चारित्र, ऐसा शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप... भाव... भाव... भाव... कि जो स्वभावभाव... स्वभावभाव धारक आत्मा, स्वभावभाव। परन्तु यह उसका भाव दोनों अभेद है। आधार और आधेय में भेद नहीं कि आत्मा आधार और स्वभावभाव आधेय, (ऐसा नहीं है) कहने में यह सब अभेद है। ऐसा स्वभाव निरुपाधि त्रिकाल स्वभाव, ऐसे अनन्त चतुष्टय का स्वरूप, उसके साथ की जो... एक समय की पूजित पंचम भावपरिणति... ऐसे समय-समय करते अनादि-अनन्त। अनादि-अनन्त। ओहोहो!

यह पंचम भावपरिणति। परिणति अर्थात् कि पंचम भाव के साथ तन्मयरूप से रही हुई सामान्य द्रव्य-गुण के साथ अंशरूप से तन्मयपने, सदृशपने, ध्रुवपने अनादि-अनन्त। वह सिद्ध में भी होती है, निगोद में होती है, मोक्षमार्ग में होती है, अज्ञान में होती है और केवलज्ञान होवे तो भी यह पर्याय तो अनादि-अनन्त ही है। केवलज्ञान हो गया, इसलिए कारणपर्याय का अभाव हो या उसका सदृशता का विशेष भाव न रहे, ऐसा नहीं है। समझ में आया? प्रवीणभाई, बहुत सूक्ष्म, भाई!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचमभाव पारिणामिक। इन चार भाव से रहित। उदयभाव... समझ में आया ? उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव, इन चार भावों से रहित पंचम भाव है। उदय अर्थात् पुण्य और पाप, राग और द्वेष आदि विकल्प, वह उदयभाव है। उनकी अपेक्षा पंचम भाव में नहीं है। उपशमभाव-सम्यग्दर्शन, चारित्र इत्यादि। जिसे उपशम—नयी धर्म पर्याय, प्रगट नयी पर्याय, उस त्रिकाल भाव को उसकी अपेक्षा नहीं है। क्षयोपशमभाव : किसी प्रकृति का क्षय और किंचित् उपशम—ऐसा मिश्रभाव, उस मिश्रभाव की पर्याय की अपेक्षा भी पंचम भाव को नहीं है तथा क्षायिकभाव - वर्तमान क्षायिक केवलज्ञानादि भाव की भी पंचम भाव अपेक्षा नहीं है। अरे ! पंचम भाव की परिणति को भी चार भाव की अपेक्षा नहीं है। भाई !

मुमुक्षु : क्षायिकभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिकभाव पर है। समझ में आया ? क्षायिकभाव। यहाँ तो निरपेक्ष कहेंगे, परन्तु पंचम भाव में एकरूप भाव की अपेक्षा से... अपने पहले आया था कि चारों ही भाव अपेक्षित हैं। यहाँ उस केवलज्ञान की पर्याय को बाद में निरपेक्ष कहेंगे क्योंकि उसमें वर्तमान कर्म के निमित्त की अपेक्षा नहीं है, परन्तु पंचम भाव को तो चारों ही भावों की अपेक्षा नहीं है। समझ में आया ? यह विषय जरा ऐसा है।

एक समय में पंचम भाव शक्ति का पिण्ड भगवान अनन्त-अनन्त चतुष्टय से भरपूर और अनन्त स्वभाव शक्ति का पिण्ड, ऐसा पंचम भाव, उसकी परिणति-उसकी पर्याय-उसकी अवस्था, उसका विशेष भाव, वह पंचम भाव (**उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली जो पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति**), वही कारणशुद्धपर्याय है... वही कारणशुद्धपर्याय है। **ऐसा अर्थ है।** यह बात अपने तीसरी गाथा चलते हुए कही जा चुकी है। (संवत्) २००० के वर्ष में यह बात बहुत विस्तार से कही गयी है। है ?

यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, ये चार पदार्थ हैं, वे मात्र पारिणामिकभाव से हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, और काल। उनके द्रव्य, गुण और पर्यायें तीनों अकेले पारिणामिकभाव से है। उन धर्मास्ति आदि की जो पर्याय और

चारों द्रव्यों का उत्पाद-व्यय समय-समय में होता है, वह एकरूप पारिणामिकभाव त्रिकाल है। पारिणामिकभाव की पर्याय उत्पाद-व्ययरूप प्रगटरूप, चार द्रव्यों में एकरूप प्रगट उत्पाद-व्यय की पर्याय सदृश, उन गुणरूप से सदृश नहीं, प्रगटरूप से उत्पाद-व्यय-पूर्व की अवस्था का अभाव, नयी अवस्था का उत्पाद, ऐसा अनादि-अनन्त चार द्रव्यों में पारिणामिकभाव की पर्याय एकरूप है।

ऐसी पर्याय आत्मा के संसार पर्याय लो तो विकार पर्याय है, उसमें भी विभिन्न और बहुत भेद पड़ते हैं। निगोद की पर्याय, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चोइन्द्रिय इत्यादि। संसार पर्याय में भी अनेक प्रकार उत्पाद-व्यय के विभिन्न और अनेक प्रकार पर्यायें पड़ती हैं। मोक्षमार्ग की पर्याय में भी अनेक प्रकार पर्याय में भिन्नता पड़ती है। जो संसार अनादि-सान्त, ऐसी पर्याय की भी अनेकता है। जो मोक्षमार्ग सादि-सान्त शुरुआत होकर अन्त आवे, उसकी भी विविधता है। इसी तरह क्षयोपशम की, क्षायिक इत्यादि की। और मोक्षपर्याय जो सादि-अनन्त है, वह भी एकरूप है परन्तु उसका अनादि-अनन्त में बहुत भंग पड़ गये। एकरूप की पारिणामिकपर्याय जैसा चार द्रव्य तो प्रगट उत्पाद-व्ययरूप से है, वैसा आत्मा में उत्पाद-व्ययरूप से सरीखी पर्याय एकरूप अखण्ड धारावाही धारा नहीं रही। समझ में आया? प्रवीणभाई! समझ में आया या नहीं?

इसलिए दूसरे चार अजीव द्रव्यों में इस पारिणामिक की पर्याय एकरूप अनादि-अनन्त, उत्पाद-व्ययरूप से है। इसी प्रकार ये जाननेवाली ऐसी पर्याय एकरूप से अखण्ड प्रगट में नहीं है। समझ में आया? प्रगट में नहीं। प्रगट में तो विषमता है। संसार, मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के बन्धन में भी मिथ्यात्व के असंख्य भंग, व्रत के भी भंग, प्रमाद, कषाय के भंग, उसमें भी फिर मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसमें सम्यग्दर्शन किसी को फिर चारित्र विशेष होता है, उसके भी प्रकार तथा केवलज्ञान सादि-अनन्त, तो अनादि-अनन्त एकरूप पर्याय चार में है, वैसी आत्मा में प्रगट में नहीं रही। और प्रगट में यदि एकरूप होवे तो यह संसार, बन्ध, मोक्षमार्ग और मोक्ष नहीं हो सकता और यदि एकरूप पर्याय उसमें न हो तो परमपारिणामिकभाव सामान्य और विशेष का सदृश जो त्रिकाल चाहिए, वह निश्चयनय का विषय पूरा नहीं होता। समझ में आया?

सामान्य एकरूप स्वभाव है, वैसा विशेष भी भेदरूप पर्याय एकरूप परमपारिणामिक की परिणति न हो तो निश्चयनय का जो सामान्य और विशेष एकरूप परमपारिणामिकभाव, वह खण्ड और अधूरा रह जाता है। इसलिए एक-एक जीवद्रव्य का ऐसा अनादि-अनन्त स्वभाव है कि सामान्य द्रव्य-गुण के साथ ध्रुवरूप, सदृश, पारिणामिकभाव की परिणति अनादि-अनन्त एकरूप सदृश रहती है। समझ में आया ? तीसरी गाथा में तो थे। उस दिन यह बात थोड़ी आयी थी। कहो, समझ में आया ? समझ में आता है ? बहुत सूक्ष्म बात, भाई !

पंचम भाव की परिणति... कि जो कारणपर्याय विशेष,... विशेष। पर्याय का दृष्टान्त दिया था, तब (संवत्) २००० में भी दिया था। तीसरी गाथा चली तब दिया था। उसका नक्शा भी (बनाया था)। कहते हैं, भगवान आत्मा जैसे एक समय में समुद्र-सागर पानी के दल से भरा हुआ और अनेक-अनेक शक्ति से भरपूर, वह समुद्र सामान्य है, उसके ऊपर एक प्रकार की सपाटी का अंश कायम वर्तता है। सपाटी का अंश ऊपर। सपाटी समझे ? सपाटी, क्या कहते हैं ? नहीं, नहीं। सपाटी। लहर के नीचे की सपाटी। सामान्य दलरूप पानी होता है, उसके ऊपर अंश एकरूप (होता है)। फिर उसमें लहर उठती है। ऊपर पानी का एक सरीखा लेबिल।सादी भाषा में समझ में आये। समझ में आया ? सीधा एक अंश, एक अंश ऐसा सीधा सामान्य जल से भरा हुआ समुद्र, उसका एक अंश ऐसे सीधा।

इसी प्रकार आत्मा ज्ञानादि अनन्त गुण का समुद्र भरा हुआ है, अनन्त गुण का पिण्ड है। उसमें एक समय की सीधी-सपाटी अनादि-अनन्त ध्रुव पर्याय पड़ी हुई है। ओहोहो ! समझ में आया ? और उसके ऊपर ये चार बोल हैं—उदय, उपशम, क्षायिक और क्षयोपशम। उदय है, वह पुण्य-पाप के विकार की हिलोरें हैं, हिलोरें। हिलोरें अर्थात् तरंग। ऊपर पुण्य-पाप की तरंग हैं। क्षयोपशम भी उस जाति की किंचित् शुद्धि और किंचित् अशुद्धि की तरंग है। उपशम भी किंचित् शुद्धि की तरंग और क्षायिक पूर्ण शुद्धि की तरंग ऊपर है। वह सपाटी ऐसे एकरूप त्रिकाल है, उसके ऊपर की ये चार तरंगें हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तथा नीचे सपाटी और नीचे पूरा

सामान्य दल। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! डॉक्टर आये थे। कहो, समझ में आया?

एक समय, सेकेण्ड के असंख्य भाग में। देखो! यह विज्ञान का विज्ञान। यह केवलज्ञानी का विज्ञान! विज्ञान का विज्ञान अर्थात् वह सच्चा विज्ञान नहीं कहते। यह विज्ञान यह क्या है, इसे जानने का यह ज्ञान। समझ में आया? एक समय में भगवान् द्रव्य-गुण के साथ पारिणामिकभाव की शुद्ध परिणति जो ध्रुवरूप, जो उत्पाद-व्यय की अपेक्षारहित, जिसे १४वीं गाथा में अन्तिम शब्दों में निरपेक्ष कहा, उस निरपेक्ष पर्याय के दो भेदों में से एक भेद। निरपेक्ष पर्याय के, स्वभाव पर्याय के, दो शुद्धपर्याय के दो भेद में से यह एक भेद है। यह अनादि-अनन्त निश्चयनय का विषय है। समझ में आया?

स्वरूप, उसके साथ की जो पूजित पंचम भावपरिणति... किसी को ऐसा लगे कि ग्रन्थकार ने-टीकाकार ने घर का डाला है, अन्यत्र कहीं नहीं इसलिए (तो) ऐसा नहीं है। यह ग्रन्थ नियमसार है। नियम अर्थात् मोक्षमार्ग की पर्याय। मोक्षमार्ग की पर्याय। निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और रमणता। यह पर्याय का ग्रन्थ है। पर्याय का विषय भले द्रव्य है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन पर्याय है, अवस्था है। सम्यग्ज्ञान पर्याय है, अवस्था है। सम्यक्चारित्र भी धर्म पर्याय है। मूलचन्दजी! तीन आये या नहीं?आये या नहीं? कहो, समझ में आया? ये तीन पर्याय हैं। इस पर्याय का आश्रय द्रव्य है परन्तु तीन पर्याय हैं। यह पर्याय का व्याख्यान है, इसलिए पर्याय की स्पष्टता इसमें आ गयी है। इसमें पूरी पर्याय की व्याख्या है। देखो! आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, छह आवश्यक, समझ में आया? समाधि, भक्ति इत्यादि निर्मल पर्यायें, निर्विकल्प कैसी है, उनका पूरा वर्णन बारह अधिकारों में है। इसलिए यह पर्याय का अधिकार जो अन्दर में गुप्तरूप से था, वह हमको-मुनियों को गुरु की ओर से मिला है। उन्होंने यह नियमसार में टीका द्वारा स्पष्ट किया है।

यह पर्याय का अधिकार है न? धर्म, वह क्या है? सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, वह पर्याय है, अवस्था है, नयी प्रगट होती है। वह कहीं अनादि की पर्याय नहीं है। वह पर्याय नयी प्रगट होती है, इसलिए पर्याय अधिकार में पर्याय के

बहुत वर्णन इतने सब रखे हैं। यहाँ भी रखा है। आगे भी समकिति जीव की पर्याय पाने को समकिति जीव की पर्याय निमित्त, और भगवान की वाणी का निमित्त, ऐसे सब पर्याय की स्पष्टता के अधिकार इस नियमसार में आ गये हैं। इसलिए इसमें किसी को शंका करनेयोग्य नहीं है कि यह क्या? पंचम भाव की परिणति, वह दूसरे किसी शास्त्र में विशेष स्पष्ट नहीं है। नहीं है, ऐसा नहीं कहते, हों! स्पष्ट नहीं है। समझ में आया? और इस जगह ग्रन्थकार, टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ने डाली है, तो कहीं उनके घर की कही हुई है, यह बात ऐसी है नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह तो उन्होंने अपने घर का डाला है। घर का सच्चा, परन्तु आत्मा के घर का। घर का अर्थ कल्पना की हुई है, ऐसा नहीं है।

यह परमपारिणामिकस्वभाव... त्रिकाल एकरूप है।है या नहीं इसमें? समझ में आया या नहीं? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो भगवान एक समय में परमस्वभाव, ज्ञायकभाव, आनन्दकन्द, आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... परम वीतराग आनन्द का भरा हुआ, उस आनन्द के साथ शुद्धपर्याय, वह शुद्धचारित्र के साथ की शुद्ध पर्याय।

पहले में उपयोग की ज्ञान-दर्शन की पर्याय का वर्णन किया। स्वभाविक कार्यस्वभावज्ञानोपयोग, कारणस्वभावदर्शनोपयोग, स्वरूपश्रद्धानमात्र कारणदृष्टि - ऐसे पर्याय की व्याख्या चैतन्यगुण के कारण से कही। यहाँ सामान्य पर्याय की व्याख्या साथ में नहीं लेना। एक जो अनन्त गुण का पिण्ड है, उसके एक समय में सब गुणों का ध्रुव अंश... ध्रुव अंश... ध्रुव अंश... अनादि-अनन्त है। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि... कि किसी को कहा था, कि देख भाई! इसमें... कुछ है नहीं? साथ में तो कर्मोपाधि विवर्जित पर्याय है। पाठ में नहीं तो नया निकाला है? कर्मोपाधि विवर्जित, उस पर्याय के दो भेद लिए हैं। उनमें पहला भेद यह कारणस्वभाव ध्रुव का लिया गया है कि जो आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण स्वभावभाव, स्वभावभाव अनन्त चतुष्टय पिण्ड के साथ विशेष भाव, एकरूप भाव, अंशरूप अनन्त। अनादि-अनन्त ऐसी पंचम भाव की परिणति। क्यों?—कि विशेष... करना है, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र

विशेष पर्याय में प्रगट करना है न या केवलज्ञान। तो उस विशेष के अंश के... होवे सामान्य होवे तो इतने सामान्य, वह कायम एकरूप नहीं... विशेष.. विशेष... विशेष... विशेष का कारण विशेष। मुख्य विशेष... मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र विशेष कहो, या पर्याय कहो। केवलज्ञान, वह मोक्षमार्ग का फल विशेष। एक विशेष को प्रगट होने में शुद्धकारणपर्याय... विशेषता है। विशेष ऐसा अनादि-अनन्त एक कारणशुद्धपर्यायरूप ध्रुवपर्याय में उसमें पड़ी हुई है। उसे ही न माने, उसे वस्तु की खबर नहीं है। उसने आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय से कैसा है, उसे विशेष कैसे प्रगट हो विशेष के जोर में, (इसकी खबर नहीं)। समझ में आया? कारण कि सामने विशेष है। भाई! क्या कहा? ऊपर ऐसे सपाटी। सामान्य स्वभाव अनन्त... अनन्त... गुण से भरपूर है, उसे ऊपर की सपाटी का विशेष... है। ऐसेकारणपर्याय, कारणपर्याय के अवलम्बन से कार्यपर्याय प्रगट होती है। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि, आनन्द आदि परमानन्द पर्याय और मोक्षमार्ग की पर्याय भी उसके ही अवलम्बन से प्रगट होती है और पूर्ण होने के पश्चात् भी समय-समय का केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त चारित्र, अनन्त वीर्य, वह सब समय-समय का वापस नया-नया होता है। सिद्ध में भी नया-नया कार्य होता है। पर्याय कार्य है। सिद्ध भी कार्य है। नया-नया कार्य और कारण भी वहाँ न हो विशेषरूप से, वह कार्य हो नहीं सकता। इसलिए सिद्ध में भी सादि-अनन्त जो कार्यपर्याय उत्पन्न हुआ करती है, उसका कारण अनादि-अनन्त पड़ा है। सेठी! कहो, समझ में आया? भारी विषय, भाई!

द्रव्यानुरयोग में भी व्यवहाररत्नत्रयरहित, चैतन्य के निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान और रमणता मोक्षमार्ग, उसका भी कारण द्रव्य-गुण और पर्याय का कारणशुद्धपर्याय। विशेष ध्रुव, ऐसी अनादि-अनन्त पंचम काल की परिणति, पंचम भाव की अवस्था, पंचम भाव की ध्रुवदशा और पंचम भाव का एक अंश भेदरूप पर्याय, परन्तु वह त्रिकाल निश्चयनय का विषय है। वह पर्यायनय का विषय नहीं है। यह पारिणामिकभाव की पर्याय व्यवहारनय का विषय नहीं है। समझ में आया? यह तो त्रिकाल स्वरूप का विषय है। ऐसी चीज़ कारणशुद्धपर्याय है, ऐसा इसका अर्थ है। ऐसे द्रव्य-गुण और पर्याय तीन की

अभेद प्रतीति, ज्ञान में और रमणता में लेना, यही मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब समझने जैसा है। कहो, समझ में आया? समझने जैसा अर्थात् व्यवहार से विकल्प आवे, निमित्त हो, उसे जाननेयोग्य है, वह तो व्यवहार... निश्चय से निरपेक्ष आत्मा।

दूसरी बात (यह कि) यह निरपेक्ष पर्याय, और बाद में कहेंगे उसमें भी केवलज्ञान आदि भी निरपेक्ष पर्याय है। पहले १३वीं गाथा में कही, वह सापेक्ष पर्याय-उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो चार प्रगट पर्यायें हैं, उन्हें सापेक्ष कही थी और ये विभावभाव पर्याय है। यहाँ कहते हैं कि दोनों को हम निरपेक्ष (कहते हैं) १४वीं गाथा का अन्तिम शब्द निरपेक्ष है। निरपेक्ष की यह व्याख्या है और निरपेक्ष के भी प्रकार जहाँ-जहाँ जैसे हैं, वैसे उन्हें समझना चाहिए। समझ में आया?

एक कर्म की पर्याय कर्मवर्गणा में होती है, वह भी पर्याय एक निरपेक्ष है। उसके द्रव्य-गुण में नहीं-परमाणु के द्रव्य-गुण में नहीं, तथापि कर्मरूप पर्याय भी ऐसा ही कोई वस्तु का स्वभाव है, वह कर्मरूप दशा होना, वह भी एक कर्म की निरपेक्ष पर्याय है। स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध की अपेक्षा से। द्रव्य-गुण में अपेक्षा नहीं है।

आत्मा में होनेवाले पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, शुभ और अशुभ विकल्प, वे स्वयंसिद्ध की अपेक्षा से निरपेक्ष हैं। क्या कहा, समझ में आया? निरपेक्ष हैं। पारिणामिकभाव की वास्तव में वह भी एक विकारी प्रगट पर्याय है। उदयभाव, वह भी एक पारिणामिकभाव की प्रगट पर्याय है। यह अप्रगट की बात है और केवलज्ञान प्रगट पर्याय शुद्ध की बात है, परन्तु निमित्त की अपेक्षा से उसे राग-द्वेष का उदयभाव कहा है। उसकी स्वयं की निश्चय की अपेक्षा से वह पर्याय निरपेक्ष और पारिणामिकभाव की पर्याय प्रगट विकार को, संसार को कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

पारिणामिकपर्याय निरपेक्षपना... औरमोक्ष का मार्ग निश्चय होना, निश्चयमोक्षमार्ग आत्मा की शुद्धकारणपर्याय और कारणपरमात्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (होता है), वह भी निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। यह तो अपने पहले आ गया है। इसमें आ गया। निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। राग भी एक अपेक्षा से निरपेक्ष, कर्म

की पर्याय भी एक निरपेक्ष है, और यह... क्यों निरपेक्ष, अपेक्षा है।की अपेक्षा, पर्याय की अपेक्षा, द्रव्य-गुण में नहीं और स्वयंसिद्ध उसका स्वभाव है। राग से होता हो तो सबमें होना चाहिए। परन्तु वह परमाणु उस काल में कर्मरूप पर्याय होने की स्वयं की स्वयंसिद्धता है, इसलिए कर्मरूप पर्याय होती है। ऐसे उसके निमित्त के आकार अपने में पुण्य-पाप का विकार होना, वह भी अपनी स्वयंसिद्धपर्याय की अपेक्षा से निरपेक्ष है। अनन्य मोक्षमार्ग भी व्यवहार की-निमित्त की अपेक्षा नहीं रखता। इसलिए निश्चयमोक्षमार्ग भी निरपेक्ष है। ओहोहो! फिर केवलज्ञान कार्यरूप परिणति कर्म के निमित्त की उपस्थिति वर्तमान नहीं है, इसलिए वह निपेक्ष अर्थात् त्रिकाल शुद्धपर्याय, इसलिए निरपेक्ष। ओहोहो! निरपेक्ष के कितने अर्थ! समझ में आया? यहाँ तो जरा सूक्ष्म बात है। यह वस्तु अन्तर में इसे ख्याल में लिये बिना क्या अपेक्षा है, यह समझ में नहीं आता। कहो, समझ में आया? यह कारणशुद्धपर्याय अत्यन्त निरपेक्ष है। अब इसे सिद्ध करने के लिए दूसरी बात की थी।

इस जगत में एक संसारपर्याय सामान्यरूप से तो अनादि-अनन्त है। संसारपर्याय कभी किसी जीव में नहीं हो ऐसे सब... करेंगे? अनादि-अनन्त संसार। एक जीव की बात नहीं है। सामान्य जीव लें तो संसारपर्याय अनादि-अनन्त है। एक बात। यह उसमें से कोई व्यक्ति अपना भाव करके मोक्ष का मार्ग प्रगट करे, इस अपेक्षा से उसे अनादि-सान्त संसार कहा, परन्तु संसार में-दुनिया में से अनादि-अनन्त संसारपर्याय कभी चली जाए, ऐसा बननेवाला नहीं है।

दूसरी बात। मोक्ष, सिद्धगति की पर्याय भी अनादि-अनन्त है। किसी दिन मोक्ष, जगत में नहीं था और सिद्धगति नहीं थी, ऐसा भी नहीं है कि भाई! पहले संसार था और अब सिद्धपरमात्मा तो कभी मोक्षरूप नहीं थे।—ऐसा नहीं है। सिद्धगति भी अनादि-अनन्त है। आहाहा! सामान्यरूप से सिद्धगति अनादि-अनन्त है और व्यक्तिगत स्वयं स्वरूप का साधन करके नया प्रगट करे, उसके लिए सिद्धगति सादि-अनन्त है।

संसार और मोक्षपर्याय दोनों अनादि-अनन्त हैं। ऐसे केवलज्ञान का उपयोग भी जगत में अनादि-अनन्त है। है या नहीं? कि दुनिया में पहले कभी केवलज्ञान नहीं था?

केवलज्ञानोपयोग, केवलदर्शनोपयोग, शुद्धकारण। समझ में आया ? अथवा शुद्धकार्यदृष्टि, परमावगाढसमकित, परमयथाख्यात्चारित्र, ऐसा अनादि-अनन्त जगत में किसी दिन नहीं था, ऐसा नहीं है। अनादि-अनन्त जगत में है। ऐसे एक ओर संसारपर्याय, एक ओर मोक्षपर्याय, एक ओर केवलज्ञानादि उपयोगपर्याय प्रगट। यह प्रगट बात चली। वह संसार पर्याय प्रगट, मोक्षपर्याय प्रगट, केवलज्ञान उपयोगरूप प्रगट, ऐसे आत्मा में अनादि-अनन्त अप्रगटरूप से पर्याय... समझ में आया ? कि जिसे कारण है, उसकी खबर नहीं, तथापि कारणरूप पर्याय अनादि-अनन्त है। ध्यान रखना।

जैसे संसार अनादि-अनन्त है, परन्तु व्यक्तिगत और भान होने के पश्चात् उसे अनादि-सान्त संसार हो जाता है। मोक्ष अनादि-अनन्त है परन्तु व्यक्तिगत जब करे, तब उसे मोक्ष की गति सादि-अनन्त हुई। ऐसे आत्मा में त्रिकाल द्रव्य और गुण शुद्ध है, ऐसी एक शुद्ध कारणपर्याय अनादि-अनन्त कारण है परन्तु जिसे खबर पड़े, तब उसे यह कारण, अनादि-अनन्त है। उसके ख्याल में सादि-अनन्त आ जाता है। क्या कहा ? भाई! समझ में आया ? क्या कहा, समझ में आया ? क्या कहा ?

जैसे पहले संसार और सिद्ध दो बोल लिये। उसमें वापस दो लिये। एक अनादि-सान्त संसार और एक सिद्ध सादि-अनन्त। ऐसे आत्मा में शुद्धकारणपर्याय अनादि-अनन्त है। अनादि-अनन्त। अभव्य को, भव्य को, निगोद को, सबको अनादि-अनन्त है, परन्तु जब श्रद्धा और ज्ञान में कारण को कारण बनाता है, तब उसका ख्याल आवे, वह सादि-अनन्त है। वस्तु अनादि-अनन्त है। समझ में आया ? एक व्यक्ति को अनादि-अनन्त ख्याल आवे, ऐसा नहीं है। एक व्यक्ति को अनादि-अनन्त ख्याल आवे, ऐसा नहीं है। क्या कहा, समझ में आया ? समुच्चय अनादि-अनन्त कारणपर्याय पड़ी है, और उसका ख्याल करनेवाला भी सामान्यरूप से अनादि-अनन्त है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म विषय, भाई!

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में परमपारिणामिकभाव के साथ की पंचम भाव की परिणति जगत में अनादि-अनन्त है और उसका ख्याल करनेवाले भी अनादि-अनन्त हैं। उसका ख्याल करनेवाले भी सामान्यरूप से अनादि-अनन्त हैं। सामान्यरूप

से तो अनादि-अनन्त हैं। समझ में आया ? परन्तु प्रत्येक में अनादि-अनन्त कारणपर्याय पारिणामिकभाव की परिणति होने पर भी एक व्यक्तिगत कहो तो उसका ख्याल करनेवाला सादि-अनन्त होता है। उसकी कारणपर्याय अनादि-अनन्त है, परन्तु उसके ख्याल में आवे कि ओहो! यह द्रव्य-गुण और पर्याय त्रिकाल शुद्ध है, ऐसी प्रतीति आदि का ख्याल आया, तब ख्याल में कारणपर्याय आयी, उसे ख्याल में सादि-अनन्त, परन्तु वस्तुरूप से अनादि-अनन्त है। कहो, समझ में आया ?

देखो! इस प्रकार पंचम भाव, स्वभावभाव भगवान आत्मा अनन्त गुण के आनन्द का कन्द है। जैसे छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट, सोलह आना चरपराहट, पूरी चरपराहट, पूर्ण चरपराहट भरी हुई है तो प्रगट होती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में सोलह आना—पूर्ण पूरा रूपया, वह चौंसठ अर्थात् पूरा रूपया अर्थात् पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण चारित्र, उसके साथ पूर्ण सदृश कारणशुद्धपर्याय। समझ में आया ? जैसे शक्तिरूप छोटी पीपर में पड़ी है परन्तु फिर भी उसे विशेष रूप प्रगट होती है, वहाँ उसका विशेष अंश है। विशेष किस प्रकार कहना चाहता हूँ ? भाई! कि रेत है। ध्यान रखना रेत-रेत। बेलु समझते हो ? रेत ? रेत में स्निग्धता की अन्दर शक्ति है, परन्तु बाह्य प्रगट आविर्भाव प्राप्त करने की योग्यता की सपाटी की पर्याय रेत में अभी नहीं है। क्या कहा समझ में आया ? ऐई! हिम्मतभाई! परन्तु छोटी पीपर में चरपराहट पड़ी है परन्तु उसमें बाह्य में व्यक्त होने की योग्यता भी वहाँ नजदीक में पड़ी है। परमाणु में स्निग्धता पड़ी है। रसगुण, रसगुण जो पड़ा है... ऐई! हिम्मतभाई! यह नया आया है। यह तो आते-आते आवे वह ठीक। जैसे रसगुण परमाणु - कंकर में पड़ा है तो उसकी स्निग्धता की व्यक्त वर्तमान सपाटी की निकटता उसमें नहीं है। निकटता नहीं है। समझ में आया ? नारणभाई!

इसी प्रकार छोटी पीपर में जो चरपराई अन्दर पड़ी है, परन्तु प्रगट होने की योग्यता है। रसगुण तो समस्त परमाणुओं में है, परन्तु चरपराहट वर्तमान विशेषरूप सामर्थ्य वह छोटी पीपर में है, कि उससे विशेषरूप चौंसठ गुणी प्रगट होने की उसकी योग्यता से प्रगट होती है। समझ में आया ? नहीं तो परमाणु में तो रसगुण की अपेक्षा से

सबमें चिकनाहट है। कोई कंकर को पीसता है ? उसके निकट में नहीं है। उसके समीप में चरपराहट प्रगट हो, ऐसी योग्यता नहीं है। छोटी पीपर में निकट में चरपराहट प्रगटे, ऐसी योग्यता है, भाई! बराबर है न? इसी प्रकार भगवान आत्मा सामान्यरूप से तो त्रिकाल ध्रुवरूप है, उसकी विशेष पर्याय त्रिकाल नजदीक में कार्यरूप प्रगटे, ऐसा साधन अन्दर पड़ा है। ऐसे आत्मा में भेद नहीं है। उसमें-जड़ में भेद है, भाई! एक में नजदीकरूप से है और एक में दूर, ऐसे भेद हैं। इसमें भेद नहीं।

ऐसा यह भगवान आत्मा जो कि अनादि-अनन्त द्रव्य-गुण और पर्याय से विशेषरूप से शुद्ध है। उसकी नजदीकता तो सब आत्मा में पड़ी है। किसी में नहीं हैं, ऐसा नहीं है। उसमें दो भेद पड़ गये। पुद्गल है वह, पुद्गल है वह। यह भगवान आत्मा अखण्ड ज्ञायक है। भाई! अखण्ड ज्ञायक है। पुद्गल में पूरण-गलन भेद पड़कर एक में नजदीक और एक में दूर आ गया है परन्तु भगवान आत्मा अखण्ड अभेद चैतन्यतत्त्व है, उसमें सामान्यरूप से जैसे शुद्धता है, वैसी उसकी विशेष शुद्धता का अंश भी अनादि-अनन्त है। उसमें किसी को नजदीक और दूर, ऐसा है नहीं। वह स्वयं प्रगट करने को नजदीक-दूर होता है, वह तो बाह्य पर्याय की बात हुई। परन्तु उसकी नजदीकता विशेष में न हो और फिर से किसी को अमुक को नजदीक होने का काल आवे, तब विशेष नजदीक होता है।शुद्धकारणरूप विशेष पर्याय, ऐसे आत्मा में नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया ?

इसलिए यहाँ भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। मुनि भी भगवान हैं न? परमेश्वर हैं न? पंचपरमेष्ठी में शामिल हैं। णमो लोए सव्व साहूणं। गणधरदेव वहाँ महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। ये पद्मप्रभमलधारिदेव जब टीका करते थे, तब गणधरदेव जहाँ णमो लोए सव्व साहूणं (बोलते हैं), तब लोए सव्व साहूणं में पद्मप्रभमलधारिदेव शामिल हो जाते थे। पद्मप्रभमलधारिदेव को भी गणधर नमस्कार करते थे। णमो लोए सव्व साहूणं। भगवान! तू भी पंच परमेष्ठी में मुनि परमेष्ठी है। टीका करते समय भी जब कोई मुनि-गणधर वहाँ शास्त्ररचना करते हों या णमो पाँच नवकार का स्मरण का विकल्प उठा हो तो भगवान णमो लोए सव्व साहूणं में परमेष्ठी आ जाते हैं। ग्यारहवीं प्रतिमा धारक

श्रावक पंचम गुणस्थान में निर्मलतावाले परमेष्ठी पद में नहीं आता। पंचम गुणस्थान की निर्मल शुद्धि, जो सम्यग्दर्शन की शुद्धि, उससे पहली प्रतिमा की शुद्धि, दूसरी की, तीसरी की, ग्यारहवीं, निर्मल आनन्दकन्द की शुद्धि परन्तु ग्यारह प्रतिमा शुद्धि की जो निर्मल शुद्धि हुई, वे पंच परमेष्ठी में नहीं मिलते और जहाँ तीन कषाय का नाश होकर छठवाँ और सातवाँ, छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आने की योग्यता हो गयी (तो) णमो लोए सव्व साहूणं। लोक में सर्व सन्तों, साधकों... सर्व अर्थात् दूसरे सब उल्टे-सीधों की बात नहीं है, हों! यह तो ऐसा स्वरूप साधे, उसकी बात है। और कोई कहे दूसरे सब आ जायें (तो ऐसा नहीं है)। ऐसे स्वरूप के साधनेवाले ऐसे सन्तों को गणधर भी, णमो लोए सव्व साहूणं में नमस्कार करते हैं। वह यहाँ भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव ने यह टीका की है। कहो, समझ में आया ?

वही कारणशुद्धपर्याय है... कहो, यह व्याख्या निरपेक्ष पर्याय के दो भेद में से एक निरपेक्ष पर्याय, कारणशुद्धपर्याय, त्रिकाल पर्याय, पंचम भाव की विशेषरूप-भेदरूप, सामान्य के साथ विशेष अंशरूप रही हुई, यह विशेष व्यवहारनय का विषय नहीं। निश्चयनय का त्रिकाली ध्रुव विषय, उसे भगवान पंचम भाव की परिणति और उसे कारणशुद्धपर्याय कहते हैं और पूजित कहकर ग्रन्थकार पूजनीय कहते हैं क्योंकि नजदीक में तेरा आधार है। तेरे आधार से यह कार्य होता है। तेरा आधार है। ऐसा कहकर पूजितभाव वर्णन किया है। कहो, समझ में आया ? इस १५वीं गाथा की बहुत दिनों से लोग जिज्ञासुरूप से इन्तजार कर रहे थे। उस कारणशुद्धपर्याय की व्याख्या एक आयी। अब कार्यशुद्धपर्याय की व्याख्या (आयेगी)....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

.... दृष्टि का ध्येय विषय में दो भेद नहीं पड़ते कि यह संसार अवस्था या यह मोक्ष अवस्था, वह तो पर्यायनय का विषय है। एकरूप आत्मा जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही आत्मा अनादि है, यह बात यहाँ अन्वयार्थ और टीका में बहुत सरस लेते हैं।

‘यादृशाः’ अर्थात् जैसे ‘सिद्धात्मानः’ सिद्ध आत्मा हैं वैसे ‘भवम् आलीनाः जीवाः’ अर्थात् भवलीन (संसारी) जीव... भवलीन जीव, भव की पर्याय में लीन होते वे जीव (वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की भाँति) जन्म-जरा-मरण से रहित... हैं। और आठ गुणों से अलंकृत... अर्थात् शोभित हैं।

टीका:—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से... शुद्ध द्रव्यस्वभाव एक ही प्रकार शुद्धभाव, उसमें फिर सिद्धपना या संसारीपना, ऐसे दो भेद गौण करके, संसार की पर्याय वर्तती है, तथापि उसे गौण करके, अभूतार्थ करके, व्यवहार करके, ‘वह नहीं’ और सिद्ध की पर्याय प्रगट नहीं, तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिकदृष्टि से वे सब आत्मा एक ज्ञायकमूर्ति शुद्धभाव के पिण्ड ही हैं, ऐसा यहाँ वर्णन करते हैं। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से... शुद्ध द्रव्य को जो ज्ञान का भाग लक्ष्य में ले, ऐसे ज्ञान के अभिप्राय से, आशय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है। दोनों में कुछ जरा भी अन्तर नहीं। क्योंकि दृष्टि के जोर में शुद्धभाव में भेद ही करता नहीं कि यह संसार व्यय करूँगा और सिद्धपद उत्पन्न करूँगा, वे दोनों द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि के शुद्धस्वभाव की दृष्टि के ध्येय में उन दो भेद का स्वीकार नहीं। समझ में आया ?

एकरूप चिदानन्द। देखो, यह तो ज्ञायक कहो, क्रमबद्ध कहो, द्रव्यदृष्टि कहो, सिद्ध जैसा आत्मा कहो, सब एक प्रकार का है। यह ज्ञायक चैतन्यमूर्ति शुद्ध अनादि-अनन्त शुद्ध निराकुल आनन्दकन्द उस दृष्टि में—ध्येय में ध्रुवता है, स्वभाव है। उसे मुक्ति उत्पन्न करूँगा, संसार का व्यय करूँगा, ऐसा स्वरूप में नहीं। वह तो सिद्ध जैसा ही अनादि है। संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में (कुछ भी) अन्तर न होने का कथन

है। बहुत सरस अधिकार है, देखो, अब कहते हैं पहला अधिकार तो यह लेते हैं कि सिद्धपना कैसे प्राप्त किया ? सिद्ध कैसे प्राप्त हुए ? वह सिद्ध जैसा आत्मा है, ऐसा सिद्ध करना है न यहाँ ? जैसे सिद्ध हैं वैसे संसारी, ऐसा सिद्ध करना है, तब अब सिद्ध (पद) कैसे प्राप्त किया ? सिद्धपना, परमात्मपना, मुक्तिपना कैसे प्राप्त किया ? उसकी व्याख्या करते हैं। जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,... आसन्न-भव्य, देखा! अति-आसन्नभव्य। अल्प काल में जिनकी मुक्ति होने की योग्यता है, ऐसे भव्य, भव्यजीव तो है, उसमें कोई आसन्न-भव्य है। यहाँ तो अति-आसन्न-भव्य... आसन्न अर्थात् निकटता। मोक्ष की पर्याय जिसे निकट, अल्पकाल में प्रगट होने की योग्यतावाले भव्यजीव हैं, ऐसे जो कोई... उसमें भी बहुत भव्य जीवों में कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,... वापस वे भव्य हुए। समझ में आया ? स्वभाव का भान करके अति-आसन्न-भव्य जीव हुए। भव्य तो थे, परन्तु आत्मा का भान करके, ज्ञायक चिदानन्द आत्मा हूँ, उसका भान करके अति-आसन्न-भव्य जीव हुए।

वे... एक तो भव्य लिये। निकट और अति-आसन्न अर्थात् अति निकट। दूसरी बात। वे पहले संसारावस्था में... मुनिपना लेने से पहले, मुनिपना लेने से पहले संसार अवस्था उन्हें थी। फिर उसे सिद्धपना बतलाना है न ? सिद्ध हुए और सिद्ध जैसी उपमा संसारी को देनी है। कैसे ? कि वे अति-आसन्न-भव्यजीव पहले संसारदशा में—संसार अवस्था थी, भव्य जीव को संसारपर्याय उदयभाव था, राग-द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध, उदयभाव था। उस संसार-अवस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए... क्या कहा अब ? पहले उपाय कहा। उन्होंने उपाय क्या लिया ? कि संसार-अवस्था जो आत्मा की एक समय की विकारी पर्याय है या उपाधिभाव है या भेदभाव है, उस संसार-अवस्था में संसारक्लेश से थके हुए। यह पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, शुभ और अशुभ, इन भावों से थकान लगी। संसारक्लेश से, हों! कोई नरकगति और पशुगति के क्लेश से, ऐसा नहीं। पूरा संसारभाव विभावभाव, उदयभाव, उपाधिभाव, मलिनभाव, एक समय का मलिनभाव, उससे (थके हुए)। वह संसारक्लेश है। वह शुभभाव हो या अशुभ हो, जिस भाव से स्वर्ग मिले या जिस भाव से नरक मिले, वह सब भाव संसारक्लेश है। देखो, पहली शुरुआत बतायी।

संसारक्लेश। जिसके हृदय में एक पर्याय में विकारभाव, मिथ्याभाव, राग-द्वेषभाव, स्वर्ग के कारणरूप भाव, वह सब संसारक्लेशभाव है, ऐसा जानकर थके हुए चित्तवाले। देखो, यह शुरुआत की। सम्यग्दर्शन की शुरुआत। समझ में आया? संसार-अवस्था में ऐसा अन्तर भान हुआ कि अहो! यह विकारभाव, एक समय की संसारपर्याय क्लेश है, क्लेश है। उससे थके। विश्राम लेने, विश्राम लेने को प्रयत्नवान हुए। विसामो कहते हैं न? विश्राम। यहाँ पाप से थके, ऐसा नहीं कहा। नरक और तिर्यच की गति से थक, ऐसा नहीं कहा। यह संसारक्लेश पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, व्रत और भक्ति जो अनन्त बार करता आया है, अनन्त बार करता आया, वह पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... उसमें नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया, जिस भाव द्वारा, उस भाव को यहाँ क्लेश कहा है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्गी जैन दिगम्बर मुनि अन्तिम ग्रैवेयक में गया, उसके जो भाव शुक्ललेश्या, शुभभाव, पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के और देव, गुरु और शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र-सन्मुख के पठन का विकल्प राग और अट्ठाईस मूलगुण का राग, इन तीनों को यहाँ क्लेश कहा है। समझ में आया?

संसारावस्था में... अति-आसन्न-भव्यजीव उस संसार क्लेश से थके। अरे! यह शुभ और अशुभ... शुभ और अशुभ... अनन्त बार किये। ऐसे शुभभाव भी नौवें ग्रैवेयक गया, तब अनन्त बार किये। अशुभभाव भी अनन्त बार किये। यह दोनों भाव, उन्हें संसारभाव कहते हैं। उनसे थके। देखो, समझ में आया? यह पहली सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की दशा का वर्णन है, पश्चात् मुनि का वर्णन करेंगे और मुनि होने के पश्चात् किस भाव से सिद्धपद पायेंगे, इन तीन का वर्णन इसमें है।

पहले संसारदशा में, संसारक्लेश से एक समय का जो विकार अनादि का पुण्य-पाप आदि ऐसे क्लेश दुःखदायकभाव हैं, उनमें कहीं अंश भी सुख नहीं। ऐसे थके-थके। क्या कहते हैं थके को? थक गये, थक गये। विकारभाव से थक गया। समझे? विकारभाव से थक गये। इसलिए विकारभाव से थके हुए ज्ञानवाले, उनके ज्ञान में विकार की थकान लगी। होते हुए... ऐसे चित्त ज्ञानस्वभावसन्मुख मुड़कर, ज्ञानानन्द में हूँ, वहाँ विश्राम लिया। देखो, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान। संसारक्लेश से थके और स्वभाव

के अक्लेश में विश्राम लिया। ऐसा लिया, भाई! क्या कहा, समझ में आया ?

प्रथम क्या किया अति-आसन्न-भव्यजीवों ने ? कि संसारावस्था जो क्लेशरूप पर्याय है, उस पर्यायबुद्धि से, क्लेशबुद्धि से थके और ऐसे थके हुए ज्ञानवाले। चित् शब्द से यहाँ ज्ञान। उस ज्ञान में पर से थकान लगी और ज्ञान में विश्राम लिया। 'मैं ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ', ऐसा विश्राम लिया, उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहते हैं। समझ में आया ? ऐई! हिम्मतभाई! यह चित्त अर्थात् ज्ञान लिया। देखो, अस्ति-नास्ति से बात करते हैं।

यहाँ सिद्ध जैसे संसारी बतलाना है और सिद्धपद कैसे प्राप्त हुए, यह बतलाकर उन सिद्ध जैसे सब संसारी जीव हैं, ऐसे उनके साथ तुलना करनी है। तो सिद्धपद कौन पाये ? कि अति-आसन्न निकट भव्यजीव। किस प्रकार ? कि पूर्व में संसारदशा में संसारक्लेश से थकान लगी। विभाव, व्यवहार, निमित्त, उपाधि जो कुछ दया, दान, भक्ति, व्रत, तप के परिणाम अनादि से करता आता है, वह क्लेश, क्लेश (है उसका) थकान लगी है। ऐसे ज्ञानवाले। थकान लगी, ऐसे ज्ञानवाले। अर्थात् ज्ञान में उस थकान का आश्रय नहीं। ज्ञान में स्वभाव का आश्रय लिये हुए। ...चन्दभाई! समझ में आया ?

ऐसे दो पहलू, दो भाग। शुद्धभाव अधिकार है न ? शुद्धभाव चिदानन्द त्रिकाल ध्रुवभाव, शुद्धभाव, निर्मलभाव, ज्ञायकभाव, उस भाव में यहाँ क्लेशरूप एक समय की जो पर्याय, एक समय की जो पर्याय संसार, उससे थके। यह शुद्धभाव में विश्राम लिया अर्थात् शुद्धभाव की दृष्टि और ज्ञान किया। इस प्रकार सम्यग्दर्शन और ज्ञान की व्याख्या की। समझ में आया ? लो, यह सम्यग्दर्शन।

जो अभी पुण्य और पाप से लाभ मानते हैं, वे पुण्य-पाप से थके नहीं, थकावट नहीं हुई। जो निमित्त से लाभ मानते हैं, उन्हें निमित्त से थकान नहीं लगी अभी। निमित्त अनन्त चीजें, पुण्य-पाप के परिणाम, शुक्ललेश्या, नौवें ग्रैवेयक में गया, ऐसी शुक्ललेश्या। शुक्ललेश्या, जिसके नौ तत्त्व की विकल्पवाली श्रद्धा स्पष्ट। विकल्पवाली, रागवाली, भेदवाली श्रद्धा, व्यवहारश्रद्धा निश्चयरहित अकेली व्यवहारश्रद्धा और अट्टाईस मूलगुण का पालन निरतिचार। अचेल—नग्न, एकबार आहार, खड़े-खड़े (आहार) ऐसा शुभराग, वह शुक्ललेश्या। समझ में आया ? और शास्त्र भगवान सर्वज्ञ के कहे हुए, उन परद्रव्य

सन्मुख का लक्ष्य करके राग मन्द करके शास्त्र का ज्ञान किया। ऐसे भाव को यहाँ क्लेश कहा है। संसारभाव, क्लेशभाव, उस क्लेश को पर्याय व्यवहारनय का वर्तमान विषय है। है सही। नहीं था, ऐसा नहीं, परन्तु थके। मुख वहाँ से मोड़ा, बदला। पर्यायदृष्टि में विकार जो है, उसकी रुचि, उसका ज्ञेयपना जो अनादि से करता आया है, वह रुचि बदलकर, ज्ञान में रुचि करके और ज्ञान को ज्ञेय बनाया। वर्तमान ज्ञान की पर्याय से जो क्लेश, पुण्य-पाप, व्यवहार, निमित्त और ज्ञेय की रुचि करके पड़ा था, उस क्लेश से थके, गुलाँट खायी और क्लेश से थके हुए ज्ञानवाले होते हुए, ज्ञानवाले होते हुए। ऐसा क्यों कहा? कि पुरुषार्थ से किया है। जो पुण्य और पाप में रुका हुआ था, वह भी पुरुषार्थ से, उल्टे पुरुषार्थ से और उसकी थकान लगकर स्वभावसन्मुख हुआ, वह भी थके हुए चित्तवाले होते हुए अर्थात् परिणमन निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान का करते हुए। ऐसा कहा है।भाई! समझ में आया? छोटभाई!

आत्मा एक समय में संसारक्लेश, एक समय में शुद्धभाव का पिण्ड। दो। यह संसारक्लेश फिर चाहे जो राग और चाहे जो भाव हो, परन्तु वह क्लेशमय है (उससे) थके। उसका आश्रय लेना छोड़ा, उसका अवलम्बन लेना छोड़ा, निमित्त का आधार छोड़ा और थके हुए चित्तवाले अर्थात् क्लेश संसार से थके हुए ज्ञानवाले अर्थात् उसका आश्रय छोड़ा, ऐसे ज्ञानवाले और ज्ञान ने स्वभाव का आश्रय लिया, ऐसे ज्ञानवाले। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की व्याख्या हुई। समझ में आया? अनादि सनातन सिद्धपद को पाने के उपायरूप कारण क्या है, उसकी भी सिद्धि करके कारण का फल कार्यसमयसार कौन है, उसकी बात साथ में करना चाहते हैं। ओहोहो! टीका तो देखो, पद्मप्रभमलधारिदेव किस प्रकार करते हैं! समझ में आया?

भगवान आत्मा विभाव से थके अर्थात् कि वहाँ से विश्राम। थके, वह विश्राम ले न! कोई पाँच, दस, पन्द्रह कोस चला हो और थकान लगी हो तो उसे बहिन का या मौसी का घर मिले गाँव में। अरे माँ! मौसीमाँ! थकान लगी है अब। परन्तु भाई! खा न! नहीं, अभी सोने दो मुझे। अभी तो मुझे सोने दो। उसे गद्दी, चाहे जो गोदड़ा-बोदड़ा डालकर (सोवे)। मुझे बहुत थकान लगी है। समझ में आया? एक बार तो जरा घण्टे, दो घण्टे विश्राम ले, थकान लगी, वह विश्राम ले। ऐसा अनादि-अनन्त काल में पुण्य

और पाप के अनादि परसन्मुख रहकर भाव करता है, ऐसी थकान लगी हो। अरेरे! परन्तु यह तो अनन्त बार किया। यह तो पर्यायबुद्धि, पर्यायरुचि, विकाररुचि, निमित्तरुचि, निमित्त आश्रय, राग आश्रय अनन्त बार (लिया है) यह तो थकान है। उसमें कहीं शान्ति मिली नहीं। उसमें कहीं सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र और आनन्द मिला नहीं। ऐसे पर की थकान लगकर स्वभाव का विश्राम लिया।

यह ज्ञानस्वरूप है, चैतन्यमूर्ति है। एक समय की रुचि ऐसे जो ज्ञान की पर के सामने थी, वह स्वभावसन्मुख हुई और थके हुए चित्तवाले होते हुए। वापस पुरुषार्थ भी करते हैं। किसी ने किया नहीं। कर्म मन्द पड़े, इसलिए ऐसा हुआ... समझ में आया? ऐसा नहीं। काललब्धि आयी, इसलिए ऐसा हुआ (—ऐसा नहीं)। यह ऐसा किया, तब काललब्धि आ गयी। देखो, इन शब्दों में पाँच समवाय समाहित हो जाते हैं, सब क्रमबद्ध समाहित हो जाता है, सब समाहित हो जाता है। ऐसी अवस्था की ओर जो दृष्टि थी विकार की, उसे (छोड़कर) स्वभाव ज्ञायक शुद्धभाव (सन्मुख हुआ)। इसलिए शुद्धभाव अधिकार है न! शुद्धभाव, चैतन्यभाव, ज्ञायकभाव, कारणशुद्धजीव ऐसे स्वभाव में चित्तवाले होते हुए। ऐसे थके हुए चित्तवाले अर्थात् कि सम्यग्ज्ञानवाले चित्तवाले होते हुए। कहो, एक बोल हुआ। लो, यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान।

सहजवैराग्यपरायण होने से... ऐसी दृष्टि और ज्ञान हुआ है अन्तर का अर्थात् स्वाभाविक वैराग्यपरायण, वैराग्यपरायण, वैराग्यतत्पर, राग के अभाव में तत्पर, राग के अभाव में तत्पर, स्वभाव में तत्पर हुआ, इसलिए क्रम-क्रम से राग में—अभाव में तत्पर। अस्ति-नास्ति ऐसे लेते हैं। समझ में आया? ऐसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान प्राप्त होते हुए सहजवैराग्य। देखो, सहजवैराग्य (अर्थात्) मैं राग छोड़ूँ और पुण्य ठीक है और पाप अठीक है और छोड़ूँ, कषाय मन्द करूँ, वह वैराग्य ही नहीं। वैराग्य तो पहले पुण्य और पाप की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि की, तब पुण्य-पाप का वैराग्य हुआ और स्वभाव में एकाग्र हुआ, तो पुण्य-पाप का जो वैराग्य था, उसकी अस्थिरता घटने लगी और स्वभाव में स्थिरता बढ़ने लगी, उसे सहज वैराग्यपरायणदशा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रेरणा....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेरणा नहीं, उसे ऐसे अस्ति से ऐसा कहा न! क्लेश से थके हुए चित्तवाले होते हुए, ऐसे ज्ञान ही ऐसा स्वभावसन्मुख झुका तो यहाँ इस ओर राग की ओर का सहज वैराग्य हुआ। ऐसे अस्ति-नास्ति की। समझ में आया? ऐसे क्लेश से थके हुए ज्ञानवाले हुए, ज्ञानवाले हुए, अर्थात् ज्ञान राग से वैराग्य को प्राप्त हुआ। राग शब्द से पुण्य-पाप, व्यवहार, निमित्त सबसे वैराग्य पाकर आत्मा की ओर (ढला)। आत्मा की अपेक्षा और राग की उपेक्षा। पुण्य ठीक, व्यवहार ठीक, इन सबकी उपेक्षा। वह उपेक्षा करता हुआ ज्ञान सहज वैराग्यपरायण आत्मा हुआ। देखो, यह एक मुनिदशा लेने की विधि। लोग कहते हैं, लो! मुनिपना, लो मुनिपना। भाई! समझ में आया?

भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिपने का कारण क्या और मुनिपना क्या और उसका फल क्या, वह सब इस थोड़े में वर्णन कर देते हैं। सहजवैराग्य। ऐसे राग आया। पुण्य-पाप अधिकार में नहीं आता? वैराग्य। आता है न पुण्य-पाप के अधिकार में, नहीं? कर्ताकर्म में। पुण्य-पाप का भाव का आश्रय नहीं, वही वैराग्य है। वैराग्य संपत्तो मुच्चयी। वैराग्य संपत्तो मुच्चयी अर्थात्? पुण्य-पाप से विरागता है और स्वभाव से आश्रय है, स्वभाव का आश्रय है और पुण्य-पाप का आश्रय नहीं, उसका नाम विरागता है। ऐसा वैराग्य पाये हुए। क्या कहलाता है यह? परमात्मपद, सिद्धपद कैसे प्राप्त हो? वह प्राप्त हुए सिद्ध जैसे संसारी हैं, ऐसा वर्णन करना है। इससे पहले सिद्धपद कैसे प्राप्त हो, उसकी विधि, उसका विधान वर्णन करते हैं।

ओहोहो! देखा! कहीं एक अंश भी राग, पुण्य, निमित्त का आश्रय और लाभ माने तो उसे थकान नहीं लगी राग और विकार के ऊपर। और स्वभाव जहाँ अन्तर में ज्ञान का आश्रय लिया, उसे राग में से सहज वैराग्यपरायण, स्वाभाविक वैराग्यपरायण। क्षण-क्षण में स्वभाव में अस्तिरूप परिणमन होता है, इसलिए राग का नास्तिरूप परिणमन हो, उसे स्वाभाविक वैराग्यपरायण कहते हैं। कहो, समझ में आया?

ज्ञानी ज्ञान और वैराग्यसम्पन्न है, ऐसा जो निर्जरा अधिकार में आता है, आता है न? ज्ञानशक्तिसहित और वैराग्यशक्तिसहित, वह यह दो लिये। समझ में आया? यह ज्ञानशक्तिसहित अर्थात् कि स्वभाव के आश्रय के भानसहित और संसार के क्लेश के आश्रयरहित। अब जो क्लेश और आश्रयरहित ज्ञान हुआ अर्थात् राग और क्लेश के

परिणाम जरा अस्थिरता के सम्यग्दृष्टि को रहे, उनसे स्वाभाविक वैराग्य होता जाये, स्वभाव में जितनी एकाग्रता हुई, उतना राग घटता जाता है।

सहजवैराग्यपरायण होने से... तब अब मुनिपना लेना चाहते हैं। अब मुनिपना लेना चाहते हैं। ऐसा भान होने के पश्चात् मुनिपना लेते हैं। इससे पहले मुनिपना नहीं। अनन्त सिद्ध हुए। अभी तक के अनन्त सिद्ध हुए, उन्होंने सबने यह विधान सेवन कर सिद्धपद लिया है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' दूसरा पंथ हो नहीं सकता। अभी तक के जितने अनन्त सिद्ध हुए, वे सब इस एक ही उपाय से हुए हैं, दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसे भानवाले और स्वाभाविक वैराग्यपरायणवाले मुनिपना लेने को तैयार हो गये। मुनिपना, दिगम्बर मुनि (दशा) लेने की तैयारी की। ऐसे भानवाले द्रव्य-भावलिंग को धारण करके अब मुनिपना ग्रहण किया। समझ में आया? द्रव्यलिंग बाह्य नग्नदशा और अन्तर में अट्टाईस मूलगुण के विकल्प को भी द्रव्यलिंग कहते हैं।

भावलिंग... अन्तर में निर्विकल्प आनन्ददशा, वीतरागी परिणति हुई, उसे भावलिंग कहते हैं। ओहोहो! देखो, अब चारित्र बढ गया। उसमें तो अभी सहजवैराग्यपरायण, स्वभाव के भानवाले आगे बढे, द्रव्यलिंग और भाव, द्रव्य और भावलिंग को धारण करके... अनन्त सिद्ध हुए, इस प्रकार से अभी महाविदेह में होते हैं, भविष्य में अनन्त (होंगे)। इस पद्धति के अतिरिक्त दूसरा कोई सिद्ध होने का मार्ग तीन काल, तीन लोक में दूसरा नहीं। समझ में आया? इसलिए कहते हैं, ऐसे सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को... कि जो द्रव्यलिंग प्रवचनसार में यथाजात, ऐसा करके अट्टाईस मूलगुण का वर्णन किया है, जिसे एक वस्त्र का धागा नहीं। ताणा कहते हैं न? धागा नहीं तिलतुषमात्र और जिन्हें पात्र का टुकड़ा नहीं। सब परिग्रह छूट गया है। द्रव्य से छूट गया, अकेली नग्नदशा द्रव्यलिंग हो गया है। अन्तर में अट्टाईस मूलगुण के (विकल्प है)। खड़े-खड़े आहार, एकबार आहार, अचेलपना ऐसे अट्टाईस मूलगुण के विकल्प उठते हैं, उन्हें धारण करते हैं ऐसे, द्रव्य को धारण करते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा है। निश्चय से भाव को धारण करते हैं और व्यवहार से धारण करते हैं अर्थात् कि धारण करते नहीं, परन्तु उस समय वैसा निमित्त होता है, इसलिए धारण करते हैं, ऐसा

व्यवहार से कहा गया है।

देखो, **द्रव्य-भावलिंग को धारण करके...** इसमें से दो शब्द निकले कि द्रव्यलिंग को धारण करके अर्थात् व्यवहार। तो व्यवहार को धारण करके अर्थात् कि उसे धारण करता नहीं, परन्तु वैसे विकल्प आते हैं, नग्नदशा सहज हो जाती है, इसलिए उसे व्यवहार से धारण किया, कहा। अर्थात् कि ऐसा नहीं, परन्तु निमित्तपना है; इसलिए धारण करते हैं, ऐसा कहा है। **भावलिंग को धारण करके...** यह अन्तर निश्चय है। भावलिंग दोनों इकट्ठा है न? ब्रह्मचारीजी! दोनों इकट्ठे हैं, निश्चय-व्यवहार। **द्रव्य-भावलिंग को...** परन्तु साथ में है, हों! ऐसा नहीं कि भावलिंग प्रगट हुआ है और द्रव्यलिंग न हो। मुनिपना भाव छठवाँ गुणस्थान प्रगट हुआ और द्रव्यलिंग नग्नदशा और अट्टाईस मूलगुण के विकल्प न हों और दूसरे विकल्प हों, वह द्रव्य-भाव एक भी बात को नहीं जानता। इसलिए एक बात सिद्ध के उपाय के कारण में यह बात इकट्ठी रख दी है। सहजपना उस दशा में आ जाता है।

द्रव्यलिंग और भावलिंग को धारण करके। धारण करके के दो अर्थ किये कि द्रव्यलिंग धारण किया अर्थात् धारण किया नहीं, परन्तु निमित्तपना ऐसा होता है, वह अट्टाईस मूलगुण के विकल्प ही होते हैं वहाँ और भगवान, गुरु आदि कहते हों, उनकी ओर के विकल्प ज्ञान के हों समझने में। समझ में आया? और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प हो, उसे द्रव्यलिंग कहते हैं। और भावलिंग। क्लेश से थके हुए ज्ञानवाले थे, सहजवैराग्यपरायण थे और स्वरूप में स्थिरता हुई, तब भावलिंग निर्विकल्प वीतरागी छठवें गुणस्थान की प्रगटी, सातवें की। पहले सातवें की। समझ में आया? ऐसे **लिंग को धारण करके...** लो, यहाँ तो अभी भावमुनि आया, उस समय द्रव्यमुनिपना निमित्तपना कैसा, उसकी पहिचान दी, इससे पहले उसका सहजवैराग्य और स्वभावसन्मुख का भाव और क्लेश की ओर की थकान, उसका वर्णन किया। अनन्त जीव जितने हुए सिद्ध, उन्हें यह ही एक विधान-विधि है। उसमें दूसरी विधि-विधान तीन लोक में है नहीं। कहो, समझ में आया? यह नियमसार कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं या नहीं यह?

अब वापस विशिष्टता लेते हैं। ऐसा द्रव्यलिंग और भावलिंग धारण किया, वैराग्य हुआ था जोरदार, इससे स्वरूप में स्थिरता हो गयी और भावलिंग आया तथा

बाह्य में द्रव्यलिंग और अभ्यन्तर में भी विकल्प अट्टाईस मूलगुण के रह गये। अब सिद्धपद कैसे पाये फिर ? पहले सम्यग्दर्शन कैसे पाये ? पश्चात् मुनिपना कैसे पाये ? अब सिद्धपद कैसे पाते हैं, उसकी व्याख्या है। समझ में आया ? ठीक आया है यह, रामजीभाई ! अधिकार ठीक आ गया तुम्हारे इसमें।

द्रव्य-भावलिंग को धारण करके... ऐसा कहा है न ? हिम्मतभाई ! बाद में न ? अब भावलिंग धारण करने के पश्चात् क्या किया ? कोई ऐसा कहे कि पहले तो भाई ! क्लेश से थके और स्वभाव का आश्रय लिया और सम्यग्दर्शन-ज्ञान पाये। फिर क्या किया ? सीधे सम्यग्दर्शन में केवलज्ञान हो जाता है ? नहीं। देखो, यहाँ द्रव्यलिंग और भावलिंग धारण करे तो मुनिपना होता है, ऐसा कहा है। द्रव्यलिंग धारण नहीं किया और मुनिपना आ जाये, ऐसा है नहीं। द्रव्यलिंग मुनिपना नग्नदशा और अट्टाईस मूलगुण का विकल्प उठे कि मैं लूँ, इसके बिना भावलिंग नहीं आता। समझ में आया ? ऐसी साथ में बात की है। कोई कहे कि सीधे ऐसा का ऐसा भावलिंग आ जाये नौ-नौ कोटि से मन, वचन और काया, करना, कराना, अनुमोदन... नौ कोटि से करना, कराना, अनुमोदन से परिग्रह, हिंसा, झूठ न छूटे, तब तक भावलिंग प्रगट नहीं होता, यह बात साथ में ली है।

द्रव्य-भावलिंग को धारण करके... समझ में आया ? अब धारण करने के पश्चात् किसी को ऐसा हो कि भाई ! भावलिंग तो धारण किया स्वभाव में स्थिरता हुई। क्लेश से थके, वहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान बताया, सहजवैराग्यपरायण होकर मुनिपना बताया। अब मुनि होने के पश्चात् सिद्धपद लेने के लिये क्या किया ? कोई क्रिया की ? उपवास किये ? त्याग किया ? बहुत अभिग्रह नियम यह करके कोई हुए ? तो कहते हैं **परमगुरु के प्रसाद से...** देखो, अब परमगुरु लाये। इसे समझानेवाला पहले निमित्त था सम्यग्दर्शन में, परन्तु परमगुरु थे, चारित्र में भी परमगुरु थे और मुनिपने में भी पहले परमगुरु ने जो कहा था, पहला सम्यग्दर्शन में भी परमगुरु मिले थे। सम्यग्दर्शन स्वभाव के आश्रय से होता है, पश्चात् भी सहजवैराग्यपरायण हो, तब मुनिपना ऐसा परमगुरु ने कहा हुआ और पश्चात् भी परमगुरु ने सिद्धपद प्राप्ति से पहले, मुनिपने के पश्चात् क्या किया ? कि परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त। निमित्त लिया। कुगुरु या कुदेव, कुशास्त्र उसमें निमित्त नहीं हो सकते। पहले सम्यग्दर्शन में भी नहीं होते, मुनिपने में भी मिथ्यादृष्टि निमित्त नहीं होता।

समझ में आया ? और पश्चात् भी उसे मुनिपने में आगे वृद्धि, केवलज्ञान पाने में निमित्त कौन होता है ? वह भी यहाँ बताते हैं । खीमचन्दभाई ! है या नहीं इसमें तीनों ही ? कि परमगुरु कौन होंगे ? वे चरणानुयोगवाले मिथ्यादृष्टि ? अरे भगवान ! समझ में आया ?

परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त... देखो, निमित्त की प्रसादी मिली । निमित्त सद्गुरु ज्ञानी मिले, परमगुरु सन्त यहाँ भावलिंगी मुनि की व्याख्या है । भावलिंगी नग्न दिगम्बर बाह्य में, अन्तर में भावलिंग । सन्तपना छठवाँ गुणस्थान, सातवें का प्रगट हुआ है । ऐसे गुरु के प्रसाद से प्राप्त **किए हुए परमागम के अभ्यास द्वारा...** लो ! यह सिद्धपद कैसे पाये ? फिर मुनि, मुनि । परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किये हुए परमागम के अभ्यास अर्थात् सम्यग्ज्ञान का अभ्यास । ले । अन्तर ज्ञानानन्द में—भावस्वभाव में अभ्यास करने से, ज्ञान में एकाग्रता करने से परम आगम में कहा, गुरु ने कहा, परमागम ने ऐसा कहा कि अब तू इस प्रकार से द्रव्य और भावमुनि हुआ, ज्ञान के स्वभाव में ही एकाग्र हो । एकाग्र हो, यह प्रतीति तो थी, भान तो था, परन्तु परमगुरु ने जो कहा, पहले से कहा, उसके अभ्यास में पड़ा है ।

परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए परमागम के अभ्यास... पहले से जो परमागम का अभ्यास किया था । परम आगम कहा है, हों ! समझ में आया ? जो सनातन सर्वज्ञ के कहे हुए, वास्तविक देव-गुरु-शास्त्र, षट्द्रव्य, गुण और पर्याय आदि की व्याख्या जो पूर्ण निर्दोष और परमसत्य है, ऐसे परमागम के अभ्यास द्वारा । वह परमागम जिसे मिले, उनके निमित्त में उनका लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का भान किया, उनका लक्ष्य छोड़कर परमागम में सुनाया गुरु ने कि देखो ऐसा मुनिपना, ऐसा मुनिपना । सुनते-सुनते भी विकल्प था, स्वभाव का आश्रय लेकर मुनि हुए, और पश्चात् भी **परमागम के अभ्यास द्वारा...** परमागम कहता है कि ज्ञायकमूर्ति है, उसमें फिर स्थिर हो । शुरुआत में भी ज्ञान में स्थिर हुआ, मुनिपने में भी निर्विकल्प स्थिरता में स्थिर हुआ और पश्चात् भी ज्ञान के एकाग्र अभ्यास में करते-करते केवलज्ञान पाता है । दूसरे कोई उपाय से केवलज्ञान पाने की पद्धति और विधान नहीं । समझ में आया ? यह **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** अर्थात् परमगुरु सर्वज्ञ परमात्मा अथवा सन्त, मुनि, भावलिंगी मुनि के प्रसाद से प्राप्त, प्रसाद से प्राप्त अर्थात् वह पात्र हुआ । मुनि जो हुआ, समकित्ती, वह

पात्र हुआ तब, यह प्रसाद से प्राप्त हुआ, ऐसा कहा गया है। क्या मिला ? परमागम का अभ्यास। परमागम ऐसे जो शास्त्र।

कहते हैं कि मुनि को तो स्वाध्याय ही मोक्ष है। स्वाध्याय और ध्यान, स्वाध्याय और ध्यान। आता है न ? मुनि भावलिंगी सन्त जंगल में विचरते हैं, उन्हें स्वाध्याय और ध्यान दो ही कर्तव्य है। तो कहते हैं, परमागम का अभ्यास, उसमें ध्यान और स्वाध्याय दोनों आ गये। समझ में आया ? सर्वज्ञ ने कहे हुए जो शास्त्र परमसत्य है, उनका भान हुआ था, उसमें लीनता स्वरूप में की थी, पश्चात् भी कहते हैं कि ज्ञान का ही अभ्यास होते-होते ध्यान हो जाये, ज्ञान का स्वाध्याय होते-होते ध्यान हो जाये। छठवें गुणस्थान में विकल्प आवे तो स्वाध्याय, सातवें में ध्यान हो जाये। स्वाध्याय और ध्यान... स्वाध्याय और ध्यान... छठवें गुणस्थान में विकल्प आवे तो स्वाध्याय हो जाये, तथापि अन्दर परिणति तो निर्मल वापस ध्यान हो जाये। स्वाध्याय और ध्यान... स्वाध्याय और ध्यान।

ऐसे परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके... ओहोहो! उस 'सिद्धक्षेत्र को पाकर' का अर्थ सिद्धपना पाकर। सिद्धक्षेत्र को कौन पाये ? सिद्धक्षेत्र वास्तविक तो यहाँ है। निश्चयसिद्धक्षेत्र। क्या कहा ? यह निश्चयसिद्धक्षेत्र पाकर। यह आत्मा निर्मल हुआ, वह सिद्धक्षेत्र तो यहाँ है। वह—बाहर का तो व्यवहार से सिद्धक्षेत्र है। असंख्यप्रदेश में स्वयं अपनी पर्याय में पहला सम्यग्दर्शन पाकर, सहजवैराग्य पाकर, द्रव्य-भावलिङ्ग मुनि होकर और इस ज्ञान का अभ्यास करते-करते निर्मल पूर्ण सिद्धपर्याय यहाँ हो गयी। असंख्य प्रदेशी पर्याय हो गयी, वह सिद्धक्षेत्र यहाँ है। हिम्मतभाई! ले! यह तो निश्चयसिद्धक्षेत्र! ऐई! ...भाई! सिद्धक्षेत्र निश्चय यहाँ पाये, तब व्यवहार हुआ। कहो, समझ में आया ?

परमागम के अभ्यास द्वारा... एक सिद्धान्त लिया है। कोई ऐसी क्रिया का अभ्यास और व्रत, तप का अभ्यास और अट्टाईस मूलगुण का अभ्यास... ऐसा नहीं। मुनि भी फिर ऐसे अट्टाईस मूलगुण के अभ्यास द्वारा केवल (ज्ञान) पायें, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? ओहोहो! कितना मार्ग में फेरफार उल्टा। एक निगोद का मार्ग और एक सिद्ध का मार्ग, इतना अन्तर है कि सिद्ध के मार्ग में यह चले। उससे विरुद्ध के मार्ग में निगोद में चले। चिमनभाई! सत्य होगा यह ? देखो तो सही, गुलौंट मारकर बात

करते हैं ऐसी। यह सिद्ध के मार्ग को प्राप्त हुए, वे सिद्ध हुए। वे **परमागम के अभ्यास द्वारा...** परमगुरु के प्रसाद में कहा कि तुमने परमागम में कहा हुआ आत्मस्वरूप, उसके अभ्यास में रहना, आनन्द के अभ्यास में रहना। उसमें न रह जा सके, तब स्वाध्याय का विकल्प होता है, होता है। उस विकल्प का अभ्यास करते हैं, ऐसा कहना, वह निमित्त से है, अन्तर का अभ्यास करते हैं, यह निश्चय से है।

क्षेत्र का पाकर अर्थात् सिद्धपना प्राप्त करके, परमात्मदशा की निर्मल अवस्था प्राप्त करके। शुरुआत से ठेठ तक की विधि इतने में आ गयी। इससे विरुद्ध हो, वह वीतराग का मार्ग नहीं। कहो, समझ में आया? क्या पाये? अब कहते हैं कि पाकर, परन्तु क्या भाव पाये? वह तो क्षेत्र की बात की। असंख्य प्रदेशी सिद्धक्षेत्र अपना निश्चय पाये। बाह्य में सिद्धक्षेत्र। पर्याय कैसी हुई? पर्याय कैसी प्रगटी? कि अव्याबाध—बाधारहित उनकी पर्याय को अब कोई विघ्न है नहीं।

सकल-विमल (सर्वथा निर्मल)... सर्वथा निर्मल। विघ्न नहीं, यह नकार से लिया। (अब) हकार से (कहते हैं)। **सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-**लो! ज्ञान पाये। वापस पाये तब ज्ञान। आश्रय करो ज्ञान का, ज्ञान के आश्रय में वैराग्य हुआ, ज्ञान के आश्रय में मुनिपना हुआ, वापस ज्ञान के आश्रय से केवलज्ञान पाये तो पाये केवलज्ञान। समझ में आया? **केवलज्ञान...** अव्याबाध और सकल, उस केवलज्ञान को कोई विघ्न नहीं कि केवलज्ञान पर्याय हुई, वह अब वापस गिरेगी। और सर्वथा निर्मल है, अर्थात् उसमें बिल्कुल अल्पज्ञता की मलिनता रही नहीं और **केवलदर्शन...** केवलदर्शन, पूर्ण दर्शन। **केवलसुख...** पूर्ण सुख। **केवलवीर्ययुक्त...** केवल—अकेला वीर्य पर्याय प्रगट हुई। ऐसे युक्त **सिद्धात्मा हो गये...** ऐसे सिद्धात्मा हो गये, अनन्त सिद्ध इस विधि से भरत में, ऐरावत में, महाविदेहक्षेत्र में चाहे जहाँ हो, वे इस विधि से होते हैं। इस विधि से दूसरी विधि का आश्रय लेने जाये या दूसरा मार्ग लेने जाये, वह मार्ग है नहीं, कुमार्ग है, अमार्ग है, विपरीत मार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग है नहीं। कहो, समझ में आया?

सिद्धात्मा हो गये... यह चतुष्टय लिये। केवलज्ञान, केवलदर्शन, सुख; सुख में चारित्र आ गया, वीर्य। कि जो **सिद्धात्मा...** सिद्धात्मा कैसे हैं? पहले कहा था न

संसारक्लेशवाले होते हुए ज्ञान को पाकर। अर्थात् वहाँ कारणशुद्धजीव के आश्रय से सम्यग्ज्ञान पाये, कारणशुद्धजीव के आश्रय से, और यहाँ बड़े कि जो सिद्ध आत्मायें कार्यसमयसार स्वरूप है, लो! समझ में आया? नीचे कार्यशुद्ध। **कार्य-अपेक्षा से शुद्ध**। है। यह कार्य हुआ न। यह पर्याय कार्य है, पूर्ण पर्याय वह कार्य है। पूर्ण पर्याय जो कार्यसमयसाररूप हो गये। कार्यसमयसाररूप है अर्थात् कि **कार्यशुद्ध** है। लो! कार्यसमयसाररूप है अर्थात् कार्यशुद्ध अर्थात् कार्यशुद्धजीव है। लो, यह कार्यशुद्धजीव। सिद्ध हैं, वे कार्यशुद्धजीव। कार्यसमयसार अर्थात् कार्यशुद्ध। जैसे कार्य शुद्ध है पूर्ण। नीचे का कार्य अभी मोक्षमार्ग में... समझ में आया?

उसमें तो बहुत-बहुत लेख है। ऐसे राग क्लेश पहले संसारपर्याय थी, वह संसारपर्याय हो तो उसमें निमित्त का कर्म का भी उसके सामने देखने का था और विकार की रुचि छूटे, स्वभाव के सामने आया, उसका ज्ञान बदला, श्रद्धा बदली, चारित्र बदला, वीर्य बदला, सब बदला। ऐसे गुणों की साबिती, पर्याय की साबिती, परिणमन की साबिती, नित्य की साबिती, निमित्त की साबिती। विकार में निमित्त वे थे। निर्विकार सम्यग्दर्शन में निमित्त सच्चे देव-गुरु और धर्म और परमागम के उपदेशक गुरु थे, वे निमित्त थे। वहाँ से छोड़कर स्वभाव का आश्रय किया, तब भान पाये, ऐसी सब बात थोड़े में दी है। कहो, समझ में आया?

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)



माघ कृष्ण ४, दिनांक - १०-०२-१९५५
कलश-७३, गाथा-४९-५०, प्रवचन नं. ४१६

४९वीं गाथा। नियमसार की, ४९ में शुद्धभाव अधिकार है। उसमें समयसार की शिक्षा की है श्लोक में।

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहितपदानां हंत हस्तावलम्बः।
तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥

यह समयसार का कलश है अमृतचन्द्राचार्य का। उसका यहाँ आधार देते हैं कि यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है—ऐसे जीवों को, अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो,... क्या कहा? कि यह आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध चिदानन्द आनन्दस्वरूप है, ऐसा भान होने पर भी जब तक वीतरागदशा पूर्ण पर्याय में प्रगट न हो, तब तक व्यवहारनय वर्तमान पर्याय में भेद और राग आवे, उसे जाननेयोग्य है। क्या कहा, समझ में आया? यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में... प्रथम भूमि अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि भूमिका में। प्रथम अर्थात् सम्यग्दर्शन से पहले, ऐसा नहीं। केवलज्ञान होने से पहले समकित, श्रावकपना और मुनिपना जब अन्तर (में) वर्तता हो, तब ऐसी प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है... अर्थात् अवस्था जो चौथे, पाँचवें, छठवें आदि भूमिका की वर्तती है, उसे ऐसे जीवों को, अरेरे! खेद करते हैं। हस्तावलम्बनरूप भले हो,... वह पर्याय में विकल्प, भेद भले हो और व्यवहारनय अर्थात् वर्तमान ज्ञान उसे जाने। ऐसा जाने, ऐसा है ऐसा जाने।

तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित... अकेला चैतन्य ज्ञानानन्द भगवान् चमत्कारमात्र है, उसमें पर से रहित... भेद और विकल्प से रहित अभेद चिदानन्द के आनन्द में स्थित होते हैं अथवा पूर्ण दशा जिन्हें प्रगट हुई है, ऐसे परम

पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,... पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द अभेद हूँ, ऐसा अन्तर में देखते हैं उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है। यह व्यवहारनय कुछ है ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया? व्यवहारनय कुछ नहीं, ऐसा कहा। 'नैष किञ्चित्' कुछ नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा ऐसे पूर्णानन्द ध्रुवस्वरूप है, ऐसा भान हुआ होने पर भी जब तक वर्तमान पर्याय में पूर्ण वीतरागता न हो, तब उसे राग-द्वेष विकल्प और भेदरूप गुणस्थान के भेद नीचे वर्तते हैं, वह व्यवहारनय का विषय हस्तावलम्बरूप अर्थात् वहाँ निमित्तरूप से गिना है, तथापि जो उसका लक्ष्य छोड़कर शुद्ध आनन्दकन्द में लीन हुए हैं, उन्हें व्यवहारनय कुछ नहीं। व्यवहारनय पहले जाननेरूप है पूर्ण न हो तब तक, आदरयोग्य नहीं। आदरयोग्य तो अन्तर ज्ञानानन्द परमानन्द परमपारिणामिकभाव, वही स्वभाव अंगीकार और आदरनेयोग्य है।

इसलिए कहते हैं कि परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,... अन्तर ज्ञानदृष्टि द्वारा पूरा परमस्वभाव में ज्ञेय करके अन्तर में अनुभव में स्थित हैं कि जिन्हें पूर्ण दशा वीतराग की हो गयी है, उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है। इस व्यवहारनय का प्रयोजन (नहीं) अर्थात् व्यवहारनय का विषय तो रहता नहीं। कहो, समझ में आया?

अब, स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव (इस ४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —

(स्वागता)

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ

संसृतावपि च नास्ति विशेषः ।

एवमेव खलु तत्त्वविचारे

शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति ॥७३॥

वास्तव में शुद्धनिश्चयनय से... जो ज्ञान का भाग आत्मा के पूर्ण स्वभाव को लक्ष्य में ज्ञेयरूप से ले वैसे 'शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;'... वर्तमान संसारपर्याय और मुक्त अवस्था में जरा भी शुद्धनिश्चय के बल से, परम ध्रुव एकरूप आनन्दकन्द ज्ञायक कारणशुद्धपरमात्मा में कुछ भी शुद्धनिश्चय के बल से अन्तर नहीं। संसार हो या मुक्ति हो, संसार वह उत्पाद पर्याय, विकार आदि की, भेद

आदि की वह उत्पादपर्याय, निर्मलपने की और उस उत्पाद के और संसार के व्यय को अथवा संसार की उत्पत्ति को लक्ष्य में न लो तो एकरूप परमानन्दस्वभाव जो ज्ञायकभाव, उसमें संसार और मुक्त अवस्था में कुछ अन्तर नहीं, कुछ भेद नहीं।

ऐसा ही वास्तव में,... ऐसा ही वास्तव तत्त्व विचारने पर (परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं। शुद्ध तत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं। शुद्धतत्त्व के रसिक... एक समय में ज्ञानानन्द का समुद्र, आनन्द का सागर ऐसा पूर्ण स्वभाव दृष्टि में लिया, उसे वर्तमान अवस्था और पश्चात् केवलज्ञानादि की अवस्था, उन दोनों अवस्थाकाल में वस्तु तो एकरूप है, उसमें कुछ भी अन्तर नहीं। ऐसा तत्त्वरसिक जन कहते हैं, कहते हैं, जानते हैं, मानते हैं और अनुभव करते हैं और कहते हैं।

अब ५०वीं (गाथा) ।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।

सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥५० ॥

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।

अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही ॥५० ॥

गाथार्थः—पूर्वोक्त सर्व भाव... एक समय में आत्मा पूर्ण स्वभाव के अन्तर दृष्टि की अपेक्षा से उसमें रहे हुए उदय पुण्य-पाप का भाव; उपशमसमकित, चारित्र का भाव; क्षयोपशम ज्ञान, दर्शन, समकित, चारित्र का भाव और क्षायिकभाव, ये सब भाव परस्वभाव हैं,... क्षायिकभाव। समझ में आया ? ...भाई! एक समय का सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण परमात्मा, पूर्ण परमात्मा। एक समय के संसार का व्यय और मुक्ति की उत्पत्ति अथवा संसार की उत्पत्ति और फिर मोक्ष की उत्पत्ति, ये दोनों व्यवहारनय का वर्तमान विषय है। उसे यहाँ परस्वभाव कहा है, उसे यहाँ परद्रव्य कहा है। समझ में आया ? क्यों ? कि जिसके—पर्याय के लक्ष्य से, भेद के लक्ष्य से विकल्प उठते हैं, वह विकल्प राग, वह परद्रव्य है, इसलिए जिसके आश्रय से राग उठे, उसको—सबको परद्रव्य कहा है। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात।

भगवान आत्मा एक समय में जो पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... अनादि-अनन्त एकरूप स्वभाव है, उसकी अपेक्षा से पूर्वोक्त सर्व भाव... क्षायिक के, उपशम के, उदय के, वे सब कर्मकृत गिनकर, कर्मजन्य गिनकर परभाव (कहे हैं)। क्षायिकभाव कर्मजन्य, कर्मकृत, कर्म निमित्त की सापेक्षता रखता है इसलिए। कर्म के निमित्त की या निमित्त के अभाव की सापेक्षता रखते हैं, इसलिए वे सब भाव परभाव हैं, वे सब परद्रव्य हैं। यहाँ तो एक ओर स्वद्रव्य और एक ओर परद्रव्य, दो भाग ही हैं। समझ में आया ? इसलिए हेय है... इसलिए एक समय की पर्याय सिद्ध की या संसार की, वह सब परद्रव्य है, इसलिए हेय है। लो! अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—देखो, वह जो पर्याय थी एक समय की, उसे परद्रव्य गिना। अब अन्तःस्वभाव निरुपाधि त्रिकाल स्वभाव, ऐसा जो स्वद्रव्य, त्रिकाल अन्तःतत्त्व ऐसा जो स्वद्रव्य आत्मा—उपादेय है। ऐसा स्वद्रव्य का आत्मा, वही एक उपादेय है।

टीका:—यह, हेय-उपादेय... छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य। हेय अर्थात् छोड़नेयोग्य और उपादेय अर्थात् आदरनेयोग्य। अथवा त्याग-ग्रहण के... अथवा त्याग करना। हेय अर्थात् त्याग और उपादेय अर्थात् ग्रहण करना स्वरूप का कथन है। गाथा बहुत ऊँची है, भाई! जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,... आत्मा एक समय में सामान्य स्वभावस्वरूप ध्रुव परमपारिणामिकभाव है, इसके अतिरिक्त के सभी भाव विभावगुणपर्यायें हैं। समझ में आया ? विभाव अर्थात् विशेष, सामान्य अर्थात् एकरूप। एक समय में एकरूप ज्ञायक परम ध्रुव। समझ में आया ? द्रव्य शुद्ध, तत्त्व शुद्ध—ऐसा एक स्वभावभाव, इसके अतिरिक्त के जितने केवलज्ञान और केवलदर्शन और अनन्त आनन्द; राग और द्वेष तथा उपशमसमकित और क्षायिकसमकित और क्षयोपशम समकित तथा क्षयोपशमचारित्र, वे सब विभावगुणपर्यायें हैं।

वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा... पर्याय के कथन द्वारा, भेद के कथन द्वारा, भेद के विषय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,... वह व्यवहार का विषय है, उसे जानने में अथवा उपादेय कहा गया था, उसका अर्थ कि वह जाननेयोग्य है। वह व्यवहार का विषय जाननेयोग्य है। किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से... एक समय में तीनों काल में आनन्द भगवान परमानन्द की मूर्ति, सम्यग्दर्शन से

लेकर सादि-अनन्त जो स्वभाव का आश्रय करनेयोग्य है... कहो, समझ में आया ? अथवा जिस स्वभाव में से केवलज्ञानादि पर्यायें प्रगट होती हैं, सिद्धों को तो आश्रय नहीं, परन्तु पर्याय उसमें से प्रगट होती है इसलिए वास्तव में केवलज्ञान पर्याय का आधार द्रव्य है। वह द्रव्य ही शुद्धनिश्चयनय के बल से... कहो, समझ में आया ? जो व्यवहारनय के बल से अथवा व्यवहारनय के कथन द्वारा। व्यवहारनय का बल अर्थात् जो बल नहीं, निश्चयनय का बल अर्थात् वास्तविक बल। चन्दुभाई! व्यवहारनय का बल आता है साथ में, हों! परन्तु आता है। व्यवहारनय के बल से अर्थात् व्यवहारनय के बल से नहीं, ऐसा अर्थ करना। निश्चयनय के बल से अर्थात् वास्तविक बल से, ऐसा। कहो, समझ में आया ? एक बार कहा था कि शुद्धनिश्चयनय के बल से, ऐसा अर्थ किया था तो व्यवहारनय के बल में क्या अर्थ करोगे ? लो! समझ में आया ? व्यवहारनय के बल से अर्थात् कि व्यवहारनय कहता है कि ऐसा है। इतना जानने के लिये निमित्त का कहा, परन्तु उसका बल है नहीं।

यहाँ शुद्धनिश्चयनय के जोर से आत्मा एक समय में पूर्ण कारणपरमात्मा आनन्दकन्द शुद्ध है, उसकी दृष्टि से वर्तमान पर्याय में जितने उपशम, उदय, क्षायिकभावों के भेद पड़ते हैं, वे सब हेय हैं, सब छोड़नेयोग्य हैं। समझ में आया ? सब त्यागयोग्य है। लो! क्षायिकभाव त्यागयोग्य है। समझ में आया ? वाडीभाई! क्या ? पर्याय है, एक समय की पर्याय और एक समय का पारिणामिक भगवान आत्मा, वह त्रिकाल स्वभाव एकरूप है, उसे स्वद्रव्य कहा है और जितने पर्याय के संसार से लेकर मोक्ष के भेद, उन सब भेदों को परद्रव्य कहा है। वे सब परद्रव्य हैं, वे हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं। समझ में आया ? क्योंकि वर्तमान पर्याय और जो केवलज्ञानादि पर्याय साधक को वर्तती नहीं, उसका जहाँ आश्रय करने जाये, लक्ष्य करने जाये तो राग होता है और राग होता है, वह बन्ध का कारण है। और आत्मा का एकरूप स्वभाव, वह अबन्धस्वभाव है। आत्मा का एक समय का त्रिकाल ध्रुवस्वभाव आनन्दकन्द स्वभाव अबन्ध है। और पर्याय का आश्रय करने जाने पर बन्धभाव होता है। इसलिए अबन्ध द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय के आश्रय से राग का बन्ध होता है, इसलिए उन सब पर्यायों को परद्रव्य कहा है। समझ में आया ? समझ में आता है ? बहुत सूक्ष्म बात है।

यह तो अभी यह परद्रव्य है... स्वद्रव्य की बात करो, क्योंकि परद्रव्य हैं वे तो छोड़नेयोग्य हैं। परद्रव्य का फिर व्यवहार का कैसा विवेक होता है, उसकी जानने की उसमें आवश्यकता रहती नहीं। ऐसा होगा या नहीं? ऐसा नहीं है। व्यवहारनय से जिस-जिस समय जो राग जिस प्रकार की पर्याय, जिस प्रकार का निमित्त, वह वैसे जाननेयोग्य ज्ञेयरूप से बराबर जानना चाहिए। तो उसे जाने तब और उस समय में पूर्ण आनन्दकन्द ज्ञायक है, उसका आश्रय करे, तब उसे (व्यवहार को) यथार्थ जाना तब उसे परद्रव्य कहा जाता है, तब छोड़नेयोग्य कहा जाता है। अभी छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य के ठिकाने का विवेक न हो, उसे व्यवहारनय छोड़नेयोग्य है, क्या परन्तु अभी व्यवहारनय कहना किसे, यह तो (उसे खबर) नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो केवलज्ञान छोड़नेयोग्य है। अर्थात्? अर्थात् इसका अर्थ क्या? कि आत्मा जो साधक है, एक समय में पूर्णानन्द की जिसे दृष्टि हुई और उस दृष्टि के बल से पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं। क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, इसलिए पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं, इसलिए पर्याय को हेय कहा। समझ में आया? इसका अर्थ यह कि उस-उस गुणस्थान के योग्य उस-उस प्रकार का राग न आवे और दूसरे प्रकार का राग आवे और उसे निमित्त में भी कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र भी हों। क्योंकि वे सब परद्रव्य हैं, इसलिए उसमें कुछ अपने यह हो या यह हो, यह हो या यह हो... क्यों? सिद्ध में केवलज्ञान ही हो, ऐसा कुछ नहीं। क्योंकि केवलज्ञान परद्रव्य है और परद्रव्य तो हेय है। फिर केवलज्ञान न भी हो और ज्ञान की पर्याय वह बुझ गये हुए दीपक जैसी हो। नहीं कहते? ... कहते हैं न। बहुभाग कहते हैं। कि भाई! केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि वह वस्तु उपाधिवाली हुई। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि केवलज्ञानादि नव लब्धि आदि हेय हैं, परद्रव्य है, इसलिए केवलज्ञान ऐसा तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला हो या न हो, वह दीपक बुझ जाये जब। दीपक में से मैल को निकाल डालना हो तो दीपक को बुझाना पड़ता है। धुआँ निकलता है न धुआँ? धुआँ मिटाना हो तो दीपक बुझे और धुआँ जाये, लो! इसी प्रकार आत्मा में से मैल निकालना हो तो मैल के साथ चैतन्य का प्रकाश भी निकाल डाले तो आत्मा की मुक्ति हो। उसे मुक्ति कहते हैं, (परन्तु ऐसा है नहीं)।

यहाँ कहते हैं कि जो शुद्धनिश्चयनय के बल से... आत्मा एक स्वभाव, एक समय में स्वभाव का पिण्ड है, उस दृष्टि के बल से व्यवहार के सब भेद हेय हैं। हेय का अर्थ कि यह केवलज्ञान जिसका स्वरूप है, वह दूसरी जाति का वहाँ हो जाये, क्षयोपशमसमकित का स्वरूप है, ऐसा दूसरी जाति का हो जाये, क्षायिकसमकित का स्वरूप है, वह दूसरी जाति का हो जाये या उसस मय देव-गुरु-शास्त्र का, सच्चे देव-गुरु का राग आवे, वह राग दूसरी जाति का हो जाये या उसे निमित्तरूप से दूसरी जाति के निमित्त हों, क्योंकि वे परद्रव्य हैं। फिर केवलज्ञान की पर्याय ऐसी हो या न हो, क्योंकि वह तो परद्रव्य है। ऐसा नहीं होता। समझ में आया? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा कारणपरमात्मा स्वयं ही ध्रुवस्वरूप है, वह स्वद्रव्य है। इस अपेक्षा से वर्तमान पर्याय से यथार्थ जैसी-जैसी भूमिका के योग्य और जो केवलज्ञान के योग्य केवलज्ञान हो, ऐसा तीन काल, तीन लोक को जाने—ऐसा केवलज्ञान हो, ऐसी पर्याय होने पर भी, मुनि को भी मुनिपने के योग्य छठवें गुणस्थान की भावलिङ्ग की पर्याय होने पर भी और उनकी पर्याय में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प ऐसे अचेल, निर्ग्रन्थ आदि के होने पर भी, उससे विपरीत न होने पर भी, उसे परद्रव्य कहा है। चन्दुभाई! समझ में आया?

आत्मा... ऐसे स्वद्रव्य और परद्रव्य दो ही बात, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञायक परमानन्दकन्द वह स्वद्रव्य और उसमें पर्याय के जितने भेद पड़ें, वे परद्रव्य। इसलिए भेद पड़ें, वे फिर चाहे जैसे विपरीत हों, (ऐसा नहीं है)। क्षयोपशम में कहे हुए भाव, उदय में कहे हुए रागादि के भाव, उपशम में कहे हुए भाव, क्षायिक में कहे हुए, जो उसका स्वरूप है, उससे चाहे जैसा विरुद्ध हो, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। छोटाभाई! हो, वह तो जैसी पर्याय हो, जैसी छठवें गुणस्थान की जैसी, चौथे की जैसी, पाँचवें की जैसी, तेरहवें की और उस-उस भूमिका के योग्य जैसा-जैसा विकल्प और राग, उस-उस भूमिका के योग्य उस-उस राग का जिसका पर का लक्ष्य, झुकाव, वही होता है, दूसरा नहीं हो सकता।

तथापि शुद्धनिश्चयनय के बल से, कि जो व्यवहारनय से उपादेय कहे गये थे, उन सबको हेय कह दिया है। समझ में आया? क्योंकि छोड़नेयोग्य तो है, फिर परद्रव्य

ऐसे हों पर्यायें, चौथे गुणस्थान में ऐसी हो, पाँचवें में ऐसी हो, छठवें में ऐसी हो तो उसे विकल्प ऐसे हों और उसे शास्त्र-देव-गुरु भी निमित्त ऐसे हों, उसे जानने का क्या काम ? क्योंकि वह तो छोड़नेयोग्य है; ऐसा नहीं है। जानना तो बराबर जैसी-जैसी अवस्था और जो निमित्त हो, उसे विकल्प वे शुभादि आवे और उसे वैसे वे निमित्त होते हैं, यह बराबर जाननेयोग्य है। इसका स्पष्टीकरण फिर आगे की गाथा में करेंगे।

अब कहा परद्रव्य। वहाँ वापस स्पष्टीकरण कर डालेंगे एकदम। ५३वीं गाथा में कि समकित पानेवाले को समकित जीव का उपदेश और उसका अभिप्राय निमित्त होता है, दूसरा निमित्त हो नहीं सकता। देखो, यह स्पष्टीकरण हो ... वहाँ वापस ऐसा निमित्त खड़ा रखेंगे। गजब भाई ! यहाँ केवलज्ञानादि पर्याय परद्रव्य है। है तो स्व की पर्याय अभेददृष्टि में तो अन्तर। यहाँ तो स्वस्वभाव एक समय में आनन्द पूर्ण ज्ञानानन्द का आश्रय कराने को अभेद स्वभाव को स्वद्रव्य गिना और संसार-मोक्ष की जितनी उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक जितने भेद पड़ते हैं, उन्हें भेदरूप परद्रव्य और अभेद स्वद्रव्य। समझ में आया ? इससे भेदवाली पर्यायें खोटी हैं, ऐसा भी नहीं, तथा भेद में आड़ी-टेढ़ी... है, ऐसा भी नहीं, परन्तु भेद की पर्याय ऐसी है कि उसके आश्रय से लाभ नहीं।

इसलिए यहाँ कहते हैं शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। स्वभावसन्मुख एक समय में भगवान आत्मा पूर्ण है, उसके सन्मुख की दृष्टि से देखो तो सब पर्यायों के, अवस्थाओं के भेद छोड़नेयोग्य हैं। यह सम्यग्दर्शन का, धर्म का विवेक है। **किस कारण से ?** अब कहते हैं कि किस कारण से वे सब हेय हैं ? क्षायिकसमकित हेय है, क्षायिकचारित्र हेय है, क्षायिक केवलज्ञान छोड़नेयोग्य है। ओहोहो !

किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं... क्योंकि वे विशेषभावरूप हैं। सामान्य एक समय का भाव त्रिकाल है, उसकी अपेक्षा से वे सब भाव विशेष-विशेष, विशेष अर्थात् विभाव, विभाव अर्थात् परस्वभाव, ऐसा कहकर उन्हें परस्वभाव कहा है। **और इसीलिए परद्रव्य है...** ओहोहो ! यह तो उन पण्डितों को कठोर पड़े ऐसा है न अर्थ करते हुए। एक तो संवर, निर्जरा को स्वभाव में डालकर स्वद्रव्य कहे। संवर, निर्जरा शुद्ध चिदानन्द आत्मा के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगटे,

उसे अभेद गिनकर स्वद्रव्य कहे आश्रय गिनकर, अजीव गिनकर परद्रव्य कहे। और यहाँ कहे कि ऐसा एक समय का शुद्ध परमपारिणामिकभाव, वह स्वद्रव्य है, बाकी सब भेद का आश्रय लेनेयोग्य नहीं है, इसलिए सभी भेद परद्रव्य कहा गया है। ओहोहो! गजब बात, भाई! समझ में आया? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** अर्थात् कि आत्मा एकरूप जीवतत्त्व वह ज्ञायकस्वभाव, वह परम अन्तःतत्त्वस्वभावरूप भाव, उसकी अपेक्षा से वर्तमान पुण्य-पाप, दया, दान, काम, क्रोध और उपशमसमकित, क्षायिकसमकित इत्यादि, वे सब परस्वभाव, इसलिए उन्हें परद्रव्य कहा है। कहो, समझ में आया?

सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित... स्वद्रव्यभाव, स्ववस्तुभाव। वह परवस्तु है। एक समय की पर्याय, उसे कर्मकृत गिनकर, क्षायिकभाव भी परकृत—निमित्त के अभाव की अपेक्षा गिनकर कर्मकृत, उसमें का एक समय का परमभाव उसे स्वद्रव्य कहते हैं और दूसरे सबको परद्रव्य कहते हैं। कहो, समझ में आया? ओहोहो! अभी तो विवाद वापस बाहर में। समझ में आता है न? वास्तविक पर्यायें कैसी होती हैं, राग कैसा होता है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं, उसकी भी खबर न हो, उसे परद्रव्य हेय है, यह तीन काल में हो नहीं सकता। क्योंकि जो देव-गुरु-शास्त्र राग से स्वभाव का स्वीकार करे, द्रव्य का वास्तविक स्वरूप का उसे भान नहीं और व्यवहार के राग ... आदि से निश्चय प्राप्त होता है, यह बताया, उसे परद्रव्य कहना कि वह तो परद्रव्य उपादेय कहा। छोटाभाई! समझ में आया? जिस परवस्तु से और परनिमित्त से और राग से स्वभाव का लाभ जिसने बतलाया, उसने तो देव-गुरु-शास्त्र जो सब परद्रव्य, उनसे लाभ बतलाया। राग से, हों! उसे केवलज्ञान परद्रव्य हो नहीं सकता। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि वे परद्रव्य हैं। रागादि, पुण्यादि भाव विभाव, तब स्वद्रव्य कहो, **सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित...** यह सब वास्तविक तो वह पर्याय है वैसी है। केवलज्ञान क्षायिकभाव, क्षयोपशम, समकित, निसर्ग, अधिगम, उसमें जो निमित्त हो वह निमित्त। और इतना परद्रव्य गिनकर वापस यहाँ ५३वीं गाथा में डालेंगे कि भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ आप्तपुरुष की जो वाणी, उसका निमित्त उसे बाह्य में होता है, दूसरा निमित्त नहीं हो सकता। भाई! ... यह निमित्त का क्या काम है? और वह समकित पानेवाले प्राणी को वे सर्वज्ञ अथवा मुनि अथवा समकित ही निमित्त होते हैं, उसका—

दूसरे का अभिप्राय निमित्त हो नहीं सकता। भाई! अब वह परद्रव्य है। समझ में आया? परद्रव्य भी जैसा हो, वैसा होता है। धर्मास्तिकाय की पर्याय आत्मा की गति में परद्रव्य है, परन्तु गति के समय धर्मास्ति की ही पर्याय निमित्त होती है, दूसरा निमित्त हो नहीं सकता। उसी प्रकार आत्मा में जितने स्वविभावभाव पर्यायों कहीं, राग-द्वेष, पुण्य-पाप आदि, उनसे रहित शुद्ध-अंतःतत्त्वस्वरूप... शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में शुद्ध अन्तःतत्त्व, अन्तर ... ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। वह शुद्ध-अंतःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। यहाँ तो स्पष्टीकरण किया है, हों! वह संवर-निर्जरा आदि उपादेय नहीं, ऐसा स्पष्टीकरण किया है। कहो, समझ में आया?

एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में भगवान आत्मा जो शुद्ध अन्तःतत्त्व, अन्तःतत्त्व; केवलज्ञान और केवलदर्शन, वे सब बहिर्तत्त्व हैं। लो! यह तेरहवें, चौदहवें भेदवाले पुद्गल के परिणाम कहे। भेद की अपेक्षा से उसे बहिर्तत्त्व कहा, उसे परद्रव्य कहा, उसे विभावभाव कहा, उसे विशेष पर्याय कहा। वह ... एक शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप एक समय में पूर्ण स्वरूप अन्तःतत्त्व लिया। ऐसा जो स्वद्रव्य आत्मा, वह उपादेय है। इसके अतिरिक्त समकिति को कोई अंगीकार करनेयोग्य नहीं। कहो, समझ में आया? फिर यह स्वद्रव्य उपादेय करके पड़े अन्दर, फिर चाहे जैसी क्रिया की हो, अन्यमति की साधु की हो, बाबा की हो, वस्त्र दूसरे चाहे जैसे हों, उसमें कुछ बाधक है परद्रव्य? वह परद्रव्य होता ही नहीं ऐसा। समझ में आया? यहाँ तो परद्रव्य जो हो, वह होता है, तथापि एक समय में अन्तःतत्त्वस्वरूप भगवान आत्मा को अंगीकार किये हुए को जो हो, वैसी पर्याय होती है, वैसा ही राग होने पर भी वह हेय अर्थात् छोड़नेयोग्य है, आदरनेयोग्य है नहीं। समझ में आया? यह तो बात ही कोई दूसरी है।

अब इसमें शत्रुंजय और सम्मेदशिखर तो कहीं रह गये। शत्रुंजय और सम्मेदशिखर के भाव के समय अपना शुभभाव, वह कहीं रह गया, उस शुभभाव के समय अपने को क्षयोपशमभाव हो, वह कहीं रह गया, परन्तु क्षयोपशम टलकर क्षायिक हो, उसका आश्रय करनेयोग्य है, (ऐसा भी नहीं)। क्योंकि वह होगा तब होगा। अभी नहीं, उसका लक्ष्य करने जाये तो वह बहिर्तत्त्व है, वह अन्तःतत्त्व नहीं। समझ में आया? ... भाई!

बहुत सूक्ष्म ऐसा। कहो, अभी तो निमित्त के झगड़े, अभी तो ऐसा निमित्त हो तो आवे। समझे न? यह निमित्त आवे तो ऐसी पर्याय हो, वरना नहीं हो, इतनी स्वतन्त्र एक समय की पर्याय (उसे) पराधीन (माना)। समझ में आया? और उस पर्याय के समय निमित्त जो आनेवाला हो, वैसा न हो और दूसरा आवे, यह भी निमित्त की अनिश्चितता, ऐसा वस्तु का स्वरूप है नहीं। निमित्त तो जो हो, वही होता है, उसकी ओर का जो राग हो, वही होता है, तथापि उस निमित्त से राग और राग से निमित्त नहीं। तथापि उस अन्तःतत्त्वस्वरूप की अपेक्षा से वे भी बहिर्तत्त्व हैं। स्वद्रव्य और परद्रव्य। यह स्वद्रव्य का अन्तःतत्त्वस्वरूप भाव निरुपाधि। परद्रव्य का बहिर्तत्त्वभाव उदय से लेकर क्षायिक, वह सब परद्रव्य का भाव। समझ में आया?

सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित... विभावगुणपर्याय अर्थात् सभी क्षायिकभाव आदि से रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। वास्तव में सहजज्ञान... सहजस्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान, स्वाभाविक सहजदर्शन... दृष्टा। सहजस्वाभाविकचारित्र और सहज वीतराग, परमवीतरागसुखात्मक... आनन्दस्वरूप शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप... यह भाव लिया। अन्तर का भाव जो त्रिकाल स्वाभाविकज्ञान, स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकचारित्र, स्वाभाविक परम वीतरागी आनन्द, ऐसा अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार ऐसा जो यह स्वद्रव्य, वह अन्तःतत्त्वस्वरूप ऐसा जो स्वद्रव्य, उसका आधार, यह तो अभी भेद करके बात करते हैं। सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार है। यह तो वह अभेद गिनकर भावस्वरूप स्वद्रव्य, वही कारणसमयसार है। समझ में आया? क्या कहा?

त्रिकाली स्वाभाविकज्ञान, त्रिकाली स्वाभाविकदर्शन, त्रिकाली स्वाभाविकचारित्र और त्रिकाली स्वाभाविक परमवीतराग आनन्द, ऐसा अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य। उस स्वद्रव्य का आधार। और स्वद्रव्य का आधार, यह तो उन भाव को द्रव्य कहा है। क्या? जैसे उन उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक को परद्रव्य कहा, ऐसे स्वभावभाव को स्वद्रव्य कहा। क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय की पर्याय पुण्य-पाप की, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की भाव-भाव, वह भाव है। वह भाव है, वह बहिर्तत्त्वरूप भाव है, वह बहिर्तत्त्वरूप भाव, उसे परद्रव्य कहा। तब? अन्तर का

एक समय का सहज स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि भाव, जो अन्तःतत्त्वस्वरूप, जो स्वद्रव्य, जो स्वरूपभावरूप स्वद्रव्य, भावरूप स्वद्रव्य का आधार परमपारिणामिक कारणसमयसार, वह स्वद्रव्य। ओहोहो! समझ में आया ?

मुमुक्षु : भाव अर्थात् शक्ति ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, भाव अर्थात् शक्ति नहीं, शक्ति का आधार शक्तिवान, ऐसा। शक्ति अर्थात् भाव और आधार भाववान। ऐसे दो द्रव्य लिये न। ऐसी शैली प्रयोग की है कि आत्मा एक समय का (और) ऐसे उदय, उपशम, राग-द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध, उपशम आदि भाव, वे भाव, वे परद्रव्य। उस परद्रव्य के साथ भाव तो परद्रव्य और यहाँ निरुपाधिकभाव त्रिकाल। स्वाभाविकज्ञान, स्वाभाविक आनन्द, स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकचारित्र, जो स्वाभाविकभाव, वह भाव स्वद्रव्य का। वह भाव स्वयं स्वद्रव्य, परन्तु वह स्वद्रव्य करके भाव को स्वद्रव्य कहा, उसके भाव को परद्रव्य कहा। तब यह भाव, उसका आधार। आधार कौन ? कि परमपारिणामिक स्वभावलक्षण ऐसा जो कारणसमयसार, वह भाव का आधार। उस भाव को भाववान करके अभेद कर डालते हैं। वे भाव हैं, वे अनेक हैं और भाव का धारक एक है, परन्तु उसे इस प्रकार से कारणसमयसार को स्वद्रव्य कहा। समझ में आया ? ... ठीक। ... समझ में आया ? भाई! यह तो आवे, तब आवे न, कहीं....

यहाँ तो कहते हैं, कि देखो ! इस स्वद्रव्य को परद्रव्य के भावरूप गिनकर और परद्रव्य जो कहा, उसका कोई आधारवाला दूसरा द्रव्य नहीं, वह तो परद्रव्य ही है। परन्तु यहाँ आत्मा में, यहाँ पर्याय के जो पुण्य, पाप, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वे भाव हैं उपाधिभाव, विभावभाव, भेदभाव, वे भाव वह बहिर्तत्त्व और बहिर्तत्त्व, वह परद्रव्य। वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। अन्तःतत्त्व अन्तर्मुख कैसा ? कि **विभावगुणपर्यायों से रहित...** यह नास्ति की। परन्तु अस्ति ? कि **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है।** जिसका स्वरूप ही ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अन्तःतत्त्वस्वरूप है। यह अन्तःतत्त्व की व्याख्या की है कि क्या शुद्ध अन्तःतत्त्व ? स्वाभाविक ज्ञान त्रिकाली, स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकचारित्र, सहजपरमवीतरागात्मक, वीतराग आनन्दस्वरूप शुद्ध अन्तःतत्त्व की व्याख्या की। ऐसा जो यह स्वद्रव्य, ऐसा जो स्वद्रव्य, उसका आधार, ऐसे भाव, भावभेद

है, उनका आधार सहज परमपारिणामिक ऐसे त्रिकाल एकरूप भाव जो (सहज परम पारिणामिक भाव जिसका लक्षण है—ऐसा) कारणसमयसार है। ओहोहो! लोग ऐसे उलझन में आये ऐसा है या नहीं? समझ में आया?

दो भाव और दो द्रव्य। उस भाव का धारक, ऐसा कहा। अन्तर में एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो सहज अन्तःतत्त्वस्वरूप, सम्यग्ज्ञान-दर्शन त्रिकाली, हों! त्रिकाली... त्रिकाली... त्रिकाली ध्रुव। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनन्द, ऐसा अन्तःतत्त्वस्वरूप भाव, वह भाव, उसे स्वद्रव्य कहा और उसे गिना, वह भेद गिने न भेद? इसलिए स्वद्रव्य गिना। उसका आधार परमपारिणामिक एकरूपभाव, वह स्वद्रव्य है, वह कारणसमयसार है। वह कारणसमयसार भगवान, वही आदरनेयोग्य और उपादेय है। बाकी जितने विभावभावपर्याय, वे परद्रव्य, बहिरूतत्त्व वे सब परभाव विभावभाव जो छोड़नेयोग्य है, वे उपादेय नहीं और हेय है। ओहोहो! कहो, समझ में आया? कितना सूक्ष्म इसमें! जो इसमें अकस्मात् नया सुनने आया हो उसे तो मानो, यह क्या कहना चाहते हैं? क्या कहा यह? क्या कहते हैं परन्तु यह?

कहते हैं कि एक समय में एक ओर निरुपाधिकभाव, एक ओर उपाधिभाव अथवा एक समय में एक ओर स्वभावभाव। समझ में आया? एक ओर विशेषभाव। एक ओर स्वभाव अर्थात् सामान्यभाव, एक ओर विशेषभाव। वह विशेषभाव, वे पर्याय के भेद हैं संसार से सिद्ध सब पर्यायें, पर्यायें विशेष में। उस विशेषभाव को विभावभाव गिनकर, विभावभाव गिनकर, भेदभाव गिनकर जो भाव स्वयं परद्रव्य है, ऐसा कहा। समझ में आया? वह छोड़नेयोग्य है, आदरनेयोग्य नहीं।

यहाँ अन्तःतत्त्व एक समय में स्वाभाविकज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि, चारित्र आदि स्वरूप जो भाव, वह स्वद्रव्य अन्तःतत्त्वस्वरूप ऐसा स्वद्रव्य, ऐसा भाव, उसका आधार वह परमपारिणामिकभाव। अन्तःतत्त्व एक कहा, उसके भेद किये सहजज्ञान, दर्शन आदि, उनका आधार परमपारिणामिक। एक यह ... भावस्वभाव है, वह शुद्ध कारणसमयसार कहा जाता है। तो कारणसमयसार एक ही आदरनेयोग्य है। ओहोहो! समझ में आया? कहो, ...भाई! क्या कहना इसमें? यह तो और बारम्बार सुनने आवे। क्या कहते हैं इसमें, पकड़ में आये नहीं, लो! उसमें सम्मेदशिखर और शत्रुंजय कहीं

रह गया हेय में। वह तो ठीक, परन्तु उसके निमित्त में शुभराग आवे हेय में। अरे! राग का उपशम होकर उपशमसमकित हो, वह हेय में, राग का उपशम होकर उपशमचारित्र हो, वह छोड़ने में, इस राग का क्षय होकर क्षायिक चारित्र हो, (वह) छोड़ने में। समझ में आया ?

एक ओर सामान्यभाव तथा एक ओर विशेषभाव। सामान्य एक समय में पूर्ण स्वभावभाव, वह सामान्य। विशेष पर्यायें,... एक ओर स्वभावभाव, एक ओर विभावभाव। स्वभावभाव त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द, एक ओर विभावभाव उदय से लेकर क्षायिक। समझ में आया ? एक ओर त्रिकाल वस्तु वह एकरूप स्वद्रव्य तथा एक ओर विभावभाव, वह परद्रव्य। एक ओर त्रिकाल वस्तु, वह अन्तःतत्त्व, एक ओर क्षायिकभाव, उदयभाव (वह) बहिर्तत्त्व। समझ में आया ? दो नय के विषय तो कहे। ...भाई! दो नय के व्यवहारनय का विषय बहिर्तत्त्व, विभावभाव, विशेषभाव, उपाधिभाव, कर्मकृतभाव, निमित्त की सापेक्षतावाला भाव, वह व्यवहारनय का विषय है। है सही, ज्ञेय है, हेय है। जानकर छोड़नेयोग्य है, उपादेय नहीं। और एक समय में अन्तःतत्त्व सामान्य स्वभाव, एकरूपभाव। समझ में आया ? निरुपाधिभाव शुद्धभाव में से यह सब है। शुद्धभाव है न ऊपर ? ऐसा एक समय में परमशुद्धभाव जो अन्तःतत्त्व, उस अन्तःतत्त्व का आधार परमपारिणामिकभाव, ऐसा गिनकर अन्तःतत्त्व को स्वद्रव्य गिनकर उसका उसे आधार परमपारिणामिक। यह स्वद्रव्य में भेद पड़े न, इसलिए अभेद करके पारिणामिक लिया। एक परमपारिणामिक परमभाव, वही समकित में आदरने और आश्रय करनेयोग्य है। ...भाई! ओहोहो!

गजब धर्म, भाई! यह धर्म की व्याख्या भी किस प्रकार की ? अभी तो लोग बाहर से... तो ऐसा फिर होवे तो फिर यह मन्दिर को बनाया क्यों ? कहो ...भाई! लोग प्रश्न न करें ? तब यह क्या ? परन्तु किसने बनाया है ? वह तो परद्रव्य के काल में परद्रव्य होता है। और उस आत्मा को उस काल में परद्रव्यरूप राग भी उस काल में होता है। वह परद्रव्य लाने से लाया और निकालने से निकाला जाये, ऐसा नहीं। क्या कहा ? वह परद्रव्य जो है, वह लाने से लाया या रचा जाये, ऐसा नहीं। आत्मा में दया, दान के परिणाम लाने से लाये या रचाये आत्मा में, यह नहीं। तथापि आये बिना रहते

नहीं। निमित्त हो वैसा सामने पुद्गलपरावर्तन के नियमानुसार, वैसा आये बिना, रचे बिना रहे नहीं। क्या कहा? यह राग है, वह परद्रव्य है, उसे रचा नहीं जा सकता। लाओ, मैं रचूँ। यह क्षायिक पर्याय लाओ, मैं रचूँ। ऐसा कहते हैं। क्या कहा? इस निमित्त की पर्याय को रचूँ, बनाऊँ—ऐसा आत्मा में नहीं है। इस राग की पर्याय को रचूँ, वह द्रव्यस्वभाव में नहीं। इस राग को मैं अभी उसे... करके उपशम करूँ, उसके सामने देखकर, ऐसा द्रव्य में नहीं। राग और विकार को क्षय करने का और क्षायिक पर्याय प्रगट करूँ, ऐसी रचना द्रव्यस्वभाव में नहीं। नारणभाई! कहाँ तक ले जाना है अब तुम्हारे? क्षायिकभाव की रचना करना नहीं? ऐई! कहाँ गये? ऐई! मूलचन्दभाई! यहाँ वांचनेवाले याद आवे न सब, हों!

यह कहा न परद्रव्य... स्वद्रव्य में से नहीं आता। वह स्वद्रव्य नहीं, वह आवे... आवे। यहाँ तो वहाँ तक कहना है कि एक समय में भगवान शुद्धभाव आनन्दकन्द है, उस क्षायिकभाव को मैं रचूँ, ऐसी उसमें भावना नहीं। उसमें नहीं। उसके सन्मुख होने से वह रच जाता है। समझ में आया? स्वभाव एक समय का शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य परमपारिणामिकभाव, उसका आश्रय करने से पर्याय उपज जाती है, पर्याय रच जाती है; परन्तु पर्याय के आश्रय से पर्याय रचती है, इसलिए ऐसी पर्याय लाओ मैं इस क्षायिक को रचूँ, लाओ उपशम को बनाऊँ, लाओ राग को बनाऊँ, लाओ निमित्त को बनाऊँ—ऐसा द्रव्य में नहीं। द्रव्यसन्मुख होने से वह बन जाती है। समझ में आया? यह गाथा तो गजब रखी भाई ५०वीं।

ज्ञान-दर्शन-आनन्द जो अन्तःतत्त्वस्वरूप, उसका आधार परमपारिणामिकभाव है। केवलज्ञान का आधार, ऐसा नहीं लिया। परद्रव्य का आधार स्वद्रव्य? समझ में आया? यह बात यदि ऐसे एक समय सेकेण्ड के असंख्यवाँ भाग, उसमें भगवान आत्मा अन्तर वस्तु स्वाभाविकज्ञान, दर्शन, चारित्र और आनन्द—ऐसा जो अन्तःतत्त्वभाव, निरुपाधिभाव जो शुद्धभाव, स्वभावभाव, उसका आधार परमपारिणामिकभाव। ऐई! नारणभाई! यह सिद्धपद का आधार परमपारिणामिकभाव नहीं, उड़ाया यह तो। गजब बात यह तो! ... परद्रव्य का आधार स्वद्रव्य नहीं होता और स्वद्रव्य का आधार पर नहीं होता! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि यहाँ वस्तु ऐसी एकरूप अभेद चिदानन्द आत्मा, उस आत्मा का जो स्वभाव त्रिकाली, उसका आधार आत्मा, उसका आधार कारणसमयसार, उसका आधार वह परमपारिणामिकभाव। इसका अर्थ तो यह हुआ कि केवलज्ञानादि पर्याय का आश्रय करने से राग होता है, इसलिए इस अपेक्षा से सब परद्रव्य। परद्रव्य का आधार वह परमपारिणामिक नहीं। क्या सबमें जी... जी... करते हो? कोई कहे.... यह पण्डित होकर जो कहे हों, लो। समझ में आया?

यहाँ तो पाठ में लिया है न 'पुव्वुत्तसयलभावा परसहाव' अर्थात् 'परदव्वं' देखो, स्वभाव, वह परद्रव्य। स्पर्शता ही नहीं, पर्याय को स्पर्शता ही नहीं। परन्तु वह स्पर्शता नहीं, उसे आधार क्या? हेय है। अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य। पाठ में भी है, देखो न! अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य। ... आत्मा, वह उपादेय है, ऐसा लिया है न? इतना लेना। अन्तःतत्त्वरूप स्वद्रव्य गिनकर इसका आधार परमपारिणामिकभाव एकरूप आत्मा है, ऐसा लिया है। वह पाठ प्रमाण टीका की है। चिमनभाई! यह पाठ (गाथा) प्रमाण टीका की है। ऐसे नहीं कहा। समझ में आया? भाई! कान में तो पड़े, इसे समझ में आये, इसे ख्याल में तो आये कि यह क्या कहना चाहते हैं? चलता है चलो, चलो बापू! धर्म करते हैं, भाई! धर्म कहाँ होगा? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय। एक समय में जितने पर्याय के विशेष के बहिर्तत्त्व के, परद्रव्य के विकल्प आदि के भेद पड़ें, वे बहिर्द्रव्य गिनकर, बहिर्तत्त्व गिनकर, बहिर्भावरूप बहिर्तत्त्व, बहिर्भावरूप बहिर्तत्त्व, उपाधिभावरूप बहिर्तत्त्व, विशेष विभावरूप बहिर्द्रव्य। ऐई! छोड़नेयोग्य। अन्तःतत्त्व एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में स्वाभाविक ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि का स्वभाव ऐसा जो अन्तःतत्त्व, ऐसा जो स्वद्रव्य, उसका जो आधार परमपारिणामिक एकरूप स्वभावभाव, वह कारणसमयसार, वही एक उपादेय है, वह अंगीकार करनेयोग्य है, वह आश्रय करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया? यह लिखा नहीं? लिखते नहीं? यह विषय पहले में पहला आया है यह। देखो, नहीं भाई वह सही समय में नहीं। यह विषय तो पूरी जिन्दगी में पहला-पहला आया है। उसे नहीं लिखा। मूल... मूल बात लिखी नहीं जाती, इसलिए इसमें कुछ... भाई लिखते हैं उसमें कुछ, गुलाबचन्दभाई की लेखन की

शैली उसे नहीं होती। यह गया अब। यह विषय तो एकदम नया है। कभी ऐसा इस प्रकार के ढंग से आया नहीं। गया अब। मैंने कहा, लिखते होंगे। पीछे किसी समय लिखते थे। ... लेखन नहीं। ठीक। उस समय में शब्दों से आवे, वह फिर दूसरा सब, हों! यह भाव उस समय लेखन में आया हो तो आवे। कहो, समझ में आया? धर्मचन्दभाई! नहीं, अब तो यह आवे नहीं। यह गया सो गया। अब फिर से आवे नहीं। यह तो आवे तब पहला भाव आवे न। कहो, समझ में आया?

इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभाव लक्षण जो स्वाभाविक परमस्वभाव त्रिकाल ऐसा जिसका लक्षण है, स्वाभाविकपरमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण, और उसका लक्षण। किसका? कारणसमयसार का। कहो, समझ में आया? कारणसमयसार का लक्षण परमपारिणामिकभाव। यह वह अन्तःतत्त्व सहजस्वाभाविक-ज्ञान-दर्शन, उसका आधार परमपारिणामिकभाव, वह जिसका लक्षण ऐसा कारणसमयसार। ओहोहो! कहाँ तक ले गये! समझ में आया? लो!

इसी प्रकार (आचार्यदेव)... समझ में आया या नहीं इसमें कुछ? ऐई! कोठारी! कभी सुना था या नहीं यह? ले, मैं तो देवशीभाई कोठारी को कहता हूँ। दोनों कोठारी हैं। यह कोठार में माल कैसा पड़ा है, यह देखो इस प्रकार का भगवान के मार्ग में माल पड़ा है, लो! परन्तु यह कोठार सम्हालने जाता है कभी? वह कितना घी और कितना गुड़, कितने चावल खोजने जाता है। पन्द्रह दिन में कितना कम हुआ और कितना रहेगा। यहाँ कहते हैं कि अखूट खजाना। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जो यह अखूट खजाना परमस्वभावभाव, उसका आधार। समझ में आया? परमस्वभावभाव, उसका आधार परमपारिणामिकभाव। वह जिसका लक्षण, ऐसा जो कारणसमयसार लक्ष्य। समझ में आया? यह उसे स्वद्रव्य कहते हैं। उसे स्वद्रव्य और वह आदरनेयोग्य है। वह आदरनेयोग्य अर्थात् उस ओर का आश्रय हुआ, उसका नाम आदरनेयोग्य और यह हेय—छोड़नेयोग्य अर्थात् पर की उपेक्षा हुई, यह उसका नाम छोड़नेयोग्य। यह छोड़ूँ, ऐसा भी है नहीं। कहो, समझ में आया?

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि — लो, श्लोक।

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥

देखो, अपने आधार के लिये अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक रखा। वह परद्रव्य। जिनके चित्त का चरित्र उदात्त है... चित्त अर्थात् ज्ञान। जिसके ज्ञान का वर्तन, आचरण उदात्त है। (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं... जिसका ज्ञान का अभिप्राय, जिसके ज्ञान का चरित्र अर्थात्... समझ में आया ? मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले... देखो, लक्षण आया था न, इसलिए इसमें डाला जरा। लक्षणवाले... स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभाव लक्षण था सही न। यह जो भिन्न लक्षणवाले... पर्यायभेद, रागादि सर्व विविध प्रकार के भाव... अनेक प्रकार के भाव, एक प्रकार के स्वभावभाव की अपेक्षा से सब अनेक प्रकार के विविधभाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ,... वह सब मैं नहीं। क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं। कहो, ओहोहो! एक स्वद्रव्य के आश्रय अतिरिक्त समस्त परद्रव्य का आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसा गिनकर पर्याय को सबको परद्रव्य गिनकर, दो ही भाग किये—एक ओर स्वद्रव्य तथा एक ओर परद्रव्य। इन दो के भाव भी वर्णन किये। परद्रव्य का भाव विशेषभाव, विभावभाव। स्वद्रव्य का भाव सहज त्रिकाली और परमपारिणामिकलक्षणभाव, वह उसका भाव, उसका आधार कारणसमयसार। कहो, समझ में आया ? यह स्वद्रव्य ऐसा, वह आदरणीय आवे और परद्रव्य ऐसे। तथापि परद्रव्य में जो-जो प्रकार वहाँ हो, वे ही प्रकार वहाँ हो। वापस आगे-पीछे दूसरा हो, ऐसा भी नहीं। उसे परद्रव्य कहा हेय (कहा), इसलिए अब केवलज्ञान चाहे जैसा, ... चाहे जैसा, निमित्त चाहे जैसा हो, भगवान् शुद्ध स्वरूप... चाहे जिससे अपने को सुनना है न। समझ में आया ? वह वस्तु को समझते नहीं। इसलिए यह स्पष्टीकरण करके फिर यह अब पाँच गाथायें सरस रखेंगे। यह बात आयेगी अब।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

उसका वस्तुस्वरूप ऐसा है। परन्तु कार्य होता है, वह कारण में कार्य नहीं होता। समझ में आया? वह पर्याय में होता है। कार्य, वह पर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलआनन्द, केवलवीर्य, वह सब कार्य है। पर्याय है और पर्याय में कार्य होता है। परन्तु उस कार्य का उपादेयभाव न गिनकर, कारण को उपादेय गिनकर, कार्यपर्याय प्रगट होती है। कार्य को उपादेय गिनकर कार्य—नयी पर्याय प्रगट नहीं होती। इसलिए अन्तिम योगफल ५०वीं गाथा में कहा कि सहजपरमस्वभावभावरूप आत्मा जो कारणरूप त्रिकाल शुद्ध कारणपरमात्मा है, जो कारणसमयसार शुद्ध ध्रुव एकरूप त्रिकाल सदृश्य है। ... कार्य हो सकता नहीं। कहो, समझ में आया?

इसलिए पर्याय को परद्रव्य गिना और त्रिकाल वस्तु को स्वद्रव्य गिना। भाई! पर्याय को परद्रव्य गिना। लो! वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायक एकरूप स्वभाव है, उसे स्वद्रव्य गिना और एक समय की पर्याय है, उसे परद्रव्य गिना। क्योंकि परद्रव्य में से नयी दशा नहीं होती। नयी दशा जो होती है, वह त्रिकाल शुद्ध स्वभाव के आश्रय से होती है, इसलिए उसे स्वद्रव्य गिना, पर्याय प्रगट होती है, उसे भी परद्रव्य गिना। क्योंकि वस्तु एकरूप रहे, उसे स्वद्रव्य गिना। और नयी... नयी... नयी... नयी... पर्याय हो, उसे परद्रव्य गिना है। उस परद्रव्य को कार्य गिनकर, स्वद्रव्य को कारण गिनकर और कारण उपादेय है, परन्तु परद्रव्य ऐसा कार्य उपादेय—अंगीकार करनेयोग्य नहीं, ऐसी बात को यहाँ ५०वीं गाथा में अन्तिम मर्म सिद्ध किया। अनादि सत्, अनादि सत्स्वरूप, अनादि सन्तों ने अनुभव किया हुआ स्वरूप, अनादि केवलियों ने जाना हुआ और कहा हुआ स्वरूप। उसे स्पष्ट रीति से ५०वीं गाथा में पर्याय को परद्रव्य कहकर आदरणीय तीन काल, तीन लोक में यदि हो तो एक ही त्रिकाल स्वभाव, वही कारण और आदरणीय है। कहो, समझ में आया?

इसमें तो अकेली आत्मा की बात आयी। इसमें क्या करना यह आया? मोहनभाई! इसमें क्या करना, यह आया कि त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव जो वस्तु स्वभाव शक्ति से भरपूर

है, उसकी श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर और उसमें रमणता कर। यही मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई तीन काल, तीन लोक में मोक्षमार्ग है नहीं। यह बात साबित करके अब अमृतचन्द्राचार्य के श्लोक का आधार देते हैं।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमदमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥

अपनी बात को आधार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का तो है। इसकी टीका करके फिर अमृतचन्द्राचार्य का आधार देते हैं। जिनके ज्ञान का अभिप्राय उदात्त है। जिनके चित्त का चरित्र उदात्त है... अर्थात् कि जिसके ज्ञान का अभिप्राय (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं... जिनके चित्त का... चित्त का अर्थात् ज्ञान का। जिसके ज्ञान में, चरित्र अर्थात् ज्ञान का अभिप्राय उदात्त, उदार, उच्च और उज्ज्वल है। लो! यहाँ उदार गिना। जिसके ज्ञान में अभिप्राय उदार है। वह उदार, उन उदारवन्त जीवों को क्या करना? कि ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो... जिनके ज्ञान में अभिप्राय, उदार, उच्च, उज्ज्वल और ऊँचा अभिप्राय है। ऐसे जीवों, मोक्षार्थियों को इस सिद्धान्त का, इस निर्णय का, इस निश्चित—निश्चितभाव का यह तीनों काल एक प्रकार के नियम के भाव का सेवन करो। क्या? कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... कहो, यह उदार। क्योंकि पर्याय में से पर्याय आती नहीं। पर्याय में से पर्याय माने, वह उदार नहीं। वह उदार नहीं, उसके ज्ञान का अभिप्राय ऊँचा नहीं। उसके ज्ञान का अभिप्राय हल्का और विपरीत है। क्या कहा, समझ में आया?

जिसके ज्ञान में अभिप्राय उदार, उच्च और उज्ज्वल तथा उदात्त है, वह निमित्त से धर्म न मानो, व्यवहार से धर्म न मानो, पर्याय में से पर्याय न मानो, उदार होते हों तो उदार तो स्वभाव में होओ। क्योंकि स्वभाव में से पर्याय प्रगट होती है। पर्याय में से या

पुण्य में से या निमित्त में से धर्म की पर्याय तीन काल में किसी को प्रगट नहीं होती। कहो, समझ में आया? रतिभाई! यह तो उदार होने का आया। उदार-उदार होओ, कहते हैं। कंजूस न होओ, कंजूस न होओ। ज्ञान के अभिप्राय में उदार होओ, उच्च होओ, उज्ज्वल होओ। ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो।

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... त्रिकाल परम कारणस्वभाव ज्ञायकमूर्ति ही मैं हूँ। मेरा स्वभाव त्रिकाल एकरूप सदृश्य आनन्दकन्द ज्ञायक कारणपरमात्मा, कारणशक्तिस्वरूप, वह मैं हूँ। मैं तो शुद्ध... अर्थात् पवित्र, त्रिकाली पवित्र चैतन्यमय... जो ज्ञान और दर्शनमय अभेद। एक परमज्योति ही सदा हूँ... जिसका अभिप्राय सुलटा करना हो, जिसे सच्चे अभिप्राय में उदार होना हो, जिसे सच्चे अभिप्राय में उच्च और उज्ज्वल करना हो, ऐसे मोक्ष के अर्थी जीवों को इस एक ही सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... त्रिकाल आनन्दकन्द शुद्ध परमधाम अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होने का भी धाम सदा ही मैं परमज्योति ही हूँ। यही अंगीकार करनेयोग्य है, बाकी कोई अंगीकार करनेयोग्य नहीं। कहो, समझ में आया?

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... परमज्योति क्यों कहा? यह हीन अवस्था और विकारी अवस्था, उसे जला डालने की सामर्थ्य मेरे त्रिकाल चैतन्य ज्योति में है। हीन को नाश करके पूरी होने की, विकार का नाश करके वीतराग होने की वह सामर्थ्य, मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;... यह आगे बहुत आयेगा। परमपारिणामिकभाव ऐसा है कि संसाररूपी दावानल को बुझाने के लिये अग्नि समान है। अग्नि समान है। वह त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव। अकेला चैतन्य, जिसमें से अनन्त केवलज्ञान की पर्याय बहे, परिणमे—ऐसा जो आनन्दकन्द ज्ञायक ज्योति, वह सदा ही मैं ऐसा हूँ। जिसे अभिप्राय शुद्ध करना हो, जिसे अभिप्राय निर्मल करना हो, जिसे अभिप्राय उदार और उच्च करना हो, उसे यह सेवन करना। दूसरे के लिये यह बात नहीं की जाती। कहो, समझ में आया?

तीन काल-तीन लोक का एक सिद्धान्त। सर्वज्ञ का, सन्तों का, ज्ञानियों का, मुनियों का, शास्त्रों का कि मैं तो (त्रिकाल) शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव

हूँ;... तीनों काल मुझमें सिद्ध और संसार के दो भेद, वह तो व्यवहारनय का विषय है। सिद्ध और संसार, दोनों व्यवहारनय का विषय है। मैं तो त्रिकाल एक ज्ञायकस्वभाव हूँ। देखो, यह वाणी। आगे गाथाओं में कहेंगे। ऐसी वाणी ज्ञानी के मुख से निकले, वह वाणी उसे कान में सम्यग्दर्शन और निमित्तरूप कहलाती है। इसके अतिरिक्त निमित्तरूप भी कहलाये नहीं। यह बाद में कहेंगे। इस गाथा के बाद पाँच गाथाओं में। उसे जब शुद्ध ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकाव हो और शास्त्र में भी यह कहा। ज्ञानी के मुख में से वाणी भी ऐसी निकले कि तू त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव एकरूप है। यह ऐसी वाणी जिनसूत्र की और ज्ञानी की वाणी, उसे निमित्तरूप कहा जाता है। इसके अतिरिक्त निमित्तरूप भी नहीं कही जाती। कहो, समझ में आया ?

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले... भिन्न-भिन्न लक्षणवाले एक समय की विकारी पर्याय और एक-एक समय की पर्याय, वह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं,... त्रिकाल में से जो नयी पर्याय और विकल्प उठते हैं, वह मैं नहीं... इतना मैं नहीं। भाई! प्रगट पर्याय होती है वह। कहो, पुण्य विकल्प मैं नहीं, निमित्त तो नहीं, उसकी तो बात भी नहीं। यह तो नयी प्रगट पर्याय भिन्न-भिन्न लक्षणवाली विकल्प और पर्याय प्रगट होती है, वे भाव, वह मैं नहीं। त्रिकाल मैं नहीं। त्रिकाल मैं सदा ही परमज्योति चैतन्यमूर्ति हूँ। क्योंकि वे सभी मुझे परद्रव्य है। क्योंकि वे सब मुझे मेरे त्रिकाल सदा ही चैतन्यज्योति एक स्वभाव के लिये लाभदायक है नहीं, इसलिए परद्रव्य है। कार्य होता है पर्याय में, तथापि उस पर्याय को भी स्वद्रव्य का अवलम्बन लेने, पर्याय मुड़ती है स्वद्रव्य में। कार्य पर्याय मुड़ती है त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध चैतन्य के झुकाव में। तब कार्य प्रगट होता है। इसलिए पर्याय को परद्रव्य गिनकर त्रिकाल द्रव्य स्वद्रव्य को आदरणीय कहा गया है। कहो, समझ में आया ?

जिसका उदार चित्त है, जिसका हृदय उच्च और उज्ज्वल है, जिसका अभिप्राय शुद्ध करना है, जिसे परमसत्य हृदय में धारण करना है, जिसे अभिप्राय की उदारता, बड़ी खान चैतन्य की एक समय की पर्याय, एक समय का विकल्प, उसमें कुछ खान-बान है नहीं। जिसके चित्त का अभिप्राय उदार करना हो, दानी होना हो, प्रगट करने का... होना हो तो उसे यह सिद्धान्त सेवन करना। आत्मा को दान देना दानी अर्थात्।

भाई! दानी होना अर्थात्। दान भी पर की बात नहीं। सम्प्रदान। आत्मा की पर्याय में दानी होना हो, आत्मा की पर्याय में दान देने में दानी होना हो तो उसे ऐसे उदार अभिप्राय को सेवन करना कि मैं त्रिकाल शुद्ध चैतन्य ज्योति ही हूँ। पर्याय और विकल्प का भेद सब व्यवहार का विषय जाननेयोग्य है, परन्तु वह आदरनेयोग्य नहीं। कहो, समझ में आया? लो, इसे उदार कहा। मोहनभाई! पैसा-बैसा खर्च करे, उसे उदार नहीं कहा। अरे! पुण्य करे, उसे उदार, पुण्य के परिणाम करे, उसे उदार नहीं कहा, एक समय की पर्याय का आदर करे, उसे उदार नहीं कहा। ओहोहो! भाई! एक समय की पर्याय को उदार नहीं कहा, क्योंकि एक समय की पर्याय तो चली जायेगी। चली जायेगी, इसलिए उसे ... वह उदार है नहीं। एक समय का विकल्प उठे पुण्य का, व्यवहाररत्नत्रय का, वह भी चला जायेगा उसे ... तू उदार हो। उदार, उज्ज्वल और उदात्त जिसका अभिप्राय है और जिसे इस अभिप्राय का सेवन करना हो तो त्रिकाल सन्त केवली और आत्मा का स्वभाव ऐसा ही है कि त्रिकाल चैतन्य ज्योति का मैं आदर करूँ, यही अभिप्राय सत्य और सम्यक् है, इसके अतिरिक्त कोई सम्यक् है नहीं। कहो, समझ में आया?

यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट... अनेक-अनेक कहना है। अनेक-अनेक वह आदरणीय नहीं, वह एक आदरणीय है। भाई! मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक... लिया है न? एक त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... एक वह आदरणीय है। परन्तु जो विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वे अनेक, वह मैं नहीं। अनेक का लक्षण पर्याय, पर्याय में अनेकता आने पर धर्म की पर्याय अनेक प्रगट होने से उसका आश्रय करने जाने पर राग होता है।

मुमुक्षु : उसका उपादान होना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपादान द्रव्य। शुद्ध उपादान द्रव्य। यहाँ तो त्रिकाल शुद्ध उपादान द्रव्य, वह शुद्ध उपादान है। त्रिकाल जो कारणशुद्ध उपादान स्वयं द्रव्य कारण पलटकर कार्य होता है। ओहोहो! एक बात व्यवस्थित बैठे नहीं वह फिर शास्त्र और पृष्ठ पढ़े, उसमें उसका एक भी अक्षर सच्चा नहीं होता। अपनी दृष्टि से अर्थ करे, अपनी दृष्टि से घड़ (तह) बैठावे और उल्टी विपरीतता चलावे। वह यहाँ भगवान अमृतचन्द्राचार्य, यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य और यहाँ पद्मप्रभमलधारिदेव, यह उसका सार अनन्त तीन काल-

तीन लोक का सार कि इस सिद्धान्त का सेवन करो... लो! सिद्धान्त का सेवन करो। यह सेवन करो, वह पर्याय है, हों! सेवन करने की वह तो पर्याय है, परन्तु ऐसा सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं त्रिकाल एकरूप चैतन्य ज्ञायक हूँ, वही कारण है, बाकी कोई कारण है नहीं।

विविध प्रकार के भाव... उसमें एक कहा था और उसके सामने विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ... अनेक पर्यायों का आश्रय, वह मेरा स्वरूप नहीं। एकरूप त्रिकाल स्वभाव है, वह मेरा स्वरूप है। वह यह द्रव्यदृष्टि है, यह कारणपरमात्मा अंगीकार करनेयोग्य है। यह अमृतचन्द्राचार्य का आधार दिया था।

अब और (इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) — स्वयं कहते हैं। अब पद्मप्रभमलधारिदेव स्वयं इसके लिये श्लोक कहते हैं।

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-

दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः ।

इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी

सिद्धिं सोडयं याति तामत्यपूर्वाम् ॥७४ ॥

श्लोकार्थः—शुद्ध जीवास्तिकाय से... शब्द दूसरा प्रयोग किया, भाई! कारणसमयसार त्रिकाल कहो, कारणपरमात्मा त्रिकाल कहो, ध्रुव कहो, शुद्ध जीवास्तिकाय कहो, नित्य कहो, कारणसमयसार त्रिकाल कहो, कारणशुद्धजीव कहो, यह सब एक है। शुद्ध जीवास्तिकाय से... शुद्ध जीवास्तिकाय अर्थात् त्रिकाल ध्रुव एकस्वरूप। कारणपरमात्मा कहो या शुद्ध जीवास्तिकाय कहो। एक समय की पर्याय और विकल्प को गौण करके, एक समय की पर्याय और विकल्प और राग को गौण करके, गौण अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर। त्रिकाल जो शुद्ध जीवास्तिकाय एकरूप चिदानन्द आनन्दकन्द ध्रुव सामान्य ध्रुव पड़ा है। उससे अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं'— उससे जो अन्य समस्त, यह पर्याय के आश्रय से रागादि हो, इसलिए सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं। कहो, समझ में आया ?

शुद्ध जीवास्तिकाय... एक की बात है, हों! एक जीवास्तिकाय की। समस्त जीवास्तिकाय की बात नहीं। शुद्ध स्वयं त्रिकाल शुद्ध जीव, शुद्ध जीव अस्ति है, काय असंख्य प्रदेशी। त्रिकाल एकरूप ध्रुव आनन्दकन्द ज्ञायकस्वभाव है। उससे अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य... पर का लक्ष्य करने से, पुद्गल अर्थात् राग की उत्पत्ति और कर्म का बन्धन होता है, लक्ष्य अर्थात् आश्रय करने से, ज्ञान करने से वह तो व्यवहार का विषय है। सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं'—ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,... ऐसा जो तत्त्व का जाननेवाला स्पष्टरूप से कहता है, ऐसा जो तत्त्व का जाननेवाला स्पष्टरूप से मानता है, यहाँ तो कहते हैं का जोर देते हुए वाचक का जोर दिया है, परन्तु वाच्य अन्दर पड़ा। ऐसा जो तत्त्व का जाननेवाला स्पष्टरूप से मानता है और कहते हैं, वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं। वह अति अपूर्व सिद्धि। अति अपूर्व सिद्धि अर्थात् मुक्ति। अनन्त काल में नहीं प्रगट हुई, ऐसी मुक्ति दशा को पाता है। लो, यहाँ तो कहे, उसका वजन दिया।

जिसकी वाणी में इतना जोर आता है, वह उसका जोर वाणी का नहीं कहना। उसके पीछे वाच्य तत्त्व का जो है एक शुद्ध भगवान कारणपरमात्मा के अतिरिक्त कहीं भी मुझे आदरणीय तीन काल में है नहीं, ऐसा स्वयं मानता है और जगत को कहता है। जगत को कहता है। यह भाषा ... आती है आगे। ज्ञानी के वचन निमित्तरूप कहेंगे। ऐसा जो कहता है और वह अन्तर अभिप्राय के आश्रय से समझता है, उसे वीतराग की वाणी और गुरु की वाणी निमित्तरूप से कही जाती है। वरना तो अनन्त बार समवसरण में सुना, तथापि कहीं इसने अपने अभिप्राय से सब बात खतौनी की। समझ में आया? सर्वज्ञ कुछ कहते हैं, शास्त्र कुछ कहते हैं, ज्ञानी कुछ कहते हैं। अपनी दृष्टि से उसका अर्थ किया और अपनी दृष्टि से ज्ञानी को भी खतौनी कर डाला। ऐसी दृष्टिवाले की बात यहाँ नहीं करते।

यहाँ तो जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से... स्पष्ट बात करता है कि एक तेरे जीवास्तिकाय के अतिरिक्त और मुझे मेरे जीवास्तिकाय के अतिरिक्त तीन काल में मुक्ति और मोक्ष का मार्ग कोई है नहीं। ऐसा जो स्पष्टरूप से कहता है, वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते

हैं। वह अति अपूर्व सिद्धि। साधारण सिद्धि तो पावे। केवलज्ञान अमुक... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसी पर्याय नहीं। यह तो अति अपूर्व—अनन्त काल में नहीं प्राप्त, ऐसी परमात्म परम मुक्तदशा को पाता है। यह पद्मप्रभमलधारिदेव ने श्लोक कहा, लो! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा था स्वद्रव्य-परद्रव्य की व्याख्या, पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की थी, अमृतचन्द्राचार्य का आधार देकर पुष्टि की कि भाई! चारों ओर से देखो तो बात यह है। किसी पहलू से दूसरी बात है नहीं।

अब अन्तिम पाँच गाथायें हैं। देखो, यह गाथायें बहुत अलौकिक हैं। सभी अलौकिक हैं एक-एक। परन्तु इसमें अब ज्ञानी को निमित्त किस प्रकार से ठहराते हैं, ऐसी अद्भुत अलौकिक रीति से बात की है।

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१ ॥
 चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
 अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं ॥५२ ॥
 सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
 अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी ॥५३ ॥
 सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं ।
 ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४ ॥
 ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं ।
 णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ॥५५ ॥
 मिथ्याभिपाय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१ ॥
 चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।
 आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है ॥५२ ॥
 जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो ।
 वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो ॥५३ ॥

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
 व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है ॥५४ ॥
 व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये।
 चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये ॥५५ ॥

पहले अन्वयार्थ। अन्वयार्थ :- विपरीत अभिनिवेश... अर्थात् अभिप्राय और आग्रह रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है;... भाई! यह व्यवहारसमकित की बात है अभी। अभी तो यह व्यवहारसमकित की बात है। विपरीत अभिप्रायरहित सर्वज्ञ, शास्त्रकार, गुरु और ज्ञानी जो कुछ कहते हैं, वह पर के लक्ष्य से विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही... व्यवहारसमकित है। अभी मोक्ष का कारण नहीं। कहो, समझ में आया? संशय, विमोह और विभ्रम रहित (ज्ञान), वह सम्यग्ज्ञान है। परसन्मुख का। वह भी व्यवहारज्ञान है। संशय, विमोह और विभ्रम रहित (ज्ञान), वह सम्यग्ज्ञान है। वह व्यवहार है। परसन्मुख की बात है।

चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है;... यह भी व्यवहार है। यह तो पहले की बात की व्याख्या की है। हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव वह (सम्यक्) ज्ञान है। यह भी व्यवहार है। भाई! यह भी व्यवहार है। अभी तो व्यवहार का विकल्प। निश्चय ऐसा हो और उसे ऐसा विकल्प होता है, यह बाद में कहेंगे। हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव वह (सम्यक्) ज्ञान है। इतनी बात की। सम्यक्चारित्र की बाद में करेंगे, भाई! ध्यान रखना। अब कहते हैं कि सच्चे निश्चय समकित का निमित्त सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है;... वीतराग की वाणी है। जो वाणी उसे कारणपरमात्मा और उपादेयरूप से बताती है। वह जिनसूत्र वाणी। इसलिए ५० के बाद यह कहा।

वीतराग की वाणी जिनसूत्र, ऐसी वाणी है कि त्रिकाल जिसमें से पर्याय प्रगटे, उस कारणपरमात्मा को उपादेयरूप से स्वीकार करे, यह वाणी कहती है। उस वाणी को निमिततरूप से कहा। बहिरंग निमित्त है वह। बहिरंग निमित्त है। अन्तरंग कारणपरमात्मा का आदर करके श्रद्धा हो, उसे यह बहिरंग निमित्त कही जाती है। समझ में आया? वीतरागीसूत्र। इसलिए शब्द रखा है जिन रखा है न। वीतरागी वाणी। अर्थात् वीतरागी

वाणी अर्थात् वीतराग की ओर ले जाये और जिसमें भेद का आश्रय न रहे, जिसमें त्रिकाल चैतन्य अभेद का आश्रय बतावे, उसे वीतराग की वाणी कहा जाता है। भाई! क्या कहा, समझ में आया? वीतरागवाणी का सार, अभिप्राय, तात्पर्य, शास्त्र-तात्पर्य, सूत्र-तात्पर्य, उसका योगफल वीतरागता है। वीतरागता, वह त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव के अवलम्बन से ही प्रगट होती है, किसी पर्याय से या विकल्प से या निमित्त से प्रगट नहीं होती। ऐसी वीतराग की वाणी, वह सम्यक्त्व का निमित्त है। ऐसी वाणी वह निमित्त कहलाती है। कहो, समझ में आया?

अब दूसरी पद्धति। **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** ऐसे वीतरागी भाव को जाननेवाले पुरुषों को। जिनसूत्र अर्थात् शास्त्र कहे, परन्तु वीतराग जो कहते हैं, वह जाना है अन्तर में कि आत्मा राग और पुण्य और पर्याय से आत्मा प्रगट नहीं होता। आत्मा त्रिकाल स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ है। ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र चौथे से ठेठ केवली तक लेना। **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** अकेले सूत्र नहीं, हों! शब्द नहीं। अकेले पृष्ठ नहीं। जिनसूत्र शब्द से जिन के शास्त्र में जो कहना है, वाच्य जो कहना है। वह तो वाचक से कथन है। वाच्य जो कहना है कि यह आत्मा ज्ञायक कारणस्वरूप त्रिकाल है। यह उसकी रुचि, दृष्टि और अन्तरदृष्टि हुई है, ऐसे जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को सम्यक्त्व के जिसे सम्यग्दर्शन का परिणाम प्रगट होता है, उसे ये **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** दूसरे समकित के परिणाम में अन्तरंग हेतु कहा है। ओहोहो! गजब बात, भाई! लो! यह तो अर्थ दूसरे प्रकार का निकला। अन्तरंग हेतु। वह वीतराग की वाणी बहिरंग हेतु। वीतराग की वाणी, वह वाणी बहिरंग हेतु है। किसे? सम्यग्दर्शन पानेवाले को, पानेवाले को। और पुरुष वह अन्तरंग हेतु है। है तो पर, है तो वह पर, परन्तु उसका अभिप्राय है वह यह पकड़ता है अन्तर स्वभाव के आश्रय से, इसलिए उस निमित्त को अन्तरंग-बाह्य उपचार से उसे अन्तरंग हेतु कहा है। कहो, समझ में आया? बाह्य पुरुष तो उपचार ही है वास्तव में। पुरुष भी उपचार है और वाणी भी उपचार है, परन्तु वाणी को बहिरंग उपचार कहा और पुरुष को अन्तरंग उपचार हेतु कहा है। क्योंकि उसका अभिप्राय पकड़ना है। वाणी तो गौण है। वाणी कहने का जो अभिप्राय है कि वीतराग आत्मा तू

है, त्रिकाल ज्ञायक है। उसका अवलम्बन ले। ऐसा उसका अभिप्राय पकड़ने में वह निमित्त होता है। इसलिए वीतरागी सूत्र के जाननेवाले पुरुष को, समकित प्राप्त करनेवाले जीव को, वे पुरुष अंतरंग हेतु कहे हैं, ... कहो, समझ में आया? सम्यग्दर्शन पानेवाले को। अकेले पुस्तक से प्राप्त हो, ऐसा नहीं हो सकता तीन काल-तीन लोक में। कहो, समझ में आया? यह पहली बात है। पहली जहाँ देशना होती है, तब उसकी पात्रता की पर्याय होती है, इसलिए चैतन्य का उसे पहला निमित्त होता ही है। उसकी पर्याय पराधीन नहीं। उसके क्रम में आकर खड़ी रहती है। परन्तु उसकी पर्याय सत् का जहाँ त्रिकाल ज्ञायक हूँ, ऐसा समझने का हो तो उसे जिन वीतरागी सूत्र का ही बहिरंग निमित्त होता है। दूसरे सूत्रों का बहिरंग निमित्त नहीं होता।

और वीतरागी भाव अन्तर से प्रगट हुआ है दर्शन। कि जिनसूत्र के जाननेवाले का अर्थ यह है। वीतराग का तात्पर्य वीतरागी दृष्टि है। वीतराग का तात्पर्य वीतरागी चारित्र है। वह दृष्टि और चारित्र आदि प्रगट हुए हैं, वे अन्तरंग हेतु कहे हैं। कहो, समझ में आया? किसे अन्तरंग हेतु कहा है? सम्यग्दर्शन जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे सम्यग्दर्शन परिणाम में वीतराग की वाणी को बहिरंग निमित्त कहा और सूत्र के जाननेवाले धर्मात्मा को दूसरे के समकित के परिणाम में अन्तरंग हेतु कहा है। कहो, समझ में आया? देखो, सत् को सत् का निमित्त होता है, उसे अकेले पृष्ठ-पुस्तक का निमित्त नहीं होता कि कोई पृष्ठ पढ़कर हो जाये, यह पहला नहीं हो सकता। इस बात को यहाँ प्रसिद्ध करते हैं। दलीचन्दभाई!

एक उसकी तैयारी सम्यग्ज्ञान है न, ज्ञान का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। इसलिए जहाँ स्व को जाननेवाला जहाँ जगा, उस समय परप्रकाशक खिला, इसलिए परनिमित्त भी ऐसा सामने होता है, वह वस्तु का स्वभाव। पराधीनता नहीं। पराधीनता नहीं। वह न हो तो नहीं होगा, ऐसा नहीं। यह हो तो वह होगा ही, यह वस्तु का स्वभाव है। भाई! समझ में आया? यह केसर भरना हो तो डिब्बा ही होता है। केसर भरना हो तो बोरी नहीं होती कि ऐसा ही सम्बन्ध है। पराधीन कोई नहीं किसी के कारण से। सम्यक्त्व का निमित्त बाहर में वीतरागी सूत्र कहे, हैं तो दोनों बाह्य और जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुष हैं तो बाह्य। सम्यग्दर्शन के परिणामवाले को वह चीज़ तो बाहर है,

तथापि भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा डाला है कि उसे हम अन्तरंग हेतु कहते हैं। समकित पानेवाले को अन्तरंग निमित्तरूप से उपचार से हो तो उसे अन्तरंग हेतु उपचार से कहते हैं और वाणी को बाहर से निमित्त कहते हैं। बाह्य हेतुरूप उपचार और अन्तरंग हेतुरूप उपचार। ओय! भाषा भी अलग प्रकार की। कहो, समझ में आया ?

क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं। सम्यग्दर्शन पानेवाले जीव को जो निमित्त मिला है, उस निमित्तवाले जीव को या तो दर्शनमोह का क्षय हुआ है, या उपशम हुआ है या क्षयोपशम हुआ है। क्षयादिक। भाई! यह तो बारहवें गुणस्थान की बात तो स्वयं अन्तरात्मारूप से करे, तब करता है न! वह तो अभी भले गुणस्थान न हो, उसका प्रश्न नहीं। बारहवें गुणस्थान की व्याख्या भी कर डाले। उत्कृष्ट अन्तरात्मा बारहवें गुणस्थानवाला शुक्लध्यान हो तो ऐसा होता है। सब पाठ में आता है। शुक्लध्यान हो, न हो, उसका प्रश्न अभी नहीं। शुक्लध्यान और धर्मध्यान करे तो ऐसा होता है, शुक्लध्यान करे तो ऐसा होता है। वह शुक्लध्यान कहीं मुनि को स्वयं को था नहीं, परन्तु स्वभाव की उग्र भावना में वह सब वाणी निकल गयी है। वाणी निकल गयी है, हों! लाये नहीं कोई। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, जो कोई धर्मी जीव अपने आत्मा का अवलम्बन लेने की तैयारी हुई है, कारणपरमात्मा के अवलम्बन की योग्यता हुई है, उसे बहिरंग में वीतरागी वाणी जिसमें वीतराग तात्पर्य है, वीतराग ही चारों अनुयोग का तात्पर्य है। वीतराग अर्थात् स्वभाव का अवलम्बन, वही उसका तात्पर्य है। वह वाणी उसे निमित्त हो बहिरंग और उस वाणी के समझनेवाले ज्ञानी जिन्हें दर्शनमोह का क्षय, उपशम या क्षयोपशम हुआ हो, वे समकित पानेवाले को बहिरंग उपचार से। बहिरंग अर्थात् उपचार से अन्तरंग हेतु कहे हैं। समझ में आया ? अब यह तो व्यवहार की बात की और यह निमित्त की बात की। यह निमित्त निश्चय का है।

अब, **सुन! मोक्ष के लिये...** अब निश्चय की बात आती है। **सुन! मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,...** यह निश्चय है। यह त्रिकाल चैतन्यस्वभाव के अवलम्बन से सम्यक्त्व होता है, वह मोक्ष के लिये समकित है। वह व्यवहार वह विकल्प था और निमित्त की ओर का झुकाव भी वह विकल्प था, वह किसे, वह व्यवहार निमित्तरूप

होता है ? ऊपर जो व्यवहार कहा और यह निमित्त है, ऐसा कहा। भाई! ऊपर व्यवहार कहा और निमित्त कहा, वह किसे व्यवहार और निमित्त कहलाये ? कि मोक्ष के लिये सम्यक्त्व। सुन! कि जिसका चैतन्यस्वभाव कारण भगवान के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उसे मोक्ष के लिये समकित उसे उस व्यवहार को निमित्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया ? यह गाथा बहुत ऊँची है। बहुत सरस इस शुद्धभाव के अधिकार में अन्तिम अलौकिक बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने स्पष्ट कर डाली है। कितने ही लोग अभी खतौनी कर डालते हैं कि चाहे जैसा निमित्त हो, चाहे जैसे पृष्ठ हों तो हम तो उसमें से भी सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे। ऐसे नहीं मिलता। या पूर्व के संस्कार होना चाहिए, या पूर्व में भी सुना हुआ होना चाहिए, परन्तु एक बार ज्ञानी के पास से इसके परिणाम को जो उपादेय त्रिकाल शुद्ध आत्मा है, ऐसा भणकार ज्ञानी के पास से पहले मिला हुआ होना चाहिए और ऐसी पात्रता हो, उसे ही यह होता है। इसलिए यह बात करते हैं। कि इस मोक्ष के लिये जिसका समकित है। स्वभावसन्मुख ढली हुई श्रद्धा, वह समकित है। उसकी सब व्याख्या टीका में करेंगे। यह तो अन्वयार्थ। एकबार बहनों ने कहा कि अन्वयार्थ भी इसमें पढ़ना। इसलिए यह अन्वयार्थ पढ़ते हैं। कहो, समझ में आया ? भाई! यह पहला पहला है, इसलिए पढ़ना। क्यों ? बेचरभाई! हमने पहले अन्वयार्थ छोड़ दिया था एकबार।

मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... उसमें भी जरा बात बहुत सरस है न अन्वयार्थ में भी। सम्यग्ज्ञान होता है और मोक्ष के लिये सम्यग्ज्ञान। वह व्यवहार की बात की। वह मोक्ष के लिये नहीं। पहले जो समकित और ज्ञान कहे, वे तो व्यवहार हैं, वह तो विकल्प है, वह मोक्ष के लिये नहीं। परन्तु जो मोक्ष के लिये सम्यक् हो, वहाँ ऐसा विकल्प होत है, केवली नहीं हैं, इसलिए (होता है)। होता है इतना। होता है। यहाँ निश्चय होता है, वहाँ विकल्प होता है। बस इतना होता है। उससे होता है और उससे होता है, यह बात नहीं। सुन! **मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, चारित्र (भी) होता है,...** यह तीन लिये। भाई! यह निश्चय के लिये वे। आत्मा त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वभाव ध्रुव ज्ञायक। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन और उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान और उसके आश्रय से चारित्र, वह मोक्ष के लिये है। जितना जो जिनसूत्र और अन्तरंग हेतु और

निमित्त के लक्ष्य से है, उतना ही विकल्प और व्यवहार है। वह व्यवहार मोक्ष का कारण नहीं। कहो, समझ में आया ?

अब कहते हैं, **इसलिए मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा**। चारित्र के दो पहलू कहेंगे, कहते हैं। क्योंकि उसमें चारित्र नहीं आया था, भाई! उसमें दर्शन-ज्ञान दो बोल आये थे। दो बोल आये थे। चारित्र का व्यवहार-निश्चय दो बोल नहीं आये थे। और इसमें निश्चय में तीन बोल आ गये। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अब मैं **व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा**। व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है अर्थात् कि छठवें गुणस्थान में विकल्पवाला भाव वर्तता है, उसे विकल्पवाला तप कहा जाता है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव का अवलम्बन लेकर जो दृष्टि, ज्ञान और रमणता मुनि को छठवें (गुणस्थान में) भावलिंगी सन्त को नग्नदशा प्रगट हुई है। ऐसे जो मुनि को व्यवहार का जो विकल्प वर्तता है शुभराग, ऐसे जीव को शुभ व्यवहारतप है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि अभी शुभराग में है। दृष्टि प्रगटी है, चारित्र प्रगट हुआ है, परन्तु जो अन्दर सातवीं भूमिका निश्चयचारित्र में स्थिर हुआ नहीं। व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है। तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। वह छठवें गुणस्थान में रागादि का भाव व्यवहारमुनिपना है। निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है। निश्चय अर्थात् स्वभाव में लीन हो गया। ऐसे तपस्वी को यहाँ तो ऐसा कहा कि निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपस्या होती है। टीका में तो ऐसा लेंगे कि स्वभाव के आश्रय से जो स्थिर होकर तप में स्थित है, उसे निश्चयचारित्र होता है। समझ में आया ? क्योंकि वह तप अर्थात् मुनिपना लेना है। जिसे व्यवहारमुनिपना, निश्चयमुनिपना। निश्चयमुनिपना अर्थात् स्वभाव के भानसहित अन्दर में स्थिर हो गया। निर्विकल्प में स्थिर हो गया है, जम गया है, वह निश्चयमुनि और निश्चयतप। तथा दृष्टि और चारित्रस्वरूप प्रगट हुए होने पर भी स्थिर नहीं और विकल्प—शुभराग में, छठवें (गुणस्थान में) राग में, शुभभाव में वर्तता है, उसे शुभराग का व्यवहारचारित्र गिनकर व्यवहारतप में खड़ा है, ऐसा कहा है। निश्चय तो है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है, परन्तु निश्चय में लीन नहीं, इसलिए उसे निश्चयतप नहीं कहा, भाई! कहो, समझ में आया ?

इसमें? ओहोहो! कहो, यह अन्वयार्थ हुआ। इस गाथा में अभी बहुत भरा है। पाँचों ही गाथाओं में।

टीका:- यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। पहला। भेदरत्नत्रय का स्वरूप है। समझ में आया? फिर दूसरा पेरोग्राफ है। **अभेदोपचार-रत्नत्रय...** वह गाथा जो है, यह मोक्ष के लिये, यह बाद में आयेगी। परन्तु यह दोनों साथ में होते हैं, हों! ऐसा नहीं कि व्यवहार पहला और निश्चय बाद में, ऐसा है नहीं। यहाँ तो उसे बतलाते हैं कि ऐसा जहाँ निश्चय हो, वहाँ ऐसा विकल्प अभी नय है, साधक है; केवलज्ञानी नहीं है; इसलिए ऐसा विकल्प, ऐसा जिनसूत्र का उसे निमित्त, प्रथम भी निमित्त और अभी भी झुकाव हो, विकल्प उठे तो वीतरागी वाणी का स्वाध्याय करते हैं। **यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** कहो, समझ में आया?

प्रथम, भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है— भेद उपचार अर्थात् भेदरूप व्यवहार। भेदरूप व्यवहार रत्नत्रय इस प्रकार है। जो विकल्पवाला है, जो शुभरागवाला है, जो मोक्ष के लिये नहीं। उसका यह कथन चलता है। गजब बात, भाई! **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत...** देखो, इसमें भी व्यवहार में उसका कहते हैं कि निश्चय का भान है और व्यवहार में विपरीत आग्रहरहित, विपरीत अभिनिवेशरहित, विपरीत श्रद्धारहित, उसे कोई सर्वज्ञ के अतिरिक्त, सर्वज्ञ की वाणी के न्याय के अतिरिक्त कोई कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की कहीं लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं होनी चाहिए तो उसे व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। वह भी निश्चयश्रद्धा हो तो। इतनी शर्त के ऊपर सब बात है।

विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप... अभिनिवेश अर्थात् अभिप्राय। विपरीत / उल्टा अभिप्रायरहित **श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के...** मुक्ति का परम्पराहेतुभूत... लो! परम्पराहेतुभूत। निश्चय तो त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, वह कारण साक्षात् मुक्ति का कारण है। परन्तु वह विकल्प उठा है, इसे क्रम से तोड़ डालेगा, इसलिए उसे निमित्तरूप से परम्पराहेतु, हेतु अर्थात् निमित्त। परम्परा निमित्तभूत **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति उत्पन्न हुआ चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है।** कहो, निश्चय स्वभगवान कारणपरमात्मा के प्रति निश्चयभक्ति प्रगट हुई कारणपरमात्मा

की और जो श्रद्धा सम्यक् मोक्ष का कारण हुआ, वहाँ जो विकल्परूप भाव वर्तता है कि जो भगवन्त पंच परमेष्ठी। पंच परमेष्ठी। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, मुनि, वे ही मोक्ष के निमित्तभूत हो सकते हैं। समझ में आया ? भाई ! पंच परमेष्ठी को वजन दिया है, भाई ! कहो, समझ में आया ? पंच परमेष्ठी—पाँच पद—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। यह पाँचों ही वीतरागी पद हैं। अल्पता तारतम्यता में जरा अन्तर है। अरिहन्त में, आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि में अन्तर है। सिद्ध तो पूर्ण हो गये हैं। तथापि अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय (और साधु) के प्रति चलता-मलिनता ऐसा होगा या वैसा ? यह नहीं। मलिनता नहीं, अगाढ़ता—अनिश्चितता नहीं। उससे रहित। यह तो तीन दोष हैं। इन तीन दोषरहित उपजा हुआ निश्चल भक्तियुक्त.... त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ आदि पंच परमेष्ठी के प्रति निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है। यह व्यवहारसमकित का विकल्प है। विकल्प अर्थात् शुभराग। समझ में आया ?

उसे विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव... वह अस्ति कही। उसे कोई विष्णु कर्ता, ब्रह्मा ने किया, किसी ने कुछ किया इत्यादि। उनके कहे हुए जो तत्त्व सर्वज्ञ भगवान के अतिरिक्त के। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने एक समय में जो तत्त्व जाने, देखे और वाणी द्वारा कहे। उन कथित से विपरीत, उनके कहे हुए से सब विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव। जिसके पदार्थ के आग्रह का अभाव है। अर्थात् किसी भी अंश में भगवान पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त किसी की वाणी कहीं आंशिक सत्य होगी ? ऐसा जिसे अन्दर पड़ा है, उसे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह और अलग। यहाँ तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश अन्यमति के जो कहे हुए तत्त्व, ऐसा। यह भगवान ब्रह्मा, यह पहले कहे हुए, वह अलग बात वापस आयी। भाई ने वापस मिलाया वह। पहले पद में आया था न कि हे वीतराग ! तू ब्रह्मा, तू विष्णु, परन्तु उनके विपरीत पदार्थ नहीं। यहाँ तो विपरीत पदार्थ की बात है। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त, पंच परमेष्ठी ने कहे हुए पदार्थ के अतिरिक्त जो विपरीत पदार्थ का समूह कहा है। उसके प्रति आदर का अभाव, वह सम्यक्त्व है। ऐसा अर्थ है। कहो, समझ

में आया ? यह अभी व्यवहार समकित की बात चलती है। यह भी सच्चा और वह भी सच्चा, यह भी सही और वह भी सही। उसकी बात तो व्यवहार की भी सच्ची नहीं।

यह व्यवहारसमकित का विकल्प ऐसा होता है, यह बतलाते हैं। समझ में आया ? किसे ? कि निश्चयसम्यक्त्ववाले को। विपरीत पदार्थ। सर्वज्ञ भगवान ने जो कहे पदार्थ, वह वस्तु का स्वरूप है। स्वरूप है, वैसा जाना है और जाना है, वैसा कहा है। कहीं फेरफार वस्तु में है नहीं। महासन्त, मुनि, महाक्षयोपशम के समुद्र वीरसेनस्वामी आदि हुए, गोम्मटसार के कर्ता आदि नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती जिनके क्षयोपशम का समुद्र प्रस्फुटित हुआ, उन भी पुरुषों ने जहाँ कोई धारणा में परम्परा से प्राप्त बात में अन्तर पड़ा तो कह दिया। हमारा अधिकार दूसरी बात कहना का नहीं। हमको यह उपदेश मिला नहीं। हम किस प्रकार कहें ? जो जाना है गुरुगम से और आत्मा से जाना है। परन्तु जिस बात का एक... खया कि यह बात समुद्र प्रस्फुटित बुद्धि ऐसा तो अभी आज कोई पुरुष इतने वर्षों में सैकड़ों में पके नहीं। ऐसा जिनके छठवें-सातवें में भावलिंग दशा और जिनकी विकसित पर्याय। समुद्र जिनकी संख्या याद रहना मुश्किल। उस पुरुष को ऐसा कहते हैं कि जब एक बात मुझे गुरु से यह बात मिली नहीं। किस प्रकार कहें ? समझ में आया ? इसलिए कहते हैं कि वे इतने भवभीरु थे। भवभीरु थे। गुरुगम से वस्तु मिली थी। और कहते हैं कि ऐसे सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरों के विपरीत पदार्थ के प्रति आग्रह जिसे अन्दर होता है, उसे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। यहाँ निषेध करते हैं यहाँ। देखो, पद्मप्रभमलधारिदेव भी व्यवहारश्रद्धा के विकल्प में भी उसे इतना सत्यभाव पर के आश्रय से, परन्तु केवली और पंच परमेष्ठी कहते हैं, वही खड़ा हो जाता है। खड़ा हो जाता है। इसमें फेरफार नहीं करता। कहो, समझ में आया ? ऐसी श्रद्धा होती है।

संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। संशय—ऐसा होगा या वैसा होगा ? वह मिथ्याज्ञान है। विमोह—विपरीतपना, समझ में आया ? अथवा उलझन—कुछ होगा, कुछ होगा। और विभ्रम—विभ्रम अर्थात् भ्रमणा, विपरीतता, उससे रहित वही सम्यग्ज्ञान है। यह अभी व्यवहार है, हों ! क्योंकि सम्यग्ज्ञान-दर्शन तो चैतन्य के आश्रय से होता है, वही निश्चय है। निश्चय ज्ञायक कारणपरमात्मा के आश्रय से

यहाँ निश्चय कहा जायेगा बाद में। यह तो अभी व्यवहार की बात सम्यक् चैतन्य त्रिकाल के आश्रय से ज्ञान-दर्शन प्रगट हुआ है, उसे ऐसा व्यवहारिक ज्ञान होता है। वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे... वीतराग सच्चे होंगे या शिव और शंकर, ब्रह्मा, विष्णु इत्यादि के कथन किसी जगह होंगे? (ऐसा शंकारूप भाव), वह संशय है;... यह ज्ञानी को व्यवहार में भी होता नहीं। समकिति को व्यवहार में भी यह शंका होती नहीं।

शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय (अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है;... समझ में आया? विमोह—विपरीत उलझन, विपरीतभाव, विपरीत निर्णय, वह जिसे नहीं होता। और अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है तत्सम्बन्धी अज्ञानपना)... कुछ होगा। इसमें कुछ खबर पड़ती नहीं। ऐसा जो विभ्रम भाव, वह समकिति को होता नहीं। यह विपरीत दर्शन और विपरीत ज्ञान व्यवहार के दोष का अभाव वर्णन किया। समझ में आया?

पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। यह व्यवहार। और मुनि को छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के परिणाम से विरुद्ध हिंसा, झूठ आदि के पाप के परिणाम से रहित, वह व्यवहारचारित्र है। पंच महाव्रत के जो छठवें गुणस्थान में अट्ठाईस मूलगुण के जो परिणाम छठवें गुणस्थान में मुनि के अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम, जो पाप के परिणाम अशुभ से निवृत्तिरूप है, वह व्यवहारचारित्र है। ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। लो, यह सब व्यवहार है, अभी विकल्प है। इस प्रकार तो भेदरूप व्यवहाररत्नत्रय की परिणति अर्थात् राग की अवस्था है। कहो, समझ में आया? अब इस व्यवहार के साथ निमित्त कैसा होता है, उसकी बात करके निश्चय कहेंगे, भाई! यह व्यवहार की बात करके निमित्त कैसा होता है, उसकी बात निश्चय कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

